भाग—1

इकाई—1

म च्छकटिकम् (शूद्रक)

म च्छकटिक तथा उसके रचयिता का समय

जिस प्रकार म च्छकटिक के रचयिता को इतिहास में खोजना विद्वानों के लिए एक समस्या रही है उसी प्रकार रचना का समय निर्धारण करना भी बहुत कठिन प्रमाणित हुआ है। वास्तव में देखा जाय तो दोनों प्रश्न ही अन्योन्याश्रित हैं, एक का पता लगने पर दूसरे का पता अपने आप ही लग सकता है।

जहां तक किसी ग्रन्थ के काल निर्णय का सम्बन्ध है, उसके लिये प्रायः दो मार्ग अपनाये जाते हैं। प्रथम-ग्रन्थ कर्त्ता का काल निश्चित करके ही उसे ही ग्रंथ का काल मान लिया जाता है। द्वितीय-जहां पर उक्त बात संभव न हो वहां आभ्यंतर और ब्राह्य प्रमाणों के आधार पर स्वतंत्र रूप से ग्रन्थ का काल निश्चित किया जाता है। म च्छकटिक के काल निर्णय हेतु दोनों ही द ष्टियों से विचार किये गये हैं और निष्कर्ष भी निकालने का प्रयास किये गये हैं। परन्तु अभी तक ये सभी अनिश्चय के गर्भ में है। इस सम्बन्ध में आज तक जो कार्य हुआ है। उसके अनुसार इसका समय त तीय शताब्दी ई० पूर्व से लेकर अष्टम शताब्दी तक दोलायमान है। विद्वानों द्वारा इस लम्बी अवधि में विभिन्न तिथि सम्बन्धी मत रखे गये हैं जो सप्रमाणिक होते हुये भी पूर्ण रूपेण अकाट्य नहीं कहे जा सकते।

(क) ईसा पूर्व त तीय शताब्दी से ई० पूर्व प्रथम शताब्दी

स्कन्द-पुराण में शुद्रक विषयक उल्लेख प्राप्ति के अनुसार पर म च्छकटिक के कर्त्ता शुद्रक को आन्ध्रवंश के आदिम राजा से अभिन्न मानने का प्रयास विद्वानों द्वारा समय-समय पर किया जाता है। इसी अभिन्नता के आधार पर म च्छकटिक का रचनाकाल भी ईसा पूर्व द्वितीय शताबदी तथा ई. पू. प्रथम शताब्दी अनुमानित किये गये है। इस मत के प्रमुख समर्थकों में कर्नल विल्फोर्ड विल्सन, डॉ. भण्डारकर, एम. आर.काले. डॉ. भार्गव, डॉ. हरिदत्त शास्त्री आदि है। सभी विद्वानों ने अन्तः साक्ष्य एवं बाह्य साक्ष्य के आधार पर उक्त काल की पुष्टि का प्रयास किया है।

१ डॉ. भण्डारकर का कथन है कि सातवाहन नरेशों का शासन-काल ब हत्कथा तथा गाथासप्तशती जैसी काव्य-ग्रन्थों के प्रणयन से सौरर्भित था और ये ग्रन्थ उनके प्राकृत प्रेम के परिचायक समझे जायेंगे। पुनः सातवाहनों के राज्यकाल में बौद्ध धर्म की यथेष्ठ उन्नति हुई थी और उसे राज्य की ओर से प्रचुर प्रोत्साहन भी मिला था। श्री काले एवं विल्सन दोनों ने डॉ. भण्डारकर के उक्त विचारों को उद्ध त करते हुये अपने अलग मत प्रकट किये हैं। विल्सन महोदय का कथन है कि म च्छकटिक में प्राकृत भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ है और संवाहक भिक्षु के प्रति प्रदर्शित व्यवहार से बौद्ध धर्म की उन्नत एवं सम्मानपूर्ण अवस्था

का अर्थ ग्रहण किया है। इन्हीं व अन्य आधारों पर आपने म च्छकटिक को सातवाहन-काल की रचना माना है। इस सम्बन्ध में आपने दो अन्य तर्क भी दिये है पहला तर्क शकार संस्थानक द्वारा प्रस्तुत किये गये उलटे-सीधे उद्धरणों से सम्बन्धित है। विल्सन का कथन है कि उसके सम्पूर्ण उद्धरण रामायण तथा महाभारत से लिये गये हैं और पौराणिक कथाओं में प्राप्त ध्रुव, प्रहलाद, प्रभ ति पात्रों की कोई चर्चा उनमें उपलब्ध नहीं है। इसमे जान पड़ता है कि म च्छकटिक की रचना पुराणों के पूर्व हुई होगी क्योंकि नाटककार उनकी कथाओं से परिचित नहीं जान पड़ता है। आपका दूसरा तर्क यह है कि ब्राह्मण चारुदत्त तथा वेश्या वसन्सेना में जो वैध दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित हो गया है, उससे भी लक्षित होता है कि नाटक उस समय के पूर्व रचा गया होगा जब ब्राह्मण एवं शूद्र में वैवाहिक सम्बन्ध निषिद्ध ठहराया गया।

२. विल्सन के अतिरिक्त डॉ. काले ने भी अन्तः साक्ष्यों के आधार मानते हुये इस प्रकार अपना मत प्रस्तुत किया है-

(क) यह नाटक ऐसे समय की ओर संकेत करता है जब बौद्ध धर्म उन्नत अवस्था में था। बौद्ध भिक्षुकों का जनता में सम्मान था, व भिक्षु क धर्म ह्रास की ओर अग्रसर हो चला था। अतः इस नाटक की रचना इससे पूर्व ही मानी चाहिये।

(ख) नवम अंक में अधिकरणिक द्वारा कथित अगरक-विरुद्धस्य इत्यादि श्लोक में मंगल को ब हस्पति का शत्रुग्रह बतलाया गया है। यह मान्यता वराहमिहिर के विपरीत पड़ती है और उनके पूर्ववर्ती ज्योतिषाचार्यों - द्वारा यह मान्य थी जिनका कि उल्लेख उसने व हज्जातक में किया हैं डॉ. काले का इस सन्दर्भ में कथन है कि वराहमिहिर का समय ५०० ई. के लगभग निर्धारित किया गया है। अतः म च्छकटिक की रचना उसके अनेक शताब्दी पूर्व होनी चाहिये।

(ग) वैशिकी काल का उल्लेख तथा किसी वेश्या के नायिका होने की कल्पना वात्स्यायन के कामसूत्र की रचना के समकालीन है। वात्स्यायन के कामसूत्र का समय १००ई. पू. से पश्चात् नहीं हो सकता अतः म च्छकटिक का समय भी इसके ही निकट है।

(घ) बाद में प्रचलित नाट्यकला के अनेक नियमों से म च्छकटिक का कर्त्ता परिचित नहीं है, जैसे किसी रस-विशेष की प्रधानता अथवा किसी पात्र विशेष के लिये किसी प्राकृत-विशेष की योजना। साथ ही नाटक की सरल किन्तु चित्रपूर्ण शैली न तो कालिदास के समान कोमलकान्त पदावलि में है और न ही भट्टनारायण एवं भवभूति के समान कृत्रिम एवं कलापूर्ण है। इससे प्रकट होता है कि म च्छकटिक संस्कृत नाटक के प्रारंभिक काल की रचना है।

३. प्रसिद्ध इतिहासकार श्री डे ने भी म च्छकटिक का रचयिता शूद्रक को स्वीकार करते हुए नाटक में प्रयुक्त शकार तथा विट के रूप, साक्ष्य तथा कामसूत्र के अनुसार वसन्तसेना के चित्रण के कारण नाटक का रचनाकाल ई. पू. प्रथम तथा ई. की प्रथम सदी के मध्य माना है।

४. डॉ. हरिदत्त शास्त्री एवं डॉ. देवस्थली आदि कतिपय विद्वानों ने नवें अंक में प्राप्त **अयंहि पातकी विप्रो** श्लोक के आधार पर म च्छकटिक को मनुस्म ति के आस-पास की रचना माना है। डॉ. शास्त्री ने बूलर के मत को प्रमाण स्वरूप रखकर मनुस्म ति का समय २०० ई. पूर्व और २०० ई. बीच माना है। म च्छकटिक में मनुस्म ति के नियम को चूंकि माना नहीं गया है, इससे ऐसा प्रतीत होता है म च्छाकटिक का समय मनुस्म ति के रचनाकाल के आस-पास ही होगा। जब मनु के नियम अधिक प्रचलित नहीं हुये होंगे। आपने म च्छकटिक के रचना काल

सम्बन्धी निष्कर्षों में लिखा है कि यद्यपि इस निश्चित रूप से नहीं कह सकते किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह रचना द्वितीय शताब्दी ई.पू. की है। सम्भव है आन्ध्रभ त्यवंश के राजा सिमुक ही शूद्रक हो जिनकी यह रचना हो।

५. शूद्रक के समय के स्थिरीकरण के विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण कसौटी कालिदास का आविर्भाव काल है। इस विषय में भी दोनों पक्ष विद्यमान हैं कुछ विद्वानों ने कालिदास को परवर्ती व कुछ न उसे पूर्ववर्ती माना है। शुद्रक कालिदास से पूर्ववर्ती नहीं था इसके लिये विद्वानों के पास मुख्य प्रमाण मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में भास, सौमालिक आदि के साथ शूद्रक के नाम का न होना है। डॉ. रमाशंकर तिवारी ने कालिदास द्वारा नामोल्लेख न करने के संदर्भ में कई प्रश्नों को उठाकर उनका समाधान करते हुये निष्कर्ष यही निकाला है कि कालिदास ने म च्छकटिक तथा उसके रचियता शूद्रक की किन्हीं साहित्येतर कारणों से, उपेक्षा की, यह मानने में हम असमर्थता का अनुभव करते हैं। हमारी विवक्षा यह है कि शूद्रक कालिदास का परवर्ती है। इसी प्रकार जागीरदार व अन्य भी अनेक विद्वानों ने शूद्रक को कालिदास का परवर्ती कवि माना है।

दूसरी और कालिदास के नाटकों को म च्छकटिक की नाट्यकला व उसके प्रभावों से प्रभावित जानकर विद्वानों ने शूद्रक को कालिदास से पूर्ववर्ती स्वकार किया है। डॉ. शान्तिकुमार नानूराम व्यास ने कालिदास को शूद्रक का परवर्ती कवि माना है। आपने अपने मत की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण प्रस्तुत किये हैं-

(क) कालिदास के नाटकों में म च्छकटिक की कुछ छाप दिखाई पडती है। कालिदास का समय लगभग १०० ई. पूर्व है अतः म च्छकटिक की रचना इससे कुछ पूर्व अवश्य हो चुकी होगी। प्रश्न होता है कि फिर कालिदास शूद्रक के प्रति मौन क्यों है? जब उन्होंने अपने पूर्ववर्ती भास का उल्लेख किया है। कारण यह है कि तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति अशान्तिमय होने के कारण कविगण प्रायः किसी उपलब्ध नाटक के परिष्कार एवं परिवर्धन में अपना कौशल प्रदर्शन करते थे किसी समय समकालीन या पूर्वकालीन राजनीतिक क्रान्ति के आधार पर वे मूल रचना में दर्शकों की रुचि के अनुसार परिर्वतन करते थे। कालिदास को संभवतः यह पता रहा होगा कि म च्छकटिक न कोई मौलिक रचना है और न शूद्रक ही उसके लेखक हैं। कालिदास के अनुसार म च्छकटिक के रचयिता रामिल और सीमिल रहे होंगे क्योंकि इन्हीं का उल्लेख उन्होंने मालविकाग्निमित्र में किया है।

(ख) म च्छकटिक में राष्ट्रिय शब्द का प्रयोग वस्तुतः एक पुलिस के अधिकारी के अर्थ में हुआ है। किन्तु बाद में साहित्य में राष्ट्रिय शब्द का प्रयोग राजा के साले के अर्थ में हुआ है। कालिदास ने राष्ट्रिय शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है। अतः म च्छकटिक कालिदास के पूर्व की रचना है।

६. डॉ. सुधीर कुमार भी म च्छकटिक को कालिदास से पूर्व की रचना मानते है। आपने कालिदास द्वारा शूद्रक का नामोल्लेख न करने के संदर्भ में एक दो संभावनायें की है। आपने लिखा है हो सकता है कि म च्छकटिक का उल्लेख कालिदास के विक्रमोर्वशीय के **पूर्वेषां कवीनाम्** के अन्तर्गत आ गया हो। द्वितीय संभावना आपने कालिदास के शुद्रक के सभाकवि के रूप में मान कर की है। उसके अनुसार यदि कृष्णचरित के अनुसार शुद्रक वस्तुतः म च्छकटिक के रचयिता थे, तो कालिदास उनके सभाकवि होने के कारण स्पष्ट शब्दों में शुद्रक का नाम निर्देश करते हुये अपने नाटक की प्रशंसा नहीं कर सकते थे। यह भी संभव है कि शूद्रक

का नाटक कालिदास के नाटकों से पहले अभिनीत न हुआ हो। राजा ने अपने काल में शान्ति स्थापित होने के उपरान्त ही इसे लिखा होगा। उस समय तक कालिदास का मालविकाग्निमित्र लिखा जा चुका होगा। अतः शेष दो नाटकों में किसी में भी कवि का नामतः निर्देश न किया जाना महत्त्वपूर्ण है। निष्कर्ष के रूप में आपने लिखा है कि भास, कालिदास और शूद्रक आस-पास ही रहे होंगे।

७. डॉ. रामजी उपाध्याय भी डॉ. गुप्त व व्यास के मत से सहमति रखते है। आपने भी स्पष्ट लिखा है इसकी रचना अवश्य ही कालिदास के नाटकों के पहले हुई।

८. डॉ० परांजपे भी म च्छकटिक को कालिदास के पूर्व की रचना मानते है। इसके लिये आपने प्रकरण में प्रयुक्त कायस्थ तथा राष्ट्रिय आदि शब्दों के अर्थ तथा प्रयोग क्रम का विवेचन किया है। म च्छकटिक में राष्ट्रिय शब्द का प्रयोग एक पुलिस के अधिकारी के रूप में हुआ है जो कि उसके शब्दिक अर्थ के अधिक उपयुक्त है, जबकि कालिदास ने इस शब्द को रूढ़ि करके राजा के साले के स्थान पर प्रयुक्त किया है। कायस्थों के सन्दर्भ में आप निम्न मत रखते हैं कायस्थों को आप एक विदेशी जाति मानते है तथा कायस्थों का विदेशी शब्दों तथा पल्लवों के वंशगत समूह से सम्बन्ध स्वीकारते हैं और द्वितीय चूंकि भारतीयों ने यूनानियों तथा रोमनों से नक्षत्रविद्या अपनाई, इसलिये म च्छकटिक के छठे अंक में प्राप्त ज्योतिष-विषयक उल्लेख ईसा की पहली अथवा दूसरी शताब्दी में स्वभाविक समझे जा सकते हैं।

उक्त सभी मतों पर द ष्टि डालने पर यह स्पष्ट होता है कि म च्छकटिक संस्कृत साहित्य की एक प्राचीन रचना ही है। भारतीय परम्परा के अनुसार कालिदास का समय ई. पू. ५६ के लगभग है। अतः शूद्रक का समय इससे पूर्व या समीपवर्ती होना चाहिये।

(ख) ३०० ई० से ७०० ई० मध्यम

विद्वानों का दूसरा समूह उक्त उक्तियों को स्वीकृति प्रदान नहीं करता। उनके मतानुसार चूंकि म च्छकटिक चारुदत्त का परिवर्द्धित संस्करण है अतः शूद्रक का समय इतने पूर्व का स्वीकृत नहीं किया जा सकता। इन विद्वानों ने ब्राह्य प्रमाणों को अपने मत का मूलाधार बनाया है। उदाहरणार्थ :-

१ वामनाचार्य ने अपनी काव्यालंकार सूत्रव त्ति में (शुद्रकविरचितेषु प्रबन्धेषु) शूद्रक विरचित प्रबन्ध का उल्लेख किया है। **द्यूतंहि नाम पुरुषस्य असिहांसनं राज्यम्** म च्छकटिक के इस द्यूत प्रशंसा परक वाक्य को उद्ध त भी किया है जिससे प्रमाणित होता है कि म च्छकटिक की रचना काव्यालंकार सूत्रव त्ति (आठवीं शताब्दी) के पहले ही हो गई होगी।

वामन के पूर्ववर्ती आचार्य दण्डी ने भी अपने काव्यादर्श में म च्छकटिक के **लिम्पतीव तमो गांनि** पद्यांश को अलंकार निरूपण करते समय उद्ध त किया है। उक्त प्रमाणों के आधार पर आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि म च्छकटिक की रचना सप्तम शताब्दी के पहले ही हुई होगी।

बाह्य प्रमाणों के अतिरिक्त आपने आन्तरिक प्रमाणों को भी अपने मत का आधार बनाया है परन्तु हमारे अनुसार आपके ये प्रमाण स्थापना के बाधक ही है साधक नही। उदाहरणार्थ-आपने **अयं हि पातकी विप्रो** वाला श्लोक लेकर उसे मनुस्म ति के अनुरूप बतलाया है। साथ ही अपने मन स्म ति का रचनाकाल विक्रम से पूर्व द्वितीय शतक माना है। उसके पीछे आप म च्छटिक को मानते हैं।

इस प्रकार उपाध्याय जी शूद्रक व म च्छकटिक की रचना प चम शतक में मानी है।

२. उपाध्याय जी के अतिरिक्त प्रो. आर.वी. जागीरदार ने भी म च्छकटिक का रचना काल ई० के प चम शतक तथा षष्ठ शतक के मध्य माना है। आपने म च्छकटिक के भाषा-पक्ष तथा वस्तुत्व का समीक्षण करते हुये यह निष्कर्ष निकाला है कि म च्छकटिक की रचना उस समय हुई जबकि समाज में भाग्यवादिता बढ़ी जा रही थी, बौद्धधर्म का पुनरुत्थान हो रहा था तथा प्राकृत के अतिरिक्त अपभ्रंश भी प्रायः बोलचाल में प्रयुक्त होती थी। ऐसी परिस्थितियां गुप्तों के पतन तथा हर्ष के राज्यकाल के मध्य में समग्ररूप में दीख पडती है। इसी संदर्भ में जागीदार ने म च्छकटिक पर कालिदास का प्रभाव खोज कर अपने मत का समर्थन किया है।

परन्तु प्रो. जागीरदार का उक्त मत इतने सबल प्रमाणों पर आधारित नहीं है कि उसे स्वीकृत किया जा सके। पांचवी-छठी शताब्दी में म च्छकटिक की रचना हुई हो, इसका रचयिता कौन सा शुद्रक था। उसे इतिहास में पकड़ना कहां तक संभव है? आदि प्रश्नों का उत्तर मिलना प्रायः असम्भव प्रतीत होता है।

३. डॉ. भोलाशंकर व्यास ने भी गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद की अराजकता तथा गुप्तोत्तरकालीन समाज की प ष्ठभूमि का विस्तार से दिग्दर्शन कराते हुए धर्म, संस्कृति राजनीति से सम्बन्धित अनेक अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकाला है म च्छकटिक का रचनाकाल ईसा की पांचवीं सदी के उत्तरार्द्ध या छठी सदी के पूर्वार्ध में माना जा सकता है।

४. डॉ. सालेटोर म च्छकटिक की रचना का काल सप्तम शताब्दी का मध्य व अष्टम शताब्दी का अंतिम चतुर्थांश मानते हैं। आपका कथन है कि नाटक का पूर्वार्द्ध (शिवमार प्रथम द्वारा) ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य के लगभग तथा उत्तरार्द्ध (शिवमार द्वितीय) द्वारा आठवीं शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश में रचा होगा, और सौ-सवा सौ वर्षो के इस अन्तराल के बावजूद जो दोनों अंशों की शैली में अन्तर नहीं पड़ा, उसका कारण था शिवमार द्वितीय की निराली काव्य-प्रतिभा सालेटोर की उक्त स्थापना व्यवस्थित होते हुये भी विश्वसनीय नहीं है। युग्म कर्त ्त्व की स्थापना अपने आप में अत्यन्त कमजोर है, साथ ही नाटक की रचना शैली व टैकनीक भी इतने बाद का समय मानने को प्रेरित नहीं करती।

५. डॉ. जौली भी म च्छकटिक में प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उसका रचना काल प चम शताब्दी के लगभग मानते है। आपके मत का प्रमुख आधार प्रकरण का नवम अंक है। प्राणदण्ड के कार्यान्वयन हेतु विष खिलाकर मार डालने, जल में डुबोने, यंत्र पर चढ़ाने तथा अग्नि में प्रविष्ट कराने, चाण्डालों द्वारा शरीर पर आरा चलाने जाने के अतिरिक्त चार विकल्पों के कथन को, कार्य में श्रेष्ठिन् की उपस्थिति की न्यायाधीश के इस कथन को कि हम लोग यानी न्यायाधीश निर्णय के अधिकारी है, शेष बात यानी निर्णय के कार्यान्वयन की बात राजा जाने तथा अन्य संबद्ध तथ्यों को प्रमाण रूप में प्रस्तुत कर जौली ने यह प्रतिपादन किया है कि म च्छकटिक में इनका सन्निवेश सूचित करता है कि नारद तथा ब हस्पति के बाद वाले समय में ही नाटक का प्रणयन हुआ। डॉ. तिवारी ने जौली के उक्त मत को अपने मत की पुष्टि में रखते हुये नारद तथा ब हस्पति का समय सन् १०० ई. और सन् ४०० ई. के बीच का माना है तथा इन आधारों पर म च्छकटिक को प चम शताब्दी की रचना माना हैं।

म च्छकटिक में प्राप्त उक्त विवेचन का आधार हमारे मतानुसार मनुस्म ति है, जिसका कि उल्लेख स्वयं नाटककार ने भी अपने नाटक में किया है। जहां तक ब हस्पति स्म ति का प्रश्न है उसका मूल आधार भी मनुस्म ति ही है। अतः जौली महोदय का उक्त मत अकाट्य व प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

६. डॉ. बुद्धप्रकाश ने भी म च्छकटिक के प्रणयन काल के निर्धारण का एक विशिष्ट प्रयास किया है। आपने नाटक से अन्तः साक्ष्यों को एकत्रित किया है। आपने नाटक और शुद्रक के व्यक्तित्व की निरपेक्षता में ऐतिहासिक धरातल पर उसकी रचना का समय निर्धारित किया है।

परन्तु आपके भी मत में उसी प्रकार खींचातानी तथा त्रुटियां वर्तमान है जैसा कि डॉ. सालेटोर के मत में। डॉ. तिवारी ने अपनी पुस्तक में डॉ. प्रकाश की सभी तर्कनाओं को प्रस्तुत करके उनका भली प्रकार से खण्डन-मण्डन किया है। डॉ. तिवारी द्वारा विवेचित बुद्धप्रकाश के मत का हमारे द ष्टि से कोई महत्व प्रतीत नहीं होता।

७. डॉ. रमाशंकर तिवारी भी अपने निष्कर्षों में ईसा की पष्ठ शताब्दी का अन्तराल ही म च्छकटिक का प्रणयन बतलाते है। आपने लिखा है। म च्छकटिक के रचयिता शुद्रक ने दक्षिण भारत में राजसत्ता का उपभोग उस अवधि में किया होगा जो गुप्त साम्राज्य के पतन से आरम्भ होती है। और थानेश्वर के महाराजा हर्ष-वर्धन के उदय काल से समाप्त होती है। वह युग भारतीय इतिहास में विकेन्द्रीकरण का काल रहा है जब देश अनेक छोटे-छोटे स्वाधीन राज्यों में बंटा हुआ था जिनमें हूणों द्वारा संस्थापित राज्य भी था जो विदेशी आक्रान्ता थे। शुद्रक ऐसे ही छोटे नरेशों में था जिसको या तो सत्ता प्राप्ति के लिये स्वयं कोई छोटा-मोटा संघर्ष करना पड़ा था या फिर किसी सत्तापहरण वाले काण्ड में उसकी गहरी दिलचस्पी थी।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से यह स्पष्ट है कि म च्छकटिक व उसके रचयिता का समय ईसा पूर्व त तीय शताब्दी से लेकर ८०० ई. तक दोलायमान है। इनमें भी (ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी) सातवाहनकाल तथा उत्तर गुप्तकाल दोनों पर अधिक जोर दिया गया है। जहां तक उत्तरगुप्तकाल या ईसा की पांचवी तथा छठी शताब्दी का समय म च्छकटिक का प्रणयन काल मानने का विद्वानों का मत है। वह मात्र इस आधार पर आधारित है कि चारुदत्त भास की रचना है तथा म च्छकटिक उसके बाद लिखा गया, उसका परिवर्द्धित संस्करण है, अतः वह ईसा पूर्व की रचना नहीं हो सकता। द्वितीय जो उनका आधार हमने समझा है, वह कालिदास के मालविकाग्निमित्र में शूद्रक के नाम का न होना है। उक्त दो धारणाओं ने ही मूल रूप से शूद्रक व म च्छकटिक को बाद की रचना मानने हेतु विद्वानों को प्रेरित किया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि जब तक भास नाटक चक्र की खोज न हुई थी तब तक म च्छकटिक एक पुरानी कृति के रूप में माना जाता था। परन्तु ज्यों ही गणपति शास्त्री ने तेरह नाटकों को भास के नाम से विख्यात किया त्यों ही म च्छकटिक व उसके रचयिता का काल पीछे हटता गया और आज स्थिति आठवीं शताब्दी तक पहुंच चुकी है।

परन्तु यह दुःख का विषय है कि जिन विद्वानों ने ईसा की पांचवी व छठी शताब्दी म च्छकटिक का रचनाकाल प्रमाणित किया उनमें से अधिकांश ने उसके रचयिता को इतिहास में ढूंढने का कोई प्रयास नहीं किया तथा यदि किया भी तो वे प्रायः असफल रहे।

हमारे मतानुसार म च्छकटिक ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में रची गई कृति है। इसको रचयिता जैसा कि हम पहले प्रमाणित कर चुके हैं सातवाहन वंश का प्रथम नरेश सिमुक ही है जिसके कि पुराणों में अनेक नाम प्राप्त होते है। न केवल रचयिता विषयक साम्य हमें उक्त समय को मानने हेतु प्रेरित करता है अपितु म च्छकटिक में चित्रित समाज व्यवस्था, तत्कालीन धार्मिक स्थिति व प्रकरण की रचना शैली भी उक्त समय का पूर्ण समर्थन करती है। प्रो. काले, विलसन डॉ. भण्डारकर आदि के तर्क जिनको पहले प्रस्तुत किया जा चुका है उक्त मत का पूर्ण समर्थन करते है। जहां तक द्वितीय शताब्दी जो आन्ध्रशासकों का समय था, शूद्रक का समय मानने का प्रश्न है वह स्कन्दपुराण के कथन के आधार पर माना गया है जो कि प्रायः इतिहासेवत्ताओं द्वारा गलत प्रमाणित हो चुका है।

डॉ. राय चौधरी, भार्गव व डॉ. भण्डारकर ने आन्ध्रवंश की स्थापना का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही माना है।

कालिदास एवं शूद्रक की स्थिति का जहां तक सम्बन्ध है उसके विषय में हमारा यह मत है कि उक्त दोनों कवियों का समय समीप का रहा होगा इसी कारण कालिदास ने शूद्रक का नामोल्लेख अपने नाटक मालविकाग्निमित्र में नहीं किया क्योंकि उस समय तक शूद्रक की स्थिति प्रथित यश वाली नहीं थी।

कालिदास के सौमिल्ल तथा राजेश्वर के सौमिल को कुछेक विद्वानों ने एक मानते हुये शूद्रक को कालिदास के पूर्व का माना हैं परन्तु हम दोनों को एकन मान कर भिन्न व्यक्ति मानते है। प्रथम तो दोनों के नामों में ही समानता नहीं है तथा यदि समानता हो भी तो यह आवश्यक नहीं कि एक नाम वाला एक ही व्यक्ति हो।

म च्छकटिक की कथावस्तु

भारतीय नाट्यपरम्परा के अनुसार 'म च्छकटिक' प्रकरण का प्रारम्भ भी नान्दीपाठ से किया गया है। स्रग्धरा छन्द में रचित प्रथम नान्दी में समाधिस्थ शिव की निर्विकल्पक समाधि तथा अनुष्टुब् छन्द में रचित द्वितीय नान्दी में पार्वती की भुजलताओं से सुशोभित शंकर के नीले कण्ठ से सामाजिकों के मंगल की प्रार्थना की गई है।

नान्दीपाठ के बाद प्रस्तावना प्रारम्भ होती है। प्रस्तावना के प्रारम्भ के पाँच श्लोकों में रचयिता एवं रचना के विषय में परिचय दिया गया है। नाटककार ने अपनी प्रतिभा से सम्पूर्ण नाटक की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय प्रस्तावना में ही सूत्रधार द्वारा प्रस्तुत कर दिया है-

"अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्त।
गुणानुरक्ता गणिका च वसन्तशोभेव सन्तसेना।।
तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं नयप्रचारं व्यहारदुष्टताम्।
खलस्वभावं भवितव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको न पः।।"

अर्थात् उज्जयिनी में पहले ब्राह्मण व्यापारी परन्तु बाद में दरिद्र युवक चारुदत्त रहता था। वसन्त ऋतु की सुन्दरता जैसी वसन्तसेना नामक वेश्या चारुदत्त के गुणों के कारण उससे प्रेम करती थी। उन दोनों के श्रेष्ठ आनन्दोत्सव पर आश्रित नीति का आचरण, विवाद विचार (व्यवहार) की दोषपूर्णता, दुष्टों के स्वभाव तथा भवितव्यता (होनहार) - इन सबका राजा शूद्रक ने इस म च्छकटिक नाटक में ग्रथन किया है।

प्रथम अंक

रचयिता व रचना के विषय में परिचय देने के पश्चात् सूत्रधार अपने घर में असाधारण तैयारी देखकर आश्चर्य चकित होता है। पूछने पर उसे नटी से पता चलता है कि वह तैयारी 'अभिरूप पति' नामक व्रत के निमित्त की गई है। वह कुछ क्रोधित होता है परन्तु नटी के द्वारा समझाने पर वह शान्त हो जाता है। नटी उसे व्रत में किसी ब्राह्मण को निमन्त्रित करने को कहती है। ब्राह्मण को खोजने के लिए निकले हुए सूत्रधार को चारुदत्त का मित्र विदूषक मैत्रेय द ष्टिगोचर होता है। सूत्रधार उसे भोजन के लिए अपने घर निमन्त्रित करता है परन्तु मैत्रेय के द्वारा अस्वीकार कर देने पर वह अन्य ब्राह्मण की खोज में चला जाता है। इसी के साथ प्रस्तावना समाप्त हो जाती है।

प्रथम द श्य के प्रारम्भ में म च पर मैत्रेय आता है। उसके कथन से ज्ञात होता है कि आर्य चारुदत्त के प्रिय मित्र जूर्णव द्ध ने उसे चमेली के पुष्पों से सुगन्धित उत्तरीय देवकार्य सम्पादित करने वाले चारुदत्त के पास ले जाने का आदेश दिया है। तभी म च पर चारुदत्त तथा मदनिका प्रवेश करते हैं। चारुदत्त अपने भूतकाल तथा वर्त्तमानकाल की परिस्थितियों पर विचार कर रहा है। अतीत की सम्पन्नता एवं वर्त्तमान की निर्धनता को देखकर वह भाग्य के विपर्यय पर चिन्तित होता है। तभी उसे मैत्रेय द ष्टिगोचर होता है। वह प्रसन्नता से मैत्रेय का स्वागत करता है। मैत्रेय उसे जूर्णव द्ध प्रदत्त उत्तरीय प्रदान करता है। मैत्रेय के साथ दरिद्रता विषयिकी चर्चा में वह (चारुदत्त) दरिद्रता से म त्यु को श्रेयस्कर बताता है। मैत्रेय के द्वारा सान्तवना देने पर वह कहता है कि वह विभव विनाश से दुःखी नहीं है अपितु निर्धनता के कारण अतिथियों द्वारा की जाने वाली उपेक्षा से उसे कष्ट होता है। वह निर्धनता को सब दुःखों का मूल कारण बताता है और मैत्रेय को मात देवियों को बलि अर्पण करने के लिए चौराहे पर भेजता है। मैत्रेय उस समय राजपथ पर गमन में भय व्यक्त करता है। उसे कुछ देर ठहरने की कहकर चारुदत्त अपने पूजाकार्य में लग जाता है। यहीं प्रथमद श्य की समाप्ति होती है। द्वितीय द श्य में वसन्तसेना अत्यन्त भयभीत होकर भागती हुई जाती दिखाई देती है और शकार, विट तथा चेट उसे पकड़ने की चेष्टा में उसका पीछा करते हुए द ष्टिगोचर होते हैं। राजा का साला शकार कामासक्त होकर वसन्तसेना को किसी भी तरह से अपने वश में करना चाहता है। वह वसन्तसेना को प्रलोभन देता है, पुकारता है, मारने की धमकी भी देता है परन्तु वसन्तसेना उसके किसी भी प्रलोभन आदि को स्वीकार नहीं करती। शकार वसन्तसेना का चित्रण का बाजारी वस्तु के रूप में करता है। शकार के वाक्यों से ही वसन्तसेना को ज्ञात होता है कि वह चारुदत्त के घर के समीप पहुँच गई है। तभी पूजा से निव त्त चारुदत्त द्वारा मात देवियों को बलि अर्पित करने के लिए प्रेषित मैत्रेय मदनिका के साथ दीपक लेकर द्वार खोलता है। वसन्तसेना शीघ्रता से दीपक बुझाकर घर में प्रविष्ट हो जाती है। विदूषक दीपक जलाने के लिए पुनः घर में प्रवेश करता है। रदनिका बाहर निकलती है और अंधेरे में शकार उसे वसन्तसेना समझकर पकड़ लेता है। वह प्रतिवाद करती है और दीपक को पुनः जलाकर बाहर आया हुआ मैत्रेय (विदूषक) रदनिका के प्रति अभद्र आचरण देखकर शकार को फटकारता है। विट विदूषक को पहचान लेता है। वह क्षमा याचना करके उस घटना के सम्बन्ध में चारुदत्त से कोई चर्चा न करने का अनुरोध करता है। विट शकार को चलने के लिए कहता है। शकार के मना करने पर विट चला जाता है। विदूषक के साथ कुछ देर के वाद-विवाद के बाद शकार चेट के साथ चला जाता है।

घर के अन्दर चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझ लेता है। वह उसे बालक रोहसेन को अन्दर ले जाने को कहता है। चारुदत्त द्वारा प्रदत्त चमेली से सुगन्धित उत्तरीय को ग्रहण करके उसकी सुगन्ध से यह अनुमान करती है कि चारुदत्त का यौवन निर्धनता के दोष से रहित है। वसन्तसेना चुपचाप खड़ी रहती है। कोई उत्तर न मिलने पर खिन्न चारुदत्त पुनः रोहसेन को अन्दर ले जाने को कहता है। तभी विदूषक तथा रदनिका प्रवेश करते है। विदूषक से वास्तविक स्थिति को जान कर चारुदत्त वसन्तसेना को पहचान लेता है और क्षमा याचना करता है। वसन्तसेना अपने आभूषणों को धरोहर के रूप में रखना चाहती है जिसे चारुदत्त कुछ संकोच के साथ स्वीकार कर लेता है। चारुदत्त और विदूषक वसन्तसेना को उसके घर पहुँचा कर आ जाते हैं। चारुदत्त द्वारा दिन में वर्धमानक तथा रात्रि में विदूषक को उन आभूषणों का रक्षा भार सौंपने के साथ ही प्रथम समाप्त हो जाता है। इस अंक की संज्ञा 'अलंकारन्यास' है।

द्वितीय अंक

चारुदत्त विषयिकी चिन्ता में मग्न वसन्तसेना के साथ रदनिका प्रवेश करती है। तभी एक चेटी आकर

माता की स्नान एवं देवपूजा सम्पन्न करने सम्बन्धी आज्ञा सुनाती है। वसन्तसेना के अस्वीकार करने पर चेटी चली जाती है। मदनिका द्वारा वसन्तसेना से उसकी उद्विग्नता का कारण पूछने पर वह चारुदत्त विषयक अपने प्रेम को प्रकट करती है। वह बताती है कि यद्यपि चारुदत्त निर्धन है परन्तु वह उससे प्रेम करती है और उससे मिलने के लिए ही योजनानुसार अपने आभूषण वहाँ छोड़ दिए हैं।

द्वितीय द श्य में संवाहक, माथुर द्यूताध्यक्ष तथा एक जुआरी के परस्पर वार्त्तालाप से हमें ज्ञात होता है कि संवाहक माथुर से द्यूत में पराजित होकर उसका दश सुवर्ण मुद्राओं का ऋणी हो गया है। उसका पीछा करते हुए माथुर तथा जुआरी देवी के मन्दिर में पहुँचते हैं। संवाहक को न पाकर दोनों वहा जुआ खेलने लग जाते हैं। द्यूतप्रिय संवाहक स्वयं को रोक नहीं पाता और वहाँ स्वयं ही प्रकट हो जाता है। माथुर और जुआरी उसे पीटते है। तभी दर्दुरक आकर उसे छुड़ाता है। माथुर और दर्दुरक के झगड़े में अवसर पाकर दर्दुरक माथुर की आँखों में घूल झौंक देता है और संवाहक के साथ वहाँ से भाग जाता है।

संवाहक वहाँ से भागकर वसन्तसेना के घर में शरण लेता है। संवाहक के परिचय में चारुदत्त का प्रसंग सुनकर प्रसन्न वसन्तसेना चेटी द्वारा अपना कंकण माथुर के पास भेज देती है और संवाहक को मुक्त करा देती है। संवाहक बौद्ध संन्यासी बनने का संकल्प करके निकल जाता है। तभी कर्णपूरक प्रवेश करके वसन्तसेना को बताता है कि उसने एक परिव्राजक को खुण्टमोडक नामक मत्त हाथी से बचाया है तथा किसी व्यक्ति ने उसके साहस से प्रसन्न होकर अपना उत्तरीय पुरस्कार रूप में प्रदान किया है। उत्तरीय पर चारुदत्त का नाम अंकित देखकर वसन्तसेना कर्णपूरक को एक आभूषण देकर उससे उत्तरीय लेकर प्रसन्नता से ओढ़ लेती है। कर्णपूरक से यह जानकर कि चारुदत्त इसी मार्ग से जा रहा है, वसन्तसेना तथा चेटी छत पर जाकर उसे देखती हैं। यहीं द्वितीय अंक समाप्त होता है। इस अंक का नाम 'द्यूतकर संवाहक' है।

त तीय अंक

प्रारम्भ में मध्यरात्रि के समय तक भी चारुदत्त के घर न लौटने पर चेट चिन्ता व्यक्त करता है। तभी चारुदत्त और विदूषक म च पर प्रवेश करते हैं। चारुदत्त रेभिल के कुशलता एवं मनोहरता से गाये गये गीत की प्रशंसा करता है। घर पहुँचने पर चेट वर्धमानक चारुदत्त के पैर धोता है और रात को सुवर्णभाण्ड की रक्षा का भार विदूषक पर होने के कारण उसे सौंप देता है। उस सुवर्णभाण्ड को हाथ में लिए हुए ही विदूषक सो जाता है।

रात्रि में वसन्तसेना की दासी मदनिका का प्रेमी शर्विलक उसे दासता से मुक्त कराने के लिए चारुदत्त को घर में सेंध लगाता है। सेंध से पूर्व वह विभिन्न प्रकार की सेंधों तथा विभिन्न विधियों का वर्णन करता है। वह यज्ञोपवीत से नापकर सेंध लगाता है और भीतर प्रवेश करता है जब शर्विलक निरीक्षण कर रहा होता है तभी विदूषक स्वप्न देखता है कि घर में चोर ने सेंध लगाई है। अतः स्वप्न में ही वह चारुदत्त को पुकार कर सुवर्णभाण्ड उसे सौंप देता है। चारुदत्त के गहननिद्रा में होने के कारण शर्विलक उसे सुवर्णभाण्ड को विदूषक के हाथ से लेकर सावधानी से घर से बाहर निकल जाता है।

प्रातःकाल चारुदत्त सेंध के आकार की प्रशंसा करता है। विदूषक से यह सुनकर कि उसने रात्रि में सुवर्णभाण्ड चारुदत्त को दे दिया था, चारुदत्त कोई प्रतिवाद नहीं करता। वह प्रसन्न है कि चोर उसके घर से निराश नहीं गया। वह चिन्तित भी है कि लोग चोरी के व त्तान्त पर विश्वास न करके

उसकी निन्दा ही करेंगे। यह व त्तान्त जानकर चारुदत्त की पत्नी अपने पिता द्वारा प्रदत्त एक बहुमूल्य रत्नावली यथोचित उपयोग के लिए दे देती है। वह मैत्रेय विदूषक को यह आदेश देता है कि वसन्तसेना के घर जाकर यह रत्नावली सुवर्णालंकारों के बदले उसे दे आये। वर्धमानक को सेंध बन्द करने का आदेश देकर चारुदत्त सन्ध्योपासना के लिए चला जाता है। इसी के साथ 'सन्धिच्छेद' नामक इस अंक की समाप्ति होती है।

चतुर्थ अंक

प्रारम्भ में चारुदत्त के चित्र को देखती वसन्तसेना और मदनिका को चेटी शकार की गाड़ी में बैठने सम्बन्धी माता की आज्ञा सुनाती है। वसन्तसेना इस आदेश को पालन करने से मना कर देती है।

द्वितीय द श्य में वसन्तसेना पलंग पर चारुदत्त का चित्र रखकर मदनिका को तालव न्त लाने के लिए भेजती है। इसी समय शर्विलक वसन्तसेना के घर पर प्रवेश करता है। मदनिका से वार्त्तालाप करते समय शर्विलक द्वारा चारुदत्त के घर से चोरी किए गए आभूषणों को मदनिका चारुदत्त द्वारा भेजे गए आभूषण कहकर ही वसन्तसेना को सौंपने के लिए कहती है। उन दोनों के इस वार्त्तालाप को खिड़की के पीछे से छिपकर वसन्तसेना सुन लेती है। शर्विलक द्वारा वसन्तसेना को आभूषण सौंपने पर सब कुछ जानने वाली वसन्तसेना मदनिका को शर्विलक को पत्नी के रूप में स्वीकार करने की बात कहती है और उन दोनों को अपनी गाड़ी में बिठाकर विदा करती है।

तभी नेपथ्य से सूचना मिलती है कि राजा पालक के आर्यक को बन्दीग ह में डाल दिया है। शर्विलक अपने घनिष्ठ मित्र आर्यक की रक्षा के लिए अपनी नवविवाहिता पत्नी को चेट के साथ सार्थवाह रेभिल के घर भेज देता है। अन्तिम द श्य में विदूषक वसन्तसेना के घर पहुँचकर उसके भव्य प्रासाद को देखकर आश्चर्यचकित होता है। वसन्तसेना विदूषक का स्वागत करती है। सामान्य कुशल-क्षेम प्रश्न के उपरान्त विदूषक जुए में सुवर्ण अलंकार हार जाने का व त्तान्त सुनाकर उसके बदले में भेजी गई रत्नावली वसन्तसेना को प्रदान करता है। वसन्तसेना उसे ले लेती है। वह चारुदत्त से मिलने का संदेश देकर विदूषक को विदा करती है। इसी के साथ 'मदनिकाशर्विलक' नामक चतुर्थ अंक की समाप्ति होती है।

प चम अंक

प्रारम्भ में ही चारुदत्त सूर्यास्त के समय विदूषक की प्रतीक्षा कर रहा है। तभी मैत्रेय (विदूषक) आकर उसे वसन्तसेना के रत्नावली स्वीकार करने तथा सायंकाल को चारुदत्त से मिलने का संदेश देता है। चारुदत्त वेश्याओं की स्वार्थपूर्ण प्रीति की अत्यन्त निन्दा करता है। तभी कुम्भीलक चारुदत्त के पास आकर वसन्तसेना के आगमन की सूचना देता है। सूचना सुनकर चारुदत्त प्रसन्नता से अपना उत्तरीय कुम्भीलक को पारितोषिक रूप में प्रदान करता है।

द्वितीय द श्य में विट और वसन्तसेना चारुदत्त के घर की ओर जाते दिखाई देते हैं। उनके चारुदत्त की वाटिका के पास पहुँचने पर आवाज सुनकर चारुदत्त विदूषक को पता लगाने के लिए बाहर भेजता है। वसन्तसेना को आचरण सम्बन्धी निर्देश देकर विट के चले जाने के बाद विदूषक वसन्तसेना को घर में आने के लिए आमन्त्रित करता है। चारुदत वसन्तसेना का स्वागत करता है तथा वस्त्रों के भीग जाने से उसके लिए अन्य वस्त्रों की व्यवस्था करवाता है। विदूषक के द्वारा आगमन का कारण पूछने पर चेटी कहती है कि वसन्तसेना रत्नावली को जुए में हार जाने से उसके

बदले सुवर्णभाण्ड प्रदान करने आई है। चारुदत्त और विदूषक उसे देखकर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। चेटी द्वारा विदूषक तथा विदूषक द्वारा चारुदत्त को सम्पूर्ण सुवर्णभाण्ड प्राप्ति का व त्तान्त बताने से सारा वातावरण आमोद-प्रमोद युक्त हो जाता है। विदूषक के द्वारा घर के भीतर जाने का संकेत प्रदान करने पर चारुदत्त के साथ वसन्तसेना घर में प्रवेश करके सम्पूर्ण रात्रि वहीं पर व्यतीत करती है। इसके साथ ही 'दुर्दिन' स ज्ञक प चम अंक समाप्त हो जाता है।

षष्ठम अंक

सम्पूर्ण रात्रि चारुदत्त के साथ व्यतीत करने के बाद वसन्तसेना को चेटी जगाती है और सन्देश देती है कि चारुदत्त ने उसे (वसन्तसेना को) पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान में बुलाया है और बैलगाड़ी भेजी है। वसन्तसेना यह सुनकर प्रसन्न होती है। तभी चारुदत्त के पुत्र को लेकर रदनिका प्रवेश करती है। बालक सोने की गाड़ी से खेलने की हठ कर रहा है। न मिलने पर रोते हुए उस बालक को चेटी वसन्तसेना के पास लेकर जाती है। उसे चारुदत्त का पुत्र जानकर वसन्तसेना प्रसन्नता से उसे गोद में बिठाकर उसके रोदन का कारण पूछती है। रदनिका से सारी स्थिति जानकर वसन्तसेना अपने सोने के सारे आभूषण उतारकर बालक की मिट्टी की गाड़ी में रख देती है।

अग्रिम द श्य में पूर्व योजनानुसार चारुदत्त का चेट वर्धमानक गाड़ी लेकर आता है। रदनिका से इसकी सूचना पाकर वसन्तसेना तैयार होने लगती है। उधर वर्धमानक गाड़ी में बिछाने के लिए बिछावन लेने चला जाता है। तभी शकार का चेट स्थावरक शकार की गाड़ी को पुष्पकरण्डक उद्यान की ओर जाते हुए मार्ग में गाड़ियों की भीड़ के कारण चारुदत्त की वाटिका के पक्षद्वार पर खड़ी कर देता है। वह अपनी गाड़ी से उतरकर दूसरी गाड़ी के फँसे हुए पहिए को बाहर निकालने में मदद करने के लिए चला जाता है। वसन्तसेना उसे चारुदत्त की गाड़ी समझकर उस में बैठ जाती है। वसन्तसेना की दाहिनी आँख फड़कती है परन्तु वह इस विषय में चिन्तित नहीं होती। तभी स्थावरक आकर गाड़ी चलाता है। उसे गाड़ी में कुछ भार अनुभव होता है परन्तु वह इसे अपनी थकान का परिणाम समझ लेता है।

तभी कारागार से भागा हुए आर्यक राजपुरुषों की द ष्टि से बचने के लिए चारुदत्त की वाटिका के पक्षद्वार में प्रवेश करके छिप जाता है। वर्धमानक वसन्तसेना के लिए गाड़ी लेकर आता है। उसमें आर्यक बैठ जाता है। बेड़ियों की आवाज को आभूषणों की खनक समझकर वर्धमानक यह अनुमान करता है कि वसन्तसेना बैठ गई है। वह गाड़ी हाँक देता है। आर्यक की खोज में पालक के दो सेनापति चन्दनक और वीरक उस गाड़ी को रोक लेते हैं। चन्दनक गाड़ी का निरीक्षण करता है। आर्यक के द्वारा रक्षा की याचना करने पर वह उसे एक तलवार और अभयदान देता है वीरक चन्दनक का विश्वास नहीं करता और स्वयं निरीक्षण करना चाहता है। इस बात पर दोनों में कलह होती है। चन्दनक का संकेत पाकर वर्धमानक गाड़ी को आगे बढ़ा देता है। इसी के साथ अंक समाप्त हो जाता है। प्रस्तुत अंक में गाडियों की अदला-बदली होने से इसका नाम 'प्रवहणविपर्यय' है।

सप्तम अंक

अंक के प्रारम्भ में चारुदत्त और विदूषक जीर्णोद्यान की शोभा को अवलोकन कर रहे हैं। वसन्तसेना के आगमन में विलम्ब होने से चारुदत्त चिन्तित है। वर्धमानक के गाड़ी लेकर प्रवेश करते ही दोनों प्रसन्न होते हैं। गाड़ी में वसन्तसेना की अपेक्षा आर्यक विद्यमान है। आर्यक चारुदत्त से करबद्ध

प्रार्थना करता है। चारुदत्त स्वभावनुसार उसे अभय दान देता है और वर्धमानक से उसके पैरों की बेड़ियाँ भी कटवाता है। चारुदत्त से आर्यक पुनः क्षमायाचना करता है। चारुदत्त इस बात को अपना सौभाग्य मानकर आर्यक को पुनः गाड़ी में ही चढ़कर जाने को कहता है। उसे विदा करके चारुदत्त और विदूषक दोनों राजभय से शीघ्र ही वहाँ से चले जाते हैं। आर्यक के सुरक्षित चारुदत्त के पास पहुँच जाने से इस अंक का नाम 'आर्यकोपहरण' रखा गया है।

अष्टम अंक

प्रथम द श्य में ही आर्द्र चीवर को हाथ में लिए हुए एक भिक्षु प्रवेश करता है। शकार और विट भी वहाँ आते हैं। शकार उस भिक्षु पर उद्यान की पुष्करिणी में चीवर धोने का आरोप लगाकर पीटता है। विट द्वारा बचाने पर वह भिक्षु शकार की स्तुति करता है और अपने प्राण बचाकर वहाँ से खिसक लेता है। शकार और विट, चेट स्थावरक की प्रतीक्षा करते हैं। तभी चेट गाड़ी को लेकर आता है। शकार गाड़ी में विद्यमान वसन्तसेना को चोर या राक्षसी समझकर डर जाता है। विट वसन्तसेना को पहचान लेता है और उसके यहाँ आगमन को अनुचित बताता है। वास्तविक स्थिति जानकर विट वसन्तसेना को धैर्य धारण करने को कहता है। वह शकार को झूठ विज्ञापित करता है कि गाड़ी में सचमुच कोई राक्षसी है अतः पैदल ही नगर की ओर प्रस्थान किया जाये। शकार इस कथन से असंतुष्ट रहता है विट पुनः शकार को विज्ञापित करता है कि वसन्तसेना गुप्तरीति से आपसे रमण करने आई है। वसन्तसेना के प्रतिवाद करने पर कामान्ध शकार वसन्तसेना के पैरों पर गिरकर क्षमा याचना करता है। क्रुद्ध वसन्तसेना के द्वारा शकार के सिर पर पैर से प्रहार करने पर क्रोधित शकार उसे गाड़ी से उतरने को बाध्य करता है। वसन्तसेना के गाड़ी से उतर जाने पर शकार, विट तथा चेट से प थक् - २ प्रार्थना करता है कि वे वसन्तसेना को मार डालें। दोनों के मना करने पर शकार द्वारा पीटे जाने से चेट और एक बहाने से विट के चले जाने पर शकार वसन्तसेना से प्रणय निवेदन करता है। वसन्तसेना द्वारा अस्वीकार करने पर शकार उसका गला घोंट देता है। वसन्तसेना मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ती है।

कुछ समय पश्चात् विट और चेट वापिस आते हैं तो देखते हैं कि एक व क्ष के नीचे वसन्तसेना मरी पड़ी है। विट द्वारा पूछने पर शकार पहले तो मना करता है परन्तु अन्ततः इस बात को स्वीकार कर लेता है कि उसने वसन्तसेना को मार डाला है और बड़ा वीरतापूर्ण कार्य सम्पन्न किया है। वह विट को वसन्तसेना का मूर्च्छित शरीर दिखलाता है। विट बहुत दुःखी होता है और शकार को उस उज्जयिनी लक्ष्मी की हत्या करने के लिए भूरिशः धिक्कारता है। शकार विट को स्वर्ण इत्यादि का लालच देकर वसन्तसेना की हत्या का आरोप किसी अन्य पर प्रमाणित करवाना चाहता है। विट इसके स्पष्ट इन्कार कर देता है। इस पर शकार उस हत्या का आरोप उसी पर मढता है तथा राजा के सामने प्रस्तुत होने की धमकी देता है। विट शकार का साथ छोड़कर तथा उसे डरा धमका कर शर्विलक आदि से मिलने चला जाता है। शकार चेट को भी प्रलोभन देता है पर चेट भी उसके पाप क त्य का अनुमोदन नहीं करता। शकार चेट को घर भेज देता है। वह वसन्तसेना के शरीर को सूखे पत्तों से ढक कर छोड़ देता है और स्वयं चारुदत्त के विरुद्ध हत्या का अभियोग चलाने न्यायालय जाता है।

अंक के अन्तिम द श्य में भिक्षु प्रवेश करता है। वह अपना चीवर फैलाने के लिए स्थान खोजता है। इतने में वसन्तसेना हाथ दिखलाती है। भिक्षु पत्ते हटा कर वसन्तसेना को पहचानता है। वसन्तसेना लता का सहारा लेकर उठ खड़ी होती है। भिक्षु वसन्तसेना को विश्राम कराने के लिए विहार ले जाता है।

नवम अंक

प्रस्तुत अंक में वसन्तसेना की हत्या के आरोप में चारुदत्त पर संस्थानाक-द्वारा अभियोग लगाये जाने का वर्णन हुआ हैं।

अंक के प्रारम्भ में न्यायालय का कर्मचारी शोधनक न्याय-मण्डप की सफाई करता दिखाई पड़ता है। इसी बीच शकार अपनी कामुक लम्पटता की विकत्थना करते हुए प्रवेश करता है, श्रेष्ठी, कायस्थ तथा न्यायाधीश मण्डप में आते हैं। न्यायाधीश शोधनक को आदेश देता है कि वह बाहर जाकर मालूम करें कि आज के विचार प्रार्थी कौन-२ हैं। शोधनक के घोषणा करने पर सर्वप्रथम शकार अभियोग लिखाने आगे आता है। शोधनक उसे देखकर घबरा जाता है तथा न्यायाधीश को सूचना देता है न्यायाधीश व अन्य सदस्य भी प्रारम्भ में ही उसका आगमन अशुभ समझते हैं तथा शोधनक को शकार से यह कहने के लिए आदेश देते हैं कि उसके अभियोग पर आज विचार नहीं होगा। इस पर शकार क्रुद्ध हो जाता है तथा न्यायाधीश को राजा से दंडित कराने की धमकी देता है। ऐसी स्थिति में न्यायधीश घबरा कर उसके अभियोग पर विचार करना स्वीकार कर लेता है।

शकार अधिकरण मण्डप में प्रवेश कर यह सूचना देता है कि पुष्पकरण्डक उद्यान में किसी ने धन के लोभ से वसन्तसेना को बाहुपाश-बलात्कार से मार डाला है। न्यायाधीश के यह पूछने पर कि उसे कैसे जान पड़ा कि धन के लिये उसकी हत्या की गई है, शकार उत्तर देता है - "आभूषणविहीन होने से गले में हार सूत्रावली नहीं होने से और प्रत्येक स्थल का गहना उतरा होने से।" इस पर यह जानने के लिये कि वसन्तसेना कहां व किसके साथ गई थी अधिकरणिक वसन्तसेना की माँ को बुलवाते हैं। वसन्तसेना की माँ आकर कहती है कि वह आर्य चारुदत्त के पास अपने यौवन का सुख प्राप्त करने गई है।

इस पर चारुदत्त को न्यायालय में बुलाया जाता है। चारुदत्त के प्रवेश करने पर न्यायालय न्यायाधीश उसे आदर-पूर्वक आसन दिलाता है और मन में सोचता है कि ऐसे भव्य स्वरूप वाला व्यक्ति ऐसे जघन्य क त्य का अपराधी नहीं हो सकता। न्यायाधीश के यह प्रश्न करने पर कि क्या वसन्तसेना उसकी प्रेमिका है? चारुदत्त सर्वप्रथम कुछ लज्जित सा अनुभव करता है तथा परोक्ष रीति से स्वीकार करते हुये उत्तर देता है कि "इस विषय में केवल यौवन अपराधी हैं, चरित्र नहीं"। न्यायाधीश चारुदत्त को स्पष्ट रूपेण कहने को बाध्य करता है, ऐसी स्थिति में शकार को भी कुछ बोलने का अवसर मिलता है तथा वह चारुदत्त को हत्यारा आदि कह कर सम्बोधित करता है। न्यायाधीश के यहाँ पूछने पर कि अब वसन्तसेना कहाँ है? चारुदत्त बताता है कि वह अपने घर गई है। परन्तु वह यह बतलाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है कि वह पैदल गई या गाड़ी में। शकार न्यायाधीश पर यह आरोप लगाता है कि वह चारुदत्त का पक्ष ले रहा है। इस पर न्यायाध ीश उसकी यह कहते हुये भर्त्सना करता है कि चारुदत्त जैसे दानशील व्यक्ति पर उसने असत्य अभियोग लगाया है।

वसन्तसेना की माता भी यह स्वीकार करती है कि वह क्षण-भंगुर वैभव के हेतु वैसा गर्हित कार्य नही कर सकता। इतने में क्रोध भरा वीरक वहां आता है। वह चन्दनक के साथ हुये अपने झगड़े की सूचना देता है। वह यह भी कहता है कि चारुदत्त की गाड़ी में बैठकर वसन्तसेना पुष्पकरण्डक उद्यान जा रही थी। शकार के समर्थन में अब यह दूसरा प्रमाण मिल जाता है और न्यायाधीश बड़े खेद के साथ वीरक को आदेश देता है कि वह न्यायालय के द्वार पर अवस्थित घोड़े पर चढ़कर उस उद्यान की ओर देखे कि वहां कोई स्त्री मरी पड़ी है या नहीं। वीरक जाकर व पुनः प्रवेश करके वहां एक स्त्री के म त शरीर के पड़े रहने की बात का समर्थन करता है। ऐसी स्थिति में

न्यायाधीश स्वतः हतबुद्धि हो जाता है तथा वह चारुदत्त से अनुरोध करता है कि वह सत्य का उद्‌घाटन करें।

न्यायाधीश के ऐसे कहने पर चारुदत्त अपनी सफाई इस रूप में प्रस्तुत करता है कि "जो मैं फूल चुनने के लिए प्रफुल्ल लता को भी नहीं झुकाता, तब मैं नीले केशवाली कामिनी की हत्या कैसे कर सकता हूं? शकार पुनः न्यायाधीश पर पक्षपात का आरोप लगाता है तथा चारुदत्त को आसन से नीचे उतारने के लिए आग्रह करता है। ऐसी स्थिति में न्यायाधीश चारुदत्त को आसन से नीचे उतरने का आदेश देता है। चारुदत्त जमीन पर बैठ जाता है अपनी पत्नी धूता तथा पुत्र रोहसेन को पुकारते हुए दुःख से विह्वल हो उठता है।

इसी बीच दुर्दैव से विदूषक वसन्तसेना के आभरण हेतु वहां आ टपकता है। शकार पर वह क्रोधित हो जाता है तथा परस्पर दोनों में मारपीट होती है। मारपीट में विदूषक की बगल से वसन्तसेना के आभरण प थ्वी पर गिर पड़ते हैं। शकार को अब अभियोग के समर्थन में तीसरा और प्रमाण मिल गया है तथा न्यायाधीश की मानसिक स्थिति और भी डांवाडोल हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह निर्णय नहीं कर पाता कि वह क्या करे। चारुदत्त स्वयं स्वीकार करता है कि आभरण वसन्तसेना के हैं। परन्तु यह बतलाने में असमर्थता व्यक्त करता है कि वे वसन्तसेना से विमुक्त कैसे हुये। अब न्यायाधीश को यह निर्णय लेना पड़ता है कि चारुदत्त वस्तुतः अपराधी है। वसन्तसेना की माता निर्णय का विरोध करती रोती हुई न्याय-मण्डप से बाहर निकल जाती है।

अन्ततः वे अपना निर्णय लिख कर राजा पालक के पास भेजते हैं, क्योंकि मनु के अनुसार पापी ब्राह्मण भी मारा नहीं जा सकता। राजा चारुदत्त को प्राण-दण्ड की आज्ञा देता है। चारुदत्त पालक की इस आज्ञा की भर्त्सना करता हुआ, मैत्रेय से अनुरोध करता है कि वह घर जाकर उसकी माता को उसका अभिवादन सुना दे और रोहसेन को भी मिला दे। अधिकरणिक चाण्डालों को आदेश देने के लिए कह कर चले जाते हैं। न्यायाधीश की आज्ञा से चाण्डाल चारुदत्त को हटा लेते हैं।

चारुदत्त पर अभियोग लगाये जाने के कारण प्रस्तुत अंक की अभिधा "व्यवहार" पड़ी है। "व्यवहार का अर्थ है अभियोग या मुकदमा" ।

दशम अंक

अंक के प्रारम्भ में चारुदत को वध स्थान ले जाते हुये चाण्डाल दिखाई देते हैं। चारुदत के सारे शरीर पर लाल चन्दन से छापे मारे गये हैं तथा तिल चावल एवं कुंकुम का लेप लगा है जिससे वह वध्यपशु तुल्य लगता है। श्मशान में ले जाते हुये उसे सम्पूर्ण उज्जयिनी नगरी के लोग, विशेषतः स्त्रियां देख-देख कर रोती हैं। विदूषक चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को लेकर वहां आता है। विदूषक और रोहसेन चाण्डालों से चारुदत्त को छोड़ने की प्रार्थना करते हैं तथा चारुदत्त के स्थान पर अपना वध करने का अनुरोध करते हैं। चाण्डाल बालक के पित -प्रेम की सराहना करते हैं। थोड़ी देर बाद वे दूसरे घोषणा-स्थल पर पहुंचते और घोषणा दुहराते हैं। घोषणा को सुन कर शकार के महल में बन्धा स्थावरक चिल्ला कर कहता है कि वसन्तसेना को चारुदत्त ने नहीं शकार ने मारा है। परन्तु उसकी बात किसी के कान तक नहीं पहुंचती। तब वह एक गवाक्ष से कूद कर चाण्डालों के पास आता है और पुनः वही बात कहता है। इसी समय शकार वहां आकर उसके कथन को असत्य बतलाता है। तथा उस पर स्वर्ण को चुराने का आरोप लगाता है। चाण्डाल शकार की बात को सच मान लेते हैं। शकार स्थावरक को मार का भगा देता है और वह चाण्डालों से चारुदत्त को शीघ्र मारने के लिए बार-बार कहता है।

तीसरे घोषणा स्थल पर पहुंच कर शकार के निर्देश पर चाण्डाल पीटने का भय दिखा कर चारुदत्त से यह घोषणा कराते हैं - "हे नगरवासियों! मैंने ही वसन्तसेना को मारा है।" एक चाण्डाल कहता है कि "वध्य पुरूष को सहसा मारना ठीक नहीं क्योंकि अनेक दशाओं में उनके प्राण बच जाते हैं और इन अवस्थाओं में एक अवस्था राज्य परिवर्तन की भी होती है जब सभी बन्दी मुक्त कर दिये जाते हैं।" राज्य परिवर्तन की बात सुन कर शकार घबराता है तथा चाण्डालों से चारुदत्त को शीघ्र मारने के लिए कहता है।

अंक के द्वितीय द श्य में भिक्षु और वसन्तसेना चारुदत्त के घर जाते दिखाई देते हैं। मार्ग में भीड़ देख कर वसन्तसेना भिक्षु को पता लगाने की लिये कहती है। इतने में चाण्डाल पुनः चारुदत्त के अपराध और उसे मिले दण्ड की घोषणा करते हैं। भिक्षु सुन कर घबराता है तथा सम्पूर्ण व त्तान्त को वसन्तसेना से कहता है। दोनों वध स्थान की और अग्रसर होते हैं। इसी बीच चारुदत्त को जमीन पर लिटाकर चाण्डालों ने उसके वक्ष पर तलवार से प्रहार किया है, परन्तु तलवार उसके हाथ से छूट कर अलग गिर जाती है। तब चाण्डाल चारुदत्त को शूल पर चढ़ाना चाहते हैं। इसी समय भिक्षु और वसन्तसेना वहां पहुंचते हैं। वसन्तसेना चारुदत्त के वक्ष पर गिर पड़ती है और भिक्षु उनके चरणों पर गिर पड़ता है। वसन्तसेना को जीवित देख चाण्डाल चारुदत्त को छोड़ कर राजा को समाचार देने चले जाते हैं। वसन्तसेना को देखकर शकार भी वहां से भाग जाता है। चारुदत्त वसन्तसेना और भिक्षु को पहचान कर आनन्दमग्न हो जाता है।

अंक के अग्रिम द श्य को शर्विलक का प्रवेश होता है। वह चारुदत्त को आर्यक के द्वारा राजा पालक के मारे जाने का समाचार देता है। चारुदत्त इस समाचार का स्वागत करता है। शर्विलक उसे यह भी सूचना देता है कि उज्जयिनी में सत्ता प्राप्त करते ही आर्यक ने कुशावती नगरी का राज्य उसे सौंप दिया है। इसी समय कुछ लोग शकार को पकड़ कर वहां लाते हैं। शकार चारुदत्त के चरणों में गिर कर प्राण-रक्षा की भीख मांगता है। चारुदत्त उसे अभयदान देता हैं।

अंक का अन्तिम द श्य धूता के चितारोहण तथा वसन्तसेना के साथ हुये उसके मिलन से सम्बन्ध रखता है। उक्त प्रसंग अधिकांश विद्वान् प्रक्षिप्त बतलाते हैं। शर्विलक इस आनन्दमय अवसर पर वसन्तसेना को आर्यक के नाम पर वधू रूप में चारुदत्त को सौंपता है तथा उसका घूंघट खींच देता है। वसन्तसेना इस अनुग्रह से अपने को क तार्थ समझती है। चारुदत्त की इच्छानुसार भिक्षु संवाहक को प थ्वी पर सब विहारों का कुलपति बना दिया जाता है। दोनों चाण्डाल सब चाण्डालों के अधिपति बना दिये जाते हैं। चन्दनक को प थिवी दण्डपालक का पद दिया जाता है। शकार का भी अधिकार अस्थायी रूप से पूर्ववत् बना रहने दिया जाता है। इसी सानन्द वातावरण में नाटक भरत वाक्य के साथ समाप्त हो जाता है।

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण की द ष्टि 'म च्छकटिक' संस्क त नाट्य साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण क ति है। शूद्रक ने अपने प्रकरण में प्रायः सभी पात्रों के साथ समान व्यवहार किया है तथा उनको एक विशेष ढंग से अपने प्रकरण में प्रस्तुतीकरण किया है।

चारुदत्त

चारुदत्त प्रस्तुत प्रकरण का नायक है। भारतीय काव्यशास्त्रियों के अनुसार नायक के चार प्रकार माने गये है - वे क्रमशः धीरललित, शान्त, उदात्त तथा उद्धत हैं। ये चारों प्रकार के नायक 'धीर' तो होते ही हैं धीरत्व के अतिरिक्त इनमें अपनी प्रक तिगत विशेषता भी अलग से पाई जाती है। उक्त

चार प्रकार के नायकों में से प्रस्तुत प्रकरण के नायक को 'धीर प्रशान्त' कोटि का नायक माना गया है। धीरप्रशान्त नायक प्रक ति से शान्त होता है। शान्त प्रक ति प्रायः ब्राह्मण या वैश्य में ही होती है, अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि धीर प्रशान्त कोटि का नायक या तो ब्राह्मण होता है या वैश्य। परन्तु प्रस्तुत प्रकरण का नायक चारुदत्त धीर होने के साथ साथ कलाप्रेमी व क्षमावान् भी है जो कि क्रमशः धीर ललित तथा धीरोदात्त नायक के प्रमुख गुण माने गये हैं। इस प्रकार ललित, उदात्त तथा शान्त तीनों प्रकार के नायकों के गुणों से वह युक्त है।

चारुदत्त जन्मना ब्राह्मण होते हुये भी कर्मणा श्रेष्ठी है। वह अपनी हृदय की उदारता तथा व्यवहार के कारण दुर्दिनों में पड़ा हुआ है। वह अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षो में अत्यन्त धनाढ्य रह चुका है। परन्तु दुर्भाग्य से वह निर्धन हो गया है, अतः निर्धनता से अत्यन्त दुःखी व निराश है। परन्तु चारुदत्त की उदासीनता व निराशा भिन्न प्रकार की है। वह धनाभाव से अधिक चिन्तित अपने घर से याचकों को खाली हाथ लौटते देखकर वह कहता है -

एतत्तु मां दहति यद् ग हमस्मदीयं
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः
कालात्यते मधुकराः करिणकपोलम्।।

दरिद्र होने पर भी चारुदत्त यश एवं प्रतिष्ठा का सर्वदा ध्यान रखता है। वह अपने वंश की कीर्ति की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। जब चोर घर में सेंध लगा कर घुसता है तथा चारुदत्त को इसका पता चलता है, तब उसे इस बात की चिन्ता नहीं होती कि क्या वस्तु चुराई गई परन्तु वह इस बात से दुःखी होता है कि चोर को उसकी मेहनत का फल नहीं मिला, उसे मेरे घर से कोई धन प्राप्त नहीं हुआ, उसे कितनी निराशा हुई होगी। यह सब वह इसलिये सोचता है कि समाज में लोगों को उसकी घर की स्थिति का पता चल जायेगा। वह यह सुनकर प्रसन्न होता है कि चोर स्वर्णालंकार चुरा ले गये हैं।

परन्तु जब उसे यह पता चलता है कि वह धरोहर थी, तब वह अत्यन्त दुःख अनुभव करता है। वह अपनी निर्धनता को भी कोसता है तथा कहने लगता है "वास्तविक तथ्य पर कौन विश्वास करेगा (कि चोर ने धरोहर चुराई) सभी मुझे ही दोषी ठहरायेंगे। इस संसार में निर्धनता समस्त शंकाओं की जननी है।" विदूषक द्वारा यह प्रस्ताव रखने पर कि वह धरोहर के विषय में ऐसा प्रचार करेगा कि जिससे आप न्याय से मुक्त हो जाओगे, तब चारुदत्त कहता है- "क्या मैं इस समय असत्य बोलूँगा? भिक्षा के द्वारा यथेष्ठ धन एकत्र कर धरोहर लौटा दूँगा, परन्तु चरित्र को कंलकित करने वाला असत्य भाषण नहीं करूगां।" विदूषक के रत्नावली भेजने के प्रस्ताव को विरोध करने पर वह उत्तर देता है - जिस विश्वास के सहारे वसन्तसेना ने वह धरोहर मेरे पास रखी, उसी विश्वास के कारण यह मूल्यवान् रत्नावली उसे दी जा रही है न कि उस स्वर्णाभूषण के बदले में। उक्त दो उदाहरणों से स्पष्ट विदित होता है कि चारुदत्त चरित्र से कितना नेक, सत्य प्रिय एवं विश्वासपात्र था। विश्वास भंग न होने की उक्त चिन्ता चारुदत्त के चरित्र को चमत्कारिता के आलोक से प्रकाशित कर देती है।

उक्त सभी कार्यों के मूल में प्रमुख जो बात है वह है 'कुल की प्रतिष्ठा'। चारुदत्त सर्वदा इस बात का पूर्ण ध्यान रखता है कि उसका आचरण कुल की मर्यादा के अनुकूल हो। नाटक के दशम अंक में चाण्डालों द्वारा पिता तथा पितामह का नाम लेकर उसके ऊपर मढे गये आरोपों की घोषणा करने

पर वह अपने गौरवान्वित कुल का स्मरण कर अत्यन्तः दुःखी होता है। चारुदत्त को म त्यु का कोई भय नहीं हैं, उसे यदि किसी बात का भय है, तो वह है अपने कुल की प्रतिष्ठा व यश का। वह स्पष्ट कहता है :-

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि मे म त्युः पुत्रजन्म समो भवेत्।।

चारुदत्त का हृदय अत्यन्त उदार, गंभीर और करुणा युक्त है। सम्पत्ति सलिल के समाप्त हो जाने पर भी उसका मनसरोज उसी भांति विकसित है। वह जब भी समय पाता है गुणी और उपकारी सज्जन का सम्मान अति उदारता से करता है मदोन्मत गज से भिक्षु की रक्षा करने के लिए प्रसन्न होकर वह कर्णपूरक को अपना प्रावारक दे डालता है। उदारता के साथ - साथ करुणा भी उसके हृदय में विद्यमान है। वह न केवल अपने सेवकों के प्रति दयालु है, अपितु पशु-पक्षियों के प्रति भी उसकी करुणा द्रवित होती रहती है। चेट द्वारा फेंकी हुई कंकड़ी को कबतूर द्वारा गिराई हुई जानकर जब विदूषक कबूतर को मारना चाहता है, तो चारुदत्त उसे मना करता हुआ कहता है - **'तिष्ठतु दयितासहितस्य......... पारावतः।'** वह इतना कोमल हृदय है कि पुष्प के लिए कोमल लता को नीचे झुकाकर पुष्प चयन तक करना पसंद नहीं करता।

वह एक सुशिक्षित एवं सुसंस्क त नागरिक है। उसमें कवि हृदय विद्यमान है। वर्षा-वर्णन जिन शब्दों में उसके द्वारा किया गया वह द्रष्टव्य है। कवि होने के साथ साथ वह संगीत का पारखी एवं कलाप्रिय व्यक्ति है। त तीय अंक में जब वह रेभिल का संगीत सुन कर वापस घर को लौटता है तब मुक्त-कण्ठ से उसकी प्रशंसा करता है। मकान में जब सेंध लगाई जाती है, तथा वह उसे देखता है, तब चोरी की अधिक चिन्ता न करके सर्व प्रथम सेंध लगाने की कला की प्रशंसा करता है।

शरणागत की रक्षा जो एक भारतीय संस्क ति की अनुपम धरोहर है, उसके चरित्र में विद्यमान है। वह शरणागत की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों तक की परवाह भी नहीं करता। आर्यक जब उसकी शरण में आता है, तब वह स्पष्ट कहता हैं -"अपने प्राणों को भले ही त्याग दूगां, किन्तु शरण में आये हुये तुम्हें नहीं त्यागूंगा।" उसकी शरणागत वत्सलता उस समय अपनी पराकाष्ठा को पहुंच जाती है जबकि वह अपने विरोधी शकार तक को शरण में आने पर क्षमा प्रदान कर दण्ड मुक्त करा देता है।

उक्त गुणों के साथ साथ चारुदत्त धार्मिक प्रव त्ति से युक्त है। प्रथक अंक में ही उसकी धर्म व देवताओं के प्रति निष्ठा हमें ज्ञात हो जाती है। देवताओं के प्रति मैत्रेय जब अश्रद्धा व्यक्त करता है, जब वह उसे स्पष्ट कह देता है कि 'मित्र! ऐसा न कहो, ग हस्थों का यह नित्य-नियम है।" धार्मिक-प्रव त्ति से युक्त होने के कारण वह भाग्यवादी भी है। भाग्यवादी होने के कारण ही निर्धनता के संदर्भ में उसने हमेशा भाग्य की प्रबलता की बात कही है। उसका विश्वास है कि 'धन का आना और जाना भाग्य के अनुसार ही होता है।" उसकी भाग्यवादिता एवं धर्म निष्ठा का ज्वलन्त प्रमाण हम उसके निम्न कथन के रूप में देख सकते हैं, जब वह यह आह्वान करता है कि 'वसन्तसेना जहां भी हो, स्वर्ग या संसार में तत्काल वहां उपस्थित हो जाय, यदि उसके धर्म में कुछ भी प्रभाव हो।"

एक प्रेमी के रूप में भी उसका चरित्र चारित्रिक द ढ़ता से युक्त है। वसन्तसेना के प्रति उसका प्यार अत्यन्त गहरा एवं सुकुमार है। जब तक वसन्तसेना उससे आकर नहीं मिलती है, तब तक वह उसके वियोग में तड़पता रहता है। उसके आ जाने पर वह प्रसन्न होता है तथा सहर्ष कह उठता है - "अरे! वसन्तसेना आ गई! हे प्रिये! मेरा सांयकाल प्रतिदिन जागते व्यतीत होता है, और सारी रातें

निरन्तर निःश्वास छोड़ते व्यतीत हो जाती हैं। लेकिन हे विस्त त लोचने! तुम्हारे समागम से आज की संध्या हमारे शोक का अन्त कर देने वाली होगी।" अभियोग प्रकरण में भी वह इन शब्दों में वसन्तसेना का स्मरण करता है - "वसन्तसेना के जीवन के बिना मेरा जीवित रहना व्यर्थ है।" चाण्डाल जब उसे वसन्तसेना का हत्यारा कह कर बार बार घोषणा करते हैं तब वह अत्यन्त दुःख अनुभव करते हुये कह उठता है - "चन्द्रमा की विमल किरणों के समान उज्जवल दांतों वाली! मनोरम प्रवाल के तुल्य रक्ताभ अधरोष्ठ वाली! प्रियतमे! तुम्हारे मुखाम त का पान कर मैं इस समय कितनी निस्सहाय, अवस्था में अपयश रूपी विष का पान कर रहा हूं।"

और अन्त में जब वध-स्थान पर अचानक वसन्तसेना को देखता है तब वह ह्रदय से गद्‌गद हो उठता है तथा उसे संजीवनी बूंटी के तुल्य बतलाता है। इस प्रकार का एक शान्त, निष्ठावान्, गंभीर तथा सुकुमार प्रेमी है।

इस प्रकार दान, दया, उदारता, परोपकार तथा अन्य ऐसे ही गुणों के कारण वह उज्जयिनी के सभी नर-नारियों का श्रद्धा एवं विश्वास का पात्र बना हुआ है। उसकी प्रंशसा उसके प्रतिद्वन्द्वी भी करते हैं। उसके प्रतिद्वन्द्वी शकार का सेवक विट उसकी इन शब्दों में प्रशंसा करता है :-

दीनानां कल्पव क्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो,
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्‌वसन्तीव चान्ये।।

न्यायालय में उपस्थित होने पर न्यायाधीश को यह विश्वास नहीं हो पाता कि चारुदत्त ऐसा न शंस कार्य कर सकता हैं। वह उसे आसन प्रदान करता है, तथा शकार को लताडते हुये कहता है - "जिस चारुदत्त ने (रत्नों का दान देते हुये) समुद्र को जल की प्रचुरता मात्र है शेष जिसमें ऐसा कर दिया, तथा जिसने (याचकों के द्वारा) अप्रार्थित धन का दान किया, कल्याणों का एक (अद्वितीय) आधार वह महात्मा, धन के लिये वैरियों के द्वारा भी न किया जाने योग्य यह पाप कैसे करेगा।"

इतने सद्‌गुणों से युक्त एवं प्रशंसा का पात्र होते हुये भी वह मानव है तथा चन्द्रमा में जिस प्रकार कालिमा विद्यमान हैं उसी प्रकार उसमें भी एक दो चारित्रिक कमजोरियाँ हैं। वह निर्धन है, परन्तु निर्धनता को प्रकट नहीं करता है। उसने गणिका से प्रेम किया है, परन्तु वह अन्त समय तक उसे प्रकट नहीं करता, उसे प्रकट करने में वह संकोच करता है। यह संकोच उसके चरित्र का दोष ही कहा जायेगा, उसे ऐसी स्थिति में जब कि उसे म त्युदण्ड ही मिल रहा था, प्रणय की स्वीक ति दे देनी चाहिये थी।

अन्य जो दोष उसके चरित्र में देखने को मिलता है वह धूता के प्रति उसकी आश्चर्यजनक उपेक्षा है। वह जब वध के लिये चाण्डालों द्वारा ले जाया जाता है तब सभी का स्मरण करता है परन्तु अपनी पतिव्रता पत्नी धूता की उस समय भी उपेक्षा ही करता है, जो उस जैसे करुण ह्रदय के लिए उचित प्रतीत नहीं होता।

परन्तु उक्त एक दो अवगुण उसके गुणों के सामने नगण्य दिखाई देते हैं। उसके समस्त गुणों पर विचार, करने के उपरान्त ही **डा० राइडर** ने उसकी तुलना **"मरचेण्ट आफ वेनिस"** के नायक **एण्टोनियो** से की है, जो सर्वथा उचित एवं न्याय संगत प्रतीत होती है।

वसन्तसेना

म च्छकटिक के नायक चारुदत्त के चरित्र का वर्णन करने के उपरान्त द्वितीय महत्त्वपूर्ण चरित्र नायिका वसन्तसेना के विषय में भी कुछ उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा। संस्क त के आचार्यों ने प्रकरण सम्बन्धित लक्षणों के अन्तर्गत नायिका के विधान की रूपरेखा भी रखी है। साहित्यदर्पणकार के अनुसार 'प्रकरण में नायिका कहीं कुल-कन्या होती है, कहीं वेश्या होती है और कहीं दोनों होती हैं" म च्छकटिक' एक ऐसा प्रकरण है जिसमें कुल स्त्री तथा गणिका दो नायिकायें हैं। इसमें कुल स्त्री धूता तथ गणिका के रूप में वसन्तसेना है। परन्तु धूता प्रस्तुत प्रकरण में नाम मात्र के लिये है, वास्तविक नायिका तो वसन्तसेना ही है।

वसन्तसेना एक असाधारण रूपवती, नवयौवना वेश्यापुत्री है। यह उसका दुर्भाग्य है कि वह गणिका कुल से उत्पन्न है। परन्तु फिर भी उसने अपने द ढ़ संकल्प तथा प्रयत्नों के फलस्वरूप अपने आपको कुलवधू के योग्य प्रमाणित किया है। नाटक में उसका परिचय हमें सर्वप्रथम उज्जयिनी के राजमार्ग में होता है जब कि वह रात्रि के अन्धकार में शकार व उसके साथियों द्वारा पीछा की जाती हुई तथा उनसे अपने आपको बचाने हेतु भागती हुई दिखाई पड़ती है। शकार उसके प्रति कामासक्त है तथा उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है, उसने इस घटना के पूर्व भी कामदेवायतन उद्यान में कन्दर्पपूजा महोत्सव के अवसर पर उसके चरित्र को दूषित करने का प्रयास किया था। उस समय चारुदत्त द्वारा उसकी रक्षा की गई थी तथा उसी समय से वह चारुदत्त से प्रभावित होकर उसके प्रति अनुरक्त हो गई थी। शकार को पुनः अवसर प्राप्त होता है तथा वह उसका पीछा करता है। परन्तु वसन्तसेना के विषय में शकार व उसके साथियों की गलत धारणा है। वे उसे सामान्य गणिका समझते हैं जो कि सर्वभोग्या होती है। शकार उसे क्रय वस्तु समझ कर उसके साथ रमण करना चाहता है।

परन्तु वसन्तसेना ह्रदय से पवित्र एवं सच्चरित्रा है। वह सामान्य गणिका के समान जीवन यापन करना नहीं चाहती अपितु समाज में अपना प्रतिष्ठित स्थान बनाना चाहती है। यही कारण है कि वह संस्थानक जैसे राजवल्लभ को ठुकरा कर अपने शुद्ध एवं गंभीर प्रेम का परिचय देती है। माता की गणिका व त्ति के कारण उसे विपुल सम्पत्ति प्राप्त है, परन्तु उसका ह्रदय इस गर्हित जीविका के प्रति विद्रोह कर उठता है। राजश्याल संस्थानक के द्वारा भेजी गई स्वर्णराशि तथा बुलाने के लिये गाड़ी भेजने पर वह क्रुद्ध हो जाती है तथा चेटी से तुरन्त कहती है - "जाकर माताजी से कह दो कि यदि वे मुझे जीवित देखना चाहती हैं, तो पुनः ऐसी आज्ञा न दें।" शकार द्वारा अपना मनोरथ व्यक्त करने पर वह क्रोध से तिलमिला जाती है और कहती है - **'शांतं! शांतं! अपेहि, अनार्य्यं मंत्रयसि।'** इस प्रकार शकार, उसके धन तथा स्वर्ण का उसके लिए कोई महत्त्व नहीं हैं।

वह धन के स्थान पर गुणों की उपासिका है। विट के द्वारा वेश्याओं की समद ष्टि का कथन किये जाने पर वह उसे शान्त भाव से एक ही वाक्य में प्रेम के प्रादुर्भाव का कारण बतलाती है, उसके अनुसार "गुण ही अनुराग का कारण है बलात्कार नहीं।" अपने प्रेम का दान वह गुणवान् व्यक्ति को ही देना चाहती है। उसकी इस भावना का स्पष्टीकरण हमें प्रकरण के द्वितीय अंक में मदनिका के साथ हुई उसकी वार्त्ता के अन्तर्गत हो जाता है। वार्ता के अन्तर्गत मदनिका उसके ह्रदय की बात को जानने के प्रयत्न स्वरूप उससे प्रारंभ में प्रणय को लेकर राजवल्लभ, ब्राह्मण, व्यापारी इत्यादि के विषय में प्रश्न करती है। मदनिका के यह पूछने पर कि क्या वह कोई राजा अथवा राजवल्लभ है, जो तुम्हारे द्वारा कामदेव महोत्सव में अनुग हीत हुआ है, वह इस प्रकार उत्तर देती है - "सखी रमण करना चाहती हूं, सेवा करना नहीं।" इस प्रकार यद्यपि उसका मुख्य ध्येय रमण करना है परन्तु यह रमण विवेकाश्रित है, उस रमणेच्छा में धन प्रधान न होकर गुण प्रधान है। वार्त्तालाप के अन्तर्गत

चारुदत्त विषयक अनुरक्ति को स्वीकार कर लेने पर, मदनिका द्वारा चारुदत्त को जब निर्धन बताया जाता है, तब वह तत्काल उत्तर देती है - "इसीलिये तो मैं उन्हें चाहती हूं। निर्धन पुरुष में आसक्त होने वाली वेश्या संसार में निन्दनीय नहीं समझी जाती।" मूलतः उसके प्रणय जीवन का यही मूलाध ाार है। उसे यह पता है कि वह वेश्या है, तथा यदि वह धन के लोभ से किसी के साथ रमण करती है तो समाज में वह निन्दनीय समझी जायेगी, और अपने लक्ष्य 'कुल-वधू' पद को नहीं प्राप्त कर सकेगी। उसके हृदय में प्रणय के सम्बन्ध में वही सिद्धान्त जमा हुआ है जो बहुत बाद में हमे भवभूति के नाटक उत्तररामचरित में देखने को मिलता है - **"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंग न च वयः।"** यही कारण है कि प्रस्तावना में भी उसे गुणानुरक्ता गणिका कहा गया है।

इस प्रकार वसन्तसेना गुणानुरोधिनी है, परन्तु वेश्या होने के कारण चारुदत्त तथा शकार दोनों में उसके प्रणय को लेकर गलत धारणा बनी हुई है, एक और चारुदत्त को यह मानसिक संकोच है कि वह निर्धन है। अतः वसन्तसेना उसे प्राप्य नहीं है, दूसरी और शकार को यह गलत धारण बनी हुई है कि वह धन-धान्य से सम्पन्न है तथा राजा का साला है अतः वसन्तसेना उसी के उपभोग के योग्य है। उसे क्या मालूम कि उसके लिए वसन्तसेना के हृदय में किंचित् मात्र भी स्थान नहीं है तथा उसके प्रणय का देवता तो गुण सम्पन्न चारुदत्त ही है।

परन्तु इस प्रणय के देवता को प्राप्त करने में उसे कितना त्याग करना पड़ा है वह उल्लेखनीय है। दूसरे शब्दों में उसका यह प्रणय-जीवन विरोधों से भरा है जिसमें कि शकार सब से बड़े कांटे के रूप में उसके सामने आता है। परन्तु वसन्तसेना ने इन विरोधों का डट कर मुकाबला किया है। उसने शुरु से ही लम्पट शकार का सामना किया है। उसने उसे कभी कोई ऐसा अवसर नहीं दिया कि वह अपनी चाल में उसे फंसा सके। प्रथम अंक में तो वह अपनी चतुराई एवं शकार की गलती से बच निकलती है परन्तु अष्टम-अंक में दुर्भाग्य के कारण जब वह उसके चंगुल में पुनः फंस जाती है तब वह निर्भीकता से उसका मुकाबला करती है। शकार जब उससे बलात् प्रणय हेतु स्वीक ति चाहता है तब वह अत्यन्त तीव्र एवं भर्त्सना के शब्दों में उसे यह कह कर डाँटती है - "हे खल! तुम चरित्र में अधम हो। दोषों के आकर हो। मुझे धन का लोभ क्यों दे रहे हो? सुन्दर चरित्र तथा पवित्र शरीर वाले कमल को छोड कर क्या भ्रमर और कहीं जा सकता है? .... आम्रपादप की सेवा के पश्चात् मैं पलाश को स्वीकार नहीं करूँगी।" शकार को कहे गये उक्त वाक्यों में उसकी चारित्रिक द ढ़ता स्पष्टरूपेण झलकती है। शकार द्वारा उसके वश में किये जाने के अन्य भी कई उपाय किये जाते हैं परन्तु सभी उपायों को वह विफल बना देती है। अन्त में वह उसे प्राणाघात की कसौटी पर परखना चाहता है, परन्तु वसन्तसेना वहां भी विचलित नहीं होती और अपने प्राणों को न्यौछावर करने हेतु तत्पर ह ा ` जाती है।

वह प्रतिष्ठा को जीवन का प्रमुख लक्ष्य समझती है तथा 'कुलवधू' बनने के अपने संकल्प को किसी भी स्थिति में पूर्ण करना चाहती है। उस समय उस की स्थिति वैसी ही होती है जैसी कि रामायण में रावण के जाल में फंसी सीता की। अन्तर केवल यही है कि वह जन्म से वेश्या है जो कि समाज की द ष्टि में पतित है, उधर सीता राम की पत्नी होने के नाते पूज्या थी।

राक्षस रूपी शकार उसे बार-बार धमकी देता है कि वह चारुदत्त को छोड़ कर उसे अपना प्रेम दान करे परन्तु वसन्तसेना की भी वही सीता जैसी स्थिति है। सीता के समान वह भी शकार द्वारा ध ामकी दिये जाने पर चारुदत्त का पुनः पुनः स्मरण करती है। वह शकार को स्पष्ट करती है कि "जो हृदय में बैठा है, क्या उसका स्मरण नहीं किया जाता?" इस पर शकार और भी क्रुद्ध होकर

उसे कहता है - "आज भी तुम्हारे हृदय में बैठे चारुदत्त को तथा तुम्हें पीस कर एक साथ चूर्ण करता हूँ। दरिद्र चारुदत्त की अभिलाषिणी, ठहर, ठहर।" परन्तु वसन्तसेना पर उसके इस कथन का नाम मात्र भी विपरीत प्रभाव नहीं पड़त। अपितु वह शकार को इस बात के लिए बाध्य करती है कि वह बार बार कहे, क्योंकि वे (चारुदत्त) पूजनीय अक्षर हैं। यहां तक कि अन्तिम समय तक जबकि शकार उसे गला घोंट कर मारना चाहता है वह चारुदत्त को मन ही मन स्मरण करती है तथा नमस्कार करती है। इस प्रकार उक्त सम्पूर्ण द श्य वसन्तसेना के चारुदत्त सम्बन्धी प्रणय का द ढ़ निश्चय हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वास्तव में देखा जाये तो गणिका वसन्तसेना का यह त्याग एवं द ढ़ निश्चय संस्क त नाट्य-साहित्य में कोई समानता नहीं रखता।

परन्तु इतने पर ही उसे कुलवधू का पद नहीं मिलता। इसके लिए उसे चारुदत्त को भी जो कि अपने आपको निर्धन समझ कर अयोग्य समझे बैठा हुआ है, तैयार करना पड़ता है। इसके लिये भी वह योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार करती है। वह अपनी इसी योजना के क्रम में चारुदत्त के घर में प्रविष्ट होती है। तथा वहां पर अपने सुवर्णाभरण धरोहर रूप में रखती है। अलंकार न्यास के इस रहस्य का उद्घाटन हमें द्वितीय अंक में होता है, जब कि वह मदनिका से इस प्रकार कहती है - "प्रत्युपकार करने में असमर्थ उनसे सहसा नहीं मिला जा सकता क्योंकि तब उनका दर्शन पुनः दुर्लभ हो जायेगा।" इस पर मदनिका उसके हृदय की बात समझ जाती है और कहती है। "क्या इसीलिये वह आभूषण उसके हाथ में धरोहर रखा है।" वसन्तसेना इस पर अपनी सहमति प्रकट करती है। इस प्रकार प्रणय हेतु नायिका वसन्तसेना स्वयं प्रारंभिक प्रयास करती है जो कि संस्क त नाट्य साहित्य में प्रायः अद्भुत प्रयास के रूप में कहा जायेगा अन्यथा तो नायक ही नायिकाओं को प्रसन्न करने के उपाय ढूँढ़ते पाये जाते हैं।

नायक चारुदत्त के मनः संकोच को दूर करने हेतु ही वह उसके द्वारा प्रेषित रत्नावली को स्वीक त करती है, वह समझती है कि यदि उसे वह स्वीक त नहीं करेगी तो चारुदत्त पुनः इसके लिए अपनी दरिद्रता को कोसेगा, इसी क्रम में वह बाद में अभिसार की योजना भी बनाती है तथा दुर्दिनमयी संध्या में विहारार्थ चारुदत्त के पास पहुंचती है। रात्रि चारुदत्त के साथ व्यतीत करने के उपरान्त जब प्रातःकाल उसे पुष्पकरण्डक उद्यान में जाने के विषय में चारुदत्त के आमंत्रण की सूचना मिलती है, तब वह अत्यन्त हर्षित होती है। क्योंकि वहां पर वह चारुदत्त को दिन में अच्छी प्रकार देख सकेगी। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि उसका उद्देश्य केवल मात्र चारुदत्त के हृदय में प्रवेश करना ही नहीं अपितु अन्तः पुर में प्रवेश कर ग हिणी तथा कुल स्त्री के पद को ग्रहण करना उसका मूल उद्देश्य है। उसका यह प्रयास है कि अन्तःपुर के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में वह अपना स्थान बनाये। यही कारण है कि चेटी के यह कहने पर कि 'वह अन्तःपुर में ही नहीं, अपितु समस्त जनों के हृदय में भी प्रवेश कर गई है, उसे यकायक विश्वास नहीं होता तथा जिज्ञासावश पूछती है - "क्या चारुदत्त के परिजन मेरे कारण दुःखी हैं?" और जब चेटी विश्वास दिलाती है कि वे सभी उसके आगमन से सुखी हैं, तब वह बहन 'आर्याधूता' को इस सन्देश के साथ मुक्तावली भिजवाती है - वह चारुदत्त की गुणनिर्जिता दासी है अतएव धूता की भी वशीभूता है, उसका अनुरोध है कि वह मुक्तावली 'भगिनी' धूता के कण्ठ की शोभा बढ़ावे।"

वसन्तसेना के विषय में यह भी एक अद्भुत विशेषता है कि वह प्रथम 'जननी' बनती है तथा बाद में पत्नी। वेश्या होने पर भी उसका हृदय वात्सल्य से ओत-प्रोत है। सोने की गाडी के लिए रोते हुये चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को जब वसन्तसेना का परिचय दिया जाता है कि वह तुम्हारी माता है। तब बालक रोहसेन उसे माता मानने से इन्कार करता हुआ भोलेपन में कह उठता है कि यह सच नहीं है, यदि ये मेरी माता है तो अलंक त क्यों है?" इस पर वसन्तसेना का मात -हृदय फूट

पड़ता है। वह रो पड़ती है और आभूषणों को उतार कर कहती है - "पुत्र, भोले मुख से अत्यधिक करुण बात कह रहे हो। यह लो, अब तुम्हारी माता हो गई। इन आभूषणों को लो और सोने की गाड़ी बनवा लो।" वसन्तसेना का प्रस्तुत कथन यह प्रमाणित करता है कि यहां केवल चारुदत्त से मिलने के लिए उत्सुक उसका नारी - हृदय नहीं रहा है अपितु यह एक सच्चा मात -हृदय है जो बच्चे से मिलने के लिए चीत्कार कर उठा है।

वात्सल्य भावना के अतिरिक्त कोमलता और उदारता भी उसके चरित्र के प्रधान गुण हैं। मदनिका एवं संवाहक से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रसंग उसकी कोमल उदारता से ओत-प्रोत है। द्वितीय अंक का प्रसंग है, संवाहक पराजित द्यूतकर के रूप में वसन्तसेना की शरण में आता है। वह उसे शरण प्रदान करती है, वार्त्तालाप के अन्तर्गत चारुदत्त का प्रसंग भी आ जाता है, फिर क्या था, फिर तो दया ने प्रेम से मिलकर वह कार्य किया कि परस्पर दोनों का जीवन क तार्थ हो गया। वसन्तसेना की क पा से 'सभिक' को हस्ताभरण मिला और द्यूतकर का मोक्ष हुआ। परन्तु यहां पर यह धारणा बनाना कि उसने यह कार्य मात्र स्वार्थ-सिद्धि के किया, अनुचित होगी। वास्तव में उसकी उदारता निःस्वार्थ भावना युक्त है तथा वह इस उदारता का कोई प्रतिदान नहीं लेना चाहती है। प्रतिदान तो दूर रहा वह उसकी मुक्ति के श्रेय को भी स्वयं स्वीकार नहीं करना चाहती। द्यूतकार माथुर से वह चेटी द्वारा यही कहलाती है कि यह संवाहक ने ही भेजा है तथा संवाहक की सेवा का प्रस्ताव भी बदले में स्वीकार नहीं करती। इस प्रकार उक्त सम्पूर्ण कार्य वह निःस्वार्थ भावना से करती है।

संवाहक के अतिरिक्त शर्विलक के प्रति उसका व्यवहार और मदनिका को ऋण-मुक्त करके उसे वधू रूप में दे देना, सभी उसकी उदारता के परिचायक कहे जावेंगे। उसी की प्रेरणा व क पा का फल समझिये कि मदनिका कुलवधू पद को प्राप्त कर सकी। वह मदनिका को जब शर्विलक के साथ छिपकर बातें करती हुई देखती है, तब उसके हृदय में नारी सुलभ ईर्ष्या न होकर प्रसन्नता होती है तथा वह उन दोनों की गतिविधियों में किसी भी प्रकार का व्यवधान नहीं डालना चाहती। वह उन्हें देखकर कहती है - "अच्छा तो ये यथेष्ट रमण करें। इनकी प्रीति में कोई विच्छेद न उत्पन्न हो जाय। मैं पुकारूँगी नहीं। उसके इस कथन से उसके चित्त की कोमलता पर मधुर प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार मदनिका को जब वह शर्विलक के साथ रथ पर बैठा कर विदा करती है तब वह उसे इस प्रकार कहती है "अरी मदनिके! मुझे अच्छी तरह देख लेने दे। आज से तुम दूसरे को दे दी गई। गाड़ी पर चढ़ो। मुझे याद रखना।" प्रस्तुत कथन से उसके हृदय की कोमलता, निश्छलता एवं उदारता की अनेक धारायें एक साथ फूट पड़ी हैं। साथ ही इस समस्त संदर्भ के अन्तर्गत उसके हृदय में कहीं भी ईर्ष्या का भाव उठा हो, ऐसा द ष्टिगोचर नहीं होता अपितु शर्विलक को मदनिका सौंपने में उसे एक संतोष व आनन्द की प्राप्ति हुई है। शर्विलक भी इस क त्य के लिये उसके प्रति अनुग हीत है।

इस प्रकार वसन्तसेना ने वेश्या कुल में उत्पन्न होने के बावजूद भी अपने चारित्रिक गुणों के आधार पर समाज में अपना स्थान बना लिया है। इन्हीं गुणों के कारण 'नगर श्री' की उपाधि से भी वह विभूषित की गई है। चन्दनक के लिये वह चांदनी है तो विट के लिये भगवती लक्ष्मी की पद्म रहित शोभा तथा चारुदत्त के लिये वह सर्वस्व है। वह लावण्यमयी है परन्तु उसका लावण्य उन्मादक किस्म का नहीं है। वह उस प्रणय को प्रेरित करने के योग्य है जो कि अत्यन्त गहन सम्पर्क के बाद ही संभव है, तथा जो प्रणय पक्वावस्था में गंभीर त्याग के उपरान्त ही पहुंच सकता है। यह कहना निराधार नहीं है कि उसने चारुदत्त के हृदय में अपना स्थान बना लिया है। उसका सौन्दर्य उसकी विनम्रता से जो कि उसके तौर तरीकों में द्रष्टव्य है, परिपक्व हुआ है तथा मधुरता को प्राप्त हुआ हे उसके हृदय की स्पष्टवादिता तथा स्वामीभक्ति की भावना ने उसके व्यावसायिक स्वभाव

को भी तिरस्क त कर दिया है। उसने अपने व्यवसाय तथा जाति सम्बन्धित सभी सीमाओं का अतिक्रमण करके एक आदर्श जीवन प्रस्तुत किया है, जिसमें वेश्या जीवन की दुर्गन्ध तक नहीं है। उसके सम्बन्ध में विट का निम्न कथन अत्यन्त सटीक एवं महत्त्वपूर्ण है - "वह एक वेश्या है, परन्तु जिस प्रणय की उसे आवश्यकता है, वह एक वेश्या के भवन में प्राप्त नहीं हो सकता है। वह वेश्या होते हुये भी कुलकामिनी के प्रणय की इच्छुक है, उसे वेश्याव त्ति से घ णा है। यद्यपि वेश्या परिवार में जन्म तथा पालन-पोषण हुआ है परन्तु उसका प्रत्येक कार्य वेश्या जीवन के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया का रूप लिये हुए है।"

नाटक के अन्त में वसन्तसेना का चरित्र नितान्त निर्मल किरणों से प्रखर हो उठा है। उसकी समस्त विशेषतायें - चपलता, विनम्रता, विदग्घता, शीलता, उदारता इत्यादि परस्पर रसमय हो गई हैं और वह नव जीवन का देवदूत बन गई है। नाटक के अन्तिम अंक में वह उचित क्षणों में संवाहक सहित उपस्थित होकर चारुदत्त के प्राणों को बचाती है तथा उसे सान्त्वना प्रदान करती हुई उसके चरणों में गिर पड़ती है। चरणों में गिरी हुई वह बड़े ही कातर स्वरों में इस प्रकार निवेदन करती है - "आर्य चारुदत्त। मैं वही पापिनी वसन्तसेना हूं, जिसके कारण आप इस शोचनीय अवस्था में पहुंच गये हैं।" चारुदत्त उसके उक्त कथन से प्रभावित हुआ उसको 'म त संजीवनी' की संज्ञा प्रदान करता है। नाटक के अन्त में उसे आर्यक द्वारा 'कुलवधू' के पद से अलंक त किया जाता है, जिसे स्वीक त कर वह अपने को धन्य समझती है।

वास्तव में यदि देखा जाये तो वसन्तसेना का चरित्र कालिदास की शकुन्तला तथा भवभूति की सीता से भी बढ़ कर प्रतीत होता है। वह 'मालती-माधव' की मालती की तरह परतंत्र बालिका नहीं है और 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' की शकुन्तला की तरह भोली कुमारी भी नहीं है। उसका साम्य यदि कुछ है तो 'विक्रमोर्वशीय' की उर्वशी से। किन्तु यह उर्वशी जितनी विलासिनी प्रतीत नही होती। इसका जीवन तो त्याग से पूर्ण है। उर्वशी का प्रेमी एक महान् राजा है जबकि वसन्तसेना के हृदय का स्वामी एक निर्धन ब्राह्मण। वास्तव में बुद्धिमत्ता, प्रत्युत्पन्नमतित्व और शालीनता में भी वह उर्वशी से बढ़कर संपूर्ण रूप से देखने पर यह सम्पूर्ण संस्क त साहित्य में एक अद्वितीय चरित्र है।

मैत्रेय-विदूषक

श ंगार रस वाले नायक के सहायकों में 'विदूषक' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्क ति लक्षण ग्रन्थों में विदूषक के विषय में जो लिखा गया है उनमें प्रायः समानता है तथा सभी ग्रन्थकारों ने विदूषक को हास्य रस के उत्पादक के रूप में माना है। विश्वनाथ के अनुसार 'किसी फूल अथवा वसंतादिक पर जिसका नाम हो, जो अपने कार्य, देह, वेष, भाषा इत्यादि से हंसाने वाले हो, दूसरों के लड़ाने में आनन्द लेता हो और अपने मतलब के कार्यों में निपुण तथा चतुर हो, वह विदूषक कहलाता है। धनंजय ने अन्य विशेषताओं का उल्लेख न करके स्पष्ट रूप से उसे नाटक के मजाकिया पात्र के रूप में बताया है।

म च्छकटिक का चारुदत्त वणिग् नायक है और मैत्रेय उसका विदूषक है। मैत्रेय का विनोद हाजिर-जवाबी है साथ ही गणिकाओं की वह अत्यधिक हंसी उडाता है। लेकिन मैत्रेय को शठ नहीं कहा जा सकता है ? और बाह्य रूप या वेश की कुरूपता मैत्रेय में होना भी असाधारण वैशिष्ट्य नहीं है। सभी नाटककारों ने शारीरिक विक ति और पर्याय से वेश की विचित्रता को विनोद निर्मिति का एक आवश्यक अंग मानकर अपने विदूषक में उसका प्रयोग किया है। अतः उसी के अनुरूप 'म च्छकटिक' के विदूषक मैत्रेय में भी शारीरिक विक ति का गुण विद्यमान है। शकार के

शब्दों में उसका सिर कौवे के पैर जैसा है। न केवल शकार अपितु वह स्वयं भी अपने सिर को ऊंट के घुटने का उपमा देता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परम्परानुसार म च्छकटिक का विदूषक भी असुन्दर है।

मैत्रेय जन्म से ब्राह्मण है अतः वह वैदिक मंत्रों तथा यज्ञादि धार्मिक क्रियाओं का जानकर है। परन्तु वह अन्य कुछ विदूषकों की तरह खाली पंडिताई का स्वांग तथा अर्थहीन बडप्पन की बातें नहीं करता। यह अवश्य है कि उसकी बातों में ब्राह्मण होने के कारण इन बातों का कई बार स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है। उदाहरण के रूप में जब वह वसन्तसेना के चबूतरे पर ऊंघने वाले द्वारपाल को देखता है तो उसे श्रोत्रिय की उपमा प्रदान करता है। संस्क त पढ़ने वाली स्त्री और काकली गाने वाले पुरुष को देखकर उसे हंसी आती है, तथा वह उन दोनों पर टिप्पणी करते हुये कहता है कि 'जिस प्रकार नाक में नथिया डालने पर गायें सूं सूं करती है, उसी तरह संस्क त पढ़ने वाली स्त्री रटती रहती है, और कोमल आवाज में गाने वाला पुरुष, सूखे फूलों की माला पहने हुये और मंत्र जपने वाले बूढे पुरोहित के समान प्रतीत होता है।" वसन्तसेना के महल में पर्यटन का अवसर प्राप्त कर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है तथा अपने भाग्य की सराहना करता है कि 'रावण जैसे पराक्रमी राजा को पुष्पक विमान की प्राप्ति के लिये कडी तपस्या करनी पड़ी थी, लेकिन उसे बिना परिश्रम के वसन्तसेना के स्वर्गतुल्य प्रासाद में अकड़ कर घूमने को मिला है।"

यद्यपि मैत्रेय यज्ञविधि, जप-तप आदि का ज्ञाता है परन्तु इन क त्यों में उसे कोई विशेष रुचि नहीं है। यही कारण है कि चारुदत्त द्वारा मात देवियों के बलि चढ़ाने के लिये कहने पर वह प्रतिवाद करता हुआ कहता है कि "जब इस प्रकार पूजा करने पर भी देवता चारुदत्त के ऊपर प्रसन्न नहीं होते तब समस्त पूजा-अचर्ना व्यर्थ है।" इसी संदर्भ में वह आगे कहता है कि 'मुझ ब्राह्मण की समस्त क्रियायें विपरीत ही प्रतिफलित होती हैं, जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित अंग विपरीत दिखाई पड़ते है।"

मैत्रेय को ब्राह्मण होने से अपनी स्थिति को हमेशा ध्यान रहता है। यही कारण है कि वर्धमानक द्वारा उसे चारुदत के पैर धोने के लिए कहने पर वह झट से उछल कर कहता है - "यह सेवक है इसलिए उसका पानी लाना ठीक है। लेकिन मुझ जैसे ब्राह्मण को दूसरे के पैर धोने के लिए यह कहता है, इसका तात्पर्य क्या?" इस प्रकार ब्राह्मण होने का गर्व उसमें पर्याप्त मात्रा में हैं।

संस्क त नाटकों के अन्य विदूषकों की भांति उक्त प्रकरण का विदूषक भी भोजनप्रिय व पेटू है। नाटक के प्रारंभ में सूत्रधार यही जानकर उसे भोजन हेतु आमन्त्रित करता है। यद्यपि मैत्रेय आमंत्रण को अस्वीकार कर देता है, क्योंकि पहले से ही उसे दूसरा निमंत्रण मिल चुका है, तथापि चारुदत्त के पुराने वैभव के दिनों में अपने खाये हुये सुगन्धित एवं मनोरम मोदकों तथा नानाविध व्यंजनों के स्मरण से वह व्यथित होता है। चतुर्थ अंक में जब वह वसन्तसेना के प्रासाद के विभिन्न प्रकोष्ठों को देखता है तब वह आश्चर्य की मुद्रा में दिखाई देता है। महल के वैभव को देखकर मैत्रेय की आंखें चौंधिया जाती हैं। लेकिन यह वैभव और शोभा देखते हुये मैत्रेय जब रसोईघर के पास पहुंचता है तब सचमुच उसकी लार टपकने लगती है। हिंगु तैल की गंध, अनेक प्रकार की सुरभियों से सुगधित धूप की गंध, खाद्य द्रव्यों की गंध तथा मोदकों एवं मालपूओं की छटा उसे अत्यन्त उत्सुक बना देती है और उसका चित्त उन्हें चखने के लिए तरसने लगता है। यह सब देखकर वह कह उठता है - "हा ! हा! वसन्तसेना का घर प्रत्यक्ष स्वर्ग है।"

वसन्तसेना की स्थूलकाय विस्तीर्ण उदर वाली माता को देखकर उसे ईर्ष्या होती है तथा वह कहता है कि उसे वैसा ही मधुर एवं स्वादिष्ट भोजन भर पेट मिलता, चाहे भले ही वह भी "चौथिया" रोग

से पीडित क्यों न हो जाता। वह जब तक वसन्तसेना के महल में रहता है तब तक उसके मन में यही इच्छा बनी रहती है कि कोई उसे आकर भोजन के लिए आग्रह करे। लेकिन ऐसी भलाई कोई भी नहीं दिखाता और मैत्रेय की इच्छा मन ही मन में रह जाती है। वसन्तसेना के घर का यह आतिथ्यहीन व्यवहार उसके मन में हमेशा के लिए घर कर रह जाता है। इस प्रकार मैत्रेय के भोजन प्रेम में लोभी व त्ति होने के साथ साथ उसमें करुणा की भावना भी छिपी हुई हैं। उसके शब्दों में हास्य तत्त्व होने के बावजूद भी उनके पीछे करुणा की भावना अवश्य विद्यमान है।

अन्य विदूषकों की भांति मैत्रेय भी भीरू प्रक ति का है। वह भीरूपन के कारण अन्धेरे में दीप चढाने के लिए अकेले घर से बाहर भी निकलना पसंद नहीं करता, इस कार्य के लिये वह रदनिका को साथ लेकर जाता हे। वसन्तसेना को रात्रि में घर पहुंचाने के लिये भी वह इसलिये ही तैयार नहीं हुआ क्योंकि उसे इस बात का डर था कि वह कुत्ते के समान बाहर मार न दिया जाय। इस प्रकार भय की भावना मैत्रेय के अन्तःकरण में गहरी जमी हुई है। यह सब कुछ होते हुये भी समय आने पर वह भय के घेरे से बाहर निकलकर साहस का परिचय देता है। नवम अंक में न्यायधीश के सन्मुख जिस साहस के साथ उसने न्यायाधीश तथा शकार को लताडा है वह वस्तुतः प्रशंसनीय है।

भीरूपन के साथ साथ मैत्रेय को कुछ विद्वानों ने मूर्ख भी सिद्ध करने का प्रयास किया है। अपने मत की पुष्टि में इन विद्वानों ने दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं - प्रथम, चेट कुम्भीलक द्वारा बुझाई गई पहेली को उसका नहीं समझना तथा द्वितीय दुर्दिन की वर्षा में वसन्तसेना के चारुदत्त से चिपक जाने का गलत अभिप्राय ग्रहण करना। जहां तक कुंभीलक द्वारा बुझाई गई पहेली और मैत्रेय द्वारा उसके न समझने का सम्बन्ध है, वह सब कुछ नाटककार द्वारा वांछित योजना का परिणाम ही है, मैत्रेय की मूर्खता प्रमाणित करना वहां नाटककार को अभिप्रेत नहीं है। शूद्रक ने इस स्थल में जो मैत्रेय को चारुदत्त से प्रश्नों के उत्तर पूछने तथा थोडा सोचने का अवसर प्रदान किया है, वह केवल रंगमंच पर हास्य-विनोद के कुछ क्षीण छींटे बिखेरने के लिये न कि मैत्रेय की मूर्खता का निरूपण करने के लिये। जो व्यक्ति नितान्त सटीक तथा विस्मयकारक उपमाओं की योजना कर सकता है और जो ज्ञान की ऊंची बातें कर सकता है धन की क्षण भंगुरता इत्यादि, वह यह नहीं जानता हो कि आम्रव क्ष में मंजरियां कब लगती हैं अथवा यह कि 'वसन्त' और 'सेना' शब्दों को कैसे जोड़ा जाये जबकि वह कुंभीलक को भी पहचानता है और वसन्तसेना के अभिसार का संवाद भी स्वयं ला चुका है - वह सम्पूर्ण स्थिति विश्वसनीय एवं स्वीकार्य नहीं है।

यह अवश्य स्वीकार्य है कि नाटक में मैत्रेय ने दो बड़ी भूलें की है। परन्तु भूल होना मानव के लिये कोई अस्वाभाविक बात नहीं। भूल तो मर्यादा पुरुषोत्तम राम से भी हुई थी। दो भूलों में प्रथम नींद में बड़बड़ा कर उसने आभूषण की चोरी कराने में सहायता पहुंचाई है और द्वितीय न्याय-मण्डप में शकार से झगड़ा कर आभूषणों को भूमि पर गिरा दिया है जिसमें चारुदत्त के प्राण गहन संकट में पड़ गये हैं। परन्तु इन गलतियों से उसकी मूर्खता का द्योतन नहीं होता। नीदं में बडबड़ा उठना व आभूषणों का गिर जाना दोनो ही गलतियां ऐसी है जो कि अनजाने में हुई है। वह व्यक्ति जो चारुदत्त के लिये अपने प्राण तक भी न्यौछावर करने को तैयार हो, भला वह जानकर आभूषणों को ऐसे समय में कैसे गिरायेगा जबकि उनके कारण उसे फांसी दी जा रही है। यदि इसे गलती न कह कर 'होनहार' कहा जाये तो और भी उपयुक्त होगा। ऐसा होना था, इसलिये हुआ, मैत्रेय को तो उसमें दोष का भागी और बनना पड़ा। इसी प्रकार रात्रि में बड़बड़ा उठना मैत्रेय का स्वयं को दोष व उसकी मूर्खता नहीं अपितु नाटककार को अपने नाटक को आगे बढ़ाना था इसलिये ऐसा जानकर मैत्रेय द्वारा उसने करवाया है - क्योंकि विदूषक होने के कारण ऐसा करने के लिये

उपयुक्त पात्र है।

मैत्रेय मूर्ख न होकर चतुर एवं सूक्ष्म दुष्टि रखने वाला है। उसने नाटक में जो समय समय पर उपमायें दी हैं वे बहुत ही सटीक, विचित्र तथा आकर्षक हैं। दीपक को जलते हुये प्रायः सभी ने देखा है परन्तु मैत्रेय की सूक्ष्म द ष्टि का एक अनुभव देखिये - "यूप काष्ठ में बांधने के लिये लाये हुये बकरे के समान यह दीपक फुर-फुरा रहा है।" बकरे का फुरफुराना जिसने देखा है वह इस उपमा की सार्थकता से चमत्क त हो जायेगा। वसन्तसेना और चारुदत्त के परस्पर झुक कर अभिवादन करने के द श्य के सिर ऐसे मिल रहे हैं जैसे कमल केदार धान के दो गुच्छे मिल रहे हों।" इस प्रकार का विचित्र साद श्य ढूंढना किसी मूर्ख के लिये संभव नहीं को सकता।

मैत्रेय की सूक्ष्म बुद्धि का परिचय वहां भी मिलता है जहां उसने व्यंग्यात्मक शैली में वसन्तसेना की माँ व भाई पर तीखे प्रहार किये हैं। वसन्तसेना की माता की अति विशाल तोंद देख कर मैत्रेय से नहीं रहा जाता तथा वह समीपवर्ती दासी से पूछ बैठता है - "जिस तरह महादेव की पिण्डी स्थापना करके फिर मन्दिर की दीवारें खड़ी की जाती हैं, क्या उसी तरह पहले इन्हें कमरे में अन्दर रख कर फिर दरवाजे तैयार किये गये हैं? दासी द्वारा यह कहने पर कि माँ का स्वास्थ्य ठीक नहीं है, बीमारी के कारण उनकी ऐसी अवस्था हो गई है।" मैत्रेय फिर अपनी कोमलकान्त पदावलि के माध यम से मधुर चुटकी सी लेता है - "इसके मर जाने पर इसके शरीर से कम से कम एक हजार गीदड़ों का पेट भर जायेगा।"

व्यंग्य करने में मैत्रेय की भोली आकृति भी अत्यधिक सहायक सिद्ध होती है। वसन्तसेना के यहां सम्पत्ति देख कर पहले वह यह सोचता है कि समुद्र पर उनका बड़ा व्यापार चलता होगा। लेकिन तुरन्त भोलेपन का स्वांग करके अपनी गलती को ठीक करते हुये कहता है - "पागल की तरह मैं क्या सोच रहा हूं। मदन रूपी समुद्र से प्रेम रूपी निर्मल जल पर तैरने वाले स्तन, जघन और नितम्ब ये ही तुम्हारे मनोहर जहाज हैं। कितना सुन्दर रूपक रचा है मैत्रेय ने जो कि किसी सामान्य बुद्धि के पात्र का कार्य नहीं हो सकता।

मैत्रेय के उक्त कथन से यह भी प्रमाणित होता है कि उसे सम्पत्ति से घ णा है। इस घ णा का कारण उसका स्वयं का आखों देखा अनुभव भी है जो उसने अपने मित्र चारुदत्त के यहां देखा है। चारुदत्त के निर्धन हो जाने पर उसके उद्‌गारों को सुन सुनकर उसके ह्रदय में सम्पत्ति के प्रति घ णा का भाव पूर्ण रूपेण जड़ जमा गया है। मैत्रेय की द ष्टि में सम्पत्ति तुच्छ है, नाशवान् है। उसे यह भी अनुभव है कि सम्पत्ति वैभव युक्त मानव का ह्रदय कोमल व दया से युक्त नहीं हो सकता। उसे इस प्रकार का अनुभव गणिका वसन्तसेना के यहां होता है, जहां पर उसे पानी पीने के लिए भी नहीं पूछा जाता। चाहे वसन्तसेना के यहां कितना ही वैभव क्यों न था परन्तु मैत्रेय की द ष्टि में वह सब तुच्छ है। क्योंकि इतना विशाल वैभव होते हुये भी वह उसका स्वागत नहीं करती, मेहमानदारी के रूप में उसके सामने पानी का प्याला भी नहीं रखती, यहां तक कि उदारता व अतिथिभाव दिखाने हेतु दो शब्द भी नहीं कहती। निर्धन कम से कम शब्दों के तो उदार होते ही हैं परन्तु धनिकों के पास वह भी नहीं होता।

यह तो हुये सम्पत्ति के विषय में मैत्रेय के विचार। इसके साथ ही गणिका व वेश्या जीवन को भी वह निन्दनीय मानता है। गणिका पर उसका सीधा आक्षेप इस प्रकार है "गणिका जूते के अन्दर घुसा हुआ कंकड है, जो निकालते समय भी चुभता ही है।" चारुदत्त के साथ रहते हुये तथा यह जानते हुये भी कि वह वसन्तसेना से प्यार करता है, मैत्रेय का विचार परिवर्तित नहीं होता, वह जब भी समय पाता है अपने मित्र चारुदत्त को गणिका का संसर्ग छोडने की सलाह देता है।

वसन्तसेना चारुदत्त के यहां अभिसार करने आती है। चारुदत्त मित्र मैत्रेय को उसे रथ से उतारने हेतु कहता है - परन्तु मैत्रेय गणिका को उतारने में अपना अपमान समझते हुए कहता है -"क्या इसके पैर किसी ने बांध रखे हैं जो अपने आप उतरते नहीं बनता ?" आगे इसी क्रम में वह वसन्तसेना को फिर पूछ बैठता है -"आज रात को यहीं सोने का आपका लक्ष्य दिखाई देता है।" इससे अधिक स्पष्ट भाषण और क्या हो सकता है। वह एक बार पुनः इसी प्रसंग के अन्तर्गत अपने गणिका सम्बन्धी द ष्टिकोण को प्रस्तुत करता है - "बिना मूल की बढ़ने वाली कमल-लता, न ठगने वाला व्यापारी, सोना न चुराने वाला सुनार, बिना झगड़े की बस्ती और लोभ रहित गणिका का इस संसार में मिलना असंभव है।"

मैत्रेय का यह कथन वास्तव में एक शाश्वत सत्य है जो कि जीवन के कटु अनुभवों को प्राप्त किया हुआ व्यक्ति ही कह सकता है, साामन्य जन नहीं। इस प्रकार सम्पत्ति व गणिका दोनों के विषय में मैत्रेय की सूक्ष्म बुद्धि का परिचय हमें प्राप्त हो है।

उक्त चारित्रिक विशेषताओं के अतिरिक्त सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चारुदत्त के प्रति उसका अपार प्रेम है। सुख व दुःख दोनों अवसरों पर साथ रहना तथा मैत्री निभाना उसके जीवन की एक अनुपम विशेषता है। चारुदत्त के दरिद्र हो जाने पर भी वह उसके साथ उसी निष्ठा व प्रेम से रहता है जैसा कि वह उसके वैभव युक्त दिनों में रहता था। परिस्थितियों से ऊबकर वह चारुदत्त की आज्ञाओं का उल्लंघन करने के लिए अनुप्राणित अवश्य होता है परन्तु जब यह देखता है कि यह चारुदत्त की आन्तरिक इच्छा है, तब वह अपनी भावनाओं को दबाकर अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करता है। उदाहरणार्थ, वसन्तसेना का मैत्रेय को विश्वास नहीं, वह उसका मुख देखने के लिए भी संतुष्ट नहीं, फिर भी चारुदत्त की आज्ञा होने पर वह वसन्तसेना के अलंकार वापस करने उसके घर जाने के लिए बिना किसी विरोध के तैयार हो जाता है।

आज्ञा पालन के साथ-साथ समय-समय पर वह निर्धनता से चारुदत्त के शोकमग्न होने पर उसे धैर्य एवं सांत्वना भी प्रदान करता है। वह उसे यह भी सांत्वना प्रदान करता है कि वे फिर से उसी प्रकार सम्पन्नावस्था में होंगे। वह हर संभव ऐसा प्रयास करता है जिससे कि चारुदत्त की भावनाओं पर कोई आघात न पहुंचे। उदाहरणार्थ रदनिका का जब शकार द्वारा अपमान होता है तब मैत्रेय उससे अनुरोध करता है कि वह इस घटना की सूचना आर्य चारुदत्त को न दे, क्योंकि चारुदत्त उससे और दुःखी होगा।" इस प्रकार चारुदत्त की दरिद्रता तथा वेश्याप्रेम के बावजूद, मैत्रेय की उसके प्रति निष्ठा तथा आदर भावना में रंचमात्र की कमी नहीं होने पाई है।

वसन्तसेना की हत्या को मिथ्यारोप आर्य चारुदत्त के ऊपर लगाया जाना सुनते ही वह आधे रास्ते से झट से उस ओर दौड़ता जाता है। न्यायालय में पहुंचा हुआ साक्षी प्रमाण सम्बन्धी तमाशा देखकर जैसे ही उसे सात्त्विक क्रोध आता है, वैसे ही उसका भोला अन्तःकरण उमड़कर आता है। वह न्यायालय सम्बन्धी समस्त मर्यादाओं का कोई ध्यान न रखते हुये आवेश पूर्ण स्वरों में न्यायाधीश से इस प्रकार पूछता है -"हे सभ्यगण ! जिसने निर्धनों के लिए भवन निर्माण, बौद्ध भवन, उपवन, देव-मन्दिर, कूप, तालाब एवं यज्ञस्तम्भों से उज्जयिनी नगरी को विभूषित किया, वह निर्धन होकर कलेवा जैसे तुच्छ धन के निमित्त इस प्रकार अकार्य करेगा ?" वइ इतना कह कर ही चुप नहीं हो जाता अपितु शकार को फटकारते हुये पुनः कहता है - "अरे कुलटा के पुत्र, राजा के साले, संस्थानक, उच्छ ंखल, जनता का अपराध करने वाले भाण्ड, बहुत से सुवर्ण से आभूषित बन्दर, मेरे सामने कहो-कहो।" उसे अपने मित्र पर पूर्ण भरोसा है कि वह इस प्रकार का कुकृत्य नहीं कर सकता। इसीलिये चारुदत्त की उदारता को प्रदर्शित करते हुये शकार को वह पुनः कहता है - "जो मेरा प्रिय

मित्र पुष्पित माधवीलता को झुकाकर कुसुम-चयन नहीं करता, वह दोनों लोकों के प्रतिकूल यह कर्म कैसे कर सकता है ?"

मैत्रेय के इस उत्स्फूर्त भाषण में न्याय-प्रियता, तर्क-शुद्धता, विनय, भावना-प्रकर्ष और करुणायुक्त क्रोध आदि अनेक बातों का अभूतपूर्व मिलन हुआ है। अंतःकरण की शुद्ध उर्मि से निकला हुआ, इतना तेजस्वी और करुणा से लथपथ वक्तव्य शायद ही कहीं देखने को मिलेगा। वह मूर्ख विदूषक न्याय और मानवता की और से इतनी शूरता और सूझता की वकालत करेगा, ऐसा किसको लगा था।"

परन्तु डा० रमाशंकर तिवारी द्वारा मैत्रेय के उक्त आचरण को विवेक हीन बताना उचित प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः एक मित्र के प्रति विदूषक के ये मानसिक व अन्तरात्मा के उद्‌गार हैं जिनका कि ऐसे समय में प्रकट होना स्वभाविक था। ऐसे समय पर मानसिक संतुलन खो देना भी कोई विस्मयात्मक बात नहीं कही जायेगी। अपने परम मित्र पर ऐसा अन्याय देखकर उसका हृदय क्रोध से भर आया है तथा वह क्रोध से पागल बना हुआ सामान्य मानव के समान प्रतिद्वन्द्वी शकार पर टूट पड़ता है। न्यायालय की सभ्यता और गाम्भीर्य का उसे उस समय कुछ भी ध्यान नहीं रहता। वह क्रोधावेश में शकार को लाखों गालियाँ देता है तथा अपनी कुटिल लाठी को उठा कर न्याय-सभा में वह शकार पर हमला करता है, परन्तु दुर्भाग्य चारुदत्त का कि अनजाने में ऐसी दुर्घटना होती है कि उसका परिणाम उसे भोगना पड़ता है। मैत्रेय को इसके लिये दोषी ठहराना तथा उसके इस कृत्य को मूर्खतापूर्ण कृत्य की संज्ञा देना उचित नहीं कहा जा सकता।

राजश्याल-संस्थानक

राजश्याल संस्थानक एक विचित्र पात्र है। समूचे संस्कृत साहित्य में ऐसे चरित्र का मिलना प्रायः असंभव है। वह प्रस्तुत प्रकरण का प्रतिनायक है। उसकी मनोव त्तियां हिंसालु तथा प्रेरणायें पाशविक हैं। उसके हृदय तथा वाणी में एक प्रकार की कुटिलता है। उसका चरित्र अत्यन्त घ णास्पद है। वह प्रथम श्रेणी का मूर्ख है। उसकी मूर्खता उसकी पाशविक धूर्तता के द्वारा स्पष्ट है, वह अपनी शक्ति एवं डांट-डपट के द्वारा प्रणय करना चाहता है। शकार द्विविधाओं व विरोधों का एक समूह है जो कि जितनी भ्रमकारी हैं उतनी ही भयंकर भी। वह दुष्ट दम्भी, दुर्विनीत एवं दुराचारी है।

उसकी वाणी की भी एक प्रमुख विशेषता है, जिसके कारण संस्थानक के स्थान पर उसका उपनाम 'शकार' पड़ा है। वह प्रायः 'स' के स्थान पर 'श' का उच्चारण करता है। उदाहरणार्थ वह वसन्तसेना को वशन्तशेना कहता है। इसके साथ ही एक ही प्रसंग में वह अनेक समानार्थक शब्दों के प्रयोग का भी शौकीन है। वसन्तसेना की भ्रांति में रदनिका के केश पकड़ कर वह केवल 'केश' शब्द का प्रयोग करके ही संतुष्ट नहीं होता अपितु 'बाल व शिरोरूह' शब्दों का प्रयोग भी करता है। वैसे ही भागती वसन्तसेना को रोकते हुये वह 'मदन' अनंग' मन्मथ' प्रस्खलन्ती' स्खलन्ती' जैसे पर्यायों का एक ही स्वर में कथन करता है। इसी प्रकार वसन्तसेना के दौडने के लिए 'यासि' धावसि 'पलायसे' का प्रयोग भी द ष्टव्य है। अपनी प्रशंसा हेतु वह अपने को 'देवपुरुष, मनुष्य तथा वासुदेव' एक ही सांस में कह जाता है। वसन्तसेना के लिए उसने दस नाम रखे हैं। ऐसा जान पड़ता है जैसे वह इन नामों में इन्द्रजाली प्रभाव का अधिष्ठान मानता है। साथ ही वह शब्द सम्बन्धी अपनी विद्वत्ता भी प्रदर्शित करना चाहता है।

संस्थानक अपने मूर्खतापूर्ण भाषणों में रामायण, महाभारत इत्यादि महाकाव्यों एवं कथा-पुराणों के पात्रों की विनियोजना करता है। परन्तु जिस प्रकार से वह पात्र-नियोजन करता है - वह बड़ी

ही विचित्र है। वह ऐसे पात्रों की नियोजना करता है जिनका कि पारस्परिक कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। उसकी यह योजना सदैव अनर्गल एवं विकृतिपूर्ण होती है। उदाहरणार्थ वह वसन्तसेना से कहता है - "तू इस समय मेरे वश में वैसे ही आ गई, जैसे रावण के वश में कुन्ती आ गई थी।" ००००० तू राम से ड़री द्रौपदी के समान क्यों भाग रही है ? .... क्या भीमसेन तुम्हारी रक्षा कर सकता है अथवा परशुराम या अर्जुन या रावण ?" इसी प्रकार के अन्य भी उदाहरण हमें प्रकरण में देखने कोमिलते हैं।

प्राचीन कथाओं तथा काव्यों से लिये गये ये उल्लेख स्पष्ट ही विकृत एवं प्रमादपूर्ण हैं। उपर्युक्त सभी कथनों में असंभव सम्बन्धों की स ष्टि की गई है। वस्तुतः ये सभी प्रयोग शकार उस स्थिति में करता है जब कि वह एक प्रमदा को अपने वश में करना चाहता हे, उस प्रमदा को जिसके कि हृदय में उसके लिये कोई स्थान नहीं है, अपितु वह उसके लिये एक तुच्छ प्राणी है। वह हमेशा उसका अपमान करती रही है। परन्तु शकार उसके पीछे पागल बना हुआ है। शकार का अनुमान उसके विषय में गलत बना हुआ है, वह उसे वेश्या समझता है तथा उसके अपने ऐश्वर्य के लोभ द्वारा अपने वश में करना चाहता है। वह उसे किसी भी प्रकार परेशान करना चाहता है तथा किसी भी प्रकार से उसे अपनी बनाना चाहता है। उसकी मानसिक स्थिति विकृत हो चुकी है, तथा कामाग्नि का वह पूर्ण रूपेण शिकार बन चुका है, किसी भी कीमत पर वह अपनी कामाग्नि शान्त करना चाहता है - उसकी इस अवस्था का चित्रण इस कथन में हुआ है - "क्यों जाती है ? क्यों दौड़ती है ? क्यों गिरती हुई भागती है? हे बाले ! प्रसन्न हो। मरने की शंका छोड दो तनिक ठहर ! अग्नि राशि में पड़े मांस के समान मेरा क्षुद्र हृदय काम से जल रहा है।" इस प्रकार वह कामाग्नि से जल रहा है उसके अन्तर्मन में एक आग प्रज्वलित हो रही है।

कामाग्नि के साथ-साथ उसकी जठराग्नि भी उग्र रूप से प्रकट हुई है। वह खाऊ और भोजन-भट्ट है। उसकी इच्छा हमेशा तरह तरह के भोजन करने की रहती है। न केवल वह नाना प्रकार के व्यंजनों का भोग ही करता है अपितु उनके आस्वाद को सुरक्षित किस प्रकार रखा जा सकता है, इसकी भी उसे विस्त त जानकारी है। मैत्रेय से चारुदत्त को वसन्तसेना के विषय में चेतावनी देते हुये वह भोजन शास्त्र से यह द ष्टान्त देता है - "गोबर से लिपी ड़ाली वाला कुष्मांड, सूखा साग, तला हुआ मांस तथा हेमन्त ऋतु की रात में पकाया हुआ भात ये सब बहुत समय बीतने पर भी खराब नहीं होते।" स्वर को मधुर किस प्रकार बनाया जा सकता है, इसके लिये वह नुस्खा बताता है - वह विट से कहता है - मैं गायक क्यों न होऊँ ? हींग के संयोग से उज्ज्वल जीरा, मोथा, बच की गांठ तथा गुड से मिली सोंठ इन सभी के मेल से बने हुये गंध योग का मैंने सेवन किया है। मेरे स्वर में मधुरिमा क्यों नहीं आये ? ....मैंने हींग से सुवासित तथा मरीच के चूर्ण से युक्त, तेल और घी में बघारा हुआ कोयल का मांस खाया है। अतः मेरा स्वर मधुर क्यों न होवे ?" शकार के उपर्युक्त कथनों से उसकी स्वाद लोलुपता स्पष्टरूपेण प्रकट होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शकार न केवल काम पिपासु ही है अपितु इसके साथ साथ स्वाद लोलुप भी है। ऐसा लगता है मानो जिह्वा त ष्णा और काम त ष्णा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी काम रूपी भूख को शान्त करने के लिये वह वसन्तसेना का पीछा एक पागल की तरह करता है। तथा इसमें भी संदेह नहीं कि उसने एक सभ्य नागरिक के रुप में वसन्तसेना के प्रणय को प्राप्त करने की इच्छा हेतु एक गाडी तथा बहुमूल्य भेंट भी भेजी है। परन्तु वह प्रणय जिस ढंग से करना चाहता है वह ढंग अमानवीय है। वह उद्देश्य की शीघ्र प्राप्ति में विश्वास रखता है, धैर्य नाम की कोई वस्तु उसमें नहीं है। वह कामान्ध है, तथा उसकी कामुकता इतनी गहरी एवं अमर्यादित है कि वह राजपुरुष होते हुये भी वेश्या युवती के शीलभंग का स्पष्टरुपेण प्रयत्न करता है। वस्तुतः वह प्रेम

के मर्म को नहीं जानता है तथा वासना की परितुष्टि ही उसका परम लक्ष्य है। उसने कभी भी शान्त हृदय से वसन्तसेना के विषय में नहीं सोचा, तथा हमेशा ही उसे गलत समझा। उसके पास वास्तव में हृदय है ही नहीं। वह केवल काम से संतप्त है तथा येन-केन-प्रकारेण अपनी कामाग्नि शान्त करना चाहता है। प्रेम की स्निग्धता एवं सुकुमारता का वह कायल नहीं है। शायद वह अपनी क्षुधा शान्त करने हेतु शिष्ट उपचारों की उपादेयता में विश्वास न रख कर तात्कालिक क्रिया में विश्वास रखता है। स्वभाव से दम्भी एवं दुर्विनीत होने के कारण वह इस आदर्श के पालन को महत्व देता है - "ललचाओ, फुसलाओ गणिका मान जाय तो अच्छा ही है, अन्यथा, निरन्तर ताक में रहो, खदेड़ो, पकड़ो, धमकाओ और मिल जाय तो वासना की आग को भर पूर बुझा लो।" वह अशिष्ट उपचारों तथा डराने धमकाने में अधिक विश्वास रखता है। यही कारण है कि वह अपने साथियों सहित सड़क पर उसका पीछा करता है। वास्तविकता यह है कि वह शक्ति तथा धन के मद में अन्धा है, तथा तलवार के बल पर प्रणय करना चाहता है। उसे यह मालूम नहीं कि किसी का हृदय किस प्रकार जीता जा सकता है, वह प्रणय के मैदान में अभी नौसिखिया सा द ष्टिगत होता है।

शकार की एक अन्य विशेषता उसका आत्माभिमानी होना है। वह दम्भी है, किन्तु कायर है। वह अपने आप को देव पुरुष और वासुदेव समझता है। इसके साथ ही उसे इस बात का भी पूर्ण गर्व है कि वह राजा का साला है, जहां भी अवसर मिलता है वह इसे कहने में नहीं चूकता है। वह अपने 'राजश्याल' होने का परिचय अपनी एक विशिष्ट डींग भरी शैली में देता है। न्याय-मण्डप में जाकर वह न्यायाधीश से अपना अनावश्यक परिचय देते समय, बहन के साथ पिता को भी जोड़ लेता है - "मैं विशाल कुक्कुर कुल में उत्पन्न हुआ हूं। मेरे पिता राजा के श्वसुर हैं, स्वयं राजा मेरे पिता के जामाता हैं मैं राजा का साला हूँ और राजा मेरी बहन के पति हैं।" इस प्रकार के अनावश्यक परिचय वह कई स्थानों पर देता है। यह भी सत्य है कि चेट से लेकर न्यायसंस्था के कर्मचारी एवं अधिकारी तक उसका भय मानते हैं। न्यायालय में जब शोधनक सर्व प्रथम शकार को देखता है तब कम्पित हो उठता है। साथ ही न्यायाधीशों को भी जब यह सूचना मिलती है तब वे व्याकुल हो जाते हैं। न्यायाधीश द्वारा जब सुनवाई के लिए निषेध कर दिया जाता है, उस समय वह अपने को राजा का साला होने की धमकी देता है तथा कहता है कि "वह अपनी बहन के पति राजा पालक से कह कर तथा बहन एवं माता से कह कर न्यायाधीश को पद मुक्त करा देगा।" यह जानकारी जब न्यायाधीश को होती है तब वह भी ड़र जाता है तथा शोधनक से इस प्रकार कह कर उसे वापस बुलवा लेता है - "वह मूर्ख सब कुछ कर सकता है। कह दो, उसके अभियोग पर आज ही विचार होगा।"

इस प्रकार शकार का आतंक सर्व व्यापक है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसकी रक्तशिराओं में शिष्टता, संस्कृति तथा सौजन्य के कीटाणु बिल्कुल ही प्रवाहित नहीं होते। वह राजा का साला है, अतः उसका प्रत्येक अपराध क्षम्य है, ऐसा वह समझता है। इसी कारण, न्यायाधीश के उससे बैठने का अनुरोध करने पर वह उसके मस्तिष्क पर बैठने की बात कहता है। उसके हृदय में चारुदत्त के लिये शिष्टता का कोई स्थान नहीं है। चारुदत्त को आसन दिये जाने पर वह बौखला उठा है। तथा उस पर स्त्री-हत्या का झूठा आरोप लगाता है। यहां तक कि न्यायाधीश के ऊपर धर्म एवं न्याय के नाम पर पक्षपात का आरोप लगाता है।

परन्तु ऐसा सब कुछ होने पर भी वह भीतर से कायर ही है। जीर्णोद्यान में जब स्थावरक गाड़ी लेकर पहुंचता है, तब वह उसमें वसन्तसेना को देख कर भयभीत हो जाता है और उसे राक्षसी समझ कर समस्त धैर्य एवं साहस खो देता है - "मर गये ? मर गये ? गाड़ी पर राक्षसी या चोर बैठा हुआ है।" वस्तुस्थिति यह है कि उसकी बहादुरी असहाय अबलाओं तथा निर्धन सज्जनों तक ही

सीमित है। साथ ही दूसरे के बल बूते पर ही वह सब कुछ करता है। वैसे धमकी देना शक्ति का प्रदर्शन करना उसके स्वभाव का संघटक तत्त्व है। वस्तुतः वह है कायर ही। वसन्तसेना की हत्या करके वह बड़ा प्रसन्न होता है, साथ ही यह भी समझता है कि उसने बड़ी वीरता का कार्य सम्पादित किया है, उसे इस बात का भी बड़ा पश्चाताप है कि काश ! उसकी माता भी उसका यह शूरत्व देखती ? विट को वह यह सूचित करते हुये बड़ा प्रसन्न होता है कि - "मैंने वसन्तसेना को मार डाला।" साथ ही वसन्तसेना को जो कि मूर्च्छित हालत में पडी हुई थी, दिखाता है। परन्तु यह सब कुछ करने पर भी है वह कायर ही। वसन्तसेना को मरी समझ कर वह तत्काल वहां से परकोटे की दीवार को फांद कर भाग जाता है जिसे कि उसे कोई देख न सकें।" इस प्रकार वह आन्तरिक रूप से भीरू ही है।

भीरू होने के साथ ही वह निर्लज्ज भी है। नाटक के अन्त में जब उसकी सारी कलई खुलती है तथा वसन्तसेना को वह जीवित देखता है तो उसकी स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है। वह आर्य चारुदत्त की शरण ग्रहण करता है, उसके चरणों में पड़ कर इस प्रकार दीन भाव से विनती करना प्रारम्भ करता है - **"भो अशरणशरण ? परित्रायस्व।"** यहां तक कि वसन्तसेना से भी क्षमा याचना की है - वह बड़े ही कातर स्वरों में वसन्तसेना से प्रार्थना करता है - **"गर्भ दासी पुत्रि ! प्रसीद प्रसीद ! न पुनर्मारयिष्यामि। तत् परित्रायस्व।"** इस प्रकार उसकी वास्तविकता अन्त में सभी के सामने आ जाती है। वह वस्तुतः कायर ही है, शूरत्व एवं निर्भीकत्व का नकली बाना अवश्य पहन रखा है, जिसका रहस्योद्घाटन अन्त में हो जाता है। यह भी द्रष्टव्य है कि उसमें समयानुकूल बात करने का ढंग भी नहीं है। उसकी भावनायें इतनी कुण्ठित हो चुकी हैं, तथा उसके संस्कार इतने विक त रहे हैं कि वह अन्त में भी जबकि क्षमा याचना का समय है वह वसन्तसेना को 'गर्भदासी-पुत्रि' कह कर ही क्षमा याचना करता है।

क्रूरता एवं कामुकता के साथ साथ एक जो बात हमें उसमें मिलती है वह है उसका कपटी होना। वह प्रथम श्रेणी का धूर्त है। वह किसी भी प्रकार से तथा हर कीमत पर वसन्तसेना को अपने वश में करना चाहता है। यहां तक कि कामाग्नि शान्त करने हेतु वह वसन्तसेना के चरणों में गिर जाता है त्था विनीत स्वरों में इस प्रकार प्रार्थना करता है - 'हे विस्त त लोचने ! हे निर्मल दांतों वाली ! हे मनोहर अंगों वाली ! मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूं। मैंने कामातुर होकर जो तुम्हारा अपमान किया था, उसके लिये अब क्षमा चाहता हूँ। मैं अब तुम्हारा सेवक हो गया हूं।" परन्तु वसन्तसेना पर इन वाक्यों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है, बल्कि प्रत्युत्तर में वह उसे चरणों से मारती है और दुत्कारती है। ऐसी स्थिति जब होती है तब दुष्ट शकार अपनी अंतिम मंजिल पर पहुंच जाता है - वह है वसन्तसेना की हत्या। वह इतना धूर्त है कि हत्या का कार्य स्वयं न करके अन्य से करवाना चाहता है तथा प्रलोभन तक देता है। वह विट से अनुरोध करता है कि इस एकान्त स्थान में वह वसन्तसेना को मार दे क्योंकि वहां ऐसा करते हुये उसे कोई नहीं देख रहा है। इसके बाद वह चेट को विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देता है, परन्तु दोनों के साथ जब वह विफल हो जाता है तब स्वयं इस न शंस कार्य को करने हेतु कटिबद्ध होता है। वह सर्वप्रथम उसे एकान्त स्थान जानकर विभिन्न प्रकार के भय इत्यादि दिखाता हे, तथा कई तरह की धमकियाँ देता है। परन्तु वसन्तसेना द्वारा बार-बार चारुदत्त को ही अपना प्रणयी स्वीकार करने व उसे खरे-खोटे शब्द कहने पर वह बौखला उठता है तथा चारुदत्त को विभिन्न प्रकार के अपशब्द कहते हुये अन्त में उसका गला दबा देता है। उसे जब तक सन्तोष नहीं मिलता तब तक कि वह मूर्च्छित होकर प थ्वी पर नहीं गिर जाती। फिर भी उसकी मनोकामना अधूरी ही रह जाती है। उस दुष्ट की धूर्तता व क्रूर कापटिकता पराकाष्ठा पर तब पहुंचती है जबकि वह निर्दोष चारुदत्त पर उस हत्या का असत्य आरोप लगा कर न्यायालय

में झूठा अभियोग प्रस्तुत करता है। चारुदत्त को म त्युदण्ड दिला कर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है तथा उस दिन विशिष्ट भोजन ग्रहण करता है। वह इतना निर्दयी हृदयहीन एवं हत्यारा है कि चारुदत्त के साथ उसके पुत्र रोहसेन को देखकर दोनों को मारने हेतु जल्लादों से कहता है। दया दाक्षिण्यादि गुणों का उसके हृदय में कोई स्थान नहीं है। वह मानव के रूप में दानव है।

शर्विलक

शर्विलक भी प्रस्तुत प्रकरण में एक महत्त्वपूर्ण पात्र है। प्रासंगिक कथावस्तु का नेता होने से हम उसे नाटक का उप-नायक कह सकते हैं। वह जाति से ब्राह्मण है तथा दान न लेने वाले व चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण का पुत्र है। उसके चरित्र में एक क्रान्तिकारी और प्रेमी के व्यक्तित्व का समन्वय हुआ है। वह अंग्रेजी की इस उक्ति को चरितार्थ करता है कि प्रेम और युद्ध में सब कुछ उचित है।

जहां क्रान्तिकारी के रूप में वह अत्याचारी राजा पालक की हत्या करता है वहां अपनी प्रेयसी मदनिका को दासता से मुक्त कराने के लिए चोरी करना भी बुरा नहीं समझता। वह क्रान्तिकारी दल का नेता है राज्य-विप्लव शक्ति का नेता है, परन्तु राज्यविद्रोह वाला सम्पूर्ण कथानक परदे के पीछे चलता है, अतः शर्विलक के कर्त्तव्य का परिचय दर्शक को प्रत्यक्ष में कम ही हो पाता है। उसके कर्त्तव्य का पूर्ण रूपेण परिणाम दर्शक को नाटक के अन्तिम अंक में ही हो पाता है जबकि वह पालक को मारकर गोपालदारक आर्यक को राज्यगद्दी पर स्थापित करता है। विप्लव का नेता होने से विजश्री उसे ही प्राप्त होती है।

राज्य विप्लव का नेता होने के अतिरिक्त शर्विलक प्रेमी हृदय भी है। वह यद्यपि ब्राह्मण युवक है, परन्तु उसका प्रेम मदनिका से है जो कि वेश्या वसन्तसेना की दासी है। वह उसे दासीत्व से मुक्त करवाना चाहता है और इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु ही वह सन्धिविच्छेद का साहस भी करता है।

सेंध लगाने की विद्या में वह प्रवीण है। सेंध लगाने वाले सम्पूर्ण प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि उसे चोरी की नियमित शिक्षा प्राप्त है तथा वह इस कार्य में अभ्यस्त भी है। उसने सेंध लगाते समय भगवान कनक शक्ति के बताये नियमों का पूर्णतः पालन किया है। वह अनेक प्रकार की सेंध लगाना जानता है जिनमें कि नाटक में उसने पूर्ण कुंभ की सेंध लगाना पसन्द किया है। सेधं लगाते समय जब उसे स्थान को मापने की आवश्यकता पड़ती है तो वह पथभ्रष्ट होकर यज्ञोपवीत का प्रयोग सेंध मापने में करता हैं। वह साहसी इतना है कि सर्प द्वारा अंगुली के काट लिये जाने पर अंगुली को तत्काल यज्ञेपवीत से बांध कर अपने कार्य में लीन हो जाता है। घर में चारों ओर वाद्य यंत्रों को देखकर वह उसे नाट्याचार्य का घर समझता है, तथा मन में यह सोचकर दुःखी होता है कि उसने निर्धन के घर में सेंध लगाई हैं। इसी बीच विदूषक नींद में बडबडाता है, शर्विलक प्रथम उसे मारने के लिए सोचता है परन्तु दूसरे ही क्षण विचार को बदल कर कहता है - "हमारे समान ही दीन इस सज्जन पुरुष को क्लेश देना उचित नहीं है।" इस प्रकार यद्यपि वह प्रणय के वशीभूत होकर चोरी कर रहा है, परन्तु, सज्जनता व उदारता उसके मुख्य चारित्रिक गुण हैं। चोरी करने में भी वह ब्राह्मण का धन एवं यज्ञ की सामग्री को नहीं चुराता है और माता की गोद में बालक का अपहरण नहीं करता है। चारुदत्त को भी दरिद्र समझ कर पहले वह छोड़ कर जाना चाहता है, किन्तु फिर विदूषक द्वारा गौ और ब्राह्मण की शपथ दिलाये जाने पर आभूषणों को ग्रहण करता है।

इस प्रकार मदनिका को दासीत्व से मुक्ति कराने हेतु वह विदूषक के हाथ से आभूषणों को लेकर घर से बाहर निकल जाता है। चौथे-अंक में हम शर्विलक को वसन्तसेना के घर पर मदनिका से मिलने हेतु जाते देखते हैं। उक्त अंक के प्रारम्भ में शर्विलक एक काम-पीडित युवक के रूप में प्रकट हुआ है। वसन्तसेना के घर पर मदनिका को जब वह देखता है तो कामदेव की अग्नि से जलते हुये उसके ह्रदय पर चन्दन का शीतल लेप चढ जाता है।" यहीं पर वह मदनिका से प्रणय के सम्बध में बात करता है तथा कहता है कि वह दरिद्र है और प्रेम के वशीभूत होने के कारण रात को उसने चोरी भी की है। शर्विलक के यह कहने पर मदनिका उसे कहती है कि 'कलेवे के जैसी तुच्छ स्त्री के कारण तुमने शरीर और चरित्र दोनों को ही सन्देह में डाल दिया है। इस पर वह गर्व से कहता है कि "साहस में ही लक्ष्मी निवास करती है।" वह कहता है कि यद्यपि कामदेव ने उसके गुणों को विनष्ट कर दिया है फिर भी वह आत्मसम्मान की रक्षा करने में सतर्क है। वह मदनिका को डाँटते हुये कहता है कि तुम मुझको मिथ्या ही मित्र कहती हो और दूसरे प्रेमी के पीछे जाती हो। इसी प्रसंग में वह स्त्रियों तथा वेश्याओं की तीव्र निन्दा भी करता है।" यह स्पष्ट है कि यद्यपि शर्विलक मदनिका से प्रणय करना चाहता है तथा उसे मुक्त भी करवाना चाहता है परन्तु इतना सब होने पर भी वह अपने आत्मसम्मान को ठेस पहुंचा कर कुछ भी नहीं करना चाहता। वस्तुतः यही एक ऐसा तत्त्व है जो उसे नितान्त विलासी एवं निष्क्रिय नहीं होने देता और वह राज्य-क्रान्ति का सफल नेत त्व करता है।

राज्य-विप्लव के नायक के रूप में शर्विलक का अदम्य साहस एवं त्याग प्रशंसनीय है। प्रणय व मित्रता दोनों में वह मित्रता को प्रधानता देता है। यही कारण है कि नव-प्राप्त प्रेयसी मदनिका को वह रेभिल के घर भेज कर स्वतः क्रान्ति के सम्पादनार्थ चला जाता है। जब चतुर्थ अंक में वह आर्यक के बन्दी होने की घोषणा को सुनता है, तब वह प्रथम थोडा धर्म-संकट में पड़ जाता है, परन्तु दूसरे ही क्षण वह अपने कर्त्तव्य का निर्णय कर लेता है - "संसार में मनुष्यों के लिए मित्र एवं वनिता दोनों अत्यन्त प्रिय हैं। किन्तु इस समय जब मित्र कारागार में पड़ा हो, उसके हितार्थ सैकड़ों सुंदरियां निछावर की जा सकती हैं।"

चतुर्थ-अंक के बाद शर्विलक को हम अन्तिम अंक में देखते हैं। वह अंतिम अंक में आकर आर्यक के सिंहानस्थ होने की घोषणा करता है। वसन्तसेना तथा चारुदत्त को जीवित देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न होता है। वह चारुदत्त के समीप जाने में सेंध का स्मरण करके कुछ संकोच करता है। चारुदत्त द्वारा पूछे जाने पर कि आप कौन हैं ? वह शरमाते हुए कहता है कि "जिसने आप के घर (की दीवार) को तोड़ कर (सेंध लगा कर) धरोहर की चोरी की थी, वही महापापी मैं आपकी शरण में आया हूं।" इस प्रकार अपना परिचय देकर पालक वध व नये राजा आर्यक के सिंहासनारूढ़ होने की सूचना देता है। साथ ही आर्यक द्वारा उसे कुशावती के शासन दिये जाने का समाचार भी वह सुनाता है। वसन्तसेना के प्रति वह क तज्ञता प्रकट कर उसका घूंघट खींचकर 'वधू' का गौरव प्रदान कर देता है।

इस प्रकार परिस्थितिवश चौर्य-कार्य करने पर भी वह अपने चरित्र के गौरव को नहीं भूल सका है। वह सच्चा मित्र है, सच्चा प्रणयी है, उपकार के प्रति क तज्ञ है, वह प्रत्युपकार करने के लिए भी लालायित है और सबसे बड़ी बात यह है कि वेश्या-दासिका की प्रीति में फंसने के बावजूद कौटुम्बिक एवं गार्हस्थिक मर्यादा के महत्त्व के प्रति सजग है - मदनिका को वधू-रूप में प्राप्त कर लेने के बाद वसन्तसेना को भी उसी गौरव से विभूषित कर देता है।

संवाहक-श्रमण

संवाहक श्रमण का चरित्र भी नाटककार ने बडे ही आकर्षक ढंग से चित्रित किया है। नायक व नायिका दोनों के सहायक के रूप में संवाहक ने कार्य किया है इस द ष्टि से नाटक में उसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। नाटक में सर्व प्रथम संवाहक से हमारा परिचय द्वितीय अंक में होता है, उक्त अंक में वह एक हारे हुये जुआरी के रूप में हमारे सामने आता है। माथुर व द्यूतकार उसका पीछा करते हुये दिखाई देते हैं। वह दर्दुरक की सहायता से भाग कर वसन्तसेना के यहां शरण लेता है। वसन्तसेना द्वारा पूछे जाने पर वह अपना परिचय संक्षिप्त में देता है। उसके परिचय से ज्ञात होता है कि वह पाटलिपुत्र का निवासी एक ग हस्थ का पुत्र है। अपने घर पर यात्रियों के मुख से इस देश की प्रशंसा सुनकर वह उज्जयिनी आया था, यहां वह देह दबाने की कला सीख कर चारुदत्त की सेवा संवाहक रूप में करने लगा था। अब वह एक जुआरी बन गया है, क्योंकि उसका मालिक चारुदत्त दया के कारण किये गये दान से अब क्षीण वैभव हो गया है। जुए में वह हार गया है तथा सभिक माथुर का दस सुवर्ण से ऋणी बन गया है। माथुर की मार से बचने के लिए अब उसने वसन्तसेना के घर में शरण ली है।

संवाहक के उक्त परिचय से वसन्तसेना अत्यधिक प्रभावित होती है। यह जानकर कि वह चारुदत्त की सेवा कर चुका है, वसन्तसेना प्रसन्न होती है तथा उसका बड़ा आदर-सम्मान करती है। वह उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करती है तथा उसे ऋणमुक्त करने हेतु अपना आभूषण उतार कर चेटी द्वारा माथुर के पास भेज देती है। इस घटना के बाद संवाहक के हृदय में द्यूत-जीवन के प्रति घ णा उत्पन्न होती है तथा वह उससे हमेशा के लिए निव त्ति लेकर तत्काल बौद्ध संन्यासी बन जाता है।

संवाहक के उक्त परिचय से हमें ज्ञात होता है कि उसका चरित्र बहुमुखी है। उसके जीवन के कई पहलुओं का नाटक में चित्रण हुआ है। वह एक क तज्ञ नौकर है जो अपने मालिक चारुदत्त की सज्जनता तथा उदारता से सर्वथैव प्रभावित है। वह वसन्तसेना से वार्त्ता के प्रसंग में उसे 'भूमण्डल का चन्द्रमा' तथा आराधनीय बताता है। न केवल चारुदत्त के प्रति अपितु वसन्तसेना से सम्मान एवं सहानुभूति मिलने के बाद उसके प्रति भी वह क तज्ञता अनुभव करता है। वह प्रत्युपकार के रूप में उसकी देह का संमर्दन करना चाहता है किन्तु वसन्तसेना उसके अनुरोध को टाल देती है। संवाहक हृदय में अनुभव करता है कि वसन्तसेना के प्रति उसने कुछ भी प्रत्युपकार नहीं किया। एक बौद्ध भिक्षु के रूप में भी संवाहक का चरित्र उज्ज्वल ही दिखाई देता है। उसके चित्त में अब भी पाखण्ड या धर्माडम्बर की कोई भावना नहीं दिखाई देती। शकार द्वारा बैंत मारे जाने पर भी हम उसे प्रशान्त मुद्रा में ही देखते हैं। एक बौद्ध भिक्षु के रूप में वह धर्म का उपदेश भी करता है - "अपने पेट को संयमित रखो। परमात्मा के ध्यान रूपी नगाड़े सदा जगे रहो। प च ज्ञानेन्द्रियाँ चोर हैं जो चिरसंचित धर्म-सम्पत्ति का अपहरण करती हैं।"

संन्यासी हो जाने पर भी वह वसन्तसेना द्वारा किये गये उपकार को नहीं भूलता है। अब भी उसके हृदय में प्रत्युपकार की भावना सतत बनी हुई है। अन्त में भाग्य से उसे अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने का अवसर प्राप्त होता है। अष्टम-अंक में जब दुष्ट शकार क्रोधवश वसन्तसेना का गला दबा कर उसे मरी हुई समझ कर जीर्णोद्यान में एक पेड़ के नीचे डाल कर भाग जाता है तब संवाहक संयोग से उस पेड के नीचे आता है, जहां पर वसन्तसेना अचेतन अवस्था में पडी हुई थी। वहां पर हम उसकी स्म ति का परिचय प्राप्त करते हैं, वह वसन्तसेना के हाथ को देखकर पहचान जाता है, तथा कहता है कि -"सचमुच, यह वही हाथ है जिसने मुझे अभय दान दिया था।"

वह वसन्तसेना को ऐसी स्थिति में देख कर उससे वांछित वस्तु के विषय में पूछता है तथा सेवा का आदेश मांगता है। यह सेवा का अवसर पाकर वह अति प्रसन्न होता है। वह कौपीन से जल निचोड़ कर उसे नव-जीवन दान करता है और समीपस्थ विहार में अपनी धर्म-भगिनी की देख-रेख में उसे सौंपता है। वसन्तसेना को अपने साथ ले जाते हुये यद्यपि उसके हृदय में कुछ विचार सा उत्पन्न होता है परन्तु अपने इन्द्रिय-संयम पर उसे विश्वास है अतः वह कहता है कि -"जो मनुष्य हाथों से संयमी है, मुख से संयमी है तथा इन्द्रियों का संयमी है, उसका राजकुल क्या कर सकता है ?" वहां पर वह वसन्तसेना की अत्यधिक सेवा शुश्रूषा करता है और उसे पूर्ण स्वस्थ बना देता है। इस प्रकार वसन्तसेना के प्रति अपने प्रत्युपकार की भावना को पूर्ण कर पाता है।

चारुदत्त द्वारा किये गये उपकार का वह अभी तक प्रतिदान नहीं कर सका है। उसे उसकी भी स्म ति है। संयोग से चारुदत्त के प्रति उपकार करने का भी उसे अवसर मिलता है। दशम-अंक में वसन्तसेना को ऐसे समय में जबकि चारुदत्त को फांसी लगने वाली थी, घटना स्थल पर पहुंचा कर चारुदत्त के प्रति प्रत्युपकार प्रदर्शित कर वह प्रसन्न होता हे।

प्रकरण के अन्त में उसे उसकी इच्छानुसार प थिवी के सम्पूर्ण विहारों का कुलपति बना दिया जाता है। वास्तविकता का जहां तक सम्बन्ध है संवाहक यह नहीं चाहता था कि उसे कोई पुरस्कार दिया जावे। परन्तु शिष्टाचार के रूप में वह उसे स्वीकार करता है तथा आभार प्रदर्शित करता है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में उसके जीवन के विभिन्न पहलुओं का दिग्दर्शन हुआ है।

चेट और विट

श्र ंगार रस के नायक के सहायकों में विदूषक के साथ-साथ चेट और विट भी गिनाये गये हैं। साहित्य-दर्पण में विश्वनाथ कविराज ने इनका लक्षण करते हुये लिखा है कि "सामान्यतया इन्हें स्वामिभक्त, बातचीत तथा हास्य विनोद में चतुर, कुपित वधू के मान को भंग कराने में कुशल तथा सच्चरित्र होना चाहिये।"

श्र ंगार रस प्रधान प्रकरण होने से 'म च्छकटिक' में भी उक्त पात्रों का नियोजन किया गया है। प्रस्तुत प्रकरण में तीन चेट व दो विटों से हमारा परिचय होता है।

चेट वर्धमानक

म च्छकटिक में तीन चेट क्रमशः स्थावरक, वर्धमानक और कुम्भीलक हैं, जो क्रमशः शकार, चारुदत्त व वसन्तसेना के यहां कार्य करते हैं। इन तीन चेटों में वर्धमानक जो कि चारुदत्त का दास है, अपने स्वामी के अनुरूप ही सीधा सादा और ईमानदार है। अन्य दोनों चेटों के समान उसके हृदय में किसी प्रकार का पाप व धूर्तता का भाव विद्यमान नहीं है। नाटक में सर्व प्रथम हमारा परिचय उससे त तीय-अंक के शुरू में होता है। वहां वह एक स्वामिभक्त दास के रूप में ये शब्द कहते हुये प्रवेश करता है - "सेवकों पर दया करने वाला सज्जन स्वामी धनहीन होता हुआ भी शोभित होता है।"

त तीय अंक में जहां वह स्वामि-भक्त दास के रूप में हमारे सन्मुख आता है, षष्ठ-अंक में उसके भोलेपन का हमें परिचय मिलता है। वह इतना भोला है कि आर्यक की बेडियों की ध्वनि को वसन्तसेना के चरण नुपुरों की आवाज समझ लेता है। इसके साथ ही रास्ते में वीरक व चन्दनक द्वारा निरीक्षण करने के उपरान्त भी उसके हृदय में यह संदेह नहीं होता कि उसकी गाडी में कौन

बैठा है ? भोलेपन का इससे अधिक क्या उदाहरण हो सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वध् र्मानक में स्वामि-भक्ति, भोलापन तथा निश्छलता आदि गुण विद्यमान हैं।

चेट कुम्भीलक

यह वसन्तसेना का दास है। नाटक में सर्वप्रथम हमारा परिचय कुम्भीलक से पंचम-अंक में होता है जब वह अपनी स्वामिनी वसन्तसेना के आगमन की सूचना चारुदत्त के पास देने हेतु जाता है। विदूषक के साथ हुई उसकी वार्त्ता से यह स्पष्ट होता है कि वह वर्धमानक की अपेक्षा चतुर एवं तनिक धूर्त भी है। चतुर होने के साथ साथ उसका स्वभाव कुछ मजाकिया भी है। वह रंगमंच पर हंसता हुआ प्रवेश करता है तथा इस प्रकार कहता है - ”सात छेदों वाली बांसुरी से मधुर ध्वनि निकालता हूँ, सात तारों वाली वीणा को बजाता हूँ तथा गधे के तुल्य गाना गाता हूं, हमारे गान के सामने प्रसिद्ध गन्धर्व तुम्बुरु तथा देवर्षि गायक-नारद भी तुच्छ हैं।” कुंभीलक के उक्त कथन से उसके मजाकिया स्वभाव के साथ साथ उसका मौर्ख्य भाव भी स्पष्ट होता है।

चारुदत्त के पास सीधे जाने से पूर्व वह उन्हें छिपकर देखता है तथा दरवाजे को बन्द देखकर विदूषक को कंकड़ी मार कर उसका ध्यान अपने प्रति आकर्षित करना चाहता है। वह सीधे ढंग से भी जाकर कह सकता था- परन्तु शरारत से बार-बार छिपे हुए ही विदूषक के ऊपर कंकड़ी मारता है और जब विदूषक उसके सामने आता है तब भी वह आगमन के कारण को स्पष्ट रूप से न बताकर पहेली बुझाता है। वह उसे ‘वसन्त’ और ‘सेना’ वाली पहेली बुझाकर विदूषक की बुद्धि को चकमा देने की चेष्टा करता है। चतुरता में मैत्रेय से वह अधिक चतुर प्रदर्शित किया गया है। दोनों के कथोपकथन से दर्शकों का भी काफी मनोरंजन होता है।

इस प्रकार वर्धमानक जहां पर भोला व निछचल है वहां कुंभीलक चालाक धूर्त व चंचल स्वभाव का है।

चेट स्थावरक

स्थावरक शकार का दास है। नाटक में स्थित तीनों चेटों में स्थावरक का अपना व्यक्तित्व उभर कर सामने आया है। वह शकार की सेवा में उसी के अन्न से पला है। साधारणतः वह स्वामि-भक्त है और शकार के कार्यों में सहायता भी पहुंचाता है। सर्व प्रथम हमारा परिचय स्थावरक से प्रथम अंक में ही होता है जहां पर वह अपने स्वामी व विट के साथ वसन्तसेना का पीछा करता दिखाई देता है। यद्यपि वह शकार का दास है तथा सेवक होने के कारण उसे सभी प्रकार के कार्य भी करने पड़ते हैं परन्तु फिर भी उसके हृदय में कोमलता है, वह उतना निष्ठुर नहीं जितना कि शकार हैं। वह हृदय से कोमल हैं परन्तु अपनी आजीविका को ध्यान में रखते हुये वह यह भी चाहता है कि वसन्तसेना शकार के काम की त प्ति करे। इसी हेतु वह भागती हुई वसन्तसेना को शकार के यहां मिलने वाले मछली के मांस की प्रचुरता का प्रलोभन भी देता है।

इतना सब कुछ होते हुये भी उसने अपने हृदय व चरित्र को बेच नहीं दिया हे। अष्टम-अंक में जब कि शकार वसन्तसेना को मारने हेतु विभिन्न प्रकार के प्रलोभन देता है, यहां तक कि उसे सभी चेटों का प्रधान बनाने के लिए कहता है तब भी वह उस दुष्कार्य को करने के लिए तैयार नहीं होता। वह स्पष्ट भाषी है और ईश्वर से डरता है। अतः वह शकार को स्पष्ट जवाब देते हुये कहता है कि ”स्वामी ! आप मेरे शरीर पर समर्थ हैं, चरित्र पर नहीं।” स्थावरक को परलोक का भय है, वह पाप व पुण्य के अनुसार ही अपने भविष्य के विषय में सोचता है। अतएव वह किसी प्रकार का पाप व बुरा कार्य नहीं करना चाहता। वह अपने वर्त्तमान को बुरा समझते हुए अपने अच्छे भविष्य

का पुण्य कार्यों द्वारा निर्माण करना चाहता है। वह स्पष्ट कहता है कि "स्वामी, पीटें या मारें किन्तु अकार्य न करूंगा।"

शकार उसे कई बार प्रलोभन देना चाहता है परन्तु वह उसे स्वीक त नहीं करता। उसका चरित्र पवित्र है जो कि चन्द सोने के टुकड़ों द्वारा नहीं खरीदा जा सकता है। यही कारण है कि शकार उस पर विश्वास न करते हुये उसे अपने महल में बन्दी बना लेता है जिसे वह म त्यु सम्बन्धी सत्य को अन्य लोगों से न कह सके।

उसके चरित्र की पवित्रता व हृदय की कोमलता की चरम सीमा हम दशम-अंक में देख सकते हैं जहां पर कि वह चाण्डालों की घोषणा सुनकर, निर्दोष चारुदत्त को बचाने के लिए महल की खिड़की से अपनी बेड़ियों के साथ नीचे कूद पड़ा है। वह अन्य के जीवन को बचाने हेतु अपने जीवन की परवाह नहीं करता। उसे यह भी ध्यान नहीं रहता कि मैं कहां से कूद रहा हूं। निःशंक होकर नीचे कूदता है तथा वसन्तसेना की हत्या के रहस्य को सभी को विज्ञापित कर देता है। शकार यहां भी उसे स्वर्ण का प्रलोभन देता है परन्तु स्थावरक उसकी इस रिश्वत को घोषित कर देता हे परन्तु दोनों चाण्डाल उसके कथन का विश्वास इसलिये नहीं करते क्योंकि वह एक दास है, इस पर उसे आंतरिक पीडा होती हे तथा यह कहता है कि "खेद है, दासता ऐसी बुरी है कि सत्य का भी किसी को विश्वास नहीं करा पाती।"

इस प्रकार दास होते हुये भी वह चरित्र से महान् है। अपनी सामर्थ्यानुसार वह कर्त्तव्य का पालन करता है, स्वामिभक्ति भी प्रदर्शित करता है परन्तु वहीं तक जहां तक कि आत्मा उसे प्रेरित करती है। धर्म तथा भगवान् का उसके हृदय में पूर्ण स्थान है। इन शब्दों के साथ वह चारुदत्त के चरणों में गिर पड़ता है और करुण स्वरों में निवेदन करता है कि "आर्य चारुदत्त इतना ही मेरा सामर्थ्य है।" ये ही शब्द उसने वसन्तसेना को कहे थे, जब वह जाने लगा था।

विट

प्रस्तुत प्रकरण में दो विट हैं उनमें एक वसन्तसेना का सहायक है तथा द्वितीय शकार का।

वसन्तसेना का विट

वसन्तसेना का विट शास्त्रीय जाति का विट है। वह चतुर, मधुर भाषी तथा वेशोपचार में कुशल है। श्र ंगार की ललित कल्पनायें उसके मानस में उठती हैं और वह उन्हें सुन्दर सुसंस्क त वाणी में अभिव्यक्त करता है। वह समय को देखते हुये तदनुकूल ही वर्णन करते हुये एक ही पथ में मेघ तथा राजा दोनों का सटीक चित्रण कर जाता है। इसी प्रकार वह घोर जल व ष्टि का भी वर्णन कई चित्रों में प्रस्तुत कराता है। विट का यह प्रमुख कार्य होता है कि वह गणिकाओं को रति-विहार के लिये शिक्षा देता है। प्रस्तुत प्रकरण का विट वसन्तसेना को न केवल शिक्षा देता है परन्तु उसे बड़े सुन्दर व कलात्मक ढंग से समझाता भी है।

शकार का विट

वसन्तसेना के विट की तुलना में यह अपना स्वयं का व्यक्तित्व रखता है जो कि नाटक में उभरकर समय समय पर सामने आता है। वसन्तसेना के लिए उसके हृदय में एक कोमल स्थान है। परन्तु चूंकि वह शकार का सेवक है अतः उसे भी वसन्तसेना का पीछा करने में शकार को सहयोग देना पड़ता है। दूसरा कारण यह भी है कि वह वसन्तसेना को सामान्य वेश्या के समान समझता है तथा इस कारण उसे सर्वभोग्या मानता है।

उसकी मनोभावना कोमल एवं सुकुमार है। वसन्तसेना का पीछा करते हुए वह भी अपनी बुद्धि कौशल का परिचय नये नये उपमानों को प्रस्तुत करके देता है। यद्यपि वसन्तसेना के लिये एक स्त्री होने के नाते विट के हृदय में कुछ दयांश है - परन्तु एक गणिका की हैसियत से वह उसे सर्वभोग्या समझता हे। उसके यह पूछने पर कि उन्हें उसका कौन सा आभूषण चाहिये, वह स्पष्ट उत्तर देता है - "ऐसा मत कहो, वसन्तसेना ! उद्यान लता से फूलों की चोरी नहीं की जाती।" इसी क्रम में वसन्तसेना जब शकार को अनार्य कह कर डाँटती है तब विट से नहीं रहा जाता तथा वह उसे उसकी सही स्थिति बताते हुए वेश्यालय की मर्यादा के प्रतिकूल शब्द बोलने के लिए इन्कार करता है। परन्तु जब विट को उसकी सही स्थिति का ज्ञान होता है, उसके बाद वह उसे परेशान नहीं करता। गणिका द्वारा कहे गये ये शब्द कि **"गुणाः खलु अनुरागस्य कारणं न पुनर्बलात्कारः'** उसके हृदय पर काफी प्रभाव डालते हैं। इसके बाद वह उसे सामान्य गणिका से अलग मानते हुये यह चाहता है कि वह अपने प्रिय चारुदत्त के पास पहुंच जाये। इसी हेतु वह वसन्तसेना को परोक्ष रीति से यह सलाह भी देता है कि "वह अपनी फूलों की माला को तोड़कर फेंक दे और अपने नूपूरों इत्यादि को समेट ले जिससे उसकी प्रगति का पता बताने वाले संकेत (सुगन्ध तथा झंकार) विनष्ट हो जायें।"

वह यद्यपि शकार जैसे क्रूर व निर्दय व्यक्ति का सेवक है परन्तु जहां तक चरित्र का सम्बन्ध है, उसका चरित्र पवित्र है, उसमें वे सभी गुण विद्यमान हैं जो एक सज्जन व्यक्ति में होने चाहिये। शकार के यहां कार्य करते रहने पर भी उसने एक भी शकार का दुर्गुण नहीं लिया है। किस समय क्या करना उचित है, इसका उसे ज्ञान है। यही कारण है कि रदनिका के प्रति अनजाने में हुये अपमान के लिये वह मैत्रेय से क्षमा मांगता है जो कि मानवोचित है। वह बुद्धिमान् इतना है कि चारुदत्त के हृदय पर इस घटना का बुरा प्रभाव होगा, यह सोचकर मैत्रेय से पहले ही इस घटना को बताने के लिए इन्कार कर देता है। वह नहीं चाहता कि उसके द्वारा किये गये कार्य से किसी की आत्मा को ठेस लगे। शकार की सेवा करते हुये भी उसके हृदय में चारुदत्त के गुणों के लिए स्थान है। वह चारुदत्त के गुणों से भयभीत है तथा एक तटस्थ व्यक्ति के समान समय समय पर उसके गुणों की वह प्रशंसा भी करता है। वह गुणों का इतना कायल है कि उन्हें सबसे बड़ा शस्त्र समझता है। इसीलिये वह मैत्रेय से कहता है कि "शस्त्रयुक्त भी हम लोग गुण रूपी शस्त्रों के द्वारा पराजित कर दिये गये हैं।" शकार द्वारा चारुदत्त की निर्धनता पर जब कटाक्ष किया जाता है तब वह शकार को 'मूर्ख' कहता हुआ चारुदत्त के दानशीलता, परोपकारिता आदि गुणों का सावेश वर्णन करता है।

विट के चरित्र की असली विज्ञप्ति अष्टम-अंक में हुई है, जहां पर स्पष्ट रूपेण वसन्तसेना का पक्ष लेते हुये उसकी हर संभव सहायता करता है। प्रसंग जीर्णोद्यान का है। विट और शकार कुंभीलक की प्रतीक्षा करते हुये उद्यान की शोभा देख रहे हैं। इसी बीच वह गाड़ी लेकर वहां आता है। शकार द्वारा यह कहने पर कि गाडी पर स्त्री बैठी है, आप देखिये। उस समय विट का कुलीन स्त्रियों के सम्बन्ध में यह कथन कितना अनुकूल है -"मार्ग में वर्षा से ताडित - आँखों वाले बैलों के समान सिर नीचा किये मैं शीघ्र जाता हूं, क्योंकि समाज में प्रतिष्ठा चाहने वाले मेरी (मेरे जैसे व्यक्ति की) द ष्टि कुलीन स्त्रियों को देखने में भीरू है।" इस प्रकार परस्त्री को देखने मात्र में भी वह लज्जा अनुभव करता है। शकार द्वारा अधिक आग्रह करने पर वह गाडी को देखता है तथा वसन्तसेना को गाडी में बैठी देखकर अपने आप दुःख महसूस करते हुये कहता है कि "अरे, कैसे ? यह म गी व्याघ्र का अनुसरण कर रही हैं ? अरे खेद है, शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान बालुका तट पर स्थित हंस को छोड कर हंसी काक के समीप आ

गई।" वह न केवल ऐसा सोचता है अपितु वसन्तसेना के समीप जाकर उसे यह भी कहता है कि उसने यह ठीक नहीं किया है। वसन्तसेना द्वारा आने का सही कारण बताने पर वह उसे आश्वस्त करता है कि वह भयभीत न हो। तथा उस क्षण से उसने निरन्तर चेष्ठा की है कि वसन्तसेना के प्राण संकट में न पडें। इसी हेतु उसने सर्वप्रथम शकार को उसे राक्षसी कह कर बहकाने का प्रयास भी किया है। परन्तु जब शकार विश्वास नहीं करता तो वह उसे अन्य प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयास करते हुये कहता है कि "काणेली के पुत्र, यह वसन्तसेना आप से अभिसार करने आई है।"

शकार द्वारा वसन्तसेना को गाडी से केश पेश पकड़ कर खींचने के लिए कहने पर विट उसे समझाते हुये कहता है कि "(सुन्दरता आदि) गुणों से युक्त नारियों के केश नहीं पकड़ने चाहियें, क्योंकि उद्यान में उत्पन्न होने वाली लतायें कोमल पत्ते तोड़ने योग्य नही होती।" इस प्रकार विट करुण ह्रदय है तथा नारी के प्रति उसके ह्रदय में दया है। शकार के इस अनुरोध को कि वह वसन्तसेना को मार डाले, वह स्पष्ट इन्कार करता है। वह धर्म-भीरू है और पाप-पुण्य की भावनाओं से अनुशासित है, अतएव उसने साफ-साफ कह दिया "यदि मैं उज्जयिनी की विभूषण, वेश्याओं के विरुद्ध कुल कामिनी के समान व्यवहार करने वाली इस स्त्री की हत्या करूँगा, तो परलोक रूपी नदी को किस नाव से पार करूँगा।" इस प्रकार वह पाप कार्य करके अपने परलोक को बिगाड़ना नहीं चाहता।

विट व चेट के इन्कार कर देने पर स्वयं उसकी हत्या करना चाहता है परन्तु विट उसे ऐसा भी नहीं करने देता। तब वह उसे एक चाल द्वारा वहां से अन्यत्र भेज देता है। परन्तु वहां पर भी उसे वसन्तसेना का ही ध्यान रहता है क्योंकि वह शकार के क्रूर स्वभाव से अच्छी प्रकार परिचित है। वह शीघ्र ही वहां से वापिस आता है, रास्ते में अपशकुनों के होने से वसन्तसेना को लेकर बड़ा चिन्तित होता है। पहुंचने पर वसन्तसेना को न देखकर वह दुःखी होता है तथा शकार द्वारा उसे म त दिखाने पर वह मूर्च्छित हो जाता है और संज्ञा प्राप्त करने पर शोक विह्वल होकर विभिन्न प्रकार के उद्‌गार प्रकट करता है। वह अश्रु बहाते हुये तथा शकार को लताड़ते हुये कहता है -"क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा ? जिससे तूने यह दुष्कर्म किया है। पापी, तूने पाप रहित इस नगर की लक्ष्मी को मार दिया है।" यह कह कर वह वहां से इस शंका से जाना चाहता है कि कहीं यह पापी इस दुष्कर्म को उस पर न डाल दें। शकार उसे पकड़ता है परन्तु विट उससे इतनी घ णा करता है कि वह उसका स्पर्श भी पसन्द नहीं करता तथा उसे यह कहते हुये कि आपकी सेवा करते हुये मुझ पाप रहित को लोग अनार्य एवं पाप-युक्त समझेंगे उसे छोड़ कर वह चला जाता है। जाते समय वसन्तसेना के प्रति वह करुणापूर्वक निवेदन करता है -"हे सुन्दरी, तुम दूसरे जन्म में भी वेश्या न होओ। हे चरित्रगुण से युक्त, तुम किसी पवित्र कुल में जन्म लो।"

उक्त कथन विट की अन्तरात्मा की आवाज है और वसन्तसेना के प्रति भविष्य की शुभ-कामनायें।

अनन्तर, शकार को "पापी" पामर' कह कर और अपनी तलवार खींचते हये वह शर्विलक, चन्दनक इत्यादि विद्रोहियों की पंक्ति को प थुल बनाने चला जाता है।

इस प्रकार शकार का विट अपनी आजीविका के अनुकूल आचरण करते हुये भी शिष्ट, सज्जन, धर्म-भीरू, साहसी एवं निड़र है। वह सामाजिक मूल्यों को जानता है तथा मानव के क्या नैतिक कर्त्तव्य होते हैं उनसे वह भली भांति परिचित है। वह अपने स्वामी की आज्ञा का अन्धानुकरण करने वाला विट न होकर एक समझदार व करुण ह्रदय विट है। नाटक में उसका व्यक्तित्व निखर आया है और वह श्र ंगारी संसार के सामान्य विटों के समाज से निकल कर हमारी प्रशंसा तथा सहानुभूति का पात्र बन गया है।

पतिव्रता-धूता

धूता चारुदत्त की धर्म-परिणीता पत्नी है। पत्नी के रूप में वह एक आदर्श पत्नी है, पति को परमेश्वर मानने वाली भावना से वह ओतप्रोत है। उसके लिए पति ही देवता एवं भगवान् हैं। उसके जीवन का लक्ष्य अपने पति की प्रसन्नता व उन्नति ही है। उसके विचार वही हैं जो विचार उसके पति चारुदत्त के हैं, इस द ष्टि से वह एक वास्तविक सहधर्म-चारिणी नारी है। वह एक आदर्श हिन्दू नारी की प्रतिमा है जो अपने पति का उसके सुख व दुःख दोनों ही अवसरों पर अनुसरण करती है। वह अपने पति का न तो दुःख ही देख सकती है और नही उसकी अपकीर्ति। यही कारण है कि धरोहर वाले आभूषणों के चोरी हो जाने पर वह यह सोच कर अत्यन्त दुःखी होती है कि निध ानता के कारण लोग यही समझेंगे कि चारुदत्त ने आभूषण के लोभ से सेंध लगाने का वह छल किया है, और वह अपने नैहर की बहुमूल्य रत्नावली वसन्तसेना को बदले में लौटाने के लिए बिना मांगे प्रदान कर देती है।

इस स्थल पर हमें चारुदत्त व उसकी पत्नी धूता दोनों के विचारों के साम्य दिखाई देता है। दोनों का चिन्तन चोरी को लेकर समान है। चारुदत्त भी यही कहता है कि **"कः श्रद्धास्यति भूतार्थम्, सर्वो माम् तुलयिष्यति'**, तथा धूता भी **"दरिद्रतयार्यपुत्रेणैवेद शमकार्यमनुष्ठितम्"** ऐसा लोगों के विषय में सोचती है। परन्तु वह एक पतिव्रता नारी है जो कि अपने पति के विषय में थोड़ी सी भी अपकीर्ति व आलोचना सहन नहीं कर सकती है, इसलिये ही वह अपनी बहुमूल्य रत्नावली निकाल कर प्रदान करती है। चारुदत्त उसके इस गुण से अत्यधिक प्रभावित है तथा वह अपने को दरिद्र नहीं समझता है क्योंकि उसने धूता जैसी विभवानुगता सच्ची पतिव्रता पत्नी पाई है।

धूता को आभूषणों का कुछ भी मोह नहीं है। वह अपने पति को ही जीवन सर्वस्व व सबसे बड़ा आभूषण समझती है। सोने के बने इन बनावटी आभूषणों का उसके जीवन में तनिक भी महत्त्व नहीं है। यही कारण है कि छठे-अंक में जब वसन्तसेना रत्नावली उसके पास वापिस लौटाती है तब वह उसे यह कहते हुये वापिस लौटा देती है - "आर्य पुत्र ने आपको यह रत्नावली प्रसन्न होकर प्रदान की है। मेरा इसको लेना उचित नहीं है। आप यह समझें कि "आर्य पुत्र ही मेरे विशेष आभूषण हैं।" धूता का उक्त एक मात्र कथन उसके पतिव्रत धर्म का परिचायक है।

एक सपत्नी के रूप में भी हम धूता का चरित्र उज्ज्वल ही पाते हैं। वह सौतिया ईर्ष्या रखने वाली नारी न होकर एक प्रेम का सम्बन्ध रखने वाली नारी है। वह वसन्तसेना से किसी प्रकार की घ णा न करती हुई उसे अपनी बहिन कह कर सम्बोधित करती है। न केवल वसन्तसेना अपितु अपने पति पर भी वह इस बात को लेकर कभी रुष्ट नहीं होती कि उसका पति उसके रहते अन्य स्त्री से प्रणय क्यों करता है। वह केवल अपने पति के दर्शनों व उसके प्रणय की भूखी है अन्य बातों से उसे कोई अधिक तात्पर्य नहीं है।

रोहसेन

रोहसेन एक भोला बालक है। संसार में जो तीन हठ क्रमशः बालहठ, त्रियाहठ व राजहठ माने गये हैं उनमें से बालहठ का ज्वलन्त उदाहरण हम रोहसेन को कह सकते हैं। उसमें हमें बालकोचित मनचलापन तथा हठवादी आग्रह स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। वह अपने पड़ोसी के बच्चे की सोने की गाड़ी देख कर उसके लिये मचल उठता है तथा उसी से खेलने का आग्रह करता है। मदनिका उसे मिट्टी की गाड़ी देती है परन्तु वह उसे पसन्द नहीं करता तथा सोने की गाड़ी से ही खेलने की हठ करता है जो बालसुलभ हठ का एक सुन्दर उदाहरण है।

वसन्तसेना को जब रोहसेन के इस आग्रह की मदनिका द्वारा जानकारी प्राप्त होती है तो वह अपने को उसकी माता बताती हुई प्यार करती है। परन्तु उस भोले बालक के ह्रदय में दरिद्रता की मनोग्रन्थि इतनी जमी हुई है कि वह वसन्तसेना को अपनी माता मानने के लिए तैयार नहीं होता। उक्त संदर्भ में रोहसेन द्वारा कहे गये शब्द बड़े ही ह्रदय-द्रावक हैं तथा सचमुच उसके ये शब्द वसन्तसेना के ह्रदय में गहरा प्रभाव डालते हैं। वह रदनिका से वसन्तसेना को अपनी माता न मानते हुये कहता है -"रदनिका, तुम असत्य बोलती हो। यदि हमारी माता है तो आभूषण युक्त किस लिये है ?" वसन्तसेना के ह्रदय में इन वाक्यों का इतना प्रभाव पड़ता है कि वह इन शब्दों के साथ "बेटे, भोले मुंह से अत्यन्त करुणा पूर्वक बोल रहे हो। अपने आभूषणों को उतार कर रोती हुई कहती है यह लो अब तो मैं तुम्हारी माता हो गई।" यह तो हुआ उसकी बालपन, परन्तु इस बालपन के साथ साथ पित -प्रेम से युक्त ह्रदय भी विद्यमान है। उसे जब यह मालूम होता है कि उसके पिता को फांसी दी जा रही है तो वह विदूषक मैत्रेय के साथ अपने पिता से मिलने हेतु जाता है। वहां पर जाकर वह केवल रोना ही नहीं जानता अपितु उसने चाण्डालों से यह भी अनुरोध किया है कि वे उसके पिता को छोड़ दें और उसे ही उसके बदले मार डालें। चारुदत्त अपने पुत्र के इन वचनों को सुन कर द्रवित होकर कह उठता है कि "यह वह स्नेह का सर्वस्व हैं जो धनिक और दरिद्र दोनों के लिए समान है। यह ह्रदय का सुखकर लेप है जो चन्दन तथा उशीर का नहीं बना।" इस प्रकार रोहसेन बालक होते हुये भी अत्यन्त है तथा पिता के प्रति उसका क्या कर्तव्य है उसे वह अचछी प्रकार जानता है।

परह्रदयग्रहण-पण्डिता-मदनिका

वसन्तसेना व धूता के अतिरिक्त नारी पात्रों में वसन्तसेना की दासी व शर्विलक की प्रेयसी मदनिका का चरित्र भी प्रभाव पूर्ण है। दासी होते हुये भी अपने कुछ गुणों से उसने वसन्तसेना के ह्रदय में अपना स्थान बना रखा है तथा इस प्रकार उसकी प्रणय रहस्य की गोप्त्री तथा पोषिका है। उसके चरित्र की सर्व प्रमुख विशेषता यह है कि वह अपने से अन्य व्यक्तियों के ह्रदयों को जानने में निपुण है। यही कारण है कि वसन्तसेना ने भी द्वितीय-अंक में उसे "परह्रदयग्रहणपण्डिता" कह कर सम्बोधित किया है।

मदनिका दूसरे के ह्रदयों को जानने में तो निपुण है ही परन्तु उसके साथ साथ वह मधुर तथा चतुर वाणी बोलने में भी निपुण है। मदनिका द्वारा प्रणय के संदर्भ में किये गये इस प्रश्न की भाषा कितनी मधुर व सुन्दर है -"बड़े आनन्द का विषय है। इस महोत्सव में कौन भाग्यशाली तरुण आप से अनुग हीत हुआ है ? तो आर्या बतायें कि कोई राजा अथवा राजवल्लभ सेवित हुआ है ?" वसन्तसेना के प्रति मदनिका का स्नेह बड़ा ही कोमल एवं निष्ठापूर्वक है। वह अपने प्रणय से अधिक महत्त्व वसन्तसेना के प्रणय को देती है। मदनिका यद्यपि शर्विलक की प्रेयसी है, परन्तु जब उसे शर्विलक द्वारा यह ज्ञात होता है कि उसकी मुक्ति के लिए उसने सेंध तोड कर चोरी की है तब वह प्रणय को महत्त्व न देकर उसे स्पष्ट कहती है -"शर्विलक, कलेवे के जैसी (तुच्छ) स्त्री के कारण (तुमने) शरीर एवं चरित्र दोनों को संशय में डाल दिया है।" गणिका मदनिका द्वारा कहे गये ये शब्द अपने आपमें काफी महत्त्व रखते हैं शर्विलक से यह जानकारी प्राप्त करके कि उसने चोरी चारुदत्त के घर से की है, वह मूर्च्छित हो जाती है, क्योंकि उसे अपने प्रणय से अधिक अपनी मालकिन वसन्तसेना के प्रणय का ध्यान है। उसे यह भय होता है कि कहीं शर्विलक ने चारुदत्त के साथ हिंसापूर्ण आचरण तो नहीं किया है।

उक्त कथन का यह तात्पर्य नहीं कि मदनिका शर्विलक के प्रति सच्चा प्रणय नहीं रखती थी, अपितु

भाव यह है कि प्रणय के साथ साथ शिष्टता का भी उसे ध्यान था तथा एक दासी के रूप में उसे अपने से अधिक अपनी स्वामिनी का ध्यान था। शर्विलक द्वारा स्त्रियों के विषय में सावेश उक्तियों व भर्त्सनाओं को सुन कर भी उसके मन में किसी प्रकार की विक्रिया पैदा नहीं होती। अपितु वह अपनी बुद्धिमता से काम लेकर शर्विलक को सही स्थिति की जानकारी प्रदान करती है। मदनिका की इस कार्यवाही से शर्विलक अत्यधिक प्रभावित होता है तथा उसे अपने से भी अधिक बुद्धिमता बताते हुये कहता है - "स्त्रियॉ तो वस्तुतः स्वभाव से ही कुशल होती हैं, पुरुषों की कुशलता तो शास्त्रों के द्वारा सिखाई गई होती है।" इस प्रकार मदनिका के चरित्र की यह एक विशेषता है कि वह समयानुसार आचरण करती है। किस समय क्या कहना चाहिये तथा कैसा करना चाहिये उसे बहुत अनुभव है।

प्रेयसी के रूप में यह एक वीर वधू है। समय आने पर उसने वही किया है जो एक वीर पत्नी को करना चाहिये। विवाह के प्रथमदिन शर्विलक जब अपनी प्रेयसी सहित प्रवहण पर चढ़ कर घर जा रहा था, तभी नेपथ्य से घोषणा होती है कि राजा पालक ने आर्यक को अहीरों की बस्ती से लाकर कारागार में बन्द कर दिया है। घोषणा को सुनते ही शर्विलक तत्काल यह निर्णय करता है कि इस समय जबकि मित्र पर संकट है तो सौ सुन्दरियों से भी अकेला मित्र अधिक मुख्य है। शर्विलक का कहना था कि मदनिका भी उसी के अनुरूप करने को तैयार हो जाती है तथा वह बिना किसी सोच विचार के एक वीर-वधू के समान हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती है -"यह ऐसा ही हो। आर्य पुत्र, मुझे शीघ्रता से गुरुजनों के समीप पहुंचा दें।" शर्विलक अपनी प्रेयसी से प्रथम अवसर पर ऐसे शब्दों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होता है तथा स्वयं को बहुत भाग्यशाली मानता है।

इस प्रकार प्रेयसी के रूप में वह स्वामी के अनुकूल कार्य करने वाली तथा सहेली के रूप में अपनी मालकिन की विश्वस्त पात्री है। गणिका से वधू बनने के मूल में भी उसकी अपनी निष्ठा है जो कि उसने वसन्तसेना के प्रति प्रदर्शित की है।

इस प्रकार यद्यपि मदनिका एक साधारण दासी है, किन्तु इतनी सच्ची एवं निष्ठाशील है कि वह अपने प्रणयी को भी कुपित करने तथा अपनी मुक्ति के एक मात्र अवसर को भी शर्विलक द्वारा दिये जाने वाले आभूषण को लौटा कर नष्ट करने का खतरा मोल ले लेती है। उसका चरित्र सार्वभौमिक तथा महत्त्वपूर्ण है।

वीरक व चन्दनक

वीरक व चन्दनक यद्यपि नाटक में अधिक बार नहीं आये हैं परन्तु फिर भी उनका नाटक में इतना महत्त्व है कि उनके बिना नाटक अधूरा सा ही द ष्टिगत होता है। वीरक राजा पालक का सेनापति तथा चन्दनक बलपति है। दोनों का राजा पालक ने नगर की रक्षा हेतु नियुक्त कर रखा है। नाटक में दोनों पात्रों से सर्व प्रथम परिचय षष्ठ-अंक में होता है। जब चारुदत्त की गाड़ी में आर्यक जीर्णोद्यान की ओर जा रहा था तब ये दोनों नगर-रक्षक गाड़ी को राजपथ पर निरीक्षण हेतु रोक लेते हैं। दोनों यद्यपि एक ही कार्य के लिए नियुक्त किये गये है तथा दोनों का एक ही कर्तव्य है, परन्तु दोनों के स्वभाव में प थ्वी एवं आकाश का अन्तर है।

दोनों के स्वभाव का परिचय हमें गाड़ी निरीक्षण के अन्तर्गत होता है। उसके अनुसार एक स्वामिभक्त तथा राजकार्य में सचेष्ट है। यह राजकीय कार्य के संदर्भ में किसी को भी नहीं जानता है। उसके अनुसार "अरे चन्दनक, चारुदत्त को भी जानता हूं और वसन्तसेना को भी भली-भांति जानता हूं (किन्तु) राजकीय कार्य पड़ने पर मैं (अपने) पिता को भी नहीं जानता हूं।" परन्तु द्वितीय रक्षक सत्ता-परिवर्तन के लिय सचेष्ट है तथा हृदय से दयालु भी है।

राजा पालक एवं गोपाल पुत्र आर्यक

राजा पालक एक क्रूर एवं ज्ञान शून्य प्रशासक है। उसके राज्य में प्रजा क्षुब्ध एवं भय युक्त है। प्रजा-पालन का उसे कुछ भी ध्यान नहीं है। अपने साले शकार को उसने पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी है जिससे वह स्वेच्छानुसार अत्याचार व अनाचारादि कार्य करता है। नीति-निर्धारण में स्वयं स्वतंत्र है तथा मन माने ढंग से न्याय प्रदान करता है। मनु के नियमों का उल्लंघन करके चारुदत्त को प्राण-दण्ड प्रदान करना उसकी मनमानी का प्रमुख द ष्टान्त है। स्वयं में बुद्धि का अभाव है तथा सिद्धों की वाणी में विश्वास करके अपने प्रतिद्वन्द्वी आर्यक को बन्धनग ह में डाल देता है। परन्तु अपनी अयोग्यता एवं विलासिता के फलस्वरूप राज्य में अपने विरुद्ध फैली क्रान्ति का शमन करने में वह निष्फल रहता है तथा अन्ततोगत्वा प्रतिक्रियावादियों द्वारा म त्यु को प्राप्त होता है एवं आर्यक राजगद्दी पर बैठता है।

आर्यक का व्यक्तित्व प्रभावशाली है। वह प्रकरण में किन्हीं विशिष्ट कारणों से राजा के क्रोध का भाजन होकर बन्दी बना लिया जाता है परन्तु अपनी बुद्धिमता एवं भाग्यानुसार जेल से निकल जाता है। चारुद त्त के प्रति वह पूर्ण क तज्ञ है तथा इसी के फलस्वरूप उसे राजा होने पर कुशावती का राज्य प्रदान करता है।

अन्य गौण पात्र

उक्त पात्रों के अतिरिक्त कुछ पात्र ऐसे भी हैं जिनका कि किसी एक विशिष्ट अंक से ही सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ द्वितीय अंक में कुछ जुआरियों से हमारा परिचय होता है। ये जुआरी दर्दुरक, संवाहक, माथुर आदि हैं। संवाहक का चरित्र-'चित्रण हम पहले कर चुके हैं। उसके अतिरिक्त दर्दुरक ही एक ऐसा पात्र है जिसके विषय में विस्त त जानकारी हमें प्राप्त होती है। वह एक अनुभवी जुआरी है जिसने कि अपने जीवन का अधिकांश समय इसी व त्ति में समाप्त किया है। उसका निम्न कथन उसके अनुभव का परिचयक है - "अरे, जुआ भी मनुष्य का बिना सिंहासन का राज्य है।" वह अपने जीवन में जुए द्वारा हुये उतार-चढाव का वर्णन करते हुये कहता है कि द्यूत द्वारा ही धन प्राप्त किया, स्त्री और मित्र जुए से ही प्राप्त किये, जुए से ही दिया और खाया तथा जुए से ही सब कुछ नष्ट कर दिया।"

जुआरी होते हुये भी उसके हृदय में दयांश विद्यमान है। अतः जब माथुर द्वारा संवाहक के प्रति किये गये अनाचार को देखता है, तब उसका हृदय द्रवित हो उठता है और द्यूताध्यक्ष माथुर के चंगुल से उसे बचाता है। प चेन्द्रियों से संयुक्त मनुष्य को दस सुवर्ण के लिए सताया जाए - इसे वह सहन नहीं कर सकता। अतः साम, दाम, दण्ड, भेद नीतियों को अपनाते हुये उसकी रक्षा करता है।

प्रकरण में उसका चरित्र एक सहृदय मानव के रूप में चित्रित किया गया है।

द्वितीय-अंक के अतिरिक्त नवम-अंक में भी कुछ पात्रों की अवतारणा हुई है। ये पात्र मुख्य-न्यायाध ीश, श्रेष्ठी, कायस्थ एवं शोधनक हैं। न्यायाधीश एक सहृदय व्यक्ति है। वह न्याय-प्रिय है परन्तु शकार के आतंक से वह भयभीत है। चारुदत्त की सज्जनता एवं शालीनता से वह पूर्ण प्रभावित है। इसीलिये न्यायालय में उसे सम्मान भी प्रदान करता है, जिसके लिये शकार एवं अन्य समालोचकों के लिए वह आलोचना का विषय भी बन जाता है। परन्तु समय एवं परिस्थिति अनुसारा उसने वही किया जो उचित था।

मुख्य अधिकरणिक के अतिरिक्त श्रेष्ठी, कायस्थ एवं संवाहक का चरित्र भी समुचित रूप से चित्रित किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रकरण में सभी पात्र अपनी-२ विशिष्ट चरित्रगत विशेषताओं से युक्त हैं।

भाषा-शैली

किसी भी कवि या नाटककार का मूल्यांकन करने की महत्त्वपूर्ण कसौटी यदि कोई है तो वह उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा व शैली है जिसका कि उसने अपनी क ति में प्रयोग किया है। द श्य या श्रव्य काव्य की कथावस्तु की सामग्री से हम उसके रचयिता का मूल्यांकन उतना नहीं कर सकते जितना कि भाषा शैली से। भाषा व शैली ही उसकी स्वयं की होती है जिसके माध्यम से वह अपने स्वयं व अन्य स्थानों तथा विभिन्न स्त्रोतों से ग्रहण किये गये भावों व विचारों को अपनी क ति में प्रकट करता है। कथानक कभी भी पूर्ण रूप से आविष्क त नहीं हो सकता। एक ही कथानक को कई रूपों में भाषा व शैली के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार एक काव्य में भाषा व शैली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्यों में भी मूलतः द श्यकाव्य में भाषा व शैली महत्वपूर्ण तत्त्व है, क्योंकि नाटक अथवा एकांकी प्रत्यक्ष दर्शन का साहित्य है, अतः उसकी भाषा व शैली सरल तथा सुबोध ा होनी चाहिए।

वही नाटक दर्शकों को प्रभावित व आह्लादित कर सकता है जिसकी भाषा सहज बोधगम्य हो। सहज बोधगम्य होने के साथ साथ भाषा का पात्रानुकूल होना भी आवश्यक है। भाषा का महत्त्व इस द ष्टि से भी है कि भाषा के माध्यम से पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है, क्योंकि बोलचाल से ही किसी का व्यक्तित्व आंका जा सकता है। अतः भाषा ऐसी होनी चाहिये जो कि प्रथम-सहज बोधगम्य हो अर्थात् प्रसाद गुण से युक्त हो, द्वितीय-पात्रानुकूल व परिस्थितियों के अनुकूल हो। अधिक आलंकारिक व चमत्कार युक्त भाषा में लिखित नाटक कभी भी दर्शकों को प्रभावित नहीं कर सकता।

भाषा व शैली की कसौटी पर 'म च्छकटिक' एक खरा व अनुपम नाटक है। इसकी भाषा अत्यन्त सरल एवं प्रसाद गुण युक्त है। कवि ने समास प्रधान भाषा का अधिक प्रयोग नहीं किया है। तुलनात्मक द ष्टि से म च्छकटिक की भाषा कालिदास की अपेक्षा अधिक सरल है। यह भास और कालिदास के मध्य की शैली है, संस्क त साहित्य की अलंक त शैली नहीं। पारिभाषिक शब्दों में उसने वैदर्भी रीति को अपनाया है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसमें समास बहुल गौडी रीति को अपनाने की शक्ति ही नहीं थी। कहीं कही पर आवश्यकतानुसार उसने गौडी रीति को भी अपनाया है। वास्तव में उसने भाव व पात्रों के अनुसार अपनी भाषा का परिवर्तन किया है। अपवाद तो प्रायः सभी जगह पर मिल जाते हैं, अतः दो चार अपवादों को छोड़ कर साध ारणतया उसकी भाषा स्पष्ट है। उसकी अभिव्यक्ति में शक्ति है और थोड़े ही शब्दों में स्पष्ट चित्र खींच देने की कला है। यह सच है कि शूद्रक में भवभूति के समान अभिव्यक्ति का सौन्दर्य नहीं है और भावों के सूक्ष्म चित्रण में भी वह पीछे है किन्तु भवभूति की क्लिष्टता से वह मुक्त है। कालिदास का स्निग्ध पद-लालित्य एवं काव्यात्मक सौष्ठव भी शूद्रक की प्रस्तुत रचना में वर्त्तमान नहीं है।

म च्छकटिक की शैली सरल ही नहीं बोलचाल के शब्दों और मुहावरों से युक्त होने के कारण बड़ी लच्छेदार है। यहां पर कतिपय उदाहरणों को प्रस्तुत किया जा रहा है। "मारयति" मारयामि" इत्यादि का जान से मारने के अर्थ में प्रयोग "कुट्टयति कुट्टयिस्यामि' का प्रयोग आजकल की बोलचाल के' लाठी से तुम्हारा सिर कूट दूगाँ' के अर्थ में इसी प्रकार तले हुये मांस के लिये "तलितं मांस" का प्रयोग, भूषणों के झनझनाने के लिये झाणज्झणन्तबहुभूषणशब्दमिश्रं" में झाणज्झणान्त का प्रयोग, "मस्तकं ते मडमडायिस्यामि" के क्रिया पद मडमडाना का प्रयोग, मैना के बोलने के लिये 'कुरकुरायते' का प्रयोग तेल और घी में बघारा हुआ के लिये "व्याघारितं तैलघ तेन मिश्र" में "व्याघारितं" का प्रयोग, घुर-घुर शब्द करने के लिए "घुरघुरायमाणं" का प्रयोग और हारितम् का

हारे हुये अर्थ में प्रयोग, यथा "दयासुवर्णं द्यूते हारितम्" तथा तारा का 'तारक' के लिये प्रयोग ये सभी प्रयोग इस तथ्य के विज्ञापक हैं कि कालिदास तथा भवभूति की अभिजात वाग्धारा से प थक्, देववाणी की एक ऐसा धारा भी प्रवाहशील थी जिसमें शास्त्रीय नियमों की कठोरता को शिथिल कर, जन-साधारण के भाव स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्ति पाते रहे थे। शूद्रक संस्क त प्रेमियों की उस लोक धारा का मुकुटमणि है। उक्त प्रयोग इस बात के भी समर्थक है कि "म च्छकटिक" एक प्राचीन क ति है तथा इसका काल ईसा पूर्व ही है। ऐसे प्रयोग बाद के किसी नाटक व काव्य में दखेने को नहीं मिलते।

इस प्रकार म च्छकटिक सरल शैली में लिखी गई एक सुन्दर क ति है। यद्यपि अलंकार-शास्त्रियों ने म च्छकटिक में लम्बे लम्बे चित्रणों का न होना एक दोष बतलाया है, परन्तु वास्तव में लम्बे वर्णन प्रायः नाटक के प्रवाह में बाधक ही होते हैं साधक नहीं, संवाद जितने संक्षिप्त व सरल होंगें उतने ही दर्शकों को प्रभावित कर सकेंगे। इस प्रकार म च्छकटिक में लम्बे वर्णनों के अभाव से अधिक सजीवता ही आई है जो नाट्य-कला का एक आवश्यक गुण है। फिर भी लम्बे वर्णनों व समास युक्त पदों का पूर्ण अभाव नहीं है। चतुर्थ अंक में वसन्तसेना के प्रासाद का वर्णन और पांचवें अंक में वर्षा और तूफान का वर्णन पर्याप्त लम्बा है। वसन्तसेना के घर का वर्णन लम्बा होने के साथ साथ उबा देने वाला भी है किन्तु वर्षा और तूफान का वर्णन कवित्व की द ष्टि से अत्युत्तम है। वास्तविक स्थिति इस विषय में यह है कि नाटक में नाटककर्त्ता को प्रक ति चित्रण के लिये उतना समय व स्थान नहीं मिल पाता जितना कि एक महाकाव्य के रचयिता को, अतः जो कुछेक स्थान मिल पाते हैं वहां वे अपनी प्रतिभा प्रक ति वर्णन के माध्यम से प्रदर्शित करना चाहते हैं। यही स्थिति 'म च्छकटिक' के रचयिता शूद्रक की है। उकसे द्वारा किया वह वर्णन उसे ललित भाषा में सूक्ष्म भावों के चित्रण में सिद्धहस्त करने के लिए पर्याप्त है। यद्यपि कवित्व की द ष्टि से इसका महत्त्व अत्यधिक है परन्तु नाट्य-कला की द ष्टि से यह नाटक के प्रवाह का बाधक ही माना जायेगा।

शब्द योजना ओर वाक्य विन्यास की द ष्टि से भी भाषा नाटकीय है। भाषा में अभीष्ट गति और प्रवाह है। यही कारण है कि म च्छकटिक के अनेक वाक्यों ने सूक्तियों का रूप धारण कर लिया है, जैसे '**साहसे श्रीः प्रतिवसति' 'शंकनीया हि लोके स्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता' 'न कालमपेक्षते स्नेहः,** इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने लोकोक्तियों के प्रयोग से अपनी भाषा को सजीव बनाने की ओर ध्यान दिया है। इसी हेतु कहीं कहीं पर तो सम्पूर्ण श्लोक ही सूक्तिमय द ष्टिगोचर होता है। यथा - **"शून्यमपुत्रस्य ग हं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम् मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्वशून्यं दरिद्रस्य"** एक उदाहरण और देना पर्याप्त होगा -

"आलाने ग ह्यते हस्ती, वाजी वल्गासु ग ह्यते।
हृदये ग ह्यते नारी यदिदं नास्ति गम्यताम्।"

ऐसे स्थलों पर कहीं कहीं काव्यात्मक सौन्दर्य का अभाव भले ही हो सकता है, परन्तु अर्थगत सौन्दर्य आकर्षक होता है। परन्तु कहीं कहीं पर तो काव्यगत व अर्थ दोनों सौन्दर्य ही प्राप्त होत हैं। इस प्रकार लोकोक्तियों व नीतिपरक सूक्तियों का प्रसंग कवि के भाषा सम्बन्धी पूर्ण अधिकार के द्योतक हैं। इस प्रकार भाषा व शैली सम्बन्धी प्रथम गुण सहज बोधगम्यता हमें शूद्रक की रचना 'म च्छकटिक' में एक दो अपवादों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र मिलता है। भाषा जन-सामान्य के समझने योग्य होने पर प्रभावोत्पादक है।

'म च्छकटिक' की भाषा सम्बन्धी सब से बड़ी जो विशेषता है - वह है उसकी पात्रानुकूलता। उक्त विशेषता का अन्यत्र प्रायः अभाव ही द ष्टिगोचर होता है। पात्रों के अनुकूल प्राक त भाषा का प्रयोग करने में तो शूद्रक बेजोड़ ही हैं। अतः प्राक तों की द ष्टि से भी म च्छकटिक संस्क त का एक अद्वितीय नाटक है। प्राप्त नाटकों में से किसी में भी इतनी अधिक प्राक तों का प्रयोग नहीं है। यहां पर ऐसा अनुमान करना भी युक्ति संगत प्रतीत होता है कि 'नाट्य-शास्त्र' में विभिन्न प्राक तों के प्रयोग के लिये जो विधान दिया गया है उसको चरितार्थ करने के लिये ही शूद्रक ने प्राक त प्रयोग की अपनी योजना कार्यान्वित की है। म च्छकटिक के प्रसिद्ध टीकाकार प थ्वीधर के अनुसार इस प्रकरण में शौरसेनी, अवन्तिका, प्राच्या, मागधी, शाक, चाण्डाली तथा ढक्की इन सात प्राक तों का प्रयोग हुआ है।

कथोपकथन नाटक के प्राण स्वरूप होते हैं और शूद्रक इस कला में सिद्धहस्त हैं, यही कारण है था उनके द्वारा विरचित म च्छकटिक के संवादों में जो ताजगी एवं उत्फुल्लता वर्तमान है, वह संस्क त के अन्य नाट्यकारों में उपलब्ध नहीं होती। नाटक में लम्बे-लम्बे कथोपकथनों का जो कि नाटक की गति में बाधक होते हैं, प्रायः अभाव है और उनके स्थान पर छोटे-छोटे उत्तर-प्रत्युत्तर स्वाभाविकता का प्रदर्शन करते हैं। व्यंग्य और हास्य प्रायः उन्हें और भी सजीव बना देते हैं। उन संवादों को पढ़ने से ऐसा लगता है मानो वे किसी नाटक के नहीं अपितु वास्तविक जीवन के वार्त्तालाप हैं।

"म च्छकटिक" में प्राप्त संवादों की भाषा में सादगी व सरलता है। 'म च्छकटिक' की भाषा को प्रणेता ने कहीं भी जानबूझकर अलंकारों से अलंक त करने का प्रयास नहीं किया है। जितने भी अलंकारों का प्रयोग हुआ है वे सभी अलंकार उसके अर्थ सौन्दर्य की व द्धि के लिए अनायास ही आ गये हैं। कवि ने बलपूर्वक अलंकारों को लादा नहीं है। प्रकरण में ऐसे प्रसंगों का प्रायः अभाव ही है जहां पर कि नाटककार ने पांडित्य प्रदर्शन करने का प्रयास किया हो। जो भी अलंकार नाटक में प्रयुक्त किये गये हैं वे सभी अर्थ-व्यंजना में सहायक हैं तथा काव्य-सौन्दर्य को बढाने में उन्होंने सहयोग प्रदान किया है। अलंकारों में 'शब्दालंकार' व 'अर्थालंकार' दोनों का ही समुचित प्रयोग नाटक में किया गया है।

अलंकारों के अलावा छन्दों का भी समुचित प्रयोग हमें यहां देखने को प्राप्त होता है।

म च्छकटिक का रस-विवेचन तथा काव्य-सौन्दर्य

भारतीय नाट्य-समीक्षा के अनुसार 'रस' रूपक का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। द श्य काव्य के तीन भेदकों में एक 'रस' भी है। वैसे तो कथा, आख्यायिका व महाकाव्य आदि सभी में रसास्वाद होता है परन्तु रस की व्यंजना करना सामाजिकों के हृदय में रसोद्रेक उत्पन्न करना द श्य काव्य का प्रमुख लक्ष्य है।

रस क्या है ? इस विषय में यहां तो हम इतना ही कहना चाहेंगे कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से सहृदयों को जो एक अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है, वही 'रस' है। तथा इस रस की प्रतीति करना या कराना ही रूपकों का मुख्य प्रयोजन है। क्योंकि रस भेदक तत्त्व है अतः विविध रूपकों में भिन्न भिन्न प्रकार के रसों की प्रधानता और गौणता होती है। जहां तक प्रस्तुत 'रूपक' का सम्बन्ध है, यह 'प्रकरण' कोटि का है, अतः इसमें नाट्य-शास्त्र के नियमानुसार श्र ंगार रस प्रधान (अंगी) होता है तथा अन्य रस उसके अंग के रूप में विद्यमान रहते हैं। यद्यपि धनंजय ने वीर को भी मान्यता दी है। 'म च्छकटिक' में स्पष्ट रूप से श्र ंगार रस अंगी रूप में है। श्र ंगार भी दो प्रकार का होता है ? संभोग श्र ंगार और विप्रलंभ श्र ंगार। यहां पर संभोग श्र ंगार अंगी रस है तथा

विप्रलंभ श्र ंगार, करुण, हास्य, भयानक, वीभत्स और वीर आदि उसके अंग हैं। इन सबका संक्षिप्त विवेचन हम इस प्रकार कर सकते हैं -

संभोग श्र ंगार

'म च्छकटिक' में नायक चारुदत्त और नायिका वसन्तसेना के प्रणय का चित्रण किया गया है। वसन्तसेना एक गणिका है जो नाट्य समीक्षा की द ष्टि से सामान्य कोटि की नायिका है। यद्यपि सामान्य नायिका का प्रेम रस की कोटि तक नहीं पहुँचता तथा यहां गणिका वसन्तसेना का प्रेम कुलनारी के समान ही अनन्य प्रेम होने से तथा नाटक के अन्त में उसके द्वारा कुल-वधू के पद को प्राप्त करने से यह प्रेम रस की कोटि तक पहुंच ही जाता है। श्र ंगार रस का स्थायी भाव 'रति' होता है। सामान्य तौर पर 'रति' का आश्रय नायक होता है परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में नायक चारुदत्त के स्थान पर नायिका वसन्तसेना आश्रय के रूप में प्रतीत होती है क्योंकि प्रेम का अंकुर पहले उसी में उत्पन्न होता है तथा प्रणय को गति देने में पहल भी उसी के द्वारा की जाती है। कामदेवायतन में गुणों के भण्डार तथा रूप-यौवन सम्पन्न चारुदत्त को देख कर वसन्तसेना के ह्रदय में ही सर्व-प्रथम अनुराग की लहर उत्पन्न होती है। उसके उक्त प्रणय की सूचना सर्व प्रथम हमें शकार के उस कथन से मिलती है जिसमें कि वह विट को चारुदत्त के घर की समीपता बतलाये हुये कहता है - 'भाव, भाव, यह जन्मदासी कामदेवायतन उद्यान से लेकर उस दरिद्र चारुदत्त से प्रेम करने लगी है, मेरी कामना नहीं करती है। बाँई और उसका घर है।" शकार के उक्त कथन से वसन्तसेना मन की मन प्रसन्न होती है क्योंकि अति शीघ्र ही प्रिय समागम की संभावना है इसी अंक के चतुर्थ द श्य में चारुदत्त और वसन्तसेना परस्पर मिलते हैं। प्रथम चारुदत्त ने उस रदनिका समझ कर जो व्यवहार किया, उसके लिये क्षमा-याचना करता है। साथ ही मन ही मन उसके सौन्दर्य की प्रशंसा भी करता है। परन्तु उसे पराई स्त्री समझ कर (दर्शन करना उचित नहीं समझता) तत्क्षण ही मैत्रेय अपने मित्र की शंका निवारण करता हुआ कहता है - अरे ? पराई स्त्री के दर्शन की शंका से बस करो। यह वसन्तसेना कामदेवायतनोद्यान से लेकर तुझ में अनुरक्त है। इस प्रकार ऊपर शकार व बाद में विदूषक के कथन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रेम सम्बन्धी प्रथम अंकुर वसन्तसेना के ह्रदय में ही उत्पन्न हुआ है।

जहां तक प्रणय व अनुराग का सम्बन्ध है पहल यद्यपि वसन्तसेना द्वारा की गई है, परन्तु चारुदत्त उसके प्रति उदासीन हो ऐसी बात नहीं। चारुदत्त के ह्रदय में भी उसके प्रति अनुराग विद्यमान है। परन्तु अपनी निर्धनता की निबिड़ अनुभूति से वह नितांत दुःखी है तथा अपने को वसन्तसेना का जो कि एक धनाढ्य गणिका है, प्रणयी कहने में हिचकिचाता है। नाटक के द्वितीय, त तीय और चतुर्थ अंक के विप्रलंभ श्र ंगार के अभिव्यंजक भावों से यह संभोग श्र ंगार परिपुष्ट होता है। अंकों में से प्रत्येक अंक नायक के एक ऐसे गुण को नायिका के समक्ष प्रस्तुत करता है जिससे वह अत्यधिक प्रभावित होती है तथा दोनों का प्रणय सूत्र गहन होता जाता है। उदाहरणार्थ - द्वितीय अंक में जुआरी संवाहक ने अपना इतिव त्त कह कर वसन्तसेना के मानस में चारुदत्त के उदार गुणों की छाप अधिक सघन भाव से अंकित कर दी है। इसी अंक का कर्णपूरक वाला प्रसंग भी उसकी आसक्ति को और भी गहन बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है। पंचम अंक में वसन्तसेना अभिसारिका बन कर चारुदत्त से मिलने हेतु जाती है। यहां मेघ-गर्जना और दुर्दिन का अन्धकार तथा विद्युत् की चमक उन दोनों के प्रणय को उद्दीप्त करने में सहायक हुये हैं। ये सभी यहां पर उद्दीपन के रूप में कहे जावेंगे। मेघों की गर्जना से चारुदत्त अत्यन्त उद्दीप्त होकर कह उठता है - 'हे बादल, तुम और अधिक गंभीर गर्जन करो, तुम्हारी क पा से काम से पीडित स्पर्श से रोमांचित एवं उत्पन्न वासना वाला मेरा शरीर कदम्ब पुष्प के सद श हो रहा है।" वसन्तसेना ऐसे ही समय में चारुदत्त के घर

पहुंचती है, वहां वसन्तसेना का आलिगंन करके चारुदत्त अपने कोमल भावों को इस प्रकार प्रकट करता है - "वास्तव में उनके जीवन धन्य हैं जो घर में आई हुई कामिनियों के बादल के जल से शीतल हुये शरीरों का आलिंगन करते हैं।" परन्तु पंचम-अंक का यह मिलन अन्तिम मिलन नहीं कहा जा सकता क्योंकि अग्रिम अंक के प्रारम्भ में ही चारुदत्त से पुनः मिलने के लिये तथा उसके आभ्यंतर प्रवेश का अधिकार प्राप्त करने के लिए वसन्तसेना की उत्सुकता दिखाई गई है। इधर वसन्तसेना साज-श्र ंगार करके प्रिय समागम हेतु उत्सुक है तो उधर सप्तम अंक में चारुदत्त भी वसन्तसेना से मिलने के लिए उत्सुक है परन्तु दैव का विधान, वसन्तसेना का मोटन, चारुदत्त पर अभियोग और म त्युदण्ड। विप्रलंभ करुण दशा को ही पहुंचने वाला है कि पुनर्मिलन होता है और चारुदत्त अकस्मात् कह उठता है - **'अहो, प्रभावः प्रियसंगमस्य म तो पि को नाम पुनर्ध्रियते।'** नाटक के अन्त में पुनः प्रिया की प्राप्ति होती है और वह भी कुल-वधू के रूप में - **"प्राप्ता भूयः प्रियेयम्"।**

इस प्रकार यहाँ प्रारम्भ में संभोग श्र ंगार का उदय होता है और विप्रलंभ इत्यादि रसों से पुष्ट होता हुआ अन्त में परिपक्व दशा को प्राप्त करता है। इस अन्तराल में शकार द्वारा वसन्तसेना के प्रति आकर्षण, उसका पीछा करना, अनुनय करना तथा प्रेम प्रदर्शित करना आदि श्र ंगाराभास कहे जायेंगे।

विप्रलंभ श्र ंगार

संभोग श्र ंगार के साथ-साथ विप्रलंभ का सुन्दर वर्णन भी हमें कहीं-कहीं पर देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ - द्वितीय अंक के प्रारम्भ में हम वसन्तसेना को उद्विग्न व विशेष उत्कण्ठित सी देखते हैं। वह अपने हृदय में कुछ सोच रही है और स्नान आदि में भी उसकी रुचि नहीं है। मदनिका उसकी मनःस्थिति को भांप लेती है और प्रश्न करती है - आर्ये ? दोष द ष्टि नहीं अपितु प्रेम पूछने को प्रेरित करती है कि क्या बात है? .... आर्या के शून्य हृदय के कारण यह जान रही हूं कि हृदयस्थ किसी (प्रेमी) को आर्या चाहती हैं।" इसी प्रकार चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में हम उसे चारुदत्त की चित्र-रचना करने में मग्न देखते हैं। प्रायः चित्रादि की रचनायें विरह की अवस्था में ही होती है। मेघदूत का यक्ष भी अपनी प्रिया के विरह में उसके चित्रादि की रचनायें करता है। इसी प्रकार पंचम-अंक के प्रारम्भ में भी जब विदूषक अपने मित्र चारुदत्त से गणिका प्रसंग छोड़ने की प्रार्थना करता है तो वहां चारुदत्त प्रकट रूप में यह कहता हुआ भी कि "जिसकी सम्पत्ति है उसी की वह कामिनी है", स्वगत कथन में उसके प्रति अपनी उत्सुकता प्रकट करता है - नहीं, यह जन गुण द्वारा वश में करने योग्य है।" साथ ही अग्रिम पंक्ति में विरह-वेदना भी प्रकट करता है। इसी अंक में नायिका वसन्तसेना प्रियमिलन में बाधक मेघों से पीडित होकर विद्युत् की सहानुभूति जगाना चाहती है क्योंकि नारी की वेदना के प्रति नारी ही अधिक संवेदनशील होती है। वह कहती है - "यदि बादल गरजता है तो वह भले गरजे, (क्योंकि) पुरुष निष्ठुर होते हैं। हे बिजली, कामिनियों के दुःख को तुम भी नहीं जानती हो ?" षष्ठम एवं सप्तम अंक में भी हमें विप्रलंभ श्र ंगार के कई स्थल देखने को मिलते हैं। इन अंकों में विरह की उत्कण्ठा उभय पक्षी व्यक्त की गई है। इस प्रकार म च्छकटिक में संभोग श्र ंगार के साथ साथ विप्रलंभ का भी सुन्दर चित्रण किया गया है।

करुण-रस

म च्छकटिक मध्यम वर्ग के समाज से सम्बन्धित है। अतः श्र ंगार के साथ-साथ करुण रस का भी सुन्दर चित्रण इसमें हुआ है। इष्ट की हानि से करुणा का उद्रेक होता है। इसके चित्रण द्वारा सहृदयों को करुण रस का आस्वादन हुआ करता है। वैभवनाश का आलम्बन ग्रहण कर नाटककार

ने नाटक में चारुदत्त की दरिद्रता का वर्णन अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से किया है। साथ ही 'अभियोग' एवं 'प्राण-दण्ड' जैसे विषय को अपने करुण रस का आलम्बन बना कर रस का पूर्ण रूपेण परिपाक किया है। यद्यपि नाटक की कथावस्तु 'चारुदत्त' और वसन्तसेना की प्रणय कथा से सम्बद्ध है। परन्तु जीवन के 'सुखात्मक' और दुःखात्मक दोनो ही पक्षों को नाटककार ने हमारे समक्ष रखा है।

नाटक के प्रथम अंक में चारुदत्त के वैभवनाश तथ दरिद्रावस्था का करुण चित्रण है। दरिद्र-व्यक्ति की शोकजनक दशा देखकर काव्यशास्त्रियों ने 'वैभवनाश' को भी करुण का आलम्बन माना है। यहां पर चारुदत्त आश्रय है, धन-वैभवनाश आलम्बन, ग ह की आर्थिकदशा, मित्रों का विमुखीकरण होना आदि उद्दीपन और विषाद, चिन्ता आदि संचारी भावों से परिपुष्ट करुण रस है।

नाटककार ने करुण-रस के चित्रण के साथ-साथ नायक चारुदत्त के भव्य चरित्र को भी हमारे सामने प्रस्तुत किया है। चारुदत्त यद्यपि निर्धन है, परन्तु उसे अपनी निर्धनता से भी अधिक इस बात का दुःख है कि धन न होने पर मित्रगण विमुख हो जाते हैं। चारुदत्त अपनी वर्त्तमान ग ह-स्थिति को देख कर तथा अपने भूत का स्मरण करके अत्यन्त दुःखी होता है। उसका घर पहले धन-६ ाान्य से सम्पूर्ण था परन्तु अब स्थिति बिल्कुल विपरीत है। वह अपने मित्र मैत्रेय को अपनी हृदय वेदना का परिचय इस प्रकार देता है 'मित्र, दुःखों का अनुभव करने के अनन्तर सुख शोभित होता है, जिस प्रकार गहन अन्धकार में दीपक का दर्शन।" परन्तु जो मनुष्य सुख से निर्धनता को प्राप्त होता हे, वह तो शरीर धारण किये हुये भी म तक के समान जीवन व्यतीत करता है।"

वह इस निर्धनता रूपी दुःख से इतना संतप्त है कि इसकी अपेक्षा वह म त्यु को भी श्रेयष्कर समझता है क्योंकि म त्यु का दुःख तो अस्थायी होता है परन्तु निर्धनता कभी न समाप्त होने वाला दुःख है। मानव के दरिद्र हो जाने से उसके विषय में लोक नीति क्या रहती है, उसको नाटककार ने स्वयं चारुदत्त के मुख से प्रकट करवा कर शोक की मार्मिक अभिव्यंजना की है। बन्धु लोग भी निर्धनता के कारण (निर्धन) पुरुष के कहने में नहीं रहते, अत्यन्त स्नेही मित्र भी विपरीत हो जाते हैं, आपत्तियां अधिक हो जाती हैं। शक्ति क्षय को प्राप्त हो जाती है, चरित्र रूपी चन्द्रमा की शोभा धुंधली हो जाती है, जो दूसरों के द्वारा भी किया गया पाप कर्म है वह उसी का (किया हुआ) समझा जाता है।"

चारुदत्त के उक्त शोक की मार्मिक अभिव्यक्ति त तीय अंक में होती है जबकि वसन्तसेना द्वारा रखी गई धरोहर को चोर चुरा ले जाते हैं। भाग्य की विडम्बना कितनी रहस्यपूर्ण है कि वह मूक ढंग से मानव के भाग्य के साथ अठखेलियां करती हुई, मानव को सताती है। निर्धनता सब आपदाओं की जड़ है इस भय से भयभीत दीन चारुदत्त पर चोर द्वारा धन अपहृत करने पर आघात होता है। वह कह उठता है -

"कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति
शंकनीया हि लोके स्मिन्निष्प्रतापा दरिद्रता।"

वैभवनाश के अतिरिक्त म त आशंका से भी कभी-कभी करुण की उद्भावना होती है। अष्टम-अंक में जब शकार वसन्तसेना द्वारा प्रणय ठुकराने पर क्रोध के कारण गला दबा देता है जब वसन्तसेना मूर्च्छित होकर गिर जाती है। विट उसे म त समझ कर विलाप करता है और वहीं करुण रस की धारा फूट पड़ती है। विट ने अपने शोक को प्रकट करने में रूपक अलंकार का आश्रय लिया है जिससे वह और भी मार्मिक बन गया है।

नाटक में करुण रस की चरम सीमा हमें दशम अंक में देखने को मिलती है। चारुदत्त के म त्युदण्ड की जब घोषणा होती है, उस समय मैत्रेय तथा रोहसेन द्वारा किये गये रुदन तथा चारुदत्त को

वध्य की वेश-भूषा में चांडालों के द्वारा उज्जयिनी की सड़कों पर ले जाये जाते हुये देख कर सम्पूर्ण नगरी की जो स्थिति होती है, वहां करुण रस की परिपक्वावस्था देखने को मिलती है। उसे ऐसी स्थिति में देख कर सम्पूर्ण नगरी शोक से विह्वल हो उठती है और नर-नारियों के नयनों से आंसुओं की धारायें प्रवाहित हो उठती हैं जिससे बादलों के अभाव में भी वर्षा का द श्य उपस्थित हो जाता है। इस प्रकार यहां सम्पूर्ण द श्य अत्यन्त कारुणिक बन गया है तथा शनैः शनैः कारुणिक से कारुणिकतर बनता जाता है। शूद्रक ने करुण रस को व्यापक बनाने के लिए उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति तथा रूपकादि अलंकारों का प्रयोग भी किया है। उसने प्राण-दण्ड से पूर्व चारुदत्त के लिये पुरवासियों द्वारा नीरव शोक की व्यंजना करवाई है। ऐसा गंभीर वातावरण इससे पूर्व 'राम वन गमन के समय' रामायण में दिखाई दिया था।

वध्य-स्थल पर जाता हुआ चारुदत्त अपने सद्वंश का स्मरण करके अत्यन्त दुःखी होता है। वह सहसा नेपथ्य से अपने पुत्र की आवाज सुन कर तथा उसे देखकर अपनी व्यथा इस प्रकार प्रकट करता है -

'चिरं खलु भविष्यामि परलोके पिपासितः।
अत्यल्पमिदमस्माकं निवापोदकभोजनम्।।'

चारुदत्त को अपनी म त्यु का दुःख नाम मात्र का भी नहीं है अपितु दुःख केवल इस बात का है कि म त्यु का निमित्त स्त्री हत्या रूपी कलंक है। साथ ही अपने यश के दूषित होने का भी उसे महान् दुःख है। वह अपने हर दूसरे तीसरे कथन में ऐसे ही भावों को व्यक्त करता है।

इस प्रकार 'म च्छकटिक' में शूद्रक ने शोक के आलम्बन वैभवनाश और प्राण दण्ड को बना कर गंभीर वातावरण उपस्थित किया है, जिससे चारुदत्त के प्रति सहज ही प्रेक्षकों के हृदय में सहानुभूति एवं करुणा जाग त हो उठती है। नाटक में यह कारुणिक वातावरण आत्म ग्लानि, चिन्ता, विषाद और शंका आदि व्यभिचारी से परिपुष्ट किया गया है। शूद्रक की अनुभावों की ओर द ष्टि निरपेक्ष सी रही है। परन्तु दरिद्रता में लोक नीति किस तरह रंग बदलती है उसका रहस्य प्रभावोत्पादक शैली में अभिव्यक्त किया गया है।

हास्य-रस

हास्य और व्यंग्य की द ष्टि से म च्छकटिक एक अद्वितीय एवं महत्त्वपूर्ण नाटक है। सम्पूर्ण संस्क त साहित्य में 'परिहास' की योजना में शूद्रक को कोई पा नहीं सकता। अधिकांश संस्क त साहित्य के नाटककार साधारणतः आदर्श प्रतिपादन करने के लिये ही नाटक रचना करते रहे तथा उनकी इस योजना में हास्य रस प्रायः बाधक ही सिद्ध होता, अतः उन्होंने इसे अपने नाटकों में सम्यक् स्थान प्रदान नहीं किया। यदि कुछेक नाटककारों ने अपने नाटकों में हास्य को स्थान भी दिया तो वे केवल इसके लिये विदूषक पर ही पूर्णरूपेण निर्भर रहे। परन्तु यहां हंसना-हंसाना जीवन का अंग है मात्र विदूषक का कर्म नहीं। 'म च्छकटिक' में स्थित परिहास को हम मुख्य तौर पर तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं : प्रथम शब्दगत, द्वितीय चरित्रगत और त तीय परिस्थिति गत।

१ **'शब्दगत हास':** यह हास मूलतः शब्दों के हेर फेर व श्लेषादि अलंकारों पर पूर्ण रूपेण निर्भर रहता है। उक्त हास्य हमें नाटक के पंचम-अंक में देखने को मिलता है - जहां पर कि चेट कुंभीलक के 'सेना' तथा 'वसन्त' पदों को उलट कर जोड़ने के निर्देश को मैत्रेय यह समझ लेता है कि उसे अपने पैर उलटने को कहा जा रहा है। चेट उसे कहता है - 'अरे मूर्ख बटुक, पद में परिवर्तन करो। तब विदूषक अपने पैर-बदल लेता और वहीं

'सेना-वसन्त' शब्द दुहराता है। उक्त हास योजना में 'पद' शब्द में दो अर्थ चिपके हुये हैं, अतः यहां श्लेष से हास उत्पन्न होता है। ऐसे ही आठवें अंक में बौद्धश्रमण शकार को जब 'उपासक' कह कर सम्बोधित करता है, तब वह उसका अर्थ 'नाई' समझ कर रुष्ट हो जाता है और जब वह फिर उसे धन्यवाद देता है - "त्वं धन्यः त्वं पुण्यः" तब शकार इन शब्दों से चारण, पुजारी तथा कुम्हार का अर्थ ग्रहण कर लेता है। कभी कभी शब्दों की आड में पहेली भी बुझाई गई है, यथा 'सेना' एवं 'वसन्त' शब्दों को बताने के लिये चेट ने क्रमशः ये प्रश्न पूछे हैं - "सम्पत्तिशाली नगरों की रक्षा कौन करता है ?" और किस समय में आम मंजरियां लगती हे। ऐसी ही पहेली का आश्रय चन्दनक तथा वीरक ने एक दूसरे की जाति बताने में षष्ठ-अंक में लिया है।

उक्त उदाहरणों के अतिरिक्त शकार के कथनों में भी हमें शब्दगत व भाषागत हास्य देखने को मिलता है। प्रथम, वह दन्त्य 'स' के स्थान पर हमेशा 'श' जैसा उच्चारण करता है, दूसरे शब्दों में वह 'शकार' बहुला भाषा बोलता है। इसी हेतु उसका नाम भी यही पड़ गया है। द्वितीय, वह पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग का बहुत शौकीन है। उदाहरणार्थ -

"स्नातो हं सलिलजलैः पानीयैरूद्यान उपवनकानने निषण्णः।
नारीभिः सह युवतिभिः स्त्रीभिर्गन्धर्वैः सुविहितैरंगकैः।।"

इसके अतिरिक्त प्रथम अंक में उसने वसन्तसेना के लिये दस समानार्थक विशेषण निश्चित किये हैं। त तीय - वह पौराणिक पात्रों को गलत ढंग से उद्ध त करता है। उदाहरणार्थ - वसन्तसेना को भागती देखकर वह कह उठता है - "राम से डरी हुई द्रौपदी के समान अनेक आभूषणों से शब्द से मिश्रित झनझनाहट के साथ तुम क्यों भागी जा रही हो ?" हनुमान ने विश्वावसु की बहन सुभद्रा का जिस प्रकार अपहरण किया था, उसकी प्रकार यह बलात् में तुम्हारा हरण करता हूं।" इस प्रकार शकार के उक्त समस्त प्रयोग हास्य उत्पन्न करते हैं।

परन्तु वाग्वैदग्ध्य से हास्य उत्पन्न करने में मैत्रेय का सर्वाधिक सहयोग है। संस्क त पढ़ती हुई स्त्री उसे नवनासिका छिद्रित गाय के सूं-सूं शब्द करने के सद श लगती है। वेश्या को वह जूते में पड़ी कंकडी के समान बतलाता है जो जूते से बाहर जल्दी नहीं निकल पाती। चतुर्थ-अंक में वसन्तसेना की माता को देखकर, वह कह उठता है - "हाय इस भद्दी डायन के पेट का विस्तार? तो क्या (महादेव की विशाल मूर्ति के समान) इसको यहां घर में प्रविष्ट करा कर (बाद में) द्वार की शोभा को बनाया गया था।" इस पर चेटी द्वारा यह बताये जाने पर कि "वह व द्धा चौथिया रोग से पीड़ित है, मैत्रेय परिहास में कहता है - "हे भगवन् चातुर्थिक, इस उपकार द ष्टि से मुझ ब्राह्मण को भी देख लो।" इसी प्रकार वसन्तसेना का भाई जो कि रेशमी वस्त्र एवं चमकीले आभूषणों से सुसज्जित था उसे देखकर वह कहता है - "कितना तप करके यह वसन्तसेना का भाई हुआ है।"

किसी अन्य कवि के लिये इतना परिहास पर्याप्त था, पर शूद्रक को इतने से संतोष कहां ? मूल बात तो अभी आगे जाती है जब सूत्रधार परिहास को सत्य समझ बिगड़ उठता है और आपे से बाहर हो वहीं बरस पड़ता है - "सज्जनो देखिये, देखिये। मेरे भात के व्यय द्वारा पारलौकिक पति ढूंढा जा रहा है। अथवा - "अरे दासी के पुत्र जूर्णव द्ध, क्रोधित राजा पालक के द्वारा, नव-वधू के सुवासित केशपाश के समान, तुझे चीरा जाता हुआ मैं कब देखूंगा।" इधर सूत्रधार का पारा इतना गर्म है तो उधर नटी की चेष्टा इतनी नरम "आर्य, प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये। तुम ही दूसरे जन्म में पति होंगे।"

इस प्रकार 'विदूषक' से तो नहीं पर 'भोजन' को लेकर ही स्वयं सूत्रधार और नटी में इतना बड़ा विभेद हो गया कि इतना कुछ आपको हंसना पड़ा।

२. **चरित्रगत हास्यः** 'म च्छकटिक' में दो मुख्य हास्यास्पद चरित्र हैं - मैत्रेय और शकार। उक्त दोनों पात्रों में ऐसी कुछ विशेषतायें हैं जो हास उत्पन्न करती है। मैत्रेय - पारम्परिक विदूषक है। उसकी शारीरिक आक ति तो हास का कारण बनती ही है परन्तु इसके साथ उसकी मूर्खता और उसका भोलापन भी हंसी के कारण बनते हैं। इन सबके अतिरिक्त उसकी भीरूता भी परिहास का विषय बनती है। वह रात्रि में बलि चढ़ाने के लिये घर से बाहर नहीं जाना चाहता - परन्तु जब चारुदत्त उससे अधिक अनुरोध करता है तब वह दीपक तथा रदनिका दासी की आवश्यकता अनुभव करता है। वह घबराहट भी बहुत अधिक अनुभव करता है तथा ऐसी स्थिति में अपने कथन द्वारा हास्य उत्पन्न करता है। उदाहरण के तौर पर जब चारुदत्त के घर में सेंध फोड़कर चोरी की जाती है तब प्रातःकाल जब उसे रदनिका जगाती है - "आर्य मैत्रेय, उठिये, उठिये। हमारे धर में सेंध फोड़ कर चोर निकल गया।" तब वह घबरा जाता है तथा अपना संतुलन खोकर कहता है - "हूं दासी की पुत्री, क्या कहती है, चोर को फोड़ कर सेंध निकल गई।" सुस्वादु भोजन की लोलुपता के कारण वह अपने को हंसी का पात्र बनाता है। इसी स्वाद-लोलुपता से प्रेरित होकर वह वसन्तसेना पर अत्यन्त रुष्ट एवं क्रोधित होकर कहता है - "अहो ? वेश्या का लोभ और अनुदारता? .... इतनी सम्पत्ति युक्त होकर भी उसने मुझ से यह नहीं कहा - 'आर्य मैत्रेय, आराम कीजिये, पात्र से पानी तो पी लीजिये।'

इन सबके अतिरिक्त उसकी अनेक व्यंग्यात्मक उक्तियां जो उसने अपने बारे में, गणिका तथा उसकी माता व उसके भाई के बारे में कही हैं, विचित्र रूप से हास्यप्रद हैं। उसका हास्य न केवल दर्शकों को मनोरंजन प्रदान करने की द ष्टि से ही महत्त्वपूर्ण है अपितु कहीं-कहीं वह परिस्थितियों व मनःस्थितियों के तनाव को ढीला कर देने में भी सहायक सिद्ध होता है। उदाहरणार्थ - पंचम अंक में वसन्तसेना से अपना तौलिया मांग कर। कहीं-कहीं परिस्थिति की वास्तविकता को न देख कर वह अपनी भोली और मूर्खता भरी उक्तियों से हास्य उत्पन्न करता है। उदाहरणार्थ पंचम अंक में जब वह चेटी से निम्नलिखित प्रश्न पूछता है - **चेटि, किं भवत्या इहैव स्वप्तव्यम्।"**

मैत्रेय के समान शकार के चरित्र में भी ऐसी विशेषतायें है जो हास्य उत्पन्न करती हैं। भोजन-प्रियता प्रायः विदूषक का गुण होता है तथा हमारे विदूषक मैत्रेय में भी भोजनप्रियता की कमी नहीं, परन्तु परिस्थिति की प्रतिकूलता उसको कुछ और ही चिन्ता में लगा देती है। परन्तु उसके इस अभाव की पूर्ति नाटककार ने एक अन्य पात्र शकार द्वारा करवाई है। प्रकरण में उसे भोजन से जितना स्नेह है उतना किसी भी दूसरे को नहीं। उस के चेट का भी कहना है-

"रमय च राजवल्लभं ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम्।
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्यां श्वानो म तकं न सेवते।।"

फिर भी शूद्रक की विशेषता इसमें है कि इस चरित्र कवि ने इस पंडितमानी वज्रमूढ़ को भी हास का आलम्बन बना दिया है। उदाहरणार्थ वह वसन्तसेना को प्रस्ताव रखता है - **"अहं वरपुरुषमनुष्यो वासुदेवः कामयितव्यः।"** परन्तु वसन्तसेना उसे यह कहती हुई फटकार देती है - **"शान्तम् शान्तम् अपेहि। अनार्यं मंत्रयसि।"** परन्तु कामुक शकार इसी को प्रसाद

समझ आनन्द-विभोर हो निवेदन करता है - "भाव ? भाव ? तनिक देखो तो सही। यह वेश्या पुत्री वास्तव में मुझ से प्रेम करती है, जिससे मुझे यह कहती है "आओ, थक गये हो, खिन्न हो गये हो मैं न किसी दूसरे गांव को गया था, न किसी दूसरे नगर को गया था। भट्टालिके मैं, अपने पैरों से महानुभाव (विट) के सिर की शपथ उठाता हूं कि तुम्हारे ही पीछे पीछे घूमता हुआ श्रांत और खिन्न हो गया हूँ।

शकार अधिकतर विपरीत कथन द्वारा हंसाने का प्रयास करता है। बात ही उसकी कुछ ऐसी उलटी होती है कि वह बरबस पाठक व दर्शक को हंसने के लिए बाध्य करती है। उदाहरण के तौर पर विट को कहे गये उसके निम्न कथन को देखा जा सकता है - **"श्र णोमि माल्यगन्धम् । अन्धकारपूरितया पूनर्नासिकया न सुव्यक्तं पश्यामि भूषणशब्दम्।"**

इस प्रकार शकार का बात करने का ढंग, वसन्तसेना के प्रति उसका प्रेम प्रदर्शन, स्त्रियों को मारने में शौर्य प्रदर्शन किन्तु मनुष्य और राक्षसी से भयखाना ये सभी बातें उसके चरित्र को हास्यास्पद बना देती हैं। उसकी इस बात को सुन कर किस को हंसी नहीं आ जायेगी कि "इस दरिद्र चारुदत्त को वध के लिये ले जाते समय इतनी भीड़ हो रही है, जिस समय मेरे जैसा श्रेष्ठ मनुष्य वध के लिये ले जाया जायेगा उस समय न जाने कितनी भीड़ होगी।"

इस प्रकार विदूषक मैत्रेय का हास परिहास जहां व्यंग्यपूर्ण तथा सदैव शुद्ध मनोरंजक है वहां शकार की उक्तियाँ प्रारम्भ में मनोरंजक होती हुई भी अन्त में कटु और भयानक हैं।

उक्त दो पात्रों के अतिरिक्त दर्दुरक, कुंभीलक तथा शर्विलक के चरित्र भी समय-समय पर हास्योत्पादक हैं।

३. **परिस्थितिगत हास्यः** परिस्थितियों से उत्पन्न होने वाला हास्य भी कम उल्लेखनीय नहीं है। नाटककार ने परिस्थितिवश कई ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं कि पाठक व दर्शक को हंसने के लिये बाध्य होना पड़े। जुआरी संवाहक की द्यूताध्यक्ष माथुर से बचने के लिये कई प्रकार की हास्यास्पद चेष्टाएँ करना तथा अन्त में उलटे कदम चल कर एक समीपस्थ मन्दिर में शरण लेना और वहां मूर्ति बनकर खड़े हो जाना, अन्य जुआरियों द्वारा उसकी चाल समझ कर वहीं जुआ प्रारंभ कर देना और संवाहक को बोलने के लिये बाध्य कर देना, इस प्रकार के हास्य का सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार पंचम-अंक में वसन्तसेना के आगमन को लेकर जो कुंभीलक तथा मैत्रेय में प्रश्नोत्तर होते हैं तथा जिसमें मैत्रेय परिहास का पात्र बनता है, वहां एक प्रहसनपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है। छठे-अंक में प्रवहण निरीक्षण को लेकर वीरक और चन्दनक का झगड़ा तथा न्यायालय में शकार-मैत्रेय की मारपीट वाला प्रसंग भी कम हास्योत्पादक नहीं है।

इस प्रकार 'हास्य-रस'के सभी पहलू हमें म च्छकटिक में देखने को मिलते हैं। संस्क त-साहित्य में प्रायः हास्य रस की उपेक्षा की गई है तथा जो है वह भी बहुत ही मोटे ढंग का व भद्दा हास्य है, परन्तु म च्छकटिक का हास्य उच्च कोटि का है।

अन्य रस

उक्त प्रमुख रसों के अतिरिक्त बीभत्स, वीर तथा अद्‌भुत रस के भी कुछ उदाहरण हमें नाटक में देखने को मिलते हैं। अष्टम-अंक में शकार द्वारा जीर्णोद्यान में वसन्तसेना का गला घोटना तथा उससे उसके मूर्च्छित हो जाने में बीभत्स रस की प्रतीति होती है। द्वितीय-अंक के अन्त में खुण्टमोडक की भगदड़ में तथा षष्ट-अंक में आर्यक के बन्दीग ह से निकल कर भागने तथा चारुदत्त

की गाड़ी में शरण लेने, मार्ग में उसके निरीक्षण आदि के समय भयानक रस की प्रतीति होती है। चतुर्थ-अंक में शर्विलक द्वारा अपने मित्र आर्य के सम्बन्ध में कही गई उक्तियों में युद्ध वीर की तथा चारुदत्त के वर्णन में दान वीर की और मतवाले गन्धगज से कर्णपूरक द्वारा भिक्षु की रक्षा किये जाने के वर्णन में अद्‌भुत रस की झलक मिलती है। इस प्रकार म च्छकटिक में वैसे तो प्रायः सभी रसों का सुन्दर समन्वय हुआ है परन्तु श्र ंगार, हास्य व करुण रस विशेष रूप से द ष्टव्य हैं।

काव्य-सौन्दर्य

साहित्य शास्त्र में ऐन्द्रिय माध्यम के आधार पर विद्वद्-वर्ग ने काव्य के द श्य और श्रव्य दो भेद किये हैं। नाटक काव्य के प्रथम वर्ग से सम्बन्धित है। परन्तु यह प्रारम्भ से ही 'काव्य' माना जाता रहा है अतएव रंगमंचीय प्रदर्शनीयता के साथ साथ उसमें काव्य सौन्दर्य से युक्त चित्रों को भी सजाये जाने की परम्परा रही है। हमारे यहां के अधिकांश नाटककार कवि पहले हैं तथा नाटककार बाद में, अतः उनके नाटकों में काव्यात्मक द श्यों के आधिक्य का मिलना प्रायः स्वाभाविक सा ही है। परन्तु यहाँ यह स्मरणीय है कि ऐसे वर्णनों की प्रचुरता अधिकांश तौर पर नाटकीय प्रवाह में बाधक ही सिद्ध होती है, साधक नहीं। भवभूति के मालती-माधव में और कुछ सीमा तक उत्तरामचरित में भी ये दोष स्पष्ट दिखाई पड़ता है, जो काव्य की द ष्टि से गुण होते हुये भी नाटक की द ष्टि से दोष ही है। कालिदास के नाटकों में भी काव्यात्मक चित्र मिलते हैं परन्तु वहाँ पर काव्यत्व तथा नाटकत्व दोनों में सामंजस्य सा दिखाई देता है अतः वह पाठक तथा दर्शक को अखरता नहीं। उक्त दोनों नाटकों की तुलना में म च्छकटिक में निःसन्देह वर्णनों का अधिक विस्तार दिखाई नहीं देता। एक आधे स्थल पर यदि काव्य प्रतिभा का प्रयोग किया भी गया है, तो वहां भी उससे नाटकीय प्रवाह को गति ही मिली है, रुकावट नहीं। वैसे नाटककार यदि चाहता तो उसके पास ऐसे कई स्थल थे कि वह अपनी काव्य-प्रतिभा प्रदर्शित कर सकता था परन्तु नाटककार ने नाटकीय गति व प्रवाह को ध्यान में रखते हुये उसे छोड़ना ही अच्छा समझा।

काव्य-शास्त्रियों की द ष्टि में चाहे यह दोष हो सकता है परन्तु हमारी द ष्टि से यह गुण ही कहा जायेगा। इसमें सन्देह नहीं कि प्रक ति चित्रण के द श्य किसी भी रचना को सौन्दर्य का परिधान प्रदान करते हैं परन्तु नाटकीय द ष्टि से वे अस्वाभाविक ही कहे जावेंगे। उदाहरणार्थ - म च्छकटिक का पंचम-अंक जहां वर्षा के वर्णन में कुछ सुन्दर पद्यों की रचना की गई है, वे काव्य की द ष्टि से अवश्य सुन्दर प्रतीत होते हैं परन्तु समीक्षक उनके लिए अंगुलि उठाते ही हैं। तथापि म च्छकटिक में प्रदर्शनीय तत्त्वों का प्राचुर्य है अतः प्रक ति सम्बन्धी कुछ काव्यात्मक चित्रों के होने पर भी इसकी रंगमंचीय अभिरुचि कभी घटती नहीं प्रतीत होती। साथ ही पद-रचना के प्रसादगुण से युक्त होने के कारण नाटकीय प्रवाह में गति ही मिली है। वैसे सरस और शक्तिमती अभिव्यंजना पर कवि का पूर्ण अधिकार है। नवम-अंक में जब शकार न्यायालय में अपने वंश तथा सम्बन्धियों का वर्णन करता है उस समय अधिकरणिक द्वारा कहे गये ये शब्द कितने महत्त्वपूर्ण हें -

"किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः।।"

इस प्रकार थोड़े से चुने हुये सुन्दर पदों के प्रयोग से पूर्ण कथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने की कला में शूद्रक अतीव कुशल प्रतीत होते हैं। म त्यु के अवसर पर चारुदत्त द्वारा कहे गये ये शब्द उसकी निर्भीकता और द ढ़ता का संक्षिप्त परिचय प्रदान करते हैं -

"न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि मे म त्युः पुत्रजन्मसमो भवेत्।।"

भावों की सुन्दर वर्णना ने भी 'म च्छकटिक' के काव्य-सौन्दर्य में व द्धि की है। कवि ने मानवीय भावों का बड़ा ही सुन्दर व स्वाभाविक चित्रण किया है। निर्धन हो जाने पर चारुदत्त अत्यन्त उद्विग्न सा दिखाई देता है परन्तु वह इसलिए चिन्तित नहीं है कि वैभव नष्ट हो गया, वह जानता है कि लक्ष्मी चंचल है तथा भाग्य के अनुसार आती है और चली जाती है, उसे तो इसी बात का संताप है कि सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर मित्रों की मित्रता भी शिथिल हो जाती है। वह विदूषक को स्पष्ट कहता है -

"सत्यं न मे विभवनाशकतास्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य
यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।।"

चोरी के विषय में शर्विलक से जो नाटककार ने कहलवाया है वह अपने आप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चोरी को जन-सामान्य चाहे बुरा माने, लेकिन शर्विलक उसे एक गुण मानता हे। लोग इसे इसलिये बुरा समझते हैं कि लोगों के सो जाने पर उन्हें विश्वास में डालकर उनके साथ धोखाध ाड़ी की जाती है, और इसीलिये उसे वीरता नहीं माना जा सकता। परन्तु शर्विलक व्यावहारिक पक्ष को महत्त्वपूर्ण मानते हुये सोचता है - यह कार्य निन्दनीय है, पर इसको आजीविका बनाने वाला व्यक्ति किसी की नौकरी बजाने के लिये हाथ जोड़े नहीं रहता, और फिर यह कार्य तो पौराणिक व्यक्तियों ने भी किया है, द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा इसके प्रमाण हैं, जिन्होंने रात को सेंध लगा कर पाण्ड़वों के सोते हुये पुत्रों को मारा था। भला यह काम बुरा होता, तो क्या अश्वत्थामा इसे कभी करते ?

नारी के हृदय का चित्रण करने में भी नाटककार शूद्रक अत्यधिक सफल ही रहे हैं। मेघों की गर्जना से भयानक रात्रि की प्रतिक्रिया वसन्तसेना के मानव पटल पर क्या होती है, इसको नितान्त मोहक ढंग से व्यंजित किया है - "हे मूर्खे ! यदि सघन पयोधर (रात्रि पक्ष में - बादल, पत्नी पक्ष में - स्तन वाली) मेरे ही साथ प्रियतम (रात्रि पक्ष में - चन्द्रमा, सपत्नी पक्ष में - चारुदत्त) रमण करता है तो इसमें तुम्हारा क्या ? इस प्रकार की गर्जनाओं से भी बार बार मुझे मना करती हुई (मेरा) रास्ता रोक रही है। जैसे मेरी कोपमयी सपत्नी हो।"

मानव भावनाओं के अन्य भी कई द श्य हमें नाटक में इसी प्रकार देखने को प्राप्त होते हैं। पुत्र के लिये एक पिता के मानस में, उसके हृदय में क्या भाव रहते हैं उनको नाटककार शूद्रक ने चारुदत्त के इन शब्दों में स्पष्ट रूप से हमारे सामने रख दिया है। चारुदत्त फांसी से पूर्व अपने पुत्र से मिलने के समय एक ही बात कहता है और वह सब के लिये समभाव से कहता है -

"इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः।
अचन्दनमनोशीरं हृदयास्यानुलेपनम्।।"

इसी प्रकार कवि ने अनेक स्थलों पर मानव-भावनाओं का सुन्दर तथा स्वाभाविक चित्रण किया है। कवि ने अपनी अनुभूति द्वारा मानव हृदय में प्रवेश करके अनेक सूक्ष्म भावों की मार्मिक अभिव्यंजना की है और मानव प्रक ति के चित्रण में वह अत्यधिक सफल हुआ है।

मानव भावनाओं के चित्रण के साथ-साथ उसने जीवन के अन्य भी पहलुओं को अपनी रचना में अपनाया है तथा उनका हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया है। यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि म च्छकटिक के सभी वर्णन यथार्थ से परिपूर्ण हैं तथा उनमें कल्पना को अधिक स्थान नहीं

दिया गया है। नाटक में कहीं दरिद्रावस्था का चित्रण है तो कहीं वसन्तसेना की कुबेर तुल्य सम्पदाओं का वर्णन है। कहीं पर द्यूतकर्म का विशद वर्णन है तो कहीं सेंध के स्वरूप तथा भेदों का विस्त त व जीवन्त चित्रण है। न्यायालय के द श्य ने नाटक की शोभा में चार चांद लगा दिये हैं।

द्वितीय अंक में जुआरी के मनोविज्ञान का वर्णन भी अत्यधिक सुन्दर बन पड़ा है। यह वर्णन ऋग्वेद के उस जुआरी का स्मरण दिलाता है जो यह सोचता है कि "वह जुआरियों के साथ नहीं जायेगा, जब वे खेलने जायेंगे तो वह पीछे रुक जायेगा किन्तु जैसे ही भूरे पांसों के फेंके जाने की आवाज आती है वह सीधा उस स्थान पर ऐसे चला जाता है जैसे कोई व्यभिचारिणी अपने संकेत स्थल पर।"

इस प्रकार एक ही नहीं अनेक ऐसे सुन्दर वर्णन हमें म च्छकटिक में देखने में मिलते हैं जिनसे नाटक के सौन्दर्य में व द्धि होती हे।

प्रक ति-चित्रण

मानव का प्रक ति से शाश्वत् सम्बन्ध तथा चिरंतन साहचर्य सर्वविदित है। उसका प्रक ति के साथ सम्बन्ध तभी से है जब से वह इस धरातल पर आया।

यों तो धर्म, दर्शन, साहित्य और कला इन सभी में प्रक ति-चित्रण को स्थान मिला है, किन्तु काव्य में इसे सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि काव्य का रचयिता कवि साधारण मानव की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है और वह प्रक ति के विभिन्न द श्यों से बहुत शीघ्र और अधिक अभिभूत होता हे।

शूद्रक भी प्रथम मानव तथा द्वितीय कवि व नाटककार होने के नाते प्रक ति से अपने आापको विमुक्त नहीं कर सका। परन्तु नाटककार होने से 'म च्छकटिक' में प्रक ति का स्वतंत्र रूप द ष्टिगत नहीं होता। फिर भी जो कुछ हमें देखने को मिला है उसे संक्षिप्त में इस प्रकार रखा जा सकता है।

प्रकरण का पंचम-अंक प्रक ति-चित्रण युक्त है। इस अंक में प्रक ति श्र ंगार रस के उद्दीपन के रूप में आई है। यहां वर्षा और तूफान का वर्णन शूद्रक के काव्यत्व का सुन्दर उदाहरण है। रात्रि का समय है। घने बादलों ने चन्द्रिका को आछन्न कर अन्धकार ही अन्धकार फैला दिया है। बिजली चमक रही है और मूसलसाधार वर्षा हो रही है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है जैसे बिजली रूपी रस्सियों से बन्धे हुये ये एक-दूसरे पर आक्रमण करते हुये बादल रूपी हाथी मानों इन्द्र की आज्ञा से व ष्टि की धारा रूपी चान्दी की रज्जुओं से प थ्वी की ऊपर उठा रहे हैं।

"एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः।
शक्राज्ञया वारिधराः सधारा गां रूप्यरज्जेव समुद्धरन्ति।।"

चित्र की मनोरमता अवलोकनीय है। काले उमड़ते बादल काले मतवाले हाथी हैं। काली बिजली की चमकती लकीरें ऐसी शोभती हैं जैसे चमकीली रस्सियों से बादलों की कमर कसी हुई हो, हाथियों की कांख में सोने की जंजीरें लगी हैं, यह बिजली की चमकती लकीरों से भान होता है, जल की गिरती स्वच्छ धारायें रजत् की रस्सियां हैं और इतनी द्रुतगति से ये धारायें प थ्वी पर गिर रही हैं कि उनका क्रम टूटता नहीं, जिसे भान होता है कि ये चमकीली रस्सियां नीचे आकर पुनः प थ्वी को ऊपर खींच रही हैं । इस प्रकार ऊपर खींचने की कल्पना में यह तथ्य ध्वनित है कि पानी की धाराओं का गिरना एक क्षण के लिये भी बाधित नहीं होता और वे धारायें आकाश से कब अलग

होती हैं और प थ्वी को कब छूती हैं, इसका दर्शक को प्रतिभास ही नहीं होता। धारासार वर्षा का इससे अधिक सटीक वर्णन क्या हो सकता है ?

ऐसे समय में वसन्तसेना अभिसारिका बन कर चारुदत्त के पास जा रही है। मार्ग में जाती हुई वह इन्द्र और बादलों से क्रमशः प्रार्थना करती है - प्रार्थना से भी वे प्रसन्न नहीं होते तब उन्हें डाँट फटकार भी सुनाने का कार्य करती है। वह मेघ से कहती है कि "हे मेघ, तुम बड़े निर्लज्ज हो जो प्रियतम के घर जाती हुई मुझे गर्जन से डराकर धारा रूपी हाथों से स्पर्श करते हो।" मेघ से कहने के उपरान्त इन्द्र से कहती है कि "हे इन्द्र, क्या मैं तुम से पहले प्रेम में आसक्त थी जो तुम बादलों के सिंहनाद से गरज रहे हो ? वर्षापात से प्रिय की आशंका करने वाली मेरा मार्ग रोकना उचित नहीं है।" इस पर भी जब उसकी बात की सुनवाई नहीं होती तब वह चिढ़ कर सक्रोध कह उठती है -

"गर्जे वा वर्ष वा शक्र मुंच वा शतशो शनिम्।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति।।"

वर्षा के उक्त उद्दीपनकारी चित्रों के अतिरिक्त रात के अन्धकार तथा चन्द्रोदय के भी दो तीन चित्र जो नाटक में देखने को मिलते हैं वे सटीक एवं सुन्दर बन पड़े हैं। प्रथम अंक में अन्धकार की गहनता का निम्न चित्र अत्यन्त मनोरम व सर्व विदित है -

"लिम्पतीव तमो ंगानि वर्षतीवा जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव द ष्टिर्विफलतां गता।"

उक्त वर्णनों से ज्ञात होता हे कि कवि को प्रक ति से अनुराग अवश्य था परन्तु नाटकीय रक्षा के कारण उसने उसे सीमित स्थान देना ही उचित समझा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नाटकीय द ष्टि से म च्छकटिक संस्क त साहित्य में अनुपम है।

अथ

म च्छकटिकम्

प्रथमों कः

पर्यंकग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो-
रन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धे न्द्रियस्य।
आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वद ष्ट्या
शंभोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः।।१।।

अन्वयः— पर्यंकग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानोः, अन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञान-रुद्धेन्द्रियस्य, तत्त्वद ष्ट्या, आत्मनि, व्यपगतकरणम्, आत्मानम्, एव, पश्यतः, शम्भोः, शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः, समाधिः, वः, पातु।।१।।

शब्दार्थः— पर्यंकग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानोः = पर्यंकनामक योगासन की गाँठ (पलथी) बाँधने में अर्थात् मुद्रा धारण करने में दुहरे सर्प के लपेटने से बँधी हुई जाँघ वाले। अन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य = भीतर ही प्राण आदि वायु के रोक देने से समाप्त हो गया है (बाहरी चीजों का) ज्ञान जिनका ऐसी वश में की गयी इन्द्रियोंवाले। तत्त्वद ष्ट्या = सच्चे ज्ञान रूपी नेत्र से (निर्विकल्पकज्ञान से)। आत्मनि = अपने में, अपने भीतर। व्यपगतकरणम् = इन्द्रिय आदि से रहित, निष्कल अथवा कारणरहित। आत्मानम् = परमात्मा को। एव = ही। पश्यतः = देखनेवाले। शम्भोः = शिव की। शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः = निराकार के देखने से अर्थात् अनुभव करने से होने वाली तल्लीनता के कारण ब्रह्म में लगी हुई। **समाधिः** = ब्रह्म के चिन्तन में पूर्ण लीनता। वः = आप लोगों की। पातु = रक्षा करे।।

'पर्यंक' नामक एक विशेष प्रकार के योगासन की मुद्रा धारण करने में द्विगुणित सर्प के लपेटने से जिस शिव के घुटने कसकर बँधे हुए हैं; (यौगिक क्रिया के द्वारा) प्राण आदि वायुओं को शरीर के भीतर ही रोक देने से जिसकी सभी इन्द्रियाँ (बाहरी वस्तुओं के) ज्ञान से निव त्त एवं (विषयों से) संयत हो गयी हैं, जिन्होंने सच्चे ज्ञान के द्वारा अपने भीतर इन्द्रियादि रहित विशुद्ध चैतन्यरूप केवल परमात्मा को ही देखा है; उस शिव की, निराकार (ब्रह्म) के साक्षात्कार करने से होने वाली एकाग्रता (लय) के कारण ब्रह्म में लगी हुयी समाधि आप सभी (सभा में उपस्थित लोगों) की रक्षा करे।।१।।

टीका— पर्यंकेति-पर्यंकस्य = योगासनविशेषस्य, यः ग्रन्थिः = निर्माणं तस्य बन्धे = धारणे, द्विगुणितः = द्विगुणतां प्राप्तः, योभुजगः = सर्पः तस्य आश्लेषेण = वेष्टनेन, संवीते = बद्धे, जानुनी = जानुद्वयं यस्य तस्य, बद्धपर्यंकासनस्येति भावः; अन्तः = शरीराभ्यन्तरे, प्राणानाम् = प्राणापानादिवायूनाम्, अवरोधेन = निरोधेन, व्युपरतम् = विशेषेण निव त्तम्, सकलम् = समस्तम्, ज्ञानम् = बाह्यविषयज्ञानम् येषां तानि रुद्धानि = सम्यग्वशीकृतानि, इन्द्रियाणि यस्य तस्य; तत्त्वद ष्ट्या = सम्यग्ज्ञानद ष्ट्या; आत्मनिः = स्वस्मिन्; व्यपगतानि = दूरीभूतानि, करणानि = इन्द्रियाणि यस्मात् तम् अथवा व्यपगतम् = दूरीभूतम्, करणम् = जन्म यस्य तम्; आत्मानम् = परमात्मानं स्वचिद्रूपम्; एव; पश्यतः = ध्यायतः; शम्भोः = शिवस्य; शून्यस्य = निराकारस्य, ईक्षणेन = अवलोकनेन, घटितः = सम्पादितः, यः लयः = तल्लीनता तेन ब्रह्मणि

= परब्रह्मणि, लग्नः = सम्पन्नः, समाधिः वः = युष्मान् सामाजिकान्, पातु = रक्षतु।।1।।

इस श्लोक में 'स्रग्धरा' छन्द है। इसका लक्षण है-'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।' इति।।1।।

अपि च,

पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः।
गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते।।2।।

अन्वयः— **यत्र, गौरीभुजलता, विद्युल्लेखा, इव, राजते, श्यामाम्बुदोपमः, नीलकण्ठस्य, कण्ठः, वः, पातु।।2।।**

शब्दार्थः— यत्र = जिसमें, जिस कण्ठ में; गौरीभुजलता = पार्वती की भुजा रूपी लता; विद्युल्लेखा = बिजली की रेखा, इव = जैसी, राजते = शोभित हो रही है; (सः = वह); श्यामाम्बुदोपमः = नीले बादलों के समान; नीलकण्ठस्य = शिवका; कण्ठः = कण्ठ, गला; वः = आप लोगों की, सभा में बैठे सज्जनों की; पातु = रक्षा करे।

और भी-

अर्थः— जिसमें (कण्ठ में) पार्वती जी की बाहु-लता बिजली की पंक्ति की भाँति सुशोभित होती है, वह काले बादलों के समान शंकर जी का कण्ठ आप सब की रक्षा करे।।2।।

टीका— यत्र = यस्मिन्; गौर्याः = पार्वत्याः भुजः = बाहुः एव लता = वल्ली; विद्युतः = तडितः लेखा = रेखा, पंक्तिः; इव = यथा; राजते = शोभते; (सः), श्यामः = नीलवर्णः अम्बुदः = जलदः एव उपमा = साद श्यं यस्य सः; नीलः = नीलवर्णः कण्ठः = गलभागः यस्य तस्य, शिवस्य इत्यर्थः; कण्ठः = गलप्रदेशः; वः = युस्मान् सामाजिकान्; पातु = रक्षतु।।2।।

यहाँ पर लाटानुप्रास रूपक और उपमा से संस ष्टि नामक अलंकार है।

इस श्लोक में 'पथ्यावक्त्र' छन्द है। इसका लक्षण है-युजोश्चतुर्थतोजेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।।2।।

सूत्रधारः—अलमनेन परिषत्कुतूहलविमर्दकारिणा परिश्रमेण। एवमहमार्यमि श्रान्प्रणिपत्य विज्ञापयामि-यदिदं वयं म च्छकटिकं नाम प्रकरणं प्रयोक्तुं व्यवसिताः। एतत्कविः किल,—

(नान्द्यन्ते)

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च।

द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः।।3।।

(मंगलाचरणरूप नान्दी के अन्त में)

सूत्रधारः— सभा में उपस्थित सभ्य लोगों के कुतूहल (नाटक देखने की उत्कण्ठा) को भंग करने वाले इस परिश्रम (मंगलाचरण के विस्तार) को बन्द करो। इस प्रकार आदरणीय एवं सभ्य आप लोगों को प्रणाम करके मैं सूचित करता हूँ कि—हम लोग 'म च्छकटिक' नामक इस 'प्रकरण' का अभिनय करने के लिए उद्यत हैं। निःसन्देह, इसके रचयिता कवि—

अन्वयः— द्विरदेन्द्रगतिः, चकोरनेत्रः, परिपूर्णेन्दुमुखः, सुविग्रहः, च, द्विजमुख्यतमः, अगाधसत्त्वः, शूद्रकः, प्रथितः, कविः, बभूव।।3।।

शब्दार्थः— द्विरदेन्द्रगतिः = गजराज के समान चाल वाले, चकोरनेत्रः = चकोर नामक पक्षी के समान आँखों वाले, परिपूर्णेन्दुमुखः = पूर्णिमा तिथि के चन्द्रमा के समान मुख वाले, सुविग्रहः =

सुन्दर शरीर वाले, च = और, द्विजमुख्यतमः = क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ, अगाधसत्त्वः = अगाध बलवाले, शूद्रकः = शूद्रक, प्रथितः = विख्यात, कविः = काव्य रचयिता, बभूव = हुए।

अर्थः— गजराज के समान मतवाली गति वाले, 'चकोर' नामक पक्षी के समान आँखों वाले, पूर्णिमा तिथि के चन्द्रमा के समान (मनोहर) मुखवाले, सुन्दर सुगठित शरीरवाले, क्षत्रियों (द्वजों) में सर्वश्रेष्ठ एवं अगाधबलशाली 'शूद्रक' नामक विख्यात कवि हुए।।३।।

टीका— द्विरदः = हस्ती, द्विरदेषु इन्द्रः इव द्विरदेन्द्रः = गजराजः तस्य गतिः = गमनम् इव गतिः यस्य सः; गजराजवत् मन्दगमनः इति भावः। चकोरस्य = पक्षिविशेषस्य नेत्रे = नयने इव नेत्रे यस्य सः। चकोरसद शसुन्दरनयनः इति भावः। परिपूर्णः = सकलकलासम्पन्नः इन्दुः = चन्द्रः मुख्यतमः = श्रेष्ठतमः; अगाधम् = विपुलम् सत्त्वम् = बलम् यस्य सः; शूद्रकः = एतन्नामकः; प्रथितः = प्रसिद्धः, कविः = काव्यकलाकुशलः; बभूव = जातः।।३।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा मालभारिणी छन्द है। इस छन्द का लक्षण है—'विषमे स स जा यदा गुरू चेत्। स भ रा येन तु मालभारिणीयम्'।।३।।

अपि च,—

ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादादव्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य।
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रको ग्निं प्रविष्टः।।४।।

अन्वयः— ऋग्वेदम्, सामवेदम्, गणितम्, अथ, कलाम्, वैशिकीम्, हस्तिशिक्षाम्, ज्ञात्वा, शर्वप्रसादात्, व्यपगततिमिरे, चक्षुषी, च, उपलभ्य, पुत्रम्, राजानम्, वीक्ष्य, परमसमुदयेन, अश्वमेधेन, च, इष्ट्वा, दशदिनसहितम्, शताब्दम्, आयुः, च, लब्ध्वा, शूद्रकः, अग्निम्, प्रविष्टः।।४।।

शब्दार्थः— ऋग्वेदम् = ऋग्वेद को, सामवेदम् = सामवेद को, गणितम् = गणित को, अथ = और, कलाम् = न त्य गीत आदि चौंसठ कलाओं को, वैशिकीम् = नाट्यशास्त्र को, हस्तिशिक्षाम् = हाथी स चालन की शिक्षा को, ज्ञात्वा = जानकर, शर्वप्रसादात् = शंकर की कृपा से, व्यपगततिमिरे = अज्ञानरूपी अन्धकार से रहित, चक्षुषी = दोनों नेत्रों को, च, उपलभ्य = पाकर के, पुत्रम् = पुत्र को, राजानम् = राजा के रूप में, वीक्ष्य = देखकर, परमसमुदयेन = परम उन्नति करने वाले, अश्वमेधेन = अश्वमेध नामक यज्ञ से, इष्ट्वा = यजन करके, दशदिनसहितम् = दश दिन के सहित, शताब्दम् = सौ वर्ष तक की, आयुः = जीवन, च, लब्ध्वा = पाकर, शूद्रकः = शूद्रक नाम वाला (कवि, राजा), अग्निम् = आग में, प्रविष्टः = प्रवेश कर गया।।

और भी-

अर्थः— (इस प्रकरण के रचयिता) शूद्रक कवि ऋग्वेद, सामवेद, गणित, न त्यगीत आदि चौंसठ कलाओं, नाट्यशास्त्र एवं हस्तिस चालन की शिक्षा को प्राप्त करके; भगवान शंकर की कृपा से अज्ञान रूपी अन्धकार से रहित नेत्रों ज्ञानरूपी नेत्रों को पा कर; अपने पुत्र को राजा के रूप में देखकर अर्थात् अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बैठाकर एवं परम उन्नति करने वाले 'अश्वमेध' यज्ञ को करके; सौ वर्ष दस दिन की आयु पाकर (अन्त में) अग्नि में प्रविष्ट हो गये।।४।।

टीका— ऋग्वेदम्; सामवेदम्; गणितम्, कलाम् = चतुःषष्ठिसंख्याकां न त्यगीतादिरूपां विद्याम्; वैशिकीम्

= वेशः नेपथ्यग्रहणं तत्सम्बन्धिनीं नाट्यकलाम्; हस्तिशिक्षाम् = गजस चालनादिशिक्षाम्; ज्ञात्वा = प्राप्य; शर्वस्य = शंकरस्य प्रसादात् = अनुग्रहात्; व्यपगतम् = दूरीभूतम् तिमिरम् = अज्ञानान्धकारः ययोः ते; चक्षुषी = नेत्रे, ज्ञाननेत्रे; च, उपलभ्य = प्राप्य; पुत्रम् = सुतम्; राजानम् = राज्यासनासीनम्; वीक्ष्य = द ष्ट्वा; परमः = सर्वाधिकः समुदयः = उन्नतिः यस्मात् सः अथवा परमः समुदयः-सम द्धिः यत्र तेन; अश्वमेधेन = तन्नामकेन यागविशेषेण, इष्ट्वा = यागं विधाय; दशदिनसहितम् = दशदिनाधिकम्; शताब्दम् = शतवर्षमितम्; आयुः = जीवनम्, लब्ध्वा = प्राप्य; शूद्रकः = एतन्नामकः कविः; अग्निम् = वहि्नम्; प्रविष्टः = स्वेच्छया निविष्टः।।४।।

इस श्लोक में 'स्रग्धरा' छन्द है।

अपि च,—

समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुदो वेदविदां तपोधनश्च।
परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव।।५।।

अन्वयः— शूद्रकः, समरव्यसनी, प्रमादशून्यः, वेदविदाम्, ककुदः, तपोधनः, च, परवारणबाहुयुद्धलुब्धः, क्षितिपालः, बभूव, किल।।५।।

शब्दार्थः— शूद्रकः = शूद्रक नाम वाले कवि, समरव्यसनी = युद्ध करने के प्रेमी, प्रमादशून्यः = सावधान, वेदविदाम् = वेद के जानने वालों में, ककुदः = श्रेष्ठ, तपोधनः = तपस्वी, च = और, परवारणबाहुयुद्धलुब्धः = शत्रुओं के हाथियों के साथ मल्लयुद्ध करने के लोभी, क्षितिपालः = प्रजापालक, बभूव = थे, किल = निश्चय ही अथवा ऐसी प्रसिद्धि है।।

और भी-

अर्थः— 'शूद्रक' युद्ध करने के प्रेमी (अभ्यासी), असावधानी रहित अर्थात् सर्वदा सतर्क, वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ, तपस्या को ही अपना धन समझने वाले अर्थात् तपस्वी, शत्रुओं के हाथियों के साथ बाहुयुद्ध करने के लोभी तथा प्रजापालक राजा थे।।५।।

टीका— शूद्रकः = एतत्प्रकरणकर्त्ता कविः; समरेषु = संग्रामेषु व्यसनी = प्रसक्तः; सर्वदा युद्धोद्यतः इति भावः; प्रमादेन = अनवधानतया शून्यः = हीनः; वेदविदाम् = वेदज्ञानाम्; ककुदः = श्रेष्ठः; तपोधनः = तपस्यासंलग्नः; च, परेषाम् = शत्रूणाम् वारणैः = गजैः बाहुयुद्धे = मल्लयुद्धे लुब्धः = साभिलाषः; बभूव = अभवत्; किल = निश्चयेन वा इति प्रसिद्धिः।।५।।

अस्यां च तत्कृतौ,—

अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना।।६।।

अन्वयः— अवन्तिपुर्याम्, द्विजसार्थवाहः, दरिद्रः, युवा, चारुदत्तः, किल, यस्य, गुणानुरक्ता, वसन्तशोभा, इव, वसन्तसेना, गणिका, च।।६।।

शब्दार्थः— अवन्तिपुर्याम् = उज्जयिनी नगरी में, द्विजसार्थवाहः = व्यापारी ब्राह्मण, दरिद्रः = निर्धन (बाद में निर्धन) युवा = युवक, चारुदत्त नाम का व्यक्ति, किल = निश्चय ही (था); यस्य = जिसके; गुणानुरक्ता = गुणों से प्रेम करने वाली, वसन्तशोभा = वसन्त ऋतु का सुन्दरता, इव = जैसी, वसन्तसेना = वसन्तसेना नामवाली, गणिका = वेश्या, च = भी (तत्र = वहाँ, आसीत् = थी)।।

और उनकी इस रचना (म च्छकटिक) में—

अर्थः— उज्जयिनी नगरी में पहले व्यापारी-ब्राह्मण किन्तु बाद में निर्धन युवक 'चारुदत्त' रहता था, जिसके गुणों से अनुरक्त, वसन्त ऋतु की शोभा के समान 'वसन्तसेना' नामक वेश्या भी वहाँ थी।।६।।

टीका— अवन्तिपुर्याम् = उज्जयिन्याम्; द्विज सार्थवाहः, पूर्वम् व्यापार संलग्नः = द्विजः; (सम्प्रति) दरिद्रः = निर्धनः; युवा = युवकः; चारुदत्तः किल = निश्चयेन आसीत्; यस्य = चारुदत्तस्य; गुणैः = सौन्दर्यादिभिः गुणैः अनुरक्ता = वशंगता; वसन्तस्य शोभा = कान्तिः; इव = यथा; वसन्तसेना; गणिका = वेश्या; च आसीद् इति शेषः।।६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा उपेन्द्रवज्रा छन्द है। उपेन्द्रवज्रा का लक्षण है- उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।।६।।

तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं नयप्रचारं व्यवहारदुष्टताम्।
खलस्वभावं भवितव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको न पः।।७।।

अन्वयः— इदम्, तयोः, सत्सुरतोत्सवाश्रयम्, शूद्रकः, न पः, नयप्रचारम्, व्यवहारदुष्टताम्, खलस्वभावम्, तथा, भवितव्यताम्, सर्वम्, चकार, किल।।७।।

शब्दार्थः— इदम् = यह (प्रकरण), तयोः = उन दोनों, चारुदत्त एवं वसन्तसेना की, सत्सुरतोत्सवाश्रयम् = उत्तम विहारलीला का आधार वाला है। शूद्रकः = शूद्रक, न पः = राजा ने, नयप्रचारम् = नीति की गति को, व्यवहारदुष्टताम् = दोषपूर्ण व्यवहार को, खलस्वभावम् = दुर्जनों के चरित्र को, तथा = और, भवितव्यताम् = होनी, भावी को, सर्वम् = इन सबको, चकार = इसमें वर्णित किया है, किल = ऐसी प्रसिद्धि है।।

अर्थः— यह 'म च्छकटिक' नामक प्रकरण उन दोनों (चारुदत्त और वसन्तसेना) की उत्तम विहार-लीला (सम्भोगलीला) का अवलम्बन करके लिखा गया है। राजा 'शूद्रक' ने इसमें नीति की गति दुष्टों के दोषपूर्ण आचरण, दुर्जनों के चरित्र तथा भाग्य-इन सबका वर्णन (प्रणयन) किया है।।७।।

टीका— इदम् = प्रकरणम्; तयोः = चारुदत्तवसन्तसेनयोः; सत् = उत्तमः; सुरतोत्सवः = कामक्रीडाप्रमोदः, सः आश्रयः = अवलम्बनम् यस्य तत्; अस्ति इति शेषः। शूद्रकः न पः = राजा; (अत्र = अस्मिन् प्रकरणे); नयस्य = नीतेः; प्रचारम् = गतिम्; व्यवहारस्य = दुष्टजनाचरणस्य दुष्टताम् = दोषपूर्णताम् अथवा व्यवहारस्य = विवादनिर्णस्य दुष्टताम् = सदोषताम्; खलानाम् = दुष्टानाम् शकारादीनाम् स्वभावम् = प्रकृतिम्; तथा, भवितव्यताम् = दुर्निवार्यां नियतिम्; (एतत्) सर्वं चकार = प्रणिनाय; किल = एताद शी प्रसिद्धि अस्ति।।७।।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार तथा वंशस्थ छन्द है। इस छन्द का लक्षण इस प्रकार है- जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।।७।।

(परिक्रम्यावलोक्य च) अये, शून्येयमस्मत्संगीतशाला, क्व नु गताः कुशीलवा भविष्यन्ति। (विचिन्त्य) आं, ज्ञातम्;

शून्यमपुत्रस्य ग हं चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम्।
मूर्खस्य दिशः शून्याः सर्वं शून्यं दरिद्रस्य।।८।।

अर्थः— (घूमकर और चारों ओर देखकर) अरे! हमारी संगीतशाला तो खाली है, नट और चारण (अभिनय करने वाले पात्र) कहाँ गये होंगे? (सोचकर) अच्छा, समझ गया;

अन्वयः— अपुत्रस्य, ग हम्, शून्यम्, यस्य, सन्मित्रम्, न अस्ति, चिरशून्यम्, मूर्खस्य, दिशः शून्याः, दरिद्रस्य,

सर्वम्, शून्यम्।।८।।

शब्दार्थ— अपुत्रस्य = पुत्रविहीन का, ग हम् = घर, शून्यम् = सूना है। यस्य = जिसका, सन्मित्रम् = सच्चामित्र, न = नहीं, अस्ति = है, उसका घर, चिरशून्यम् = हमेशा सूना है, मूर्खस्य = मूर्ख की, दिशः = सभी दिशाएँ शून्याः = सूनी, दरिद्रस्य = निर्धन का, सर्वम् = सब कुछ, शून्यम् = सूना होता है।

अर्थः— पुत्रहीन व्यक्ति का घर सूना है अर्थात् बालक के बिना किसी भी व्यक्ति का घर सूना लगता है, जिस व्यक्ति के सच्चे मित्र नहीं हैं उसका (भी) घर सदा से सूना है। मूर्ख के लिये सभी दिशाएँ सूनी (आश्रयरहित) हैं, और निर्धन के लिए सब कुछ सूना है। यही कारण है कि मेरे नट एवं चारण आदि अभिनय करने वाले व्यक्ति मुझको निर्धन समझकर अपनी इच्छा के अनुसर विचरण करते हैं।)।।८।।

टीका— अपुत्रस्य = पुत्ररहितस्य; ग हम् = वासस्थानम्; शून्यम् = रिक्तम्, इव प्रतिभाति। यस्य = जनस्य; सन्मित्रम् = साधुसखा, नास्ति = न वर्तते; तस्य ग हम् = निकेतनम्; चिरशून्यम्-चिराय = बहुकालाय शून्यम्। मूर्खस्य = अज्ञस्य; दिशः = सर्वाः काष्ठाः; शून्याः = निष्फलाः। सन्ति। दरिद्रस्य = निर्धनस्य; सर्वम् = निखिलं स्थानं, शून्यं भवति।।८।।

यहाँ पर अप्रस्तुत (दरिद्रता) से प्रस्तुत कार्य (संगीतशाला की शून्यता) का वर्णन करने के कारण 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द है 'आर्या'। इसका लक्षण है-

'यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा त तीये पि।
अष्टादशद्वितीये चतुर्थके प चदश सा र्या।।'८।।

कृतं च संगीतक मया। अनेन चिरसंगीतोपासनेन ग्रीष्मसमये प्रचण्डदिन-करकिरणोच्छुष्कपुष्करबीजमिव प्रचलिततारके क्षुधा ममाक्षिणी खटखटायेते। तद्यावद्ग हिणीमाहूय प च्छामि, अस्ति किंचित्प्रातराशो न वेति। एषो स्मि भोः, कार्यवशात्प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी संव त्तः। अविद अविद भोः! चिरसंगीदोवासणोण सुक्खपोक्खरणालाईं विअ मे बुभुक्खाए मिलाणाइ अंगाइ। ता जाव गेहं गदुअ जाणामि, अत्थि किं पि कुडुंबिणीए उववादिदं ण वेत्ति। (परिक्रम्यावलोक्य च) एदं तं अम्हाणं गेहं, ता पविसामि। (प्रविश्यावलोक्य च) हीमाणहे, किं णु खु अम्हाणं गेहे अवर विअ संविहाणअं वट्टदि। आआमितंडुलोदअप्पवाहा रच्छा, लोहकडाहपरिअत्तणकसणसारा किदविसेसआ विअ जुअदी अहिअदरं सोहदि भूमी। सिणिद्धगंधेण उद्दीविअंती विअ अधिअं बाधोदि मं बुभुक्खा। ता किं पुव्वविढत्तं णिहाणं उप्पण्णं भवे। आदु अहं ज्जेव्व बुभुक्खादो ओदाणमअं जीअलोअं पेक्खामि। णत्थि किल पादरासो अम्हाणं गेहे। पाणच्चअं बाधेदि मं बुभुक्खा। इध सव्वं णवं विअ संविहाणं वट्टदि। एक्का वण्णअं पीसेदि, अवरा सुमणाओ गुंफेदि। (विचिन्त्य) किं ण्णेदं। भोदु। कुडुंबिणिं सद्दाविअ परमत्थं जाणिस्सं। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य।) अज्जे! इदो दाव। (अविद, अविद भोः! चिरसंगीतोपासनेन शुष्कपुष्करनालानीव मे बुभुक्षया म्लानान्यंगानि। तद्यावद्ग हं गत्वा जानामि, अस्ति किमपि कुटुम्बिन्या उपपादितं न वेति। इदं तदस्माकं ग हम्, तत्प्रविशामि। आश्चर्यम्! किं नु खल्वस्माकं ग हे परमिव संविधानकं वर्तते। आयामितणडुलोदकप्रवाहा रथ्या, लोहकटाहपरिवर्तनकृष्णसारा कृतविशेषकेव युवत्यधिकतरं शोभते भूमि। स्निग्धगन्धेनोद्दीप्यमानेवाधिकं बाधते मां बुभुक्षा। तत्किं पूर्वार्जितं निधानमुत्पन्नं भवेत्। अथवाहमेव बुभुक्षात ओदनमयं जीवलोकं पश्यामि। नास्ति किल प्रातराशो स्माकं ग हे। प्राणाधिकं बाधते मां बुभुक्षा। इह सर्वं नवमिव संविधानकं वर्तते। एका वर्णकं पिनष्टि,

अपरा सुमनसो ग्रथ्नााति। किंन्विदम्? भवतु, कुटुम्बिनीं शब्दाप्य परमार्थं ज्ञास्यामि। आर्ये! इतस्तावत्।)

अर्थः— मैंने संगीत-कार्य को कर लिया है। अधिक समय तक इस संगीत में लगे रहने से (परिश्रम के कारण) भूखवश च चल पुतलियों वाली मेरी आँखें उसी प्रकार खट-खटा रही हैं (बिचलित हो रही हैं), जिस प्रकार गर्मी के समय में सूर्य की प्रचण्ड किरणों से सूखे हुए कमल के बीज (कमल के फल में) खट-खटाते हैं। तो जब तक अर्थात् इसलिए पत्नी को बुलाकर पूछता हूँ कि प्रातराश (जलपान) है अथवा नहीं। यह मैं प्रयोजनवश तथा प्रयोग (बात-चीत) की सरलता के कारण प्राकृत भाषा बोलने वाला हो गया हूँ।

खेद है कि देर तक संगीत की उपासना अर्थात् संगीत का कार्य करने से भूख के कारण मेरे सभी अंग सूखे हुए कमल के नाल की भाँति मलिन हो गये हैं। तो जब तक अर्थात् इसलिए, मैं घर जाकर पता लगाता हूँ कि मेरी स्त्री ने (खाने के लिये) कुछ बनाया भी है अथवा नहीं। (घूमकर और देखकर) तो, यही हमारा घर है। अतः इसमें प्रवेश करता हूँ। (प्रवेश कर और देखकर) आश्चर्य! यह क्या? हमारे घर में तो कुछ दूसरा ही आयोजन हो रहा है। गली चावलों के फैले हुए जल के प्रवाह से व्याप्त है। लोहे की कड़ाही को माँजने के लिए इधर-उधर घुमाने से चितकबरी हुयी भूमि, तिलक लगाये हुयी युवती की भाँति, अत्यधिक शोभित हो रही है। (पकवान आदि की) स्निग्ध सुगन्ध से उद्दीप्त हुई सी भूख मुझे अधिक पीड़ित कर रही है। तो क्या पूर्वजों के द्वारा स चित खजाना निकल आया। अर्थात् मिल गया है? अथवा मैं ही भूख के कारण संसार को भातमय अर्थात् पका हुआ चावलमय देख रहा हूँ। हमारे घर में तो जलपान की सामग्री है ही नहीं। भूख के कारण मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। यहाँ सब नवीन सा ही आयोजन हो रहा है। एक स्त्री कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य पीस रही है, दूसरी फूलों को गूँथ रही है। (सोचकर) यह क्या बात है? अच्छा, ग हिणी को बुलाकर वास्तविक बात का पता लगता हूँ। (नेपथ्य = पर्दा की ओर देखकर) आर्ये! इधर तो आना।

नटी— (प्रविश्य।) अज्ज! इअं म्हि। (आर्य! इयमस्मि।)

सूत्रधारः— अज्जे! साअदं दे। (आर्ये! स्वागतं ते।)

नटी— आणवेदु अज्जो को णिओओ अणुचिट्टीअदुत्ति। (आज्ञापयत्वार्यः को नियोगो नुष्ठीयतामिति।)

सूत्रधारः— अज्जे! ('चिरसंगीदोवासणेण' इत्यादि पठित्वा।) अत्थि किं पि अम्हाणं गेहे असिदव्वं ण वेत्ति। आर्ये! अस्ति किमप्यस्माकं गेहे शितव्यं न वेति।)

नटी— अज्ज! सव्वं अत्थि। (आर्य! सर्वमस्ति।)

सूत्रधारः किं किं अत्थि?। (किं किमस्ति?।)

नटी - तं जघा — गुडोदणं घिअं दहीं तंडुलाइं, अज्जेण अत्तव्वं रसाअणं सव्वं अत्थि त्ति। एवं ते देवा आसासेंतु (तद्यथा—गुडौदनं घ तं दधि तण्डुलाः, आर्येणात्तव्यं रसायनं सर्वमस्तीति। एवं तव देवा आशासन्ताम्।)

सूत्रधारः— किं अम्हाणं गेहे सव्वं अत्थि? आदुपरिहससि? (किमस्माकं गेहे सर्वमस्ति? अथवा परिहससि?)

नटी — (स्वगतम्) परिहसिस्सं दाव। (प्रकाशम्) अज्ज! अत्थि आवणे। (परिहसिष्यामि तावत्। आर्य! अस्त्यापणे।)

सूत्रधारः— (सक्रोधम्) आः, अणज्जे! एव्वं ते आसा छिज्जिस्सदि। अभावं अ गमिस्ससि। जं दाणिं अहं वरंडलंबुओ विअ दूरं उक्खिविअ पाडिदो। (आः अनार्ये! एवं तवाशा छेत्स्यति, अभावं च गमिष्यसि। यदिदानीमहं वरण्डलम्बुक इव दूरमुत्क्षिप्य पातितः।)

नटी— मरिसेदु मरिसेदु अज्जो, परिहासो खु एसो (मर्षतु मर्षत्वार्यः, परिहासः खल्वेषः।)

सूत्रधारः— ता किं उण इमं णवं विअं संविहाणअं वट्टदि एक्का वण्णअं पीसेदि, अवरा सुमणाओ गुंफेदि, अहं अ प चवण्णकुसुमोवहारसोहिदा भूमी। (तत्किं पुनरिदं नवमिव संविधानकं वर्तते? एका वर्णकं पिनष्टि, अपरा सुमनसो गुम्फति, इयं च प चवर्णकुसुमोपहारशोभिता भूमिः।)

नटी— अज्ज उववासो गहिदो। (अद्योपवासो ग हीतः।)

सूत्रधारः— किंणामधेओ अअंउववासो? (किंनामधेयो यमुपवासः?)

नटी— अहिरूअवदी णाम। (अभिरूपपतिर्नाम।)

सूत्रधारः— अज्जे! इहलोइओ आदु पारलोइओ? (आर्ये? इहलौकिको थवा पारलौकिकः?)

नटी— अज्ज! पारलोइओ। (आर्य! पारलौकिकः।)

सूत्रधारः— (सरोषम्।) पेक्खंतु पेक्खंतु अज्जमिस्सा, ममकेरकेण भत्तपरिव्वएण पारलोइओ भत्ता अण्णेसीअदि। (प्रेक्षन्तां प्रेक्षन्तामार्यमिश्राः! मदीयेन भक्तपरिव्ययेन पारलौकिको भर्तान्विष्यते।)

नटी— अज्ज! पसीद पसीद। तुमं ज्जेव्व जम्मंतरे वि भविस्ससि त्ति उववसिदम्हि। (आर्य! प्रसीद प्रसीद। त्वमेव जन्मान्तरे पि भविष्यसीत्युपोषिता स्मि।)

सूत्रधारः— अध अअं उववासो केण दे उविदिट्ठो?। (अथायमुपवासः केन तवोपदिष्ट?)

नटी— अज्ज्स्स ज्जेव्व पिअवअस्सेण जुण्णवुड्ढेण। (आर्यस्यैव प्रियवयस्येन जूर्णव द्धेन।)

सूत्रधारः— (सकोपम्।) आः दासीए उत्ता जुण्णुवुड्ढा, कदा णु हु तुमं कुविदेण रण्णा पालएण णववहूकेसहत्थं विअ सुसुअंधं कप्पिज्जंतं पेक्खिस्सं। (आः दास्याःपुत्र जूर्णव द्ध! कदा नु खलु त्वां कुपितेन राज्ञा पालकेन नववधूकेशहस्तमिव ससुगन्धं छेद्यमानं प्रेक्षिष्ये।)

नटी— पसीददु अज्जो। अज्जस्स ज्जेव्व पारलोइओ अअं उववासो अणुचिट्ठीअदि। (इति पादयोः पतति।) (प्रसीदत्वार्यः। आर्यस्यैव पारलौकिको यमुपवासः अनुष्ठीयते।)

सूत्रधारः— अज्जे! उट्ठेहि। कधेहि एत्थ उववासे केण कज्जं? (आर्ये! उत्तिष्ठ। कथयात्रोपवासे केन कार्यम्?)

नटी— अम्हारिसजणजोग्गेण बम्हणेण उवणिमंतिदेण। (अस्माद शजनयोग्येन ब्राह्मणेनोपनिमन्त्रितेन।)

सूत्रधारः— अदो गच्छदु अज्जा। अहं पि अम्हारिसजणजोग्गं बम्हणं उवणिमंतेमि। (अतो गच्छत्वार्या। अहमप्यस्माद शजनयोग्यं ब्राह्मणमुपनियमन्त्रयामि।)

नटी— जं अज्जो आणवेदि। (यदार्य आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता।)

सूत्रधारः— (परिक्रम्य।) हीमाणहे, ता कधं मए एव्वं सुसमिद्धाए उज्जइणीए अम्हारिसजणजोग्गी बम्हणो अण्णेसिदव्वो?। (विलोक्य।) एसो चारुदत्तस्स मित्तं मित्तेओ इदो ज्जेव्व आअच्छदि। भोदु, पुच्छिस्सं दाव। अज्ज मित्तेअ! अम्हाणं गेहे असिदुं अग्गणी भोदु अज्जो। (आश्चर्यम्, तस्मात्कथं मयैवं सुसम द्धायामुज्जयिन्यामस्माद शजनयोग्यो ब्राह्मणो न्वेषितव्यः?।

एष चारुदत्तस्य मित्रं मैत्रेय इत एवागच्छति। भवतु, प्रक्ष्यामि तावत्। अद्य मैत्रेय! अस्माकं ग हे शितुमग्रणीर्भवत्वार्यः।)

अर्थः—

नटी— (प्रवेश करके अर्थात् म च पर आकर) आर्य! यह (मैं) हूँ।

सूत्रधार— आर्ये! तुम्हारा स्वागत है।

नटी— आर्य! आज्ञा दें, किस आदेश का पालन किया जाय?

अर्थः— सूत्रधार —आर्ये! (बहुत देर तक संगीत कार्य करने से, इत्यादि पूर्वोक्त वाक्य कहकर) हमारे घर में खाने के योग्य कुछ है अथवा नहीं?

नटी— आर्य! सब कुछ है।

सूत्रधार— क्या-क्या है?

अर्थः— नटी — तो, जैसे-गुड़-भात, घी, दही, चावल आर्य के खाने के योग्य सब प्रकार का सरस भोजन है। इस प्रकार आप के देवगण आशीर्वाद दें।

अर्थः— सूत्रधार —क्या हमारे घर में सब कुछ है? अथवा तुम मेरी हँसी उड़ा रही हो?

नटी— (अपने मन में) तो परिहास करूँगी। (प्रकट रूप में) आर्य! बाजार में हैं।

अर्थः— सूत्रधार —(क्रोध के साथ) री दुष्टे! इसी प्रकार तुम्हारी भी आशा भंग होगी और तू अभाव को प्राप्त होओगी। क्योंकि इस समय मैं लकड़ी के लम्बे लट्ठे से बँधे हुए मिट्टी के बड़े ढेले की भाँति काफी ऊँचा उठाकर पटक दिया गया हूँ अर्थात् आशा दिखला कर निराश किया गया हूँ।

अर्थः— नटी — आर्य! क्षमा करें, क्षमा करें; यह परिहास ही था।

अर्थः— सूत्रधार — तो फिर यह कैसा नवीन-सा आयोजन है? एक स्त्री कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्य पीस रही है, दूसरी फूलों को गूँथ रही है और यह सामने की भूमि पाँच रंग के फूलों के उपहार से शोभित है।

नटी— आज उपवास ग्रहण किया है।

सूत्रधार— इस उपवास का क्या नाम है?

नटी— यह 'अभिरूपपति' नामक व्रत है अर्थात् इस व्रत के करने से स्त्री को सुन्दर पति मिलता है।

सूत्रधार— आर्ये! इस लोक में होने वाला पति अथवा परलोक में?

नटी— आर्य! परलोक में होने वाला।

सूत्रधार— (क्रोध के साथ) सज्जन गण! देखिए, देखिए। मेरे भात अर्थात् अन्न को व्यय करके पारलौकिक पति ढूँढ़ा जा रहा है।

नटी— आर्य! प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये। तुम्हीं दूसरे जन्म में भी मेरे पति होओगे, इसीलिए व्रत कर रही हूँ।

सूत्रधार— अच्छा, यह उपवास तुमको किसने बतलाया है?

नटी— आपके ही प्रियमित्र 'जूर्णव द्ध' ने।

अर्थः—

सूत्रधार – (क्रोधपूर्वक) अरे! दासी के पुत्र जूर्णव द्ध! क्रुद्ध राजा 'पालक' के द्वारा, नयी वधू के सुगन्धित केशपाश की भाँति, तुझे चीरा जाता हुआ मैं कब देखूँगा?

नटी– आर्य प्रसन्न हों। यह पारलौकिक व्रत तो आर्य के लिए ही किया जा रहा है। (ऐसा कहकर पैरों पर गिरती है।)

सूत्रधार– आर्ये! उठो। बतलाओ कि इस उपवास में क्या करना चाहिए?

नटी– अपने अनुरूप ब्राह्मण को निमन्त्रित करना चाहिए।

सूत्रधार– अच्छा, आर्ये! अब तुम जाओ। मैं भी अपने योग्य ब्राह्मण को निमन्त्रित करता हूँ।

नटी– जैसी आर्य की आज्ञा। (ऐसा कह कर चली जाती है)।

सूत्रधार– (घूम कर) आश्चर्य! तो मेरे द्वारा इस प्रकार भली भाँति सम्पन्न 'उज्जयिनी'' नगरी में अपने योग्य ब्राह्मण कैसे ढूँढ़ा जाय? (देखकर) यह 'चारुदत्त' का मित्र 'मैत्रेय' इधर ही आ रहा है। अच्छा, (इससे) पूछूँ तो। आर्य मैत्रेय! आज आप हमारे घर भोजन करने के लिए अग्रणी हों अर्थात् चलें।

(नेपथ्ये)

भो! अण्णं बम्हणं उवणिमंतेदु भवं; वावुडो दाणिं अहं। (भोः! अन्यं ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयतु भवान्; व्याप त इदानीमहम्।)

सूत्रधारः– अज्ज! संपण्णं भोअणं णीसवत्तं च। अवि अ दक्खिणा वि दे भविस्सदि। (आर्य! संपन्नं भोजनं निःसपत्नं च। अपि च दक्षिणापि ते भविष्यति।)

(पुनर्नेपथ्ये)

भो, जघा दाणिं पढमं ज्जेव्व पच्चादिट्ठोसि, ता को दाणिं दे णिब्बंधो पदे पदे मं अणुबंधेदुं (भोः, यदिदानीं प्रथममेव प्रत्यादिष्टो सि, तत्क इदानीं ते निर्बन्धः पदे पदे मामनुरोद्धुम्?)

सूत्रधारः– पच्चादिट्टो म्हि एदिणा। भोदु, अण्णं बम्हणं उवणिमंतेमि। (प्रत्यादिष्टो स्म्येतेन। भवतु, अन्यं ब्राह्मणमुपनिमन्त्रामि।) (इति निष्क्रान्तः)

इत्यामुखम्।

(प्रविश्य प्रावारहस्तः)

मैत्रेयः– ('अण्णं बम्हणं' इति पूर्वोक्तं पठित्वा) अथवा, मए वि मित्तेएण परस्स आमंतणआइं पक्खिदव्वाइं। हा अवत्थे! तुलीअसि। जो णाम अहं तत्थभवदो चारुदत्तस्स रिद्धीए अहोरत्तं पअत्तसिद्धेहिं उग्गारसुरहिगंधेहिं मोदएहि ज्जेव्व आसिदो अब्भंतरचदुस्सालअदुए उवविट्टो मल्लक्कसदपरिवुदो चित्तअरो विश्र अंगुलीहिं छिविअ छिविअ अवणेमि। णअरचत्तरवुसहो विअ रोमंथाअमाणो चिट्ठामि, सो दाणिं अहं तम्स दलिद्ददाए जहिं तहिं चरिअ गेहपारावदो विअ आवासणिमित्तं इध आअच्छामि। एसो अज्जचारुदत्तस्स पिअवअस्सेण जुण्णवुड्ढेण जादीकुसुमवासिदो पावारओ अणुप्पेसिदो सिद्धीकिददेवकज्जस्स अज्जचारुदत्तस्स उवणेदव्वो त्ति। ता जाव अज्जचारुदत्तं पेक्खामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एसो अज्जचारुदत्तो सिद्धीकिददेवकज्जो गिहदेवदाणं बलिं हरेतो इदो ज्जेव्व आअच्छदि। (अथवा मयापि मैत्रेयेण परस्यामन्त्रणकानि समीहितव्यानि? हा अवस्थे! तुलयसि। यो नामाहं तत्रभवतश्चारुदत्तस्य ऋद्ध्या होरात्रं

प्रयत्नसिद्धैरुद्‌गारसुरभिगन्धिभिर्मोदकैरेवाशितो भ्यन्तरचतुःशालकद्वार उपविष्टो मल्लकशतपरिव तश्चित्रकर इवांगुलीभिः स्प ष्ट्वा स्प ष्ट्वापनयामि, नगरचत्वरव षभ इव रोमन्थायमानस्तिष्ठामि, स इदानीमहं तस्य दरिद्रतया यत्र तत्र चरित्वा ग हपारावत इवावासनिमित्तमत्रागच्छामि। एष चार्यचारुदत्तस्य प्रियवयस्येन जूर्णव द्धेन जातीकुसुमवासितः प्रावारको नुप्रेषितः सिद्धीकृतदेवकार्यस्यार्यचारुदत्तस्योपनेतव्य इति। तद्यावदार्यचारुदत्तं पश्यामि। एष आर्यचारुदत्तः सिद्धीकृतदेवकार्यो ग हदेवतानां बलिं हरन्नित एवागच्छति।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टश्चारुदत्तो रदनिका च)

चारुदत्तः— **(ऊर्ध्वमवलोक्य सनिर्वेदं निःश्वस्य च)**

यासां बलिः सपदि मद्‌ग हदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।
तास्वेव संप्रति विरूढत णांकुरासु
बीजा जलिः पतति कीटमुखावलीढः।।६।।

(नेपथ्य में)

अरे! आप दूसरे ब्राह्मण को निमन्त्रण दें। इस समय मैं कार्य में व्यस्त हूँ।

सूत्रधार— आर्य! भोजन तैयार है तथा इसमें दूसरा विपक्षी भी नहीं है अर्थात् एकमात्र आप ही खाने के लिए निमन्त्रित हैं और दक्षिणा भी तुम्हें मिलेगी।

(फिर नेपथ्य में)

अरे! अभी पहले ही जब तुम्हें मना कर दिया गया है अर्थात् तुम्हारा निमन्त्रण अस्वीकृत कर दिया गया है, तब इस समय पग पग पर मुझसे अनुरोध करने के लिए तुम्हारा यह कैसा हठ है?

सूत्रधार — इसने तो मुझे इन्कार कर दिया। अच्छा, दूसरे ब्राह्मण को निमन्त्रित करता हूँ।

(ऐसा कह कर बाहर चला जाता है)।

(आमुख समाप्त)

(हाथ में उत्तरीय वस्त्र = दुपट्टा लिए हुए प्रवेश करके)

मैत्रेय— ('दूसरे ब्राह्मण को....' इत्यादि पूर्वोक्त वाक्य को पढ़कर) अथवा, मुझ मैत्रेय को भी दूसरों के निमन्त्रण की इच्छा करनी चाहिए? हा अवस्थे! तुम मेरी परीक्षा ले रही हो। जो मैं श्रद्धेय 'चारुदत्त' की सम्पन्नता के कारण अर्थात् 'चारुदत्त' की सम्पन्नता की अवस्था में यत्नपूर्वक बनाए गये, खाने के बाद डकार में सुगन्धि लाने वाले लड्डुओं को रात-दिन खाकर त प्त, भीतरी चतुःशाला के द्वार पर बैठा हुआ, सैकड़ों मल्लकों (रंगों से भरे हुए कसोरा) से घिरे हुए चित्रकार की भाँति, (खाद्य-पदार्थों से भरे हुए सैकड़ों पत्रपुटों = दोना को) अंगुलियों से छू-छू कर छोड़ देता था, नगर के प्रांगण के साँड़ की भाँति जुगाली करता बैठा रहता था, वही मैं इस समय उन चारुदत्त की निर्धनता के कारण पालतू कबूतर की भाँति जहाँ-तहाँ घूमकर (भोजन के लिए भटककर) निवास करने के लिए यहाँ चारुदत्त के घर में आ रहा हूँ। आर्य 'चारुदत्त' के प्रिय मित्र 'जूर्णव द्ध' ने चमेली के फूलों से सुवासित यह उत्तरीय भेजा है कि देवताओं की पूजा से निव त्त हो जाने पर इसे आर्य 'चारुदत्त' के पास पहुँचा देना अर्थात् आर्य 'चारुदत्त' को दे देना। तो तब तक आर्य 'चारुदत्त' को देखता हूँ।

(घूमकर और देखकर) यह आर्य 'चारुदत्त' देवताओं की पूजा से निव त्त होकर ग ह-देवताओं की बलि (पूजा की सामग्री) लेकर इधर ही आ रहे हैं।

(इसके बाद ग ह देवताओं की पूजन-सामग्री हाथ में लिए 'चारुदत्त' और 'रदनिका' प्रवेश करते हैं।)

अन्वयः— यासाम्, मद्‌ग हदेहलीनाम्, बलिः, सपदि, हंसैः, च, सारसगणैः, विलुप्तपूर्वः, सम्प्रति, वरूढत णांकुरासु, तासु, एव, कीटमुखावलीढः, बीजा जलिः, पतति।।६।।

शब्दार्थः— यासाम् = जिन, मद्‌ग हदेहलीनाम् = हमारे घर की देहलियों की, बलिः = पूजा में चढ़ाये गये अक्षत आदि, सपदि = शीघ्र ही, हंसैः = हंसों के द्वारा, च = और, सारसगणैः = सारस पक्षियों के झुंडों के द्वारा, विलुप्तपूर्वः = पहले खाकर समाप्त कर दी जाती थी, सम्प्रति = इस समय, विरूढत णांकुरासु = उगे हुए त णांकुरों से युक्त, तासु = उन देहलियों पर, एव = ही, कीटमुखावलीढः = कीड़ों के मुख के द्वारा खायी गयी, बीजा जलिः = बीजों, (चावलों आदि) की अ जलि, पतति = गिरती है।

अर्थः— **चारुदत्त—** (ऊपर की ओर देखकर और दुःख के साथ लम्बी साँस लेकर)

मेरे घर की जिन देहलियों पर रक्खे गये पूजा के अक्षत आदि पदार्थ पहले (मेरी सम्पन्न दशा में) हंस और सरसों के द्वारा (खाये जाकर) समाप्त कर दिये जाते थे; आज (निर्धनता की अवस्था में) उगे हुए त णांकुरों से युक्त उन्हीं देहलियों पर कीड़ों के मुख-द्वारा खाये हुए बीजों की अ जलि गिरती है।।६।।

(ऐसा कहकर धीरे-'धीरे घूमकर बैठ जाता है।)

टीका— यासाम्, मम = चारुदत्तस्य ग हाणि = भवनानि इति मद्‌ग हाणि तेषाम् या देहल्यः = द्वारपीण्डिकाः, बहिर्द्वारस्य काष्ठखण्डविशेषाः, तासाम्; बलिः = पूजाप्रयुक्ताक्षतादिद्रव्यम्; सपदि = झटिति; हंसैः = मरालैः; च = तथा; सारसानाम् = पक्षिविशेषाणाम् गणैः = समूहैः; पूर्वम् विलुप्तः = भक्षितः इति विलुप्तपूर्वः; सम्प्रति = अधुना; मम दारिद्र्यकाले इत्यर्थः; विरूढाः = संस्काराभावात् व द्धिंगताः त णांकुराः = शष्पांकुराः यासु तासु; तासु = ग हदेहलीषु; एव; कीटमुखैः = कीटाननैः अवलीढः = खण्डितः आस्वादितो वा; बीजानाम् = तण्डुलादीनाम् अ जलिः = समूहः; पतति = पतितो भवति।।६।।

इस श्लोक में 'पर्याय' अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है। इस छन्द का लक्षण है- 'उक्ता वसन्ततिलका त भ जा ज गौ गः'।।६।।

(इति मन्दं मन्दं परिक्रम्योपविशति)

विदूषकः— एसो अज्ज्चारुदत्तो। ता जाव संपदं उवसप्यामि। (उपस त्य) सोत्थि भवदे। वड्ढदु भवं। (एष आर्यचारुदत्तः। तद्यावत्सांप्रतमुपसर्पामि। स्वस्ति भवते। वर्धतां भवान्।

चारुदत्तः—अये! सर्वकालमित्रं मैत्रेयः प्राप्तः। सखे! स्वागतम्। आस्यताम्।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (उपविश्य) भो वअस्स! एसो दे पिअवअस्सेण जुण्णवुड्ढेण जादीकुसुमवासिदो पावारओ अणुप्पेसिदो सिद्धीकिददेवकज्जस्स अज्जचारुदत्तस्स तुए उवणेदव्वो त्ति। (समर्पयति) (यद्भवानाज्ञापयति। भो वयस्य! एष ते प्रियवयस्येन जूर्णव द्धेन जातीकुसुमवासितः प्रावारको नुप्रेषितः सिद्धीकृतदेवकार्यस्यार्यचारुदत्तस्य त्वयोपनेतव्य इति।)

(चारुदत्तो ग हीत्वा सचिन्तः स्थितः)

विदूषकः - भो! किं इदं चिंतीअदि?। (भोः, किमिदं चिन्त्यते?।)

चारुदत्तः - वयस्य!

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां ध तः शरीरेण म तः स जीवति।।१०।।

अर्थः— विदूषक — यह आर्य चारुदत्त हैं। तो मैं अब इनके समीप चलता हूँ। (समीप जाकर) आप का कल्याण हो। आप की व द्धि हो।

चारुदत्त— अरे! सब समय का मित्र अर्थात् सुख-दुःख का समान मित्र मैत्रेय आया है। मित्र! स्वागत है। बैठिए।

विदूषक— जैसी आप की आज्ञा। (बैठकर) हे मित्र! चमेली के फूलों से सुगन्धित यह उत्तरीय आपके प्रिय मित्र 'जूर्णव द्ध' ने भेजा है (और कहा है कि) तुम इसे देवताओं की पूजा से निव त्त हुए आर्य 'चारुदत्त' को दे देना। (समर्पित करता है।)

('चारुदत्त' ग्रहण करके चिन्तित हो जाता है।)

विदूषक— अरे! क्या सोच रहे हो?

अन्वयः— घनान्धकारेषु, दीपदर्शनम्, इव, दुःखानि, अनुभूय, सुखम्, हि, शोभते, यः, नरः, सुखात्, दरिद्रताम्, याति, सः, शरीरेणः, ध तः, अपि, म तः, (इव), जीवति।।१०।।

शब्दार्थः— घनान्धकारेषु = गाढ़े अँधेरे में, दीपदर्शनम् = दीपक के प्रकाश (की), इव = भाँति, दुःखानि = कष्ट, अनुभूय = अनुभव करके, सुखम् = सुख, आनन्द, हि = निश्चित, शोभते = शोभित होता है। तु = किन्तु, यः = जो, नरः = व्यक्ति, सुखात् = सुख से अर्थात् सुख भोग करके, दरिद्रताम् = दरिद्रता को, याति = जाता है, प्राप्त होता है, सः = वह, शरीरेण = शरीर से, ध तः = धारण किया गया, अपि = भी, म तः = मरा, इव = जैसा, जीवति = जीवित रहता है।

अर्थः— **चारुदत्त—** मित्र! घने अन्धकार में दीपक के प्रकाश की भाँति दुःखों का अनुभव करने के अनन्तर सुख शोभित होता है। किन्तु जो मनुष्य सुख भोग करके निर्धनता को प्राप्त होता है वह तो शरीर से रहता हुआ भी अर्थात् शरीर धारण करते हुए भी म तक के समान जीवन व्यतीत करता है।।१०।।

टीका— घनाः = निबिडाः अन्धकाराः = तिमिराणि तेषु; दीपदर्शनम् = दीपप्रकाशः इव; दुःखानि = कष्टानि, अनुभूय = विज्ञाय; स्थितस्य जनस्येति शेषः; सुखम् = आनन्दः; हि = अवश्यम्; शोभते = राजते; तु = किन्तु; यः नरः = मनुष्यः; सुखात् = आनन्दानुभवात् अनन्तरमिति शेषः; दरिद्रताम् = निर्धनताम्; याति = गच्छति, प्राप्नोतीत्यर्थः; सः = जनः; शरीरेण = कायेन; ध तः = संयुक्तः; अपि, म तः = निष्प्राणः; इव = यथा; जीवति = प्राणान् धारयति ।।१०।।

इस श्लोक के पहले वाले आधे हिस्से में उपमा अलंकार और उत्तर वाले भाग में अप्रस्तुत प्रशंसा तथा ('म तः स जीवति') में विरोधाभास अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-वंशस्थ। छन्द का लक्षण इस प्रकार है- ''जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'।।१०।।

विदूषकः— भो वअस्स! मरणादो दालिद्दादो वा कदरं दे रोअदि? (भो वयस्य! मरणाद्दारिद्र्याद्वा कतरत्ते रोचते?)

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।।११।।

अर्थः— विदूषक — हे मित्र! म त्यु और निर्धनता में से तुम्हें कौन-सी अच्छी लगती है?

अन्वयः— दारिद्र्यात्, मरणात्, वा, मम, मरणम्, रोचते, दारिद्र्यम्, न, (यतः), मरणम्, अल्पक्लेशम्, (अस्ति), दारिद्र्यम्, अनन्तकम्, दुःखम्, (अस्ति)।।११।।

शब्दार्थ— दारिद्र्यात् = निर्धनता से, मरणात् = मरने से, अर्थात् निर्धनता और म त्यु में से, वा = इसका प्रयोग विकल्प के अर्थ में होता है, मम = मुझे, मरणम् = म त्यु, रोचते = अच्छी लगती है, दारिद्र्यम् = निर्धनता, न = नहीं; (यतः = क्योंकि), मरणम् = म त्यु, अल्पक्लेशम् = कम दुःखदायी, (अस्ति = है), दारिद्र्यम् = दरिद्रता, अनन्तकम् = अनन्त, कभी भी न समाप्त होने वाला, दुःखम् = दुःख, (अस्ति = है)।।

अर्थः— **चारुदत्त—** मित्र! दरिद्रता और म त्यु में से मुझे म त्यु अच्छी लगती है, दरिद्रता नहीं। म त्यु कम कष्टवाली होती है, किन्तु दरिद्रता कभी न समाप्त होने वाला दुःख है अर्थात् दरिद्रता में जीवन पर्यन्त दुःख भोगना पड़ता है।।११।।

टीका— दारिद्र्यात् = दैन्यात् निर्धनत्वाद्वा; मरणात् = जीवनत्यागात्; वा; दैन्यमरणयोः मध्ये इत्यर्थः; मम = चारुदत्तस्य, मरणम् = म त्युः; रोचते = प्रीणाति; दारिद्र्यम् = दैन्यम्; न रोचते इति शेषः। यतः मरणम् = म त्युः; अल्पक्लेशः अल्पः = दारिद्र्यात् लघुः, क्लेशः = दुःखम् यस्मिन् तत्, अस्ति; दारिद्र्यम् = निर्धनत्वम्; तु अनन्तकम् = न विद्यते अन्तः = समाप्तिः यस्य तत् ताद शम्; दुःखम्। जीवनपर्यन्तं दुःखप्रदत्वात् दारिद्र्यम् अनन्तदुःखमेवेति तात्पर्यम्।।११।।

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में उक्त आर्य के साथ उत्तरार्द्ध वाक्य का अर्थ हेतुरूप में अन्वित होता है, अतः यहाँ काव्यलिंग अलंकार है। अथवा सामान्य से विशेष का समर्थन होने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है आर्या।।११।।

विदूषकः— भो वअस्स! अलं संतप्पिदेण। पणइजणसंकामिदविहवस्स सुरजणपीदसेसस्स पडिवच्चंदस्स विअ परिक्खओ वि दे अहिअदरं रमणीओ। (भो वयस्य! अलं संतप्तेन; प्रणयिजनसंक्रामितविभवस्य सुरजनपीतशेषस्य प्रतिपच्चन्द्रस्येव परिक्षयो पि ते धिकतरं रमणीयः।)

चारुदत्तः— वयस्य! न ममार्थान्प्रति दैन्यम्। पश्य,—

एतत्तु मां दहति यद्ग हमस्मदीयं
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्।।१२।।

अर्थः— विदूषक — हे मित्र! दुःख करना व्यर्थ है प्रेमीजनों को सम्पत्ति दे डालने वाले आपको निर्धनता भी देवों के द्वारा पीने से बचे हुए प्रतिपदा तिथि के चन्द्रमा की (क्षीणता की) भाँति, अत्यधिक अच्छी लगती है।

अन्वयः— भ्रमन्तः, मधुकराः, कालात्यये, संशुष्कसान्द्रमदलेखम्, करिणः, कपोलम्, इव, अतिथयः, क्षीणार्थम्, इति, यत्, अस्मदीयम्, ग हम्, परिवर्जयन्ति, एतत्, तु, माम्, दहति।।१२।।

शब्दार्थः— भ्रमन्तः = इधर-उधर घूमने वाले, मधुकराः = भौंरे, कालात्यये = समय बीत जाने पर अर्थात् मद बहने के समय के समाप्त हो जाने पर, संशुष्क-सान्द्रमदलेखम् = सूखी हुई गाढ़ी मद की धारा वाले, करिणः = हाथी के, कपोलम् इव = गण्डस्थल की भाँति, अतिथयः = मेहमान, आगन्तुक, क्षीणार्थम् = धन से हीन, इति = ऐसा (समझकर), यत् = जो कि, अस्मदीयम् = हमारे, ग हम् = घर को, परिवर्जयन्ति = छोड़ दे रहे हैं, एतत् = यह, तु = ही, माम् = मुझको, दहति = जला रहा है।

अर्थः— **चारुदत्त—** मित्र! धन नष्ट हो जाने के विषय में मुझे दुःख नहीं है। देखो—

मुझे यह बात सन्तप्त कर रही है कि हमारे घर को धन से रहित समझ कर अतिथि लोग इसका उसी प्रकार से परित्याग करते हैं, जिस प्रकार (मद बहने के) समय के बीत जाने पर मँडराने वाले भौंरे सूखी हुई गाढ़ी मद की धारा वाले हाथी के गण्डस्थल (कपोल) को त्याग देते हैं।।१२।।

टीका— भ्रमन्तः = इतस्ततः चरन्तः, मधुकराः = भ्रमराः; कालस्य = मदसमयस्य अत्यये = अपगमे; संशुष्काः = शोषं प्राप्ताः सान्द्राः = निबिडाः; मदलेखाः = मदप्रवाहरेखाः यस्य यस्मिन् वा तम्; करिणः = हस्तिनः; कपोलम् = गण्डस्थलम्; इव = यथा; न विद्यते तिथिः द्वितीया अथवा न विद्यते तिथिः = निर्धारितः कालः येषां ते अतिथयः = अभ्यागताः; क्षीणार्थम् = धनहीनम्; इति = इत्थम् मत्वा इति शेषः, यत् अस्मदीयम् = मामकीनम्; ग हम् = भवनम्; परिवर्जयन्ति = विहाय अन्यत्र गच्छन्ति; एतत् = अतिथिपरिवर्जनम्; तु = एव, अर्थात् अतिथिपरिवर्जनमेव; माम् = चारुदत्तम्; दहति = सन्तापयति।।१२।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है। इस छन्द का लक्षण है—'उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौ गः।।'१२।।

विदूषकः— भो वअस्स! एदे खु दासीए पुत्ता अत्थकल्लवत्ता वरडाभीदा विअ गोवालदारआ अरण्णे जहिं जहिं ण खज्जंति तहिं तहिं गच्छंति। (भो वयस्य! एते खलु दास्याःपुत्रा अर्थकल्यवर्ता वरटाभीता इव गोपालदारका अरण्ये यत्र यत्र न खाद्यन्ते तत्र तत्र गच्छन्ति।

चारुदत्त— वयस्य!

सत्यं न मे विभवनाशकृतास्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।
एतत्तु मां दहति नष्टधनाश्रयस्य
यत्सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।।१३।।

अर्थः— विदूषक — हे मित्र! दासी के पुत्र, प्रातःकालीन जलपान की भाँति (तुच्छ) ये धन वन में बर्रे से डरे हुए गायों के चरवाहों की भाँति वहीं-वहीं जाते हैं जहाँ खाये नहीं जाते।

अन्वयः— सत्यम्, मे, चिन्ता, विभवनाशकृता, न, अस्ति, हि, धनानि, भाग्यक्रमेण, भवन्ति, (तथा) यान्ति, तु, एतत्, माम्, दहति, यत्, जनाः, नष्टधनाश्रयस्य, सौहृदात्, अपि, शिथिलीभवन्ति ।।१३।।

शब्दार्थः— सत्यम् = वस्तुतः, मे = मेरी, चिन्ता, विभवनाशकृता = धन के नाश से होनेवाली, न = नहीं, अस्ति = है, हि = क्योंकि, धनानि = सम्पत्तियाँ, भाग्यक्रमेण = भाग्य के अनुसार, भवन्ति होती हैं, तथा, यान्ति = चली जाती हैं। तु = किन्तु, एतत् = यह, माम् = मुझको, दहति = जलाता है, यत् = कि, जनाः = लोग, नष्टधनाश्रयस्य = धनरूपी आश्रय के नष्ट हो जाने

वाले (व्यक्ति) की, सौहृदात् = मित्रता से, अपि = भी, शिथिलीभवन्ति = उदासीन हो जाते हैं।

अर्थः— **चारुदत्त—** मित्र।

वस्तुतः, मुझे धन के नष्ट हो जाने की चिन्ता नहीं है, क्योंकि भाग्य के अनुसार धन प्राप्त होते और चले जाते हैं। किन्तु यह बात मुझे जलाती है कि जिसका धनरूपी आश्रय नष्ट हो जाता है अर्थात् जो निर्धन हो जाता है उसकी मित्रता से भी लोग शिथिल हो जाते हैं।।१३।।

टीका— सत्यम् = वस्तुतः; मे = मम; चिन्ता = परितापभावना; विभवनाशेन = धनक्षयेण कृता = विहिता, धननाशोत्पन्ना इत्यर्थ; न = नहि; अस्ति = वर्तते; हि = यतः; धनानि = विभवा; भाग्यस्य = दैवस्य क्रमेण = अनुसारेण; भवन्ति = जायन्ते; तथा, यान्ति = नश्यन्ति; किंकृता तर्हि चिन्ता? इत्याह-तु = किन्तु; एतत् माम् = निर्धनम् चारुदत्तम्, दहति = सन्तापयति; यत् जनाः = लोकाः; धनमेव आश्रयः धनाश्रय नष्ट = क्षीणः धनाश्रय = विभवाश्रयः यस्य तस्य निर्धनस्येत्यर्थ; सौहृदात् = मित्रभावात्; शिथिलीभवन्ति = प्रयोजनविरहात् मित्रताम् अपि परित्यजन्ति।।१३।।

प्रथमार्द्ध में काव्यलिंग अलंकार तथा 'नष्टधनाश्रयस्य' में रूपक अलंकार होने से इस श्लोक में संकर अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।१३।।

अपि च,—

दारिद्र्याद्ध्रियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रंश्यते तेजसो
निस्तेजाः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम्।।१४।।

अन्वयः— (मनुष्यः) दारिद्र्यात्, ह्रियम्, एति, ह्रीपरिगतः, तेजसः, प्रभ्रंश्यते, निस्तेजः, परिभूयते, परिभवात्, निर्वेदम्, आपद्यते, निर्विण्णः, शुचम्, एति, शोकपिहितः, बुद्ध्या, परित्यज्यते, निर्बुद्धिः, क्षयम्, एति, अहो, निर्धनता, सर्वापदाम्, आस्पदम्।।१४।।

शब्दार्थः— (मनुष्य) दारिद्र्यात् = दरिद्रता से, ह्रियम् = लज्जा को, एति = प्राप्त होता है, ह्रीपरिगतः = लज्जित व्यक्ति, तेजसः = तेजस्विता से, प्रताप से, प्रभ्रंश्यते = भ्रष्ट होता है, निस्तेजः = तेजहीन, परिभूयते = तिरस्कृत, अपमानित होता है, परिभवात् = तिरस्कार से, निर्वेदम् = खेद को, ग्लानि को, आपद्यते = प्राप्त करता है, निर्विण्णः = ग्लानियुक्त, शुचम् = शोक को, एति = प्राप्त होता है, शोकपिहितः = शोकाकुल, बुद्ध्या = बुद्धि के द्वारा, परित्यज्यते = छोड़ दिया जाता है, निर्बुद्धिः = बुद्धिहीन, क्षयम् = नाश को, एति = जाता है, प्राप्त होता है, अहो = खेद है, निर्धनता = दरिद्रता, सर्वापदाम् = सभी आपत्तियों की, आस्पदम् = जड़ (है)।।

अर्थः— और भी—

(मनुष्य) दरिद्रता से लज्जा को प्राप्त होता है, लज्जित (व्यक्ति) तेज रहित हो जाता है, तेजहीन तिरस्कृत होता है, तिरस्कार से ग्लानि को प्राप्त होता है, ग्लानियुक्त शोक सन्तप्त होता है, शोकाकुल व्यक्ति बुद्धि (विवेक) के द्वारा त्याग दिया जाता है अर्थात् शोकाकुल

व्यक्ति विवेक को खो बैठता है, और निर्बुद्धि नाश को प्राप्त होता है—अहो! दरिद्रता सभी आपत्तियों की जड़ है।।१४।।

टीका— मनुष्यः = जनः; दारिद्र्यात् = निर्धनत्वात्; ह्रियम् = लज्जाम्; एति = याति; लज्जितः भवति; ह्रिया = लज्जया परिगतः = आच्छन्नः; तेजसः = प्रतापात्; प्रभ्रंश्यते = प्रच्युतः भवति; निस्तेजः = तेजहीनः; परिभूयते = तिरस्क्रियते, जनैः इति शेषः; परिभवात् = तिरस्कारात्; निर्वेदम् = ग्लानिम्; आपद्यते = प्राप्नोति; निर्विण्णः = ग्लानियुक्तः; शुचम् = शोकम्; एति = प्राप्नोति; शोकेन = वेदनया पिहितः = आविष्टः; बुद्ध्या = विवेकेन; परित्यज्यते = विहीयते; निर्बुद्धिः = बुद्धिहीनः; क्षयम् = नाशम्; एति = गच्छति; अहो = एतत् आश्चर्यद्योतकम् अव्ययम्; निर्धनता = दरिद्रता; सर्वापदाम् = सर्वासाम् आपदाम् = विपत्तीनाम्; आस्पदम् = स्थानम्।।१४।।

यहा कारणमाला अलंकार है। 'यथोत्तरं चेत् पूर्वस्यार्थस्य हेतुता तदा कारणमाला स्यात्'।

इस श्लोक के छन्द का नाम शार्दूलविक्रीडित है,—लक्षण—''सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्''।।१४।।

विदूषकः— भो वअस्स! तं ज्जेव अत्थकल्लवत्तअं सुमरिअ अलं संतप्पिदेण। (भो वयस्य! तमेवार्थकल्यवर्तं स्म त्वालं संतापितेन।)

चारुदत्तः— वयस्य! दारिद्र्यं हि पुरुषस्य,—

निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम्।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात्परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति संतापयति च।।१५।।

अर्थः— विदूषकः— हे मित्र! प्रातःकालीन जलपान रूप उसी धन का स्मरण कर दुःख करना व्यर्थ है।

अन्वयः— (हि, दारिद्र्यम्, पुरुषस्य) चिन्तायाः, निवासः, परपरिभवः, अपरम्, वैरम्, मित्राणाम्, जुगुप्सा, स्वजनजनविद्वेषकरणम्, च, कलत्रात्, परिभवः, (भवति, अतः) वनम्, गन्तुम्, बुद्धिः, भवति, च, हृदिस्थः, शोकाग्निः, न, दहति (किन्तु दरिद्रम्) सन्तापयति च।।१५।।

शब्दार्थः— हि = क्योंकि, दारिद्र्यम् = गरीबी, पुरुषस्य = पुरुष की, चिन्तायाः = चिन्ता का, निवासः = घर (है), परपरिभवः = दूसरों के द्वारा किये जाने वाले अनादर का कारण है, अपरम् = दूसरी, विलक्षण, वैरम् = शत्रुता (है); मित्राणाम् = मित्रों की, जुगुप्सा = घ णा है, स्वजनजनविद्वेषकरणम् = अपने भाई बन्धुओं तथा अन्य लोगों के द्वेष का कारण है, कलत्रात् = स्त्री के पास से अर्थात् स्त्री के द्वारा, परिभवः = तिरस्कार, (भवति) = होता है, अतः = इसीलिये वनम् = वन को, गन्तुम् = जाने के लिये, बुद्धिः = विचार, भवति = होता है, च = वन जाने की इच्छा में स्त्री का तिरस्कार कारण है, यह भाव इससे सूचित होता है, हृदिस्थः = हृदय में वर्तमान, शोकाग्निः = शोकरूपी आग, न = नहीं, दहति = जलाती है (किन्तु, दरिद्रम् = दरिद्रको) सन्तापयति = सन्तप्त करती है, च = यह सन्ताप की अधिकता को सूचित करता है।।

अर्थः— चारुदत्त— मित्र! निर्धनता ही पुरुषों की-चिन्ता का घर (निवास-स्थान) है; दूसरों के द्वारा किये जाने वाले अनादर का कारण है; दूसरी (विलक्षण) शत्रुता है; मित्रों की घ णा तथा अपने भाई बन्धुओं एवं अन्य लोगों के द्वेष का कारण है। पत्नी के द्वारा भी (उसका) तिरस्कार होता

है। अतः (दरिद्र व्यक्ति की) वन में चले जाने की इच्छा होती है। हृदय में वर्त्तमान शोकाग्नि एक बार ही जला नहीं डालती किन्तु सन्तप्त करती है (अर्थात् धीरे-धीरे जला-जलाकर मारती है)।।१५।।

टीका— दारिद्र्यम् हि पुरुषस्य (इति गद्यभागेन अन्वयः) चिन्तायाः = कथं मम निर्वाहः स्यात्? इत्येवम् रूपायाः; निवासः = आश्रयः; परेषाम् = अन्येषाम् परिभवः = तिरस्कारस्थानमिति भावः। अपरम् = अन्यत् अथवा विलक्षणम्; वैरम् = शत्रुभावः, शत्रुवत् दुःखकारणतया इति ज्ञेयम्; मित्राणाम् = सुहृदाम्; जुगुप्सा = घ णा, तत्कारणमिति भावः; स्वजनानाम् = बन्धूनाम् जनानाम् = सामान्यलोकनाम् च विद्वेषस्य = शत्रुभावस्य करणम् = हेतुः च भवति। कलत्रात् = भार्यायाः; परिभवः = अनादरः; भवति दरिद्रस्य इति शेषः। अतः तस्य वनम् = अरण्यम्; गन्तुम् = यातुम्; बुद्धिः = मतिः; भवति = जायते; च = चकारो हेतौ। हृदिस्थः = हृदये वर्त्तमानः; शोकस्य = सन्तापस्य; अग्निः = वह्निः; न दहति = न भस्मीकरोति; किन्तु सन्तापयति = सन्तापम् जनयति, दरिद्रमिति शेषः; चकारः सन्तापस्य दुःसहनीयत्वद्योतनार्थम्।।१५।।

यहाँ दरिद्रता का 'चिन्ता का निवास' इत्यादि अनेक प्रकार से उल्लेख होने के कारण उल्लेख अलंकार है। 'शोकाग्नि' में रूपक है। अग्निरूप कारण के रहने पर भी दाह रूप कार्य नहीं होता इस कथन में विशेषोक्ति है। इन अलंकारों में परस्पर अंगांगिभाव होने के कारण संकर अलंकार इस श्लोक में है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-शिखरिणी। इसका लक्षण इस प्रकार है-

'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी'।।१५।।

तद्वयस्य! कृतो मया ग हदेवताभ्यो बलिः। गच्छ, त्वमपि चतुष्पथे मात भ्यो बलिमुपहर।

विदूषकः—ण गमिस्सं। (न गमिष्यामि।)

चारुदत्तः— किमर्थम्?

विदूषकः—जदो एव्वं पूइज्जंता वि देवणा ण दे पसीदंति, ता को गुणो देवेसु अच्चिदेसु? (यत एवं पूज्यमाना अपि देवता न ते प्रसीदन्ति, तत्को गुणो देवेष्वर्चितेषु?)

चारुदत्तः—वयस्य! मा मैवम्, ग हस्थस्य नित्यो यं विधिः;

तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकर्मभिः।
तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवताः किं विचारितैः?।।१६।।

अर्थः— तो मित्र! मैंने ग ह-देवताओं को पूजा सामग्री दे दी है। जाओ तुम भी चौराहे पर मात -देवियों को पूजा सामग्री चढ़ा आओ।

विदूषक— मैं नहीं जाऊँगा।

चारुदत्त— किस लिए?

विदूषक— इस प्रकार (विधिवत्) पूजा करने पर भी देवता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं होते तो उनकी (देवताओं की) पूजा से क्या लाभ (पूजित देवों में क्या गुण है)?

अन्वयः— तपसा, मनसा, वाग्भिः, बलिकर्मभिः, पूजिताः, देवताः, शमिनाम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, विचारितैः, किम्।।१६।।

शब्दार्थः— तपसा = तपस्या से, मनसा = मन से, वाग्भिः = वचनों से, स्तुतियों से, बलिकर्मभिः = पूजा

के कार्यों से, पूजिताः = पूजा किये गये, देवताः = देव गण, शमिनाम् = शान्तचित्तवाले व्यक्तियों के (ऊपर), नित्यम् = सर्वदा, तुष्यन्ति = सन्तुष्ट रहते हैं, विचारितैः = विचारों से, तर्क-वितर्क करने से, किम् = क्या लाभ?।।

अर्थः— **चारुदत्त**— मित्र! ऐसा मत कहो। ग हस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्तियों का यह (देवों की पूजा करना) नित्य-कर्म है।

तप, मन, वचनों (स्तुतियों) एवं बलिकर्मों अर्थात् पूजा में समर्पित फल, अक्षत आदि सामानों के द्वारा पूजित देवता शान्त चित्तवाले व्यक्तियों से सर्वदा सन्तुष्ट रहते हैं। (इसमें) तर्क-वितर्क करने से क्या लाभ?।।१६।।

टीका— तपसा = तपस्यया; मनसा = चेतसा ध्यानेन वा; वाग्भिः = स्तुति-पाठादिरूपैः वचनैः; बलिकर्मभिः = पूजाकार्यैः; पूजिताः = अर्चिताः; देवताः = देवाः; शमः एषां विद्यते इति शमिनः तेषां शमिनाम् = शान्तचित्तानाम्; नित्यम् = सततम्; तुष्यन्ति = सन्तुष्टाः भवन्ति; विचारितैः = विचारणैः तर्कवितर्कैः वा; किं फलम्? सफलं निष्फलं वा इदं देवकर्म अत्र वितर्कः न कर्त्तव्यः इति तात्पर्यम्।।१६।।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है। १६।।

तद्गच्छ, मात भ्यो बलिमुपहर।

विदूषकः— भो! ण गमिस्सं; अण्णो को वि पउंजीअदु। मम उण बम्हणस्स सव्वं ज्जेव्व विपरीदं परिणमदि। आदंसगदा विअ छाआ वामादो दक्खिणा दक्खिणादो वामा। अण्णं च एदाए पदोसवेलाए इध राअमग्गे गणिआ विडा चेडा राअवल्लहा अ पुरिसा संचरंति। ता मंडूअलुद्धस्स कालसप्परस मूसिओ विअ अहिमुहावत्थिदो वज्झो दाणिं भविस्सं। तुमं इध उवविट्ठो किं करिस्ससि? (भोः! न गमिष्यामि; अन्यः को पि प्रयुज्यताम्। मम पुनर्ब्राह्मणस्य सर्वमेव विपरीतं परिणमति; आदर्शगतेव छाया वामतो दक्षिणा दक्षिणतो वामा। अन्यच्चैतस्यां प्रदोषवेलायामिह राजमार्गे गणिका विटाश्चेटा राजवल्लभाश्च पुरुषाः संचरन्ति। तस्मान्मण्डूकलुब्धस्य कालसर्पस्य मूषिक इवाभिमुखापतितो वध्य इदानीं भविष्यामि। त्वमिह उपविष्टः किं करिष्यसि?।)

चारुदत्तः— भवतु, तिष्ठ तावत्; अहं समाधिं निर्वर्तयामि।

(नेपथ्ये)

तिष्ठ वसन्तसेने! तिष्ठ।

(ततः प्रविशति विटशकारचेटैरनुगम्यमाना वसन्तसेना)

विटः— वसन्तसेने! तिष्ठ तिष्ठ,

किं त्वं भयेन परिवर्तितसौकुमार्या
न त्यप्रयोगविशदौ चरणौ क्षिपन्ती।
उद्विग्नच चलकटाक्षविस ष्टद ष्टि-
र्व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि?।।१७।।

अर्थः— तो जाओ, मात -देवियों को बलि (पूजा) समर्पित कर दो। विदूषक — जी, मैं नहीं जाऊँगा। किसी दूसरे व्यक्ति को भेज दो। जिस प्रकार दर्पण (शीशा) में पड़ने वाली परछाई (प्रतिबिम्ब) बायें से दाहिनी ओर तथा दाँये से बाँई ओर होती है (अर्थात् जिस प्रकार शीशे

में दाहिना भाग वाम और वाम भाग दाहिना दिखाई देता है); उसी प्रकार मुझ (बेचारे) ब्राह्मण का सब कुछ विपरीत (उल्टा) ही फल देता है। और दूसरी बात यह है कि इस सन्ध्या-समय में यहाँ सड़क पर वेश्यायें, विट, चेट और राजा के स्नेही जन (राजश्याल) घूम रहे हैं। तो मैं, मेंढक के लोभी काले सर्प के सामने आये हुए चूहे के समान, इस समय वध्य हो जाऊँगा (अर्थात् जान से मारा जाऊँगा)। तुम यहाँ बैठे हुए क्या करोगे?।

चारुदत्त— अच्छा, तब तक ठहरो। मैं समाधि (सन्ध्या) समाप्त करता हूँ।

(नेपथ्य में)

ठहर, वसन्तसेने? ठहर।

(इसके बाद विट, शकार तथा चेट के द्वारा पीछा की जाती हुई 'वसन्तसेना' प्रवेश करती है)

अन्वयः— भयेन, परिवर्तितसौकुमार्या, न त्यप्रयोगविशदौ, चरणौ, क्षिपन्ती, उद्विग्नच चलकटाक्षविस ष्टद ष्टिः, त्वम्, व्याधानुसारचकिता, हरिणी, इव, किम्, यासि?।।१७।।

शब्दार्थः— भयेन = भय के कारण, परिवर्तितसौकुमार्या = सुकुमारता को छोड़ देने वाली अर्थात् सुकुमार मन्दगति को त्याग देने वाली, न त्यप्रयोगविशदौ = नाचने की कला में निपुण, चरणौ = पैरों को, क्षिपन्ती = जल्दी जल्दी आगे बढ़ाती हुई, उद्विग्नच चलकटाक्षविस ष्टद ष्टिः = भयविह्वल एवं च चलकटाक्षों से देखती हुई, त्वम् = तुम, व्याधानुसारचकिता = शिकारी के द्वारा पीछा करने से चकित हुई, हरिणी इव = हिरनी के समान, किम् = क्यों, यासि = जा रही हो, भाग रही हो?।।

अर्थः— विट — वसन्तसेने! ठहर, ठहर,

भय के कारण सुकुमार मन्दगति को त्याग देने वाली, न त्य-कला में निपुण चरणों को जल्दी-जल्दी आगे बढ़ाती हुई, भय-विह्वल एवं च चल कटाक्षों से (इधर-उधर) द ष्टिपात करती हुई तुम, शिकारी के द्वारा पीछा करने से चकित हुई हरिणी के समान, क्यों जा रही हो?।।१७।।

टीका— हे वसन्तसेने! भयेन = भीत्या; परिवर्तितम् = द्रुततरगमनाय अन्यथाकृतम् सौकुमार्यम् = गमनसुकुमारता मन्दगमनमिति यावत्, यया सा; न त्यप्रयोगे = नर्तनकार्ये विशदौ = निर्दोषौ विमलौ वा अथवा न त्यप्रयोगेन = न त्याभ्यासेन विशदौ = झटिति प्रसरणशीलौ दक्षौ वा; चरणौ = पादौ; क्षिपन्ती = द्रुतम् इतस्ततः पातयन्ती; उद्विग्नाः = त्रस्ताः अतएव च चलाः = विलोलाः कटाक्षाः = अपांगद ष्टयः, विस ष्टा = प्रेरिता द ष्टिः, त्वम् = सुकोमलांगी वेश्या; व्याधस्य = लुब्धकस्य अनुसारेण = अनुपतनेन पश्चाद्धावनेन वा चकिता = भयविह्वला; हरिणी = म गी; इव = यथा; किम् = कस्मात्; यासि = गच्छसि, पलायसे?।।१७।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं वसन्त-तिलका छन्द है। १७।।

शकारः— च्यिश्ट वशंतशेणिए! च्यिश्ट,

किं याशि धावशि पलाअशि पक्खलंती
वाशू! पशीद ण मलिस्सशि च्यिश्ट दाव।
कामेण दज्झदि हु मे हडके तवश्शी
अंगाललाशिपडिदे विअ मंशखंडे।।१८।।

(तिष्ठ वसन्तसेनिके! तिष्ठ,

किं यासि धावसि पलायसे प्रस्खलन्ती
वासु! प्रसीद न मरिष्यसि तिष्ठ तावत्।
कामेन दह्यते खलु मे हृदयं तपस्वि
अंगारराशिपतितमिव मांसखण्डम्।। १८।।

अन्वयः— (हे वसन्तसेने!) प्रस्खलन्ती, किम्, यासि, धावसि, पलायसे, हे वासु! प्रसीद, न मरिष्यसि, तावत्, तिष्ठ, अंगारराशिपतितम्, मांसखण्डम्, इव, तपस्वि, मे, हृदयम्, कामेन, खलु, दह्यते।।१८।।

शब्दार्थः— हे वसन्तसेने! प्रस्खलन्ती = लड़खड़ाती हुई, किम् = क्यों, यासि = जा रही हो, धावसि = दौड़ रही हो, पलायसे = भाग रही हो, हे वासु = हे बाले! प्रसीद = प्रसन्न होओ, न = नहीं, मरिष्यसि = मरोगी, तावत् = तनिक, तिष्ठ = रुको, अंगारराशिपतितम् = अंगारों के समूह पर गिरे हुए, मांसखण्डम् = मांस के टुकड़े (की), इव = भाँति, तपस्वि = बेचारा, मे = मेरा, हृदयम् = हृदय, कामेन = कामदेव के द्वारा (कामाग्नि के द्वारा), खलु = निश्चय ही, दह्यते = जलाया जा रहा है।

अर्थः— शकार — ठहरो, वसन्तसेने! ठहरो,

लड़खड़ाती हुई क्यों जा रही हो, दौड़ रही हो, भाग रही हो। बाले! प्रसन्न होओ, मरोगी नहीं, तनिक ठहरो। अंगारों के समूह पर गिरे हुए मांस के टुकड़े की भाँति मेरा बेचारा हृदय कामाग्नि के द्वारा जलाया जा रहा है।।१८।।

टीका- हे वसन्तसेने! प्रस्खलन्ती = प्रस्खलनं कुर्वती; किम् = कथम्; यासि, धावसि, पलायसे हे वासु = हे बाले! प्रसीद = प्रसन्ना भव; न मरिष्यसि = म त्युम् न गमिष्यसि; तावत् = क्षणं; तिष्ठ = स्थिता भव; अंगारराशौ = अग्निसमूहे पतितम् = भ्रष्टम्, मांसखण्डम् = पललपिण्डम्; इव = यथा; तपस्वि = वराकम् अनुकम्पार्हं वा; मे = मम; हृदयम् कामेन = मदनेन कामाग्निना वाः; खलु = अवश्यम्; दह्यते = सन्तप्यते।।१८।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

चेटः — अज्जुके! चिट्ठ, चिट्ठ,

उत्ताशिता गच्छशि अंतिका मे शंपुण्णपच्छा विअ गिम्हमोरी।
ओवग्गदी शामिअभश्टके मे वण्णे गडे कुक्कडशावके व्व।।१९।।

(आर्ये! तिष्ठ तिष्ठ,

उत्त्रासिता गच्छस्यन्तिकान्मम संपूर्णपक्षेव ग्रीष्ममयूरी।
अववल्गति स्वामिभट्टारको मम वने गतः कुक्कुटशावक इव।।)

अन्वयः— (त्वं) मम, अन्तिकात्, सम्पूर्णपक्षा, ग्रीष्ममयूरी, इव, उत्त्रासिता, गच्छसि, मम, स्वामिभट्टारकः, वने, गतः, कुक्कुटशावकः, इव, अववल्गति।।१९।।

शब्दार्थः— (त्वम् = तुम), मम = मेरे, अन्तिकात् = पास से, सम्पूर्ण-पक्षा = सम्पूर्ण पंखों वाली, ग्रीष्ममयूरी इव = ग्रीष्मकालीन मयूरी के समान, उत्त्रासिता = भयभीत हुई, गच्छसि = जा रही हो, मम = मेरा, स्वामिभट्टारकः = श्रेष्ठ स्वामी (शकार), वने = जंगल में, गतः गए हुए, कुक्कुटशावक इव = मुर्गे के बच्चे के समान, अववल्गति = (तुम्हारे पीछे पीछे) उतावली के साथ आ रहा है।

अर्थः— चेट — आर्ये! ठहरो, ठहरो,

(तुम) मेरे पास से; भयभीत हुई सम्पूर्ण पंखों वाली ग्रीष्म काल की मयूरी के समान जा रही हो मेरा स्वामी (शकार) वन में गये हुए मुर्गे के बच्चे के समान (तुम्हारे पीछे-पीछे) उतावली के साथ आ रहा है।।१६।।

टीका— त्वं मम = मे; अन्तिकात् = समीपात्; सम्पूर्णपक्षा = समस्तपुच्छयुक्ता; ग्रीष्ममयूरी इव = ग्रीष्मकालीनशिखिनीव; उत्त्रासिता = भयविह्वला; गच्छसि = व्रजसि; मम = चेटस्य; स्वामी चासौ भट्टारकश्च स्वामिभट्टारकः = स्वामिश्रेष्ठः शकारः; वने = अरण्ये; गतः = सम्प्राप्तः; कुक्कुटस्य शावकः = शिशुः इव; अववल्गति = ससंभ्रममागच्छति।।१६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं इन्द्रवज्रा छन्द है। छन्द का लक्षण इस प्रकार हैः— 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।''१६।।

विटः— वसन्तसेने! तिष्ठ तिष्ठ

किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना
रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्स जन्ती
टंक्कैर्मनःशिलगुहेव विदार्यमाणा।।२०।।

अन्वयः— हे वसन्तसेने! बालकदली, इव, विकम्पमाना, पवनलोलदशम्, रक्तांशुकम् वहन्ती, टंकैः, विदार्यमाणा, मनःशिलगुहा, इव, रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलम्, उत्स जन्ती, किम्, यासि?।।२०।।

शब्दार्थः— हे वसन्तेसेने! बालकदली = नवीन केला के व क्ष, इव = जैसी, विकम्पमाना = काँपती हुई, पवनलोलदशम् = वायु के द्वारा च चल आँचल वाले, रक्तांशुकम् = लाल रेशमी वस्त्र को, वहन्ती = धारण करती हुई, टंकैः = टाँकियों के द्वारा, विदार्यमाणा = काटी जाती हुई, मनःशिलगुहा = मनरूपी शिला की कन्दरा (के), इव = समान, रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलम् = लाल कमलों की कलियों को, उत्स जन्ती = बिखेरती हुई, किम् = क्यों, यासि = जा रही हो?।।

अर्थः— विट — वसन्तसेने! रुको, रुको।

नवीन केला के व क्ष के समान काँपती हुयी, वायु के द्वारा च चल आ चल वाले लाल रेखमी वस्त्र को धारण करती हुई, टाँकी द्वारा काटी जाती हुई मनःरूपीशिला की कन्दरा (से निकलने वाली चिंनगारियों) के समान (केशों में गुँथे हुए) रक्त-कमलों की कलियों को (वेग से दौड़ने के कारण) बिखेरती हुयी क्यों जा रही हो?।।२०।।

टीका— हे वसन्तसेने! त्वं बालकदली = नूतनकदलीतरुः इव; विकम्पमाना = कम्पिता; पवनेन = वायुना तीव्रस चरणवेगोत्थवायुना वा लोला = च चला दशा = अ चलभागः यस्य तत्; रक्तांशुकम् = रक्ताभं वस्त्रम्; वहन्ती = धारयन्ती; टंकैः = पाषाणदारणैः; विदार्यमाणा = प्रस्फोट्यमाना भिद्यमाना वा,; मनःशिलानाम् = रक्तवर्णधातुविशेषाणाम् गुहा = खनिः इव; मनःशिलाशब्दः रक्तोत्पलानाम् = रक्तकमलानाम् प्रकरः = समूहः, तस्य कुड्मलम् = एकैकं मुकुलम्, उत्स जन्ती = गमनवेगेन पातयन्ती; किम् = कथम्; यासि = गच्छसि, पलायसे।।२०।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा तथा उपमा अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है। २०।।

शकारः— च्चिश्ट वशंतशेणिए! च्चिश्ट,

मम मअणमणंगं मम्मथं वड्ढअंती
णिशि अ शअणके मे णिद्दअं आक्खिवंती।
पशलशि भअभीदा पक्खलंती खलंती
मम वशमणुजादा लावणश्शेव कुंती।।२१।।

(तिष्ठ वसन्तसेने! तिष्ठ,—

मम मदनमनंगं मन्मथं वर्धयन्ती
निशि च शयनके मम निद्रामाक्षिपन्ती।
प्रसरसि भयभीता प्रस्खलन्ती स्खलन्ती
मम वशमनुयाता रावणस्येव कुन्ती।।)

अन्वयः— मम, मदनम्, अनंगम्, मन्मथम्, वर्धयन्ती, निशि, शयनके, च, मम, निद्राम्, आक्षिपन्ती, भयभीता, प्रस्खलन्ती, स्खलन्ती, प्रसरसि, (किन्तु), रावणस्य, कुन्ती, इव, (त्वम्), मम, वशम्, अनुयाता।।२१।।

शब्दार्थः— मम = मेरे, मदनम् अनंगम् मन्मथम् = काम को, वर्धयन्ती = बढ़ाती हुई, निशि = रात में, शयनके = बिस्तर पर, मम = मेरी, निद्राम् = नींद को, आक्षिपन्ती = भंग करती हुई, भयभीता = डरी हुई, प्रस्खलन्ती स्खलन्ती = बार बार लड़खड़ाती हुई, प्रसरसि = भाग रही हो, (किन्तु = परन्तु), रावणस्य = रावण के (वश में), कुन्ती इव = कुन्ती की तरह, (त्वम् = तुम), मम = मेरे, वशम् = वश को (में), अनुयाता = आ गयी हो।।

अर्थः— शकार — ठहरो, वसन्तसेने! ठहरो,

मेरे मदन, अनंग, मन्मथ (काम) को बढ़ाती हुई, और रात्रि में बिस्तर पर मेरी नींद को भंग करती हुई भयभीत होकर बारम्बार लड़खड़ाती हुई भाग रही हो। (किन्तु तुम) उसी प्रकार मेरे वश में आ गयी हो जिस प्रकार रावण के वश में कुन्ती (आ गयी थी)।।२१।।

टीका— मम = शकारस्य; मदनम् अनंगम् मन्मथम् = कामवेगमिति; वर्धयन्ती = दीपयन्ती; निशि = रात्रौ; शयनके = शय्यायाम्; च मम = मे; निद्राम् = शयनम्; स्वचिन्तनेन; आक्षिपन्ती = अपसारयन्ती; त्वम् भयभीता = भयविह्वला, प्रस्खलन्ती स्खलन्ती = स्खलनम् कुर्वती; प्रसरसि = पलायसे; किन्तु रावणस्य = दशाननस्य; कुन्तीव = अर्जुनमातेव; त्वम् मम = पराक्रमी शकारस्य; वशम् = अधिकारम्; अनुयाता = आगता असीति।।२१।।

टिप्पणीः — 'रावणस्येव कुन्ती' इस वाक्य में हतोपमा है। इस श्लोक में प्रयुक्त मालिनी छन्द का लक्षण इस प्रकार है- ''ननमयययुतेयं, मालिनी भोगिलोकैः'' २१।।

विटः— वसन्तसेने!

किं त्वं पदैर्मम पदानि विशेषयन्ती
व्यालीव यासि पतगेन्द्रभयाभिभूता।
वेगादहं प्रविस तः पवनं न रुन्ध्यां
त्वन्निग्रहे तु वरगात्रि! न मे प्रयत्नः।।२२।।

अन्वयः— हे वसन्तसेने! पतगेन्द्रभयाभिभूता, व्याली, इव, पदैः, मम पदानि, विशेषयन्ती, त्वम्, किम्, यासि? वेगात्, प्रविस तः, अहम्, पवनम्, न, रुन्ध्याम्? हे वरगात्रि! तु, त्वन्निग्रहे, मे, प्रयत्नः, न।।२२।।

शब्दार्थः— हे वसन्तसेने! पतगेन्द्रभयाभिभूता = पक्षिराज गरुड़ से डरी हुई, व्याली इव = साँपिन के समान, पदैः = (अपने) डगों से, मम = मेरे, पदानि = डगों को, विशेषयन्ती = अतिक्रान्त करती हई, जीतती हुई, त्वम् = तुम, किम् = क्यों, यासि = जा रही हो? वेगात् = वेग से, प्रविस तः = दौड़ा हुआ, अहम् = मैं, पवनम् = वायु को, न = नहीं, रुन्ध्याम् = रोक सकता हूँ? अर्थात् रोक सकता हूँ। हे वरगात्रि हे सुन्दरि! तु = किन्तु, त्वन्निग्रहे = (जबरदस्ती) तुम्हें पकड़ने में, मे = मेरा, प्रयत्नः = प्रयत्न, न = नहीं है।

अर्थः— **विट—** पक्षिराज गरुड़ से भयभीत हुई नागिन के समान अपने डगों से मेरे डगों को अतिक्रान्त करती हुई अर्थात् अपने पैरों को मुझसे भी अधिक वेग से रखती हुई तुम क्यों जा रही हो? वेग से दौड़ा हुआ मैं क्या (अत्यन्त तीव्रगामी) वायु को भी नहीं रोक सकता? अर्थात् अवश्य रोक सकता हूँ। किन्तु हे सुन्दरि! मेरा प्रयत्न तुमको जबर्दस्ती रोकने का नहीं है अर्थात् मैं जबर्दस्ती तुम्हें रोकना नहीं चाहता।।२२।।

टीका— हे वसन्तसेने! पतगेन्द्रात् = गरुडात् भयम् = भीतिः तेन अभिभूता = आक्रान्ता; व्यालीव = सर्पिणीव; पदैः = स्वपादप्रक्षेपैः; मम = विटस्य; पदानि = पादविक्षेपान्; विशेषयन्ती = अतिशयाना; त्वम् = वसन्तसेना; किम् = कस्मात्; यासि = गच्छसि; वेगात् = जवात्; प्रविस तः = प्रचलितः; अहम् = विटः; पवनम् = वायुम्, न रुन्ध्याम् = अतिक्रमितुं न शक्नुयाम्?; अर्थात् निरोद्धुं शक्नुयामित्यर्थः; हे वरगात्रि! वरम् = मनोहरम् अतिसुकोमलमित्यर्थः, गात्रम् = शरीरं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ; तु = किन्तु; त्वन्निगहे = तव ग्रहणे; मे = मम; प्रयत्नः = प्रव त्तिः, न = नास्ति।।२२।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।

शकारः— भावे भावे!

एशा णाणकमूशिकामकशिका मच्छाशिका लाशिका
णिण्णाशा कुलणाशिका अवशिका कामस्स मंजूशिका।
एशा वेशवहू शुवेशणिलआ वेशंगणा वेशिआ
एशे शे दशणामके मयि कले अज्जावि मं णेच्छदि।।२३।।

(भाव भाव!)

एषा नाणकमोषिकामकशिका मत्स्याशिका लासिका
निर्नासा कुलनाशिका अवशिका कामस्य म जूषिका।
एषा वेशवधूः सुवेशनिलया वेशांगना वेशिका
एतान्यस्या दश नामकानि मया कृतान्यद्यापि मां नेच्छति।।२३।।

अन्वयः— एषा, नाणकमोषिकामकशिका, मत्स्याशिका, लासिका, निर्नासा, कुलनासिका, अवशिका, कामस्य म जूषिका, एषा, वेशवधूः, सुवेशनिलया, वेशांगना, वेशिका, एतानि, अस्याः, दश, नामकानि, मया, कृतानि, (किन्तु), अद्य, अपि, (इयम्) माम्, न, इच्छति।।२३।।

शब्दार्थः— एषा = यह वसन्तसेना, नाणकमोषिकामकशिका = उत्तम रत्न आदि चुरानेवालों की कामाग्नि को शान्त करनेवाली, मत्स्याशिका = मछली खानेवाली, लासिका = नाचनेवाली, निर्नासा = नाक रहित अर्थात् अप्रतिष्ठित, कुलनासिका = कुल को नष्ट करने वाली, अवशिका = किसी के वश में न होने वाली, कामस्य = काम की, म जूषिका = पिटारी,

(है), एषा = यह (वसन्तसेना), वेशवधूः = वेश्यागामियों की स्त्री, सुवेशनिलया = सुन्दर वेश्यालय में निवास करने वाली, वेश्यांगना = वेश्यालय की कामिनी, वेशिका = वेश्या (है), एतानि = ये, अस्याः = इसके, दश = दश, नामकानि = नाम, मया = मेरे द्वारा, कृतानि = किये गये हैं-रक्खे गये हैं, (किन्तु), अद्य = आज, अपि = भी, (इयम् = यह), माम् = मुझको, न = नहीं, इच्छति = चाहती है।।

अर्थः— शकार — महानुभाव! महानुभाव!

उत्तम रत्न आदि चुराने वालों की कामाग्नि को शान्त करने वाली, मछली खाने वाली, नर्तकी, नासिकाहीन अर्थात अप्रतिष्ठित, कुल को नष्ट करने वाली, किसी के वश में न होने वाली, काम की पिटारी, वेश्यागामियों की स्त्री, सुन्दर वेश्यालय में निवास करने वाली, वेश्यालय की कामिनी वेश्या—इस प्रकार इसके ये दश नाम मैंने रक्खें हैं। फिर भी (अब भी) यह मुझे नहीं चाहती है।।२३।।

टीका— भाव! एषा = वसन्तसेना, नाणकानि = बहुमूल्यरत्नानि शिवांकानि टंकादिवित्तानि वा मुष्णन्ति = हरन्ति इति नाणकमोषिणः तेषां कामस्य = मदनस्य कशिका = कशा, तस्कराणाम् कामस्य उद्दीपिका इत्यर्थः, मत्स्याशिका = मत्स्यभोजिनी, लासिका = नर्तकी, निर्नासा = निम्ननासा प्रतिष्ठारहिता वा कुलस्य = सद्वंशस्य नाशिका = नाशिनी पातित्यजननात्। अवशिका = अनायत्ता, अवशीभूता, धनदानेनापि कस्यापि अधीना न भवति। कामस्य = मदनस्य, म जूषिका = पेटिका, एषा = वसन्तसेना, वेशस्य = वेश्याजनाश्रयस्य जनस्य वधूः = जाया सम्भोगाश्रयभावात्। सुवेशनिलया = शोभनानां वेशानाम् = अलंकाराणां परिधानानां वा निलयः = आश्रयः यस्यां सा अथवा सुवेशः = सुन्दरः वेश्यालयः एव निलयः = आवासस्थानं यस्याः सा। वेशस्य = वेश्यालयस्य अंगना = उत्तमा स्त्री; वेशिका = वेशशालिनी। एतानि = पूर्वोक्तानि, अस्याः = वसन्तसेनायाः, दश = दशसंख्याकानि, नामकानि = नामानि, मया = शकारेण, कृतानि = विहितानि, किन्तु, अद्य = अधुना अपि इयं माम् = स्वभक्तं राजश्यालकम्, न इच्छति = वा छति।।२३।।

विटः—

प्रसरसि भयविक्लवा किमर्थं प्रचलितकुण्डलघ ष्टगण्डपार्श्वा।
विटजननखघट्टितेव वीणा जलधरगर्जितभीतसारसीव।।२४।।

अन्वयः— विटजननखघट्टिता, वीणा, इव, प्रचलितकुण्डलघ ष्टगण्डपार्श्वा, (त्वम्), जलधरगर्जितभीतसारसी, इव, भयविक्लवा, (सती) किमर्थम्, प्रसरसि।।२४।।

शब्दार्थः— विटजननखघट्टिता = विट लोगों के नख से रगड़ी गयी, वीणा इव = वीणा के समान, प्रचलितकुण्डलघ ष्टगण्डपार्श्वा = हिलने वाले कुण्डलों से रगड़ खाये हुए कपोलों वाली, (त्वम् = तुम), जलधरगर्जितभीतसारसी = बादलों के गरजने से भयभीत सारसी, इव = जैसी, भयविक्लवा = भयभीत, (सती = होती हुई), किमर्थम् = किसलिये, प्रसरसि = भाग रही हो।।

अर्थः— विट — विट लोगों के नख से घ ष्ट (रगड़ी गयी) वीणा के समान (भागने के कारण) हिलने वाले कुण्डलों (के बारम्बार स्पर्श) से घ ष्ट (रगड़ खाये हुए) कपोलों वाली तुम, बादलों के गर्जन से भयभीत सारसी की भाँति, भयातुर होकर किसलिये भागी जा रही हो।।२४।।

टीका— विटजनानाम् = विलासिजनानाम् नखैः = अंगुल्यग्रभागैः घट्टिता = घर्षिता सार्यमाणा वा; वीणा इव; प्रचलिते = तीव्रगमनात् च चले ये कुण्डले = कर्णाभूषणे ताभ्यां घ ष्टौ =

प्राप्तसंघर्षौ गण्डयोः = कपोलयोः पार्श्वौ = भागौ यस्याः सा; त्वम्; जलधराणाम् = मेघानाम् गर्जितेन = गर्जनेन भीता = विक्लवा सारसीव = सारसी पक्षिणीव; भयेन = भीत्या विक्लवा = व्याकुला; सती; किमर्थम् = किन्निमित्तम्; प्रसरसि = शीघ्रम् गच्छसि।।२४।।

यहाँ पर मालोपमा अलंकार एवं पुष्पिताग्रा छन्द है। छन्द का लक्षण इस प्रकार है-

''अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि तु नजौजरगाश्च पुष्पिताग्रा''।।२४।।

शकारः—

झाणज्झणंतबहुभूशणशद्दमिश्शं
किं दोव्वदी विअ पलाअशि लामभीदा?।
एशे हलामि शहश त्ति जधा हणूमे
विश्शावशुश्श बहिणिं विअ तं शुभद्दं।।२५।।

(झणज्झणमिति बहुभूषणशब्दमिश्रं किं द्रौपदीव पलायसे रामभीता?।
एष हरामि सहसेति यथा हनूमान्विश्वावसोर्भगिनीमिव तां सुभद्राम्।।)

अन्वयः— रामभीता, द्रौपदी, इव, बहुभूषणशब्दमिश्रम्, झणज्झणम्, इति, (कुर्वती) किम्, पलायसे, यथा, हनूमान्, विश्वावसोः, ताम्, भगिनीम्, सुभद्राम्, इव, एषः, (अहम्) इति, सहसा, हरामि।।२५।।

शब्दार्थः— रामभीता = राम से डरी हुई, द्रौपदी इव = द्रौपदी की भाँति, बहुभूषणशब्दमिश्रम् = अनेक आभूषणों के शब्द से मिश्रित, झणज्झणम् = झणझणाहटको, इति = इस प्रकार (कुर्वती = करती हुई)किम् = क्यों, पलायसे = भागी जा रही हो? यथा = जैसे, हनूमान् = हनूमान् जी ने, विश्वावसोः = विश्वावसु की, ताम् = उस प्रसिद्ध, भगिनीम् = बहन, सुभद्राम् = सुभद्रा को (हरा था), एषः = यह, (अहम् = मैं) इति = इस प्रकार, सहसा = बलपूर्वक, हरामि = (तुमको) हरता हूँ।।

अर्थः— शकार — राम से डरी हुई द्रौपदी के समान, अनेक आभूषणों के शब्द से मिश्रित झन-झनाहट के साथ अर्थात् अपने आभूषणों का झन-झन शब्द करती हुई तुम क्यों भागी जा रही हो? जिस प्रकार हनुमान् ने विश्वावसु की उस बहन सुभद्रा का अपहरण किया था, उसी प्रकार यह मैं बलपूर्वक तुम्हारा हरण करता हूँ।।२५।।

टीका— रामात् = श्रीरामचन्द्रात् भीता = त्रस्ता; द्रौपदी = पा चाली; इव = यथा; बहुभूषणानाम् = नानाविधालंकाराणाम् शब्देन = ध्वनिना मिश्रम् = समन्वितम्; झणज्झणमिति = झणज्झणेत्यव्यक्तशब्दम्; कुर्वतीति शेषः; किम् = कस्मात्; पलायसे = अपसरसि? यथा हनूमान् = पवनकुमार इव; विश्वावसोः = एतन्नामप्रसिद्धगन्धर्वस्य; ताम् = प्रसिद्धाम्, भगिनीम् = स्वसारम्; सुभद्राम् इव = श्रीकृष्णस्य भगिनीम् इव; एषः = उपस्थितः; अहम्, इति = इत्थम्; सहसा = झटिति हठादित्यर्थः; त्वां हरामि = अपनयामि स्वाधिकारे करोमीति।

चेटः —

लामेहि अ लाअवल्लहं तो क्खाहिशि मच्छमंशकं।
एदेहिं मच्छमंशकेहिं शुणआ मडअं ण शेवंदि।।२६।।
(रमय च राजवल्लभं ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम्।
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्यां श्वानो म तकं न सेवन्ते।।)

अन्वयः— (हे वसन्तसेने!) राजवल्लभम्, रमय, ततः, मत्स्यमांसकम्, च; खादिष्यसि, एताभ्याम्, मत्स्यमांसाभ्याम्, (त प्ताः), श्वान्ः म तकम्, न, सेवन्ते।।२६।।

शब्दार्थः— (हे वसन्तसेने!) राजवल्लभम् = राजा के प्रिय शकार के साथ, रमय = रमण करो, ततः = तब, मत्स्यमांसकम् = मछली और मांस को, खादिष्यसि = खाओगी, एताभ्याम् = इन दोनों (मछली तथा मांस) के कारण, (त प्ताः = त प्त हुए), श्वानः = कुत्ते, म तकम् = लाश को, न = नहीं, सेवन्ते = खाते हैं।

अर्थः— चेट — राजा के अत्यन्त प्रिय (शकार) के साथ रमण करो, तब तुम मछली और मांस (खूब) खाओगी। इन दोनों-मछली और मांस के कारण (परित प्त हुए शकार के) कुत्ते म तक अर्थात् मरे हुए पशु, पक्षी आदि की लाश का सेवन नहीं करते हैं।।२६।।

टीका— हे वसन्तसेने! राज्ञः = न पतेः पालकस्य वल्लभम् = प्रियम् शकार-मित्यर्थः; रमय = रतिदानेन आनन्दय; ततः = तद्रमणात्; मत्स्याश्च मांसम् च मत्स्यमांसम् तदेव मत्स्यमांसकम् च त्वम् खादिष्यसि = भक्षयिष्यसि; एताभ्याम् = मत्स्यमांसाभ्याम्; त प्ताः = परित प्ताः, श्वानः = कुक्कुराः, म तकम् = शवशरीरम्; न सेवन्ते = न खादन्ति।।२६।

विटः— भवति वसन्तसेने!

किं त्वं कटीतटनिवेशितमुद्वहन्ती
ताराविचित्ररुचिरं रशनाकलापम्।
वक्त्रेण निर्मथितचूर्णमनःशिलेन
त्रस्ताद्भुतं नगरदैवतवत्प्रयासि।।२७।।

अन्वयः— भवति वसन्तसेने! त्वम्, कटीतटनिवेशितम्, ताराविचित्ररुचिरम्, रशनाकलापम्, उद्वहन्ती, निर्मथितचूर्णमनः शिलेन, वक्त्रेण, नगरदैवतवत्, त्रस्ताद्भुतम्, किम्, प्रयासि।।२७।।

शब्दार्थः— भवति = माननीय, वसन्तसेने! त्वम् = तुम, कटीतटनिवेशितम् = कमर भाग में बँधी हुई, ताराविचित्ररुचिरम् = मोतियों के कारण अद्भुत एवं मनोहर, रशनाकलापम् = करधनी को, उद्वहन्ती = धारण करती हुई, निर्मथित चूर्णमनःशिलेन = चूर्ण मनसिल को तिरस्कृत करने वाले, वक्त्रेण = मुख से, नगरदैवतवत् = नगर के देवता की भाँति, त्रस्ताद्भुतम् = भयविह्वलता पूर्वक, किम् = क्यों, प्रयासि = जा रही हो?।।

अर्थः— विट — सुश्री वसन्तसेने! कटि-प्रान्त में बँधी हुई, मोतियों से अद्भुत अतएव मनोहर मेखला को धारण करती हुई, चूर्ण मनःशिला को भी (अपने गुलाबी वर्ण से) तिरस्कृत करने वाले मुख से युक्त तुम नगर-देवता की भाँति, भय-विह्वलतापूर्वक क्यों भागी जा रही हो?।।२७।।

टीका— भवति वसन्तसेने = मान्ये वसन्तसेने! त्वम् कटीतटे = श्रोणिप्रदेशे निवेशितम् = संस्थापितम्; ताराभिः = मुक्ताभिः विचित्ररुचिरः = अद्भुतमनोहरः तम्, रशनाकलापम् = मेखलाभूषणम् उद्वहन्ती = धारयन्ती; निर्मथिता = तिरस्कृता चूर्णा = चूर्णीकृता मनःशिला = मनःशिलोपधातुविशेषः येन ताद शेन वक्त्रेण = आननेन, नगरदैवतवत् = नगराधिदेवता इव; त्रस्ताद्भुतम् = सभीतिविस्मयं यथा स्यात् तथा; किम् = कस्मात्, प्रयासि = पलायसे?।।२७।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।।२७।।

शकारः—

अम्हेहिं चंडं अहिशालिअंती वणे शिआली विअ कुक्कुलेहिं।
पलाशि शिग्घं तुलिदं शवेग्गं शवेंटणं मे हलअं हलंती।।२८।।

(अस्माभिश्चण्डमभिसार्यमाणा वने श्र गालीव कुक्कुरैः।
पलायसे शीघ्रं त्वरितं सवेगं सव न्तं मम हृदयं हरन्ती।।)

अन्वयः— वने, कुक्कुरैः, श्र गाली, इव, अस्माभिः, चण्डम्, अभिसार्यमाणा, (त्वम्), मम, हृदयम्, सव न्तम्, हरन्ती, शीघ्रम् त्वरितम् सवेगम्, पलायसे।।२८।।

शब्दार्थः— वने = जंगल में, कुक्कुरैः = कुत्तों के द्वारा, श्र गाली इव = सियारिन के समान, अस्माभिः = हम लोगों के द्वारा, चण्डम् = वेगपूर्वक, अभिसार्यमाणा = पीछा की जाती हुई, मम = मेरे हृदयम् = हृदय को, संव न्तम् = मूलसहित, हरन्ती = हरण करती हुई, शीघ्रम् त्वरितम् सवेगम् = वेग पूर्वक, पलायसे = भाग रही हो।।

अर्थः— शकार — कुत्तों के द्वारा पीछा की जाती हुई श्र गाली के समान हम लोगों के द्वारा तीव्र गति से पीछा की जाती हुई, मेरे हृदय को समूल हरण करती हुई तुम शीघ्र, तुरन्त और वेगपूर्वक भाग रही हो।।२८।।

टीका— वने = अरण्ये; कुक्कुरैः = श्वभिः; अभिसार्यमाणा इति शेषः; श्र गाली = शिवा इव; अस्माभिः = शकारादिभिः; चण्डम् = शीघ्रम्; अभिसार्यमाणा = अनुगम्यमाना; त्वम् मम = शकारस्य; हृदयम् सव न्तम् = समूलबन्धम्; हरन्ती = चोरयन्ती अपनयन्ती वा; शीघ्रम् त्वरितम् सवेगम् = झटिति यथा तथा; पलायसे = पलायनम् करोषि।।२८।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है। जब इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा को एक ही श्लोक में मिला देते हैं तो उसे उपजाति छन्द कहते हैं। इसके चौदह भेद होते हैं।।२८।।

वसन्तसेना— पल्लवआ पल्लवआ! परहुदिए परहुदिए!। (पल्लवक पल्लवक! परभ तिके परभ तिके!)

शकारः— (सभयम्) भावे भावे! मणुश्शे मणुश्शे!। (भाव भाव! मनुष्या मनुष्याः!।)

विटः— न भेतव्यं न भेतव्यम्।

वसन्तसेना— माहविए माहविए!। (माधविके माधविके!।)

विटः— (सहासम्) मूर्ख! परिजनो न्विष्यते।

शकारः— भावे भावे! इत्थिअं अण्णेशदि। (भाव भाव! स्त्रियमन्वेषयति?।)

विटः— अथ किम्।

शकारः— इश्यिआणं शदं मालेमि। शूले हगे। (स्त्रीणां शतं मारयामि। शूरो हम्।

वसन्तसेना— (शून्यमवलोक्य) हद्धी हद्धी, कधं परिअणो वि परिब्भट्टो। एत्थ मए अप्पा शअं ज्जेव रक्खिदव्वो। (हा धिक् हा धिक्, कथं परिजनो पि परिभ्रष्टः। अत्र मयात्मा स्वयमेव रक्षितव्यः।)

विटः— अन्विष्यतामन्विष्यताम्।

शकारः— वशंतशेणिए! विलव विलव पलहुदिअं वा पल्लवअं वा शव्वं वा वशंतमाशं। मए अहिशालिअंतीं तुमं के पलित्ताइश्शदि?।

किं भीमशेणे जमदग्गिपुत्ते कुंतीशुदे वा दशकंधले वा।
एशे हगे गेण्हिय केशहश्ते दुश्शाशणश्शाणुकिदिं कलेमि।।२९।।

(वसन्तसेनिके! विलप विलप परभ तिकां वा पल्लवकं वा सर्वं वा वसन्तमासम्। मयाभिसार्यमाणां त्वां कः परित्रास्यते?।

किं भीमसेनो जमदग्निपुत्रः कुन्तीसुतो वा दशकन्धरो वा।

एषो हं ग हीत्वा केशहस्ते दुःशासनस्यानुकृतिं करोमि।।

अर्थः— वसन्तसेना —पल्लवक! पल्लवक!! परभ तिके! परभ तिके!!

शकार—(भयपूर्वक) भाव! मनुष्य, मनुष्य।

विट— डरना नहीं चाहिये, डरना नहीं चाहिये अर्थात् डरो मत।

वसन्तसेना — माधविके! माधविके!

विट— (हंसी पूर्वक) मूर्ख! भ त्य को खोज रही है।

शकार— भाव! भाव! क्या स्त्री को खोज रही है?

विट— और क्या?

शकार— स्त्रियाँ तो सैकड़ों मार सकता हूँ। मैं बहादुर हूँ।

वसन्तसेना— (सूना देख कर) हाय! हाय! क्या सेवक भी छूट गये। यहाँ मुझे स्वयं ही अपनी रक्षा करनी चाहिये।

विट — खोजो, खोजो (परिजनों को)।

शकार — वसन्तसेने! विलाप कर, विलाप कर, परभ तिका (कोयल) के लिए, पल्लवक (नूतन पत्ता) के लिए अथवा सम्पूर्ण वसन्त मास के लिए। मेरे द्वारा अभिसरण (पीछा) की जाती हुई तुमको कौन बचायेगा?

अन्वयः— किम्, जमदग्निपुत्रः, भीमसेनः, वा, कुन्तीसुतः, वा, दशकन्धरः, (त्वाम्, रक्षिष्यति), एषः, अहम्, केशहस्ते, (त्वाम्), ग हीत्वा, दुःशासनस्य, अनुकृतिम्, करोमि।।२६।।

शब्दार्थः— किम् = क्या, जमदग्निपुत्रः = जमदग्नि का पुत्र, भीमसेनः = भीमसेन, वा = अथवा, कुन्तीसुतः = कुन्ती का पुत्र, वा = अथवा, दशकन्धरः = रावण, (त्वाम् = तुमको, रक्षियति = बचायेगा), एषः = यह, अहम् = मैं, केशहस्ते = जूड़ा में, (त्वाम् = तुमको), ग हीत्वा = पकड़ कर, दुःशासनस्य = दुःशासन के, अनुकृतिम् = अनुकरण को, करोमि = करता हूँ।।

अर्थः— क्या जमदग्नि का पुत्र अथवा भीमसेन, अथवा कुन्ती का पुत्र अथवा रावण? (तुम्हारी रक्षा करेगा?)। यह मैं (तुम्हारे) केशपाश को पकड़ कर दुःशासन का अनुकरण करता हूँ।।२६।।

टीकाः — किम् जमदग्निपुत्रः = परशुरामः; भीमसेनः = व कोदरः, वा = अथवा; कुन्तीसुतः = कुन्तीपुत्रः कर्णः अर्जुनो वा; वा दशकन्धरः = दशाननः, त्वां रक्षिष्यतीति शेषः। एषः = त्वत्प ष्ठे संलग्नः; अहम् = राजश्यालः शकारः; केशहस्ते = केशकलापे, त्वां ग हीत्वा = ध त्वा; दुःशासनस्य = दुर्योधनानुजस्य; अनुकृतिम् = अनुकरणम्; करोमि।।२६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है। यहाँ महाभारत में वर्णित द्रौपदी वस्त्रहरण की घटना की ओर संकेत है।

णं पेक्ख णं पेक्ख,—

अशी शुतिक्खे वलिदे अ मश्तके
कप्पेम शीशं उद मालएम वा।

अलं तवेदेण पलाइदेण
मुमुक्खु जे होदि ण शे खु जीअदि।।३०।।

ननु प्रेक्षस्व ननु प्रेक्षस्व,

असिः सुतीक्ष्णो वलितं च मस्तकं कल्पये शीर्षमुत मारयामि वा।
अलं तवैतेन पलायितेन मुमूर्षुर्यो भवति न स खलु जीवति।।)

अन्वयः— (मम) असिः, सुतीक्ष्णः, (अस्ति), तव, मस्तकम्, च, वलितम्, (वर्तते), (अहम्, तव) मस्तकम्, कल्पये, उत, मारयामि, वा, तव, एतेन, पलायितेन, अलम्, यः, मुमूर्षुः, भवति, सः, खलु, न, जीवति।।३०।।

शब्दार्थः— (मम = मेरी) असिः = तलवार, सुतीक्ष्णः = बड़ी तेज, (अस्ति = है), तव = तुम्हारा, मस्तकम् = मस्तक, च = भी, वलितम् = बड़ा सुन्दर, (वर्तते = है), (अहम् = मैं, तव = तुम्हारे) मस्तकम् = शिर को, कल्पये = काट डालता हूँ, उत = अथवा, मारयामि = मार डालता हूँ, वा = विकल्पार्थक है, तव = तुम्हारे, एतेन = इस, पलायितेन = भागने से, अलम् = व्यर्थ है, अर्थात् तुम्हारा भागना व्यर्थ है, यः = जो आदमी, मुमूर्षुः = मरनेवाला, भवति = होता है, सः = वह, खलु = निश्चय ही, न = नहीं, जीवति = जीता है।।

अर्थः— देखो, देखो,

तलवार बड़ी तेज है और तुम्हारा मस्तक (भी) बड़ा सुन्दर है, मैं तुम्हारा शिर काट डालूँगा अथवा मार डालूँगा। तुम्हारा इस प्रकार भागना निरर्थक है, (क्योंकि) जो मरने वाला होता है वह निश्चित रूप से जीवित नहीं रहता।।३०।।

टीका— मम = शकारस्य; असिः = कृपाणः; सुतीक्ष्णः = निशितः; अस्तीति शेषः; तव = वसन्तसेनायाः; मस्तकम् = शिरः; च = अपि; वलितम् = लालितम् शोभनम् वा; वर्तते; अहम् तव मस्तकम् = शिरः; कल्पये = छिनद्मि; उत = अथवा; मारयामि = ते प्राणविनाशं करोमि; वा इति विकल्पे; तव = वसन्तसेनायाः; एतेन = अधुना ग हीतेन; पलायितेन = अपसरणेन; अलम् = व्यर्थमितिभावः; यः = जनः; मुमूर्षुः = उपस्थितमरणः; भवति = अस्ति; सः = जनः; खलु = निश्चयेन; न जीवति = न जीवनं धरति ।।३०।

इस श्लोक के पहले और चौथे चरण में वंशस्थ और दूसरे तथा तीसरे चरण में इन्द्रवज्रा है। अतः इसमें उपजाति छन्द माना गया है।।३०।।

वसन्तसेना — अज्ज! अबला खु अहं। (आर्य! अबला खल्वहम्।)

विटः— अत एव ध्रियसे।

शकारः— अदो ज्जेव ण मालीहशि। (अत एव न मार्यसे।)

वसन्तसेना — (स्वगतम्) कधं अणुणओवि से भअं उप्पादेदि?। भोदु एव्वं दाव। (प्रकाशम्) अज्ज! इमादो किंपि अलंकरणं तक्कीअदि। (कथमनुनयो प्यस्य भयमुत्पादयति। भवतु एवं तावत्। आर्य! अस्मात्किमप्यलंकरणं तर्क्यते।

विटः—शान्तं पापं शान्तं पापम्। भवति वसन्तसेने! न पुष्पमोषमर्हत्युद्यानलता। तत्कृतमलंकरणैः।

वसन्तसेना — ता किं खु दाणिं। (तत्किं खल्विदानीम्।)

शकारः— हग्गे वरपुलिशमणुश्शे वाशुदेवके कामइदव्वे। (अहं वरपुरुषमनुष्यो वासुदेवः कामयितव्यः।)

वसन्तसेना – (सक्रोधम्) संतं पावं। अवेहि, अणज्जं मंतेशि। (शान्तं पापम्। अपेहि, अनार्यं मन्त्रयसि।)

शकारः– (सतालिकं विहस्य) भावे भावे! पेक्ख दाव। मं अंतलेण शुशिणिद्धा एशा गणिआदालिआ णं। जेण मं भणादि–'एहि। शंते शि। किलिंते शि' त्ति। हग्गे ण गामंतलं ण णगलंतलं वा गडे। अज्जुके! शवामि भावश्श शीशं अत्तणकेहिं पादेहिं। तव ज्जेव्व पश्चाणुपश्चिआए आहिडंते शंते किलिंते म्हि शंवुत्ते। (भाव भाव! प्रेक्षस्व तावत्। मामन्तरेण सुस्निग्धैषा गणिकादारिका ननु। येन मां भणति-'एहि। श्रान्तो सि। क्लान्तो सि' इति। अहं न ग्रामान्तरं न नगरान्तरं वा गतः। भट्टालिके! शपे भावस्य शीर्षमात्मीयाभ्यां पादाभ्याम्। तवैव प ष्ठानुप ष्ठिकयाहिण्डमानः श्रान्तः क्लान्तो स्मि संव त्तः।)

विटः– (स्वगतम्) अये, कथं शान्तमित्यभिहिते श्रान्त इत्यवगच्छति मूर्खः? । (प्रकाशम्) वसन्तसेने! वेशवासविरुद्धमभिहितं भवत्या। पश्य,–

तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो
विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं
सममुपचर भद्रे! सुप्रियं वाप्रियं वा।।३१।।

अर्थः– वसन्तसेना – आर्य! मैं तो अबला हूँ।

विट – इसीलिए (तुम अब तक) जीवित हो।

शकार – इसीलिए तुम नहीं मारी जा रही हो।

अर्थः– वसन्तसेना – (अपने आप) इसकी नम्रता भी कैसा भय उत्पन्न करती है। अच्छा, तो ऐसा करूँ। (प्रकट रूप से) आर्य! आप मुझ से कोई आभूषण लेना चाहते हैं?।

विट – ऐसा मत कहो। श्रीमति! वसन्तसेने! उद्यान की लता पुष्प तोड़ने के योग्य नहीं होती अर्थात् बगीचे की लता का पुष्प तोड़ना समुचित नहीं होता। इसलिए आभूषणों को रहने दो।

वसन्तसेना – तो, इस समय आपका मुझसे क्या प्रयोजन है?

शकार – मुझ पुरुषश्रेष्ठ, मनुष्य वासुदेव की (तुम्हें) कामना करनी चाहिए।

वसन्तसेना – (क्रोध पूर्वक) शान्त, शान्त अर्थात् चुप रहो, चुप रहो। दूर हटो। अशिष्ट बात कहते हो।

शकार – (ताली बजाता हुआ हँस कर) भाव! भाव! जरा देखो तो। यह वेश्या-पुत्री निश्चय ही भीतर से (मन से) मुझ से प्रेम करती है, जिससे मुझको यह कहती है–''आओ, थक गये हो खिन्न हो गये हो।'' मैं न किसी दूसरे गाँव को गया था, न किसी दूसरे नगर को ही। मान्य गणिके! मैं अपने पैरों से महानुभाव (विट) के शिर की शपथ खाता हूँ, कि तुम्हारे ही पीछे-पीछे घूमता हुआ थका एवं खिन्न हुआ हूँ।

विट – (अपने आप) अरे! यह मूर्ख किस प्रकार से 'शान्त' ऐसा कहे जाने पर 'श्रान्त' (थका हुआ) समझ रहा है। (प्रकट रूप से) वसन्तसेने! आपने यह बात वेश्यालय के वास (जीवन) के विरुद्ध कही है (अर्थात् आपने यह बात वेश्याजन के विरुद्ध कही है)।

अन्वयः– वेशवासः, तरुणजनसहायः, चिन्त्यताम्, त्वम्, मार्गजाता, लता, इव, गणिका, (इति), विगणय, हि, पण्यभूतम्, धनहार्यम्, शरीरम्, वहसि, (अतः), हे भद्रे! सुप्रियम्, वा, अप्रियम्, वा समम्, उपचर।।३१।।

शब्दार्थः— वेशवासः = वेश्यालय का निवास, तरुणजनसहायः = युवकों की सहायता वाला अर्थात् युवक जन हैं आश्रय जिसका ऐसा, चिन्त्यताम् = सोचो, त्वम् = तुम, मार्गजाता = मार्ग में उत्पन्न हुई, लता = लतिका, इव = जैसी, गणिका = वेश्या, (हो, इति = ऐसा), विगणय = विशेष रूप से विचारो, हि = क्योंकि, पण्यभूतम् = बेची जाने वाली वस्तु के समान, धनहार्यम् = धन के द्वारा ग्रहण करने के योग्य, शरीरम् = शरीर को, वहसि = धारण करती हो, (अतः = इसलिये) हे भद्रे! हे भद्र स्त्री! सुप्रियम् = प्रिय को, वा = अथवा, अप्रियम् = अप्रिय को, समम् = समानरूप से, उपचर = व्यवहार करो।

अर्थः— देखो-

वेश्यालय के जीवन (वास) को युवकों की सहायता पर आश्रित समझो। सोचो, तुम मार्ग में उत्पन्न हुई लता के समान वेश्या हो! तुम, बाजार में बेची जाने वाली वस्तु के समान, धन के द्वारा ग्रहण करने योग्य शरीर धारण करती हो। अतः, हे भद्र स्त्री! प्रिय और अप्रिय दोनों के साथ समान व्यवहार करो।।३१।।

टीका— वेशवासः-वेशे = वेश्यालये, वासः = निवासः; तरुणजनः = युवजनः सहायः = आश्रयः यस्य सः; तरुणजनाश्रयीत्यर्थः; चिन्त्यताम् = विचार्यताम्; त्वम् = वेश्याकुलोत्पन्ना वसन्तसेना; मार्गे = पथि जाता = उत्पन्ना; लता = वल्ली; इव = यथा; गणिका = गणस्त्री वेश्या इति यावत् असि, इति = इत्थम्; विगणय = विचारय; हि = यतः; पण्यभूतम् = विक्रेयस्वरूपम्; अत एव धनहार्यम् = धनेन ग्राह्यम्; शरीरम् = देहम्; वहसि = धारयसि; अतः हे भद्रे! हे साधुस्वभावे! कार्यं साधयितुं प्रशंसति। सुप्रियम् = अभीप्सितम्; वा = अथवा; अप्रियम् = अनभीष्टम्; जनमिति शेषः; वा, समम् = तुल्यम्; उपचर = सेवस्व।।३१।।

इस श्लोक में उपमा एवं काव्यलिंग अलंकार तथा मालिनी छन्द है। छन्द का लक्षण हैः-

''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः''।।३१।।

अपि च,—

वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खो पि वर्णाधमः
फुल्लां नाम्यति वायसो पि हि लतां या नामिता बर्हिणा।
ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज।।३२।।

अन्वयः— विचक्षणः, द्विजवरः, वर्णाधमः, मूर्खः, अपि, वाप्याम्, स्नाति या, बर्हिणा, नामिता, फुल्लाम्, (ताम्), लताम् वायसः, अपि, नाम्यति, हि, यया, नावा, ब्रह्मक्षत्रविशः, तरन्ति; तया, एव, इतरे, च; वेश्या, असि, (अतः), वापी, इव, लता इव, नौः, इव, सर्वम्, जनम्, भज।।३२।।

शब्दार्थः— विचक्षणः = विद्वान्, द्विजवरः = ब्राह्मण, वर्णाधमः = नीच जातिवाला, मूर्खः = मूर्ख, अपि = भी, वाप्याम् = बावड़ी में, स्नाति = स्नान करता है। या = जो (लता), बर्हिणा = मोर के द्वारा, नामिता = झुकायी गयी थी, फुल्लाम् = फूली हुई, (ताम् = उसी), लताम् = लता को, वायसः = कौवा, अपि = भी, नाम्यति = झुका देता है। हि = जैसा कि सुविदित है, यया = जिस, नावा = नैया से, ब्रह्मक्षत्रविशः = ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य, तरन्ति = पार होते हैं, तया = उसी नैया से, एव = ही, इतरे = दूसरे (वर्णाधम) लोग, च = भी। त्वम् = तुम, वेश्या = वेश्या, असि = हो, (अतः) वापी = बावड़ी (के), इव = समान, लता इव

= लता के समान, नौः = नैया (के), इव = समान, सर्वम् = सब, जनम् = लोगों को, भज = स्वीकार करो।

अर्थः— और भी—

विद्वान् ब्राह्मण तथा नीच जाति वाला मूर्ख भी एक बावड़ी में स्नान करता है। जो लता पहले मयूर के द्वारा (बैठकर) झुकायी गयी थी उसी फूली हुयी लता को (उस पर बैठ कर) कौवा भी झुका देता है। जिस नाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पार उतरते हैं उसी से दूसरे (वर्णाधम) लोग भी। तुम वेश्या हो, अतः वावड़ी, लता और नाव की भाँति सब लोगों का (एक समान) सेवन करो।।३२।।

टीकाः — विचक्षणः = विद्वान्; द्विजेषु = द्विजातिषु वरः = श्रेष्ठः ब्राह्मणः इत्यर्थः; वर्णेषु = सर्वजातिषु अधमः = हीनः शूद्रः चण्डालो वा; अपि; वाप्याम् = एकस्याम् एव दीर्घिकायाम्; स्नाति = स्नानम् करोति; या = लता; बर्हिणा = मयूरेण; नामिता = आक्रान्ता अधरीकृता वा, फुल्लाम् = विकसिताम्; ताम् एव लताम् = वल्लरीम्; वायसः = काकः पक्षिक्षुद्रः; अपि = द ढतायाम्; नाम्यति = नमयति; हि = विदितम् इदम्। यया = हेतुभूतया यया; नावा = तरण्या; ब्रह्मक्षत्रविशः = ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः, जातिश्रेष्ठाः इति भावः; तरन्ति = पारं व्रजन्ति; तया एव = नावा; इतरे = वर्णाधमाः, शूद्राः अपि तरन्ति इति शेषः। त्वं वेश्या = सर्वजनसाधारणी स्त्री; असि = वर्तसे; अतः; वापीव = दीर्घिका इव; लता इव = वल्लरी इव, नौः इव = नौका इव; सर्वम् = निखिलम्; जनम् = मनुष्यम् प्रार्थयितारम् इत्यर्थः; भज = सेवस्व।।३२।।

इस श्लोक में मालोपमा एवं काव्यलिंग अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है। छन्द का लक्षण इस प्रकार है— ''सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्''।।३२।।

वसन्तसेना — गुणो खु अणुराअस्स कारणं, ण उण बलक्कारो। (गुणः खल्वनुरागस्य कारणम्, न पुनर्बलात्कारः।)

शकारः— भावे भावे! एशा गब्भदाशी कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि ताह दलिद्दचालुहत्ताह अणुलत्ता ण मं कामेदि। वामदो तश्श घलं। जघा तव मम अ हश्तादो ण एशा पलिब्भंशदि तधा कलेदु भावे। (भाव भाव! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात्प्रभ ति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्यानुरक्ता न मां कामयते। वामतस्तस्य ग हम्। यथा तव मम च हस्तान्नैषा परिभ्रश्यति तथा करोतु भावः।)

विटः— (स्वगतम्) यदेव परिहर्तव्यं तदेवोदाहरति मूर्खः। कथं वसन्तसेनार्यचारुदत्तमनुरक्ता?। सुष्ठु खल्विवदमुच्यते—'रत्नं रत्नेन संगच्छते' इति। तद्गच्छतु, किमनेन मूर्खेण। (प्रकाशम्) काणेलीमातः! वामतस्तस्य सार्थवाहस्य ग हम्?।

शकार — अध इं। वामदो तश्श घलं। (अथ किम्। वामतस्तस्य ग हम्।)

वसन्तसेना — (स्वगतम्) अम्महे, वामदो तस्स गेहं त्ति जं सच्चं, अवरज्झंतेण वि दुज्जणेणे उवकिदं, जेण पिअसंगमं पाविदं। (आश्चर्यम्, वामतस्तस्य ग हमिति यत्सत्यम्, अपराध्यतापि दुर्जनेनोपकृतम्, येन प्रियसंगमः प्रापितः।)

शकारः— भावे भावे! बलिए खु अंधआले माशलाशिपविश्टा विअ मशिगुडिआ दीशंती ज्जेवव पणश्टा वशंतशेणिआ। (भाव भाव! बलीयसि खल्वन्धकारे माषराशिप्रविष्टेव मसीगुटिका द श्यमानैव प्रनष्टा वसन्तसेना।)

विटः—अहो, बलवानन्धकारः। तथा हि,—

आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना।
उन्मीलितापि द ष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण।।33।।

अर्थः— शकार — भाव! भाव!! जन्म से ही दासी यह वेश्या कामदेवायतन उद्यान में अर्थात् उस उद्यान में जिसमें कामदेव का मन्दिर है जाने से लेकर उस दरिद्र चारुदत्त से प्रेम करने लगी है और मुझे नहीं चाहती है। बाँयी ओर उसका घर है। ऐसा उपाय कीजिए कि जिससे यह हमारे और तुम्हारे हाथ से निकल न जाय।

विट — (अपने आप) यह मूर्ख वही बात कह रहा है जो नहीं कहनी चाहिए। क्या वसन्तसेना आर्य चारुदत्त से प्रेम करती है? वस्तुतः यह ठीक ही कहा गया है कि—'रत्न-रत्न के ही साथ संयुक्त होता है (अर्थात् योग्य का मेल योग्य से ही होता है)।' तो जाने दो। इस मूर्ख से क्या लाभ? (प्रकट रूप से) काणेलीपुत्र! (व्यभिचारिणीपुत्र!) उस सार्थवाह चारुदत्त का घर बाँयी ओर है?

शकार — और क्या? उसका घर बाँयी ओर है।

वसन्तसेना — (अपने आप) आश्चर्य! यदि सचमुच बाँयी ओर उसका घर है, तो अपराध करते हुए भी इस दुष्ट ने उपकार किया है, जिसने प्रिय के साथ समागम तो प्राप्त कराया अर्थात् जिससे प्रिय चारुदत्त का मिलना तो सम्भव हो गया।

शकार — भाव! भाव!! इस घोर अन्धकार में, उड़द (माष) की ढेर में गिरी हुई स्याही की टिकिया के समान, देखते ही देखते वसन्तसेना अद श्य हो गयी।

अन्वयः— आलोकविशाला, में द ष्टिः, सहसा, तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना, (जाता), उन्मीलिता, अपि, (द ष्टिः) अन्धकारेण, निमीलिता, इव, (भवति)।।33।।

शब्दार्थः— आलोकविशाला = प्रकाश में दूर तक देखने वाली, मे = मेरी, द ष्टिः = आँख, सहसा = एकाएक, तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना = अन्धकार में प्रवेश करने से अवरुद्ध (जाता = हो गयी है), उन्मीलिता = खुली हुई, अपि = भी, (द ष्टिः = आँख), अन्धकारेण = अन्धकार के द्वारा, निमीलिता = बन्द, इव = सी, (भवति = हो रही है)।।

अर्थः— विट — अहो, प्रबल अंधकार है; क्योंकि-

प्रकाश में विस्त त (दूर तक देखने वाली) मेरी द ष्टि सहसा अन्धकार में प्रवेश करने से अवरुद्ध हो गयी है। खुली हुई भी मेरी आँखें अन्धकार के द्वारा बन्द सी कर दी गयी हैं।।33।।

टीकाः — आलोके = प्रकाशे दर्शने वा विशाला = विस्त ता महती वा; मे = मम विटस्य; द ष्टिः = नेत्रम्; सहसा = झटिति; तिमिरे = अन्धकार प्रवेशेन = आगमनेन विच्छिन्ना = अवरुद्धा हीनशक्तिः; जाता इति। उन्मीलिता = कृतोन्मेषा; अपि; (द ष्टिः); अन्धकारेण = तिमिरेण; निमीलिता = मुद्रिता; इव; भवति इति।।33।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं आर्या छन्द है।

अपि च,—

लिम्पतीव तमो ंगानि वर्षतीवा जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव द ष्टिर्विफलतां गता।।34।।

अन्वयः— तमः, अंगानि, लिम्पति, इव, नभः, अ जनम्, वर्षति, इव, द ष्टिः, असत्पुरुषसेवा, इव, विफलताम्,

गताः।।३४।।

शब्दार्थः— तमः = अन्धकार, अंगानि = अंगों को, लिम्पति इव = लिप्त सा कर रहा है, नभः = आकाश, अ जनम् = आँजन, काजल को, वर्षति इव = वरस सा रहा है, द ष्टिः = आँख, असत्पुरुषसेवा इव = दुष्ट मनुष्यों की सेवा की भाँति, विफलताम् = निष्फलता को, गता = प्राप्त हो गयी है।

अर्थः— और भी —

अन्धकार अंगों को लिप्त सा कर रहा है अर्थात् अंगों में अन्धकार व्याप्त हो रहा है, आकाश मानो काजल की व ष्टि कर रहा है। मेरी द ष्टि दुष्ट मनुष्यों की सेवा की भाँति निष्फल हो गयी है।।३४।।

टीकाः — तमः = अन्धकारः; अंगानि = शरीरावयवान्; लिम्पति इव = म्रक्षति इव; नभः = आकाशम्; अ जनम् = क जलम्; वर्षति = पातयति इव; द ष्टिः = नेत्रम्; असत्पुरुषस्य = असज्जनस्य सेवा = परिचर्या इव; विफलताम् = निष्फलताम् दर्शनाभावमित्यर्थः; गता = जाता।।३४।।

इस श्लोक में यमक और अनुप्रास तथा उपमा एवं उत्प्रेक्षा की संस ष्टि है। इसमें प्रयुक्त छन्द है-'अनुष्टुप्'। इसका लक्षण इस प्रकार है—

''श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु प चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।३४।।

शकारः— भावे भावे! अण्णेशामि वशंतशेणिअं। (भाव भाव! अन्विष्यामि वसन्तसेनिकाम्।)

विटः— काणेलीमातः! अस्ति किंचिच्चिह्नं यदुपलक्षयसि।

शकारः— भावे भावे! किं विअ? (भाव भाव! किमिव?।)

विटः— भूषणशब्दं सौरभ्यानुविद्धं माल्यगन्धं वा।

शकारः— शुणामि मल्लगंध, अंधआलपुलिदाए उण णाशिआए ण शुव्वत्तं पेक्खामि भूषणसद्दं। (श्र णोमि माल्यगन्धम्, अन्धकारपूरितया पुनर्नासिकया न सुव्यक्तं पश्यामि भूषणशब्दम्।

विटः— (जनान्तिकम्) वसन्तसेने!

कामं प्रदोषतिमिरेण न द श्यसे त्वं
सौदामिनीव जलदोदरसंधिलीना।
त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवो यं
गन्धश्च भीरु! मुखराणि च नूपुराणि।।३५।।

अर्थः— शकारः— भाव! भाव!! वसन्तसेना को खोज रहा हूँ।

विटः— काणेली के पुत्र! कोई चिह्न है, जिसके सहारे तुम (वसन्तसेना को) ढूँढ़ रहे हो?।

शकार —भाव! भाव!! कैसा चिह्न?

विट — आभूषणों की खनखनाहट अथवा सुगन्धित माला की गन्ध?

शकार — माला की गंध तो सुन रहा हूँ, किन्तु अन्धकारयुक्त नाक से अर्थात् नाक के अन्धकार से पूर्ण हो जाने के कारण आभूषणों के शब्द को स्पष्ट नहीं देख रहा हूँ।

अन्वयः— हे वसन्तसेने! जलदोदरसन्धिलीना, सौदामिनी, इव, कामम्, त्वम्, प्रदोषतिमिरेण, न, द श्यसे, तु, हे भीरु! माल्यसमुद्भवः, अयम्, गन्धः, त्वाम्, सूचयिष्यति, च, मुखराणि, नूपुराणि, च, (सूचयिष्यति)।।३५।।

शब्दार्थः— हे वसन्तसेने! जलदोदरसन्धिलीना = बादलों के भीतर सन्धि-स्थल में छिपी हुई, सौदामिनी = विजली (के), इव = समान, कामम् = यद्यपि, त्वम् = तुम, प्रदोषतिमिरेण = सायंकालीन अन्धकार के कारण, न = नहीं द श्यसे = दिखलायी पड़ रही हो, तु = किन्तु, हे भीरु = हे डरपोक स्वभाववाली! माल्यसमुद्भवः = माला से निकली हुई, अयम् = यह, गन्धः = सुगन्ध, त्वाम् = तुमको, सूचयिष्यति = सूचित कर देगी, च = और, मुखराणि = शब्द करने वाले, नूपुराणि = नूपुर, च = भी, (सूचयिष्यन्ति = सूचित कर देंगे)।।

अर्थः— विट — (जनान्तिक) हे वसन्तसेने!

बादलों के भीतर सन्धि-स्थल में छिपी हुई बिजली के समान यद्यपि तुम सायंकालीन अन्धकार के कारण नहीं दिखलायी पड़ रही हो, परन्तु हे डरपोक। माला से निकली हुयी सुगन्ध तथा शब्द करने वाले नूपुर तुम्हें सूचित कर देंगे अर्थात् तुम्हारा पता बता देंगे।

टीका— हे वसन्तसेने! जलदानाम् = मेघानाम् उदरसन्धौ = आभ्यन्तरे लीना = अन्तर्हिता; सुदाम्नः = मेघविशेषस्य अपत्यं स्त्री सौदामिनी = विद्युत्; इव; कामम् = यद्यपि; त्वम् = वसन्तसेना; प्रदोषतिमिरेण प्रदोषस्य = रजनीमुखस्य तिमिरेण = अन्धकारेण; न = नहि; द श्यसे = अवलोक्यसे; तु = किन्तु; हे भीरु = हे भयशीले! माल्यात् = पुष्पदाम्नः समुद्भवः = उत्पत्तिः यस्य सः; अयम् = अनुभूयमानः; गन्धः = सौरभः; त्वाम् = वसन्तसेनाम्; सूचयिष्यति = ज्ञापयिष्यसि, च = तथा; मुखराणि = शब्दायमानानि; नूपुराणि = पादभूषणानि; च = अपि; सूचयिष्यन्ति इति।।३५।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार और वसन्ततिलका छन्द है।

श्रुतं वसन्तसेने!।

वसन्तसेना— (स्वगतम्) सुदं गहिदं च। (नाट्येन नूपुराण्युत्सार्य माल्यानि चापनीय किंचित्परिक्रम्य हस्तेन पराम श्य) अम्मो, भित्तिपरामरिससूचिदं पक्खदुआरअं खु एदं। जाणामि अ संजोएण गेहस्स संवुदं पक्खदुआरअं।

(श्रुतं ग हीतं च। अहो, भित्तिपरामर्शसूचितं पक्षद्वारकं खल्वेतत्। जानामि च संयोगेन गेहस्य संव त्तं पक्षद्वारकम्।)

चारुदत्तः— वयस्य! समाप्तजपो स्मि। तत्सांप्रतं गच्छ। मात भ्यो बलिमुपहर।

विदूषकः— भो, ण गमिस्सं। (भो न गमिष्यामि।)

चारुदत्तः— धिक्कष्टम्,-

दारिद्र्यात्पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न संतिष्ठते
सुस्निग्धा विमुखीभवन्ति सुहृदः स्फारीभवन्त्यापदः।
सत्त्वं ह्रासमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते
पापं कर्म च यत्परैरपि कृतं तत्तस्य संभाव्यते।।३६।।

अर्थः - हे वसन्तसेने, सुना।

वसन्तसेना – (अपने आप) सुना और मतलब भी समझ लिया (अभिनय से नूपुरों को उतार कर और मालाओं को फेंक कर, कुछ घूम कर तथा हाथ से छूकर) अहो! दीवार के छूने से पता चलता है कि यह अवश्य ही बगल का दरवाजा (खिड़की) है, और छूने से लगता है घर का यह पक्षद्वार (खिड़की) बन्द है।

चारुदत्त– मित्र! मैं जप समाप्त कर चुका। तो अब जाओ, मात -देवियों को बलि (पूजा) चढ़ा जाओ।

अर्थः– **विदूषकः–** अजी मैं नहीं जाऊँगा।

अन्वयः– दारिद्र्यात्, बान्धवजनः, पुरुषस्य, वाक्ये, न, सन्तिष्ठते, सुस्निग्धाः, सुहृदः, विमुखीभवन्ति, आपदः, स्फारीभवन्ति, सत्त्वम्, ह्रासम्, उपैति, शीलशशिनः, कान्तिः, परिम्लायते, च, यत्, पापम्, कर्म, परैः, अपि, कृतम्, तत्, तस्य, सम्भाव्यते।।३६।।

शब्दार्थः– दारिद्र्यात् = दरिद्रता के कारण, बान्धवजनः = बन्धु लोग, पुरुषस्य = निर्धन पुरुष के, वाक्ये = कहने में, न = नहीं, सन्तिष्ठते = रहते, सुस्निग्धाः = अत्यन्त स्नेही, सुहृदः = मित्र, विमुखीभवन्ति = विमुख हो जाते हैं, मुँह फेर लेते हैं, आपदः = विपत्तियाँ, स्फारीभवन्ति = बढ़ जाती हैं, सत्त्वं = बल, ह्रासम् = कमी को, उपैति = प्राप्त हो जाता है, शीलशशिनः = चरित्ररूपी चन्द्रमा की, कान्तिः = चमक, परिम्लायते = धुँधली हो जाती है, च = कहाँ तक कहा जाय, यत् = जो, पापम् = पाप, कर्म = काम, परैः = दूसरे व्यक्तियों के द्वारा, अपि = भी कृतम् = किया गया है, तत् = वह पाप कर्म, तस्य = उसी दरिद्र का, सम्भाव्यते = समझा जाता है।।

अर्थः– दरिद्रता के कारण बन्धु लोग भी निर्धन पुरुष के कहने में नहीं रहते। अत्यन्त स्नेही मित्र भी विमुख हो जाते हैं और आपत्तियाँ बढ़ जाती हैं। बल क्षीण हो जाता है, चरित्र रूपी चन्द्रमा की कान्ति धुँधली हो जाती है, कहाँ तक कहा जाय, जो दूसरे व्यक्तियों के द्वारा भी किया गया पाप-कर्म है वह उसी का किया हुआ समझा जाता है।।३६।।

टीका– दारिद्र्यात् = निर्धनत्वात्; बान्धवजनः = सुहृज्जनः; पुरुषस्य = निर्धनजनस्य; वाक्ये = कथने; न सन्तिष्ठते = न चलति, वचनं न पालयति इत्यर्थः; सुस्निग्धाः = अतिस्नेहपूरिताः; सुहृदः = मित्रजनाः; विमुखीभवन्ति = विमुखाः उदासीनाः वा जायन्ते; आपदः = विपत्तयः; स्फारीभवन्ति = व द्धिम् आपद्यन्ते; सत्त्वम् = बलम्; ह्रासम् = अवनतिम्; उपैति = गच्छति; शीलम् = चरित्रम् एव शशिः = चन्द्रः तस्य; कान्तिः = दीप्तिः; परिम्लायते = मलिनतां प्राप्नोति; च = कि च; यत् पापम् = पापजनकम् निन्दितमित्यर्थः, कर्म = कार्यम्; परैः = अन्यजनैः; अपि, कृतम् = सम्पादितम्; तत् = अन्यव्यक्तिकृतं पापं कर्म; तस्य = निर्धनस्य जनस्य; सम्भाव्यते = अनुमीयते।।३६।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

अपि च,–

संगं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते संभाषते नादरात्
संप्राप्तो ग हमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम्।।३७।।

अन्वयः– हि, कश्चित्, अस्य, संगम्, न, एव, कुरुते, आदरात्, न, सम्भाषते, उत्सवेषु, धनिनाम्, ग हम्,

सम्प्राप्तः, सावज्ञम्, आलोक्यते, अल्पच्छदः, (दरिद्रः), लज्जया, महाजनस्य, दूरात्, एव, विहरति, (अतः अहम्) मन्ये, निर्धनता, अपरम्, प्रकामम्, षष्ठम्, महापातकम् (अस्ति)।।३७।।

शब्दार्थः— हि = क्योंकि, कश्चित् = कोई, अस्य = इसका (निर्धन का), संगम् = साथ, न = नहीं, एव = ही, कुरुते = करता है; आदरात् = आदर से, न = नहीं, सम्भाषते = बोलता है; उत्सवेषु = उत्सवों में, धनिनाम् = धनियों के, ग हम् = घर को, सम्प्राप्तः = गया हुआ, सावज्ञम् = अनादरपूर्वक, आलोक्यते = देखा जाता है; अल्पच्छदः = अल्प वस्त्र वाला (दरिद्र), लज्जया = लज्जा के कारण, महाजनस्य = बड़े लोगों के, दूरात् = दूर से, एव = ही, विहरति = चलता है; (अतः = इसलिये, अहम् = मैं), मन्ये = मानता हूँ, निर्धनता = गरीबी, अपरम् = दूसरा, प्रकामम् = प्रबल, षष्ठम् = छठा, महापातकम् = महापाप, (अस्ति = है)।।

अर्थः— और भी-

कोई भी व्यक्ति इसका (निर्धन का) संग नहीं करता है। न आदर से बोलता है। उत्सव के अवसर पर (यदि निर्धन) धनिक के घर पहुँच जाता है तो वहाँ भी वह लोगों के द्वारा अनादर की द ष्टि से देखा जाता है। निर्धन व्यक्ति अल्प वस्त्रवाला होने के कारण लज्जावश बड़े लोगों से दूर होकर ही चलता है अर्थात् दूर ही रहता है। अतः मेरी समझ में दरिद्रता (प च महापातकों के अतिरिक्त) एक प्रबल छठा महापाप है।।३७।।

टीका— हि = यतः; कश्चित् = को पि; जनः इति शेषः; अस्य = दरिद्रस्य; संगम् = सम्पर्कम्; नैव कुरुते = नैव विदधाति; तथा आदरात् = सत्कारात्, न सम्भाषते = न वदति; दरिद्रम् इति शेषः; उत्सवेषु = विवाहादिशुभावसरेषु; आनन्दजनककार्येषु इत्यर्थः; धनिनाम् = धनवताम्; ग हम् = भवनम्; सम्प्राप्तः = गतः; अवज्ञया = तिरस्कारेण सहितं सावज्ञम्; आलोक्यते = अवलोक्यते; अल्पः = स्वल्पः छदः = वस्त्रम् यस्य सः, अल्पच्छदः अतिस्वल्पवस्त्रः दरिद्रः; लज्जया = ह्रिया; महाजनस्य = धनिनः; श्रेष्ठवस्त्रवतः इत्यर्थः; दूरादेव; विहरति = गच्छति; अतः अहम्; मन्ये = स्वीकरोमि; यत् निर्धनता = दरिद्रता; अपरम् = अन्यत्; प्रकामम् = प्रव द्धम्; षष्ठम् = ब्रह्महत्यादिप चप्रकारातिरिक्तम्; महापातकम् = ब हत्पातकम्; अस्ति।।३७।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

अपि च,—

दारिद्र्य! शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा।
विपन्नदेहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिन्ता क्व गमिष्यसि त्वम्।।३८।।

अन्वयः— हे दारिद्र्य! भवन्तम्, एवम्, शोचामि, (यत्), अस्मच्छरीरे, सुहृद्, इति, उषित्वा, मयि, मन्दभाग्ये, विपन्नदेहे, (सति), त्वम्, क्व, गमिष्यसि, इति, मम, चिन्ता (अस्ति)।।३८।।

शब्दार्थः— हे दारिद्र्य = हे दरिद्रता, भवन्तम् = आपको अर्थात् आपके विषय में, एवम् = इस प्रकार, शोचामि = दुःखी होता हूँ, (यत् = कि), अस्मच्छरीरे = मेरे शरीर में, सुहृद् = मित्र, इति = जैसा, उषित्वा = निवास करके, मयि = मुझ, मन्दभाग्ये = अभागा (के), विपन्नदेहे = मर जाने पर, त्वम् = तुम, क्व = कहाँ, गमिष्यसि = जाओगे, इति = ऐसी, मम = मेरी, चिन्ता = चिन्ता, अस्ति = है।

अर्थः— और भी-

हे दारिद्र्य! तुम्हारे विषय में मैं इस प्रकार दुःखी होता हूँ अर्थात् तुम्हारे विषय में मुझे यही चिन्ता है कि मेरे शरीर में मित्र के समान निवास करके मुझ अभागे के मर जाने पर तुम कहाँ जाओगे?।

टीका— हे दारिद्र्य = हे दैन्य! भवन्तम् = त्वाम्; एवम् = इत्थम्; शोचामि = तव भाविनीं दशां विचारयन् दुःखमनुभवामि। यत्; अस्मच्छरीरे = मम देहे; सुहृद् = मित्रमिति बुद्ध्या इति शेषः; उषित्वा = निवासं कृत्वा; मयि = चारुदत्ते; मन्दभाग्ये = भाग्य विरहिते; विपन्नः = विनष्टः; देहः = शरीरं यस्य तस्मिन्; म ते सतीत्यर्थः; त्वं क्व = कुत्र; गमिष्यसि = यास्यसि; इति = एताद शी; मम = तव सुहृदः; चिन्ता = मर्मोपघातिनी भावना अस्तीति।।३८।।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-उपजाति।

विदूषकः— (सवैलक्ष्यम्) भो वअस्स! जइ मए गंतव्वं ता एसा वि सहाइणी रदणिआ भोदु। (भो वयस्य! यदि मया गन्तव्यम्, तदेषापि मम सहायिनी रदनिका भवतु।)

चारुदत्तः—रदनिके! मैत्रेयमनुगच्छ।

चेटि— जं अज्जो आणवेदि। (यदार्य आज्ञापयति।)

विदूषकः—भोजि रदणिए! गेण्ह बलिं पदीवं च। अहं अवावुदं पक्खदुआरअं करेमि। (तथा करोति) (भवति रदनिके! ग हाण बलिं प्रदीपं च। अहमपाव तं पक्षद्वारकं करोमि।)

वसन्तसेना—मम अब्भुववत्तिणिमित्तं विअ अवावुदं पक्खदुआरअं। ता जाव पविसामि। (द ष्ट्वा) हद्धी हद्धी, कधं पदीवो। (पटान्तेन निर्वाप्य प्रविष्टा) (ममाभ्युपपत्तिनिमित्तमिवापाव तं पक्षद्वारकम्। तद्यावत्प्रविशामि। हा धिक् हा धिक्, कथं प्रदीपः।)

चारुदत्तः- मैत्रेय! किमेतत्?

विदूषकः—अवावुदपक्खदुआरएण पिंडीभूदेण वादेश णिव्वाविदो पदीवो। भोदि रदणिए! णिक्कम तुमं पक्खदुआरएण अहंपि अब्भंतरचदुस्सालादो पदीवं पज्जालिअ आअच्छामि। (इति निष्क्रान्तः) (अपाव तपक्षद्वारेण निर्वापितः प्रदीपः। भवति रदनिके! निष्क्राम त्वं पक्षद्वारकेण। अहमप्यभ्यन्तरचतुःशालातः प्रदीपं प्रज्वाल्यागच्छामि।)

शकारः— भावे भावे! अण्णेशामि वशंतशेणिअं। (भाव भाव! अन्वेषयामि वसन्तसेनिकाम्।)

विटः— अन्विष्यतामन्विष्यताम्।

शकारः— (तथा कृत्वा) भावे भावे! गहिदा गहिदा। (भाव भाव! ग हीता ग हीता।)

विटः— मूर्ख! नन्वहम्।

शकारः— इदो दाव भविअ एअंते भावे च्यिश्टदु। (पुनरन्विष्य चेटं ग हीत्वा) भावे भावे! गहिदा गहिदा। (इतस्तावद्भूत्वा एकान्ते भावस्तिष्ठतु। भाव भाव! ग हीता ग हीता।)

चेटः— भश्टके, चेडे हग्गे। (भट्टारक! चेटो हम्।)

शकारः— इदो भावे, इदो चेडे। भावे चेडे, चेडे भावे। तुम्हें दाव एअंते च्यिश्ट। (पुनरन्विष्य रदनिकां केशेषु ग हीत्वा।) भावे भावे! शपदं गहिदा गहिदा वशंतशेणिआ।

अंधआले पलाअंती मल्लगंधेण शूइदा।
केशविंदे पलामिश्टा चाणक्के णेव्व दोव्वदी।।३६।।

(इतो भावः, इतश्चेटः। भावश्चेटः, चेटो भावः। युवां तावदेकान्ते तिष्ठतम्। भाव भाव! सांप्रतं ग हीता वसन्तसेनिका।

अन्धकारे पलायमाना माल्यगन्धेन सूचिता।

केशव न्दे पराम ष्टा चाणक्येनेव द्रौपदी।।)

अर्थः— विदूषक — (लज्जापूर्वक) मित्र! यदि मुझे जाना ही है तो यह रदनिका भी मेरे साथ चले।

चारुदत्त— रदनिके! मैत्रेय के साथ जाओ।

चेटी — जैसी आर्य की आज्ञा।

विदूषक — हे रदनिके! बलि और दीपक को पकड़ो। मैं पक्षद्वार (खिड़की) को खोलता हूँ। (वैसा करता है)।

वसन्तसेना — मानो मुझ पर दया करने के लिये बगल का द्वार खुल गया है। तो जब तक प्रवेश करती हूँ। (देखकर) हाय! हाय!! क्या दीपक (जल रहा) है? (आँचल से दीपक बुझा कर भीतर प्रविष्ट हो जाती है)।

चारुदत्त— मैत्रेय! यह क्या?

विदूषक —पक्षद्वार के खुलते ही एकत्रीभूत वायु के झोंके के दीपक बुझा दिया गया। हे रदनिके! तुम पक्षद्वार से बाहर चलो। मैं भी भीतरी चतुःशाला से दीपक जलाकर आ रहा हूँ। (निकल जाता है)।

शकार — भाव! भाव!! मैं वसन्तसेना को ढूँढ रहा हूँ।

विट — ढूँढिये, ढूँढिये।

शकार — (खोलकर) भाव! भाव!! पकड़ ली गयी, पकड़ ली गयी।

विट — मूर्ख! (यह तो) मैं हूँ।

शकार — तो आप (भाव) इधर होकर एकान्त में खड़े रहें। (फिर ढूँढ कर और चेट को पकड़कर) भाव! भाव!! पकड़ ली गयी, पकड़ ली गयी।

चेट — स्वामिन्! यह तो मैं (चेट) हूँ।

शकार — इधर भाव (विट), इधर चेट। भाव-चेट, चेट-भाव। तुम दोनों तो एकान्त में खड़े रहो। (फिर खोज कर और रदनिका का केश पकड़कर) भाव! भाव!! अब 'वसन्तसेना' पकड़ ली गयी, पकड़ ली गयी।

अन्वयः—अन्धकारे, पलायमाना, माल्यगन्धेन, सूचिता, (वसन्तसेना), चाणक्येन, द्रौपदी, इव, केशव न्दे, पराम ष्टा।।३६।।

शब्दार्थः—अन्धकारे = अँधेरे में, पलायमाना = भागती हुई, माल्यगन्धेन = माला की सुगन्ध से, सूचिता = सूचित की गयी, (वसन्तसेना), चाणक्येन = चाणक्य के द्वारा, द्रौपदी इव = द्रौपदी की भाँति, केशव न्दे = केशों में (से) पराम ष्टा = पकड़ ली गयी।

अर्थ:- अन्धकार में भागती हुई माला की गन्ध से सूचित 'वसन्तसेना' मेरे द्वारा उसी प्रकार केशों से पकड़ ली गयी है जैसे 'चाणक्य' के द्वारा 'द्रौपदी'।।३६।।

टीकाः — अन्धकारे = तिमिरव्याप्ते स्थाने; पलायमाना = पलाय्य गच्छन्ती अपि; माल्यस्य = पुष्पदाम्नः

गन्धेन = सौरभेण; सूचिता = निर्दिष्टा; वसन्तसेना; चाणक्येन = कौटिल्येन; द्रौपदी = पा चाली; इव = यथा; केशव न्दे = केशकलापे; पराम ष्टा = ग हीता।।३६।।

विटः—

एषासि वयसो दर्पात्कुलपुत्रानुसारिणी।
केशेषु कुसुमाढ्येषु सेवितव्येषु कर्षिता।।४०।।

अन्वयः— वयसः, दर्पात्, कुलपुत्रानुसारिणी, एषा, (त्वम्), कुसुमाढ्येषु, सेवितव्येषु, केशेषु, कर्षिता, असि।।४०।।

शब्दार्थः— वयसः = अवस्था के, दर्पात् = घमण्ड से, कुलपुत्रानुसारिणी = कुलीन पुत्र (चारुदत्त) का अनुगमन करनेवाली, एषा = यह, (त्वम् = तुम), कुसुमाढ्येषु = फूलों से सजे हुए, सेवितव्येषु = सेवा करने के योग्य, केशेषु = बालों में, कर्षिता = खींची गयी, असि = हो।।

अर्थः— विट — युवावस्था के अहंकार से कुलीन पुत्र चारुदत्त का अनुगमन करने वाली यह तुम फूलों से सजे हुए, सेवा करने के योग्य बालों से पकड़ कर खींची जा रही हो।।४०।।

टीका— वयसः = यौवनावस्थायाः; दर्पात् = अहंकारात्; कुलस्य = प्रशस्तवंशस्य, पुत्रम् = सुतम् चारुदत्तमित्यर्थः अनुसरति इति अनुसारिणी = अनुगमनशीला; एषा = अपसरन्ती अपि; त्वम् = वसन्तसेना; कुसुमैः = पुष्पैः आढ्येषु = सम्पन्नेषु; सेवितव्येषु = अलंकार्येषु सेवनीयेषु वा; केशेषु = कचेषु;, कर्षिता = हठात् ग हीता; असि = वर्तसे।।४०।।

शकारः—

एशाशि वाशू शिलशि ग्गहीदा केशेशु बालेशु शिलोलुहेशु।
अक्कोश विक्कोश लवहिचंडं शंभुं शिवं शंकलमीशलं वा।।४१।।

(एषासि वासु शिरसि ग हीता केशेषु बालेषु शिरोरूहेषु।
आक्रोश विक्रोश लपाधिचण्डं शंभुं शिवं शंकरमीश्वरं वा।।)

अन्वयः— हे वासु! एषा, (त्वम्) शिरसि, केशेषु, बालेषु, शिरोरूहेषु, ग हीता, असि, (सम्प्रति), आक्रोश, विक्रोश, वा, शम्भुम्, शिवम्, शंकरम्, ईश्वरम्, अधिचण्डम्, लप।।४१।।

शब्दार्थः— हे वासु = हे बाले! (त्वम् = तुम), शिरसि = शिर में, केशेषु = बालों में, बालेषु = केशों में, शिरोरूहेषु = शिर के बालों में, ग हीता = पकड़ ली गयी, असि = हो, (सम्प्रति, = अब) आक्रोश = गाली दो, विक्रोश = चिल्लाओ, वा = अथवा, शम्भुम् = शम्भु को, शिवम् = शिव को, शंकरम् = शंकर को, ईश्वरम् = ईश्वर को, अधिचण्डम् = काफी जोर से, लप = पुकारो।।

अर्थः— शकार — हे बाले! यह (तुम) शिर के बालों, केशों, शिरोरूहों के माध्यम से पकड़ ली गयी हो अर्थात् तुम्हारे शिर के बाल पकड़ में आ गए हैं। अब तुम गाली दो, चिल्लाओ, शम्भु, शिव, शंकर अथवा ईश्वर को जोर से पुकारो अर्थात् हमें किसी से भय नहीं है।

टीका— हे वासु = हे बाले! एषा = पलायमाना; त्वम् = वसन्तसेना; शिरसि केशेषु बालेषु शिरोरूहेषु = कचेषु, ग हीता = अवलम्बिता, असि = वर्तसे। सम्प्रति त्वम् आक्रोश = शापम् गालिं वा देहि, श्रावय; विक्रोश = आह्वय कमपि इति शेषः, वा = अथवा; शम्भुम् शिवम् शंकरम् = महेश्वरमित्यर्थः, अधिचण्डम् = अत्युच्चैः; लप = विलापम् कुरु।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-इन्द्रवज्रा। इसका लक्षण इस प्रकार है- 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः'।।४१।।

रदनिका— (सभयम्) किं अज्जमिस्सेहिं ववसिदं?। (किमार्यमिश्रैर्व्यवसितम्?।)

विटः— काणेलीमातः! अन्य एवैष स्वरसंयोगः।

शकारः— भावे भावे! जधा दहिभत्तलुद्धाए मज्जालिए शलपलिवत्ते होदि, तधा दाशीए धीए शलपलिवत्ते कडे। (भाव भाव! यथा दधिभक्तलुब्धाया मार्जारिकायाः स्वरपरिव त्तिर्भवति, तथा दास्याः पुत्र्या स्वरपरिव त्तिः कृता।)

विटः— कथं स्वरपरिवर्तः कृतः?। अहो चित्रम्, अथवा किमत्र चित्रम्?।

इयं रंगप्रवेशेन कलानां चोपशिक्षया।
व चनापण्डितत्वेन स्वरनैपुण्यमाश्रिता।।४२।।

अर्थः— रदनिका — (भयपूर्वक) आप महानुभावों ने यह क्या किया?

विट — काणेली के पुत्र! यह स्वर तो दूसरा सा लगता है अर्थात् यह स्वर 'वसन्तसेना' के स्वर से भिन्न सा प्रतीत होता है।

शकार — भाव! भाव!! जिस प्रकार दही भात की इच्छुक बिल्ली के स्वर में परिवर्तन हो जाता है अर्थात् जिस प्रकार दही-भात की अभिलाषिणी बिल्ली अपना स्वर बदल देती है उसी प्रकार दासी की पुत्री इस नीच वसन्तसेना ने भी स्वर में परिवर्तन कर लिया है।

अन्वयः— इयम्, रंगप्रवेशेन, कलानाम्, उपशिक्षया, व चनापण्डितत्वेन, च, स्वरनैपुण्यम्, आश्रिता।।४२।।

शब्दार्थः— इयम् = यह वसन्तसेना, रंगप्रवेशेन = नाट्यशाला में प्रवेश करने से, कलानाम् = संगीत आदि कलाओं के, उपशिक्षया = अभ्यास के द्वारा, व चनापण्डितत्वेन = ठगने की कुशलता के कारण, स्वरनैपुण्यम् = स्वर परिवर्तन में निपुणता, आश्रिता = प्राप्त कर ली है।।

अर्थः— विट — क्या स्वर में परिवर्तन कर लिया? अहो आश्चर्य है! अथवा इसमें आश्चर्य ही क्या है?

इस 'वसन्तसेना ने नाट्यशाला में प्रवेश एवं कलाओं की शिक्षा के द्वारा दूसरों को ठगने में कुशलता प्राप्त कर लेने के कारण स्वर परिवर्तन में निपुणता प्राप्त कर ली है।।४२।।

टीका— इयम् = वसन्तसेना; रंगः = नाट्यशाला तस्मिन् प्रवेशेन = गमनेन; कलानाम् = न त्यगीतादीनाम्; उपशिक्षया = अभ्यासेन, शिक्षया वा; व चनायाम् = जनप्रतारणायाम्, धूर्ततायाम् इत्यर्थः; पण्डितत्वेन = चातुर्येण; च; स्वरनैपुण्यम् = स्वरपरिवर्तनपटुताम्; आश्रिता = प्राप्तवती, शिक्षिता इत्यर्थः।।४२।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।।४२।।

विदूषकः— ही ही भोः, पदोसमंदमारुदेण पशुबंधोवणीदस्य विअ छागलस्स हिअअं, फुरफुराअदि पदीवो। (उपस त्य रदनिकां द ष्ट्वा) भो रदणिए! (आश्चर्यं भोः, प्रदोषमन्दमारुतेन पशुबन्धोपनीतस्येव छागलस्य हृदयम्, फुरफुरायते प्रदीपः। भो रदनिके!)

शकारः— भावे भावे! मणुश्शे मणुश्शे। (भाव भाव! मनुष्यो मनुष्यः।)

विदूषकः— जुत्तं ण्णेदं, सरिसं ण्णेदं, जं अज्जचारुदत्तस्स दलिद्ददाए संपदं परपुरिसा गेहं पवेसिअंति। (युक्तं नेदम्, सद शं नेदम्, यदार्यचारुदत्तस्य दरिद्रतया सांप्रतं परपुरुषा गेहं प्रविशन्ति।)

रदनिका – अज्ज मित्तेअ! पेक्ख मे परिहवं। (आर्य मैत्रेय! प्रेक्षस्व मे परिभवम्।)

विदूषकः— किं तव परिहवो आदु अम्हाणं?। (किं तव परिभवः अथवा स्माकम्?।)

रदनिका – णं तुम्हाणं ज्जेव्व। (ननु युष्माकमेव।)

विदूषकः— किं एसो बलक्कारो?। (किमेष बलात्कारः?।

रदनिका – अध इं। (अथ किम्।)

विदूषकः— सच्चं (सत्यम्।)

रदनिका – सच्चं। (सत्यम्)

विदूषकः— (सक्रोधं दण्डकाष्ठमुद्यम्य) मा दाव। भो, सके गेहे कुक्कुरो वि दाव चंडो भोदि, किं उण अहं बम्हणो। ता एदिणा अम्हारिसजणभाअधेअकुडिलेण दंडकट्ठेण दुट्ठस्स विअ सुक्खाणवेणुअस्स मत्थअं दे पहारेहिं कुट्टइस्सं। (मा तावत्। भोः, स्वके गेहे कुक्कुरो पि तावच्चण्डो भवति, किं पुनरहं ब्राह्मणः। तदेतेनास्माद शजनभागधेयकुटिलेन दण्डकाष्ठेन दुष्टस्येव शुष्कवेणुकस्य मस्तकं ते प्रहारैः कुट्टयिष्यामि।

विटः— महाब्राह्मण! मर्षय मर्षय।

विदूषकः— (विटं द ष्ट्वा) ण एत्थ एसो अवरज्झदि। (शकारं द ष्ट्वा) एसो खु एत्थ अवरज्झदि। अरे रे राअसालअ संठाणअ दुज्जण दुम्मणुस्स! जुत्तं ण्णेदं। जइ वि णाम तत्तभवं अज्जचारुदत्तो दलिद्दो संवुत्तो, ता किं तस्स गुणेहिं ण अलंकिदा उज्ज्इणी?। जेण तस्स गेहं पविसिअ परिअणस्स ईरिसो उवमद्दो करीअदि।

मा दुग्गदो त्ति परिहवो णत्थि कदंतस्स दुग्गदो णाम।

चारित्तेण विहीणो अड्ढो वि अ दुग्गदो होई।।४३।।

(नात्र एषो पराध्यति। एष खल्वत्रापराध्यति। अरे रे राजश्यालक संस्थानक दुर्जन दुर्मनुष्य! युक्तं नेदम्। यद्यपि नाम तत्रभवानार्यचारुदत्तो दरिद्रः संव त्तः। तत्किं तस्य गुणैर्नालंकृतोज्जयिनी? येन तस्य ग हं प्रविश्य परिजनस्येद श उपमर्दः क्रियते।

मा दुर्गत इति परिभवो नास्ति कृतान्तस्य दुर्गतो नाम।

चारित्र्येण विहीन आढ्यो पि च दुर्गतो भवति।।)

(प्रवेश करके)

अर्थः— विदूषक – अरे आश्चर्य है! रात्रि के प्रथम प्रहर की धीमी-धीमी हवा से, वध्य पशु को बाँधने के खूँटे के समीप ले जाये गये बकरे के हृदय की भाँति, दीपक काँप रहा है। (समीप आकर और रदनिका को देखकर) अरी रदनिके!

शकार – भाव! भाव!! मनुष्य, मनुष्य।

विदूषक – यह उचित नहीं है, यह योग्य नहीं है कि आर्य 'चारुदत्त' की निर्धनता के कारण अब उनके घर में दूसरे लोग प्रवेश करते हैं।

रदनिका – आर्य मैत्रेय! मेरा अपमान तो देखो।

विदूषक – क्या तुम्हारा अपमान? अथवा हम लोगों का?।

रदनिका – हाँ आप ही लोगों का।

विदूषक – क्या यह बलात्कार?।

रदनिका – और क्या?

विदूषक – सचमुच?

रदनिका – सचमुच।

विदूषक – (क्रोध के साथ लकड़ी का दण्डा उठाकर) ऐसा नहीं (होगा)। अपने घर में तो कुत्ता भी प्रचण्ड बन जाता है और मैं तो भला ब्राह्मण हूँ। अतः हम लोगों के भाग्य के समान टेढ़े इस काष्ठ के दण्ड से विकृत सूखे हुए बाँस के समान तेरे मस्तक को प्रहारों से कूट डालूँगा।

विट– महाब्राह्मण! क्षमा करो, क्षमा करो।

विदूषक– (विट को देख कर) यहाँ यह अपराध नहीं कर रहा है। (शकार को देखकर) निश्चय ही यही अपराधी है। अरे राजश्यालक संस्थानक! दुष्ट! नीच मनुष्य! यह उचित नहीं है। यद्यपि आर्य चारुदत्त इस समय निर्धन हो गये हैं; तो भी क्या 'उज्जयिनी' नगरी उनके गुणों से विभूषित नहीं है? जिससे उनके घर में घुसकर (उनके) सेवक का इस प्रकार अपमान किया जा रहा है।

अन्वयः– (अयम्) दुर्गतः, इति, परिभवः, मा, (कर्त्तव्यः), कृतान्तस्य, (समीपे), दुर्गतः, न, अस्ति, नाम, च, चारित्र्येण, विहीनः, आढ्यः, अपि, दुर्गतः, भवति।।४३।।

शब्दार्थः– (अयम् = यह), दुर्गतः = निर्धन हैं, इति = इसलिये, परिभवः = अपमान, मा = नहीं, (कर्त्तव्यः = करना चाहिये), कृतान्तस्य = यमराज के (समीपे = पास में) दुर्गतः = निर्धन, न = नहीं, अस्ति = है, नाम = सम्भवतः, च = और, चारित्र्येण = चरित्र से, विहीनः = हीन, आढ्यः = धनी, अपि = भी, दुर्गतः = दुर्दशाग्रस्त, भवति = होता है।

अर्थः– यह 'निर्धन है' इसलिये अपमान मत करो। यमराज के यहाँ निर्धन कोई नहीं है और चरित्रहीन धनवान् भी दुर्दशा को प्राप्त होता है।।४३।।

टीका– अयम् = जनः इति; दुर्गतः = निर्धनः; इति = अस्मात् कारणात्; परिभवः = तिरस्कारः; मा = न; कर्त्तव्यः इति; कृतान्तस्य = यमराजस्य देवस्य वा; (समीपे = समक्षम्); दुर्गतः = दरिद्रः, नास्ति नाम इति संभावनायाम्; च = तथा; चारित्र्येण = शिष्टाचारेण; विहीनः = रहितः; आढ्यः = धनसम्पन्नः; अपि; दुर्गतः = दरिद्रः विपद्ग्रस्त इत्यर्थः; भवति = जायते ।।४३।।

विटः– (सवैलक्ष्यम्) महाब्राह्मण! मर्षय मर्षय। अन्यजनशंकया खल्विदमनुष्ठितम्, न दर्पात्। पश्य,–

सकामान्विष्यते स्माभिः

विदूषकः–किं इअं?। (किमियम्?।)

विटः– शान्तं पापम्।

काचित्स्वाधीनयौवना।

सा नष्टा शंकया तस्याः प्राप्तेयं शीलव चना।।४४।।

अन्वयः– अस्माभिः, सकामा, स्वाधीनयौवना, काचित्, अन्विष्यते, सा, नष्टा, तस्याः, शंकया, इयम्, शीलव चना, प्राप्ता।।४४।।

शब्दार्थः— अस्माभिः = हमारे द्वारा, सकामा = कामासक्ता युवती, स्वाधीनयौवना = अपने यौवन की स्वामिनी, काचित् = कोई स्त्री, अन्विष्यते = ढूँढी जा रही है, सा = वह स्त्री, नष्टा = गायब हो गयी, तस्याः = उसी की, शंकया = शंका से, इयम् = यह, शलव चना = चरित्र की हानि, प्राप्ता = प्राप्त हुई।।

अर्थः— विट — (लज्जापूर्वक) महाब्राह्मण! क्षमा करो, क्षमा करो। किसी दूसरे व्यक्ति (वसन्तसेना) के भ्रम से ऐसा (अनुचित) कार्य हो गया, अहंकार से नहीं। देखो-

हमारे द्वारा एक कामासक्ता युवती ढूँढ़ी जा रही है अर्थात् हम लोग एक कामिनी को खोज रहे हैं।

विदूषक— क्या यह (रदनिका)?

विट — पाप शान्त हो।

कोई अपने यौवन की स्वामिनी स्त्री अर्थात् वेश्या। किन्तु वह रमणी तो भाग गयी और उसी के भ्रम में यह चरित्र की हानि हुई अर्थात् इस प्रकार सदाचार का उल्लंघन हो गया।।४४।।

टीकाः — अस्माभिः = शकारप्रमुखैः जनैः; कामेन = मदनेन सहिता = संयुक्ता स्त्री सकामा = कामोत्सुका युवतीत्यर्थः; स्वाधीनम् = स्वायत्तम् भर्त्राद्यधीनत्वविरहितम् यौवनम् = यौवनव्यवहारः यस्याः सा, स्वेच्छाचारिणी गणिका इति यावत; काचित् = सुन्दरी; अन्विष्यते = अनुसन्धीयते; किन्तु सा = अनुसन्धीयमाना सुन्दरी नष्टा = अदर्शनं गता; तस्याः = रमण्याः, शंकया = आशंकया भ्रमेण वा; इयम् = रदनिकया सह घटिता; शीलस्य = शिष्टाचारस्य व चना = प्रतारणा दुश्चरितसंभावनेत्यर्थः; प्राप्ता = स जाता, अस्माभिः इति।।४४।।

इस श्लोक में 'पथ्यावक्त्र' छन्द है। इसका लक्षण इस प्रकार है-'युजोर्जेन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।।४४।।

सर्वथेदमनुनयसर्वस्वं ग ह्यताम् (इति खड्गमुत्स ज्य कृता जलिः पादयोः पतति)

विदूषकः—सप्पुरिस! उट्ठेहि उट्ठेहि। अआणंतेण मए तुम उवालद्धे। संपदं उण जाणंतो अणुणेमि। (सत्पुरुष! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ। अजानता मया त्वमुपालब्धः। सांप्रतं पुनर्जानन्ननुनयामि।)

विटः— ननु भवानेवात्रानुनेयः। तदुत्तिष्ठामि समयतः।

विदूषकः—भणादु भवं। (भणतु भवान्।)

विटः— यदीमं व त्तांतमार्यचारुदत्तस्य नाख्यास्यसि।

विदूषकः—ण कधइस्सं। (न कथयिष्यामि।)

विटः—

एष ते प्रणयो विप्र। शिरसा धार्यते मया।
गुणशस्त्रैर्वयं येन शस्त्रवन्तो पि निर्जिताः।।४५।।

अर्थः— सब प्रकार से मेरी इस महान् विनती को स्वीकार कीजिए। (ऐसा कह कर तलवार त्याग कर हाथ जोड़े पैरों पर गिर जाता है)।

विदूषकः—हे सज्जन! उठो, उठो। बिना जाने मैंने तुम्हें उलाहना दिया है। अब तो जान लेने पर मैं आप से विनती करता हूँ।

विटः— इस विषय में तो आप ही विनती के पात्र हैं। अच्छा तो मैं उठता हूँ, किन्तु एक शर्त पर।

विदूषकः— कहिए आप।

विटः— यदि इस घटना को आर्य 'चारुदत्त' से नहीं बताओगे।

विदूषकः— नहीं कहूँगा।

अन्वयः— हे विप्र! एषः, ते, प्रणयः, मया, शिरसा, धार्यते, येन शस्त्रवन्त; अपि, वयम्, गुणशस्त्रैः, निर्जिताः।।४५।।

शब्दार्थः— हे विप्र = हे ब्राह्मण! एषः = यह, ते = तुम्हारा, प्रणयः = अनुग्रह, स्नेह, मया = मेरे द्वारा, शिरसा = शिर से, धार्यते = धारण किया जा रहा है, येन = जिससे, जिस कारण से, शस्त्रवन्तः = शस्त्रधारी, अपि = भी, वयम् = हम लोग, गुणशस्त्रैः = गुणरूपीशस्त्र से, निर्जिताः = पराजित कर दिये गये।

अर्थः— विट — हे ब्राह्मण! तुम्हारे इस अनुग्रह को मैं शिरोधार्य करता हूँ। जिस कारण से शस्त्रधारी होते हुए भी हम लोग आप के गुणरूपी शस्त्र से पराजित कर दिये गए हैं।।४५।।

टीका— हे विप्र = हे द्विजश्रेष्ठ! एषः = त्वया सम्प्रति एव प्रदर्शितः; ते = तव; प्रणयः = अनुग्रहः स्नेहः वा; मया = विटेन; शिरसा = उत्तमांगेन इत्यर्थः; धार्यते = स्वीक्रियते; येन = कारणेन प्रणयेन वा शस्त्रवन्तः = आयुधधारिणः; अपि वयम् = विटादयः; गुणाः = औदार्यादिगुणाः एव शस्त्राणि = आयुधानि तैः (कारणभूतैः) चारुदत्तस्य इति शेषः; निर्जिताः = पराभूताः।।४५।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।

शकारः— (सासूयम्) किंणिमित्तं उण भावे! एदश्श दुश्टवडुअश्श किविणं अंजलिं कदुअ पाएशु णिवडिदे?। (किंनिमित्तं पुनर्भाव! एतस्य दुष्टवटुकस्य कृपणा जलिं कृत्वा पादयोर्निपतितः?।)

विटः— भीतो स्मि।

शकारः— कश्श तुमं भीदे?। (कस्मात्त्वं भीतः?।)

विटः— तस्य चारुदत्तस्य गुणेभ्यः।

शकारः— के विअ तश्श गुणा जश्श गेहं पविशिअ अशिदव्वं पि णत्थि। (के इव तस्य गुणा यस्य ग हं प्रविश्याशितव्यमपि नास्ति।)

विटः— मा मैवम्,—

सो स्मद्विधानां प्रणयैः कृशीकृतो
न तेन कश्चिद्विभवैर्विमानितः।
निदाघकालेष्विव सोदको ह्रदो
न णां स त ष्णामपनीय शुष्कवान्।।४६।।

अर्थः— शकार — (ईर्ष्या के साथ) भाव! विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर आप इस दुष्ट ब्राह्मण के पैरों पर क्यों गिर पड़े?

विट— डर गया हूँ।

शकार— तुम किससे डर गये हो?

विट— उस 'चारुदत्त' के गुणो से।

शकार— उसके क्या गुण हैं? जिसके घर में घुसने पर कुछ खाने योग्य पदार्थ भी नहीं है अर्थात् जिसके घर में खाने के लिए भी कुछ नहीं है।

अन्वयः— सः, अस्मद्विधानां, प्रणयैः, कृशीकृतः, तेन, कश्चित्, विभवैः, न, विमानितः, न णाम्, त ष्णाम्, अपनीय, सः, निदाघकालेषु, सोदकः, ह्रदः, इव, शुष्कवान्।।४६।।

शब्दार्थः— सः = वह चारुदत्त, अस्मद्विधानाम् = हम जैसे लोगों की, प्रणयैः = प्रेमपूर्वक मांगों से, कृशीकृतः = धनहीन कर दिये गये हैं, तेन = उनके द्वारा, कश्चित् = कोई, विभवैः = धन के कारण से, न = नहीं, विमानितः = अपमानित किया गया, न णाम् = पुरुषों की, त ष्णाम् = (धनसम्बन्धिनी) प्यास को, अपनीय = मिटाकर, सः = वह, निदाघकालेषु = गर्मी के समयों में, सोदकः = जलयुक्त, ह्रदः = तालाब की, इव = भाँति, शुष्कवान् = सूख गये हैं अर्थात् निर्धन हो गये हैं।।

अर्थः— **विटः—** ऐसा मत कहो।

वह हम जैसे लोगों की ही प्रेमपूर्ण मांगों से धनहीन हो गये हैं अर्थात् प्रेम के कारण हम लोगों को धन दे देकर निर्धन हो गये हैं। उन्होंने किसी को भी धन के गर्व से अपमानित नहीं किया है। मनुष्यों की धनसम्बन्धिनी त ष्णा को मिटा कर वे गर्मी के समय में जलयुक्त तालाब के समान सूख गये हैं अर्थात् निर्धन हो गये हैं।।४६।।

टीकाः— सः = चारुदत्तः; अस्मद्विधानाम् अस्माकम् विधा इव विधा = प्रकारः येषां तेषाम् = अस्माद शानाम्; प्रणयैः = धनयाचनापूर्णप्रार्थनाभिः; कृशीकृतः = धनहीनः कृतः; तेन = चारुदत्तेन; कश्चित् = को पि, याचकः मनुष्यः इति शेषः; विभवैः = धनैः; न विमानितः = न अपमानितः; न णाम् = याचकजनानाम्; त ष्णाम् = धनाभिलाषाम्; (ह्रदपक्षे-पिपासाम्); अपनीय = दूरीकृत्य; सः = चारुदत्तः; निदाघकालेषु = ग्रीष्मसमयेषु; सोदकः = सजलः; ह्रदः = जलाशयः; इव, शुष्कवान् = धनाभावरूपाम्, जलाभावरूपां च शुष्कतां प्राप्तः।।४६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं वंशस्था छन्द है। छन्द का लक्षण इस प्रकार है-''जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ''।।४६।।

शकारः— (सामर्षम्) के शे गब्भदाशीअ पुत्ते?।

शूले विक्कंते पंडवे शेदकेदू
पुत्ते लाधाए लावणे इंददत्ते।
आहो कुंतीए तेण लामेण जादे
अश्शत्थामे धम्मपुत्ते जडाऊ।।४७।।

(कः स गर्भदास्याः पुत्रः?

शूरो विक्रान्तः पाण्डवः श्वेतकेतुः पुत्रो राधाया रावण इन्द्रदत्तः।

आहो कुन्त्यास्तेन रामेण जातः अश्वत्थामा धर्मपुत्रो जटायुः।।

अन्वयः— कः, सः, विक्रान्तः, शूरः, (सः, किम्) पाण्डवः, श्वेतकेतुः, इन्द्रदत्तः राधायाः पुत्रः, रावणः, आहो, तेन, रामेण, जातः, कुन्त्याः (पुत्रः), अश्वत्थामा, (वा) धर्मपुत्रः, जटायुः।।४७।।

शब्दार्थः— कः = कौन (है), सः = वह, विक्रान्तः = पराक्रमी, शूरः = योद्धा?; (सः = वह, किम् = क्या), पाण्डवः = पाण्डु का पुत्र, श्वेतकेतुः = श्वेतकेतु (है?), इन्द्रदत्तः = इन्द्र के द्वारा दिया गया, राधायाः = राधा का, पुत्रः = पुत्र, रावणः = दशानन (है?), आहो = अथवा, तेन = उस, रामेण = राम से, जातः = उत्पन्न, कुन्त्याः = कुन्ती का (पुत्र) अश्वत्थामा (है?); (वा = अथवा) धर्मपुत्रः = धर्मराज का पुत्र, जटायुः = जटायु है?।

अर्थः— **शकारः—** (रोषपूर्वक) कौन है वह जन्मदासी का पुत्र?

क्या वह शूरवीर पाण्डुपुत्र 'श्वेतकेतु है? अथवा इन्द्रप्रदत्त 'राधा' का पुत्र 'रावण' है? अथवा प्रसिद्ध उस 'राम' से उत्पन्न 'कुन्ती' का पुत्र 'अश्वत्थामा' है? अथवा धर्मपुत्र 'जटायु' है?।।४७।।

टीका— कः सः, विक्रान्तः = पराक्रमी; शूरः = वीरः?; सः किम्; पाण्डवः = पाण्डुपुत्रः; श्वेतकेतुः = एतन्नाम्ना प्रसिद्धः जनः अथवा इन्द्रेण = देवराजेन दत्तः = प्रदत्तः; राधायाः पुत्रः = सुतः रावणः = दशाननः; आहो = अथवा; तेन = प्रसिद्धेन; रामेण = रामचन्द्रेण; जातः = समुत्पन्नः; कुन्त्याः = अर्जुनमातुः; (पुत्रः = सुतः) अश्वत्थामा = द्रौणिः; अथवा धर्मपुत्रः = धर्मसुतः, जटायुः = तन्नाम्ना प्रसिद्धः महापराक्रमी पक्षिविशेषः।।४७।।

इस श्लोक में वैश्वदेवी छन्द है- 'बाणश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ''।।४७।।

विटः— मूर्ख! आर्यचारुदत्तः खल्वसौ,

दीनानां कल्पव क्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये ।।४८।।

अन्वयः— दीनानाम्, स्वगुणफलनतः, कल्पव क्षः; सज्जनानाम्, कुटुम्बी; शिक्षितानाम्, आदर्शः; सुचरितनिकषः; शीलवेलासमुद्रः; सत्कर्त्ता; न, अवमन्ताः; पुरुषगुणनिधिः; दक्षिणोदारसत्त्वः; हि, अधिकगुणतया, श्लाघ्यः, एकः, सः, जीवति, अन्ये, उच्छ्वसन्ति, इव, च।।४८।।

शब्दार्थः— दीनानाम् = दीनों के, स्वगुणफलनतः = अपने गुण रूपी फलों से झुके हुए, कल्पव क्षः = कल्पव क्ष, सज्जनानाम् = साधुओं के, कुटुम्बी = बन्धु, शिक्षितानाम् = पढ़े लिखे लोगों के, आदर्शः = आदर्श, नमूना, सुचरितनिकषः = सच्चरित्र की कसौटी, शीलवेलासमुद्रः = सदाचाररूपी मर्यादा के सागर, सत्कर्ता = सत्कार करने वाले, न = नहीं, अवमन्ता = अनादर करने वाले, पुरुषगुणनिधिः = मनुष्योचित गुणों के खजाना, दक्षिणोदारसत्त्वः = सरल एवं उदारस्वभाववाले, हि = निश्चित ही, अधिकगुणतया = गुणों की अधिकता के कारण, श्लाघ्यः = प्रशंसनीय, एकः = एकमात्र, सः = वह चारुदत्त, जीवति = जी रहे हैं, अन्ये = दूसरे लोग, उच्छ्वसन्ति = सांस लेते हैं, इव = मानो, जैसे।।

अर्थः— विट — अरे मूर्ख! यह तो आर्य 'चारुदत्त' हैं।

जो दीनों के कामनाओं को पूर्ण करने वाले अपने गुण रूपी फलों से नम्र कल्पव क्ष हैं। साधुओं के बन्धु, शिक्षितों के आदर्श, सच्चरित्र की कसौटी, सदाचार रूपी मर्यादा के सागर, सत्कार करने वाले, किसी का अनादर न करने वाले, मनुष्योचित गुणों के खजाना, सरल एवं उदार स्वभाव वाले हैं। गुणों की प्रचुरता के कारण प्रशंसनीय वह आर्य चारुदत्त ही यथार्थ रूप

में जीवित हैं और अन्य लोग तो सिसकते ही हैं अर्थात् उनके अतिरिक्त अन्य गुणहीन व्यक्तियों का जीवन निरर्थक है।।४८।।

टीका— दीनानाम् = दुरवस्थापतितानाम् जनानाम्; स्वस्य = निजस्य गुणाः = दयादाक्षिण्यादिगुणाः एव फलानि = परिणामाः तैः नतः = नम्रः अतिविनयशीलः इति भावः; कल्पव क्षः = कल्पस्य व क्षः कल्पव क्षः = कल्पतरुः; सज्जनानाम् = सद्व त्तानाम् जनानाम्; कुटुम्बी = बन्धुः; उपजीव्यः इति भावः; शिक्षितानाम् = विदुषाम्; आद श्यते रूपमत्र आदर्शः = निदर्शनरूपः; सुचरितानाम् = दयादाक्षिण्यादीनाम् निकष्यते अस्मिन् इति निकषः = परीक्षापाषाणः, परीक्षास्थानमित्यर्थः; शीलम् = सद्व त्तम् एव वेला = मर्यादा तस्याः समुद्रः = सागरः; यथा सागरः कदापि वेलाभूमिं नातिक्रामति तथैवा यं जनः सदाचारं न लंघयति इत्यर्थः। सत्कर्त्ता = समादरकर्त्ता, सर्वेषां जनानाम्; नावमन्ता = न कस्यचिदपि अपमानकर्त्ता; पुरुषगुणानाम् = औदार्यादीनाम् निधिः = आलयः; दक्षिणम् = सरलम् अनुकूलम् वा उदारम् = महत् च सत्त्वम् = स्वभावः यस्य सः। हि = निश्चितम्; अधिकगुणतया = अन्यजनातिशायिगुणशालित्वेन; श्लाघ्यः = प्रशंसनीय'; एकः = केवलः, सः = चारुदत्तः; जीवति = सफलं प्राणान् धारयति; अन्ये = इतरे जनाः; उच्छ्वसन्ति = उच्छवासं कुर्वन्ति; इव = यथा;।

इस श्लोक में एक ही चारुदत्त का अनेक रूपों में उल्लेख किया गया है अतः उल्लेख अलंकार है। शीलवेला आदि में रूपक है; उच्छ्वसन्तीव में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है स्रग्धरा-लक्षण = म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।।४८।।

तदितो गच्छामः।

शकारः— अगेणिहअ वशंतशेणिअं?। (अग हीत्वा वसन्तसेनाम्?)

विटः— नष्टा वसन्तसेना।

शकारः— कधं विअ?। (कथमिव?।)

विटः—

अंधस्य द ष्टिरिव पुष्टिरिवातुरस्य
मूर्खस्य बुद्धिरिव सिद्धिरिवालसस्य।
स्वल्पस्म तेर्व्यसनिनः परमेव विद्या
त्वां प्राप्य सा रतिरिवारिजने प्रनष्टा।।४६।।

अर्थः- तो यहाँ से चलें।

शकारः— 'वसन्तसेना' को बिना पकड़े ही?

विट— 'वसन्तसेना' तो अद श्य हो गयी।

शकार— किस प्रकार?

अन्वयः— सा, त्वाम्, प्राप्य, अन्धस्य, द ष्टिः, इव, आतुरस्य, पुष्टिः, इव, मूर्खस्य, बुद्धिः, इव, अलसस्य, सिद्धिः, इव, अल्पस्म तेः, व्यसनिनः, परमा, विद्या, इव, अरिजने, रतिः, इव, प्रनष्टा।।४६।।

शब्दार्थः— सा = वह वसन्तसेना, त्वाम् = तुमको, प्राप्य = प्राप्त कर, अन्धस्य = अन्धे की, द ष्टिः = आँख (के), इव = समान, आतुरस्य = रोगी के पुष्टिः = बल (के), इव = समान, मूर्खस्य

= मूर्ख की, बुद्धिः = बुद्धि (के), इव = समान, अलसस्य = आलसी की, सिद्धिः = सफलता (की), इव = तरह, अल्पस्म तेः = कम स्मरण शक्तिवाले, व्यसनिनः = दुर्गुणासक्त (व्यक्ति की) परमा = उत्कृष्ट, विद्या = विद्या (की), इव = भाँति, अरिजने = शत्रु में, रतिः = प्रेम (के), इव = तुल्य, प्रनष्टा = अद श्य हो गयी।

अर्थः— विट — वह तुम्हें प्राप्त कर अन्धे की द ष्टि के समान, रोगी के बल के समान, मूर्ख की बुद्धि की भाँति आलसी की सफलता की भाँति, कम स्मरण शक्तिवाले दुर्गुणसक्त (व्यक्ति) की उत्कृष्ट विद्या की तरह, शत्रुओं में प्रेम के सद श, अद श्य हो गयी।।४६।।

टीकाः— सा = वसन्तसेना; त्वाम् = शकारम्; प्राप्य = लब्ध्वा; अन्धस्य = द ष्टिशक्तिरहितस्य जनस्य; द ष्टिः = दर्शनशक्तिः इव, आतुरस्य = व्याधिविह्वलस्य; पुष्टिः = शरीरबलमिव; मूर्खस्य = विवेकहीनस्य; बुद्धिः = विवेकसामर्थ्यम् इव; अलसस्य = मन्दस्य, सिद्धिः = कार्यसफलता इव; अल्पा = क्षीणा स्म तिः = स्मरणशक्तिः यस्य तस्य; व्यसनम् अस्ति अस्य इति व्यसनी तस्य व्यसनिनः = दुर्गुणसक्तस्य; परमा = श्रेष्ठा; विद्या = ज्ञानम्; अरिजने = शत्रुजने; रतिः = अनुरागः इव; प्रनष्टा = अदर्शनं गता।।४६।।

यहाँ पर एक ही उपमेयभूत वसन्तसेना के लिये अन्धे की द ष्टि, आतुर की पुष्टि आदि अनेक उपमान होने के कारण मालोपमा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द है वसन्ततिलका। छन्द का लक्षण-उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।।४६।।

शकारः— अगेणिहअ वशंतशेणिअं ण गमिश्शं। (अग हीत्वा वसन्तसेनां न गमिष्यामि।)

विटः— एतदपि न श्रुतं त्वया?

आलाने ग ह्यते हस्ती वाजी वल्गासु ग ह्यते।
ह्रदये ग ह्यते नारी यदीदं नास्ति गम्यताम्।।५०।।

अन्वयः— हस्ती, आलाने, ग ह्यते, वाजी, वल्गासु, ग ह्यते, नारी, ह्रदये, ग ह्यते, यदि, इदम्, नास्ति, (तदा), गम्यताम्।।५०।।

शब्दार्थः— हस्ती = हाथी, आलाने = खम्भे में (हाथी को बाँधने का खम्भा आलान कहा जाता है), ग ह्यते = वश में किया जाता है, वाजी = घोड़ा, वल्गासु = लगामों में, ग ह्यते = वश में किया जाता है, नारी = स्त्री, ह्रदये = ह्रदय में, ग ह्यते = पकड़ी जाती है, वश में की जाती है, यदि = यदि, इदम् = ह्रदय, नास्ति = नहीं है, (तदा = तो), गम्यताम् = जाओ।।

अर्थः— शकार — 'वसन्तसेना' को बिना लिये नहीं जाऊगा।

विट— क्या तुमने यह भी नहीं सुना है? (कि)-

हाथी खम्भे में बाँध कर वश में किया जाता है, घोड़ा लगाम से वश में किया जाता है और स्त्री ह्रदय से वश में की जाती है। यदि यह ह्रदय का प्रेम नहीं है तो जाइये।।५०।।

टीका— हस्ती = करी; आलाने = बन्धनस्तम्भे ग ह्यते = वशीक्रियते; वाजी = अश्वः; वल्गासु = मुखरश्मिसु; ग ह्यते = निरुध्यते; नारी = स्त्री; ह्रदये = ह्रदि; ग ह्यते = वशीक्रियते; स्त्रीणां वशीकरणं ह्रदयप्रेम्णा एव सम्भवति न तु बलात्कारेण इति; यदि = चेत्; इदम् = अनुरागपूर्णं ह्रदयम्; नास्ति = न वर्तते; तदा गम्यताम् = निवर्त्यतामस्मद्व्यापारादिति।।५०।।

प्रयुक्त छन्द का नाम है-पथ्यावक्त्र, लक्षण-'युजोर्येन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्'।।५०।।

शकारः— यदि गच्छशि, गच्छ तुमं। हग्गे ण गमिश्शं। (यदि गच्छसि, गच्छ त्वम्। अहं न गमिष्यामि।)

विटः— एवम्; गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः)

शकारः— गडे खु भावे अभावं। (विदूषकमुद्दिश्य।) अले काकपदशीशमश्तका दुश्टवडुअका! उवविश उवविश। (गतः खलु भावो भावम्। अरे काकपदशीर्षमस्तक दुष्टवटुक! उपविशोपविश।)

विदूषकः— उववेसिदा जेव्व अम्हे। (उपवेशिता एव वयम्।)

शकारः— केण?। (केन?।)

विदूषकः— कअंतेण। (कृतान्तेन।)

शकारः— उट्ठेहि उट्ठेहि। (उत्तिष्ठोत्तिष्ठ।)

विदूषकः— उट्ठिस्सामो। (उत्स्थास्यामः।)

शकारः— कदा?। (कदा?।)

विदूषकः— जदा पुणो वि देव्वं अणुऊलं भविस्सदि। (यदा पुनरपि दैवमनुकूलं भविष्यति।

शकारः— अले, लोद लोद। (अरे, रुदिहि रुदिहि।)

विदूषकः— रोदाविदा जेव्व अम्हे। (रोदिता एव वयम्।)

शकारः— केण?। (केन?।)

विदूषकः— दुग्गदीए। (दुर्गत्या।)

शकारः— अले, हश हश। (अरे, हस हस।)

विदूषकः— हसिस्सामो। (हसिष्यामः।)

शकारः— कदा?। (कदा?।)

विदूषकः— पुणो वि रिद्धीए अज्जचारुदत्तस्स। (पुनरपि ऋद्ध्यार्यचारुदत्तस्य।)

शकारः— अले दुष्टवडुअका! भणेशि मम वअणेण तं दलिद्दचालुदत्तकं-'एशा शशुवण्णा शहिलण्णा णवणाडअदंशणुट्ठिदा शुत्तधालिव्व वशंतशेणिआ णाम गणिआदालिआ कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि तुमं अणुलत्ता अम्हेहिं बलक्कालाणुणीअमाणा तुम गेहं पविश्टा। ता जइ मम हश्ते शअं ज्जेव्व पट्टाविअ एणं शमप्पेशि, तदो अधिअलणे ववहालं विणा लहुं णिज्जादमाणाह तव मए अणुबद्धा पीदी हुविश्शदि। आदु अणिज्जादमाणाह आमलणंतिके वेले हुविश्शदि। अवि अ पेक्ख पेक्ख,

कश्चालुका गोछडलित्तवेंटा
शाके अ शुक्खे तलिदे हु मंशे।
भत्ते अ हेमंतिअलत्तिशिद्धे
लीणे अ वेले ण हु होदि पूदी।।५१।।

अरे दुष्टबटुक! भणिष्यसि मम वचनेन तं दरिद्रचारुदत्तकम्-'एषा ससुवर्णा सहिरण्या नटनाटकदर्शनोत्थिता सूत्रधारीव वसन्तसेनानाम्नी गणिकादारिका कामदेवायतनोद्यानात्प्रभ ति

त्वामनुरक्तास्माभिर्बलात्कारानुनीयमाना तव गेहं प्रविष्टा। तद्यदि मम हस्ते स्वयमेव प्रस्थाप्यैनां समर्पयसि, ततो धिकरणे व्यवहारं विना लघु निर्यातयतस्तव मयानुबद्धा प्रीतिर्भविष्यति। अथवा निर्यातयतो मरणान्तिकं वैरं भविष्यति। अपि च प्रेक्षस्व,

कूष्माणडी गोमयलिप्तव न्ता शाकं
च शुष्कं तलितं खलु मांसम्।
भक्तं च हैमन्तिकरात्रिसिद्धं लीनायां
च वेलायां न खलु भवति पूति।।

अर्थः— शकार — यदि तुम जाते हो, तो जाओ; मैं नहीं जाऊँगा।

विट— अच्छा, जाता हूँ। (निकल जाता है)।

शकार— भाव तो अभाव को प्राप्त हुए अर्थात् विट चले गये। (विदूषक को लक्ष्य करके) अरे कौवे के पैर के समान शिर तथा माथे वाले दुष्ट वटुक, बैठ जा, बैठ जा।

विदूषक— हम लोग तो बैठा ही दिए गये हैं।

शकार— किसके द्वारा?

विदूषक— दैव के द्वारा।

शकार— उठो, उठो।

विदूषक— उठेंगे।

शकार— कब?

विदूषक— जब फिर भाग्य अनुकूल होगा।

शकार— अरे रोओ, रोओ।

विदूषक— हम लोग रुलाए जा चुके हैं।

शकार— किसके द्वारा?

विदूषक— दुर्दशा के द्वारा।

शकार— अरे हँस, हँस।

विदूषक — हँसेंगे।

शकार — कब?

विदूषक — पुनः आर्य 'चारुदत्त' की सम द्धि से।

शकार — अरे दुष्ट बटुक! मेरे बचन मेरी ओर से उस दरिद्र 'चारुदत्त' से कहो कि-''यह सुन्दर वर्ण वाली, सुवर्ण के आभूषणों से युक्त, नवीन नाटक के प्रदर्शन के लिए उठ कर खड़ी हुई मुख्य नटी जैसी 'वसन्तसेना' नाम की वेश्या-पुत्री, जो कि कामदेवायतनोद्यान में जाने से लेकर तुमसे प्रेम करती है, हमारे द्वारा बलपूर्वक मनायी जाती हुई भी तुम्हारे घर में प्रविष्ट हो गयी है। तो यदि स्वयं ही भेज कर मेरे हाथ में इसको सौंप देते हो तो न्यायालय में मुकदमे के बिना शीघ्र ही 'वसन्तसेना' को लौटाने वाले तुम्हारा मेरे साथ द ढ़ प्रेम हो जायगा। अथवा वसन्तसेना को नहीं लौटाने पर जीवन भर के लिए शत्रुता हो जायगी।''

अन्वयः— गोमयलिप्तव न्ता, कूष्माण्डी, शुष्कम्, शाकम्, च, तलितम् मांसम्, खलु हैमन्तिकरात्रिसिद्धम्, भक्तम्, च, वेलायाम्, लीनायाम्, च, न, खलु, पूति, भवति।।५१।।

शब्दार्थः— गोमयलिप्तव न्ता = गोबर से लिपी हुई डंठल वाली, कूष्माण्डी = कुम्हड़ी, शुष्कम् = सूखा हुआ, शाकम् = शाक, च = और, तलितम् = तला हुआ, मांसम् = मांस, हैमन्तिकरात्रिसिद्धम् = हेमन्त ऋतु की रात में पकाया हुआ, भक्तम् = भात, वेलायाम् = काल के, लीनायाम् = बीत जाने पर, च = भी, न खलु = नहीं, पूति = दुर्गन्धयुक्त, विकृत, भवति = होता है।।

अर्थः— और भी देखो-

गोबर से लिप्त डण्ठल वाली कूष्माण्डी, सूखा हुआ शाक, तला हुआ मांस, हेमन्त ऋतु की रात्रि में पकाया हुआ भात, अधिक काल बीत जाने पर भी विकृत नहीं होते हैं।।५१।।

टीकाः— गोमयेन = गोपुरीषेण लिप्तम् = वेष्टितम् व न्तम् = बन्धनम् यस्याः सः; कूष्माण्डी = स्वल्पकर्कारू; शुष्कम् = विरसम्; शाकम्; च; तलितम् = घ तादिना सम्भ ष्टम; मांसम् खलु; हैमन्तिकायाम् = हेमन्तऋतुभवायां रात्रौ = निशायाम् सिद्धम् = पक्वम्; भक्तम् = अन्नम् तण्डुलं वा; वेलायाम् = काले; लीनायाम् = अतिक्रान्तायाम्; च = अपि; न खलु = नैव; पूति = दुर्गन्धयुक्तम्, विकृतम् इत्यर्थः; भवति = जायते।।५१।।

यहाँ पर अप्रस्तुत यथोक्त कूष्माण्ड इत्यादि में दुर्गन्ध के अभाव का प्रतिपादन किया गया है और उससे प्रस्तुत वसन्तसेना को न लौटाने से वैररूप दोष की विपरीत-क्रम से प्रतीति होती है; अतः अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है—इन्द्रवज्रा। इसका लक्षण इस प्रकार है- 'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः'।।५१।।

शोश्तकं भणेशि, लश्तकं भणेशि। तधा भणेशि जधा हग्गे अत्तणकेलिकाए पाशादबालग्गकवोदवालिआए उवविश्टे शुणामि तधा जदि ण भणेशि, ता कवालतलप्पविश्टं कवित्थं विअ मश्तअं दे मडमडाइश्शं।

शोभनं भणिष्यसि, सकपटं भणिष्यसि। तथा भणिष्यसि यथाहमात्मकीयायां प्रासादबालाग्रकपोतपालिकायामुपविष्टः श्र णोमि। अन्यथा यदि भणसि, तदा कपाटतलप्रविष्टं कपित्थगुलिकमिव मस्तकं ते मडमडायिष्यामि।

विदूषकः—भणिस्सं। (भणिष्यामि।)

शकारः— (अपवार्य) चेडे! गेडे शच्चकं ज्जेव्व भावे। (चेट! गतः सत्यमेव भावः।)

चेटः— अध इं। (अथ किम्।)

शकारः— ता शिग्घं अवक्कमम्ह। (तच्छीघ्रमपक्रमावः।)

चेटः— ता गेण्हदु भश्टके अशिं (तद्ग ह्णातु भट्टारको सिम्।)

शकारः— तव ज्जेव्व हत्थे च्यिश्टदु। (तवैव हस्ते तिष्ठतु।)

चेटः— एशे भश्टालके। गेणहद णं भश्टके अशिं। (एष भट्टारकः। ग ह्णत्वेनं भट्टारको सिम्।)

शकारः— (विपरीतं ग हीत्वा)

णिव्वक्कलं मूलकपेशिवण्णं
खंधेण घेत्तण अ कोशशुत्तं।
कुक्केहिं कुक्कीहिं अ बुक्कअंते
जधा शिआले शलणं पलामि।।५२।।

(निर्वल्कलं मूलकपेशिवर्णं स्कन्धेन ग हीत्वा च कोशसुप्तम्।
कुक्कुरैः कुक्करीभिश्च बुक्क्यमानो यथा श गालः शरणं प्रयामि।।)

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

अर्थः— भली प्रकार कहना, तथा कपट के साथ कहना; और उस प्रकार कहना जिससे मैं (अपने) राजभवन के नवनिर्मित ऊपरी भाग वाली कपोतपालिका पर बैठा हुआ सुनता रहूँ। यदि ऐसे नहीं कहोगे, तो किवाड़ों के बीच में रक्खी हुई कैथ के समान, तुम्हारे मस्तक को मड़-मड़ शब्द के साथ पीस डालूँगा।

विदूषक— कह दूँगा।

शकार— (अलग हट कर) चेट! सचमुच ही भाव (विट) चले गये?

चेट— और क्या?

शकार— तो हम दोनों शीघ्र ही चलें।

चेट— तो स्वामी तलवार को ग्रहण करें।

शकार— तुम्हारे ही हाथ में रहे।

चेट— स्वामिन!! यह है। आप इस तलवार को ले लें।

अन्वयः— निर्वल्कलम्, मूलकपेशिवर्णम्, कोशसुप्तम्, (असिम्), स्कन्धेन, ग हीत्वा, च, कुक्कुरैः, कुक्कुरीभिः, च, बुक्क्यमानः, श्र गालः, यथा, शरणम्, प्रयामि।।५२।।

शब्दार्थः— निर्वल्कलम् = नंगी, मूलकपेशिवर्णम् = मूली के छिलके के समान रंगवाली, कोशसुप्तम् = म्यान में स्थित, (असिम् = तलवार को), स्कन्धेन = कन्धे से (पर) ग हीत्वा = पकड़कर, यहाँ पर रख कर, च = तथा, कुक्कुरैः = कुत्तों के द्वारा, कुक्कुरीभि: = कुतियों के द्वारा, बुक्क्यमान: = भौंके जाते हुए, श्र गालः = गीदड़ (की), यथा = भाँति, शरणम् = घर को, प्रयामि = जा रहा हूँ।

अर्थः— शकार — (उलटी पकड़ कर)-

नंगी तथा मूली के छिलके के समान रंगवाली, म्यान में स्थित तलवार को कन्धे पर रख कर मैं कुत्ते और कुतियों के द्वारा भौंके जाते हुए गीदड़ की भाँति घर को जाता हूँ।।५२।।

(घूमकर निकल जाते हैं)

टीका— वल्कलात् = तरुत्वचः लक्षणया तन्निर्मितात् कोशात् निर्गतम् = निःस तम् कोशबहिर्भूतम् इत्यर्थः; मूलकस्य पेशि: = त्वक् तद्वर्णः इव वर्णः यस्य तम् = मूलकत्वग्वर्णमित्यर्थः; कोशसुप्तम् = कोशस्थितम् (असिम्); स्कन्धेन = अंश-प्रदेशेन; = ग हीत्वा = ध त्वाः, च; कुक्कुरैः = श्वभिः; कुक्कुरीभिः = शुनीभिश्च; बुक्कयमानः, शब्दायमानः; श्र गाल: = जम्बुकः; यथा = इव; शरणम् = ग हम् प्रयामि = वेगेन गच्छामि।।५२।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं उपजाति छन्द है।

विदूषकः— भोदि रदणिए! ण हु दे अअं अवमाणो तत्थभवदो चारुदत्तस्स णिवेदइदव्वो। दोग्गच्चीपीडिअस्स मण्णे दिउणदरा पीडा हुविस्सदि। (भवति रदनिके! न खलु

ते यमपमानस्तत्रभवतश्चारुदत्तस्य निवेदयितव्यः। दौर्गत्यपीडितस्य मन्ये द्विगुणतरा पीडा भविष्यति।)

रदनिका—अज्ज मित्तेअ! रदणिआ खु अहं संजदमुही। (आर्य मैत्रेय! रदनिका खल्वहं संयतमुखी।)

विदूषकः—एवं ण्णेदं। (एवमिदम्।)

चारुदत्तः— (वसन्तसेनामुद्दिश्य) रदनिके! मारुताभिलाषी प्रदोषसमयशीतार्तो रोहसेनः। ततः प्रवेश्यतामभ्यन्तरमयम्। अनेन प्रावारकेण छादयैनम्। (इति प्रावारकं प्रयच्छति)

वसन्तसेना—(स्वगतम्) कधं परिअणो त्ति मं अवगच्छदि! (प्रावारकं ग हीत्वा समाघ्राय च स्वगतं सस्प हम्) अम्महे, जादीकुसुमवासिदो पावारओ। अणुदासीणं से ज्जोव्वणं पडिभासेदि। (कथं परिजन इति मामवगच्छति। आश्चर्यम्, जातीकुसुमवासितः प्रावारकः। अनुदासीनमस्य यौवनं प्रतिभासते।)

(अपवारितकेन प्राव णोति)

चारुदत्तः— ननु रदनिके! रोहसेनं ग हीत्वाभ्यन्तरं प्रविश।

वसन्तसेना— (स्वगतम्) मंदभाइणी खु अहं तुह अब्भंतरस्स। (मन्दभागिनी खल्वहं तवाभ्यन्तरस्य।

चारुदत्तः— ननु रदनिके! प्रतिवचनमपि नास्ति। कष्टम्,—

यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां
नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते।
तदास्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां
चिरानुरक्तो पि विरज्यते जनः।।५३।।

अर्थः— **विदूषक—** अरी रदनिके! अपने इस अनादर को परमश्रद्धेय आर्य चारुदत्त से मत कहना। मैं समझता हूँ कि इस घटना को सुनकर दुर्दशा से पीडित आर्य चारुदत्त की पीडा दुगुनी हो जायगी।

रदनिका—आर्य मैत्रेय! मैं 'रदनिका' अपने मुख को वश में रखने वाली हूँ।

विदूषक— हाँ, यह ऐसा ही है।

चारुदत्त— (वसन्त सेना को लक्ष्य करके) रदनिके! वायु सेवन का इच्छुक 'रोहसेन' रात्रि के प्रथम प्रहर की अर्थात् सायं कालीन ठण्ड से पीडित है। इस लिए भीतर ले जाओ और इस उत्तरीय से इसे ढँक दो। (ऐसा कह कर उत्तरीय प्रदान करता है)।

वसन्तसेना— (अपने आप) क्या भूल से मुझे अपना परिजन समझ रहे हैं? (उत्तरी लेकर के सूँघ कर अपने आप अभिलाषा पूर्वक) अहो! उत्तरीय जाती-पुष्पों (चमेली के फूलों) से सुवासित है। (अतः अभी) इनका यौवन उपभोग की त ष्णा से उदासीन नहीं हुआ है।

(अलग हट कर अपने आपको ढक लेती है)।

चारुत्त— हे रदनिके! 'रोहसेन' को लेकर भीतर चली जाओ।

वसन्तसेना— (अपने आप) तुम्हारे घर के भीतर प्रवेश करने के यौग्य मैं नहीं हूँ।

अन्वयः— यदा, तु, नरः, कृतान्तोपहिताम्, भग्यक्षयपीडिताम्, दशाम्, प्रपद्यते, तदा, अस्य, मित्राणि, अपि, अमित्रताम्, यान्ति, चिरानुरक्तः, जनः, अपि, विरज्यते।।५३।।

शब्दार्थः— यदा = जब, नरः = मनुष्य, कृतान्तोपहिताम् = क्रुद्ध दैव के द्वारा उपस्थित की गयी, भाग्यक्षयपीडिताम् = भाग्यनाश के कारण दलित, दशाम् = दशा को, हालत को, प्रपद्यते = प्राप्त होता है, तदा = तब, अस्य = इसके, मित्राणि = मित्र, अपि = भी, अमित्रताम् = शत्रुता को, यान्ति = जाते हैं, प्राप्त हो जाते हैं; चिरानुरक्तः = बहुत दिनों से प्रेम करने वाला, जनः = व्यक्ति, अभि् = भी, विरज्यते = विमुख हो जाता है।।

चारुदत्त— अरी रदनिके! तुम्हारे पास उत्तर भी नहीं है? खेद है,

जब मनुष्य क्रुद्ध दैव के द्वारा उपस्थित की गयी भाग्यनाश के कारण दलित दशा को प्राप्त हो जाता है, तब इस धनहीन के मित्र भी शत्रुता को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् शत्रु बन जाते हैं और बहुत दिनों से प्रेम करने वाला व्यक्ति भी विरक्त हो जाता है।।५३।।

टीकाः— यदा = यस्मिन् समये; नरः = मानवः; कृतान्तेन = क्रुद्धदैवेन उपहिताम् = उपस्थापिताम्; भाग्यस्य = सुन्दराद ष्टस्य क्षयेण = विनाशेन, पीडा संजाता अस्याः तां पीडिताम् = दलिताम्; दशाम् = अवस्थाम्; प्रपद्यते = प्राप्नोति; तदा = तस्मिन् दुर्दशापूरिते काले; अस्य = दुर्दशाग्रस्तस्य जनस्य; मित्राणि = सुहृदः अपि, अमित्रताम् = शत्रुताम् तटस्थताम् वा; यान्ति = गच्छन्ति; चिरात् = बहोः कालात् अनुरक्तः = प्रीतः; जनः = मनुष्यः अपि; विरज्यते = विरक्तः भवति।।५३।।

यहाँ अप्रस्तुत मित्र आदि के वर्णन से प्रस्तुत रदनिका की प्रतीति होती है, अतः अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द है-वंशस्थ। छन्द का लक्षण- 'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ'।।५३।।

(रदनिकामुपस त्य)

विदूषकः—भो; इअं सा रअणिआ। (भोः, इयं सा रदनिका।)

चारुदत्तः—इयं सा रदनिका। इयमपरा का?।

अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वासमा

वसन्तसेना— (स्वगतम्) णं भूसिदा। (ननु भूषिता।)

चारुदत्तः— छादिता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव द श्यते।।५४।।

अथवा, न युक्तं परकलत्रदर्शनम्।

अर्थः— विदूषक— (रदनिका के समीप जाकर) आर्या! (हम लोगों की) 'रदनिका' तो यह है।

अन्वयः— (या), अविज्ञातावसक्तेन, मम, वाससा,दूषिता, (तथा), शरदभ्रेण, छादिता, चन्द्रलेखा, इव, द श्यते।।५४।।

शब्दार्थः— (या् = जो) अविज्ञातावसक्तेन = अनजान में स्पर्श किये हुए मम = मेरे, वाससा् = वस्त्र से, दूषिता् = दूषित हो गयी, (तथा), शरदभ्रेण = शरद् ऋतु के मेघ से, छादिता = ढकी हुई, चन्द्रलेखा = चन्द्रकला (के) इव् = समान, द श्यते = दिखलाई पड़ती है।

अर्थः— चारुदत्त— यह तो 'रदनिका' है, और यह दूसरी (स्त्री) कौन है?

'(जो) अनजाने में स्पर्श किये हुए मेरे वस्त्र से दूषित हो गयी अर्थात् मेरे = परपुरुष के वस्त्र के स्पर्श से दूषित हो गयी।'

वसन्तसेना— (अपने आप) अपितु भूषित हो गयी।

चारुदत्त— 'शरद् ऋतु के मेघ से ढकी हुयी चन्द्रकला के समान दिखलायी पड़ती है'।।५४।।

अथवा दूसरे की स्त्री को देखना उचित नहीं है।

टीकाः— (या = स्त्री) अविज्ञातायाम् = अज्ञातायाम् मया इति शेषः अवसक्तेन = योजितेन अथवा अविज्ञातम् = अविदितम् अवसक्तम् = संसर्गः यस्य तेन; मम = चारुदत्तस्य, वाससा = उत्तरीयवस्त्रेण; दूषिता् = अपवित्रीकृता; परपुरुषस्य वस्त्रस्य स्पर्शादिति भावः; तथा शरदः = शरदर्तोः अभ्रेण = मेघेन; छादिता = आव ता; चन्द्रस्य = चन्द्रमसः लेखा = कला, इव, द श्यते = अवलोक्यते।।५४।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है। छन्द का लक्षण — 'युजोर्येन सरिद्भर्तुः। पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।।५४।।

विदूषकः—भो, अलं परकलत्तदंसणसंकाए। एषा वसंतसेणा कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि भवंतमणुरत्ता। (भोः, अलं परकलत्रदर्शनशंकया। एषा वसन्तसेना कामदेवायतनोद्यानात्प्रभ ति त्वामनुरक्ता।)

चारुदत्तः— अये, इयं वसन्तसेना (स्वगतम्)

यया मे जनितः कामः क्षीणे विभवविस्तरे।
क्रोधः कुपुरुषस्येव स्वगात्रेष्वेव सीदति।।५५।

अर्थः— विदूषक — अरे, दूसरे की स्त्री को देखने की शंका न कीजिए। यह 'वसन्तसेना' कामदेवायतनोद्यान में गमन से लेकर तुम में अनुरक्त है।

अन्वयः— विभवविस्तरे, क्षीणे, यया, जनितः, मे कामः, कुपुरुषस्य, क्रोधः, इव, स्वगात्रेषु, एव, सीदति ।।५५।।

शब्दार्थः— विभवविस्तरे = धनराशि के, क्षीणे = क्षीण हो जाने पर, यया = जिस वसन्तसेना के द्वारा, जनितः = उत्पन्न किया गया, मे = मेरा, कामः = कामभाव, कुपुरुषस्य = असमर्थ व्यक्ति के, क्रोधः इव = क्रोध की तरह, स्वगात्रेषु = अपने देह में, एव = ही, सीदति = नष्ट हो रहा है।

अर्थः— **चारुदत्त—** अरे! यह वसन्तसेना है! प्रचुर धनराशि के क्षीण हो जाने पर जिस वसन्तसेना के द्वारा उत्पन्न की गयी मेरी काम वासना, असमर्थ व्यक्ति के क्रोध की भाँति, अपनी देह में ही विनष्ट हो रही है।।५५।।

टीका— विभवविस्तरे = सम्पत्तिसमूहे; क्षीणे = विनष्टे सति; यया = वसन्तसेनया; जनितः = उत्पादितः; मे = मम, निर्धस्य चारुदत्तस्येत्यर्थः; कामः = भोगाभिलाषः; कुपुरुषस्य = असमर्थस्य जनस्य; क्रोधः इव = कोपः इव; स्वगात्रेषु = स्वकीयशरीरेषु एव; सीदति = विनश्यति।।५५।।

यहाँ पर उपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।

विदूषकः—भो वअस्स! एसो खु राअसालो भणादि। (भो वयस्य! एष खलु राजश्यालो भणति।)

चारुदत्तः—किम्?।

विदूषकः—एसा ससुवण्णा सहिलण्णा णवणाडअदंसणुट्ठिदा सुत्तधालि व्व वसंतसेणा णाम गणिआदालिआ कामदेवाअदणुज्जणादो पहुदि तुमं अणुलत्ता अम्हेहिं बलक्काराणुणीअमाणा तुह गेहं पविट्ठा। (एषा ससुवर्णा सहिरण्या नवनाटकदर्शनोत्थिता सूत्रधारीव

वसन्तसेनानाम्नी गणिकादारिका कामदेवायतनोद्यानात्प्रभ ति त्वामनुरक्तास्माभिर्बलात्कारानुनीयमाना तव गेहं प्रविष्टा।

वसन्तसेना—(स्वगतम्) बलक्काराणुणीअमाणेत्ति जं सच्चं, अलंकिदह्मि एदेहिं अक्खरेहिं। बलात्कारानुनीयमानेति यत्सत्यम्, अलंकृतास्म्येतैरक्षरैः।)

विदूषकः— ता जइ मम, हत्थे सअं ज्जेव्व पट्ठाविअ एणं समप्पेसि, ता अधिअरणे ववहारं विणा लहुं णिज्जादमाणाह तव मए अणुबद्धा पीदी हुविस्सदि।

अण्णधा आमरणं वेरं हुविस्सदि। (तद्यदि मम हस्ते स्वयमेव प्रस्थाप्यैनां समर्पयसि, ततो धिकरणे व्यवहारं विना लघु निर्यातयतस्तव मयानुबद्धा प्रीतिर्भविष्यति। अन्यथा मरणं वैरं भविष्यति।)

चारुदत्तः— (सावज्ञम्) अज्ञो सौ। (स्वगतम्) अये, कथं देवतोपस्थानयोग्या युवतिरियम्?। तेन खलु तस्यां वेलायाम्'-

प्रविश ग हमिति प्रतोद्यमाना न चलति भाग्यकृतां दशामवेक्ष्य।
पुरुषपरिचियेन च प्रगल्भं न वदति यद्यपि भाषते बहूनि।।५६।।

अर्थः— विदूषक — हे मित्र! यह राजश्याल (शकार) कहता है-

चारुदत्त— क्या?

विदूषक— यह सुन्दर वर्ण वाली, सुवर्ण के आभूषणों से युक्त, नूतन नाटक के प्रदर्शन के लिए उठ कर खड़ी हुई मुख्य नटी के सद श 'वसन्तसेना' नाम की वेश्या पुत्री, जो कि कामदेवायतनोद्यान में जाने से लेकर तुमसे प्रेम करती है, हमारे द्वारा बलपूर्वक मनायी जाती हुयी भी तुम्हारे घर में प्रविष्ट हो गयी है।

वसन्तसेना— 'बलात् मनायी जाती हुई' यह बात सत्य है, इन अक्षरों से वस्तुतः मैं अलंकृत हो गयी।

विदूषक— तो यदि स्वयं ही भेजकर मेरे साथ में इस वसन्तसेना को सौंप देते हो तो न्यायालय में मुकदमे के विना शीघ्र ही 'वसन्तसेना' को लौटाने वाले तुम्हारी मेरे साथ प्रबल मैत्री हो जायगी। और न लौटाने पर जीवन भर के लिए वैर हो जायगा।

अन्वयः— ग हम्, प्रविश, इति, प्रतोद्यमाना, भाग्यकृताम्, दशाम्, अवेक्ष्य, न, चलति, यद्यपि (इयम्), बहूनि, भाषते, (तथापि), पुरुषपरिचियेन, प्रगल्भम्, न च, वदति।।५६।।

शब्दार्थः— ग हम् = घर में, प्रविश = प्रवेश करो, इति = इस प्रकार, प्रतोद्यमाना् = प्रेरित की गयी, भाग्यकृताम् = (प्रतिकूल) भाग्य के द्वारा उपस्थित की गयी, दशाम् = अवस्था को, अवेक्ष्य = देखकर, न = नहीं, चलति = चलती है, जाती है, यद्यपि = यद्यपि, (इयम् = यह वसन्तसेना), बहूनि = बहुत, भाषते = बोलती है, (तथापि = तो भी) पुरुषपरिचियेन = पुरुषों के संसर्ग से, प्रगल्भम् = ध ष्टतापूर्वक, न च् = नहीं ही, वदति् = बोलती है।।

अर्थः— **चारुदत्त—** (अनादर पूर्वक) यह (शकार) मूर्ख है। (अपने आप) अहो! कैसी देवता के समान पूजा करने के योग्य वह युवती है। तभी तो (अभी) उस समय-

(रोहसेन को लेकर) 'घर में प्रवेश करो', इस प्रकार प्रेरित की गयी (भी, प्रतिकूल) भाग्य के द्वारा उपस्थित की गयी (मेरी) दुरवस्था को देखकर (भीतर) नहीं गयी। यद्यपि (वेश्या होने के नाते यह) बहुत बोलती है तथापि पुरुषों के संसर्ग से अर्थात् पुरुषों के समक्ष ध ष्टता पूर्वक नहीं बोलती है।।५६।।

टीकाः – ग हम् = भवनाभ्यन्तरम्; प्रविश = गच्छ, रोहसेनम् ग हीत्वा इति शेषः; इति = इत्थम्; प्रतोद्यमाना = प्रेर्यमाणा, मया इति शेषः; भाग्येन = दैवेन कृताम् = जनिताम्; दशाम् = अवस्थाम् दुरवस्थामित्यर्थः; अवेक्ष्य = अवलोक्य; न चलति = ग हाभ्यन्तरम् न गतवतीति; यद्यपि इयं वसन्तसेना; बहूनि = अधिकानि; भाषते = वदति; तथापि; पुरुषस्य = माद शस्य जनस्य परिचयेन = संसर्गेण; पुंसः समक्षमित्यर्थः; प्रगल्भम् = ध ष्टं यथा स्यात् तथा; न च-नैव; वदति = वक्ति। कुलांगना इव लज्जापरवशः अस्याः व्यवहारः इति।।५६।।

इस श्लोक में पुष्पिताग्रा छन्द है। इसका लक्षण है-

''अयुजि न-युग-रेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'।।५६।।

(प्रकाशम्) भवति वसन्तसेने! अनेनाविज्ञानादपरिज्ञातपरिजनोपचारेणापराद्धो स्मि। शिरसा भवतीमनुनयामि।

वसन्तसेना– एदिणा अणुचिदभूमिआरोहणेण अवरद्धा अज्जं सीसंण पणमिअ पसादेमि। (एतेनानुचितभूमिकारोहणेनापराद्ध यं शीर्षेण प्रणम्य प्रसादयामि।)

विदूषकः– भो, दुवे वि तुम्हें सुखं पणमिअ कलमकेदारा अण्णोण्णं सीसेण सीसं समाअदा। अहं पि इमिणा करहजाणुसरिसेण सीसेण दुवेवि तुम्हें पसादेमे।

(भोः, द्वावपि युवां सुखं प्रणम्य कलमकेदारावन्योन्यं शीर्षेण शीर्षं समागतौ। अहमप्यमुना करभजानुसद शेन शीर्षेण द्वावपि युवां प्रसादयामि।)

(इत्युत्तिष्ठति)

चारुदत्तः– भवतु, तिष्ठतु प्रणयः।

वसन्तसेना– (स्वगतम्) चदुरो मधुरो अ अअं उवण्णासो। ण जुत्तं अज्ज एरिसेण इध आअदाए मए पडिवासिदुं। भोदु, एव्वं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) अज्ज! जइ एव्वं अहं अज्जस्स अणुग्गेज्झा ता इच्छे अहं इमं अलंकारअं अज्जस्स गेहे णिक्खिविदुं। अलंकारस्स णिमित्तं एदे पावा अणुसरंति। (चतुरो मधुरश्चायमुपन्यासः। न युक्तमद्येद शेनेहागतया मया प्रतिवस्तुम्। भवतु, एवं तावद्भणिष्यामि। आर्य! यद्येवमहमार्यस्यानुग्राह्या तदिच्छाम्यहमिममलंकारकमार्यस्य गेहे निक्षेप्तुम्। अलंकारस्य निमित्तमेते पापा अनुसरन्ति।)

चारुदत्तः– अयोग्यमिदं न्यासस्य ग हम्।

वसन्तसेना– अज्ज! अलिअं। पुरिसेसु णासा णिक्खिविअंति, ण उण गेहेसु। (आर्य! अलीकम्। पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गेहेषु।

चारुदत्तः– मैत्रेय! ग ह्यतामयलंकारः।

वसन्तसेना– अणुग्गहीद म्हि। (अनुग हीतास्मि।)

(इत्यलंकारमर्पयति)

विदूषकः–(ग हीत्वा) सोत्थि भोदिए। (स्वस्ति भवत्यै।)

चारुदत्तः– धिङ् मूर्ख! न्यासः खल्वयम्।

विदूषकः–(अपवार्य) जइ एव्वं ता चोरेहिं अवहरीअदु। (यद्येवं तदा चौरैरपह्रियताम्।)

चारुदत्तः– अचिरेणैव कालेन।

विदूषकः—एसो से अम्हाणं विण्णासो। (एषो स्या अस्माकं विन्यासः।)

चारुदत्तः— निर्यातयिष्ये।

वसन्तसेना— अज्ज! इच्छे अहं, इमिणा अज्जेण अणुगच्छिज्जती सकं गेहं गंतुं। (आर्य! इच्छाम्यहमनेनार्येणानुगम्यमाना स्वकं गेहं गन्तुम्।)

चारुदत्तः— मैत्रेय! अनुगच्छ तत्रभवतीम्।

विदूषकः— तुमं ज्जेव्व एदं कलहंसगामिर्णी अणुगच्छंतो राअहंसो विअ सोहसि। अहं उण बम्हणो तहि जणेहिं चउप्पहोवणीदो उवहारो कुक्कुरेहिं विअ खज्जमाणो विवज्जिस्सं। (त्वमेवैतां कलहंसगामिनीमनुगच्छन् राजहंस इव शोभसे। अहं पुनर्ब्राह्मणो यत्र तत्र जनैश्चतुष्पथोपनीत उपहारः कुक्कुरैरिव खाद्यमानो विपत्स्ये।)

चारुदत्तः— एवं भवतु। स्वयमेवानुगच्छामि तत्रभवतीम्। तद्राजमार्गविश्वासयोग्याः प्रज्वाल्यन्तां प्रदीपिकाः।

विदूषकः— वड्ढमाणआ! पज्जालेहि पदीविआओ। (वर्धमानक! प्रज्वालय प्रदीपिकाः।)

चेटी— (जनान्तिकम्) अले, तेल्लेण विणा पदीविआओ पज्जालीअंति। (अरे, तैलेन विना प्रदीपिकाः प्रज्वाल्यन्ते।)

विदूषकः—(जनान्तिकम्) ही, ताओ खु अम्हाणं पदीविआओ अवमाणिदनिद्धणकामुआ विअ गणिआ णिस्सिणेहाओ दाणिं संवुत्ता। (आश्चर्यम्, ताः खल्वस्माकं प्रदीपिका अपमानितनिर्धनकामुका इव गणिका निःस्नेहा इदानीं संव त्ताः।)

चारुदत्तः— मैत्रेय! भवतु, कृतं प्रदीपिकाभिः। पश्य,-

उदयति हि शशांकः कामिनीगण्डपाण्डु-
ग्र्हगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः।
तिमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
स्नुतजल इव पंके क्षीरधाराः पतन्ति।।५७।।

अर्थः— (प्रकट रूप में) मानिनि! वसन्तसेने!! इस प्रकार अनजान के कारण ठीक से न जानी गयी तुम्हारे साथ सेवक के समान व्यवहार करने से मैं अपराधी हूँ। अतः शिर झुकाकर मैं आपको अनुनय करता हूँ।

वसन्तसेना—अनुचित भूमि में आरोहण करने से अर्थात् वेश्या होने के कारण मैं आपके पवित्र घर में प्रवेश करने के योग्य नहीं हूँ। अतः इस भूमि पर आना मेरे योग्य नहीं है, इस कारण से अपराधिनी मैं वसन्तसेना शिर से प्रणाम करके आर्य आप को प्रसन्न करती हूँ।

विदूषक— आह! सुखपूर्वक प्रणाम करके आप दोनों के शिर, धान की दो क्यारियों के समान, परस्पर मिल गये। मैं भी ऊँट के बच्चे के घुटने के समान इस (अपने) शिर से आप दोनों को भी प्रसन्न करता हूँ।

(यह कह कर उठता है)।

चारुदत्त— जाने दो। प्रणय औपचारिकता को रहने दो।

वसन्तसेना— (अपने आप) यह कथन प्रौढ एवं मधुर है। आज इस प्रकार बिना बुलाये आयी हुई मेरे

द्वारा यहाँ रहना उचित नहीं है। अच्छा! तो इस प्रकार कहती हूँ। (प्रकट रूप से) आर्या! यदि इस प्रकार मैं आपके द्वारा अनुग हीत की जा रही हूँ, तो मैं इस आभूषण को आप के घर में धरोहर रखना चाहती हूँ। आभूषण के लिये ये पापी मेरा पीछा कर रहे हैं।।

चारुदत्त— यह घर धरोहर रखने के लायक नहीं है।

वसन्तसेना— आर्य! यह असत्य है। पुरुषों में अर्थात् पुरुषों के पास धरोहर रक्खी जाती है, न कि घरों में।

चारुदत्त— मैत्रेय! इस आभूषण को ले लो।

वसन्तसेना— अनुग हीत हुई। (आभूषण दे देती है)।

विदूषक— (लेकर) आपका कल्याण हो।

चारुदत्त— धिक्कार है मूर्ख! यह तो धरोहर है।

विदूषक— (अलग हटकर) यदि ऐसा है तो चोरों द्वारा चुरा लिया जाय।

चारुदत्त— बहुत शीघ्र ही....।

विदूषक— इसकी यह हमारे यहाँ विशेष धरोहर है।

चारुदत्त— लौटा दूँगा।

वसन्तसेना— आर्य! मैं इन आर्य 'मैत्रेय' के साथ अपने घर जाना चाहती हूँ।

चारुदत्त— मैत्रेय! आप के साथ जाओ।

विदूषक— तुम्हीं कलहंस के समान सुन्दर गमन करने वाली इनका वसन्तसेना का अनुगमन करते हुए राजहंस के समान शोभित होते हो। फिर मैं बेचारा ब्राह्मण रास्ते में दुष्ट मनुष्यों के द्वारा उसी प्रकार मारा जाऊँगा जिस प्रकार जहाँ तहाँ चौराहों पर मनुष्यों द्वारा लाकर चढ़ाई गयी बलि कुत्तों द्वारा खा ली जाती है।

चारुदत्त— ऐसा ही हो। स्वयं मैं ही इन श्रीमती का अनुगमन करता हूँ। तो राजमार्ग में विश्वास के योग्य दीपकों को जलाओ

विदूषक— वर्धमानक! दीपकों को जलाओ।

चेटी — (अलग से) अरे! तेल के बिना कहीं दीपक जलाए जाते हैं?

विदूषक— (अलग से) आश्चर्य है; वस्तुतः वे हमारी प्रदीपिकाएँ धनहीन कामुक व्यक्तियों को अपमानित करने वाली वेश्याओं के समान आजकल स्नेहरहित (वेश्या के पक्ष में प्रेम रहित, प्रदीपिका के पक्ष में तेल रहित) हो गयी हैं।

अन्वयः— हि, कामिनीगण्डपाण्डुः, ग्रहगणपरिवारः, राजमार्गप्रदीपः, शशांक, उदयति, यस्य, गौराः; रश्मयः, स्रुतजले, पंके, क्षीरधाराः, इव, तिमिरनिकरमध्ये, पतन्ति।।५७।।

शब्दार्थः— हि = क्योंकि, कामिनीगण्डपाण्डुः = सुन्दरी युवती के कपोल के समान गोरा, ग्रहगणपरिवार: = नक्षत्रसमूह रूपी परिवारवाला, राजमार्गप्रदीप: = राजमार्ग का दीपक, शशांक: = चन्द्रमा, उदयति = उदित हो रहा है, यस्य = जिसकी, गौराः = श्वेत, रश्मयः = किरणें, स्रुतजले = सूखे हुए जलवाले, पंके = कीचड़ में, क्षीरधाराः इव = दूध की धाराओं के समान, तिमिरनिकरमध्ये = अन्धकारसमूह के मध्य में, पतन्ति = पड़ रही हैं।

अर्थः— चारुदत्तः— मैत्रेय? रहने दो, प्रदीपिकाओं की आवश्यकता नहीं है। देखो-

सुन्दरी युवती के कपोल के समान उज्ज्वल, नक्षत्र-समूह रूपी परिवार वाला तथा राजमार्ग का दीपक अथवा राजमार्ग को प्रकाशित करने वाला चन्द्रमा उदित हो रहा है। जिसकी श्वेत किरणें, सूखे हुए जलवाले कीचड़ में दूध की धाराओं के समान, अन्धकार समूह के मध्य में पड़ रही हैं।।५७।।

टीका— हि = यतः; कामः अस्याः अस्ति इति कामिनी तस्याः कामिन्याः = तरुण्याः गण्डः = कपोलः इव पाण्डुः = गौरवर्णः; ग्रहगणाः = नक्षत्रसमूहाः एव परिवारः सहचरवर्गः यस्य सः; नक्षत्राणां समूहैः आव तः इत्यर्थः; राजमार्गस्य = राजपथस्य प्रदीपः = दीपकः प्रकाशको वा; शशांकः = चन्द्रः; उदयति = उदेति; यस्य = चन्द्रस्य; गौराः = शुभ्रवर्णा; रश्मयः = किरणाः; स्रुतम् = शुष्कम् जलम् = सलिलम् यस्मात् तस्मिन्; पंके = कर्दमे क्षीरस्य = दुग्धस्य धाराः = प्रवाहाः, इव; तिमिरनिकरस्य = अन्धकारसमूहस्य मध्ये = अभ्यन्तरे; पतन्ति = पतित्वा अन्धकारं विनाश यन्तीति।।५७।।

''कामिनीगण्डपाण्डुः'' में लुप्तोपमा; ''राजमार्गप्रदीपः'' में रूपक तथा उत्तरार्द्ध में श्रौती उपमा है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द है—मालिनी, लक्षण- ''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।।५७।।

(सानुरागम्) भवति वसन्तसेने! इदं भवत्या ग हम्। प्रविशतु भवती।

(वसन्तसेना सानुरागमवलोकयन्ती निष्क्रान्ता)

चारुदत्तः— वयस्य! गता वसन्तसेना, तदेहि। ग हमेव गच्छावः।

राजमार्गो हि शून्यो यं रक्षिणः संचरन्ति च।
व चना परिहर्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी।।५८।।

अन्वयः— हि, अयम्, राजमार्गः, शून्यः, च, रक्षिणः, स चरन्ति, व चना, परिहर्तव्या, हि, शर्वरी, बहुदोषा, (भवति)।।५८।।

शब्दार्थः—हि = क्योंकि, राजमार्गः = सड़क, शून्यः = सूनी (है), च = और; रक्षिणः = पहरेदार, स चरन्ति = घूम रहे हैं, व चना = ठगी, परिहर्तव्या = बचाने योग्य है, हि = क्योंकि, शर्वरी = रात, बहुदोषा = बहुत दोषों वाली, भवति = होती है।।

अर्थः- (प्रेम के साथ) वसन्तसेने! यह आपका घर है। आप प्रवेश करें।

(वसन्तसेना प्रेमपूर्वक देखती हुई निकल जाती है)।

चारुदत्तः—मित्र! वसन्तसेना गयी। तो आओ, घर को ही चलें।

काफी रात बीत जाने से यह राजमार्ग सूना है और रक्षक लोग घूम रहे हैं। ठगी से बचना चाहिए अर्थात् वसन्तसेना के आभूषण को कहीं छिपा कर रखना चाहिए जिससे चोर न पा सकें क्योंकि रात वस्तुतः बड़ी दोषपूर्ण होती है अर्थात् चोरी आदि अपराध रात्रि में ही होते हैं।।५८।।

टीकाः— हि = यतः; अयम् = आवाभ्याम् अनुस्रियमाणः; राजमार्गः = साधारणमार्गः; शून्यः = जनस चरणरहितः, रात्र्याधिक्यादिति; च = तथा; रक्षिणः = रक्षकपुरुषाः; स चरन्ति = इतस्ततः भ्रमन्ति; व चना = प्रतारणा; परिहर्तव्या = निवारणीया; हि = यतः; शर्वरी =

रात्रिः; बहुदोषा-बहवः = अनेके दोषाः = चौरादिभिः कृताः उपद्रवाः यस्याम् सा; रात्रौ एव दुर्जनाः गर्हितकार्याणि सम्पादयन्ति; भवति = वर्तते इति शेषः।।५८।।

यहाँ पर चौथे चरण के अर्थ से तीसरे चरण के अर्थ का समर्थन करने से सामान्य से विशेष का समर्थन होता है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इस श्लोक के छन्द का नाम है पथ्यावक्त्र,—लक्षण- 'युजोर्येन सरिद्भर्तुः पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्'।।५८।।

(परिक्रम्य) इदं च सुवर्णभाण्डं रक्षितव्यं त्वया रात्रौ, वर्धमानकेनापि दिवा।

विदूषकः—जधा भवं आणवेदि। (यथा भवानाज्ञापयति।)

अर्थः— (घूमकर) इस सोने के पात्र अर्थात् स्वर्णाभूषण रखने की छोटी सन्दूक की रक्षा तुमको रात्रि में और 'वर्धमानक' को दिन में करनी चाहिए।

विदूषकः—जैसी आप आज्ञा देते हैं (अर्थात् जैसी आपकी आज्ञा)।

इति निष्क्रान्तौ

इति म च्छकटिके लंकारन्यासो नाम प्रथमों कः।

(दोनों निकल जाते हैं)

अलंकार-न्यास नामक प्रथम अंक समाप्त।

द्वितीयो ंकः

(प्रविश्य)

चेटी— अत्ताए अज्जआसआसं संदेसेण पेसिदम्हि। ता जाव पविसिअ अज्जआसआसं गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एसा अज्जआ हिअएण किंपि आलिहंती चिट्ठदि। ता जाव उवसप्पामि। (मात्रार्यासकाशं संदेशेन प्रेषितास्मि। तद्यावत्प्रविश्यार्यासकाशं गच्छामि। एषार्या हृदयेन किमप्यालिखन्ती तिष्ठति। तद्यावदुपसर्पामि।)

(ततः प्रविशत्यासनस्था सोत्कण्ठा वसन्तसेना मदनिका च)

वसन्तसेना— ह जे! तदो तदो?। (चेटि! ततस्ततः?।)

चेटी— अज्जए ण किंपि मंतेसि। किं तदो तदो?। (आर्ये! न किमपि मन्त्रयसि। किं ततस्ततः?)

वसन्तसेना— किं मए भणिदं?। (किं मया भणितम्?।)

चेटी— तदो तदो त्ति। (ततस्तत इति।)

वसन्तसेना— (सभ्रूक्षेपम्) आं, एव्वं। (आं, एवम्।)

(उपस त्य)

प्रथमा चेटी— अज्जए! अत्ता आदिसदि — 'णहादा भविअ देवदाणं पूअं णिव्वेत्तेहि' त्ति। (आर्ये! माता दिशति-'स्नाता भूत्वा देवतानां पूजां निर्वतय' इति।)

वसन्तसेना— हज्जे! विण्णवेहि अत्तं — 'अज्ज ण णहाइस्सं। ता म्हणो ज्जेव्व पूअं णिव्वत्तेदु' त्ति। (चेटि! विज्ञापय मातरम्—'अद्य न स्नास्यामि। तद्ब्राह्मण एव पूजां निर्वर्तयतु' इति।)

चेटी— जं अज्जआ आणवेदि। (यदार्याज्ञापयति।)

(इति निष्क्रान्ता)

(प्रवेश करके)

अर्थः— चेटी— वसन्तसेना की माता के द्वारा सन्देश के साथ आर्या वसन्तसेना के पास भेजी गयी हूँ। अतः प्रवेश करके आर्या के समीप चलती हूँ। (घूम कर और देख कर) यह आर्या तल्लीनता पूर्वक कुछ सोचती हुई बैठी हैं। तो तब तक उनके समीप चलती हूँ।

(इसके बाद आसन पर बैठी हुई उत्कण्ठित वसन्तसेना तथा मदनिका प्रवेश करती हैं)

वसन्तसेना— चेटी! इसके बाद?

चेटी— आर्ये! कुछ कहती तो हो नहीं; फिर 'इसके बाद' क्या?

वसन्तसेना— मैंने क्या कहा?

चेटी— 'इसके बाद'।

वसन्तसेना— (भ्रूविक्षेप के साथ) अच्छा, इस प्रकार?

(समीप जाकर)

पहली चेटी — आर्ये! माता जी की यह आज्ञा है कि-''स्नान करके देवताओं की पूजा कर लो।'

वसन्तसेना— चेटी! माता जी से कह दो कि-'आज मैं स्नान नहीं करूँगी। इसलिये ब्राह्मण ही पूजा को निपटा ले।'

चेटी— जैसी आपकी आज्ञा।

(ऐसा कह कर चली जाती है)

मदनिका— अज्जए! सिणेहो पुच्छदि ण पुरोभाइदा, ता किं णेदं?। (आर्ये! स्नेहः प च्छति, न पुरोभागिता, तत्किं न्विदम्?।)

वसन्तसेना— मदणिए! केरिसिं मं पेक्खसि?। (मदनिके! कीद शीं मां प्रेक्षसे?।)

मदनिका— अज्जाआए सुण्णहिअअत्तणेण जाणामि हिअअगदं कंपि अज्जआ अहिलसदि त्ति। (आर्यायाः शून्यह्रदयत्वेन जानामि ह्रदयगतं कमप्यार्याभिलषतीति।)

वसन्तसेना— सुट्ठु तुए जाणिदं। परहिअअग्गहणपंडिआ मदणिआ खु तुमं। (सुष्ठु त्वया ज्ञातम्। परह्रदयग्रहणपण्डिता मदनिका खलु त्वम्।)

मदनिका— पिअं मे पिअं। कामो खु णाम एसो भअवं। अणुगहिदो महूसवो तरुणजणस्स। ता कधेदु अज्जआ, किं राआ राअवल्लहो वा सेवीअदि?। (प्रियं मे प्रियम्। कामः खलु नामैष भगवान्। अनुग हीतो महोत्सवस्तरुणजनस्य। तत्कथयत्वार्या, किं राजा राजवल्लभो वा सेव्यते?।)

वसन्तसेना— ह जे! रमिदुमिच्छामि, ण सेविदुं। (चेटि! रन्तुमिच्छामि, न सेवितुम्।

मदनिका— विज्जाविसेसालंकिदो किं को वि ब्रह्मणजुआ कामीअदि?। (विद्याविशेषालंकृतः कि को पि ब्राह्मणयुवा काम्यते?।

वसन्तसेना— पूअणीओ मे ब्रह्मणजणो। (पूजनीयो मे ब्राह्मणजनः।)

मदनिका— किं अणेअणअराभिगमणजणिदविहववित्थारो वाणिअजुआ वा कामीअदि?। (किमनेकनगराभिगमनजनितविभवविस्तारो वाणिग्युवा वा काम्यते?।)

वसन्तसेना— ह जे! उवारूढसिणेहं पि पणइजणं परिच्चिइअ देसंतरगमणेण पाणिअजणो महंतं विओअजं दुक्खं उप्पादेदि। (चेटि! उपारूढस्नेहमपि प्रणयिजनं परित्यज्य देशान्तरगमनेन वाणिग्जनो महद्वियोगजं दुःखमुत्पादयति।)

मदनिका— अज्जए! ण राआ, ण राअवल्लहो, ण बह्मणो, ण वाणिअजणो; ता को दाणिं सो भट्टिदारिआए कामीअदि?। (आर्ये! न राजा, न राजवल्लभः, न ब्राह्मणः, न वाणिग्जनः; तत्क इदानीं स भर्त दारिकया काम्यते?।)

वसन्तसेना — ह जे! तुमं मए सह कामदेवाअदणुज्जाणं गदा आसि। (चेटि! त्वं मया सह कामदेवायतनोद्यानं गतासीः।)

मदनिका— अज्जए! गदम्हि। (आर्ये! गतास्मि।)

वसन्तसेना— तह वि मं उदासीणा विअ पुच्छसि?। (तथापि मामुदासीनेव प च्छसि?।)

मदनिका— जाणिदं, किं सो ज्जेव जेण अज्जआ सरणाअदा अब्भुववण्ण?। (ज्ञातम्, किं स एव येनार्या शरणागताभ्युपपन्ना?।)

वसन्तसेना— किंणामहेओ खु सो?। (किंनामधेयः खलु सः?।)

मदनिका— सो खु सेट्ठिचतरे पडिवसदि। (स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति।)

वसन्तसेना— अइ! णामं से पुच्छिदासि। (अयि! नामास्य प ष्टासि।)

मदनिका— सो खु अज्जए! सुगहीदणामहेओ अज्जचारुदत्तो णाम। (स खलु आर्ये! सुग हीतनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम।)

वसन्तसेना— (सहर्षम्) साहु मदणिए! साहु। सुट्ठु तुए जाणिदं। (साधु मदनिके! साधु। सुष्ठु त्वया ज्ञातम्।)

मदनिका— (स्वगतम्) एव्वं दाव। (प्रकाशम्) अज्जए! दलिद्दो खु सो सुणीअदि। (एवं तावत्। आर्ये। दरिद्रः खलु स श्रूयते।)

वसन्तसेना— अदो ज्जेव कामीअदि। दलिद्दपुरिससंकंतमणा खु गणिआ लोए अवअणीआ भोदि। (अत एव काम्यते। दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोके वचनीया भवति।)

मदनिका— अज्जए! किं हीणकुसुमं सहआरपादवं महुअरीओ उण सेवंति?। (आर्ये! किं हीनकुसुमं सहकारपादपं मधुकर्यः पुनः सेवन्ते?।)

वसन्तसेना— अदो ज्जेव ताओ महुअरीओ वु चन्ति। (अत एव ता मधुकर्य उच्यन्ते।)

मदनिका— अज्जए! जइ सो मणीसिदो ता कीस दाणिं सहसा ण अहिसारीअदि? (आर्ये, यदि स मनीषितस्तत्किमर्थमिदानीं सहसा नाभिसार्यते?।)

वसन्तसेना— ह जे! सहसा अहिसारिअंतो पंचुअआरदुब्बलदाए, मा दाव, जणो दुल्लहदंसणो पुणो भविस्सदि। (चेटि! सहसाभिसार्यमाणः प्रत्युपकारदुर्बलतया, मा तावत्, जनो दुर्लभदर्शनः पुनर्भविष्यति।)

मदनिका— किं अदो ज्जेव सो अलंकारओ तस्स हत्थे णिक्खित्तो। (किमत एव सो लंकारस्तस्य हस्ते निक्षिप्तः।)

वसन्तसेना— ह जे! सुट्ठु दे जाणिदं। (चेटि! सुष्ठु त्वया ज्ञातम्।)

अर्थः - मदनिका— आर्ये! दोष की इच्छा नहीं किन्तु मेरा आपके प्रति प्रेम पूछने को प्रेरित करता है कि यह क्या बात है अर्थात् आप की यह हालत क्यों है?

वसन्तसेना— मदनिके! (तुम) मुझे कैसी देख रही हो?

मदनिका— आपके मन की उदासी के कारण यह समझ रही हूँ कि आप अपने मन में बैठे हुए किसी प्रेमी को चाहती हैं।

वसन्तसेना— तुमने ठीक जाना। दूसरे के मन की बातों को परखने में चतुर 'मदनिका' हो।

मदनिका— मेरे लिए बहुत प्रिय है। यह तो भगवान् कामदेव हैं अर्थात् यह कामदेव का ही प्रभाव है कि तुम किसी पुरुष को चाहती हो। अब तो युवकों की इच्छा पूरी हो गयी। तो आप बतलावें कि राजा अथवा राजा का कोई प्रिय व्यक्ति आपके द्वारा चाहा जा रहा है?

वसन्तसेना— चेटी! सम्भोग करना चाहती हूँ न कि सेवा करना।

मदनिका— क्या किसी खास विद्या को जानने वाले ब्राह्मण युवक को आप चाहती हैं?

वसन्तसेना— ब्राह्मण लोग तो हमारे पूज्य हैं।

मदनिका— अथवा बहुत से शहरों में जाकर व्यापार करने से बहुत अधिक धन को पैदा करने वाले किसी व्यापारी युवक को चाहती हो?

वसन्तसेना— चेटी! व्यापारी पुरुष बहुत अधिक प्यार करने वाले प्रेमी जन स्त्री को छोड़ कर दूसरे देशों को चले जाने से विरह के कारण होने वाले महान् दुःख को पैदा करता है।

मदनिका — आर्ये! न राजा, न राजप्रेमी, न ब्राह्मण और न वणिक् ही। तो वह कौन है जिसे आप चाहती हैं?

वसन्तसेना — चेटी! तुम मेरे साथ काम देवायतन उद्यान में गयी थी।

मदनिका — आर्ये! गयी थी।

वसन्तसेना — फिर भी अनजान सी मुझसे पूछ रही हो?

मदनिका — जान गयी। क्या उसको ही, जिसने आपको शरण देकर कृपा की थी?

वसन्तसेना — उसका क्या नाम है?

मदनिका — वह सेठों के चौक में रहते हैं।

वसन्तसेना — अरी! मैंने उसका नाम पूछा है।

मदनिका — आर्ये! वह सुन्दर नाम वाले आर्य 'चारुदत्त' हैं।

वसन्तसेना — (प्रसन्नता के साथ) वाह! मदनिके वाह!! तूने ठीक जाना।

मदनिका — (अपने आप) तो ऐसा कहती हूँ। (प्रकट रूप में) आर्ये! सुनती हूँ कि वे निर्धन हैं।

वसन्तसेना — इसीलिए तो मैं चाहती हूँ क्योंकि निर्धन पुरुष से प्रेम करने वाली वेश्या संसार में निन्दा का पात्र नहीं होती है।

मदनिका — आर्ये! क्या भ्रमरियाँ बिना बौर वाले आम के पेड़ का सेवन करती हैं?

वसन्तसेना — इसीलिए तो उनका नाम 'मधुकरी' है।

मदनिका — आर्ये! यदि वह अभीप्सित प्रेमी है तो क्यों नहीं तुरन्त इसी समय छिप कर उनसे मिलती हैं?

वसन्तसेना — चेटी! एकाएक छिप कर मिलने पर बदला चुकाने में असमर्थ होने के कारण, ऐसा न हो, कि फिर इन आर्य 'चारुदत्त' का मिलना भी दुर्लभ हो जाय।

मदनिका — क्या इसीलिए वह आभूषण उनके हाथ में धरोहर के रूप में रक्खा है?

वसन्तसेना — चेटी! तुमने ठीक जाना।

(नेपथ्ये)

अले भट्ठा! दशसुवण्णाह लुद्धु जूदकरु पपलीणु पपलीणु। ता गेण्ह गेण्ह। चिट्ठ चिट्ठ, दूलात्पदिट्टो सि। (अरे भट्टारक! दशसुवर्णस्य रुद्धो द्यूतकरः प्रपलायितः प्रपलायितः। तद्ग हाण ग हाण। तिष्ठ तिष्ठ, दूरात्प्रद ष्टो सि।)

(प्रविश्यापटीक्षेपेण संभ्रान्तः)

संवाहकः -हीमाणहे, कट्टे एसे जुदिअलभावे।

णवबंधणमुक्काए विअगद्दहीए
हा ताडिदो म्हि गद्दहीए।
अंगलाअमुक्काए विअ शत्तीए
घडुक्को विअ घादिदो म्हि शत्तीए।।१।।

(आश्चर्यम्, कष्ट एष द्यूतकरभावः)।

नवबन्धनमुक्तयेव गर्दभ्या हा ताडितो स्मि गर्दभ्या।
अंगराजमुक्तयेव हा शक्त्या घटोत्कच इव घातितो स्मि शक्त्या।।

(नेपथ्य में)

अर्थः- अरे स्वामी! दस सुवर्ण के लिये रोका हुआ जुआरी भाग गया, भाग गया। तो उसे पकड़ो पकड़ो। ठहरो ठहरो दूर से ही दिखलायी पड़ गया है।

अन्वयः— हा! नवबन्धनमुक्तया, गर्दभ्या, इव, गर्दभ्या, ताडितः, अस्मि, हा! अंगराजमुक्तया, शक्त्या, घटोत्कचः; इव, शक्त्या, घातितः, अस्मि।।१।।

शब्दार्थः— हा! = हाय! नवबन्धनमुक्तया = नये बन्धन से छूटी हुई, गर्दभ्या = गदही के, इव = समान, गर्दभ्या = जुआ खेलने की कौड़ी के द्वारा, ताडितः = मारा गया, अस्मि = हूँ, हा हाय! अंगराजमुक्तया = कर्ण के द्वारा चलायी गयी, शक्त्या = शक्तिनामक अस्त्र से, घटोत्कच इव = भीम के पुत्र घटोत्कच के समान, शक्त्या = जुए की कौड़ियों की चाल से, घातितः = मार दिया गया, अस्मि = हूँ।।

(बिना पर्दा उठाए घबराया हुआ प्रवेश करके)

अर्थः- संवाहक — आश्चर्य है! यह जुआरीपन बहुत ही दुःखदायक है।

हाय! शीघ्र ही बन्धन से छूटी हुई गदही के समान गर्दभी (जुए के काम में आने वाली कौड़ी, पाशा) ने मुझे मार दिया अर्थात् कौड़ी से बुरी तरह पछाड़ा गया हूँ। 'कर्ण' (अंगराज) के द्वारा चलाई हुई शक्ति (एक प्रकार का फेंक कर मारने वाला अस्त्र) से घटोत्कच' (भीम के पुत्र) समान, मैं भी शक्ति (जुए में चली जाने वाली कौड़ियों की एक खास चाल) के द्वारा मारा गया हूँ।।१।।

टीका— हा = कष्टम्!; नवम् = सद्यः बन्धनात् = पाशात् मुक्तया = स्वतन्त्रया विगलितया वा; गर्दभ्या = रासभस्त्रिया; इव = यथा; गर्दभ्या = वराटिकया; ताडितः = दण्डितः; अस्मि = वर्ते; हा = खेदे अव्ययपदम्; अंगराजेन = कर्णेन मुक्तया प्रक्षिप्तया; शक्त्या = अस्त्रविशेषेण; घटोत्कच इव = हिडिम्बागर्भजभीमसेनपुत्रः इव; शक्त्या = द्यूतखेलनप्रकारेण इत्यर्थः; घातितः = मारितः अस्मि।

इस श्लोक में उपमा एवं यमक की संस ष्टि है। प्रयुक्त छन्द है-चित्रजाति।।१।।

लेखअवावडहिअअं शहिअं दट्ठूण झत्ति पब्भट्ठे।
एण्हिं मग्गणिवडिदे कं णु खु शलणं पपज्जे।।२।।

लेखकव्याप तहृदयं सभिकं द ष्ट्वा झटिति प्रभ्रष्टः।
इदानीं मार्गनिपतितः कं नु खलु शरणं प्रपद्ये।।

अन्वयः— लेखकव्याप तद्दृदयम्, सभिकम्, द ष्ट्वा, झटिति, प्रभ्रष्टः, इदानीम्, मार्गनिपतितः, (अहम्) नु, कम्, खलु, शरणम्, प्रपद्ये।।२।।

शब्दार्थः— लिखने में उलझे हुए चित्तवाले, सभिकम् = जुआरियों के अगुआ को, जुआ कराने वाले को, द ष्ट्वा = देखकर, झटिति = जल्दी ही, प्रभ्रष्टः = भाग निकला, इदानीम् = अब, मार्गनिपतितः = रास्ते पर आ गया, अहम् = मैं, नु = अरे! कम् = किसकी, शरणम् = शरण को, प्रपद्ये = प्राप्त करूँ?

अर्थः— जुआरियों के अगुआ सभिक को कुछ लिखने में उलझा हुआ देख कर जल्दी ही भाग निकला और अब रास्ते पर आ गया मैं किसकी शरण में जाऊँ?।।२।।

टीका— लेखः एव लेखकः = लेखनम् तस्मिन् व्याप तम् = संलग्नम् हृदयम् = चेतः यस्य तम्; सभिकम् = द्यूताध्यक्षम्; द ष्ट्वा = अवलोक्य; झटिति = शीघ्रम; प्रभ्रष्टः = पलायितः; इदानीम् = सम्प्रति; मार्गे = राजपथे निपतितः = आगतः; अहम् = संवाहकः; नु = अरे! कम् = जनम्; खलु = वाक्यालंकारे पदमेतत्; शरणम् = शरणार्थं रक्षितारम् इत्यर्थः; प्रपद्ये = प्राप्नोमि?।।२।।

इसमें गाथा छन्द है, लक्षण-

''विषमाक्षरपादत्वात्, पादौ रसम जसं धर्मवत्।
यच्छन्दसि नोक्तमत्र, गाथेति तत् सूरिभिः कथितम्''।।२।।

ता जाव एदे शहिअजूदिअला अण्णदो मं अण्णेशंति, ताव हक्के विप्पडीवेहिं पाद हिं एदं शुष्णदेउलं पविशिअ देवीभविश्शं।

तद्यावदेतौ सभिकद्यूतकरावन्यतो मामन्विष्यतः, तावदहं विपरीताभ्यां पादाभ्यामेतच्छून्यदेवकुलं प्रविश्य देवीभविष्यामि।

(बहुविधं नाट्यं कृत्वा तथा स्थितः)

(ततः प्रविशति माथुरो द्यूतकरश्च

माथुरः— अले भट्टा! दशसुवण्णाह लुद्धु जूदकरु पपलीणु पपलीणु। ता गेण्ह गेण्ह। चिट्ठ चिट्ठ। दूरात्पविट्ठोसि। (अरे भट्टारक! दशसुवर्णस्य रुद्धो द्यूतकरः प्रपलायितः प्रपलायितः। तद्ग हाण ग हाण। तिष्ठ तिष्ठ, दूरात्प्रद ष्टो सि।)

द्यूतकरः-

जइ वज्जसि पादालं इंदं शलणं च संपदं जासि।
सहिअं वज्जिअ एकं रुद्दो वि ण रक्खिदुं तरइ।।३।।

(यदि व्रजसि पातालमिन्द्रं शरणं च सांप्रतं यासि।
सभिकं वर्जयित्वैकं रुद्रो पि न रक्षितुं तरति।।)

अर्थः— तो जब तक जुआरियों का अगुआ (सभिक) और जुआरी मुझे दूसरी ओर ढूँढते हैं तब तक मैं उलटे पैरों से चलकर इस सूने देव-मन्दिर में घुस कर देवता की मूर्ति बन जाऊँ।

(बहुत प्रकार का अभिनय करके देवता की मूर्ति बन कर बैठ जाता है)

(इसके पश्चात् 'माथुर' और जुआरी प्रवेश करते हैं।)

अर्थः— माथुर — अरे स्वामी! दश सुवर्ण के लिये रोका हुआ जुआरी भाग गया, भाग गया। तो उसे पकड़ो, पकड़ो। ठहरो, ठहरो। दूर से ही दिखलायी पड़ गया है।

अन्वयः— यदि, पातालम्, व्रजसि, इन्द्रम्, शरणम्, च, यासि, (किन्तु), एकम्, सभिकम्, वर्जयित्वा, रुद्रः, अपि, (त्वाम्) रक्षितुम्, न, तरति।।३।।

शब्दार्थः— यदि = यदि, पातालम् = पाताल को, व्रजसि = जाते हो, इन्द्रम् = इन्द्र की, शरणम् = शरण को, यासि = जाते हो, (किन्तु) एकम् = केवलम्, सभिकम् = सभिक को, जुआरियों के अध्यक्ष को, वर्जयित्वा = छोड़कर, रुद्रः = शिव, अपि = भी, (त्वाम् = तुमको), रक्षितुम् = बचाने में, न = नहीं तरति = समर्थ हैं।

अर्थः— जुआरी — यदि (अपने बचाव के लिये तुम) पाताल लोक में जाते हो अथवा इन्द्र की शरण में चले जाते हैं तो भी इस समय केवल सभिक को छोड़ कर शिव भी तुम्हें नहीं बचा सकते।।३।।

टीका— यदि = चेत्; पातालम् = प थिव्याः अधस्तलमित्यर्थः; व्रजसि गच्छसि; इन्द्रम् = देवराजम् वा; शरणम् = रक्षकम्, यासि = गच्छसि; किन्तु एकम् = केवलम्; सभिकम् = द्यूतकराध्यक्षम् माथुरम्; वर्जयित्वा = परित्यज्य; रुद्रः = शिवो पि; त्वाम् = संवाहकम्; रक्षितुम् = त्रातुम्; न तरति = न समर्थः भवति इति भावः।।३।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।

माथुरः—

कहिं कहिं सुसहिअवप्पलंभआ
पलासि ले भअपलिवेविदंगआ।
पदे पदे समविसमं खलंतआ
कुलं जसं अइकसणं कलेंतआ।।४।।

(कुत्र कुत्र सुसभिकविप्रलम्भक! पलायसे रे भयपरिवेपितांगक!।

पदे पदे समविषमं स्खलन्कुलं यशो तिकृष्णं कुर्वन्।)

अन्वयः— हे सुसभिकविप्रलम्भक! भयपरिवेषितांगक! कुलम्, यशः, अतिकृष्णम्, कुर्वन्, पदे, पदे, समविषमम्, स्खलन्, कुत्र, कुत्र, पलायसे।।४।।

शब्दार्थः— हे सुसभिकविप्रलम्भक—हे सच्चे और सीधे जुआरियों के अगुआ को ठगने वाले! भयपरिवेपितांगक = डर के मारे काँपते हुए शरीर वाले! कुलम् = कुलको, यशः = यशको, अतिकृष्णम् = अत्यन्त काला कुर्वन् = करते हुए, पदे पदे = पग पग पर, समविषमम् = ऊँचे-नीचे, स्खलन् = लड़खलाते हुए, कुत्र कुत्र = कहाँ कहाँ, पलायसे = भाग रहे हो।।

अर्थः— माथुर — अरे! (मुझ जैसे) सच्चे और सीधे जुआरियों के अगुआ को भी धोखा देने वाले! डर के मारे काँपते हुए शरीरवाले! अपने कुल एवं कीर्ति को अत्यन्त काला करते हुए, पग-पग पर ऊँचे-नीचे लड़खड़ाते हुए तू कहाँ कहाँ भाग रहा है।।४।।

टीका— सुसभिकम् = सरलव्यवहारकारिणम् सभिकं मामित्यर्थः विप्रलम्भयति = प्रतारयति इति सुसभिकविप्रलम्भकः तत्सम्बद्धो; भयेन = भीत्या परिवेपितानि = कम्पितानि अंगानि = शरीरावयवाः यस्य तत्सम्बद्धोः; कुलम = वंशम्, यशः = कीर्ति च स्वकीयमिति शेषः; अतिकृष्णम् = मलीमसम् मलिनमित्यर्थः, कुर्वन् = विदधत्; पदे पदे = प्रतिपादन्यासम् इत्यर्थः, समविषमम् = उच्चावचस्थानम् समविषमं यथा स्यात्तथा वा; स्खलन् = गमने भ्रश्यन्; कुत्र कुत्र = कस्मिन् कस्मिन् स्थाने; पलायसे = पलाय्य गच्छसि।।४।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-रुचिरा। इसका लक्षण इस प्रकार है-''जमौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः।।४।।

द्यूतकरः— (पदं वीक्ष्य) एसो वज्जदि। इअं पणट्टा पदवी। (एष व्रजति। इयं प्रनष्टा पदवी।)

माथुरः— (आलोक्य, सवितर्कम्) अले, विप्पदीवु पादु। पडिमाशुण्णु देउलु (विचिन्त्य) धुत्तु जूदकरु विप्पदीवेहिं पादेहिं देउलं पविट्ठो। (अरे, विप्रतीपौ पादौ। प्रतिमाशून्यं देवकुलम्। धूर्तो द्यूतकरी विप्रतीपाभ्यां पादाभ्यां देवकुलं प्रविष्टः।)

द्यूतकरः— ता अणुसरेम्ह। (ततो नुसरावः।)

माथुरः — एव्वं भोदु। (एवं भवतु।)

(उभौ देवकुलप्रवेशं निरूपयतः, द ष्टवा न्योन्यं संज्ञाप्य)

द्यूतकरः — कधं कट्ठमयी पडिमा?। (कथं काष्ठमयी प्रतिमा?।)

माथुरः — अले, ण हु ण हु, शैलपडिमा। (इति बहुविधं चालयति संज्ञाप्य च)। एव्वं भोदु। एहि, जूदं किलेम्ह। (अरे, न खलु न खलु, शैलप्रतिमाः एवं भवतु। एहि, द्यूतेन क्रीडावः। (इति बहुविधं द्यूतं क्रीडति))

संवाहकः — (द्यूतेच्छाविकारसंवरणं बहुविधं कृत्वा, स्वगतम्) अले,

कत्ताशद्दे णिण्णाणअश्श हलइ हडकं मनुश्शश्श।
ढक्काशद्देव्व णडाधिवश्श पब्भट्टलज्जश्श।।५।।

अरे, कत्ताशब्दो निर्नाणकस्य हरति हृदयं मनुष्यस्य।
ढक्काशब्द इव नराधिपस्य प्रभ्रष्टराज्यस्य।।

अर्थः— जुआरी — (पैरों के चिह्न को देख कर) यह जा रहा है अर्थात् यहाँ से गया है। यहाँ पैर के चिह्न गायब हो गये अर्थात् जाने के पैर के चिह्न गायब हो गये किन्तु आने के हैं।

माथुर— (देखकर तर्कपूर्वक) अरे! पैरों के चिह्न उलटे आने के हैं। देवता का यह मन्दिर मूर्ति से रहित है (सोच कर) ठग जुआरी उलटे पाँवों से मन्दिर में घुस गया है।

जुआरी— तो उसका पीछा करते हैं।

माथुर— ऐसा ही हो।

(दोनों मन्दिर में घुसने का अभिनय करते हैं। देखकर और एक दूसरे को इशारा करके)

जुआरी— क्या यह काठ की मूर्ति है?

माथुर— अरे! नहीं, नहीं, पत्थर की मूर्ति है। (ऐसा कह कर उसे बहुत भाँति से हिलाता डुलाता है और इशारा करके) अच्छा, ऐसा हो। आओ जुआ खेलें। (ऐसा कहकर बहुत तरह से जुआ खेलता है)

अन्वयः— अरे! कत्ताशब्दः, निर्नाणकस्य, मनुष्यस्य, प्रभ्रष्टराज्यस्य, नराधिपस्य, ढक्काशब्दः, इव, हृदयम्, हरति।।५।।

शब्दार्थः— अरे = ओह! कत्ताशब्दः = कौड़ी की खनखनाहट, निर्नाणकस्य = निर्धन, मनुष्यस्य = मनुष्य के; प्रभ्रष्टराज्यस्य = राज्य से व चित, नराधिपस्य = राजा के, ढक्काशब्दः = भेरी के शब्द (की), इव = तरह, हृदयम् = हृदय को, हरति = लुभाता है, आकृष्ट करता है।

अर्थः— संवाहक — (जुआ खेलने की इच्छा को जैसे तैसे रोक कर अपने आप)

अरे, यह कौड़ी अथवा पासा की खन-खनाहट की आवाज निर्धन जुआरी मनुष्य के हृदय को उसी तरह लुभाती है जिस तरह कि हाथ से राज्य निकल जाने वाले किसी राजा को भेरी का शब्द (लड़ाई आदि के लिए ललचाता है)।।५।।

टीका— अरे = अहो! कत्ता = यया द्यूतकरणं सा कत्ता, शब्दः = ध्वनिविशेषः; नास्ति नाणकम् = धनम् यस्य तस्य निर्नाणकस्य = निर्धनस्य; मनुष्यस्य = जनस्य; प्रभ्रष्टम् = शत्रुभिः स्वायत्तीकृतम् राज्यम् = राज्यश्रीः यस्य तस्य; राज्यच्युतस्येत्यर्थः; नराधिपस्य = राज्ञः; ढक्काशब्दः = भेरीध्वनिः इव; हृदयम् = चेतः; हरति = आकृष्टं करोति।।५।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा विपुला छन्द है। छन्द का लक्षण- ''उल्लंघ्य गणत्रयमादिमं, शकलयोर्द्वयो र्भवति पादः। यस्यास्तां पिंगलनागो, विपुलामिति समाख्याति''।।५।।

जाणामि ण कीलिश्शं शुमेलुशिहलपधणशण्णिहं जूअं।
तह वि हु कोइलमहुले कत्ताशद्दे मणं हलदि।।६।।
जानामि न क्रीडिष्यामि सुमेरुशिखरपतनसंनिभं द्यूतम्।
तथापि खलु कोकिलमधुरः कत्ताशब्दो मनो हरति।।

अन्वयः— द्यूतम्, सुमेरुशिखरपतनसन्निभम्, जानामि, (अतः) न, क्रीडिष्यामि, तथापि, कोकिलमधुरः, कत्ताशब्दः, खलु, मनः, हरति।।६।।

शब्दार्थः— द्यूतम् = जुआ को, सुमेरुशिखरपतनसन्निभम् = सुमेरु पर्वत की चोटी से गिरने के समान, जानामि = जानता हूँ, (अतः = इसलिये), न = नहीं, क्रीडिष्यामि = खेलूँगा, तथापि = तो भी, कोकिलमधुरः = कोयल की आवाज के समान मधुर, कत्ताशब्दः = कौड़ी की खन-खनाहट, खलु = निश्चय ही, मनः = मन को, हरति = लुभा लेती है।

अर्थः— जुआ (खेलना) 'सुमेरु' पर्वत की चोटी से गिरने के समान (हानिकारक) है; (मैं यह) जानता हूँ। अतः नहीं खेलूँगा। तथापि कोयल के गले से निकली हुई मीठी कूक के समान कौड़ी की खन-खनाहट मन को लुभा ही लेती है।।६।।

टीका— द्यूतम् = द्यूतक्रीडनम्; सुमेरोः = तन्नामकपर्वतस्य शिखरात् = श्र ंगात् पतनम् = भ्रंशनम् तेन सन्निभम् = तुल्यम्; तत्पतनवत् विनाशकमिति भावः; जानामि = अवबोधयामि, अतः न क्रीडिष्यामि तथापि कोकिल इव = कोकिलकूजनमिवेत्यर्थः, मधुरः = श्रवणसुभगः; कत्तायाः = द्यूते प्रयुज्यमानायाः लोके 'कौड़ी' इति प्रसिद्धायाः; शब्दः = रवः; खलु = अवश्यम्; मनः = चेतः; हरति = आकर्षति।

यहाँ पर भी उपमा अलंकार एवं विपुला छन्द है।

द्यूतकरः— मम पाठे, मम पाठे। (मम पाठे, मम पाठे।)

माथुरः — ण हु; मम पाठे मम पाठे। (न खलु; मम पाठे मम पाठे।)

संवाहकः — (अन्यतः सहसोपस त्य) णं मम पाठे। (ननु मम पाठे।)

द्यूतकरः — लद्धे गोहे। (लब्धः पुरुषः।)

माथुरः — (ग हीत्वा) अले पेदंडा! गहीदोसि। पअच्छ तं दशसुवण्णं। (अरे लुप्तदण्ड! ग हीतो सि। प्रयच्छ तद्दशसुवर्णम्।)

संवाहकः — अज्ज दइश्शं। (अद्य दास्यामि।)

माथुरः — अहुणा पअच्छ। (अधुना प्रयच्छ।)

संवाहकः — दइश्शं। पशादं कलेहि। (दास्यामि। प्रसादं कुरु।)

माथुरः — अले, णं संपदं पअच्छ। (अरे, ननु सांप्रतं प्रयच्छ।)

संवाहकः — शिलु पडदि। (शिरः पतति।) (इति भूमौ पतति)

(उभौ बहुविधं ताडयतः)

माथुरः — एसु तुमं हु जूदिअरमंडलीए बद्धोसि। (एष त्वं खलु द्यूतकरमण्डल्या बद्धो सि।)

संवाहकः — (उत्थाय, सविषादम्) कधं जूदिअलपंडलीए बद्धो म्हि। ही, एशे अम्हाणं जूदिअलाणं अलंघणीए शमए। ता कुदो दइश्शं?। (कथं द्यूतकरमण्डल्या बद्धो स्मि। कष्टम्, एषो स्माकं द्यूतकराणामलंघनीयः समयः। तस्मात्कुतो दास्यामि?।)

माथुरः — अले, गंथु कुलुकुलु। (अरे, गण्डः क्रियतां क्रियताम्।)

संवाहकः — एव्वं कलेमि। (द्यूतकरमुपस्प श्य) अद्धं ते देमि, अद्धं मे मुंचदु। (एवं करोमि। अर्धं तुभ्यं ददामि, अर्धं मे मु चतु।)

द्यूतकरः — एव्वं भोदु। (एवं भवतु।)

संवाहकः — (सभिकमुपगम्य) अद्धश्श गंथु कलेमि। अद्धं पि मे अज्जो मुंचदु। (अर्धस्य गण्डं करोमि। अर्धमपि म आर्या मु चतु।)

माथुरः — को दोसु?। एव्वं भोदु। (को दोष? एवं भवतु।)

संवाहकः — (प्रकाशम्) अज्ज! अद्धे तुए मुक्के?। (आर्य! अर्धं त्वया मुक्तम्?।)

माथुरः — मुक्के। (मुक्तम्।)

संवाहकः — (द्यूतकरं प्रति) अद्धे तुए वि मुक्के?। (अर्धं त्वयापि मुक्तम्?।)

द्यूतकरः — मुक्के। (मुक्तम्।)

संवाहकः — संपदं गमिश्शं। (सांप्रतं गमिष्यामि।)

माथुरः — पअच्छ तं दशसुवण्णं, कहिं गच्छसि?। (प्रयच्छ तं दशसुवर्णम्। कुत्र गच्छसि?)।

संवाहकः — पेक्खध पेक्खध भट्टाअला! हा, संपदं ज्जेव्व एक्काह अद्धेगंथु कडे, अवलाह अद्धे मुक्के। तहवि मं अबलं शंपदं ज्जेव्व मग्गदि। (प्रेक्षध्वं प्रेक्षध्वं भट्टारकाः! हा, सांप्रतमेव एकस्यार्धे गण्डः कृतः, अपरस्यार्धं मुक्तम्। तथापि मामबलं सांप्रतमेव याचते।)

माथुरः — (ग हीत्वा) धुत्तु! माथुरु अहं णिउणु। एत्थ तुए ण अहं धुत्तिज्जामि। ता पअच्छ तं पेदंडआ! सव्वं सुवण्णं संपदं। (धूर्त! माथुरो हं निपुणः। अत्र नाहं धूर्तयामि। तत्प्रयच्छ तं लुप्तदण्डक, सर्वं सुवर्णं सांप्रतम्।)

संवाहकः — कुदो दइश्शं?। (कुतो दास्यामि?।)

माथुरः — पिदरु विक्किणिअ पअच्छ। (पितरं विक्रीय प्रयच्छ।)

संवाहकः — कुदो मे पिदा?। (कुतो मे पिता?।)

माथुरः — मादरु विक्किशिअ पअच्छ। (मातरं विक्रीय प्रयच्छ।)

संवाहकः — कुदो मे मादा?। (कुतो मे माता?।)

माथुरः — अप्पाणं विक्किणिअ पअच्छ। (आत्मानं विक्रीय प्रयच्छ।)

संवाहकः — कलेध पशादं। णेध मं लाजमग्गं। (कुरुत प्रसादम्। नयत मां राजमार्गम्।)

माथुरः — पसरु। (प्रसर।)

संवाहकः—एव्वं भोदु। (परिक्रामति) अज्जा! क्किणिध मं इमश्श शहिअश्श हत्थादो दशेहिं शुवण्णकेहिं। (द ष्टवा आकाशे) किं भणाघ-'किं कलइश्शशि' त्ति?। गेहे दे कम्मकले हुविश्शं। कधं? अदइअ पडिंवअणं गदे?। भोदु एव्वं। इमं अण्णं भणइश्शं। (पुनस्तदेव पठति) कधं एशे वि मं अवधीलिअ गदे। हा, अज्जाचालुदत्तस्स विहवे विहडिदे एशे वड्ढामि मंदभाए। (एवं भवतु। आर्याः! क्रीणीध्वं मामस्य सभिकस्य हस्ताद्दशभिः सुवर्णकैः। किं भणत-'कि करिष्यसि' इति?। गेहे ते कर्मकरो भविष्यामि। कथं अदत्त्वा प्रतिवचनं गतः?। भवत्वेवम्, इममन्यं भणिष्यामि। कथं एषो पि मामवधीर्य गतः?। हा, आर्यचारुदत्तस्य विभवे विघटिते एष वर्ते मन्दभाग्यः।)

माथुरः— णं देहि। (ननु देहि।)

संवाहकः— कुदो दइश्शं?। (कुतो दास्यामि?।) (इति पतति)

(माथुरः कर्षति)

संवाहकः — आज्जा! पलित्ताअध पलित्ताअध। (आर्याः! परित्रायध्वं परित्रायध्वम्।)

(ततः प्रविशति दर्दुरकः)

दर्दुरकः — भोः! द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम्।

न गणयति पराभवं कुतश्चिद्धरति ददाति च नित्यमर्थजातम्।

न पतिरिव निकाममायदर्शी विभववता समुपास्यते जनेन।।७।।

अर्थः—

जुआरी — मेरा दाँव है मेरा।

माथुर — नहीं, मेरा दाँव है, मेरा दाँव है।

संवाहक — (दूसरी ओर से अचानक पास आकर) दाँव तो मेरा है।

जुआरी — (भागा हुआ) पुरुष मिल गया।

माथुर — (पकड़ कर) अरे! दण्ड (हारा हुआ धन) न देने वाले, पकड़ लिये गये हो। तो वह दस सुवर्ण दो।

संवाहक — आज दूँगा।

माथुर — अभी दो।

संवाहक — दूँगा। दया करो।

माथुर — अरे! इसी समय दो।

संवाहक — शिर चक्कर खा रहा है (भूमि पर गिर पड़ता है)

(दोनों बहुत भाँति पीटते हैं)

माथुर – लो, अब तुम जुआरियों की टोली के द्वारा पकड़ लिये गये हो।

संवाहक – (उठकर, दुःख के साथ) क्या जुआरियों की टोली के द्वारा पकड़ लिया गया हूँ? खेद है, यह हम जुआरियों का न उल्लंघन करने के लायक नियम है। तो कहाँ से दूँ।

माथुर – अरे, प्रबन्ध करो अथवा शर्त मान लो।

संवाहक – ऐसा ही करता हूँ। (जुआरी को छूकर) आधा तुम्हें दिये देता हूँ। आधा तुम मेरे लिए छोड़ दो।

जुआरी – ऐसा ही सही।

संवाहक – (सभिक के पास जाकर) आधे की शर्त मानता हूँ अर्थात् आधा देने का वायदा करता हूँ। और आधा आप भी मेरे लिये छोड़ दें।

माथुर – क्या हर्ज है? ऐसा ही सही।

संवाहक – (प्रकट रूप में) आर्य! आधा आपने छोड़ दिया?

माथुर – छोड़ दिया।

संवाहक – (जुआरी से) आधा तुमने भी छोड़ दिया?

जुआरी – हाँ, छोड़ दिया।

संवाहक – (अच्छा तो) अब जाता हूँ।

माथुर – कहाँ जाते हो? दस सोने की मुद्रा दो।

संवाहक – महानुभावो! देखिये, देखिये। हाय! अभी अभी एक ने आधे की शर्त की है और दूसरे ने भी आधा छोड़ दिया है। फिर भी मुझ कमजोर से इसी समय ही माँग रहे हैं।

माथुर – (पकड़ कर) धूर्त! मैं चालाक 'माथुर' हूँ। यहाँ मैं धूर्तता नहीं कर रहा हूँ। इसलिये दण्ड न देने वाले (ठग)! वह सभी सोना इसी समय दो।

संवाहक – कहाँ से दूँगा?

माथुर – अपने पिता को बेच कर दो।

संवाहक – मेरे पिता कहाँ हैं?

माथुर – (तो फिर) माता को बेच कर दो।

संवाहक – मेरी माता कहाँ हैं?

माथुर – (तो) अपने को बेच कर दो।

संवाहक – मेरे ऊपर दया करें। मुझे बेचने के लिये सड़क पर ले चलिए।

माथुर – चलो।

संवाहक – ऐसा ही हो। (घूमता है) आर्यो! मुझको इस सभिक (जुआरियों के सरदार) के हाथ से दश सोने की मोहर देकर खरीद लीजिए। (आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो कि–''कौन सा काम करोगे?' तुम्हारे घर में काम करने वाला अर्थात् नौकर होऊँगा। क्या बिना उत्तर दिये ही चला गया? अच्छा जाने दो। इस दूसरे आदमी से कहूँगा। क्यों? यह भी मेरा अनादर करके चला गया? हाय! आर्य! 'चारुदत्त' के धन के नाश हो जाने पर मैं अभागा होकर जी रहा हूँ।

माथुर – दो न!

संवाहक – कहाँ से दूँ? (ऐसा कह कर गिर पड़ता है)।

(माथुर घसीटता है)

संवाहक – आर्यो! रक्षा करो, रक्षा करो।

(इसके बाद दर्दुरक प्रवेश करता है)

दर्दुरक – अरे! जुआ भी मनुष्य का विना सिंहासन का राज्य है।

अन्वयः– (द्यूतम्), कुतश्चित्, पराभवम्, न, गणयति, नित्यम्, अर्थ-जातम्, हरति, ददाति, च, निकामम्, आयदर्शी, राजा, इव, भववता, जनेन, समुपास्यते।।७।।

शब्दार्थः– द्यूतम् = जुआ, कुतश्चित् = किसी से अथवा कहीं से, पराभवम् = अपमान को, न गणयति = नहीं गिनता है, नित्यम् = नित्य ही, अर्थजातम् = धनको, हरति = लेता है, च = और, ददाति = देता है, निकामम् = काफी, आयदर्शी = लाभ दिखाने वाले, राजा इव = राजा की तरह, विभववता = धनी, जनेन = व्यक्ति के द्वारा, समुपास्यते = सेवित होता है।।

अर्थः– जुआ किसी से अपमान की परवाह नहीं करता है। यह नित्य ही धन लेता (पैदा करता) और देता है। राजा की भाँति काफी लाभ दिखलाने वाला जुआ बड़े-बड़े धनी आदमियों के द्वारा भी सेवित होता है अर्थात् खेला जाता है।।७।।

टीका– द्यूतम्, कुतश्चित् = कस्मादपि; पराभवम् = तिरस्कारम्; पराजयम् वा; न गणयति = कि चित्कर्त त्वेन न जानाति; नित्यम् = सर्वदा; अर्थजातम् = सम्पत्तिसमूहम्; हरति = उपार्जयति; ददाति = विजयशालिने अर्पयति च; निकामम् = पर्याप्तम्; आयम् = धनप्राप्तिम् दर्शयति = उपस्थापयतीत्यर्थः; राजा द्यूत च उद्दामधनोपार्जनं कुरुते; राजा इव = न पतिरिव; विभववता = ऐश्वर्यशालिना; अपि जनेन = लोकेन; समुपास्यते = सेव्यते।।७।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द प्रयुक्त है। छन्द का लक्षण-

''अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा''।।७।।

अपि च,–

द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव दारा मित्रं द्यूतेनैव।
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव सर्वं नष्टं द्यूतेनैव।।८।।

अन्वयः– द्यूतेन, एव, द्रव्यम्, लब्धम्, द्यूतेन, एव, दाराः, मित्रम्, (लब्धम्), द्यूतेन, एव दत्तम्, भुक्तम्, द्यूतेन, एव, सर्वम्, नष्टम्।।८।।

शब्दार्थः– द्यूतेन = जुआ से, एव = ही, द्रव्यम् = धन, लब्धम् = प्राप्त हुआ, द्यूतेन = जुआ से, एव = ही, दाराः = स्त्री (प्राप्त हुई), मित्रम् = मित्र (प्राप्त हुआ), द्यूतेन = जुआ से, एव = ही, दत्तम् = दिया गया भुक्तम् = खाया गया, द्यूतेन = जुआ से, एव = ही, सर्वम् = सब कुछ, नष्टम् = खतम हो गया।।

और भी-

अर्थः– जुआ से ही मैंने धन कमाया। स्त्री और मित्र जुए से ही प्राप्त किया। जुए से ही किसी को कुछ दिया और खाया। और जुए से ही अपना सब कुछ गवाँ दिया।।८।।

टीका— द्यूतेन = द्यूतक्रीडया एव; द्रव्यम् = धनम्; लब्धम् = उपार्जितम्; द्यूतेनैव दाराः = पत्नी; लब्धा मित्रम् = सुहृत्, लब्धम्। द्यूतेनैव दत्तम् = अन्यजनाय समर्पितम्; भुक्तम् = उपभुक्तम्; द्यूतेनैव सर्वम् = निखिलम् वस्तु; नष्टम् = नाशं गतम्।।८।।

इस श्लोक में विषम अलंकार एवम् विद्युन्माला छन्द है। छन्द का लक्षण-''मो मो गो गो विद्युन्माला।।८।।''

अपि च,—

त्रेताहृतसर्वस्वः पावरपतनाच्च शोषितशरीरः।
नर्दितदर्शितमार्गः कटेन विनिपातितो यामि।।९।।

अन्वयः— त्रेताहृतसर्वस्वः, पावरपतनात्, शोषितशरीरः, नर्दितदर्शितमार्गः, कटेन, विनिपातितः, यामि।।९।।

शब्दार्थः— त्रेताहृतसर्वस्वः = त्रेता ('तीया' नामक एक खास चाल) के द्वारा सब कुछ छीन लिया जाने वाला, पावरपतनात् = पावर ('दूआ' नामक एक प्रकार का दाँव) के गिरने से, शोषितशरीरः = सन्न (शुष्क) शरीरवाला, नर्दितदर्शितमार्गः = नर्दित ('नक्का' नामक एक तरह का दाँव) के द्वारा रास्ता दिखाया गया, कटेन = कट ('पूरा' नामक एक ढंग का दाँव) के द्वारा, विनिपातितः = विनष्ट किया गया, (मैं), यामि = जा रहा हूँ।।

और भी-

अर्थः— त्रेता ('तीया' नामक एक खास चाल = दाँव) के कारण सब कुछ छीन लिया जाने वाला, पावर ('दूआ' नाम एक प्रकार का दाँव) के द्वारा सन्न (शुष्क) शरीर खाला, नर्दित ('नक्का' नामक एक तरह का दाँव) के द्वारा (घर का) रास्ता दिखाया जाने वाला, कट ('पूरा' नामक एक ढंग का दाँव) के द्वारा मारा हुआ जा रहा हूँ अर्थात्! 'तीया' 'दूआ' और 'नक्का' के चक्कर में मैं पूर्ण रूप से मिट चुका हूँ।।९।।

टीका— त्रेतया = त्रेतापातेन हृतम् = अपहृतम् सर्वस्वम् = निखिलम् धनं यस्य सः; पावरस्य = 'दूआ' इति प्रसिद्धस्य पतनात् = पातात्; शोषितम् = शुष्कीकृतं शरीरम् = कायः यस्य सः; नर्दितेन = 'नान्दी' (नक्का) इति प्रसिद्धेन दर्शितः = निर्दिष्टः मार्गः = पन्थाः यस्य असौ; कटेन = 'पूरा' इति ख्यातेन; विनिपातितः = विध्वंसितः; अहमितिशेषः; यामि = गच्छामि।

इस श्लोक में आर्या छन्द है। छन्द का लक्षण-

''यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा त तीये पि।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थके प चदश सा र्या।।९।।''

(अग्रतो वलोक्य) अयमस्माकं पूर्वसभिको माथुर इत एवाभिवर्तते। भवतु, अपक्रमितुं न शक्यते। तदवगुण्ठयाम्यात्मानम्। (बहुविधं नाट्यं कृत्वा स्थितः, उत्तरीयं निरीक्ष्य)

अयं पटः सूत्रदरिद्रतां गतो ह्ययं पटश्छिद्रशतैरलंकृतः।
अयं पटः प्रावरितुं न शक्यते ह्ययं पटः संव त एव शोभते।।१०।।

अर्थः— (सामने की ओर देखकर) यह हमारा पहले का सभिक (जुआ कराने वाला) माथुर इसी ओर आ रहा है। अच्छा, भागा तो नहीं जा सकता। इसलिए अपने शरीर को ढक लेता हूँ। (कई तरह से शरीर ढकने का नाटक करके खड़ा हो जाता है, अपने दुपट्टे को देखकर)

अन्वयः— अयम्, पटः, सूत्रदरिद्रताम्, गतः, अयम्, पटः, हि, छिद्रशतैः, अलंकृतः, अयम्, पटः, प्रावरितुम्, न, शक्यते, अयम्, पटः, हि, संव तः, एव, शोभते।।१०।।

शब्दार्थः— अयम् = यह, पटः = कपड़ा, सूत्रदरिद्रताम् = सूतों की जीर्णता को, गतः = प्राप्त हो गया है, अयम् = यह, पटः = वस्त्र, हि = निश्चय ही, छिद्रशतैः = सैकड़ों छेदों से, अलंकृतः = परिपूर्ण है, अयम = यह, पटः = वस्त्र, प्रावरितुम् = शरीर ढकने के लिये, न = नहीं, शक्यते = समर्थ है, अयम् = यह, पटः = वस्त्र, हि = निश्चत ही, संव तः = लपेटा हुआ, एव = ही, शोभते = अच्छा लगता है।

अर्थः— यह कपड़ा जीर्ण हो गया है, यह कपड़ा बहुत से छेदों से परिपूर्ण है। यह वस्त्र शरीर ढकने लायक नहीं है। यह कपड़ा लपेटा हुआ रहने पर ही अच्छा लगता है।

टीका— अयम् = उत्तरीयाख्यः; पटः = वस्त्रम्; सूत्राणाम् = तन्तूनाम्, दरिद्रताम् = न्यूनताम् जीर्णताम् वा; गतः = प्राप्तः; अयम् = ग हीतः, पटः = दुकूलाख्यं वस्त्रम् हि = निश्चितम्, छिद्राणाम् = विवराणाम्, शतैः = बहुत्वैः इत्यर्थः, अलंकृतः = परिपूर्ण; इति भावः, अयं पटः; प्रावरितुम् = आच्छादयितु, न शक्यते = न समर्थ्यते; अयं पटः; हि = निश्चतम्; संव तः = वेष्टितः एव शोभते = भाति।

इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है। लक्षण- ''जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौः''।।१०।।

अथवा किमयं तपस्वी करिष्यति?। यो हि

पादेनैकेन गगने द्वितीयेन च भूतले।।
तिष्ठाम्युल्लम्बितस्तावद्यावत्तिष्ठति भास्करः।।११।।

अर्थः— अथवा यह तुच्छ (माथुर मेरा) कर ही क्या सकता है? जो कि मैं-

अन्वयः— एकेन, पादेन, गगने, द्वितीयेन, च, भूतले, उल्लम्बितः, तावत्, तिष्ठामि, यावत्, भास्करः, तिष्ठति।।११।।

शब्दार्थः— एकेन = एक, पादेन = पैर से, गगने = आकाश में, द्वितीयेन = दूसरे से, भूतले = जमीन पर, उल्लम्बितः = लटका हुआ, तावत् = तब तक, तिष्ठामि = ठहरा हूँ, ठहर सकता हूँ, यावत् = जब तक, भास्करः = सूर्य, तिष्ठति = रहा है।

अर्थः— एक पैर आसमान में करके और दूसरा पैर जमीन पर रखकर तब तक लटका हुआ रह सकता हूँ जब तक सूरज रहता है। (अर्थात् जब मैं समूचे दिन इतने दुःखदायी काम को भी कर सकता हूँ, तो 'माथुर' से डरने की क्या जरूरत? वह इससे और कठोर दण्ड क्या देगा?)।।११।।

टीका— एकेन पादेन = चरणेन; गगने = आकाशे; द्वितीयेन = अन्येन; चकारः चरणस्मारकः; भूतले = प थिव्याम्; उल्लम्बितः = उर्ध्वं लम्बमानः = सन् इत्यर्थः; तावत् = तावत्कालम्; तिष्ठामि = स्थितः भवितुं शक्नोमि इत्यर्थः; यावत् = यावत्कालम्; भास्करः = सूर्यः; तिष्ठति = अस्तं न गच्छति इत्यर्थ; अतः मम माथुरसकाशात् भयं नास्ति इति भावः।।११।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण- ''युजोश्तुर्थतो येन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।।११।।

माथुरः — दापय दापय। (दापय दापय।)

संवाहकः — कुदो दइश्शं?। (कुतो दास्यामि?।)

(माथुरः कर्षति)

दर्दुरकः — अये, किमेतदग्रतः?। (आकाशे) किं भवानाह—'अयं द्यूतकरः सभिकेन खलीक्रियते, कश्चिन्मोचयति' इति१। नन्वयं दर्दुरो मोचयति। (उपस त्य) अन्तरमन्तरम्। (द ष्ट्वा) अये, कथं माथुरो धूर्तः?। अयमपि तपस्वी संवाहकः,-

यः स्तब्धं दिवसान्तमानतशिरो नास्ते समुल्लम्बितो
यस्योद्घर्षणलोष्टकैरपि सदा प ष्ठे न जातः किणः।
यस्यैतच्च न कुक्कुरैरहरहोजंघान्तरं चर्व्यते
तस्यात्यायतकोमलस्य सततं द्यूतप्रसंगेन किम्?।।१२।।

अर्थः—

माथुर — दिलाओ, दिलाओ।

संवाहक — कहाँ से दूँ?

(माथुर घसीटता है)

दुर्दुरक- अरे! यह सामने क्या (हो रहा) है? (आकाश की ओर) क्या कहा आपने कि 'यह जुआरी जुआ करानेवाले (सभिक) के द्वारा मार-पीट कर अपमानित किया जा रहा है, और कोई छुड़ाता भी नहीं है।' तो लो यह 'दुर्दुरक' छुड़ाता है। (समीप जाकर) बस, बस हटो, हटो। (देखकर)। अरे क्या यह धूर्त 'माथुर' है, और यह (दूसरा) बेचारा 'संवाहक' है,-

अन्वयः— यः, दिवसान्तम्, आनतशिरः, (सन्), स्तब्धम्, समुल्लम्बितः, न, आस्ते, यस्य, प ष्ठे, उद्घर्षणलोष्ठकैः, अपि, सदा, किणः, न, जातः, यस्य, च, एतत्, जंघान्तरम्, कुक्कुरैः, अहः अहः, न, चर्व्यते, अत्यायतकोमलस्य, तस्य, सततम्, द्यूतप्रसंगेन, किम?।।१२।।

शब्दार्थः— यः = जो व्यक्ति, दिवसान्तम् = दिन भर, आनतशिरः = नीचे शिरवाला, सन् = होता हुआ, स्तब्धम् = चुपचाप, समुल्लम्बितः = लटका हुआ, न नहीं, आस्ते = रहता, यस्य = जिसकी, प ष्ठे = पीठ में, उद्घर्षणलोष्ठकैः = घसीटने पर ढेलों के द्वारा, अपि = भी, सदा = हमेशा, किणः = घठ्ठा, न = नहीं, जातः = पड़ा है, यस्य = जिसका, एतत् = यह, जंघान्तरम् = जाँघ का भीतरी भाग, कुक्कुरैः = कुत्तों के द्वारा, अहः अहः = प्रतिदिन, न चर्व्यते = नहीं काटा जाता, अत्यायतकोमलस्य = अत्यन्त कोमल, तस्य = उस व्यक्ति के, द्यूतप्रसंगेन = जुआ खेलने से, किम् = क्या प्रयोजन?।।

अर्थः— जो व्यक्ति मेरे समान दिन भर नीचे शिर करके चुपचाप लटका हुआ नहीं रह सकता। जिसकी पीठ पर (पैसा न दे सकने पर दूसरे जुआरियों के द्वारा) नित्य घसीटने से ढेलों के द्वारा चोट का चिह्न भी नहीं पड़ा है। (पैसा न दे सकने के कारण भागने पर जुआरियों के द्वारा दौड़ाये गये) कुत्तों से जिसकी जांघ का यह भीतरी हिस्सा प्रतिदिन काटा नहीं जाता। ऐसे अत्यन्त कोमल व्यक्ति को निरन्तर जुआ खेलने से क्या प्रयोजन? अर्थात् जुआ खेलना आसान काम नहीं है। इसमें कठिन से कठिन दुःख भोगने पड़ते हैं। अतः कोमल आदमियों को इधर नहीं आना चाहिए)।।१२।।

टीका— यः = द्यूतकरः जनः; दिवसान्तम् = दिनावसानपर्यन्तम्; सन्ध्यां यावदित्यर्थः; आनतम् = अधोलम्बितम् शिरः = मस्तकम् यस्य सः, ताद शः सन्; स्तब्धम् = निश्चलं यथा तथा समुल्लम्बितः = उच्चस्थानात् अधोलम्बितः; न आस्ते = न तिष्ठति, न स्थातुं शक्नोति इत्यर्थः;

यस्य = जनस्य च, एतत् = इदम्; जंघान्तरम् = जंघयोः अन्तरालम्; कुक्कुरैः = श्वभिः; अहरहः = प्रतिदिनम्, न चर्व्यते = न खाद्यते; अत्यायतकोमलस्य = अतिशयकोमलस्य; तस्य द्यूतकरस्य; द्यूतप्रसंगेन = द्यूतक्रीडनेन; किम् = किं प्रयोजनम्? ताद शेन जनेन द्यूतकरेण न भाव्यमिति भावः।।१२।।

इस श्लोक में काव्यलिंगालंकार तथा शादूलविक्रीडित छन्द है।

भवतु, माथुरं तावत्सान्त्वयामि। (उपगम्य) माथुर! अभिवादये।

(माथुरः प्रत्यभिवादयते)

दर्दुरकः — किमेतत्?।

माथुरः — अअं दशसुवण्णं धालेदि। (अयं दशसुवर्णं धारयति।)

दर्दुरकः — ननु कल्यवर्तमेतत्।

माथुरः — (दर्दुरस्य कक्षातललुण्ठीकृतं पटमाकृष्य) भट्टा! पश्शत पश्शत। जज्जरपडप्पावुदो अअं पुलिसो दशसुवण्णं कल्लवत्तं भणादि। (भर्त्तारः! पश्यत पश्यत। जर्जरपटप्राव तो यं पुरुषो दशसुवर्णं कल्यवर्तं भणति।

दर्दुरकः — अरे मूर्ख! नन्वहं दशसुवर्णान्कटकरणेन प्रयच्छामि। तत्किं यस्यास्ति धनं स किं क्रोडे कृत्वा दर्शयति?। अरे,

दुर्वणो सि विनष्टो सि दशस्वर्णस्य कारणात्।
प चेन्द्रियसमायुक्तो नरो व्यापाद्यते त्वया।।१३।।

अर्थः— अच्छा, तो 'माथुर' को शान्त करता हूँ। (पास में जाकर) माथुर प्रणाम करता हूँ।

(माथुर भी बदले में प्रणाम करता है)

दर्दुरक — यह क्या है?

माथुर — यह मेरा दश स्वर्णमुद्राओं का ऋणी है।

दर्दुरक — अरे! इतना धन तो कलेवा की भाँति तुच्छ है।

माथुर — (दर्दुरक की काँख में लपेट कर दबाए हुए कपड़े को खींच कर) महानुभावों! देखिए, देखिए। फटे-पुराने कपड़े से ढका हुआ यह व्यक्ति सोने की दस मोहरों को कलेवा की तरह (तुच्छ) बतला रहा है।

दर्दुरक — अरे मूर्ख! सोने की दस मुहरे तो मैं एक दाँव से (एकबार कौड़ी अथवा पाशा फेंक कर) दे सकता हूँ। तो जिसके पास धन होता है क्या वह उसको (धन को) गोदी में रख कर (संसार को) दिखलाता फिरता है?

अन्वयः— (हे माथुर! त्वम्), दुर्वर्णः, असि, विनष्टः, असि, (यत्) त्वया, दशस्वर्णस्य, कारणात्, प चेन्द्रियसमायुक्तः, नरः, व्यापाद्यते।।१३।।

शब्दार्थः— (हे माथुर! त्वम् = तुम), दुर्वर्णः = नीच, असि = हो, विनष्टः = पतित, असि = हो, (यत् = जो कि) त्वया = तुम्हारे द्वारा, दशस्वर्णस्य = सोने की दश मोहरों के, कारणात् = कारण से, प चेन्द्रियसमायुक्तः = पाँच इन्द्रियों से युक्त, नरः = मनुष्य, व्यापाद्यते = मारा जा रहा है।

अरे,-

अर्थः— माथुर! तुम नीच एवं पतित हो जो कि सोने की दस मोहरों के लिए पाँच इन्द्रियों से युक्त मनुष्य को मार रहे हो।।१३।।

टीका— हे माथुर! त्वं दुर्वर्णः-दुष्टः = अधमः वर्णः = जातिः यस्य सः; हीनजातिः इत्यर्थः; असि = वर्तसे; विनष्टः = पतितः; असि; यत् त्वया = माथुरेण; दशस्वर्णस्य = दशानां स्वर्णानां समाहारः तस्य; कारणात् = निमित्तात्; प चभिः इन्द्रियैः = नेत्रादिभिः करणैः समायुक्तः = संयुक्तः; नरः = पुरुषः; व्यापाद्यते = हन्यते।।१३।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा अनुष्टप् छन्द है।

माथुरः — भट्टा! तुए दशसुवण्णु कल्लवत्तु। मए एसु विहवु। (भर्तः! तव दशसुवर्णः कल्यवर्तः। ममैष विभवः)

दर्दुरकः — यद्येवम्, श्रूयतां तर्हि। अन्यांस्तावद्दशसुवर्णानस्यैव प्रयच्छ। अयमपि द्यूतं शीलयतु।

माथुरः — तत्किं भोदु?। (तत्किं भवतु?।)

दर्दुरकः — यदि जेष्यति तदा दास्यति।

माथुरः — अह ण जिणादि?। (अथ न जयति?।)

दर्दुरकः — तदा न दास्यति।

माथुरः — अह ण जुत्तं जप्पिदुं। एव्वं अक्खंतो तुमं पअच्छ धुत्तआ!। अहं पि णाम माथुरु धुत्तु जूदं मित्था आदंसआमि। अण्णस्स वि अहं ण बिभेमि। धुत्ता! खंडिअवुत्तोसि तुमं। (अथ न युक्तं जल्पितुम्। एवमाचक्षाणस्त्वं प्रयच्छ धूर्तक!। अहमपि नाम माथुरो धूर्तो द्यूतं मिथ्या दर्शयामि। अन्यस्मादप्यहं न बिभेमि। धूर्त! खण्डितव त्तो सि त्वम्।)

दर्दुरकः — अरे, कः खण्डितव त्तः?।

माथुरः — तुमं हु खंडिअवुत्तो। (त्वं खलु खण्डितव त्तः।)

दर्दुरकः — पिता ते खण्डितव त्तः। (संवाहकस्यापक्रमितुं संज्ञां ददाति)

माथुरः — गोसाविआपुत्ता! णं एव्वं ज्जेव जूदं तुए सेविदं?। (वेश्यापुत्र! नन्वेवमेव द्यूतं त्वया सेवितम्?।)

दर्दुरकः — मयैवं द्यूतमासेवितम्।

माथुरः — अले संवाहआ! पअच्छ तं दशसुवण्णं। (अरे संवाहक! प्रयच्छ तद्दशसुवर्णम्।)

संवाहकः — अज्ज दइश्शं, दाव दइश्शं,। (अद्य दास्यामि, तावद्दास्यामि।)

(माथुरः कर्षति)

दर्दुरकः — मूर्ख! परोक्षे खलीकर्तुं शक्यते, न ममाग्रतः खलीकर्तुम्।

(माथुरः संवाहकमाकृष्य घोणायां मुष्टिप्रहारं ददाति, संवाहकः सशोणितं मूर्च्छां नाटयन्भूमौ पतति, दर्दुरक उपस त्यान्तरयति; माथुरो दर्दुरकं ताडयति दर्दुरको विप्रतीषं ताडयति)

माथुरः — अले अले दुष्ट छिण्णालिआपुत्तआ! फलं पि पाविहसि। (अरे अरे दुष्ट पुंश्चलीपुत्रक! फलमपि प्राप्स्यसि।)

दर्दुरकः — अरे मूर्ख! अहं त्वया मार्गगत एव ताडितः। श्वो यदि राजकुले ताडयिष्यिसि, तदा द्रक्ष्यसि।

माथुरः — एसु पेक्खिस्सं। (एष प्रेक्षिष्ये।)

दर्दुरकः — कथं द्रक्ष्यसि?।

माथुरः — (प्रसार्य चक्षुषी) एव्वं पेक्खिस्सं। (एवं प्रेक्षिष्ये।)

(दर्दुरको माथुरस्य पांशुना चक्षुषी पूरयित्वा संवाहकस्यापक्रमितुं संज्ञां ददाति, माथुरो क्षिणी निग ह्य भूमौ पतति, संवाहको पक्रामति)

दर्दुरकः — (स्वगतम्) प्रधानसभिको माथुरो मया विरोधितः। तन्नात्र युज्यते स्थातुम्। कथितं च मम प्रियवयस्येन शर्विलकेन, यथा किल-'आर्यकनामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति।' इति। सर्वश्चास्मद्विधो जनस्तमनुसरति। तदहमपि तत्समीपमेव गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः)

संवाहकः — (सत्रासं परिक्रम्य, द ष्ट्वा) एशे कश्श वि अणपावुदपक्खदुयालके गुहे। ता एत्थ पविशिश्शं। (वेशं रूपयित्वा, वसन्तसेनामालोक्य) अज्जे! शलणागदे म्हि। (एतत्कस्याप्यनपाव तपाद्वारकं गेहम्। तदत्र प्रविशामि। आर्ये! शरणागतो स्मि।)

वसन्तसेना — अभअं सरणागदस्स। अ जे! दक्केहि पक्खदुआरअं। (अभयं शरणागतस्य। चेटि! पिध ोहि पक्षद्वारकम्।)

(चेटी तथा करोति)

वसन्तसेना — कुदो दे भअं?। (कुतस्ते भयम्?।)

संवाहकः — अज्जे! धणिकादो। (आर्ये! धनिकात्।)

वसन्तसेना — हज्जे! संपदं अवावुणु पक्खदुआरअं। (चेटि! सांप्रतमपाव णु पक्षद्वारकम्।)

संवाहकः — (आत्मगतम्) कधं धणिकादो तुलिदं शे भअकालणं?। शुट्ठु खु एवं वुच्चदि,-

जे अत्तबलं जाणिअ भालं तुलिदं वहेइ माणुश्शे।
ताहं खलणं ण जायदि ण अ कंतालगडे विवज्जदि।।१४।।

एत्थ लक्खिदम्हि। (कथं धनिकात्तुलितमस्या भयकारणम्? सुष्ठु खल्वेवमुच्यते,-

य आत्मबलं ज्ञात्वा भारं तुलितं वहति मनुष्यः।
तस्य स्खलनं न जायते न च कान्तारगतो विपद्यते।।

अर्थः—

माथुर — महाराज! सोने की दस मोहरें आप के लिए तुच्छ हैं। किन्तु मेरे लिये यही धन हैं।

दर्दुरक — यदि ऐसी बात है तो सुनो। सोने की दस मोहरें इसको और दो। यह भी फिर जुआ खेले।

माथुर — उससे क्या होगा।

दर्दुरक — यदि जीतेगा तो दे देगा।

माथुर — यदि नहीं जीतेगा?

दर्दुरक — तब नहीं देगा।

माथुर— और बकवाद करना ठीक नहीं है। रे धूर्त! ऐसा कहते हो तो तुम्हीं दे दो। मैं भी धूर्त माथुर हूँ। छल से जुआ खेलता हूँ। दूसरे किसी से भी नहीं डरता हूँ। धूर्त! तुम बेईमान (खण्डितचरित्र) हो।

दर्दुरक – अरे! कौन बेईमान है?

माथुर – तुम्हीं बेईमान (चरित्रहीन) हो।

दर्दुरक – तेरा बाप बेईमान है। ('संवाहक' को भागने के लिये इशारा करता है)।

माथुर – वेश्या के बच्चे! क्या तुमने इसी तरह से जुआ खेला है?

दर्दुरक – हाँ, मैंने इसी तरह से जुआ खेला है।

माथुर – अरे संवाहक! सोने की दस मोहरों को दो।

संवाहक – आज दूँगा। तब तक दे दूँगा।

(माथुर घसीटता है)

दर्दुरक – मूर्ख! मेरे न रहने पर ही तुम इसको सता (पीट) सकते हो, मेरे सामने नहीं।

('माथुर' 'संवाहक' को खींचकर उसकी नाक पर मुक्का मारता है। 'संवाहक' खून से लथपथ होकर के मूर्च्छा का अभिनय करता हुआ भूमि पर गिर पड़ता है। 'दर्दुरक आगे बढ़कर बीच-बचाव करता है। 'माथुर' 'दर्दुरक' को मारता है। बदले में 'दर्दुरक' भी पीटता है)

माथुर – अरे रे दुष्ट! छिनार के बच्चे (कुलटापुत्र)! (इसका) फल भी पाओगे।

दर्दुरक – अरे मूर्ख! तुमने बिना कसूर मुझे रास्ते चलते मारा है। कल यदि राजदरबार में मारोगे तो देखना।

माथुर – अच्छा, देख लूँगा।

दर्दुरक – कैसे देखोगे?

माथुर – (आँखें फाड़कर) ऐसे देखूँगा।

('दर्दुरक' धूल से 'माथुर' की आँखों को भर कर 'संवाहक' को भागने का इशारा करता है। 'माथुर' आँखें थाम कर जमीन पर गिरता है। 'संवाहक' भागता है)

दर्दुरक – (अपने आप) मैंने प्रधान सभिक 'माथुर' से विरोध कर लिया है। इसलिये यहाँ ठहरना ठीक नहीं है। मेरे प्रिय मित्र 'शर्विलक' ने कहा भी है कि-'सिद्ध के आशीर्वाद अथवा भविष्यवाणी से 'आर्यक' नाम वाला अहीर का पुत्र राजा होगा। और हमारे जैसे सभी व्यक्ति उसके पीछे हैं। तो मैं भी उसके पास ही चलूँगा। (ऐसा विचार कर चला जाता है)।

संवाहक— (भयपूर्वक घूमकर और देखकर) यह किसी का घर है जिसकी खिड़की खुली हुई है। तो इसमें घुसता हूँ। (घुसने का अभिनय करके 'वसन्तसेना' को देख कर) आर्ये! आप की शरण में आया हुआ हूँ।

वसन्तसेना— शरण में आये हुए तुम्हारे लिए किसी बात का डर नहीं है। चेटी! खिड़की की किवाड़ बन्द कर दो।

(चेटी वैसा ही करती है)

वसन्तसेना – किससे तुम्हें डर है?

संवाहक – श्रीमती जी! धनी से।

वसन्तसेना – चेटी! अब किवाड़ खोल दो।

संवाहक – (अपने आप) क्या मेरे ही समान इसको भी धनी व्यक्ति से भय लग रहा है? वास्तव में यह ठीक ही कहा जाता है।

अन्वयः—यः; मनुष्यः, आत्मबलम्, ज्ञात्वा, तुलितम्, भारम्, वहति, तस्य, स्खलनम्, न, जायते, कान्तारगतः; च, (सः) न, विपद्यते।।१४।।

शब्दार्थः— यः = जो, मनुष्यः = मनुष्य, आत्मबलम् = अपने बल को, ज्ञात्वा = समझ कर, तुलितम् = (उसके) अनुसार, भारम् = बोझको, वहति = ढोता है, तस्य = उसका, स्खलनम् = पतन, न = नहीं, जायते = होता, कान्तारगतः = गहनवन अथवा दुर्गम मार्ग में गया हुआ, च = भी, (सः = वह) न = नहीं, विपद्यते = नष्ट होता है।।

अर्थः— जो मनुष्य अपनी ताकत का अनुमान करके भार उठाता है, वह कभी भी गड्ढे में नहीं गिरता है। और न तो दुर्गम रास्ते पर चलने से नष्ट ही होता है। अर्थात् यदि मैंने अपने धन का ध्यान करके जुआ खेला होता तो यह हालत न होती।।१४।।

टीका— यः मनुष्यः = पुरुषः; आत्मनः = स्वस्य बलम् = सामर्थ्यम्; ज्ञात्वा = विचार्य; तुलितम् = स्वानुरूपम्; भारम् = गुरुद्रव्यमित्यर्थः; वहति = धारयति; तस्य = जनस्य; स्खलनम् = पतनम्, न जायते = न भवति; कान्तारे = दुर्गममार्गे, गहने वने वा; गतः = प्राप्तः; च = अपि; सः न विपद्यते = न विपत्तिमवाप्नोति।।१४।।

इस श्लोक में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार तथा आर्या छन्द है।

अत्र लक्षितो स्मि।

माथुरः – (अक्षिणी प्रम ज्य, द्यूतकरं प्रति) अले, देहि देहि। (अरे, देहि देहि।)

द्यूतकरः – भट्टा! जावदेव अम्हे दद्दरेण कलहायिदा तावदेव सो गोहो अवक्कंतो। (भर्तः! यावदेव वयं दर्दुरेण कलहायितास्तावदेव स पुरुषो पक्रान्तः।)

माथुरः – तस्स जूदकलस्स मुट्टिप्पहालेण णासिका भग्गा आसि। ता यहि, रुहिरपहं अणुसरेम्ह। (तस्य द्यूतकरस्य मुष्टिप्रहारेण नासिका भग्नासीत्। तदेहि, रुधिरपथमनुसरावः।)

(अनुस त्य)

द्यूतकरः – भट्टा! वसंतसेणागेहं पविट्टो सो। (भर्तः! वसन्तसेनाग हं प्रविष्टः सः।)

माथुरः – भूदाइं सुवण्णाइं। (भूतानि सुवर्णानि।)

द्यूतकरः – लाअउलं गदुअ णिवेदेम्ह। (राजकुलं गत्वा निवेदयावः।)

माथुरः – एसो धुत्तो अदो णिक्कमिअ अण्णत्त गमिस्सदि। ता उअरोधेणेब्व गेण्हेम्ह। (एष धूर्तो तो निष्क्रम्यान्यत्र गमिष्यति। तदुपरोधेनैव ग ह्णीवः।)

(वसन्तसेना मदनिकायाः सञ्ज्ञां ददाति)

मदनिकाः – कुदो अज्जो? को वा अज्जो? कस्स वा अज्जो?। किं वा वित्तिं अज्जो उवजीअदि? कुदो वा भअं?। (कुत आर्यः? को वार्यः? का वा व त्तिमार्य उपजीवति? कुतो वा भयम्?।)

संवाहकः — शुणादु अज्जआ। अज्जए? पाडलिउत्ते मे जन्मभूमी। गहवइदालके हग्गे। संवाहअश्श वित्तिं उवजीआमि। (श्र णोत्वार्या। आर्ये! पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः। ग हपतिदारको हम्। संवाहकस्य व त्तिमुपजीवामि।)

वसन्तसेना — जुउमारा खु कला सिक्खिना अज्जेण। (सुकुमारा खलु कला शिक्षितार्येण।)

संवाहकः — अज्जए! कलेत्ति शिक्खिदा, आजीमिआ दाणिं संवुत्ता। (आर्ये! कलेति शिक्षिता, आजीविकेदानीं संव त्ता।)

चेटी — अदिणिब्विण्णं अज्जेण पडिवअणं दिण्णं। तदो तदो?। (अतिनिर्विण्णमार्येण प्रतिवचनं दत्तम्। ततस्ततः?।)

संवाहकः — तदो अज्जए! एशे णिजगेहे आहिंडकाणं मुहादो शुणिअ अपुव्वदेशदंशणकुदूहलेण इह आगदे। इह वि मए पविशिअ उज्जइणिं एक्के अज्जे शुश्शूशिदे। जे तालिशे पिअडंशणे पिअवादी, दइअ ण कित्तेदि, अवकिदं विशुमलेदि। किं बहुणा पलंतेण। दक्खिणाए पलकेलअं विअ अत्ताणअं अवगच्छदि, शलणागअवच्छले अ। (तत आर्ये! एष निजग ह आहिण्डकानां मुखाच्छ्रुत्वा पूर्वदेशदर्शनकुतूहलेनेहागतः। इहापि मया प्रविश्योज्जयिनीमेक आर्यः शुश्रूषितः। यस्ताद शः प्रियदर्शनः प्रियवादी, दत्त्वा न कीर्तयति, अपकृतं विस्मरति। किं बहुना प्रलपितेन। दक्षिणतया परकीयमिवात्मानमवगच्छति, शरणागतवत्सलश्च।)

चेटीः — को दाणिं अज्जआए मणोरहाहुत्तस्स गुणाइं चोरिअ उज्जइणिं अलंकरेदि?। (क इदानीमार्याया मनोरथाभिमुखस्य गुणांश्चोरयित्वोज्जयिनीमलंकरोति?।)

वसन्तसेना — साहु ह जे! साहु; मए वि एव्वं ज्जेव्व हिअएण मंतिदं। (साधु चेटि! साधु। मयाप्येवमेव ह्रदयेन मन्त्रितम्।)

चेटी — अज्ज! तदो तदो?। (आर्य! ततस्ततः?।)

संवाहकः — अज्जए! शे दाणिं अणुक्कोशकिदेहिं पदाणेहिं...। (आर्ये! स इदानीमनुक्रोशकृतैः प्रदानैः....।)

वसन्तसेना — किं उवरदविहवो संवुत्तो?। (किमुपरतविभवः संव त्तः?।)

संवाहकः — अणाचक्खिदे ज्जेव्व कधं अज्जआऐ विण्णादं?। (अनाख्यातमेव कथमार्यया विज्ञातम्?।)

वसन्तसेना — किं एत्थ जाणीअदि?। दुल्लहा गुणा विहवा अ। अपेएसु तडाएसु बहुदरं उदअं भोदि। (किमत्र ज्ञातव्यम्?। दुर्लभा गुणा विभवाश्च। अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति।)

चेटी — अज्ज! किंणामधेओ खु सो?। (आर्य! किंनामधेयः खलु सः)

संवाहकः — अज्जे! के दाणिं तश्श भूदलमिअंकश्श णामं ण जाणादि। शो खु शेट्ठिचत्तले पडिवशदि। शलाहणिज्जणामघेए अज्जचालुदत्ते णाम। (आर्ये! क इदानीं तस्य भूतलम गांकस्य नाम न जानाति। स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति। श्लाघनीयनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम।)

वसन्तसेना — (सहर्षमासनादवतीर्य) अज्जस्स अत्तणकेरकं एदं गेहं?। हज्जे! देहि से आसणं। तालवेंटअं गेण्ह। परिस्समो अज्जस्स बाधेदि।

(आर्यस्यात्मीयमेतन्देहम्। चेटि! देह्यस्यासनम्। तालव न्तकं ग हाण। परिश्रम आर्यस्य बाधते।)

(चेटी तथा करोति)

संवाहक – (स्वगतम्) कधं अज्जचालुदत्तस्स णामशंकित्तणेण ईदिने मे आदले। शाहु अज्जचालुदत्तो! शाहु, पुहवीए तुमं एक्के जीवशिऋ शेषे उण जणे शशदि। (इति पादयोर्निपत्य) भोदु अज्जए! भोदु; आशणे णिशीददु अज्जआ। (कथमार्यचारुदत्तस्य नामसंकीर्तनेनेद शो म आदरः?! साधु आर्यचारुदत्त! साधु, प थिव्यां त्वमेको जीवसि। शेषः पुनर्जनः श्वसिति। भवत्वार्ये! भवतु; आसने निषीदत्वार्या।)

वसन्तसेना – (आसने समुपविश्य) अज्ज! कुदो सो धणिओ?। (आर्य! कुतः स धनिकः?।)

संवाहकः –

शक्कालधणे खु शज्जणे काह ण होइ चलाचते धणे।
जे पूइदुं पि ण जाणादि शे पूआविशेशं पि जाणादि।।१५।।

(सत्कारधनः खलु सज्जनः कस्य न भवति चलाचलं धनम्।
यः पूजयितुमपि न जानाति स पूजाविशेषमपि जानाति।।)

अर्थः– माथुर – (आँखें पोंछकर, जुआरी से) अरे! दो, दो।

जुआरी– स्वामिन्! जैसे ही हम लोग 'दर्दुरक' के साथ झगड़ा करने में उलझे हुए थे, तभी वह आदमी भाग गया।

माथुर – उस जुआरी की नाक घूँसे के प्रहार से टूट गयी थी। तो आओ, खून गिरने के रास्ते का पीछा करें।

(अनुसरण करके)

जुआरी– स्वामिन्! वह 'वसन्तसेना' के घर में घुस गया है।

माथुर– (तब तो) मोहरें गयीं।

जुआरी – तो राजकुल में चलकर निवेदन करते हैं।

माथुर – यह धूर्त संवाहक यहाँ से निकलकर दूसरी जगह भाग जायगा। इसलिये घेरकर ही पकड़ लें।

('वसन्तसेना' 'मदनिका' को इशारा करती है)

मदनिका–आप कहाँ से आ रहे हैं? अथवा आप कौन हैं? आप किसके पुत्र हैं? आप कौन सा व्यवसाय करके जीवन-यापन करते हैं? आप को किससे डर है?।

संवाहक–आर्या सुनें। आर्ये! पटना मेरी जन्म-भूमि है। मैं एक ग हस्थ का लड़का हूँ। देह दबा-दबा कर मैं अपनी जीविका चलाता हूँ।

वसन्तसेना– वास्तव में आपने बड़ी ही कोमल कला सीखी है।

संवाहक – आर्ये! पहले तो मैंने इसे कला मान कर ही सीखा था। किन्तु अब तो यह जीविका बन गयी है।

चेटी – आपने बहुत उदास जबाव दिया है। इसके बाद?

अर्थः–

संवाहक— इसके बाद आर्ये! अपने घर पर देश-विदेश में घूमने वालों के मुँह से इस देश के बारे में सुनकर अद्‌भुत देश देखने की इच्छा से यहाँ आया। यहाँ भी 'उज्जैन' में आकर मैंने एक सज्जन व्यक्ति की सेवा की। जो बड़े ही सुन्दर, मीठा बोलनेवाले, किसी को कुछ देकर भी उसके बारे में न कहने वाले तथा अपने साथ किये गये बुरे बर्ताव को भुला देने वाले हैं। अधिक कहने से क्या लाभ? सज्जनता के कारण वे अपने आपको भी दूसरों का सा समझते हैं। और शरण में आये हुए लोगों को प्रेम करते हैं।

चेटी — ऐसा कौन है जो आजकल आर्या वसन्तसेना के अभिलषित प्रिय आर्य चारुदत्त के गुणों को चुरा कर 'उज्जयिनी' को सुशोभित कर रहा है? अर्थात् आर्य 'चारुदत्त' के समान यहाँ दूसरा सज्जन कौन है?।

वसन्तसेना — वाह दासी! वाह! मैं भी यही मन में सोच रही थी।

चेटी — आर्य! उसके बाद?

संवाहक— आर्ये! वे इस समय दयावश किये गये दान से....।

वसन्तसेना— क्या निर्धन हो गये हैं?।

संवाहक— बिना कहे ही आप कैसे समझ गयीं?

वसन्तसेना— इसमें जानना ही क्या है? गुणों एवं धन का एक स्थान पर मिलना कठिन है। जिन तालाबों का पानी पीने लायक नहीं होता उनमें जल अधिक रहता है।

चेटी— आर्य! उनका नाम क्या है?

संवाहक— आर्ये! इस समय उस प थिवी के चन्द्रमा अर्थात् चन्द्रमा की भाँति अपने गुणों से प थिवी पर प्रकाशित होने वाले का नाम कौन नहीं जानता? वे सेठों के चौक में रहते हैं। वे सराहनीय नाम वाले आर्य 'चारुदत्त' हैं।

वसन्तसेना— (बड़ी प्रसन्नता के साथ आसन से उतरकर) यह आप का अपना घर है। चेटी! बैठने के लिए आसन दो। (डुलाने के लिए) पंखा ले लो। आर्य को थकावट परेशान कर रही है।

(चेटी वैसा ही करती है)

संवाहक— (अपने आप) क्या आर्य 'चारुदत्त' का नाम लेने भर से ही मेरा इतना आदर हो रहा है? धन्य हो आर्य 'चारुदत्त'! इस प थिवी पर वास्तव में तुम अकेले जी रहे हो। बाकी मनुष्य तो केवल साँस लेते हैं। (पैरों पर गिर कर) बस करो आर्ये! बस। आर्ये! आप आसन पर बैठें।

वसन्तसेना— (आसन पर बैठकर) श्रीमान् जी! वह आर्य चारुदत्त धनी कैसे हों?

अन्वयः— सत्कारधनः, सज्जनः, (भवति), खलु, कस्य, धनम्, चलाचलम्, न, भवति?, यः, पूजयितुम्, अपि, न, जानाति, अपि, सः, पूजाविशेषम्, जानाति।।१५।।

शब्दार्थः— सत्कारधनः = दूसरों का आदर करना ही है धन जिसका ऐसा, सज्जनः = सज्जन, (भवति = होता है), खलु = निश्चय ही, कस्य = किसका, धनम् = धन, चलाचलम् = च चल, नाशवान्, न = नहीं, भवति = होता है?, यः = जो, पूजयितुम् = (दूसरों का) सम्मान करना, अपि = भी, न = नहीं, जानाति = जानता है, अपि = क्या, सः = वह, पूजाविशेषम् = आदर विशेष को, जानाति = जानता है?।।

अर्थः—

संवाहक— दूसरों का आदर करना ही सज्जनों का धन होता है? किसका धन नाशवान् नहीं होता है? अर्थात् सभी लोगों का धन नश्वर होता है। जो आदमी दूसरों का आदर भी करना नहीं जानता है, वह क्या आदर के विशेष तरीके को जानता है? अर्थात् नहीं जानता है।।१५।।

टीका— सत्कारः = अन्येषां सम्मानम् एव धनम् = सम्पत्तिः यस्य सः; सज्जनः = सत्पुरुषः; भवतीति शेषः, खलु = निश्चितम्; कस्य = जनस्य; धनम्; चलाचलम् = च चलम्, नाशशालि इत्यर्थः; न भवति = नास्ति; यः = जनः; पूजयितुम् = अन्यजनं सत्कर्तुमपि, न जानाति = न अवबोधयति; अपि = किम्; सः = जनः, पूजायाः = सत्कारस्य विशेषम् = प्रकारभेदम्; जानाति = अवगच्छति? न जानाति इत्यर्थः।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा वैतालीय छन्द है। छन्द का लक्षण- षड्विषमे ष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः। न समा त्र पराश्रिता कला, वैतालीये न्ते रलौ गुरुः।।

वसन्तसेना— तदो तदो (ततस्ततः ?।)

संवाहकः— तदो तेण अज्जेण शवित्ती पलिचालके किदो म्हि। चालित्तावशेशे अ तस्सिं जूदोवजीवी म्हि शंवुत्ते। तदो भाअधेअविशमदाए दशशुवण्णअं जूदे हालिदं। (ततस्तेनार्येण सव त्तिः परिचारकः कृतो स्मि। चारित्र्यावशेषे च तस्मिन्द्यूतोपजीव्यस्मि संव त्तः। ततो भागध ेयविषमतया दशसुवर्णं द्यूते हारितम्।)

माथुरः— उच्छादिदो म्हि, मुसिदो म्हि। (उत्सादितो स्मि, मुषितो स्मि।)

संवाहकः— एदे दे शहिअजूदिअलां में अणुशंधअति। शंपदं शुणिअ अज्जआ पमाणं। (एतौ तौ सभिकद्यूतकरौ मामनुसंधत्तः। सांप्रतं श्रुत्वार्या प्रमाणम्।)

वसन्तसेना— मदणिए! वासपादवविसंठुलदाए पक्खिणो इदो तदो वि आहिडंति। ह जे! ता गच्छ। एदाणं सहिअजूदिअराणं, अअं अज्जो ज्जेव पडिवादे त्ति, इमं हत्थाभरणअं तुमं देहि। (मदनिके! वासपादपविसंष्ठुलतया पक्षिण इतस्ततो प्याहिण्डन्ते। चेटि! तद्गच्छ। एतयोः सभिकद्यूतकरयोः, अयमार्य एव प्रतिपादयतीति, इदं हस्ताभरणं त्वं देहि।)

(इति हस्तात्कटकमाकृष्य चेट्याः प्रयच्छति)

चेटी— (ग हीत्वा) जं अज्जआ आणवेदि। (यदार्याज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता)

माथुरः— उच्छादिदो म्हि, मुसिदो म्हि। (उत्सादितो स्मि, मुषितो स्मि।)

चेटी — जधा एदे उद्धं पेक्खंति, दीहं णीससंति, विसूरअंति अहिलहंति अ दुआरणिहिदलोअणा, तधा तक्केमि, एदे दे सहिअजूदिअरा हुविवस्संति। (उपगम्य) अज्ज! वंदामि। (यथैतावूर्ध्वं प्रेक्षेते, दीर्घं निश्वसतः विचारयत अभिलपतश्च द्वारनिहितलोचनौ, तथा तर्कयामि, एतौ तौ सभिकद्यूतकरौ भविष्यतः आर्य! वन्दे।)

माथुरः — सुहं तुए होदु। (सुखं तव भवतु।)

चेटी — अज्ज! कदमो तुम्हाणं सहिओ? (आर्य! कतरो युवयोः सभिकः?।)

माथुरः —

कस्स तुहुं तणुमज्झे अहरेण रददट्ठदुव्विणीदेण।
जम्पसि मणोहलवअणं आलोअंती कडक्खेण।।१६।।

णत्थि मम विहवो, अण्णत्त व्वज।

(कस्य त्वं तनुमध्ये अधरेण रतदष्टदुर्विनीतेन।
जल्पसि मनोहरवचनमालोकयन्ती कटाक्षेण।।

नास्ति मम विभवः, अन्यत्र व्रज।)

अर्थः—

वसन्तसेना— उसके बाद?

संवाहक— उसके बाद उन आर्य ने मुझे वेतन पर नौकर रख लिया। उनके निर्धन हो जाने पर मैं जुआ खेलकर अपनी जीविका चलाने वाला हो गया। इसके बाद भाग्य के साथ न देने के कारण जुए में दस सोने की मोहरें हार गया।

माथुर— (मैं तो) मर गया, लूट लिया गया।

संवाहक— ये दोनों सभिक और जुआरी मुझे ढूँढ़ रहे हैं। अब मेरी कहानी सुनकर आप ही निर्णायक हैं। (जैसा कहें वैसा हो)।

वसन्तसेना— मदनिके! बसेरावाले पेड़ के ठूँठ हो जाने पर चिड़ियाँ इधर-उधर भटकती ही हैं। चेटी! तो जाओ। इन दोनों सभिक और जुआरी को हाथ का यह कंगन यह कह कर तुम दे दो कि इसे आर्य संवाहक ही दे रहे है।।

(ऐसा कहकर हाथ से कंगन उतार कर चेटी को देती है)

चेटी — (लेकर) जो आर्या आज्ञा देती हैं। (निकल जाती है)

माथुर — मैं तो मर गया, लुट गया।

चेटी — जिस तरह ये दोनों ऊपर की ओर देखते हैं, लम्बी आहें भर रहे हैं, (मेरे) दरवाजे पर आँखें गड़ाये आपस में बातें कर रहे हैं, इससे अनुमान करती हूँ कि ये दोनों वे ही सभिक और जुआरी होंगे। (समीप जाकर) आर्य! प्रणाम करती हूँ।

माथुर — तुम्हारा भला हो।

चेटी — आर्य! आप दोनों में कौन सभिक है?

अन्वयः— हे तनुमध्ये! कटाक्षेण, आलोकयन्ती, त्वम्, रतदष्टदुर्विनीतेन, अधरेण, मनोहरवचनम्, कस्य, जल्पसि।।१६।।

शब्दार्थः— हे तनुमध्ये = हे पतली कमर वाली स्त्री! कटाक्षेण = टेढ़ी आँखों से, आलोकयन्ती = देखती हुई, त्वम् = तुम, रतदष्टदुर्विनीतेन = सम्भोग के समय में काटे गये एवं ध ष्ट, अधरेण = ओठ से, मनोहरवचनम् = मन को लुभाने वाले वचन, कस्य = किसको, जल्पसि = बोल रही हो।।

अर्थः— माथुर — हे पतली कमर वाली स्त्री? टेढ़ी आँखों से देखती हुई तुम सम्भोग के समय में काटे गये, ध ष्ट ओष्ठ से मन को लुभाने वाले वचन किससे बोल रही हो?।।१६।।

मेरे पास धन नहीं है। दूसरी जगह जाओ।

टीका- ''आर्य! कतरः युवयोः सभिकः?'' इति मदनिकायाः वचनं श्रुत्वा माथुरः प च्छति-तनु = क्षामम् मध्यम् = उदरम् यस्याः तत्सम्बुद्धौ; कटाक्षेण = वक्रावलोकनेन; आलोकयन्ती = पश्यन्ती;

त्वम्; रते = सम्भोगे दष्टः = कृतदन्तक्षतः, अतएव दुर्विनीतः = ध ष्टः रतिसूचकत्वात् तेन; अधरेण = निम्नौष्ठेन; मनोहरवचनम् = हृदयाकर्षकं वाक्यम्, कस्य = कम् प्रतीत्यर्थः; जल्पसि = वदसि।।१६।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।

चेटी — जइ ईदिसाइं णं मंतेसि, ता ण होसि जूदिअरो। अत्थि को वि तुम्हाणं धारओ?। (यदीद शानि ननु मन्त्रयसि, तदा न भवसि द्यूतकरः। अस्ति को पि युष्माकं धारकः?।)

माथुरः — अत्थि, दशसुवण्णं धालेदि। किं तस्स?। (अस्ति, दशसुवर्णं धारयति। किं तस्य?।)

चेटी — तस्स कारणादो अज्जआ इमं हत्थाभरणं पडिवादेदि। णहि णहि, सो ज्जेव पडिवादेदि। (तस्य कारणादार्येदं हस्ताभरणं प्रतिपादयति। नहि नहि, स एव प्रतिपादयति।)

माथुरः— (सहर्षं ग हीत्वा, अले, भणेशि तं कुलपुत्तं 'भूदं तुए गंथु। आअच्छ, पुणो जूदं रमह'। (अरे, भणसि तं कुलपुत्रम्-'भूतस्तव गण्डः। आगच्छ, पुनर्द्यूतं रमस्व'।)

(इति निष्क्रान्तौ)

चेटी (वसन्तनामुपस त्य) अज्जए! पडितुट्टा गदा सहिअजूदिअरा। (आर्ये! परितुष्टौ गतौ सभिकद्यूतकरौ।)

वसन्तसेना— ता गच्छदु अज्ज बंधुअणो समस्ससदु। (तद्गच्छतु, अद्य बन्धुजनः समाश्वसितु।)

संवाहकः— अज्जए! जइ एव्वं ता इअं कला पलिअणहत्थगदा कलीअदु। (आर्ये! यद्येवं तदियं कला परिजनहस्तगता क्रियताम्।)

वसन्तसेना— अज्ज! जस्स कारणादो इअं कला सिक्खीअदि, सो ज्जेव अज्जेण सुस्सूसिदपुव्वो सुस्सूसिदव्वो। (आर्य! यस्य कारणादियं कला शिक्ष्यते, स एवार्येण शुश्रूषितपूर्वः शुश्रूषितव्यः।)

संवाहकः—(स्वगतम्) अज्जआए णिउअं पच्चादिट्टो म्हि। कघं पच्चुवकलिश्शं। (प्रकाशम्) अज्जए! अहं एदिणा जूदिअलावमाणेण शक्कशमणके हुविश्शं। ता शंवाहके जूदिअले शक्कशमणके शंवुत्तेति शुमलिदव्वा अज्जआए एदे अक्खलु। (आर्यया निपुणं प्रत्यादिष्टो स्मि। कथं प्रत्युपकरिष्ये?। आर्ये! अहमेतेन द्यूतकरापमानेन शाक्यश्रमणको भविष्यामि। तत्संवाहको द्यूतकरः शाक्यश्रमणकः संव त्त इति स्मर्तव्यान्यार्ययैतान्यक्षराणि।)

वसन्तसेना — अज्ज! अलं साहसेण। (आर्य! अलं साहसेन।)

संवाहकः — अज्जए! कले णिच्चए, (इति परिक्रम्य)

जूदेण तं कदं मे जं वीहत्थं जणश्श शव्वश्श।
एणहिं पाअडशीशे णलिन्दमग्गेण विहलिश्शं।।१७।।

(आर्ये! कृतो निश्चयः),

द्यूतेन तत्कृतं मम यद्विहस्तं जनस्य सर्वस्य।
इदानीं प्रकटशीर्षो नरेन्द्रमार्गेण विहरिष्यामि।।)

अर्थः— चेटी — यदि ऐसी बातें करते हो तो तुम जुआरी नहीं हो। क्या तुम लोगों का कोई ऋणी भी है?।

माथुर— हाँ है। दस सोने की मोहरों का कर्जदार (ऋणी है।) उसका क्या?।

चेटी— उसके कारण से आर्या वसन्तसेना ने यह हाथ का कंगन दिया है। नहीं, नहीं वही आपका ऋणी दे रहा है।

माथुर— (बड़ी प्रसन्नता के साथ लेकर) अरी, उस कुलीनपुत्र से कह देना तुम्हारा वायदा पूरा हो गया। आओ, फिर जुआ खेलो।

(ऐसा कह कर वे दोनों चले जाते हैं)

चेटी— (वसन्तसेना के पास जाकर) आर्ये! वे दोनों सभिक और जुआरी खुश होकर चले गये।

वसन्तसेना— तो आप भी जायँ और आज अपने परिवारवालों एवं भाई-बन्धुओं को सान्त्वना दें।

संवाहक— आर्ये! यदि ऐसा है तो यह शरीर दबाने की कला अपनी सेविका को मुझसे सिखलवा दें अर्थात् आप कहें तो मैं मदनिका को देह दबाने की कला सिखला दूँ।

वसन्तसेना— आर्य! जिस चारुदत्त के कारण आपने यह कला सीखी है और जिस की आपने पहले सेवा भी की है, उन्हीं की अब भी आपको सेवा करनी चाहिए।

संवाहक— (अपने आप) आर्या वसन्तसेना ने बड़ी चतुराई के साथ मेरी बात अस्वीकृत कर दी। तो मैं कैसे इनके उपकार का बदला चुकाऊँगा? (प्रकट रूप में) आर्ये जुआरी के द्वारा किये गये इस अपमान के कारण मैं बौद्ध संन्यासी होऊँगा। तो 'जुआरी संवाहक बौद्ध संन्यासी हो गया है' इन अक्षरों को आप याद रखना।

वसन्तसेना— आर्य! इतना साहस मत करना।

अन्वयः— द्यूतेन, मम, तत्, कृतम्, यत्, सर्वस्य, जनस्य, (समक्षम्) विहस्तम्, इदानीम्, प्रकटशीर्षः, नरेन्द्रमार्गेण, विहरिष्यामि।।१७।।

शब्दार्थः— द्यूतेन = जुए के द्वारा, मम = मेरा, तत् = वह, कृतम् = किया गया, यत् = जो, सर्वस्य = सब, जनस्य = जनों के (समक्षम् = सामने) विहस्तम् = अपमान (हुआ), इदानीम् = अब, प्रकटशीर्षः = ऊँचा शिरवाला (होकर), नरेन्द्रमार्गेण = सड़कों से, विहरिष्यामि = घूमूँगा।।

अर्थः - संवाहक — आर्ये! मैंने निश्चय कर लिया है। (घूम कर)

जुए के कारण मैं सभी आदमियों के सामने अपमानित हुआ। अब ऋण चुक जाने के बाद मैं सड़कों पर शिर ऊँचा करके अर्थात् निर्भय होकर घूमूँगा।।१७।।

टीका— द्यूतेन = द्यूतक्रीडया इत्यर्थः; मम = द्यूतव्यसनिनः संवाहकस्य; तत् कृतम् = विहितम्; यत् सर्वस्य = निखिलस्य; जनस्य = लोकस्य समक्षमिति शेषः; विगतः = किंचित्कर्तुमशक्तः हस्तः = करः यस्मिन् तत् विहस्तम् = पराभूतम्; अवमाननमिति यावत्; इदानीम् = द्यूतदेयदशसुवर्णे दत्ते सतीत्यर्थः; प्रकटम् = उन्नमितम् शीर्षम् = शिरः यस्य सः, निर्भयः सन् इति भावः; नरेन्द्रमार्गेण = राजमार्गेण; विहरिष्यामि = भ्रमिष्यामि।।१७।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द है आर्या।

(नेपथ्ये कलकलः)

संवाहकः — (आकर्ण्य) अले, किं णणेदं?। (आकाशे) किं भणाध-'एशे खु वशंतशेणआए खुंटमोडके णाम दुट्टहत्थी विअलेदि' त्ति?। अहो, अज्जआए गंधगअं पेक्खिश्शं गदुअ। अहवा किं मम एदिणा?। जधाववशिदं अणुचिट्टिश्शं। (अरे, किं न्विदम्?। किं भणत—'एष खलु

वसन्तसेनायाः खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती विचरति' इति?। अहो, आर्याया गन्धगजं प्रेक्षिष्ये गत्वा। अथवा किं ममैतेन? यथाव्यवसितमनुष्ठास्यामि।) (इति निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशत्य पटीक्षेपेण प्रह ष्टो विकटोज्ज्वलवेषः कर्णपूरकः)

कर्णपूरकः— कहिं कहिं अज्जआ?। (कुत्र कुत्रार्या?।)

चेटी— दुम्मणुस्स किं ते उव्वेअकालणं, जं अग्गदो वट्टिदं अज्जअं ण पेक्खसि। (दुर्मनुष्य! किं त उद्वेगकारणम्! यदग्रतो वस्थितामार्यां न प्रेक्षसे।)

कर्णपूरकः— (द ष्ट्वा) अज्जए! वंदामि। (आर्ये! वन्दे।)

वसन्तसेना— करणऊरअ परितुट्टमुहो लक्खीअसि। ता किं ण्णेदं?। (कर्णपूरक! परितुष्टमुखो लक्ष्यसे। तत्किं न्विदम्?।)

कर्णपूरकः— (सविस्मयम्) अज्जए! वंचिदासि, जाए अज्ज कण्णऊरअस्स परक्कमो ण दिट्ठो। (आर्ये! व चितासि, ययाद्य कर्णपूरकस्य पराक्रमो न द ष्टः।)

वसन्तसेना— कण्णऊरअ! किं किं? (कर्णपूरक! किं किम्?।)

कर्णपूरकः— सुणादु अज्जआ जो सो अज्जआए खुंटमोडओ णाम दुट्टहत्थी, सो आलणत्थंभं भंजिअ महमेत्थं वावादिअ महंतं संखोहं करंतो राअमग्गं ओदिण्णो। तदो एत्थंतरे उग्घुट्टं जणेण—(श्र णोत्वार्या। यः स आर्यायाः खुण्टमोटको नाम दुष्टहस्ती स आलानस्तम्भं भङ्क्त्वा महामात्रं व्यापाद्य महान्तं संक्षोभं कुर्वन् राजमार्गमवतीर्णः। ततो त्रान्तरे उद्घुष्टं जनेन)

अवरोध वालअजणं तुरिदं आरुहध वुक्खपासादं।
किं ण हु पेक्खध पुरदो दुट्टो हत्थी इदो एदि।।१८।।

'अपनयत बालकजनं त्वरितमारोहत व क्षप्रासादम्।
किं न खलु प्रेक्षध्वं पुरतो दुष्टो हस्तीत एति।।

(पर्दे के पीछे कोलाहल)

अर्थः— संवाहक — (सुनकर) अरे! यह क्या है? (आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो—'वसन्तसेना' का यह 'खुण्टमोडक' नामक मतवाला हाथी घूम रहा है। अतः जाकर आर्या वसन्तसेना के मतवाले हाथी को देखूँगा। अथवा मेरा इससे क्या मतलब? मैंने तो जो सोचा है वही करूँगा। (ऐसा कह कर चला जाता है)।

(इसके बाद बिना पर्दा गिराये ही प्रसन्न एवं खूब सफेद वेष वाला 'कर्णपूरक' प्रवेश करता है।)

कर्णपूरक— आर्या वसन्तसेना कहाँ हैं, कहाँ हैं?।

चेटी— रे दुर्जन! तुम्हारी घबराहट का क्या कारण है जो सामने ही बैठी हुई आर्या को नहीं देख रहे हो?

कर्णपूरक— (देखकर) आर्ये प्रणाम करता हूँ।

वसन्तसेना — कर्णपूरक! तुम बड़े प्रसन्न मुख दिखाई पड़ते हो? तो यह क्या बात है?

कर्णपूरक — (विस्मय के साथ) आर्या व चित रह गयीं क्योंकि तुमने आज मेरा पराक्रम नहीं देखा।

वसन्तसेना – कर्णपूरक क्या बात है? क्या बात?

कर्णपूरक – आर्या सुनें! वह जो आपका 'खुण्ट मोडक' नाम का दुष्ट हाथी है वह हाथी बाँधने के खूँटे को तोड़ कर महावत को मार कर घोर उपद्रव को मचाते हुए सड़क पर उतर आया। उसके बाद लोग चिल्लाने लगे–

अन्वयः– बालकजनम्, अपनयत, व क्षप्रासादम्, त्वरितम्, आरोहत, किम्, न, खलु, प्रेक्षध्वम्, पुरतः, दुष्टः, हस्ती, इतः, एति।।१८।।

शब्दार्थः– बालकजनम् = बच्चों को, अपनयत = हटालो, व क्षप्रासादम् = पेड़ों एवम् घरों पर, त्वरितम् = जल्द, आरोहत = चढ़ जाओ, किम् = क्या, न खलु = नहीं, प्रेक्षध्वम् = देख रहे हो, पुरतः = सामने से, दुष्टः = बदमाश, हस्ती = हाथी, इतः = इधर, एति = आ रहा है।

अर्थः– बच्चों को रास्ते से हटा लो, जल्दी ही पेड़ों एवं घरों पर चढ़ जाओ। क्या नहीं देख रहे हो कि दुष्ट हाथी सामने से इधर ही आ रहा है।।१८।।

टीका– बालकजनम् = शिशुजनम्; अपनयत = दूरं नयत; राजमार्गादिति शेषः; व क्षश्च प्रासादश्च इति व क्षप्रासादम् = व क्षोर्ध्वम् ग हाग्र च; त्वरितम् = झटिति; आरोहत; किम् न खलु प्रेक्षध्वम्? = पश्यथ? यूयमिति शेषः; पुरतः = अग्रतः; दुष्टः = मत्तः; हस्ती = गजः; इतः = एतस्यां दिशि; एति = आगच्छति।।१८।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।१८।।

अपि अ–

विचलइ णेउरजुअलं छिज्जंति अ मेहला मणिक्खइआ।
वलआ अ सुन्दरदरा रअणंकुरजालपडिबद्धा।।१६।।

अपि च,-

विचलति नुपुरयुगलं छिद्यन्ते च मेखला मणिखचिताः।
वलयाश्च सुन्दरतरा रत्नांकुरजालप्रतिबद्धाः।।

अन्वयः– नुपुरयुगलम्, विचलति, मणिखचिताः, मेखलाः, रत्नांकुरजालप्रतिबद्धाः, सुन्दरतराः, वलयाः, च, छिद्यन्ते।।१६।।

शब्दार्थः–नुपुरयुगलम् = पायजेब का जोड़ा, विचलति = गिर रहा है, मणिखचिताः = मणियों से जड़ी हुई, मेखलाः = करधनियाँ, रत्नांकुरजालप्रतिबद्धाः = छोटे-छोटे रत्नों से मढ़े हुए, सुन्दरतराः = अच्छे-अच्छे, वलयाः = कंगन, च = भी, छिद्यन्ते = टूट रहे हैं।

और भी-

अर्थः– (हाथी के डर से भागती हुई स्त्रियों के) पाजेब का जोड़ा गिर रहा है, मणियों से जड़ी हुई मेखलाएँ तथा छोटे-छोटे रत्नों से मढ़े हुए अच्छे-अच्छे कंगन टूट रहे हैं।।१६।।

टीका– (गजभयात् पलायनपराणां नारीणां गमनवेगात्) नूपुरयुगलम् = चरणकटकयुगलम्; (चरणेभ्यः) विचलति = भ्रंशते; मणिभिः = रत्नैः खचिताः = जटिताः; मेखलाः = का चयः; रत्नांकुराणाम् = लघुरत्नानाम् जालैः = समूहैः प्रतिबद्धाः = अनुबद्धाः, विभूषिताः इत्यर्थः; सुन्दरतराः = रमणीयाः; वलयाः = कटकाः च; छिद्यन्ते = विशीर्यन्ते;।।१६।।

यहाँ आर्या छन्द है।

तदो तेण दुट्टहत्थिणा कलचरणरदणेहिं फुल्लणलिणिं विअ णअरिं उज्जइणिं अवगाहमाणेण समासादिदो परिव्वाजओ। तच्च परिब्भट्टदंडकुंडिआभाअणं सीअरेहिं सिंचिअ दंतंतरे क्खित्तं पेक्खिअ पुणो वि उग्घुट्टं जणेण-'हा परिव्वाजओ वावादीअदि' त्ति।

ततस्तेन दुष्टहस्तिना करचरणरदनैः फुल्लनलिनीमिव नगरीमुज्जयिनीमवगाहमानेन समासादितः परिव्राजकः। तं च परिभ्रष्टदण्डकुण्डिकाभाजनं शीकरैः सिक्त्वा दन्तान्तरे क्षिप्तं प्रेक्ष्य पुनरप्युद्घुष्टं जनेन 'हा, परिव्राजको व्यापाद्यते' इति।)

वसन्तसेना— (ससंभ्रमम्) अहो पमादो, अहो पमादो। (अहो प्रमादः, अहो प्रमादः।)

कर्णपूरकः— अलं संभमेण; सुणादु दाव अज्जआ। तदो विच्छिण्णविसंठुलसिंखलाकलावअं उव्वहंतं दंतंतरपरिग्गहिदं परिव्वाजअं उव्वहंतं तं पेक्खिअ कण्णऊरएण मए, णहि णहि, अज्जआए अण्णपिंडउट्टेण दासेण, वामचलणेण जूदलेक्खअं उग्घुसिअ तुरिदं आवणादो लोहदंडं गेणिहअ आआरिदो सो दुट्टहत्थी। (अलं संभ्रमेण; श्र णोतु तावदार्या। ततो विच्छिन्नविसंष्ठुलश्र ंखलाकलापमुद्वहन्तं दन्तान्तरपरिग हीतं परिव्राजकमुद्वहन्तं तं प्रेक्ष्य कर्णपूरकेण मया-नहि नहि, आर्याया अन्नपिण्डपुष्टेन दासेन, वामचलनेन द्यूतखेलकमुद्घुष्योद्घुष्य त्वरितमापणाल्लोहदण्डं ग हीत्वाकारितः स दुष्टहस्ती।)

वसन्तसेना— तदो तदो?। (ततस्ततः?।)

कर्णपूरकः—

आहणिऊण सरोसं तं हत्थिं वि झसैलसिहराभं।
मोआविओ मए सो दंतंतरसंठिओ परिव्वाजओ।।२०।।
(आहत्य सरोषं तं हस्तिनं विन्ध्यशैलशिखराभम्।
मोचितो मया स दन्तान्तरसंस्थितः परिव्राजकः।।)

अर्थः— इसके बाद अपने सूंड, पैर और दाँतों से, फूली हुई कमल की लता की भाँति, 'उज्जियनी' नगरी को रौंदते हुए उस दुष्ट हाथी ने एक संन्यासी को पकड़ लिया। संन्यासी का दण्ड कमण्डलु और खाने का खप्पड़ (जिसमें भोजन खाते हैं) जमीन पर गिर गया। जल की बूँदों से उस संन्यासी को खींच कर हाथी ने उसको अपने दाँतों के बीच दबा लिया। संन्यासी को हाथी के मुँह में फँसा हुआ देख कर फिर लोगों ने चिल्लाना शुरू किया—हाय! संन्यासी मारा जा रहा है।

वसन्तसेना— (घबराहट के साथ) अहो! अनर्थ हुआ।

कर्णपूरक- घबराएं नहीं। आप सुनें तो। तब टूटी-फूटी एवं अस्त-व्यस्त ज जीरों को बाँधे हुए और दाँतों के बीच में पकड़े गये संन्यासी को उठाए हुए उस हाथी को देख कर मुझ 'कर्णपूरक' ने-नहीं नहीं, आपके अन्न के कौर से पले हुए इस सेवक ने जुआरी (संवाहक, जो संन्यासी होकर हाथी के दाँत में दबा है) को बार बार ढाढ़स बँधा कर तुरन्त बाजार से लोहे का एक छड़ लेकर बाईं ओर पैतरा बदल करके उस दुष्ट हाथी को ललकारा।

अन्वयः— विन्ध्यशैलशिखराभम्, तम्, हस्तिनम्, सरोषम्, आहत्य, मया, दन्तान्तरसंस्थितः, सः, परिव्राजकः, मोचितः।।२०।।

शब्दार्थः— विन्ध्यशैलशिखराभम् = विन्ध्याचल पहाड़ की चोटी की भाँति आकारवाले, तम् = उस, हस्तिनम् = हाथी को, सरोषम् = क्रोधपूर्वक, आहत्य = मारकर, मया = मेरे द्वारा,

दन्तान्तरसंस्थितः = दाँतों के बीच में दबा हुआ, सः = वह, परिव्राजकः = बौद्धसंन्यासी, मोचितः = छुड़ाया गया।।

अर्थः— कर्णपूरक — विन्ध्याचल पहाड़ की चोटी की भाँति आकार वाले उस हाथी पर क्रोधपूर्वक प्रहार करके मैंने हाथी के दाँतों के बीच दबे हुए उस संन्यासी को छुड़ा लिया।।२०।।

टीका— विन्ध्यशैलस्य = विन्ध्यपर्वतस्य शिखरस्य = श्रृंगस्य आभा = कान्तिः आकृतिः इति भावः, इव आभा यस्य तम्; तम् = पूर्वकथितं मदमत्तम्, हस्तिनम् = गजम्; सरोषम् = सकोपम् यथा तथा; आहत्य = लोहदण्डेन प्रहृत्य, मया = कर्णपूरकेण; दन्तान्तरे = दन्तमध्ये संस्थितः = वर्तमानः ग हीतः इत्यर्थः; सः = पूर्वं निर्दिष्टः वराकः; परिव्राजकः = बौद्धभिक्षुः, मोचितः = मुक्तः कृतः।।२०।।

इस श्लोक में आर्या छन्द का ही एक प्रकार गीति छन्द है,- लक्षण- आर्यापूर्वार्धसमं द्वितीयमपि भवति यत्र हंसगते। छन्दोविदस्तदानीं गीतिं तामम तवाणि भाषन्ते।।२०।।

वसन्तसेना— सुट्ठु दे किदं; तदो तदो?। (सुष्ठु त्वया कृतम्; ततस्ततः?।)

कर्णपूरकः—तदो अज्जए! साहु रे कण्णऊरअ! साहुवेत्ति एत्तिअमेत्तं भणंती, विसमभरक्कंता विअ णावा, एक्कदो पल्हत्था सअला उज्ज्इणी आसि। तदो अज्जए! एक्केण सुण्णाइं आहरणट्ठाणाइं परामुसिअ उद्धं पेक्खिअ दीहं णीससिअ अअं पावारओ मम उवरि क्खित्तो। (तत आर्ये! 'साधु रे कर्णपूरक! साधु' इत्येतावन्मात्रं भणन्ती, विषमभराक्रान्ता इव नौः एकतः पर्यस्ता सकलोज्जयिन्यासीत्। तत आर्ये! एकेन शून्यान्याभरणस्थानानि पराम श्य ऊर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वस्यायं प्रावारको ममोपरि क्षिप्तः।)

वसन्तसेना— कण्णऊरअ! जाणीहि दाव किं एसो जादीकुसुमवासिदो पावारओ ण वेत्ति। (कर्णपूरक! जानीहि तावत्किमेष जातीकुसुमवासितः प्रावारको न वेति।)

कर्णपूरकः— अज्जए! मदगंधेण सुट्ठु तं गंधं ण जाणामि। (आर्ये! मदगन्धेन सुष्ठु तं गन्धं न जानामि।)

वसन्तसेना— णामं पि दाव पेक्ख। (नामापि तावत्प्रेक्षस्व।)

कर्णपूरकः— इमं णामं, अज्जआ एव्व वाएदु। (इदं नाम, आर्यैव वाचयतु।) (इति प्रावारकमुपनयति)

वसन्तसेना— अज्जचारुदत्तस्स। (आर्यचारुदत्तस्य।) (इति वाचयित्वा सस्प हं ग हीत्वा प्राव णोति।)

चेटी— कण्णऊरअ! सोहदि अज्जआए पावारओ। (कर्णपूरक! शोभते आर्यायाः प्रावारकः।)

कर्णपूरकः— आं, सोहदि अज्जआए पावारओ। (आं, शोभत आर्यायाः प्रावारकः।)

वसन्तसेना— कण्णऊरअ! इदं दे पारितोसिअं। (कर्णपूरक! इदं ते पारितोषिकम्।) (इत्याभरणं प्रयच्छति)

कर्णपूरकः— (शिरसा ग हीत्वा प्रणम्य च) संपदं सुट्ठु सोहदि अज्जआए पावारओ। (सांप्रतं सुष्ठु शोभत आर्यायाः प्रावारकः।)

वसन्तसेना— कण्णऊरअ! एदाए वेलाए कहिं अज्जचारुदत्तो?। (कर्णपूरक! एतस्यां वेलायां कुत्रार्यचारुदत्तः?।)

कर्णपूरकः— एदेण ज्जेव मग्गेण पवुत्तो गेहं। (एतेनैव मार्गेण प्रव त्तो गेहम्।)

वसन्तसेना— हज्जे! उवरिदणं अलिंदअं आरुहिअ अज्जचारुदत्तं पेक्खेम्ह। (चेटि! उपरितनमलिन्द-कमारुह्यार्यचारुदत्तं पश्यामः।)

अर्थः—

वसन्तसेना— तुमने बड़ा अच्छा किया। उसके बाद?

कर्णपूरक— इसके बाद आर्ये! 'वाह कर्णपूरक! वाह!' केवल यही कहती हुई, काफी बोझ से एक तरफ दबी हुई नौका की भाँति, समूची 'उज्जयिनी' की जनता एक ओर ही इकट्ठी हो गयी (अर्थात् मुझको घेर लिया)। तब आर्ये! एक नागरिक 'चारुदत्त' ने अपने आभूषण पहनने के खाली अंगों को छूकर ऊपर देखकर, लम्बी साँस लेकर यह दुपट्टा मेरे ऊपर फेंक दिया।

वसन्तसेना— कर्णपूरक! देखो तो, क्या यह दुपट्टा चमेली के फूलों से सुवासित हैं अथवा नहीं?।

कर्णपूरक— आर्ये! (अपनी शरीर में लिपटे हुए हाथी के) मद की गन्ध के कारण चमेली की महक को ठीक से नहीं जान पा रहा हूँ।

वसन्तसेना — तो (इस पर लिखा हुआ) नाम ही देखो।

कर्णपूरक — इस नाम को आर्या ही पढ़ें (ऐसा कह कर दुपट्टा दे देता है)

वसन्तसेना — आर्य 'चारुदत्त' का नाम है। (यह पढ़कर लालसा पूर्वक लेकर ओढ़ लेती है)

चेटी — कर्णपूरक! आर्या को यह दुपट्टा अच्छा लग रहा है?

कर्णपूरक — हाँ यह दुपट्टा आर्या के शरीर पर अच्छा लगता है।

वसन्तसेना — कर्णपूरक! यह तुम्हें ईनाम है। (ऐसा कह कर आभूषण देती है)।

कर्णपूरक — (झुके शिर से लेकर और प्रणाम करके) अब आपका दुपट्टा बहुत अच्छा लग रहा है।

वसन्तसेना — कर्णपूरक! इस समय आर्य 'चारुदत्त' कहाँ होंगे?

कर्णपूरक — इसी रास्ते से घर जा रहे हैं।

वसन्तसेना — चेटी! (आओ) ऊपर वाली अटारी पर चढ़कर आर्य 'चारुदत्त' को देखें।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति द्यूतकरसंवाहको नाम द्वितीयो ंकः।

(सब निकल जाते हैं)।

द्यूतकरसंवाहक नामवाला दूसरा अंक समाप्त।

त तीयो ंकः

(ततः प्रविशति चेटः)

चेटः—

सुअणे खु भिच्चाणुकंपके शामिए णिद्धणके वि शोहदि।
पिशुणे उण दव्वगव्विदे दुक्कले क्खु पलिणामदालुणे।।१।।
सुजनः खलु भ त्यानुकम्पकः स्वामी निर्धको पि शोभते।
पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खलु परिणामदारुणः।।

अन्वयः— भ त्यानुकम्पकः, सुजनः, स्वामी, निर्धनकः, अपि, (सन्), खलु, शोभते, पुनः, द्रव्यगर्वितः, पिशुनः, दुष्करः, परिणामदारुणः, खलु, (भवति)।।१।।

शब्दार्थः— भ त्यानुकम्पकः = नौकरों पर दया करने वाला, सुजनः = सज्जन, स्वामी = मालिक, निर्धनकः = निर्धन, अपि = भी, (सन् = होता हुआ), खलु = निश्चय ही, शोभते = शोभित होता है, पुनः = किन्तु, द्रव्यगर्वितः = धन के मद में चूर, पिशुनः = खल, दुष्ट, दुष्करः = दुःख से सेवा करने के योग्य, परिणामदारुणः = अन्त में भयंकर, खलु = अवश्य ही, (भवति = होता है)।

(इसके बाद चेट 'वर्धमानक' प्रवेश करता है)

अर्थः—

चेट— नौकरों पर दया करने वाला सज्जन मालिक निर्धन रहने पर भी सुखदायी (शोभित) होता है। किन्तु धन के मद में चूर दुष्ट मालिक दुःख से सेवा करने योग्य तथा अन्त में भयंकर होता है।।१।।

टीका— भ त्यानाम् = सेवकानाम् अनुकम्पकः = दयावान्; सुजनः = सज्जनः; स्वामी = प्रभुः; निर्धनकः = धनहीनः, अपि सन्; खलु = निश्चितम्; शोभते = राजते; पुनः = किन्तु; द्रव्येण = धनेन, धनाधिक्येन इत्यर्थः गर्वितः = दर्पयुक्तः; पिशुनः = खलः; दुःखेन = आयासेन क्रियते = सेव्यते इति दुष्करः, परिश्रमसेवनीयः इत्यर्थः; तथा परिणामे = अन्तकाले दारुणः = भयंकरः; खलु = अवश्यं भवतीतिः।।१।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार एवं वैतालीय छन्द है।

अवि अ,-

शश्शपलक्कबलद्दे ण शक्कि वालिदुं
अण्णपशत्तकलकत्तेण शक्कि वालिदुं।
जूदपशत्तमणुश्शे ण शक्कि वालिदुं
जे वि शहाविअदोशे ण शक्कि वालिदुं।।२।।

अपि च,-

सस्यलम्पटबलीवर्दो न शक्यो वारयितु-
मन्यकलत्रप्रसक्तो न शक्यो वारयितुम्।

द्यूतप्रसक्तमनुष्यो न शक्यो वारयितुं
यो पि स्वाभाविकदोषो न शक्यो वारयितुम्।।

अन्वयः— सस्यलम्पटबलीवर्दः, वारयितुम्, न, शक्यः, अन्यकलत्रप्रसक्तः, वारयितुम्, न, शक्यः, द्यूतप्रसक्तमनुष्यः, वारयितुम्, न, शक्यः, यः, अपि, स्वाभाविकदोषः (अस्ति, सः) वारयितुम्, न, शक्यः।।२।।

शब्दार्थः— सस्यलम्पटबलीवर्दः = हरे धान का लोभी सांड, वारयितुम् = रोकने के लिए, न = नहीं, शक्यः = सम्भव है, अर्थात् नहीं रोका जा सकता है, अन्यकलत्रप्रसक्तः = दूसरे की स्त्री में प्रेम करने वाला, वारयितुं न शक्यः = रोका नहीं जा सकता, द्यूतप्रसक्तमनुष्यः = जुआ खेलने का आदती मनुष्य, वारयितुं न शक्यः = रोका नहीं जा सकता, यः = जो, अपि = भी, स्वाभाविकदोषः = स्वाभाविक बुराई, (अस्ति = है, सः = वह) वारयितुं न शक्यः = छोड़ी नहीं जा सकती है।।

और भी-

अर्थः— हरे धान का लोभी साँड़, दूसरे की स्त्री में आसक्त पुरुष, जुआ खेलने का आदती मनुष्य (इस सब) को रोका नहीं जा सकता। और जो भी स्वाभाविक बुराई होती है वह भी छोड़ी नहीं जा सकती है।।२।।

टीका— सस्यलम्पटः = सस्यभक्षणे लोलुपः प्रसक्तः वा बलीवर्दः = व षभः; वारयितुम् = अवरोद्धुम्; न शक्यः; अन्येषाम् = परेषाम् कलत्रेषु = स्त्रीषु प्रसक्तः = प्रेमपरः, वारयितुं न शक्यः; द्यूते = द्यूतक्रीडने प्रसक्तः = संलग्नः; मनुष्यः = जनः; निवारयितुं न शक्यते; यो पि स्वाभाविकः = प्रकृतिदत्तः दोषः = दूषणम्; अस्ति सः अपि वारयितुं न शक्यः।।२।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा एवम् द ष्टान्त अलंकार की संस ष्टि है। प्रयुक्त छन्द का नाम है शक्करी जाति।।२।।

का वि वेला अज्जचारुदत्तश्श गंधव्वं शुणिदुं गदश्श। अदिक्कमदि अद्धलअणी। अज वि ण आअच्छदि। ता जाव बाहिलदुआलशालाए गदुअ शुविश्शं।

कापि वेलार्यचारुदत्तस्य गान्धर्वं श्रोतुं गतस्य। अतिक्रामत्यर्धरजनी। अद्यापि नागच्छति। तद्यावद्बहिर्द्वारशालायां गत्वा स्वप्स्यामि।)

(इति तथा करोति)

(ततः प्रविशति चारुदत्तो विदूषकश्च)

चारुदत्तः— अहो अहो! साधु साधु, रेभिलेन गीतम्। वीणा हि नामासमुद्रोत्थितं रत्नम्। कुतः,-

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या
संकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः।
संस्थापना प्रियतमा विरहातुराणां
रक्तस्य रागपरिव द्धिकरः प्रमोदः।।३।।

अर्थः— गाना सुनने के लिए गए हुए आर्य 'चारुदत्त' को कितनी देर हो गई? आधी रात बीत रही है। अब भी नहीं आये। तो तब तक बाहरी दरवाजे वाली कोठरी में सोऊँगा।

(वैसा ही करता है।)

(इसके बाद 'चारुदत्त' और 'विदूषक' प्रवेश करते हैं)

चारुदत्त– वाह! वाह!! 'रेभिल' ने बहुत अच्छा गाया। वीणा तो, सही में, समुद्र से बिना निकला हुआ रत्न है। क्योंकि–

अन्वयः– (वीणा), उत्कण्ठितस्य, हृदयानुगुणा, वयस्या, संकेतके, चिरयति, प्रवरः, विनोदः, विरहातुराणाम्, प्रियतमा, संस्थापना, रक्तस्य, रागपरिव द्धिकरः प्रमोदः, (अस्ति)।।३।।

शब्दार्थः– (वीणा = वीणा नामक वाद्य), उत्कण्ठितस्य = विरह पीडा से व्याकुल व्यक्ति की, हृदयानुगुणा = मनपसन्द, वयस्या = सखी (है), संकेतके = संकेत करने वाले प्रेमी के, चिरयति = देर करने पर, प्रवरः = श्रेष्ठ, विनोदः = मनबहलाव का साधन, (है), विरहातुराणाम् = विरह से पीडित व्यक्तियों की, प्रियतमा = प्रिय, मनोनुकूल, संस्थापना = ढाढस बँधाने वाली (है), रक्तस्य = प्रेमी का, रागपरिव द्धिकरः = राग को बढ़ाने वाला, प्रमोदः = मनोर जन, (अस्ति = है)।।

अर्थः– (वीणा) अत्यन्त विरह पीडा से व्याकुल व्यक्ति के लिए मनपसन्द सखी है। इशारा किये गये स्थान पर आने में प्रेमी के देर करने पर यह (वीणा) मनबहलाव का अच्छा साधन है। विरह से पीडित की प्रिय ढाढस बँधाने वाली (प्रेमिका) है। और प्रेमी जनों के राग (दूसरे के प्रति कामपूर्ण प्रेम) को बढ़ाने वाला मनोर जन है।।३।।

टीका– (वीणा = तन्त्री); उत्कण्ठा = विरहवेदना स जाता = उत्पन्ना अस्य इति उत्कण्ठितस्य = विरहवेदनाविह्वलस्य जनस्य; हृदयानुगुणा = हृदयानुरूपा; वयस्या = प्रियसखीरूपा; संकेतयति यः सः संकेतकः तस्मिन् संकेतके = दत्तसंकेते; चिरयति = विलम्बं कुर्वाणे सति; प्रवरः = उत्तमः; विनोदः = मनोर जनम्; विरहेण = प्रियवियोगेन आतुराणाम् = व्याकुलानाम्; प्रियतमा = चित्तानुरूपा; संस्थापना = धैर्यदायिनी; रक्तस्य = अनुरागवतः जनस्य; रागस्य = अनुरागस्य परिव द्धिकरः = संवर्धकः; प्रमोदः = विनोदः; अस्तीति।।३।।

इस श्लोक में एक ही वीणा का 'वयस्या' आदि अनेक रूपों से उल्लेख किया गया है, अतः उल्लेख अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द है वसन्ततिलका।

विदूषकः–मो, एहि। गेहं गच्छेम्ह। (भोः, एहि। ग हं गच्छावः।)

चारुदत्तः– अहो, सुष्ठु भावरेभिलेन गीतम्।

विदूषकः–मम दाव दुवेहिं ज्जेव्व हस्सं जाअदि। इत्थिआए सक्कअं पठंतीए, मणुस्सेण अ काअलीं गाअंतेण। इत्थिआ दाव सक्कअं पठंती, दिण्णणवणस्सा विअ गिट्टी, अहिअं सुसुआअदि। मणुस्सो वि काअलीं गाअंतो, सुक्खसुमणोदामवेट्टिदो बुड्ढपुरोहिदो विअ मंतं जवंतो, दिढं मे ण रोअदि। (मम तावद्द्वाभ्यामेव हास्यं जायते। स्त्रिया संस्कृतं पठन्त्या, मनुष्येण च काकलीं गायता। स्त्री तावत्संस्कृतं पठन्ती, दत्तनवनस्येव ग ष्टिः, अधिकं सूसूशब्दं करोति। मनुष्यो पि काकलीं गायन्, शुष्कसुमनोदामवेष्टितो व द्धपुरोहित इव मन्त्रं जपन्, द ढं मे न रोचते।)

चारुदत्तः– वयस्य! सुष्ठु खल्वद्य गीतं भावरेभिलेन। न च भवान्परितुष्टः।

रक्तं च नाम मधुरं च समं स्फुटं च
भावान्वितं च ललितं च मनोहरं च।

**किंवा प्रशस्तवचनैर्बहुभिर्मदुक्तै-
रन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेति मन्ये।।४।।**

अर्थः— विदूषक — आइए, घर चलें।

चारुदत्त— अहा! 'रेभिल' महोदय ने अच्छा गाया।

विदूषक— मुझे तो संस्कृत पढ़ती हुई स्त्री तथा धीमी राग (काकली) से गाते हुए मनुष्य-इन दोनों पर ही हँसी आती है। संस्कृत पढ़ती हुई स्त्री, पहले पहल ब्याई हुई (प्रसूता) अतः नाक में नाथी गयी गाय के समान बहुत अधिक सू, सू, शब्द करती है। महीन स्वर से गाता हुआ मनुष्य भी, सूखे फूलों की माला पहने मन्त्र जपते हुए बूढ़े पुरोहित की भाँति मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगता।

अन्वयः— (गीतम्), नाम, रक्तम्, च, मधुरम्, च, समम्, स्फुटम्, च, भावान्वितम्, च, ललितम्, च, मनोहरम्, च, (आसीत्), वा, मदुक्तैः, बहुभिः, प्रशस्तवचनैः, किम्?, यदि, वनिता, अन्तर्हिता, भवेत्, इति, मन्ये।।४।।

शब्दार्थः— (गीतम् = गाना), नाम = निश्चय ही, रक्तम् = रागपूर्ण, मधुरम् = मीठा लगने वाला, समम् = (स्वर तथा लय आदि की) समतावाला, स्फुटम् = स्पष्ट, भावान्वितम् = भावपूर्ण, ललितम् = ललित, कोमल, च = एवम्, मनोहरम् = मन को लुभाने वाला, च = भी, (आसीत् = था), वा = अथवा, मदुक्तैः = मेरे द्वारा कहे गये, बहुभिः = बहुत से, प्रशस्तवचनैः = प्रशंसा के वाक्यों से, किम् = क्या (लाभ)? यदि = शायद, कदाचित्, वनिता = स्त्री, अन्तर्हिता = छिपी हुई, भवेत् = हो, इति = ऐसा, मन्ये = मानता हूँ।।

अर्थः— **चारुदत्त—** मित्र! 'रेभिल' महोदय ने आज वास्तव में बहुत अच्छा गाना गाया। फिर भी आप प्रसन्न नहीं हुए।

('रेभिल' का वह गाना) रागपूर्ण, सुनने में मीठा लगनेवाला, (स्वर तथा लय आदि की) समतावाला, स्पष्ट, भावपूर्ण, ललित एवं मनोहर था। अथवा हमारे बहुत बढ़ाई करने से क्या लाभ? मुझे तो ऐसा लगता था कि ('रेभिल' के रूप में) मानो स्त्री छिपी हुई हो (अर्थात् 'रेभिल' स्त्रियों की भाँति सब प्रकार की निपुणता के साथ गा रहा था)।।४।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

अपि च,—

**तं तस्य स्वरसंक्रमं म दुगिरः श्लिष्टं च तन्त्रीस्वनं
वर्णानामपि मूर्च्छनान्तरगतं तारं विरामे म दुम्।
हेलासंयमितं पुनश्च ललितं रागद्विरुच्चारितं
यत्सत्यं विरते पि गीतसमये गच्छामि श ण्वन्निव।।५।।**

अन्वयः— सत्यम्, यत्, गीतसमये, विरते, अपि, वणानाम्, मूर्च्छनान्तरगतम्, अपि, तारम्, विरामे, म दुम्, पुनः, च, हेलासंयमितम्, रागद्विरुच्चारितम्, तस्य, मधुरगिरः, तम्, स्वरसंक्रमम्, श्लिष्टम्, तन्त्रीस्वनम्, च, श्र ण्वन्, इव, अहम्, गच्छामि।।५।।

शब्दार्थः—सत्यम् = सचमुच, सत्य है, यत् = कि, गीतसमये = गाने का समय, विरते = बीत जाने पर, अपि = भी, वर्णानाम् = अक्षरों की, मूर्च्छनान्तरगतम् = मूर्च्छना (स्वरों का क्रम से आरोह तथा अवरोह) के अन्तर्गत, अपि = भी, तारम् = अति ऊँचा, विरामे = विराम के

समय, म दुम् = कोमल, पुनः = फिर, हेलासंयमितम् = लीला पूर्वक नियन्त्रित, रागद्विरुच्चारितम् = रागों में दो बार उच्चारण की हुई, तस्य उस (रेभिल) की मधुरगिरः = कोमल वाणी की, तम् = उस, स्वरसंक्रमम् = स्वरयोजना को, श्लिष्टम् = मिली हुई, तन्त्रीस्वनम् = वीणा की ध्वनि को, श्र ण्वन् = सुनता हुआ, इव = सा, अहम् = मैं, गच्छामि = जा रहा हूँ।।

और भी-

अर्थः— यह सत्य है कि गाने का समय बीत जाने पर भी अक्षरों की मूर्च्छना (स्वरों का क्रमशः चढ़ाना और उतारना) के अन्तर्गत (चढ़ाने के समय) काफी ऊँचा, विराम के समय कोमल; और पुनः लीलापूर्वक नियन्त्रित, रागों में दो बार उच्चारण की हुई उस (रेभिल) की कोमल वाणी की उस स्वरयोजना को तथा (उससे) मिली हुई वीणा की आवाज को, मैं सुनता हुआ सा जा रहा हूँ (अर्थात् सब प्रकार से सुन्दर 'रेभिल) का गाना अब भी हमारे कानों में (ठीक ठीक गूँज रहा है)।।५।।

टीका— सत्यम् = वस्तुतः; यत् गीतस्य = संगीतस्य समये = काले; विरते = व्यतीते; सति, अपि; वर्णानाम् = गानाक्षराणाम्; मूर्च्छना = स्वरारोहावरोहक्रमः। तस्याः अन्तरगतम् = मध्ये वर्तमानम्, अपि; तारम् = उच्चैः; विरामे = अवसाने; म दुम् = कोमलम्; पुनः = मुहुश्च; हेलया = लीलया संयमितम् = नियमितम्; रागेषु = रागविशेषेषु द्विरुच्चारितम् = द्विरुक्तम्; तस्य = रेभिलस्य; मधुरगिरः = मधुरवाण्याः; तम् = श्रुतपूर्वम्; स्वराणाम् = निषदादीनाम् संक्रमम् = आरोहावरोहरूपं शोभनं क्रमम्; श्लिष्टम् = गानाक्षरैः अभिन्नं गानाक्षरमिलितमित्यर्थः; तन्त्र्याः = वीणायाः स्वनम् = ध्वनिम्; श्र ण्वन् = श्रवणं कुर्वन्; इव अहम् = चारुदत्तः; गच्छामि = व्रजामि।।५।। इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार तथा शार्दलविक्रीडित छन्द है।

विदूषकः— भो वअस्स! आवणंतररच्छाविभाएसु सुहं कुक्कुरा वि सुत्ता। ता गेहं गच्छेम्ह। (अग्रतो वलोक्य) वअस्स! पेक्ख पेक्ख। एसो वि अंधआरस्स विअ अवआसं देंतो अंतरिक्खपासादादो ओदरदि भअवं चंदो। (भो वयस्य! आपणान्तररथ्याविभागेषु सुखं कुक्कुरा अपि सुप्ताः। तद्ग हं गच्छावः। वयस्य! पश्य पश्य। एषो प्यन्धकारस्येवावकाशं ददन्तरिक्षप्रासादादवतरति भगवांश्चन्द्रः।)

चारुदत्तः— सम्यगाह भवान्

असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः।
जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम् ।।६।।

अर्थः— विदूषक — हे मित्र! बाजार की गलियों में जगह-जगह पर कुत्ते भी सुख से सो गये हैं। तो घर चलें। (सामने देखकर) मित्र! देखो, देखो। अंधेरे को (फैलने के लिए) जगह (अवकाश) सा देते हुए भगवान् चन्द्रमा भी आकाश रूपी महल से ढल (उतर) रहे हैं।

अन्वयः— जलावगाढस्य, वनद्विपस्य, अवशिष्टम्, तीक्ष्णम्, विषाणाग्रम्, इव, हि, उन्नतकोटिः, असौ, इन्दुः, तिमिरावकाशम्, दत्त्वा, अस्तम्, व्रजति।।६।।

शब्दार्थः— जलावगाढस्य = जल में डूबे हुए, वनद्विपस्य = जंगली हाथी के, अवशिष्टम् = (जल में डूबने से) बचे हुए, तीक्ष्णम् = तीखे, नुकीले, विषाणाग्रमिव = दाँत के अगले हिस्से की तरह, हि = निश्चय ही, उन्नतकोटिः = टेढ़ा (उठा हुआ) किनारे वाला, असौ = यह, इन्दुः = चन्द्रमा, तिमिरावकाशम् = अँधेरे के लिए स्थान को, दत्त्वा = देकर, अस्तम् = अस्ताचल को, व्रजति = जा रहा है।।

अर्थः— चारुदत्त- आपने ठीक कहा—

जल में डूबे हुए जंगली हाथी के (जल में डूबने से) बचे हुए दाँत के तीखे अगले हिस्से की तरह उन्नत अग्रभागवाला यह चन्द्रमा अँधेरे को (फैलने के लिए) मौका देकर अस्ताचल को जा रहा है।।६।।

टीका— जले = सलिले अवगाढस्य = मग्नस्य; वनद्विपस्य = वनगजस्य; अवशिष्टम् = सलिलावगाहनात् अवशेषीभूतम्; तीक्ष्णम् = तीव्रम्; विषाणस्य = दन्तस्य अग्रम् = अग्रभागमिव, हि = खलु; उन्नता = उच्छ्रिता कोटिः = अग्रभागः यस्य सः; असौ द श्यमानः; इन्दुः चन्द्रः; तिमिरेभ्यः = अन्धकारेभ्यः अवकाशम् = प्रसरणावसरमित्यर्थः; दत्त्वा = प्रदाय; अस्तम् = अस्ताचलम्; व्रजति = गच्छति।।६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं उपजाति छन्द है।

विदूषकः—भो, एदं अम्हाणं गेहं। वड्ढमाणअ, वड्ढमाणअ! उग्घाटेहि दुआरअं। (भोः, इदमस्माकं गेहम्। वर्धमानक, वर्धमानक! उद्घाटय द्वारम्।)

चेटः — अज्जमित्तेअस्स शलशंजोए शुणीअदि। आगदे अज्जचालुदत्ते। ता जाव दुआलअं शे उग्घाटेमि। (तथा कृत्वा) अज्ज! वंदामि। मित्तेअ! तुमं पि वंदामि। एत्थ वित्थिण्णे आशणे णिशीददु अज्जा। (आर्यमैत्रेयस्य स्वरसंयोगः श्रूयते। आगत आर्यचारुदत्तः। तद्यावद्द्वारमस्योद्घाटयामि। आर्य! वन्दे। मैत्रेय! त्वामपि वदे। अत्र विस्तीर्णे आसने निसीदतमार्यौ।

(उभौ नाट्येन प्रविश्योपविशतः)

विदूषकः— वड्ढमाणअ! रअणिअं सद्दावेहि पादाइं धोइदुं। (वर्धमानक! रदनिकामाकारय पादौ धावितुम्।)

चारुदत्तः— (सानुकम्पम्) अलं सुप्तजनं प्रबोधयितुम्।

चेटः — अज्जमित्तेअ! अहं पाणिअं गेण्हे। तुमं पादाइं धोवेहि। (आर्यमैत्रेय! अहं पानीयं ग ह्णामि। त्वं पादौ धाव।।

विदूषकः—(सक्रोधम्) भो वअस्स! एसो दाणिं दासीए पुत्तो भविअ पाणिअं गेण्हेदि। मं उण बम्हणं पादाइं धोवावेदि। (भो वयस्य! एष इदानीं दास्याः पुत्रो भूत्वा पानीयं ग ह्णाति। मां पुनर्ब्राह्मणं पादौ धावयति।)

चारुदत्तः—वयस्य मैत्रेय! त्वमुदकं ग हाण। वर्धमानकः पादौ प्रक्षालयतु।

चेटः — अज्जमित्तेअ! देहि उदअं। (आर्यमैत्रेय! देह्युदकम्।)

(विदूषकस्तथा करोति, चेटश्चारुदत्तस्य पादौ प्रक्षाल्यापसरति)

चारुदत्तः— दीयतां ब्राह्मणस्य पादोदकम्।

विदूषकः—किं मम पादोदएहिं? भूमीए ज्जेव्व मए ताडिदगद्दहेण विअ पुणो वि लोट्टिदव्वं। (किं मम पादोदकैः? भूम्यामेव मया ताडितगर्दभेनेव पुनरपि लोठितव्यम्।)

चेटः— अज्जमित्तेअ। बम्हणे खु तुमं। (आर्यमैत्रेय! ब्राह्मणः खलु त्वम्।)

विदूषकः—जधा सव्वणागाणं मज्झे डुंडुहो, तधा सव्वबम्हणाणं मज्झे अहं बम्हणो। (यथा सर्वनागानां मध्ये डुण्डुभः तथा सर्वब्राह्मणानां मध्ये हं ब्राह्मणः।)

चेटः— अज्जमित्तेअ! तधा वि धोइश्शं। (तथा कृत्वा) अज्जमित्तेअ! एदं तं शुवण्णभंडअं मम दिवा, तुह लत्तिं च। ता गेण्ह। (आर्यमैत्रेय! तथापि धाविष्यामि। आर्यमैत्रेय! एतत्तत्सुवर्णभाण्डं मम दिवा, तव रात्रौ च, तद्ग हाण।) (इति दत्त्वा निष्क्रान्तः)

विदूषकः—(ग हीत्वा) अज्ज वि एदं चिट्ठदि किं एत्थ उज्जइणीए चोरो वि णत्थि, जो एदं दासीए पुत्तं णिद्दाचोरं ण अवहरदि। भो वअस्स! अब्भंतरचतुस्सालअं पवेसआमि णं। (अद्याप्येतत्तिष्ठति। किमत्रोज्जयिन्यां चौरो पि नास्ति, य एतं दास्याःपुत्रं निद्राचौरं नापहरति। भो वयस्य! अभ्यन्तरचतुःशालकं प्रवेशयाम्येनम्।)

चारुदत्तः—

अलं चतुःशालमिमं प्रवेश्य
प्रकाशनारीध त एष यस्मात्।
तस्मात्स्वयं धारय विप्र!
तावद्यावन्न तस्याः खलु भोः समर्प्यते।।७।।

अर्थः— विदूषक — श्रीमान् जी यह हमारा घर है। वर्धमानक वर्धमानक! दरवाजा खोलो।

चेट आर्य मैत्रेय की आवाज सुनाई पड़ती है। 'चारुदत्त' आ गए। तो अब इनके लिए किवाड़ों को खोल दूँ। (खोलकर) आर्य! प्रणाम करता हूँ। मैत्रेय! तुम्हें भी नमस्कार करता हूँ। इस विछे हुए आसन पर आप दोनों बैठें।।

(दोनों अभिनय के द्वारा प्रवेश करके बैठ जाते हैं।)

विदूषक— वर्धमानक! पैर धुलवाने के लिए 'रदनिका' को बुलाओ।

चारुदत्त— (कृपापूर्वक) सोए हुए को मत जगाओ।

चेट — आर्य मैत्रेय! मैं पानी लेता हूँ। तुम चारुदत्त के पैर को धोओ।

विदूषक— (क्रोध के साथ) हे मित्र यह नीच जाति का होकर इस समय पानी लेता है और मुझ ब्राह्मण से पैर धोने के लिये कहता है।

चारुदत्त— मित्र मैत्रेय! तुम पानी लो। वर्धमानक पैरों को धोवे।

चेट— आर्य मैत्रेय! जल दीजिए।

(विदूषक जल देता है। चेट 'चारुदत्त' का पैर धोकर हट जाता है)

चारुदत्त— ब्राह्मण (विदूषक) को पैर धोने के लिए पानी दो।

विदूषक- मुझे पैर धोने के लिए जल से क्या मतलब? पीटे गये गधे की भाँति मुझे तो फिर जमीन पर ही लोटना (सोना) है।

चेट— आर्य मैत्रेय! तुम तो ब्राह्मण हो।

विदूषक— जैसे सभी साँपों में डुम्डुभ साँप होता है। उसी प्रकार सब ब्राह्मणों के बीच में मैं भी (नाममात्र का) ब्राह्मण हूँ।

चेट— आर्य मैत्रेय! तो भी धुलाऊँगा। (पैर धुलवा कर) आर्य मैत्रेय! यह सोने के आभूषण का पात्र दिन में मेरा और रात में तुम्हारा है, अर्थात् मुझे दिन में तथा तुमको रात्रि में इसकी रक्षा करनी है तो लो। (देकर चला जाता है)।

विदूषक— (लेकर) यह आज भी मौजूद है। क्या इस 'उज्जयिनी' में कोई चोर भी नहीं है जो नींद में बाधा डालने वाले, अधम, सोने के आभूषणों के इस पात्र को नहीं चुरा लेता है। हे मित्र! इसको भीतरी चतुःशाला में भेजता हूँ।

अन्वयः— इमम्, चतुशालम्, प्रवेश्य, अलम्, यस्मात्, एषः, प्रकाशनारीध तः, तस्मात्, भोःविप्र! तावत्, स्वयम्, धारय, यावत्, खलु, तस्याः, (हस्ते), न समर्प्यते।।७।।

शब्दार्थः— इमम् = इसको, चतुःशालम् = चौपाल में, प्रवेश्य = भेजने से, अलम् = बस (करो), यस्मात् = क्योंकि, एषः = यह, प्रकाशनारीध तः = वेश्या के द्वारा रखा गया है, तस्मात् = तो, भोः विप्र = हे ब्राह्मण!, तावत् = तब तक, स्वयम् = स्वयं तुम, धारय = रक्खो, रखवाली करो, यावत् = जबतक, खलु = निश्चय ही, तस्याः = उसके, (हस्ते = हाथ में), न = नहीं, समर्प्यते = समर्पित कर दिया जाता, लौटा दिया जाता।।

अर्थः— **चारुदत्त—** इसे चतुःशाला में भेजना ठीक नहीं है, क्योंकि यह वेश्या की धरोहर है। इसलिए हे ब्राह्मण! जब तक यह 'वसन्तसेना' को लौटा नहीं दिया जाता, तब तक इसकी रखवाली तुम स्वयं करो।।७।।

टीका— इमम् = सुवर्णभाण्डमित्यर्थः; चतुःशालम् = चतु प्रकोष्ठयुक्तं ग हमित्यर्थः; प्रवेश्य = प्रापय्य; अलम् = व्यर्थम्, ग हाभ्यन्तरे प्रवेशयितव्यं न इत्यर्थः; यस्मात् = यतः, यस्मात्कारणादित्यर्थः; एषः = आभूषणसमूहः; प्रकाशनार्या = वेश्यया, वसन्तसेनया इत्यर्थः, ध तः = न्यासरूपेण स्थापितः, परिहितः इति केचन, तस्मात् = ततः, तस्मात्कारणादित्यर्थः; भोः विप्र = हे ब्राह्मण! तावत् = तावत्कालपर्यन्तं स्वयं धारय = स्वसमीपे स्थापय, त्वं स्वयमेव रक्ष इत्यर्थः; यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्; खलु = अवश्यम्; तस्याः = वेश्यायाः वसन्तसेनायाः; हस्ते इति शेषः; न समर्प्यते = न दीयते।।७।।

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

(निद्रां नाटयन्, 'तं तस्य स्वरसंक्रमम्-' (३/५) इति पुनः पठति)

विदूषकः—अवि णिद्दाअदि भवं?। (अपि निद्राति भवान्?।)

चारुदत्तः— अथ किम्।

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।
अद श्यरूपा चपला जरेव या मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्धते।।८।।

(निद्रा का अभिनय करता हुआ,—'उसका वह स्वर का उतार चढ़ाव'—(३/५) यह फिर पढ़ता है)

अर्थः— विदूषक — क्या आप सो रहे हैं?

अन्वयः— हि, ललाटदेशात्, नयनावलम्बिनी, इयम्, निद्रा, माम्, उपसर्पति, इव, अद श्यरूपा, चपला, जरा, इव, या मनुष्यसत्त्वम्, परिभूय, वर्धते।।८।।

शब्दार्थः—हि = क्योंकि, ललाटदेशात् = माथे से, नयनावलम्बिनी = आँखों में उतरी हुई, इयम् = यह, निद्रा = नींद, माम् = मुझको, मेरी ओर, उपसर्पति इव = आ सी रही है, अद श्यरूपा = न दीख पड़ने वाली, चपला = च चल, जरा इव = व द्धावस्था की भाँति, या = जो (नींद), मनुष्यसत्त्वम् = मनुष्यों के बल को, परिभूय = तिरस्कृत करके, वर्धते = बढ़ती है।।

अर्थः— **चारुदत्त—** और क्या?

मस्तक से आँखों में उतरती हुई यह नींद मेरी ओर आ रही है अर्थात् धीरे-धीरे मुझे वश में कर रही है। न दीख पड़ने वाली च चल व द्धावस्था की भाँति यह नींद भी मनुष्यों के बल को अभिभूत करके बढ़ती है।।८।।

टीका— हि = यतः; ललाटदेशात् = भालप्रदेशात्; नयने = नेत्रे अवलम्बते = आश्रयते; इयम् = अनुभूयमाना; निद्रा = स्वापः; माम् = चारुदत्तम्; उपसर्पति = आगच्छति, इव, अद श्यम् = अन्तर्हितम् रूपम् = आकृतिः; चपला = च चला; जरा = व द्धावस्था; इव; या = निद्रा; मनुष्याणाम् = मानवानाम्, सत्त्वम् = बलम्; परिभूय = तिरस्कृत्य, वर्धते = व द्धिं गच्छति।।८।।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में उत्प्रेक्षा अलंकार है। उत्तरार्द्ध में उपमा अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—वंशस्थ।

विदूषकः— ता सुवेम्ह। (तत्स्वपिवः।) (नाट्येन स्वपिति)

(ततः प्रविशति शर्विलकः)

शर्विलकः —

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेशं
शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम्।
गच्छामि भूमिपरिसर्पणघ ष्टपार्श्वो
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजंगः।।९।।

अर्थः— विदूषक — तो सोते हैं। (अभिनय के द्वारा सो जाता है)।

(इसके बाद अर्थात् आधीरात में 'शर्विलक' प्रवेश करता है)

अन्वयः— शिक्षाबलेन, च, बलेन, च, शरीरपरिणाहसुखप्रवेशम्, कर्ममार्गम्, कृत्वा, भूमिपरिसर्पणघ ष्टपार्श्वः, (सन्, अहम्), निर्मुच्यमानः, जीर्णतनुः, भुजंगः, इव, गच्छामि।।९।।

शब्दार्थः— शिक्षाबलेन = (चोरी करने की) शिक्षा के जोर से, च = और, बलेन = (शरीर के) बल से, च = भी, शरीरपरिणाहसुखप्रवेशम् = देह की लम्बाई - चौड़ाई के सुख से घुसने के लायक, कर्ममार्गम् = सेंध को कृत्वा = करके, भूमिपरिसर्पणघ ष्टपार्श्वः = जमीन पर घिसकने से छिले हुए पार्श्वभागवाला, (सन् = होता हुआ, अहम् = मैं), निर्मुच्यमानः = केंचुली छोड़ते हुए, जीर्णतनुः = जर्जर देहवाले भुजंगः इव = साँप के समान, गच्छामि = जा रहा हूँ।

अर्थः— शर्विलक — अपनी शिक्षा के जोर तथा बल के प्रभाव से (अपने) देह की लम्बाई चौड़ाई (विशालता) के सुख से घुसने के लायक सेंध लगा करके, जमीन पर घिसकने से छिले हुए पार्श्वभागवाला मैं (शर्विलक), केंचुली छोड़ते हुए जर्जर देहवाले साँप के समान; सेंध में जाता हूँ।।९।।

टीका— शिक्षायाः = चौर्यशिक्षायाः चौर्यज्ञानस्य वा बलेन = सामर्थ्येन; च = तथा; बलेन = शरीरशक्त्या; च = अपि; शरीरस्य = देहस्य परिणाहः = विशालता तथा सुखेन = अनायासेन प्रवेशः = गमनमित्यर्थः यत्र तम्; कर्मणः = चौर्यस्य मार्गम् = पन्थानम्, सन्धिमित्यर्थः; कृत्वा = विधाय; स जातघर्षणौ पार्श्वौ = शरीरस्य वामदक्षिणभागौ यस्य तथाभूतः; सन्

अहम्ः; निर्मुच्यमानः = क चुकात् परिहीयमानः; जीर्णा = प्राचीना तनुः = वपुः यस्य सः; भुजंगः = सर्प, इव; गच्छामि = ग हाभ्यन्तरम् यामि इत्यर्थः।।६।।

यहाँ उपमा अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।६।।

(नभो वलोक्य सहर्षम्) अये, कथमस्तमुपगच्छति स भगवान्म गांकः।

तथा हि,-

न पतिपुरुषशंकितप्रचारं परग हदूषणनिश्चितैकवीरम्।
घनपटलतमोनिरुद्धतारा रजनिरियं जननीव संव णोति।।१०।।

अर्थः— (आकाश की ओर देख कर प्रसन्नता के साथ) अरे! क्या यह भगवान् चन्द्रमा डूबने जा रहे हैं। जैसे कि-

अन्वयः— घनपटलतमोनिरुद्धतारा, इयम्, रजनी, जननी, इव, न पतिपुरुषशंक्तिप्रचारम्ः परग हदूषण-निश्चितैकवीरम्, (माम्), संव णोति।।१०।।

शब्दार्थः— घनपटलतमोनिरुद्धतारा = बादलों के समूह की भाँति गाढ़े अँधेरे से तारों को ढकनेवाली, इयम् = यह, रजनी = रात, जननी = माता (के), इव = समान, न पतिपुरुषशंकितप्रचारम् = राजा के सिपाहियों के द्वारा आने-जाने के विषय में शंका किये जाने वाले, परग हदूषणनिश्चितैकवीरम् = दूसरे के घरों में सेंध लगाने में माने हुए सबसे बड़े वीर, माम् = मुझको, संव णोति = ढक रही है।

अर्थः— बादलों के समूह की भाँति गाढ़े अँधेरे से तारों को ढकने वाली यह रात माता के समान, राजा के सिपाही जिसके आने-जाने को शंका की निगाह से देखते हैं, तथा जो दूसरे के घरों में सेंध लगाने में माना हुआ सबसे बड़ा वीर है। ऐसे मुझको ढक रही है। (अँधेरी रात चोरों को छिपाकर उसी प्रकार उनकी रक्षा करती है, जैसे माता अपने बालक की)।।१०।।

टीका— घनानाम् = मेघानाम् पटलेनेव = समूहेनेव तमसा = अन्धकारेण निरुद्धाः = आव ताः ताराः = नक्षत्राणि यया घनतिमिरेण = घनान्धकारेण निरुद्धाः सर्वे भावाः = पदार्थाः यया इयम् = वर्तमाना; रजनी = रात्रिः; जननी = माता; इव, न पतिपुरुषैः = राजपुरुषैः शंकितः = शंकया सह विचारितः प्रचारः = स चारः यस्य तम्; तथा परेषाम् = अन्येषाम् ग हेषु = भवनेषु दूषणे सन्धिकरणे निश्चितः = मान्यः एकः = प्रधानः वीरः = शूरः तम्; मामिति शेषः; संव णोति = आच्छादयति।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है। छन्द का लक्षण- 'अयुजि नयुगरेफतो युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा'।।१०।।

व क्षवाटिकापरिसरे संधिं कृत्वा प्रविष्टो स्मि मध्यमकम्। तद्यावदिदानीं चतुःशालकमपि दूषयामि। भोः,

कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद्वर्धते
विश्वस्तेषु च व चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवा जलि
र्मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना।।११।

अर्थः— फुलवाड़ी के पास की चहार दीवारी में सेंध लगाकर (चारुदत्त के) घर में घुस आया हूँ। तो अब इस चौपाल (चतुःशाला) में भी सेंध लगाता हूँ।

अन्वयः— यत्, स्वप्ने, वर्धते, विश्वस्तेषु, व चनापरिभवः, च, हि, तत् चौर्यम्, शौर्यम्, न, (अतः), पुरुषाः, इदम्, कामम्, नीचम्, वदन्तु, स्वाधीना, वचनीयता, अपि, हि, वरम्, बद्धः, सेवा जलिः, न, हि, एषः, मार्गः, पूर्वम्, द्रौणिना, नरेन्द्रसौप्तिकवधे, कृतः।।११।।

शब्दार्थः— यत् = जो, स्वप्ने = सोने पर, वर्धते = बढ़ती है, विश्वस्तेषु = विश्वास किये हुए लोगों में, व चनापरिभवः = व चना रूप अपमान है, हि = निश्चय ही, तत् = वह, चौर्यम् = चोरी है, शौर्यम् = शूरता, न = नहीं है, (अतः) पुरुषाः = मनुष्य लोग, इदम् = इसको, कामम् = भले ही, नीचम् = अधम, वदन्तु = कहें, स्वाधीना = अपने आधीन, वचनीयता = निन्दनीय कार्य करना, अपि = भी, हि = अवश्य ही, वरम् = श्रेष्ठ है, बद्धः = जोड़ी गयी, सेवा जलिः = सेवा की अ जलि, न = नहीं (श्रेष्ठ है), हि = इसी बात को समझ कर, एषः = यह (चोरीरूप) मार्गः = मार्ग, पूर्वम् = पहले, द्रौणिना = अश्वत्थामा के द्वारा, नरेन्द्रसौप्तिकवधे = राजा (पाण्डव) के सोये हुए (पुत्रों) की हत्या में, कृतः = किया गया है।

अर्थः— अरे! जो मनुष्यों के सो जाने पर होती है तथा जिसमें विश्वास के साथ सोये हुए लोगों के धन का छिनना रूप अपमान होता है वह चोरी है, शूरता नहीं। (अतः) मनुष्य लोग उस चोरी को भले ही अधम कहें किन्तु फिर भी मेरा तो यही मत है कि किसी के भी अधीन न होने के कारण यह चोरी रूप निन्दित काम भी अच्छा है। किसी की सेवा में हाथ जोड़ना अच्छा नहीं। और यह रास्ता तो पहले ही राजा पाण्डव के सोये हुए पुत्रों की हत्या में 'द्रोणाचार्य' के पुत्र अश्वत्थामा ने दिखा दिया है।।११।।

टीका— यत् चौरकार्यम्, स्वप्ने = निद्रादशायाम्, वर्धते = प्रसरति; विश्वस्तेषु = शंकाविहीनेषु जनेषु; सविश्रम्भं सुप्तेषु; व चनया = द्रव्याद्यपहरणरूपया प्रतारणया परिभवः = तिरस्कारः; अस्तीति; हि = निश्चितम्, तत् चौर्यम् = चौरकर्म, तस्करता, अस्ति निगद्यते वा, शौर्यम् = शूरता नास्ति; अतः; पुरुषाः = जनाः; इदम् = कार्यम्; कामम् = यथेष्टम्; नीचम् = अधमं कर्म; वदन्तु = कथयन्तु; तत्र मम नास्ति काचित् विप्रतिपत्तिः, पर च मदीयं मतं त्विदम् अस्ति-स्वाधीना = स्वाश्रया; वचनीयता = परीवादः; अपि; हि = अवश्यम्; वरम् = श्रेष्ठम्; बद्धः = सम्पुटितः सेवायाः = धनिकजनशुश्रूषायाः अ जलिः, न = न वरमित्यर्थः; हि = इदमेव मत्वा; एषः = चौर्यकर्मरूपः, मार्गः = पन्थाः; पूर्वम् = पुरा, महाभारतकाले इति भावः; द्रौणिना = द्रोणपुत्रेण अश्वत्थाम्ना; नरेन्द्राणाम् = शासकानां युधिष्ठिरपुत्रादीनाम्, सुप्ते = शयने भवः सौप्तिकः = शयनावस्थायाम् सम्पन्नः सः चासौ वधः = विनाशः तस्मिन; कृतः = निर्मितः।

इस श्लोक में काव्यलिंग एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

तत्कस्मिन्नुद्देशे संधिमुत्पादयामि।

> **देशः को नु जलावसेकशिथिलो यस्मिन्न शब्दो भवे-**
> **द्भित्तीनां च न दर्शनान्तरगतः संधिः करालो भवेत्।**
> **क्षारक्षीणतया च लोष्टककृशं जीर्णं क्व हर्म्यं भवे-**
> **त्कस्मिन्स्त्रीजनदर्शनं च न भवेत्स्यादर्थसिद्धिश्च मे।।१२।।**

अर्थः— तो किस स्थान पर सेंध लगाऊँ।

अन्वयः— कः, नु, भित्तीनाम्, देशः, जलावसेकशिथिलः, भवेत्, यस्मिन्, शब्दः, न, भवेत्; सन्धिः, च, करालः, भवेत; न, च, दर्शनान्तरगतः; क्व, च, हर्म्यम्, क्षारक्षीणतया, लोष्टककृशम्, जीर्णम्, च, भवेत; कस्मिन्, स्त्रीजनदर्शनम्, च, न, भवेत्, मे, अर्थसिद्धिः, च, स्यात्।।१२।।

शब्दार्थः— कः = कौन, नु = यह प्रश्नवाचकता का द्योतक अव्यय है, भित्तीनाम् = भीतों का, दीवालों का, देशः = स्थान, जलावसेकशिथिलः = पानी पड़ने से गीला, भवेत् = होगा, यस्मिन् = जिस स्थान में, शब्दः = आवाज, न = नहीं, भवेत् = होगी, सन्धिः = सेंध, च = भी, करालः = भयंकर, बड़ी, भवेत् = होगी और न = न, दर्शनान्तरगतः = दिखलायी पड़े, क्व = कहाँ, हर्म्यम् = महल, क्षारक्षीणतया = क्षार से पतली हो जाने के कारण, लोष्टककृशम् = कम ईंटों वाली, जीर्णम् = जर्जर, च = भी, भवेत् = होगी, कस्मिन् = किस स्थान में, स्त्रीजनदर्शनम् = स्त्रियों का सामना, च = भी, न भवेत् = न हो, मे = मेरी, अर्थसिद्धिः = काम में सफलता, च = भी स्यात् = हो।।

अर्थः— हमेशा पानी पड़ने से गीला अतः कमजोर हुआ दीवारों का कौन सा ऐसा स्थान होगा, जिसमें सेंध लगाते समय आवाज न हो, सेंध बड़ी हो, किन्तु दिखलायी न पड़े। और कहाँ की दीवार क्षार लग जाने से पतली हो जाने के कारण कम ईंटों वाली एवं जर्जर होगी? किस जगह सेंध करने से स्त्रियों का सामना न होगा और मेरे चोरी के काम में सफलता भी मिलेगी।।१२।।

टीका— कः नु = वितर्के; भित्तीनाम् = कुड्यानाम्; देशः = भागः; जलानाम् = सलिलानाम्; अवसेकेन = सेचनेन शिथिलः = अकठिनः; भवेत् = स्यात् = यस्मिन् = देशे, शब्दः = सन्धिच्छेदस्य ध्वनिः; न भवेत्; सन्धिः = सुरंगा; च करालः = भयंकरः विशालः; भवेत्, न च दर्शनान्तरगतः = द ष्टिविषयं प्राप्तः भवेत्; रक्षिणां जनानां वेति शेषः; क्व च = कुत्र च; हर्म्यम् = ग हम्, भित्तिः इत्यर्थः; क्षारेण = लवणेन क्षीणतया = कृशतया; कृशानि = दुर्बलानि क्षीणानि इत्यर्थः लोष्टकानि = इष्टकादिखण्डानि यत्र, जीर्णम् = दुर्बलम्, च भवेत्; कस्मिन् = देशे; स्त्रीजनानाम् = स्त्रीणाम् दर्शनम् = साक्षात्कारः; न भवेत; मे = मम; अर्थस्य = कार्यस्य सिद्धिः = सफलता च स्यात्।।१२।।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।१२।।

(भित्तिं पराम श्य) नित्यादित्यदर्शनोदकसेचनेन दूषितेयं भूमिः क्षारक्षीणा। मूषिकोत्करश्चेह। हन्त, सिद्धो यमर्थः। प्रथममेतत्स्कन्दपुत्राणां सिद्धिलक्षणम्। अत्र कर्मप्रारम्भे कीद शमिदानीं संधिमुत्पादयामि। इह खलु भगवता कनकशक्तिना चतुर्विधः संध्युपायो दर्शितः। तद्यथा—पक्वेष्टकानामाकर्षणम्, आमेष्टकानां छेदनम्, पिण्डमयानां सेचनम्, काष्ठमयानां पाटनमिति। तदत्र पक्वेष्टके इष्टिकाकर्षणम्। तत्र—

पद्मव्याकोशं भास्करं बालचन्द्रं
वापी विस्तीर्णं स्वस्तिकं पूर्णकुम्भम्।
तत्कस्मिन्देशे दर्शयाम्यात्मशिल्पं
द ष्ट्वा श्वो यं यद्विस्मयं यान्ति पौराः।।१३।।

अर्थः— (दीवार को टटोल कर) रोज सूर्य के दिखालायी पड़ने पर जल देने से यह भूमि (दीवार) गीली एवं क्षार लगने से कटी हुई है। यहाँ चूहों के द्वारा खने गये छोटे-छोटे मिट्टी के टुकड़ों का ढेर भी है। वाह! काम बन गया। 'कार्तिकेय' के पुत्रों चोरों का यह काम सिद्ध

होने का पहला चिह्न है। अब काम शुरू करने पर यहाँ कैसी सेंध बनाऊँ? वास्तव में इस सम्बन्ध में तो भगवान् 'कनकशक्ति' ने चार प्रकार का सेंध फोड़ने का उपाय बतलाया है। जैसे कि पक्की ईंटों के मकान में ईटों का बाहर खींचना, कच्ची ईंटों के घरों में ईंटों का काटना, मिट्टी के पिण्डों से बनी हुई दीवारों को पानी से सींचना, काठ से बनी दीवारों के काठों को उखाड़ना। तो यहाँ पक्की ईंटों के मकान में ईंटों का खींचना ही ठीक होगा। वहाँ—

अन्वयः— पद्मव्याकोशम्, भास्करम्, बालचन्द्रम्, वापी, विस्तीर्णम्, स्वस्तिकम्, पूर्णकुम्भम्, (एते, सप्त, सन्धिप्रकाराः, सन्ति,), तत्, कस्मिन्, देशे आत्मशिल्पम्, दर्शयामि, यत्, यम्, द ष्टवा, श्वः, पौराः, विस्मयम्, यान्ति।।१३।।

शब्दार्थः—पद्मव्याकोशम् = खिले हुए कमल के समान आकारवाली, भास्करम् = सूर्य के समान गोल, बालचन्द्रम् = द्वितीया के चन्द्रमा के समान तिरछी, वापी = बावड़ी जैसी, विस्तीर्णम् = चौड़ी स्वस्तिकम् = स्वस्तिक के आकार जैसी, पूर्ण कुम्भम् = नीचे-ऊपर कुछ संकरी तथा बीच में चौड़ी। (एते = ये, सप्त = सात, सन्धिप्रकाराः = सेंधों के प्रकार, सन्ति = हैं), तत् = तो, कस्मिन् = किस, देशे = स्थान में, आत्मशिल्पम् = अपनी कला को, दर्शयामि = दिखलाऊँ, यत् = जिससे, यम् = जिसको, द ष्ट्वा = देखकर, श्वः = सुबह, पौराः = नगरी के लोग, विस्मयम् = आश्चर्य को, यान्ति = जायेंगे।।

अर्थः— खिले हुए कमल, सूर्य (गोल), द्वितीया के चन्द्रमा (अर्द्धचन्द्राकार) बावड़ी, विस्त त, स्वस्तिक (इस प्रकार के चिह्न वाला), पूर्ण घड़ा (ये सात सेंध के प्रकार हैं) तो किस जगह अपनी (सेंध फोड़ने की) चतुराई दिखलाऊँ? जिसे सबेरे देखकर नगरी के लोग आश्चर्य चकित हो जायँ।।१३।।

टीका— पद्मवत् = कमलवत् व्याकोशम् = उत्फुल्लम्, विकसितकमलसमानमित्यर्थः; भास्करम् = सूर्यमण्डलसन्निभम्; गोलाकारमित्यर्थः; बालचन्द्रम् = शुक्लद्वितीयाचन्द्राकारम्, वक्रमित्यर्थः; वापी = दीर्घिकासद शम्, चतुष्कोणमित्यर्थः; विस्तीर्णम् = विस्त तम्; स्वस्तिकम् = स्वस्तिकाकारतुल्यम्; पूर्णकुम्भम् = पूर्वघटाकारमधः उर्ध्वं च कृशं मध्ये स्थूलमिति। (एते = पूर्वकथिताः; सप्त = सप्तसंख्याकाः सन्धिप्रकाराः = सन्धिभेदाः सन्ति)। तत् = तस्मात् कस्मिन् देशे = कस्मिन् भित्तिस्थाने; आत्मनः = स्वस्य शिल्पम् = कलाकारिताम्ः; दर्शयामि = प्रदर्शयामि; यत् = यस्मात्; यम् = सन्धिम्ः; द ष्ट्वा = अवलोक्य; श्वः = प्रातःकाले; पौराः = पुरवासिनः; विस्मयम् = आश्चर्यम्; यान्ति = प्राप्नुवन्ति।।१३।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है वैश्वदेवी। लक्षण- ''बाणश्चैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ'।।१३।।

तदत्र पक्वेष्टके पूर्णकुम्भ एव शोभते। तमुत्पादयामि।

अन्यासु भित्तिषु मया निशि पाटितासु
क्षारक्षतासु विषमासु च कल्पनासु।
द ष्ट्वा प्रभातसमये प्रतिवेशिवर्गो
दोषांश्च मे वदति कर्मणि कौशलं च।।१४।।

अर्थः— तो इस पक्की ईंटों वाले मकान में पूर्ण घड़े के आकार की सेंध ही अच्छी लगती है अतः उसी को बनाता हूँ।

अन्वयः— निशि, अन्यासु क्षारक्षतासु, भित्तिषु, विषमासु, कल्पनासु, मया, पाटितासु, प्रभातसमये, प्रतिवेशिवर्गः, द ष्ट्वा, मे, दोषान्, कर्मणि, कौशलम्, च, वदति।।१४।।

शब्दार्थः— निशि = रात में, अन्यासु = दूसरी, क्षारक्षतासु = क्षार से कटी हुई, भित्तिषु = दीवारों में, विषमासु = विचित्र, कल्पनासु = सूझ-बूझ में, मया = मेरे द्वारा, पाटितासु = फोड़ी जाने पर, प्रभातसमये = प्रातःकाल, प्रतिवेशिवर्गः = पड़ोसी लोग, द ष्टवा = देखकर, मे = मेरे, दोषान् = दोषों को, कर्मणि = काम में, कौशलम् = चतुराई को, च = भी, वदति = कहेंगे।।

अर्थः— रात के समय दूसरी, क्षार से कटी हुई दीवारों के, विचित्र सूझ-बूझ के साथ मेरे द्वारा, फोड़ी जाने पर प्रातःकाल पड़ोसी लोग सेंध को देखकर मेरे दोष एवं सेंध बनाने के काम की चतुराई को कहेंगे।।१४।।

टीका— निशि = रात्रौ; अन्यासु = अपरासु; क्षारेण = लवणेन; क्षतासु = दूषितासु; भित्तिषु = कुड्येषु; एवं विषमासु = विलक्षणासु; कल्पनासु = सन्धिरचनोत्प्रेक्षासु; विलक्षणया कल्पनया इति भावः; मया = शर्विलकेन; पाटितासु = विदारितासु सतीषु; प्रभातसमये = प्रातःकाले; प्रतिवेशिनाम् = तत्पल्लीस्थानाम् वर्ग = समूहः; द ष्टवा = अवलोक्य; सन्धिमिति शेषः; मे = मम चौरस्येतिभावः; दोषान् = अपराधान्; कर्मणि = कार्ये, चौरकार्ये इत्यर्थः; कौशलम् = नैपुण्यम्, च = अपि, वदति = कथयिष्यति इत्यर्थः।।१४।।

इस श्लोक में तुल्ययोगिता अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।

नमो वरदाय कुमारकार्तिकेयाय, नमः कनकशक्तये ब्रह्मण्यदेवाय देवव्रताय, नमो भास्करनन्दिने, नमो योगाचार्याय यस्याहं प्रथमः शिष्यः। तेन च परितुष्टेन योगरोचना मे दत्ता।

अनया हि समालब्धं न मां द्रक्ष्यन्ति रक्षिणः।
शस्त्रं च पतितं गात्रे रुजं नोत्पादयिष्यति।।१५।।

अर्थः— वरदानी 'कुमार कार्तिकेय को नमस्कार है। 'कनकशक्ति' 'ब्रह्मण्यदेव' एवं 'देवव्रत' के लिए नमस्कार है। 'भास्करनन्दी' के लिए नमस्कार है। 'योगाचार्य' को नमस्कार है, जिनका मैं पहला शिष्य हूँ। मेरे ऊपर खुश हुए उन्होंने योगरोचना (एक ऐसा मलहम जिसके लगा लेने से मनुष्य दिखलायी नहीं पड़ता और न तो शस्त्र आदि के मारने से चोट ही लगती है) मुझे दी है।

अन्वयः— अनया, समालब्धम्, माम्, रक्षिणः, हि, न, द्रक्ष्यन्ति, (तथा) गात्रे, पतितम्, शस्त्रम्, च, रुजम्, न, उत्पादयिष्यति।।१५।।

शब्दार्थः— अनया = इस योगरोचना के द्वारा, समालब्धम् = लेपन किये गये, माम् = मुझको, रक्षिणः = सिपाही, हि = अवश्य, न = नहीं, द्रक्ष्यन्ति = देखेंगे, (तथा = और) गात्रे = शरीर पर, पतितम् = पड़ा हुआ, शस्त्रम् = शस्त्र, च = भी, रुजम् = पीडा को, न = नहीं, उत्पादयिष्यति = उत्पन्न करेगा।

अर्थः— (शरीर में) इस के लेपन कर लेने पर मुझको सिपाही नहीं देख सकेंगे। और शरीर पर पड़ा हुआ शस्त्र पीड़ा नहीं उत्पन्न करेगा।।१५।।

टीका— अनया = योगरोचनया; समालब्धम् = कृतसमालम्भनम्; आलिप्तशरीरमित्यर्थः; माम् = शर्विलकम्; रक्षिणः = रक्षणे नियुक्ताः राजपुरुषाः; हि = निश्चितम्; न द्रक्ष्यन्ति =

नावलोकयिष्यन्ति; तथा गात्रे = शरीरे; पतितम् = प्रक्षिप्तम्; शस्त्रम् = आयुधम्; च = अपि; रुजम् = पीडाम्; न उत्पादयिष्यति = जनयिष्यति।।१५।।

इस श्लोक मे समुच्चय अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है।

(तथा करोति) धिक्कष्टम्। प्रमाणसूत्रं मे विस्म तम्। (विचिन्त्य) आं, इदं यज्ञोपवीतं प्रमाणसूत्रं भविष्यति। यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्, विशेषतो स्मद्विधस्य। कुतः,-

एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसंप्रयोगान्।
उद्घाटनं भवति यन्त्रद ढे कपाटे
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनं च।।१६।।

अर्थ :- (शरीर में लेप करता है) हाय, खेद है। अपना नापने का धागा भूल आया। (सोचकर) हां, यह यज्ञोपवीत नापने का धागा बन जायेगा। ब्राह्मण के लिए यज्ञोपवीत बड़े काम की चीज है। विशेषतः हम जैसों के लिए, क्योंकि -

अन्वयः— (माद शः, चौरः) एतेन, भित्तिषु, कर्ममार्गम्, मापयति, एतेन, भूषणसम्प्रयोगान्, मोचयति, यन्त्रद ढे, कपाटे, (एतेन), उद्घाटनम्, भवति, कीटभुजगैः, दष्टस्य, परिवेष्टनम्, च (भवति)।।१६।।

शब्दार्थः— (माद शः = मेरे जैसा, चौरः = चोर व्यक्ति) एतेन = इस जनेऊ से, भित्तिषु = दीवारों में, कर्ममार्गम् = सेंध को, मापयति = नापता है। एतेन = इससे भूषणसम्प्रयोगान् = जेवरों के जोड़ों को, मोचयति = खोलता है, यन्त्रद ढे = किल्ली से कसकर बन्द की गयी, कपाटे = किवाड़ में, (एतेन = इससे), उद्घाटनम् = खोलना, भवति = होता है, कीटभुजगैः = कीड़ों तथा सर्पों के द्वारा, दष्टस्य = काटे गये व्यक्ति का, (यह), परिवेष्टनम् = लपेटना, बन्धन, च = भी, (भवति = होता है)।।

अर्थः— (चोर) इससे दीवारों में सेंध नापता है। इससे पहने गये जेवरों के जोड़ खोलता है। इससे किल्ली से कस कर बन्द की गयी किवाड़ खोली जाती है। विषैले कीड़ों तथा सर्पों के द्वारा काट खाये गये व्यक्ति के लिये यह बन्धन हो जाती है। (जिस जगह सर्प आदि काटते हैं, उसके ऊपर कस कर बाँध देने से विष का दौर दूसरे अंगों में नहीं होता है)।।१६।।

टीका— माद शः चौरः एतेन = यज्ञोपवीतेन; भित्तिषु = कुड्येषु; कर्मणः = तस्करतारूपकार्यस्य मार्गम् = सन्धिरूपं पन्थानम्; मापयति = मितं विदधाति; एतेन = यज्ञोपवीतेनैव; भूषणनाम = परिहितालंकाराणाम् संप्रयोगान् = श्लिष्टबन्धान्; मोचयति = शिथिलीकरोति इति भाव; यन्त्रेण = अर्गलादिना द ढे = संयमिते, कपाटे, उद्घाटनम् = मोचनम्; भवति = जायते; कीटैः = व श्चिकादिभिः सर्पैः = भुजगैः च; दष्टस्य = स जातदंशनस्य जनस्य; परिवेष्टनम् = परितः बन्धन च भवतीति शेषः।।१६।।

इस श्लोक में समुच्य अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।

मापयित्वा कर्म समारभे। (तथा कृत्वावलोक्य च) एकलोष्टावशेषो यं संधिः। धिक्कष्टम्, अहिना दष्टो स्मि। (यज्ञोपवीतेनांगुलीं बद्ध्वा विषवेगं नाटयति; चिकित्सां कृत्वा) स्वस्थो स्मि। (पुनः कर्म कृत्वा द ष्ट्वा च) अये, ज्वलति प्रदीपः। तथा हि,—

शिखा प्रदीपस्य सुवर्णपि जरा महीतले संधिमुखेन निर्गता।
विभाति पर्यन्ततमः समाव ता सुवर्णरेखेव कषे निवेशिता।।१७।।

अर्थः— नाप कर सेंध लगाना प्रारम्भ करता हूँ। (वैसा करके और देखकर) अब इस सेंध में एक ही ईंट निकालना बाकी रह गया है। हाय! हाय!! बड़ा कष्ट है। साँप ने काट खाया (जनेऊ से अँगुली को बाँध कर विष चढ़ने का अभिनय करता है। दवा करके) स्वस्थ हो गया। (फिर सेंध फोड़कर और देखकर) अरे! दीपक जल रहा है। जैसे कि—

अन्वयः— सुवर्णपि जरा, सन्धिमुखेन, महीतले, निर्गता, पर्यन्ततमः समाव ता, प्रदीपस्य, शिखा कषे निवेशिता, सुवर्णरेखा, इव, विभाति।।१७।।

शब्दार्थः—सुवर्णपि जरा = सोना जैसी पीली, सन्धिमुखेन सेंध के छेद से, महीतले = जमीन पर, निर्गता = निकली हुई, पर्यन्ततमःसमाव ता = चारों ओर अँधेरे से घिरी हुई, प्रदीपस्य = दीपक की, शिखा = लौ, कषे = कसौटी पर, निवेशिता = खींची गयी, सुवर्णरेखा = सोने की रेखा, इव = जैसी, विभाति = शोभित हो रही है।

अर्थः— सोना जैसी पीली, सेंध के छेद से बाहर जमीन पर निकली हुई, चारों ओर अँधेरे से घिरी हुई दीपक की लौ ऐसी शोभित हो रही है जैसी कसौटी पर खींची गई सोने की रेखा।।१७।।

टीका— सुवर्णवत् = कनकमिव पि जरा = पिंगलवर्णा; सन्धिमुखेन = सन्धिछिद्रेण; महीतले = भूतले; निर्गता = निःस ता; पर्यन्तेषु = परितः, चतुर्भागेषु इत्यर्थः तमसा = अन्धकारेण समाव ता = समाच्छन्ना; प्रदीपस्य = दीपकस्य; शिखा = कान्तिः; कषे = शाणे; निवेशिता = दत्ता, सुवर्णस्य = कनकस्य रेखा = लेखा, इव = यथा; विभाति = शोभते।।१७।।

इस श्लोक में उपका अलंकार एवं वंशस्थ छन्द है।

(पुनः कर्म कृत्वा) समाप्तो यं संधिः। भवतु, प्रविशामि। अथवा न तावत्प्रविशामि। प्रतिपुरुषं निवेशयामि। (तथा कृत्वा) अये, न कश्चित्। नमः कार्तिकेयाय। (प्रविश्य, द ष्ट्वा च) अये, पुरुषद्वयं सुप्तम्। भवतु, आत्मरक्षार्थं द्वारमुद्घाटयामि। कथं जीर्णत्वादग हस्य विरौति कपाटम्?। तद्यावत्सलिलमन्वेषयामि। क्व नु खलु सलिलं भविष्यति?। (इतस्ततो द ष्ट्वा सलिलं ग हीत्वा क्षिपन्, सशंकम्) मा तावद्भूमौ पतच्छब्दमुत्पादये। भवतु। एवं तावत्। (प ष्ठेन प्रतीक्ष्य कपाटमुद्घाट्य च) भवतु एवं तावत्। इदानीं परीक्षे किं लक्ष्यसुप्तम्, उत परमार्थसुप्तमिद द्वयम्। (त्रासयित्वा परीक्ष्य च) अये, परमार्थसुप्तेनानेन भविवतयम्। तया हि,-

निःश्वासो स्य न शंकितः सुविशदस्तुल्यान्तरं वर्तते
द ष्टिर्गाढनिमीलिता न विकला नाभ्यन्तरे च चला।
गात्रं स्रस्तशरीरसंधिशिथिलं शय्याप्रमाणाधिकं
दीपं चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि।।१८।।

अर्थः— (फिर सेंध फोड़ कर) यह सेंध पूरी हो गई अच्छा अब प्रवेश करूँ। अथवा पहले मैं स्वयं न घुस कर मनुष्य के पुतले को घुसाता हूँ। (वैसा करके) अरे! कोई नहीं है। 'कार्तिकेय' के लिए नमस्कार है। (घुस कर और देख कर) अरे! दो मनुष्य सोये हुए हैं। अच्छा, तो अपनी रक्षा के लिए दरवाजा खोलता हूँ। क्यों? घर के पुराना होने के कारण किवाड़े

मरमराती (शब्द करती) हैं? तो जब तक पानी ढूँढता हूँ। पानी कहाँ होगा? (इधर-उधर देखकर पानी को लेकर किवाड़ पर डालता हुआ शंका पूर्वक) जमीन पर गिरता हुआ (यह पानी) शब्द पैदा न करे। अच्छा तो ऐसा करूँ। (पीठ के सहारे किवाड़ उतार कर) अच्छा, तो ऐसा (करूँ)। अब परीक्षा करूँगा कि यह दोनों बनावटी रूप से सो रहे हैं अथवा वास्तव में सोये हुए हैं। (डरा कर और परीक्षा करके) अरे ये दोनों सचमुच सोये हुए हैं। क्योंकि—

अन्वयः— अस्य, निःश्वासः, शंकितः, न, (अपि तु), सुविशदः, तुल्यान्तरम्, वर्तते, द ष्टिः, गाढनिमीलिता (अस्ति, सा) न, विकला, अभ्यन्तरे, न, च चला, (वर्तते), गात्रम्, स्रस्तशरीरसंधिशिथिलम्, शय्याप्रमाणाधिकम् (च, वर्तते), यदि, लक्ष्यसुप्तम्, स्यात्, (तदा), अभिमुखम्, दीपम्, च, अपि, न, मर्षयेत्।।१८।।

शब्दार्थः— अस्य = सोये हुए इन दोनों पुरुषों की, निःश्वासः = साँस, शंकितः = शंकायुक्त, न = नहीं है, (अपि तु = किन्तु) सुविशदः = स्पष्ट, सरल, तुल्यान्तरम् = समान अन्दर के साथ (चालवाली), वर्तते = है, द ष्टिः = आँख, गाढनिमीलिता = भली-भाँति बन्द, (अस्ति = है, सा = वह आँख), न विकला = न वेचैन, (और) अभ्यन्तरे = भीतर में, न च चला = न तो च चल, (वर्तते = है), गात्रम् = शरीर, स्रस्तशरीरसंधिशिथिलम् = जोड़ों के ढीली होने के कारण शिथिल, शय्याप्रमाणाधिकम् = खाट के आकार से अधिक, (वर्तते = है), यदि, लक्ष्यसुप्तम् = छल से सोये हुए, स्यात् = होते, (तदा = तब), अभिमुखम् = सामने, दीपम् = दीपक को, अपि = भी, न मर्षयेत् = न सहन करते।।

अर्थः— सोये हुए इन दोनों की साँस शंका युक्त नहीं है अर्थात् स्वाभाविक रीति से चल रही है। उनकी यह साँस स्पष्ट तथा समान अन्तर वाली अर्थात् एक रूप से चलने वाली है। आँख भली भाँति बन्द है। वह आँख न तो बेचैन है और न पुतली ही च चल है। देह के जोड़ों के ढीली होने के कारण शरीर शिथिल तथा खाट के आकार से अधिक है। अर्थात् गाढ़ी नींद के कारण शरीर के अंग खाट के नीचे भी लटक रहे हैं। यदि ये छल से सोये होते तो सामने दीपक के प्रकाश को भी नहीं सहन करते अर्थात् दीपक के प्रकाश से इनकी आँखें चौंधिया जाती।।१८।।

टीका— अस्य = सुप्तपुरुषद्वयस्य; निःश्वासः = प्राणवायुः, शंकितः = शंकायुक्तः; नास्ति; अपि तु; सुविशदः = स्पष्टः, सरलः; तुल्यम् = एकरूपम् अन्तरम् = व्यवधानम् यथा स्यात्तथा; वर्तते = अस्ति; द ष्टिः = नेत्रम् = सुद ढम् निमीलिता = मुद्रिता; अस्तीति शेषः; सा न विकला विक्लवा; तथा अभ्यन्तरे = नेत्राभ्यन्तरे; न च चला = न च चा चल्ययुक्ता; वर्तते; गात्रम् = शरीरम्; स्रस्ताः = शिथिलाः ये शरीरसन्धयः = अवयवग्रन्थयः तैः शिथिलम् = स्रस्तम् पतितम् वा; शय्यायाः = खट्वायाः प्रमाणात् = परिमाणात् अधिकम् = अतिरिक्तम्; वर्तते; यदि = चेत्; लक्ष्येण = छलेन सुप्तम् = शयितम् स्यात् = भवेत्, तदा अभिमुखम् = समक्षम्; दीपम् = दीपकम्; चापि; न मर्षयेत् = न सहेत।।१८।।

स्वभावोक्ति अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है—शार्दूलविक्रीडित।।१८।।

(समन्तादवलोक्य) अये! कथं म दंगः, अयं दर्दुरः, अयं पणवः, इयमपि वीणा, एते वंशाः, अमी पुस्तकाः, कथं नाट्याचार्यस्य ग हमिदम्। अथवा भवनप्रत्ययात्प्रविष्टो स्मि। तत्किं परमार्थदरिद्रो यम्, उत राजभयाच्चौरभयाद्वा भूमिष्ठं द्रव्यं धारयति। तन्ममापि नाम

शर्विलकस्य भूमिष्ठं द्रव्यम्। भवतु, बीजं प्रक्षिपामि। (तथा कृत्वा) निक्षिप्तं बीजं न क्वचित्स्फारीभवति। अये, परमार्थदरिद्रो यम्। भवतु गच्छामि।

विदूषकः—(उत्स्वप्नायते) भो वअस्स! संघी विअ दिस्सदि, चोरं विअ पेक्खामि, ता गेण्हदु भवं एदं सुवण्णभंडअं। (भो वयस्य! संधिरिव द श्यते, चौरमिव पश्यामि, तद्ग ह्णातु भवानिदं सुवर्णभाण्डम्।)

शर्विलकः—किं नु खल्वयमिह मां प्रविष्टं ज्ञात्वा दरिद्रो स्मीत्युपहसति?। तत्किं व्यापादयामि उत लघुत्वादुत्स्वप्नायते?। (द ष्ट्वा) अये, जर्जरस्नानशाटीनिबद्धं दीपप्रभयोद्दीपितं सत्यमेवैतदलंकरणभाण्डम्। भवतु, ग ह्णामि। अथवा न युक्तं तुल्यावस्थं कुलपुत्रजनं पीडयितुम, तद्गच्छामि।

विदूषकः—भो वअस्स! साविदोसि गोबह्मणकामाए, जइ एदं सुवण्णभंडअं ण गेणाहसि। (भो वयस्य! शापितो सि गोब्राह्मणकाम्यया, यद्येतत्सुवर्णभाण्डं न ग ह्णासि।)

शर्विलकः- अनतिक्रमणीया भगवती गोकाम्या ब्राह्मणकाम्या च तद्ग ह्णामि। अथवा ज्वलति प्रदीपः। अस्ति च मया प्रदीपनिर्वापणार्थमाग्नेयः कीटो धार्यते। तं तावत्प्रवेशयामि। तस्यायं देशकालः। एष मुक्ती मया कीटो यात्वेवास्य दीपस्योपरि मण्डलैर्विचित्रैर्विचरितुम्। एष पक्षद्वयानिलेन निर्वापितो भद्रपीठेन। धिक्कृतमन्धकारम्। अथवा मयाप्यस्मद्ब्राह्मणकुले न धिक्कृतमन्धकारम्?। अहं हि चतुर्वेदविदो प्रतिग्राहकस्य पुत्रः शर्विलको नाम ब्राह्मणो गणिकामदनिकार्थमकार्यमनुतिष्ठामि। इदानीं करोमि ब्राह्मणस्य प्रणयम्। (इति जिघ क्षति)

विदूषकः— भो वअस्स! सीदलो दे अग्गहत्थो। (भो वयस्य! शीतलस्ते ग्रहस्तः।)

शर्विलकः — धिक्प्रमादः। सलिलसंपर्काच्छीतलो मे ग्रहस्तः। भवतु, कक्षयोर्हस्तं प्रक्षिपामि। (नाट्येन सव्यहस्तमुष्णीकृत्य ग ह्णाति)

विदूषकः— गहिदम्। (ग हीतम्।)

शर्विलकः — अनतिक्रमणीयो यं ब्राह्मणप्रणयः, तद्ग हीतम्।

विदूषकः— ताणिं विक्किणिदपण्णोविअ वाणिओ, अहं सुहं सुविस्सम्। (इदानीं विक्रीतपण्य इव वणिक्, अहं सुखं स्वप्स्यामि।)

शर्विलकः — महाब्राह्मण! स्वपिहि वर्षशतम्। कष्टमेवं मदनिकागणिकार्थे ब्राह्मणकुलं तमसि पातितम्, अथवा आत्मा पातितः?।

धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेदितपौरुषम्।
यदेतद्गर्हितं कर्म निन्दामि च करोमि च।।१६।।

अर्थः— (चारों ओर देखकर) अरे! क्या (यह) म दंग है। यह दर्दुर है? यह पणाव है, यह वीणा है, ये बासुरियाँ हैं और ये पुस्तकें हैं। क्या यह मकान नाच-गाना आदि सिखलाने वाले किसी नाट्याचार्य का है? अथवा घर के विश्वास से घुस आया हूँ। अर्थात् महल बड़ा है। अतः धन से भरा होगा। इस विश्वास से घुस आया हूँ। तो क्या यह वास्तव में दरिद्र है? अथवा राजा एवं चोरों के डर के मारे जमीन में गाड़ कर अपना धन रखता है। तो क्या मुझ 'शर्विलक' के लिए भी जमीन में छिपा हुआ धन अप्राप्य है? अच्छा बीज फेंकता हूँ। (बीज फेंक कर) फेंका गया बीज कहीं नहीं फैल रहा है। अरे यह तो सचमुच दरिद्र है। अच्छा, जाता हूँ।

विदूषक— (स्वप्न में बड़बड़ाता है) हे मित्र! सेंध सी दिखाई दे रही है। चोर सा देख रहा हूँ। अतः आप इस स्वर्ण-भाण्ड को लें।

शर्विलक—क्या यह सचमुच मुझे इस घर में घुसा हुआ जान कर ''मैं दरिद्र हूँ'' ऐसा सूचित कर मेरी हँसी उड़ा रहा है? तो क्या मार डालूँ? अथवा च चल होने के कारण स्वप्न देखता हुआ बड़बड़ा रहा है। (देख कर) अरे! नहाने की फटी पुरानी धोती में बँधा हुआ, दीपक के प्रकाश से चमकनेवाला सचमुच ही यह आभूषणों का डिब्बा है। अच्छा, लेता हूँ। अथवा अपनी ही तरह (निर्धन) हालत वाले अच्छे कुल में पैदा हुए व्यक्ति को दुःख देना ठीक नहीं है। तो जाता हूँ।

विदूषक— हे मित्र गाय और ब्राह्मण की अभिलाषा के द्वारा तुम्हें शपथ दिलाता हूँ अर्थात् तुम्हें गाय और ब्राह्मण की सौगन्ध है, यदि तुम आभूषण के इस डिब्बे को नहीं लेते हो।

शर्विलक—भगवती गाय और ब्राह्मण की अभिलाषा उल्लंघन करने लायक नहीं होती अर्थात् गाय और ब्राह्मण की सौगन्ध टालने लायक नहीं होती, तो ले लेता हूँ। किन्तु दीपक जल रहा है। दीपक बुझाने के लिए मैं आग का कीड़ा रखता हूँ। तब तक उसको छोड़ता हूँ। उसको छोड़ने के लिए यही उचित समय और स्थान है। मेरे द्वारा छोड़ा गया यह कीड़ा इस दीपक के ऊपर विचित्रता से मडराने के लिये उड़े। 'भद्रपीठ' कीड़े ने अपने पंखों की हवा से इस को बुझा दिया। हाय! अँधेरा कर दिया, अथवा, हाय! मैंने भी अपने ब्राह्मण कुल में अँधेरा नहीं कर दिया? अर्थात् कर दिया। मैं चारों वेदों के जानने वाले तथा दान न लेने वाले का पुत्र 'शर्विलक' नाम का ब्राह्मण वेश्या मदनिका के लिए अनुचित कार्य कर रहा हूँ। अब ब्राह्मण का प्रणय करता हूँ। अर्थात् ब्राह्मण विदूषक की प्रार्थना स्वीकार करता हूँ। (ऐसा कह कर लेना चाहता है)।

विदूषक— हे मित्र! तुम्हारी अँगुलियाँ ठण्डी हैं।

शर्विलक—दुःख है। बड़ी असावधानी हो गयी। जल के छूने से मेरी अँगुलियाँ ठण्डी हो गई हैं। अच्छा, अँगुलियों को काँख के भीतर रखता हूँ अर्थात् रखकर गरम करता हूँ। (अभिनयपूर्वक दाहिने हाथ को गर्म करके सोने के जेवरों के डिब्बे को लेता है)।

विदूषक— ले लिया?

शर्विलक—ब्राह्मण का आग्रह टालने लायक नहीं है। इसलिए ले लिया।

विदूषक— अब मैं समान बेच कर खाली हुए बनिये की भाँति सुख के साथ सोऊँगा।

शर्विलक—महाब्राह्मण! सौ वर्ष सोते रहो। अफसोस है कि 'मदनिका' वेश्या के लिये ब्राह्मण कुल को अन्धकार में डाल दिया। अथवा अपने आपको गिरा दिया?

अन्वयः— अनिर्वेदितपौरुषम्, दारिद्र्यम् खलु, धिक्, अस्तु, यत्, एतत्, गर्हितम्, कर्म, निन्दामि, च, करोमि च।।१६।।

शब्दार्थः—अनिर्वेदितपौरुषम् = जिसमें आदमी का पुरुषार्थ कुछ भी नहीं कर पाता ऐसी, दारिद्र्यम् = गरीबी को, खलु = निश्चय ही, धिक् = धिक्कार, अस्तु = हो, यत् = जिससे, एतत् = यह, गर्हितम् = निन्दनीय, कर्म = काम को, निन्दामि = अनुचित बतला रहा हूँ, च = और, करोमि च = कर भी रहा हूँ।

अर्थः— जिसमें आदमी का पुरुषार्थ कुछ भी नहीं कर पाता। ऐसे गरीबी को धिक्कार है। जिसके कारण इस निन्दनीय काम की निन्दा कर रहा हूँ और फिर भी कर रहा हूँ। अर्थात्

गरीबी कठिन होती है। इसी के कारण मैं चोरी को बुरा काम समझते हुए भी कर रहा हूँ।।१६।।

टीका— अनिर्वेदितपौरुषम्—निर्वेदः स जातः अस्य इति निर्वेदितं न निर्वेदितम् अनिर्वेदितम् = अखिन्नम् वा अनिश्चितम् अगणितमित्यर्थः पौरुषम् = पुरुषस्य भावः कर्म वा यस्मिन् तत्; दारिद्र्यम् = निर्धनत्वं; खलु = निश्चितम्; धिक्; अस्तु = वर्तताम्। यत् = यस्मात्, अहमितिशेषः, एतत् = प्रारभ्यमाणाम्; गर्हितम् = निन्दितम्, कर्म = कार्यम् तस्करतामित्यर्थः, निन्दामि च = निर्भर्त्सयामि च, करोमि च = विवशतया सम्पादयामि च।।१६।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है।

तद्यावन्मदनिकाया निष्क्रयणार्थं वसन्तसेनाग हं गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) अये, पदशब्द इव। मा नाम रक्षिणः। भवतु, स्तम्भीभूत्वा तिष्ठामि। अथवा ममापि नाम शर्विलकस्य रक्षिणः। यो हं

मार्जारः क्रमणे, म गः प्रसरणे, श्येनो ग्रहालु चने,
सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने श्वा सर्पणे पन्नगः
माया रूपशरीरवेशरचने वाग्देशभाषान्तरे
दीपो रात्रिषु, संकटेषु डुडुमो वाजी स्थले, नौर्जले।।२०।।

अर्थः— तो अब मैं धन देकर 'मदनिका' को दासीपन से छुड़ाने के लिए 'वसन्तसेना' के घर को जाता हूँ। (घूमकर और देखकर) अरे! पैरों की आहट-सी है। परहेदार न हो? अच्छा, खम्भे की भाँति (निश्चल) होकर खड़ा हो जाता हूँ। अथवा मुझ 'शर्विलक' के लिए भी पहरेदार (डर की चीज है)।

अन्वयः— ('यः अहम्') क्रमणे, मार्जारः; प्रसरणे, म गः; ग्रहालु चने, श्येनः; सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने, श्वा; सर्पणे, पन्नगः; रूपशरीरवेशरचने, माया; देशभाषान्तरे, वाक्; रात्रिषु, दीपः; संकटेषु, डुडुमः; स्थले, वाजी; जले, नौ (अस्मि)।।२०।।

शब्दार्थः— (यः = जो, अहम् = मैं), क्रमणे = उछलने में, मार्जारः = बिलाव; प्रसरणे = जल्द भागने में, म गः = हरिण; ग्रहालु चने = झपटकर पकड़ने और छीनने में, श्येनः = बाज; सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने = सोये हुए एवं बिना सोये हुए मनुष्य का बल जाँचने में, श्वा = कुत्ता; सर्पणे = सरकने में, पन्नगः = साँप; रूपशरीरवेशरचने = आकार, शरीर एवं वेश बनाने में, माया = इन्द्रजाल; देशभाषान्तरे = दूसरे देश की भाषा बोलने में, वाक् = सरस्वती; रात्रिषु = रातों में, दीपः = दीपक; संकटेषु = संकटों में, डुडुमः = भेड़िया; स्थले = जमीन पर, वाजी = घोड़ा; जले = जल में, नौ = नैया (अस्मि = हूँ)।।

अर्थः— झपटने अथवा उछलने में बिलाव, जल्द भाग निकलने में हरिण, झपट कर पकड़ने और छीनने में बाज, सोये हुए एवं बिना सोये हुए मनुष्य का बल जाँचने में कुत्ता, सरकने में साँप, विचित्र आकार, शरीर एवं वेश बनाने में माया, अनेक देशों की भाषा बोलने में (साक्षात्) सरस्वती, रातों में दीपक, संकट के समय भेड़िया, जमीन पर घोड़ा और जल में नौका (की तरह हूँ) अर्थात् किसी भी हालत में मुझे कोई पकड़ नहीं सकता।।२०।।

टीका— 'यः अहम् = शर्विलकः' क्रमणे = उच्छलने; मार्जारः = विडालः; प्रसरणे = उत्प्लुत्य धावने; म गः = हरिणः; ग्रहश्च = ग्रहण च आलु चन च = आच्छिद्य हरण च; श्येनः = पक्षिविशेषः;

सुप्तस्य = कृतशयनस्य असुप्तस्य = जागरितस्य च मनुष्यस्य = नरस्य यत् वीर्यम् = सामर्थ्यम् तस्य तुलने = परिज्ञाने निर्धारणे; श्वा = कुक्कुरः; सर्पणे = भूतलपरिसर्पणे; पन्नगः = सर्पः; रूपस्य = आकारस्य शरीरस्य = विभिन्नजीवानां गात्रस्य वेशस्य = अलंकारादियोजनायाः च रचने = निर्माणे; माया = इन्द्रजालम्; अन्या = इतरा देशभाषा = प्रदेशवाणी इति देशभाषान्तरम् तस्मिन्; अन्यदेशभाषायाः परिज्ञाने, परिभाषणे च, वाक् = साक्षात् सरस्वती; रात्रिषु = रजनीषु; दीपः = दीपकः; संकटेषु = विपत्तिषु; डुडुमः = व कः; स्थले = भूमौ; वाजी = अश्वः; जले = सलिले; नौ = तरणिः; अस्मि इति।।२०।।

यहाँ पर एक ही शर्विलक में विडाल आदि का अभेद रूप से आरोप करने के कारण मालारूपक अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।

अपि च,—

भुजग इव गतौ गिरिः स्थिरत्वे पतगपतेः परिसर्पणे च तुल्यः।
शश इव भुवनावलोकने हं व क इव च ग्रहणे बले च सिंहः।।२१।।

अन्वयः— अहम्, गतौ, भुजगः, इव, स्थिरत्वे, गिरिः, परिसर्पणे, पतगपतेः, तुल्यः, भुवनावलोकने, शशः, इव, ग्रहणे, व कः, इव, बले, च, सिंहः, (अस्मि)।।२१।।

शब्दार्थः— अहम् = मैं, गतौ = चाल में, भुजगः = सर्प, इव = जैसा, स्थिरत्वे = अडिग होने में, गिरिः = पर्वत, परिसर्पणे = जल्दी चलने में, पतगपतेः = पक्षिराज गरुड़ के, तुल्यः = समान, भुवनावलोकने = संसार को देखने में, शशः = खरगोश, इव = जैसा, ग्रहणे = पकड़ने में, व कः = भेडिया, इव = जैसा, बले = बल में, च = भी, सिंहः = सिंह, (अस्मि = हूँ)।।

अर्थः— मैं चाल में साँप के समान, स्थिरता में पर्वत एवं जल्दी चलने में पक्षियों के राजा गरुड़ के तुल्य, संसार को देखने में खरगोश जैसा पकड़ने में भेडिया की भाँति एवं बल में सिंह के तुल्य हूँ।।२१।।

टीका— अहम् = शर्विलकः; गतौ = गमने; भुजगः = सर्पः; इव = यथा; स्थिरत्वे = द ढतायाम्; गिरिः = पर्वतः; परिसर्पणे = वेगेन गमने च; पतगपतेः = पक्षिराजस्य गरुडस्येत्यर्थः; तुल्यः = स दशः; भुवनस्य = संसारस्य अवलोकने = दर्शने; शशः = शशकः इव; ग्रहणे = ग्रहे; व कः इव; बले = वीर्ये च, सिंहः = म गराजः; अस्मीति।।२१।।

यहाँ पर एक ही उपमेय शर्विलक की बहुत से उपमानों के साथ समानता बतलाने के कारण मालोपमा अलंकार है। इस श्लोक के छन्द का नाम है पुष्पिताग्रा,-लक्षण-'अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।।२१।।

(प्रविश्य)

रदनिका— हद्धी हद्धी, बाहिरदुआरसालाए पसुत्तो वड्ढमाणओ। सोवि एत्थ ण दीसइ। भोदु। अज्जमित्तेअं सद्दावेमि। (हा धिक् हा धिक्, बहिर्द्वारशालायां प्रसुप्तो वर्धमानकः। सो प्यत्र न द श्यते। भवतु, आर्यमैत्रेयमाह्वयामि।) (इति परिक्रामति)

शर्विलकः—(रदनिकां हन्तुमिच्छति, निरूप्य) कथं स्त्री। भवतु, गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः)

रदनिका— (गत्वा, सत्रासम्) हद्धी हद्धी, अम्हाणं गेहे सन्धि कप्पिअ चोरो णिक्कमति। भोदु, मित्तेअं गदुअ पबोधेमि। (विदूषकमुपगम्य) अज्जमित्तेअ! उट्ठेहि उट्ठेहि। अम्हाणं गेहे संधिं कप्पिअ चोरो णिक्कंतो। (हा धिक् हा धिक्, अस्माकं ग हे संधिं कल्पयित्वा चौरो

निष्क्रामति। भवतु मैत्रेयं गत्वा प्रबोधयामि। आर्यमैत्रेय! (उत्तिष्ठोत्तिष्ठ)। अस्माकं गेहे संधिं कल्पयित्वा चौरो निष्क्रान्तः।)

विदूषकः—(उत्थाय) आः दासीए धीए! किं भणासि-'चोरं कप्पिअ संधी णिक्कंतो'?। (आः दास्याःपुत्रिके! किं भणसि 'चौरं कल्पयित्वा संधिर्निष्क्रान्तः?।)

रदनिका—हदास! अलं परिहासेण। किं ण पेक्खसि एण?। (हताश! अलं परिहासेनं। किं न प्रेक्षसे एनम्?।)

विदूषकः—आः दासीए धीए! किं भणासि-'दुदिअं विअ हुआरअं उग्घाडिदं' त्ति?। भो वअस्स चारुदत्त! उट्ठेहि उट्ठेहि। अम्हाणं गेहे संधि दइअ चोरो णिक्कंतो। (आ दास्याःपुत्रिके! किं भणसि-'द्वितीयमिव द्वारमुद्घाटितम्' इति?। भो वयस्य चारुदत्त! उत्तिष्ठोत्तिष्ठ, अस्माकं गेहे संधिं दत्त्वा चौरो निष्क्रान्तः।)

चारुदत्तः—भवतु। भोः, अलं परिहासेन।

विदूषकः—भो! ण परिहासो पेक्खदु भवं। (भो! न परिहासः, प्रेक्षतां भवान्।)

चारुदत्तः—कस्मिन्नुद्देशे?।

विदूषकः—भो! एसो। (भोः! एषः।)

चारुदत्तः—(विलोक्य) अहो, दर्शनीयो यं संधिः,-

उपरितलनिपातितेष्टको यं शिरसि तनुर्विपुलश्च मध्यदेशे।
असद शजनसंप्रयोगभीरो- र्हृदयमिव स्फुटितं महाग हस्य।।२२।।

(प्रवेश करके)

अर्थः— रदनिका— हाय! हाय! वर्धमानक बाहर के दरवाजे वाली कोठरी में सोया हुआ था। वह भी यहाँ नहीं दिखाई दे रहा है। अच्छा, आर्य 'मैत्रेय' को पुकारती हूँ।

(ऐसा कह कर घूमती है)

शर्विलक— (रदनिका को मारना चाहता है। देखकर) क्या स्त्री है? अच्छा तो जाता हूँ। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

अर्थः—

रदनिका— (जाकर डर के साथ) हाय! हाय!! हमारे घर में सेंध लगाकर चोर निकल रहा है। अच्छा जाकर 'मैत्रेय' को जगाती हूँ। (विदूषक के पास जाकर) आर्य मैत्रेय! उठिए, उठिए। हमारे घर में सेंध लगाकर चोर निकल गया।

विदूषक— (उठकर) अरी दासी की लड़की! क्या कह रही हो—चोर को फोड़ कर सेंध निकल गई?''

रदनिका—अरे शरारती! हँसी मत करो। क्या इसे नहीं देखते हो?

विदूषक— अरी दासी की लड़की! क्या कह रही हो कि 'दूसरा दरवाजा सा खोल दिया है।' हे मित्र चारुदत्त! उठो, उठो। हमारे घर में सेंध लगाकर चोर निकल गया।

चारुदत्त— अच्छा, अरे हँसी मत करो।

विदूषक— अरे! हँसी नहीं है। आप देख लीजिए।

चारुदत्त— किस जगह पर?

विदूषक— अरे, यह है।

चारुदत्त— (देखकर) अहो! यह सेंध देखने लायक है।

अवयः— उपरितलनिपातितेष्टकः, शिरसि, तनुः, मध्यदेशे, विपुलः, च, अयम्, (सन्धिः), असद शजनसम्प्रयोगभीरोः, महाग हस्य, स्फुटितम्, हृदयम्, इव, (द श्यते)।।२२।।

शब्दार्थः— उपरितलनिपातितेष्टकः = जिसमें ऊपर के हिस्से से खींचकर ईंटें हटायी गयी हैं, ऐसी, शिरसि = शिर में, प्रारम्भ में, तनुः = सँकरी, मध्यदेशे = बीच के स्थान में, विपुलः = चौड़ी, विशाल, अयम् = यह (सेंध), असद शजन = सम्प्रयोगभीरोः = अनुचित व्यक्ति, चोर आदि के घुसने से डरे हुए, महाग हस्य = विशाल घर के, स्फुटितम् = फटे हुए, हृदयमिव = कलेजा के समान, (द श्यते = दिखलायी पड़ती है)।।

अर्थः— जिसमें ऊपर के हिस्से से खींचकर ईंटें हटाई गई हैं, जो ऊपरी हिस्से में सँकरी और बीच के स्थान में चौड़ी है अर्थात् जो घड़े के आकार वाली है ऐसी यह सेंध, अयोग्य मनुष्य के घुसने से डरे हुए इस विशाल घर के फटे हुए कलेजा के समान दिखाई पड़ती है।

टीका— उपरितलात् = उर्ध्वभागात् निपातिताः = आकृष्टाः इष्टकाः यस्य ताद शः; शिरसि = मुखभागे इत्यर्थः; तनुः = क्षीणः; मध्यदेशे = मध्यभागे; विपुलः = विस्तीर्णः; अयम् = सन्धिः; असद शजनस्य = अयोग्यजनस्य चौरादेः इत्यर्थः, सम्प्रयोगात् = प्रवेशात् भीरोः = भीतस्य; महाग हस्य = विशालप्रासादस्य; स्फुटितम् = विदीर्णम्; हृदयमिव = वक्षःस्थलमिव; द श्यते इति।।२२।।

यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-पुष्पिताग्रा।

कथमस्मिन्नपि कर्मणि कुशलता?।

विदूषकः—भो वअस्स! अअं संघी दुवेहिं ज्जेव दिण्णो भवे-आदु आगंतुएण, सिक्खिदुकामेण वा? अण्णधा इध उज्जइणीए को अम्हाणं घरविहवं ण जाणादि?। (भो वयस्य! एष संधिर्द्वाभ्यामेव दत्तो भवेत्-अथवा गन्तुकेन, शिक्षितुकामेन वा। अन्यथात्रोज्जयिन्यां को स्माकं ग हविभवं न जानाति?।)

चारुदत्तः-

वैदेश्येन कृतो भवेन्मम ग हे व्यापारमभ्यस्यता
नासौ वेदितवान् धनैर्विरहितं विस्रब्धसुप्तं जनम्।
द ष्ट्वा प्राङ्महतीं निवासरचनामस्माकमाशान्वितः
सन्धिच्छेदनखिन्न एव सुचिरं पश्चान्निराशो गतः।।२३।।

अर्थः— क्या इस काम में भी कुशलता आवश्यक है?

विदूषक— हे मित्र! यह सेंध दो (तरह के आदमियों) के द्वारा ही लगायी हुई हो सकती है। या तो यहाँ नये आये हुए परदेशी के द्वारा, अथवा चोरी सीखने वाले किसी मनुष्य के द्वारा। नहीं तो, इस 'उज्जयिनी' नगरी में कौन हमारे घर के धन को नहीं जानता है? अर्थात् सभी जानते हैं कि 'चारुदत्त' का घर गरीब है।

अन्वयः— वैदेश्येन, व्यापारम्, अभ्यस्यता, मम, ग हे, (सन्धिः) कृतः, भवेत्, असौ, धनैः, विरहितम्, विश्रब्धसुप्तम्, जनम्, न, वेदितवान्, प्राक्, महतीम्, अस्माकम्, निवासरचनाम्, द ष्टवाआशान्वितः, सुचिरम्, सन्धिच्छेदनखिन्नः, पश्चात्, निराशः, एव, गतः।।२३।।

शब्दार्थः— वैदेश्येन = परदेशी के द्वारा, व्यापारम् = व्यापार को, चोरी को, अभ्यस्यता = सीखने वाले के द्वारा, मम = मेरे, ग हे = घर में (सन्धिः = सेंध), कृतः = की गयी, भवेत् = हो, (किन्तु), असौ = यह चोरी करने वाला, धनैः = धनों से, विरहितम् = हीन, विश्रब्धसुप्तम् = निश्चिन्त सोये हुए, जनम् = जन को, हम दोनों को, न = नहीं, वेदितवान् = जान पाया, प्राक् = पहले, महतीम् = भारी, निवासरचनाम् = घर की बनावट को, द ष्ट्वा = देखकर, आशान्वितः = आशावान् होकर, सुचिरम् = देर तक, सन्धिच्छेदनखिन्नः = सेंध फोड़ने के कारण परेशान, पश्चात् = बाद में, निराशः = निराश, एव = ही, गतः = चला गया।

अर्थः— **चारुदत्त—** चाहे नये नये आये हुए किसी परदेशी ने अथवा चोरी सीखने वाले किसी पुरुष ने मेरे घर में यह सेंध लगायी हो। (परन्तु) वह, गरीब अतः निश्चिन्त सोये हुए जन (हम दोनों) को नहीं जान पाया (अर्थात् हमारी हालत उसे नहीं मालूम थी)। हमारे इस मकान की भारी बनावट को देखकर पहले वह आशा करके देर तक सेंध फोड़ने के कारण परेशान हुआ (और) बाद में निराश ही चला गया (अर्थात् बेचारा कितनी आशा से मेहनत करके घुसा, परन्तु एक कौड़ी भी हाथ नहीं लगी)।।२३।।

टीका— विदेशे = परदेशे भवः = उत्पन्नः वैदेश्यः तेन; ग हस्य निर्धनतायाः अपरिचितेन इति यावत्; व्यापारम् = सन्धिविच्छेदनरूपम् कार्यम्; अभ्यस्यता = शिक्षमाणेन वा; मम = चारुदत्तस्य; ग हे = भवने; सन्धिः कृतः = कल्पितः; भवेत् = स्यात्; पर च असौ = सन्धिविच्छेदकर्ता; धनैः = द्रविणैः; विरहितम् = विहीनम्; अत एव, विश्रब्धम् = निशंकम् यथा स्यात् तथा सुप्तम् = शयानम्; जनम् = पुरुषम्; मामिति न वेदितवान् = न ज्ञातवान्; प्राक् = पूर्वम्, महतीम् = विशालाम्; अस्माकम् निवासस्य = ग हस्य रचनाम् = निर्मितिम्; द ष्ट्वा = विलोक्य; आशया अन्वितः आशान्वितः = आशायुक्तः सन्; सुचिरम् = बहुकालम्; सन्धिच्छेदनेन = सन्धिखननेन खिन्नः = श्रान्तः; भूत्वा पश्चात् = अन्ते ग हावलोकनानन्तरमित्यर्थः; निराशः = छिन्नाशः एव; गतः = प्रयातः।।२३।।

इस श्लोक में कव्यलिंग अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है शार्दूलविक्रीडित।

ततः सुहृद्भ्यः किमसौ कथयिष्यति तपस्वी-'सार्थवाहसुतस्य ग हं प्रविश्य न किंचिन्मया समासादितम्' इति?।

विदूषकः— भो! कधं तं ज्जेव चोरहदअं अणुसोचसि?। तेण चिंतिदं महंतं एदं गेहम्। इदो रअणभंडअं सुअण्णमंडअं वा णिक्कामिस्सम्। (स्म त्वा, सविषादमात्मगतम्) कहिं तं सुवण्णभंडअं। (पुनरनुस्म त्य, प्रकाशम्) भो वअस्स! तुमं सव्वकालं भणासि-'मुक्खो मित्तेअओ, अपंडिदो मित्तेअहो' त्ति। सुट्ठु मए किदं तं सुवण्णभंडअं भवदो हत्थे समप्पअंतेण। अण्णधा दासीए पुत्तेण अवहिदं भवे। (भोः! कथं तमेव चोरहतकमनुशोचसि?। तेन चिन्तितं महदेतद्ग हम्। इतो रत्नभाण्डं सुवर्णभाण्डं वा निष्क्रामयिष्यामि। कुत्र तत्सुवर्णभाण्डम्। भो वयस्य! त्वं सर्वकालं भणसि-'मूर्खो मैत्रैयः, अपण्डितो मैत्रेयः' इति। सुष्ठु मया कृतं तत्सुवर्णभाण्डं भवतो हस्ते समर्पयता। अन्यथा दास्याःपुत्रेणापहृतं भवेत्।)

चारुदत्तः— अलं परिहासेन।

विदूषकः— भो! जह णाम अहं मुक्खो ता किं परिहासस्य वि देशआलं ण जाणामि?। (भोः! यथा नामाहं मूर्खस्तत्किं परिहासस्यापि देशकालं न जानामि?।)

चारुदत्तः— कस्यां वेलायाम्?।

विदूषकः— भो! जदा तुमं मए भणिदोसि—'शीदलो दे अग्गहत्थो'। (भोः! यदा त्वं मया भणितो सि-'शीतलस्ते ग्रहस्तः'।)

चारुदत्तः— कदाचिदेवमपि स्यात्। (सर्वतो निरूप्य, सहर्षम्) वयस्य! दिष्ट्या ते प्रियं निवेदयामि।

विदूषकः— किं ण अवहिदम्?। (किं नापहृतम्?।)

चारुदत्तः— हृतम्।

विदूषकः— तधा वि किं पिअम्?। (तथापि किं प्रियम्?।)

चारुदत्तः— यदसौ कृतार्थो गतः।

विदूषकः— णासो कखु सो। (न्यासः खलु सः।)

चारुदत्तः— कथं न्यासः?। (मोहमुपगतः)

विदूषकः— समस्ससदु भव। जइ णासो चोरेण अवहिदो तुमं किं मोहं उवगदो?। (समाश्वसितु भवान्। यदि न्यासश्चौरेणापहृतस्त्वं किं मोहमुपगतः?।)

चारुदत्तः— (समाश्वस्य) वयस्य!

कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति।
शंकनीया हि लोके स्मिन्निष्प्रतापा दरिद्रता।।२४।।

अर्थः— तब (खाली हाथ यहाँ से जाने पर) यह बेचारा मित्रों से क्या कहेगा कि—''सार्थवाह के पुत्र चारुदत्त के घर में घुस कर मैंने कुछ भी नहीं पाया।'

विदूषक— अरे, क्यों उस दुष्ट चोर का ही सोच कर रहे हो? उसने सोचा होगा कि यह बड़ा घर है। इसमें से रत्नों का पात्र अथवा सोने का पात्र निकाल लूँगा। (याद करके दुःख के साथ अपने आप) वह सोने के आभूषणों का पात्र कहाँ हैं? (फिर याद करके, प्रकट रूप में) हे मित्र! तुम हर समय यह कहते हो कि 'मैत्रेय मूर्ख है, मैत्रेय' बुद्धू है' सोने के गहनों के उस डिब्बे को आपके हाथ में देकर के मैंने बड़ा अच्छा किया। नहीं तो दासी के लड़के (उस चोर) ने चुरा लिया होता।

चारुदत्त— हँसी मत करो।

विदूषक — अरे! यद्यपि मैं मूर्ख हूँ, तो क्या हँसी करने की जगह और समय भी नहीं जानता हूँ?

चारुदत्त— किस समय अर्थात् किस समय तुमने दिया था?

विदूषक — अरे! जिस समय मैंने आप से कहा था कि 'आपकी उँगलियाँ ठण्डी हैं।'

चारुदत्त— शायद ऐसा भी हुआ हो (चारों ओर देखकर खुशी के साथ) मित्र! भाग्य से तुम्हें प्रिय (बात) सुनाता हूँ।

विदूषक — क्या (वह आभूषण का डिब्बा) चोरी नहीं गया?

चारुदत्त— (चोरी) चला गया।

विदूषक — तो क्या प्रिय हैं?

चारुदत्त— कि वह सफल होकर गया।

विदूषक — वह तो धरोहर थी।

चारुदत्त— क्या धरोहर? (बेहोश हो गया)।

अर्थः—

विदूषक — आप धीरज रखें। यदि चोर ने धरोहर चुरा ली (तो) तुम क्यों बेहोश हो गये।

अन्वयः— कः, भूतार्थम्, श्रद्धास्यति, सर्वः, माम्, तुलयिष्यति, हि, अस्मिन्, लोके, निष्प्रतापा, दरिद्रता, शंकनीया, (भवति)।।२४।।

शब्दार्थः— कः = कौन, भूतार्थम् = सच्ची बात को, यथार्थ को, श्रद्धास्यति = मानेगा, सर्वः = सब, माम् = मुझको, तुलयिष्यति = तौलेंगे, सन्देह करेंगे, हि = क्योंकि, अस्मिन् = इस, लोके = लोक में, निष्प्रतापा = तेजहीन, दरिद्रता = निर्धनता, शंकनीया = सन्देह के योग्य, (भवति = होती है)।।

अर्थः— **चारुदत्त—** (धीरज धारण करके) मित्र।

कौन सच्ची बात पर विश्वास करेगा? सब मुझ पर ही सन्देह करेंगे। क्यों कि इस संसार में तेजहीन दरिद्रता सन्देह का कारण होती है। अर्थात् लोग गरीब को ही दोषी ठहराते हैं। हाय बड़ा दुःख है।

टीका— कः = जनः, भूतम् = यथार्थतया घटितम् अर्थम् = तथ्यम्, सुवर्णभाण्डं चौरेणापहृतमित्येवं रूपमिति भावः; श्रद्धास्यति = विश्वासं करिष्यति; सर्वः = निखिलः लोकः; माम् = दरिद्रम्चारुदत्तम्; तुलयिष्यति = अवज्ञास्यति। हि = यतः; अस्मिन् = एतस्मिन्; लोके = संसारे; निर् = नास्ति प्रतापः = तेजः पौरुषम् वा यस्याम् सा; दरिद्रता = निर्धनता; शंकनीया = शंकायोग्या; भवतीति शेषः।

भोः! कष्टम्,—

यदि तावत्कृतान्तेन प्रणयो र्थेषु मे कृतः।
किमिदानीं न शंसेन चारित्रमपि दूषितम्?।।२५।।

अन्वयः— यदि, तावत्, कृतान्तेन, मे, अर्थेषु, प्रणयः, कृतः, (तर्हि), न शंसेन, इदानीम्, चारित्रम्, अपि, किम्, दूषितम्।।२५।।

शब्दार्थः— यदि तावत् = यदि, कृतान्तेन = भाग्य के द्वारा, मे = मेरे, अर्थेषु = धन में, प्रणयः = प्रेम, कृतः = किया गया, (तर्हि = तो), न शंसेन = (उस) निष्ठुर के द्वारा, इदानीम् = अब, चारित्रम् = चरित्र को, अपि = भी, किम् = क्यों, दूषितम् = गन्दा किया गया?।।

अर्थः— यदि भाग्य ने मेरा धन छीन लिया तो क्यों उस निष्ठुर ने अब मेरे चरित्र पर भी धब्बा लगा दिया?।।२५।।

टीका— यदि तावत्, कृतान्तेन = दैवेन; मे = मम चारुदत्तस्य; अर्थेषु = धनेषु; प्रणयः = प्रीतिः; कृतः = विहितः; तर्हि; न न् = जनान् शंसति = हन्ति इति न शंसः तेन न शंसेन = क्रूरेण; इदानीम्

= सम्प्रति, निर्धनावस्थायामित्यर्थः; चारित्रम् = चरित्रताम्; अपि; किम् = कथम्; दूषितम् = निन्दनीयं कृतम्?।।२५।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है अनुष्टुप्।।२५।।

विदूषकः— अहं क्खु अवलविस्सम्-'केण दिण्णम्, केण गहिदम्, को वा सक्खि' त्ति। (अहं खल्वपलपिष्यामि-'केन दत्तम्, केन ग हीतम्, को वा साक्षी' इति।)

चारुदत्तः— अहमिदानीमन तमभिधास्ये?।

भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रियाम्।
अन तं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम्।।२६।।

अर्थः— विदूषक — मैं झूठे ही कह दूँगा कि-किसने दिया? किसने लिया? और कौन गवाह है?

चारुदत्त— क्या मैं इस समय झूठ बोलूँगा?

अन्वयः— भैक्ष्येण, अपि, न्यासप्रतिक्रियाम्, पुनः, अर्जयिष्यामि, चारित्रभ्रंशकारणम्, अन तम्, न, अभिधास्यामि।।२६।।

शब्दार्थः— भैक्ष्येण = भीख से, अपि = भी, न्यासप्रतिक्रियाम् = धरोहर के बदले का धन, न्यास-प्रतिशोध ा का उपाय, पुनः = फिर, अर्जयिष्यामि = एकत्र करूँगा, चारित्रभ्रंशकारणम् = चरित्र को बिगाड़ देने का कारण, अन तम् = झूठ, न = नहीं, अभिधास्यामि = बोलूँगा।।

अर्थः— (मैं) भीख माँगकर भी धरोहर लौटाऊँगा। किन्तु चरित को बिगाड़ देने वाले झूठ को नहीं बोलूँगा।।२६।।

टीका— भैक्ष्येण = भिक्षाप्राप्तान्नेन भिक्षया वा, अपि; न्यासस्य = निक्षेपस्य प्रतिक्रियाम् = परिशोधम्, तद्योग्यसम्पत्तिमिति यावत्; पुनः = मुहुः, अर्जयिष्यामि = एकत्रीकरिष्यामि; किन्तु, चारित्रस्य = सच्चरित्रस्य भ्रंशकारणम् = च्युतिकारम्; अन तम् = असत्यम्; न अभिधास्यामि = न कथयिष्यामि। ।।२६।।

इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

रदनिका — ता जाव अज्जा धूदाए गदुअ णिवेदेमि। (तद्यावदार्याधूतायै गत्वा निवेदयामि।)

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(ततः प्रविशति चेट्या सह चारुदत्तवधूः)

वधूः — (ससंभ्रमम्) अइ, सच्चं अवरिक्खदसरोरो अज्जउत्तो अज्जमित्तेएण सह। (अयि! सत्यमपरिक्षतशरीर आर्यपुत्र आर्यमैत्रेण सह।)

चेटी — भट्टिणि! सच्चम्, किं तु जो सो वेस्साजणकेरको अलंकारओ सो अवहिदो। (भर्त्रि! सत्यम्, किं तु यः स वेश्याजनस्यालंकारकः सो पहृतः।)

(वधूर्मोहं नाटयति)

चेटी — समस्ससदु अज्जा धूदा। (समाश्वसित्वार्या धूता।)

वधूः — (समाश्वस्य) ह जे! किं भणासि-'अवरिक्खदसरीरो अज्जउत्तो' त्ति?। वरं दाणिं सो सरीरेण परिक्खदो, ण उण चारित्तेण। संपदं उज्जइणीए जणो एव्वं मंतइस्सदि-दलिद्ददाए अज्जउत्तेण ज्जेव ईदिसं अकज्जं अणुचिट्ठिदम्' त्ति। (ऊर्ध्वमवलोक्य, निःश्वस्य च)

भअवं कअंत! पोक्खरवत्तपडिदजलबिंदुचंचलेहिं कीलसि दलिद्दपुरिसभाअधेएहिं। इअं च मे एक्का मादुघरलद्धा रअणावली चिट्ठदि। एदं पि अदिसोंडीरदाए अज्जउत्तो ण गेण्हिस्सदि। ह जे! अज्जमित्तेअं दाव सद्दावेहि। (चेटि! किं भणसि-'अपरिक्षतशरीर आर्यपत्रः, इति? वरमिदानीं स शरीरेण परिक्षतः, न पुनश्चारित्रेण। सांप्रतमुज्जयिन्यां जन एवं मन्त्रयिष्यति-'दरिद्रतयार्यपुत्रेणैवेद शमकार्यमनुष्ठितम्' इति। भगवन्कृतान्त! पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुच चलैः क्रीडसि दरिद्रपुरुषभागर्धयैः। इयं च मे एका मात ग हलब्धा रत्नावली तिष्ठति। एतामप्यतिशौण्डीरतयार्यपुत्रो न ग्रहीष्यति। चेटि! आर्यमैत्रेयं तावत् शब्दया।)

चेटी— जं अज्जा धूदा आणवेदि। (विदूषकमुपगम्य) अज्जमित्तेअ! धूदा दे सद्दावेदि। (यदार्या धूता ज्ञापयति। आर्यमैत्रेय! धूता त्वामाह्वयति।)

विदूषकः—कहिं सा?। (कुत्र सा?।)

चेटी— एसा चिट्ठदि, उवसप्प। (एषा तिष्ठति, उपसर्प।)

विदूषकः—(उपस त्य) सोत्थि भोदीए। (स्वस्ति भवत्यै।)

वधूः— अज्ज! वंदामि। अज्ज! पौरत्थिमामुहो होहि। (आर्य! वन्दे। आर्य! पुरस्तान्मुखो भव।)

विदूषकः—एसो भोदि! पौरत्थिआमुहो संवुत्तो म्हि। (एष भवति! पुरस्तान्मुखः संव त्तो स्मि।)

वधूः— अज्ज! पडिच्छ इमम्। (आर्य! प्रतीच्छेमाम्।)

विदूषकः—किं ण्णेदम्?। (किं न्विदम्?।)

वधूः— अहं क्खु रअण्णसिट्ठं उववसिदा आसि। तहिं जधाविहवाणुसारेण बम्हणो पडिग्गाहिदव्वो। सो अ ण पडिग्गाहिदो, ता तस्स किदे पडिच्छ इमं रअणमालिअम्। (अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषितासम्। तत्र यथाविभवानुसारेण ब्राह्मणः प्रतिग्राहितव्यः। स च न प्रतिग्राहितः, तत्तस्य कृते प्रतीच्छेमां रत्नमालिकाम्।)

विदूषकः—(ग हीत्वा) सोत्थि, गमिस्सम्; पिअवअस्सस्स णिवेदेमि। (स्वस्ति, गमिष्यामि; प्रियवयस्यस्य निवेदयामि।)

वधूः— अज्जमित्तेअ! मा क्खु मं लज्जोवेहि। (आर्यमैत्रेय! मा खलु मां लज्जितां कुरु।)

(इति निष्क्रान्ता)

विदूषकः— (सविस्मयम्) अहो, से महाणुभावदा। (अहो, अस्या महानुभावता।)

चारुदत्तः— अये, चिरयति मैत्रेयः। मा नाम वैकल्व्यादकार्यं कुर्यात्। मैत्रेय, मैत्रेय!।

विदूषकः— (उपस त्य) एसो म्हि। गेण्ह एदम्। (रत्नावलीं दर्शयति) (एषो स्मि, ग हाणैताम्।)

चारुदत्तः— किमेतत्?।

विदूषकः— भे, दे सरिसदारसंगहस्स फलं। (भोः, यत्ते सद शदारसंग्रहस्य फलम्।)

चारुदत्तः— कथं ब्राह्मणी मामनुकम्पते?। कष्टम्, इदानीमस्मि दरिद्रः,-

आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः।
अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सा र्थतः पुमान्।।२७।।

अर्थः— रदनिका — तब तक जाकर आर्या 'धूता' (चारुदत्त की स्त्री) से सारी बातें कहती हूँ।

(सभी चले जाते हैं)।

(इसके बाद चेटी के साथ 'चारुदत्त' की स्त्री प्रवेश करती है)।

वधू — (घबराहट के साथ) अरी! सचमुच आर्य 'मैत्रेय' के साथ आर्यपुत्र चारुदत्त कुशल पूर्वक तो हैं? अर्थात् उन लोगों को कोई चोट तो नहीं लगी?)

चेटी — स्वामिनि! सचमुच। किन्तु जो वेश्या का आभूषण था वह चुरा लिया गया।

('चारुदत्त' की स्त्री मूर्च्छा का अभिनय करती है।)

चेटी — आर्या धूता! धीरज रक्खें।

वधू — (धीरज धारण करके) चेटी क्या कह रही हो कि—'आर्यपुत्र चारुदत्त के शरीर में कोई चोट नहीं लगी है?'। चरित्र में कलंक लगने की अपेक्षा उनका शरीर से घायल हो जाना इस समय अच्छा था। अब 'उज्जयिनी' में लोग यह कहेंगे कि—'गरीबी के कारण आर्य चारुदत्त ने ही ऐसा अनुचित काम किया है।' (ऊपर देखकर और लम्बी साँस लेकर) भगवन् दैव! कमल के पत्तों पर पड़ी हुई पानी की बूँदों के समान गरीब पुरुषों के च चल भाग्यों से खिलवाड़ करते हो। मेरे नैहर (माता के घर) से मिली हुई रत्नों की एक माला है। बहुत उदारचित्त होने के कारण आर्यपुत्र चारुदत्त इसको भी नहीं लेंगे। चेटी! तनिक आर्य मैत्रेय को बुलाओ।

चेटी — जैसी आर्या 'धूता' की आज्ञा (विदूषक के पास जाकर) आर्य मैत्रेय! 'धूता' तुम्हें बुला रही हैं।

विदूषक— वह कहाँ हैं?

चेटी- यह है। पास जाइए।

विदूषक— (जाकर) आपका भला हो।

वधू— आर्या! प्रणाम करती हूँ। आर्य! जरा सामने मुँह कीजिए।

विदूषक— श्रीमती जी यह मैं सम्मुख हो गया।

वधू— आर्य! इसे लीजिए।

विदूषक— यह क्या है?

वधू — मैंने 'रत्नषष्ठी' का व्रत किया था। उसमें अपने धन के अनुसार ब्राह्मण को दान देना चाहिए। किन्तु (मैंने) वह दान नहीं दिया था। अतः उसके लिए यह रत्नावली ले लो।

विदूषक— (ले करके) (आपका) कल्याण हो। मैं जा रहा हूँ। प्रिय मित्र चारुदत्त से कहूँगा।

वधू— आर्य 'मैत्रेय'! मुझे लज्जित मत करो।

(ऐसा कहकर निकल जाती है।)

विदूषक— (विस्मय के साथ) धन्य है इसकी उदारता!

चारुदत्त— अरे, 'मैत्रेय' देर कर रहा है। कहीं विकलता के कारण अनुचित काम न कर डाले। 'मैत्रेय'! मैत्रेय!! (कहकर पुकारता है)।

विदूषक— (समीप में जाकर) यह आ गया हूँ। इसे लो (रत्नावली दिखलाता है)।

चारुदत्त— यह क्या है?

विदूषक— अरे तुम्हारे सद श (गुणिनी) स्त्री से विवाह करने का फल है।

अन्वयः— आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः, स्त्रीद्रव्येण, अनुकम्पितः, पुरुषः, अर्थतः, नारी, (भवति, तथा) या, नारी, सा, अर्थतः, पुमान् (भवति)।।२७।।

शब्दार्थः—आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः = अपने भाग्य के कारण नष्ट धनवाला, स्त्रीद्रव्येण = स्त्री के धन से, अनुकम्पितः = अनुग हीत, पुरुषः = पुरुष, अर्थतः = धन (न होने) से, नारी = स्त्री, (भवति = होता है, तथा = और) या = जो, नारी = स्त्री (है), सा = वह अर्थतः = धन से, पुमान् = पुरुष, भवति = होती है।।

अर्थः— **चारुदत्त—** क्या ब्राह्मणी (मेरी स्त्री) मुझ पर दया कर रही है? हाय! इस समय मैं दरिद्र हो गया हूँ।

अपने भाग्य के कारण नष्ट धन वाला तथा स्त्री के धन से अनुग हीत पुरुष धन (न होने) से स्त्री (के तुल्य) है और जो नारी है वह धन (हो जाने) से पुरुष (के समान) है।।२७।।

टीका— आत्मनः = स्वस्य भाग्येन = दुर्दैवेन क्षतम् = विनष्टम् द्रव्यम् = धनम् यस्य सः; स्त्रियाः = पत्न्याः द्रव्येण = दत्तेन धनेन; अनुकम्पितः = अनुग हीतः; पुरुषः = जनः; अर्थतः = धनात्, धनाभावादिति यावत्; नारी = स्त्री; पोष्यत्वसाम्यादिति भावः; भवतीति शेषः; तथा या नारी = स्त्री अस्ति; सा अर्थतः = धनेनेत्यर्थः = पुमान् पुरुषः; रक्षकत्वसाधर्म्यादिति।।२७।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा अनुष्टुप् छन्द है।

अथवा, नाहं दरिद्रः; यस्य मम

विभवानुगता भार्या सुखदुःखसुहृद्भवान्।
सत्यं च न परिभ्रष्टं यद्दरिद्रेषु दुर्लभम्।।२८।।

अन्वयः— (यस्य मम) स्त्री, विभवानुगता, भवान्, सुखदुःखसुहृत्, सत्यम्, च, न, परिभ्रष्टम्, यत्, दरिद्रेषु, दुर्लभम्।।२८।।

शब्दार्थः—(यस्य = जिस, मम = मेरी) स्त्री = पत्नी, विभवानुगता = धन के अनुसार चलने वाली है), भवान् = आप, सुखदुःखसुहृत् = सुख एवं दुःख के मित्र (हैं), सत्यम् = सत्य, च = भी, न = नहीं, परिभ्रष्टम् = छूटा, यत् = जो, (ये तीनों) दरिद्रेषु = निर्धनों में, दुर्लभम् = मुश्किल हैं।।

अर्थः— अथवा मैं दरिद्र नहीं हूँ। जिस मेरी-

पत्नी धन के अनुसार चलने वाली है अर्थात् कम अथवा अधिक धन के अनुसार घर के खर्च का प्रबन्ध करने वाली पत्नी है। आप सुख तथा दुख में एक भाव से साथ देने वाले मित्र हैं। और सच बोलना भी नहीं छूटा है-जो कि (ये तीनों बातें) निर्धनों के पास बड़ी मुश्किल से मिलती हैं।।२८।।

टीका— यस्य ममेति स्त्री = भार्या; विभवस्य = धनस्य अनुगता = अनुसारिणी; सम्पत्त्यनुरूपं ग हकार्यं धैर्येण स चालयति, न कस्यामपि अवस्थायां विमनायते इति; भवान् = त्वम्; सुखदुःखयोः =

सम्पत्तिविपत्त्योः सुहृत् = सखा; अस्तीति शेषः; सत्यम् = सत्यवचनम्; च न परिभ्रष्टम् = नष्टम्; यत् = त्रयम्; दरिद्रेषु = निर्धनेषु; दुर्लभम् = दुष्प्राप्यम् भवतीति।।२८।।

दरिद्रता के इसमें समुच्चय अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-अनुष्टुप्।।२८।।

मैत्रेय! गच्छ रत्नावलीमादाय वसन्तसेनायाः सकाशम्। वक्तव्या च सा मद्वचनात्- 'यत्खल्वस्माभिः सुवर्णभाण्डमात्मीयमिति कृत्वा विश्रम्भाद्‌द्यूते हारितम्; तस्य कृते ग ह्यतामियं रत्नावली' इति।

विदूषकः—मा दाव अक्खाइदस्स अभुत्तस्स अप्पमुल्लस्स चोरेहि अवहदस्स कारणादो चतुःसमुद्दसारभूदा रअणावली दीअदि। (मा तावदखादितस्याभुक्तस्याल्पमूल्यस्य चौरैरपहृतस्य कारणाच्चतुः समुद्रसारभूता रत्नावली दीयते।)

चारुदत्तः—वयस्य! मा मैवम्,—

यं समालम्ब्य विश्वासं न्यासो स्मासु तया कृतः।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्यैव दीयते।।२६।।

अर्थः— मैत्रेय — रत्नावली को लेकर 'वसन्तसेना' के पास जाओ। और मेरी ओर से उससे यह कहो कि-(आपके द्वारा रक्खे गये) सोने के पात्र को विश्वास पूर्वक अपना समझ कर जुए में हरा दिया। उसके बदले में आप यह रत्नावली ले लें।

विदूषक— जिसे (बेच कर) खाया नहीं है, जिसे काम में नहीं लाया है, (उपयोग जिसका नहीं किया है), जो कम कीमत को वस्तु है, जिसे चोरों ने चुरा लिया है, (उस वस्तु) के बदले में चारों सागरों की सारभूत यह रत्नावली मत दीजिए।

अन्वयः— तया, यम्, विश्वासम्, समालम्ब्य, अस्मासु, न्यासः, कृतः, तस्य, महतः, प्रत्ययस्य, एव, एतत्, मूल्यम्, प्रदीयते।।२६।।

शब्दार्थः— तया = उसके द्वारा, यम् = जिस, विश्वासम् = विश्वास को, समालम्ब्य = पकड़कर, सहारा बनाकर, अस्मासु = हम लोगों में, न्यासः = धरोहर, कृतः = की गयी, रक्खी गयी, तस्य = उस, महतः = बहुत बड़े, प्रत्ययस्य = विश्वास की, एव = ही, एतत् = यह, मूल्यम् = कीमत, प्रदीयते = दी जा रही है।।

अर्थः— **चारुदत्त—** मित्र! ऐसा मत (कहो)

उस वसन्तसेना ने जिस विश्वास के सहारे हमारे पास धरोहर रक्खी है, उस बहुत बड़े विश्वास की ही यह कीमत दी जा रही है (न की उस सोने के भाण्ड की)।।२६।।

टीका— तया = वसन्तसेनयेत्यर्थः; यम्, विश्वासम् = प्रत्ययम्; समालम्ब्य = आश्रित्य; अस्मासु = माद शनिर्धनेषु इति भावः; न्यासः = निक्षेपः; कृतः = सम्पादितः; तस्य महतः = अगाधस्येत्यर्थः; प्रत्ययस्यैव = विश्वासस्यैव, एतत् = रत्नावलीरूपम्; मूल्यम् = निष्क्रयः; दीयते = समर्प्यते। विश्वासस्य एतत् रत्नावली रूपं मूल्यं प्रदीयते न तु सुवर्णभाण्डस्येत्यर्थः।।२६।।

इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है।।२६।।

तद्वयस्य! अस्मच्छरीरस्प ष्टिकया शापितो सि, नैनामग्राहयित्वात्रागन्तव्यम्। वर्धमानक!

एताभिरिष्टिकाभिः संधिः क्रियतां सुसंहृतः शीघ्रम्।
परिवादबहलदोषान्न यस्य रक्षां परिहरामि।।३०।।

अर्थः— इसलिए मित्र! तुम्हें हमारे शरीर की सौगन्ध है, तुम उसे बिना दिए हुए यहाँ मत आना।

अन्वयः— एताभिः, इष्टिकाभिः, सन्धिः, शीघ्रम्, सुसंहतः, क्रियताम्, परिवादबहलदोषात्, यस्य, रक्षाम्, न, परिहरामि।।३०।।

शब्दार्थः— एताभिः = इन, इष्टिकाभिः = ईंटों से, सन्धिः = सेंध, शीघ्रम् = जल्द, सुसंहतः = भरी हुई, जोड़ी हुई, क्रियताम् = की जाय, परिवाद = बहलदोषात् = अपयश में महान् दोष होने के कारण, यस्य = जिस सेंध की, रक्षाम् = मरम्मत को, न = नहीं, परिहरामि = उपेक्षित करूँगा।

अर्थः— वर्धमानक! इन ईंटों से इस सेंध को जल्द ही अच्छी तरह भर दो। लोगों में फैलने वाले अपयश में महान् दोष होने के कारण जिस सेंध की मरम्मत की उपेक्षा नहीं करूँगा अर्थात् यदि यह सेंध इसी प्रकार फूटी रहेगी तो जनता में मेरे बारे में अनेक तरह की बुरी बातें फैलेंगी।।३०।।

टीका— एताभिः = बहिर्निर्गताभिः; इष्टिकाभिः = पक्वम त्खण्डैः; सन्धिः = चौरकृतं विवरम्, शीघ्रम् = झटिति; सुसंहतः = सम्यक् पूर्णः; क्रियताम् = विधीयताम्; परिवादे = लोकापवादे, अस्य भवने चौरः प्रविष्टः आसीदेवंरूपे बहलः = अधिकः दोषः = दूषणम् तस्मात्; यस्य = सन्धेः; रक्षाम् = रक्षणम्, यथावस्थानमित्यर्थः; न परिहरामि = न उपेक्षे।।३०।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं आर्या छन्द है।

वयस्य मैत्रेय! भवताप्यकृपणशौण्डीर्यमभिधातव्यम्।

विदूषकः—भो, दलिद्दो किं अकिवणं मंतेदि?। (भोः, दरिद्रः किमकृपणं मन्त्रयति?।)

चारुदत्तः— अदरिद्रो स्मि सखे!। (यस्य मम। 'विभवानुगता भार्या-' (३/२८) इत्यादि पुनः पठति) तद्गच्छतु भवान्। अहमपि कृतशौचः सन्ध्यामुपासे।

अर्थः—

मित्र मैत्रेय! तुम भी अत्यन्त उदारता के साथ (वसन्तसेना से सारी बातें) कहना।

विदूषक— अरे क्या दरिद्र भी उदरता के साथ कहता है?

चारुदत्त— मित्र! मै। दरिद्र नहीं हूँ। ('जिस मेरी धन के अनुसार चलने वाली स्त्री है'। ३/२८ इत्यादि फिर पढ़ता है) तो आप जायँ। मैं भी शौच इत्यादि करके सन्ध्या-पूजा करता हूँ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

।। इति सन्धिच्छेदो नाम त तीयो ंकः।।

(सब निकल जाते हैं)

सन्धिच्छेद (सेंध लगाना) नामक तीसरा अंक (समाप्त)

चतुर्थो ऽ कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी – आणत्तम्हि अत्ताए अज्जआए सआसं गतुम्। एसा अज्जआ चित्तफलअणिसण्णदिट्ठी मदणिआए सह किंपि मंतअंती चिट्ठदि। ता जाव उवसप्पामि। (आज्ञप्तास्मि मात्रार्यायाः सकाशं गन्तुम्। एषार्या चित्रफलकनिषण्णद ष्टिर्मदनिकया सह किमपि मन्त्रयन्ती तिष्ठति। तद्यावदुपसर्पामि।)

(इति परिक्रामति)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा वसन्तसेना मदनिका च)

वसन्तसेना– हज्जे मदणिए! अवि सुसदिसी इअं चित्ताकिदी अज्जचारुदत्तस्य। (चेटि मदनिके! अपि सुसद शीयं चित्राकृतिरार्यचारुदत्तस्य।)

मदनिका– सुसदिसी। (सुसद शी।)

वसन्तसेना– कधं तुमं जाणासि?। (कथं त्वं जानासि?।)

मदनिका– जेण अज्जआए सुसिणिद्धा दिट्टी अणुलग्गा। (येनार्यायाः सुस्निग्धा द ष्टिरनुलग्ना।)

वसन्तसेना– ह जे! किं वेसवासदाक्खिण्णेण मदणिए! एव्वं भणासि?। (चेटि! किं वेशवासदाक्षिण्येन मदनिके! एवं भणसि?।)

मदनिका– अज्जए! किं जो ज्जेव जणो वेसे पडिवसदि, सो ज्जेव अलीअदक्खिणो भोदि?। (आर्ये! किं य एव जनो वेशे प्रतिवसति, स एवालीकदक्षिण भवति?।)

वसन्तसेना– हज्जे! णाणापुरिससंगेण वेस्साजणो अलीअदक्खिणो भोदि। (चेटि! नानापुरुषसंसर्गेण वेश्याजनो लीकदक्षिणो भवति।)

मदनिका– जदो दाव अज्जआए दिट्टी इध अभिरमदि हिअअं च, तस्स कारणं किं पुच्छीअदि?। (यतस्तावदार्याया द ष्टिरिहाभिरमते हृदयं च, तस्य कारणं किं प च्छ्यते?।)

वसन्तसेना– हज्जे! सहीजणादो उवह्सणीअदां रक्खामि। (चेटि! सखीजनादुपहसनीयतां रक्षामि।)

मदनिका– अज्जए! एव्वं णेदम्। सहीजणचित्ताणुवत्ती अबलाजणो भोदि। (आर्ये! एवं नेदम्। सखीजनचित्तानुवर्त्यबलाजनो भवति)

प्रथमा चेटी– (उपस त्य) अज्जए! अत्ता आणवेदि–'गहिदावगुंठणं पक्खदुआरए सज्जं पवहणम्। ता गच्च' त्ति। (आर्ये! माताज्ञापयति–'ग हीतावगुण्ठनं पक्षद्वारे सज्जं प्रवहणम्। तद्गच्छ' इति।)

वसन्तसेना– हज्जे! किं अज्जचारुदत्तो मं णइस्सदि। (चेटि! किमार्यचारुदत्तो मां नेष्यति?।)

चेटी– अज्जए! जेण पवहणेण सह सुवण्णदससाहस्सिओ अलंकारओ अणुप्पेलिदो। (आर्ये! येन प्रवहणेन सह सुवर्णदशसाहस्रिको लंकारो नुप्रेषितः।)

वसन्तसेना– को उण सो?। (कः पुनः सः?।)

चेटी – एसो ज्जेव राअस्सालो संठाण्ओ। (एष एव राजश्यालः संस्थानकः।)

वसन्तसेना— (सक्रोधम्) अवेहि मा पुणो एव्वं भणिस्ससि। (अपेहि, मा पुनरेवं भणिष्यसि।)

चेटी— पसीददु पसीददु अज्जआ। संदेसेण म्हि पेसिदा। (प्रसीदतु प्रसीदत्वार्या। संदेशेनास्मि प्रेषिता।)

वसन्तसेना— अहं संदेसस्य ज्जेव कुप्पामि। (अहं संदेशस्यैव कुप्यामि।)

चेटी— ता किंति अत्तं विण्णविस्सम्?। (तत्किमिति मातरं विज्ञापयिष्यामि?।)

वसन्तसेना— एव्वं विण्णाविदव्या—'जइ मं जीअंतीं इच्छसि, ता एव्वं ण पुणो अहं अत्ताए अण्णविदव्वा'। (एवं विज्ञापयितव्या-'यदि मां जीवन्तीमिच्छसि, तदैवं न पुनरहं मात्रा ज्ञापयितव्या'।)

चेटी— जधा दे रोअदि। (यथा ते रोचते।) (इति निष्क्रान्ता)

(प्रविश्य)

शर्विलकः—

दत्त्वा निशाया वचनीयदोषं निद्रां च जित्वा न पतेश्च रक्ष्यान्।
स एष सूर्योदयमन्दरश्मिः क्षपाक्षयाच्चन्द्र इवास्मि जातः।।१।।

अर्थः— चेटी (वसन्तसेना की एक दासी) — वसन्तसेना की माता जी ने मुझे आर्या वसन्तसेना के पास जाने की आज्ञा दी है। चित्र-पट पर आँख गड़ाए हुए यह आर्या वसन्तसेना 'मदनिका' के साथ कुछ बात-चीत कर रही है। तो उनके पास चलूँ। (ऐसा कहकर घूमती है)।

(इसके बाद ऊपर बतलाये हुए ढंग से 'वसन्तसेना' और 'मदनिका' प्रवेश करती हैं)

वसन्तसेना— चेटी मदनिका! चित्र में बनी हुई आर्य 'चारुदत्त' की यह आकृति क्या (मेरी शरीर की सुन्दरता आदि के) योग्य है?

मदनिका—अनुरूप है।

वसन्तसेना— तुम कैसे जानती हो?

मदनिका— क्योंकि आर्या की स्निग्ध द ष्टि इसमें लगी हुई है।

वसन्तसेना— चेटी मदनिका! क्या वेश्यालय में रहने से चतुरता सीख लेने के कारण ऐसा कह रही हो?

मदनिका— आर्ये! क्या जो व्यक्ति वेश्या के घर में रहता है वही झूठ बोलने में चतुर होता है?

वसन्तसेना— चेटी! बहुत से पुरुषों का साथ होने के कारण वेश्यायें झूठ बोलने में चतुर हो जाती हैं।

मदनिका— जब आपकी द ष्टि तथा हृदय दोनों ही इसमें अनुरक्त है तो फिर उसका कारण क्यों पूछती हैं? अर्थात् सुन्दर पुरुष के प्रति प्रेम होने पर शीघ्र उससे मिलना चाहिये, देर करना व्यर्थ है।

वसन्तसेना— चेटी! सखियों की हँसी से बचना चाहती हूँ। अर्थात् अयोग्य पुरुष से नाता जोड़ने पर सखियाँ हँसी लेंगी। अतः उससे बचना चाहती हूँ।

मदनिका— आर्ये! ऐसी बात नहीं है। स्त्रियाँ सखियों के चित्त के अनुसार व्यवहार करने वाली होती हैं।

पहली चेटी – (पास में जाकर) आर्ये माता जी यह आज्ञा देती हैं कि बगल के दरवाजे पर पर्दे से ढका हुआ रथ तैयार है। इसलिए जाओ।

वसन्तसेना– चेटी! क्या आर्य चारुदत्त मुझे ले जायेंगे?

चेटी– आर्ये! जिसने रथ के साथ दस हजार सोने की मोहरों के मूल्य का अलंकार भेजा है।

वसन्तसेना– कौन है फिर वह?

चेटी– यही राजा का साला 'संस्थानक'।

वसन्तसेना– (कोप के साथ) दूर हटो। फिर कभी ऐसा मत कहना।

चेटी– आर्ये! प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। मैं तो केवल सन्देश लाई हूँ।

वसन्तसेना– मैं सन्देश पर ही कोप कर रही हूँ।

चेटी– तो माता जी से क्या कहूँगी?

वसन्तसेना– इस प्रकार कहना-'यदि मुझे जीवित चाहती हो, तो मुझे माता जी के द्वारा फिर ऐसी आज्ञा नहीं मिलनी चाहिए।'

चेटी– जैसी आप की इच्छा। (निकल जाती है)।

अन्वयः– निशायाः, वचनीयदोषम्, दत्त्वा, निद्राम्, च, न पतेः, रक्ष्यान्, च, जित्वा, सः, एषः, (अहम्), क्षपाक्षयात्, सूर्योदयमन्दरश्मिः, चन्द्रः, इव, जातः, अस्मि।।१।।

शब्दार्थः– निशायाः = राशि को, वचनीयदोषम् = निन्दा के दोष को, दत्त्वा = देकर, निद्राम् = नींद को, च = और, न पतेः = राजा के, रक्ष्यान् = पहरेदारों को, च = भी, जित्वा = जीतकर, सः = वह, एषः = यह, (अहम् = मैं), क्षपाक्षयात् = रात के बीत जाने से, सूर्योदयमन्दरश्मिः = सूर्योदय के कारण मन्द तेज वाले, चन्द्रः = चन्द्रमा; इव = जैसा, जातः = हो गया, अस्मि = हूँ।।

(प्रवेश करके)

अर्थः– शर्विलक– रात्रि को निन्दा का दोष देकर अर्थात् 'रात में ही चोरी जैसे खराब काम होते हैं। इस प्रकार का दोष लगाकर नींद तथा राजा के पहरेदारों को जीत कर, यह मैं रात के बीत जाने पर सूर्योदय के कारण मन्द तेजवाले चन्द्रमा के समान हो गया हूँ।।१।।

टीका– निशायाः = रात्रेः; वचनीयदोषम् = बहुदोषा हि शर्वरीति अपवादरूपं दूषणम्, दत्त्वा = समर्प्य, चौर्येण दूषयित्वेत्यर्थः; निद्रा च = आत्मनः स्वाप च; न पतेः = राज्ञः; रक्ष्यान् = नगररक्षकान् च; जित्वा = तिरस्कृत्य, अगणय्य इत्यर्थः; सः = रात्रौ कर्मलीनः; एषः = गच्छन्; अहमिति शेषः; क्षपायाः = रात्रेः क्षयात् = नाशात्; सूर्योदयेन = प्रभाकरप्रकाशेन मन्दाः = कान्तिहीनाः रश्मयः = कराः यस्य सः; चन्द्रः = शशिः; इव = यथा; जातः = संव त्तः, अस्मि = वर्ते।।१।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है उपजाति।

अपि च,–

यः कश्चित्त्वरितगतिर्निरीक्षते मां
संभ्रान्तं द्रुतमुपसर्पति स्थितं वा।

तं सर्वं तुलयति दूषितो न्तरात्मा
स्वैर्दोषैर्भवति हि शंकितो मनुष्यः।।२।।

अन्वयः— यः, कश्चित्, त्वरितगतिः, (सन्), संभ्रान्तम्, माम्, निरीक्षते; वा, स्थितम्, (माम्), द्रुतम्, उपसर्पति; दूषितः, अन्तरात्मा, तम्, सर्वम्, तुलयति; हि, मनुष्यः, स्वैः, दोषैः, शंकितः, भवति।।२।।

शब्दार्थः— यः = जो, कश्चित् = कोई, त्वरितगतिः = जल्दी चलने वाला, (सन् = होता हुआ), सम्भ्रान्तम् = भयभीत, माम् = मुझको, निरीक्षते = देखता है; वा = अथवा, स्थितम् = खड़े हुए, (माम् = मेरे पास), द्रुतम् = शीघ्र उपसर्पति = आता है; दूषितः = दोषी, अन्तरात्मा = अन्तःकरण, तम् = उन, सर्वम् = सबको, तुलयति = तौलता है, सन्देह के साथ देखता है, हि = इसलिए कि, मनुष्यः = मनुष्य, स्वैः = अपने, दोषैः = दोषों से, शंकितः = शंकावाला, भवति = होता है।

और भी-

अर्थः— जल्दी-जल्दी चलने वाला जो कोई मनुष्य मुझ भयभीत को देखता है, अथवा खड़े हुए मेरे पास वेग से आता है; दोषी मेरी अन्तःकरण उन सब को सन्देह के साथ देखने लगता है अर्थात् यह सोचता है कि मुझे पकड़ने के लिये तो नहीं आ रहे हैं?। सचमुच मनुष्य अपने दोषों के कारण (ही) शंका करता है।।२।।

टीका— यः कश्चित् = यः को पि जनः इति शेषः; त्वरिता = वेगवती गतिः = गमनम् यस्य ताद शः सन्; संभ्रान्तम् = अनुचितकार्यानुष्ठानात् चकितम्, माम् = शर्विलकम्; निरीक्षते = पश्यति; वा = अथवा; स्थितम् = गतिनिव त्तम्; मामिति शेषः; द्रुतम् = शीघ्रम्; उपसर्पति = समीपमागच्छति; दूषितः = दोषयुक्तः; कृतापराधः इत्यर्थः; अन्तरात्मा = अन्तःकरणम्; ममेति शेषः; तम् = पूर्वोक्तम्; सर्वम् = निखिलम् जनम्; तुलयति = आशंकते परीक्षते वा,; हि = तथा हि; मनुष्यः = कृतापराधः जनः; स्वैः = स्वकृतैः; दोषैः = अपराधैः; शंका = सन्देहः स जाता = उत्पन्ना अस्य इति शंकितः = शंकायुक्तः; भवति = जायते।।२।।

यहाँ पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-प्रहर्षिणी। छन्द का लक्षण- ''त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्''।।२।।

मया खलु मदनिकायाः कृते साहसमनुष्ठितम्।

परिजनकथासक्तः कश्चिन्नरः समुपेक्षितः
क्वचिदपि ग हं नारीनाथं निरीक्ष्य विवर्जितम्।
नरपतिबले पार्श्वायाते स्थितं ग हदारुवद्-
व्यवसितशतैरेवंप्रायैर्निशा दिवसीकृता।।३।।

अर्थः— वास्तव में 'मदनिका' के लिए मैंने यह चोरी का काम किया है।

अन्वयः— (मया), परिजनकथासक्तः, कश्चित्, नरः, समुपेक्षितः; क्वचित्, अपि, ग हम्, नारीनाथम्, निरीक्ष्य, विवर्जितम्; नरपतिबले, पार्श्वायाते, ग हदारुवत्, स्थितम्; एवंप्रायैः, व्यवसितशतैः, निशा, दिवसीकृता।।३।।

शब्दार्थः— (मया = मेरे द्वारा), परिजनकथासक्तः = परिवार के साथ बात करने में लगा हुआ, कश्चित् = कोई, नरः = मनुष्य, समुपेक्षितः = उपेक्षित कर दिया गया; क्वचित् = कुछ स्थानों पर, अपि = भी, ग हम् = घर, नारीनाथम् = स्त्री है रक्षक जिसकी ऐसा, निरीक्ष्य = देखकर,

विवर्जितम् = छोड़ दिया गया; नरपतिबले = राजा के पहरेदारों के, पार्श्वायाते = बगल में आने पर, ग हदारुवत् = घर के खम्भे के समान, स्थितम् = खड़ा हुआ गया, एवंप्रायैः = इस प्रकार वाले, व्यवसितशतैः = सैकड़ों कार्यों से, निशा = रात, दिवसीकृता = दिन बना दी गयी।

अर्थः— परिवार के साथ बात करने में लगे हुए किसी पुरुष की उपेक्षा कर दी अर्थात् उसके घर में नहीं घुसा। और किसी घर को इसलिए भी छोड़ दिया कि उस घर में केवल स्त्रियाँ ही थीं। यदि राजा के पहरेदार बगल में आ गए तो घर में लगे हुए काठ के खम्भे के समान चुपचाप खड़ा हो गया। इस प्रकार के सैकड़ों कार्यों से मैंने रात को दिन बना दिया अर्थात् रात जागते ही जागते एवं काम करते करते बिता दी।।३।।

टीका— मया = शर्विलकेन; परिजनैः = परिवारसदस्यैः भ त्यजनैः वा सह कथायाम् = वार्तायाम् आसक्तः = संलग्नः; कश्चित् = को पि; नरः = मनुष्यः; समुपेक्षितः = उपेक्षाविषयीकृतः, परित्यक्तः इति भावः; क्वचिदपि = कुत्रचिदपि; ग हम् = भवनम्; नारी = स्त्री नाथः = प्रभुः यस्य तत्, स्त्रीमात्रसहायमित्यर्थः; निरीक्ष्य = द ष्ट्वा; विवर्जितम् = परित्यक्तम्; नरपतेः = राज्ञः बले = रक्षकसमूहे; पार्श्वायाते = समीपम् आगते सति; ग हस्य = भवनस्य दारुवत् = स्तम्भकाष्ठवत्; स्थितम् = अवस्थितम्; एवंप्रायैः = ईद शैः; व्यवसितशतैः = कार्यैः; निशा = रात्रिः; अदिवसः दिवसः सम्पद्यमानः कृतः इति दिवसीकृता = दिनवत् कृता। जाग्रता विविधानि कार्याणि कुर्वता एव रात्रिः गमितेति भावः।।३।।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार एवं हरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण-

'नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता'।।३।।

(इति परिक्रामति)

(ऐसा कह कर घूमता है)

वसन्तसेना— ह जे! इमं दाव चित्तफलअं मम सअणीये ठाविअ तालवेंटअं गेण्हिअ लहु आअच्छ। (चेटि! इमं तावच्चित्रफलकं मम शयनीये स्थापयित्वा तालव न्तं ग हीत्वा लघ्वागच्छ।)

मदनिका— जं अज्जआ आणवेदि। (यदार्याज्ञापयति।) (इति फलकं ग हीत्वा निष्क्रान्ता)

शर्विलकः— इदं वसन्तसेनाया ग हम्। तद्यावत्प्रविशामि। (प्रविश्य) क्व नु मया मदनिका द्रष्टव्या?

(ततः प्रविशति तालव न्तहस्ता मदनिका)

शर्विलकः — (द ष्ट्वा) अये इयं मदनिका!

मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती रतिरिव मूर्तिमती विभाति येयम्।
मम हृदयमनंगवह्नितप्तं भ शमिव चन्दनशीतलं करोति।।४।।

अर्थः—

वसन्तसेना— चेटी, इस तस्वीर (चित्रपट) को मेरे बिस्तर पर रख कर और पंखा (ताड़ का पंखा) लेकर जल्द आओ तो।

मदनिका—जैसी आप की आज्ञा। (ऐसा कह कर चित्र को लेकर निकल जाती है)।

शर्विलक—यह वसन्तसेना का घर है। तो इस में घुसता हूँ। (घुस कर) मुझे मदनिका को कहाँ खोजना चाहिए!

(इसके बाद ताड़ का पंखा हाथ में लिये 'मदनिका' प्रवेश करती है)।

अन्वयः— या, इयम्, गुणैः, मदनम्, अपि, विशेषयन्ती, मूर्तिमती, रतिः, इव, विभाति; (सा), अनंगवह्निनतप्तम्, मम, हृदयम्, भ शम्, चन्दनशीतलम्, इव, करोति।।४।।

शब्दार्थः— या = जो, इयम् = यह मदनिका, गुणैः = गुणों के द्वारा, मदनम् = कामदेव को, अपि = भी, विशेषयन्ती = लांघती हुई, जीतती हुई, मूर्तिमती = आकार को धारण करने वाली, रतिः = कामदेव की स्त्री रति, इव = जैसी, विभाति = शोभित हो रही है; सा = वह, अनंगवह्निनतप्तम् = कामाग्नि से झुलसे हुए, मम = मेरे, हृदयम् = हृदय को, भ शम् = अत्यधिक, चन्दन शीतलम् = चन्दन की भाँति शीतल, इव = सा, करोति = कर रही है।।

अर्थः—

शर्विलक — (देख कर) अरे! यह मदनिका!

जो यह मदनिका (चित्त को उन्मत्त बना देने वाले) गुणों के द्वारा कामदेव को भी अतिक्रमित करती हुई, शरीर को धारण करने वाली कामदेव की स्त्री रति के समान सुशोभित हो रही है। वह कामाग्नि से झुलसे हुए मेरे हृदय को चन्दन की भाँति अत्यधिक शीतल कर रही है।।४।।

टीका— या इयम् = मदनिका; गुणैः = चित्तोन्मादनादिभिः गुणैः; मदनम् = कामदेवम्; अपि, विशेषयन्ती = अतिक्रामन्ती, जयन्ती इत्यर्थः; मूर्तिमती आकार धारिणी; रतिः = मदनस्त्रीः; इव = यथा; विभाति = शोभते; सा = पूर्वोक्तगुणविशिष्टा; अनंगवह्निना = कामाग्निना तप्तम् = तन्तप्तम्; मम = शर्विलकस्य; हृदये विषयैः, हरति = आहरति विषयानिति वा हृदयम् = मानसम्: भ शम् = अत्यधिकम्; चन्दनशीतलम् = चन्दनानुलेपनेन शैत्ययुक्तमिव; करोति = विदधाति।।४।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है। तथा प्रयुक्त छन्द का नाम है-पुष्पिताग्रा। छन्द का लक्षण- ''अयुजि नयुगरेफतो यकारो। युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा''।।

मदनिके!।

मदनिका — (द ष्ट्वा) अम्मो, सव्विलओ। सव्विलअ कधं! साअदं दे, कहिं तुमम्?। (आश्चर्यम्, कथं शर्विलकः। शर्विलक! स्वागतं ते। कुत्र त्वम्?।)

शर्विलकः — कथयिष्यामि।

(इति सानुरागमन्योन्यं पश्यतः)

वसन्तसेना— चिरअदि मदणिआ। ता कहिं क्खु खु सा?। (गवाक्षकेन द ष्ट्वा) कथं एषा केनावि पुरिसकेण सह मंतअंती चिट्ठदि। जघा अदिसिणिद्धाए णिच्चलदिट्ठीए आपिबंती विअ एवं णिज्झाअदि तघा तक्केमि, एसो जणो एदं इच्छदि अभुजिस्सं कादुम्। ता रमदु रमदुम्, मा कस्सावि पीदिच्छेदो भोदु। ण क्खु सद्दाविस्सम्। (चिरयति मदनिका। तत्कुत्र नु खलु सा? कथम् एषा केनापि पुरुषकेण सह मन्त्रयन्ती तिष्ठति?। यथातिस्निग्धया निश्चलद ष्ट्या पिबन्तीवैतं निध्यायति तथा तर्कयामि, एष स जन एनामिच्छत्यभुजिष्यां कर्तुम्। तद्रमतां रमताम्, मा कस्यापि प्रीतिच्छेदो भवतु। न खल्वाकारयिष्यामि।)

मदनिका — सलिव्वअ! कधेहि। (शर्विलक! कथय।)

(शर्विलकः सशंक दिशो वलोकयति)

मदनिका — सव्विलअ! किं ण्णेदम्? ससंको विअ लक्खीअसि?। (शर्विलक! किं न्विदम्? सशंक इव लक्ष्यसे?)।

शर्विलकः — वक्ष्ये त्वां किंचिद्रहस्यम्। तद्विविक्तमिदम्।

मदनिका — अध इं। (अथ किम्।)

वसन्तसेना — कधं परमहस्सम्?। ता ण सुणिस्सम्। (कथं परमरहस्यम्?। तन्न श्रोष्यामि।)

शर्विलकः — मदनिके! किं वसन्तसेना मोक्ष्यति त्वां निष्क्रयेण?।

वसन्तसेना — कधं मम संबंधिणी कधा?। ता सुणिस्सं इमिणा गवक्खेण ओवारिदसरीरा। (कथं मम संबधिनी कथा?। तच्छ्रोष्याम्यनेन गवाक्षेणापवारितशरीरा।)

मदनिका — सब्विलअ! भणिदा मए अज्जआ। तदो भणादि—'जइ मम छंदो तदा विणा अत्थं सव्वं परिजणं अभुजिस्सं करइसम्'। अध सव्विलअ! कुदो दे एत्तिओ विहवो, जेण म अज्जआसआसादो मोआइस्ससि?। (शर्विलक! भणिता मयार्या। तदा भणति 'यदि मम छन्दस्तदा विनार्थं सर्वं परिजनमभुजिष्यं करिष्यामि। अथ शर्विलक! कुतस्त एतावान्विभवः, येन मामार्यासकाशान्मोचयिष्यसि?।)

शर्विलकः—

दारिद्र्येणाभिभूतेन त्वत्स्नेहानुगतेन च।
अद्य रात्रौ मया भीरु! त्वदर्थे साहसं कृतम्।।५।।

अर्थः— मदनिका — (देखकर) आश्चर्य, क्या शर्विलक है? शर्विलक तुम्हारा स्वागत है। तुम कहाँ?

शर्विलक—बताऊँगा।

(इस प्रकार बात करके वे दोनों प्रेमपूर्वक एक दूसरे को देखते हैं)

वसन्तसेना— 'मदनिका' देर कर रही है। तो फिर वह कहाँ चली गई? (खिड़की से देखकर) क्या? यह किसी पुरुष के साथ बातचीत करती हुई खड़ी है। जिस प्रकार अन्यन्त प्रेम भरी अपलक आँखों से इस आदमी को पीती हुई सी ध्यान के साथ देख रही है, उससे अनुमान करती हूँ कि यह वह आदमी है जो इस मदनिका को दासीपन से छुड़ाना चाहता है। तो रमण करे, रमण करे। किसी का भी प्रेम न टूटे। (अतः मैं) बुलाऊँगी नहीं।

अर्थः— मदनिका — शर्विलक! बतलाओ।

(शर्विलक शंकापूर्वक चारों ओर देखता है)

मदनिका—शर्विलक! क्या बात है? तुम शंकायुक्त से दिखलाई पड़ रहे हो।

अर्थः—

शर्विलक—तुम से कुछ गुप्त बात बताऊँगा। तो क्या यह जगह निर्जन है?।

वसन्तसेना— और क्या?

मदनिका—क्या बिलकुल गुप्त बात है? तो नहीं सुनूँगी।

शर्विलक—मदनिका! तो क्या 'वसन्तसेना' धन देने से तुम्हें अपने बन्धन से छोड़ देगी?

वसन्तसेना— क्या! मेरे विषय की बात है? तो शरीर छिपाकर अर्थात् छिपकर इस झरोखे से सुनूँगी।

मदनिका — शर्विलक! मैंने आर्या वसन्तसेना से कहा था। तो उन्होंने कहा कि-'यदि मेरा वश हो तो विना धन के ही सब सेवकों को स्वतन्त्र कर दूँ।' फिर शर्विलक! तुम्हारे पास इतना धन कहाँ है, जिससे मुझको आर्या वसन्तसेना के पास से छुड़ा लोगे!

अन्वयः— हे भीरु! दारिद्र्येण, अभिभूतेन, च, त्वत्स्नेहानुगतेन, मया, अद्य, रात्रौ, त्वदर्थे, साहसम्, कृतम्।।५।।

शब्दार्थः— हे भीरु! = हे डरपोक स्त्री!, दारिद्र्येण = गरीबी से, अभिभूतेन = परेशान, च = एवं, त्वत्स्नेहानुगतेन = तुम्हारे प्रेम में फँसे हुए, मया = मेरे द्वारा, अद्य = आज, रात्रौ = रात में, त्वदर्थे = तुम्हारे लिए, साहसम् = चोरी, कृतम् = की गयी है।

अर्थः—

शर्विलक—हे डरने वाली स्त्री! गरीबी से परेशान एवं तुम्हारे प्रेम में फँसे हुए मैंने आज रात में तुम्हारे लिए अर्थात् तुमको छुड़ाने के लिये चोरी की है।।५।।

टीकाः— हे भीरु = हे भयशीले! दारिद्र्येण = निर्धनतया; अभिभूतेत = पीडितेन निर्जितेन वा; च = तथा; त्वयि = मदनिकायाम् स्नेहः = अनुरागः त्वत्स्नेहः तेन अनुगतः = युक्तः इत्यर्थः तेन; त्वत्प्रेमप्रवणेनेति यावत्; मया = शर्विलकेन; अद्य रात्रौ = रजन्याम्; त्वदर्थे = तव निमित्तम्, त्वामभुजिष्याम् कर्तुमिति यावत्; सहस = बले भवं साहसम् = दुष्करकर्म चौर्यमिति; कृतम् = अनुष्ठितम्।।५।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है। लक्षण- 'युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्'।।५।।

वसन्तसेना— पसण्णा से आकिदी, साहसकम्मदाए उण उव्वेअणीआ। (प्रसन्नास्याकृतिः साहसकर्मतया पुनरुद्वेजनीया)

मदनिका— सव्विलअ! इत्थीकल्लवत्तस्स कारणेण उहअ पि संसए विणिक्खित्तम्। (शर्विलक! स्त्रीकल्यवर्तस्य कारणेनोभयमपि संशये विनिक्षिप्तम्।)

शर्विलकः—किं किम्!।

मदनिका— सरीरे चारित्तं च। (शरीरं चारित्र्यं च।)

शर्विलकः— अपण्डिते! साहसे श्रीः प्रतिवसति।

मदनिका— सव्विलअ! अखंडिदचारित्तो सि। ता ण खु ते मम कारणादो साहसं करंतेण अच्चंतविरुद्धं आचरिदं?। (शर्विलक! अखण्डितचारित्र्यो सि। तन्न खलु त्वया मम कारणात्साहसं कुर्वतात्यन्तविरुद्धमाचरितम्।)

शर्विलकः-

नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां
विप्रस्वं न हरामि का चनमथो यज्ञार्थमभ्युद्ध तम्।
धात्र्युत्संगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचि
त्कार्याकार्यविचारिणी मम मतिश्चौर्येऽपि नित्यं स्थिता।।६।।

अर्थः— वसन्तसेना — इसका आकार तो सुन्दर है, किन्तु चोरी करने के कारण क्षोभ पैदा करने वाला है अर्थात् इसका सुन्दर चेहरा भी चोरी करने के कारण डरावना मालूम पड़ता है।

मदनिका—शर्विलक! कलेवा के समान तुच्छ स्त्री के अर्थात् मेरे कारण तुमने दोनों ही सन्देह में डाल दिया।

शर्विलक—क्या, क्या?

मदनिका—शरीर और चरित।

शर्विलक—भोली भाली स्त्री! साहस में लक्ष्मी निवास करती है।

मदनिका—शर्विलक! तुम्हारा चरित निर्दोष है। तो मेरे लिये हिम्मत (चोरी) करते हुए तुमने नितान्त विरुद्ध आचरण नहीं किया है?(मदनिका का यह कथन वक्रोक्तिपूर्ण है। अतः इसका भावार्थ होगा कि-तुम्हारा चरित खराब है। तुमने एकदम खराब कार्य किया है)।

अन्वयः— धनार्थी, अहम्, फुल्लाम्, लताम्, इव, विभूषणवतीम्, अबलाम्, नो, मुष्णामि; विप्रस्वम्, अथो, यज्ञार्थम्, अभ्युद्ध तम्, का चनम्, न, हरामि; तथा क्वचित्, धात्र्युत्संगतम्, बालम्, न, हरामि; चौर्ये, अपि, मम, मतिः, नित्यम्, कार्याकार्यविचारिणी, (सती), स्थिताः।।६।।

शब्दार्थः—धनार्थी = धन को चाहने वाला, अहम् = मैं, शर्विलक, फुल्लाम् = फूली हुई, लताम् = लता, इव = जैसी, विभूषणवतीम् = जेवरों से सजी हुई, अबलाम् = स्त्री को, नो = नहीं, मुष्णामि = लूटता हूँ; विप्रस्वम् = ब्राह्मण के धन को, अथो = तथा, यज्ञार्थम् = यज्ञ के लिए, अभ्युद्ध तम् = निकाले गये, का चनम् = सोना को, न = नहीं, हरामि = चुराता हूँ; तथा = और, क्वचित् = कहीं, धात्र्युत्संगगतम् = धाय की गोद में स्थित, बालम् बच्चे को, न = नहीं, हरामि = छीनता हूँ; चौर्ये = चोरी में, अपि = भी, मम = मेरी, मतिः = बुद्धि, नित्यम् = हमेशा, कार्याकार्यविचारिणी = उचित और अनुचित काम का विचार करने वाली, स्थिता = है।

अर्थः—

शर्विलक—धन को चाहने वाला मैं, फूली हुई लता के समान आभूषणों से सजी हुई स्त्री को नहीं लूटता हूँ। ब्राह्मण के धन एवं यज्ञ के लिये निकाल कर रक्खे हुए सोना को भी नहीं चुराता हूँ। और मैं कहीं धाय की गोद में स्थित बच्चे को भी छीनकर नहीं ले जाता हूँ। चोरी में भी मेरी बुद्धि हमेशा उचित और अनुचित का विचार करती है।

टीका— धानार्थी = धनलिप्सुः; अहम् = शर्विलकः, फुल्लाम् = विकसित पुष्पाम्; लताम् = वल्लरीम्; इव = यथा; विभूषणवतीम् = अलंकारयुक्ताम्; अबलाम् = स्त्रियम्; नो = नहि; मुष्णामि = चोरयामि; विप्रस्वम् = ब्राह्मण सम्पत्तिम्; अथो = तथा; यज्ञार्थम् = यज्ञसम्पादननिमित्तिमित्यर्थः; अभ्युद्ध तम् = निःसार्य स्थापितम् एकत्रीकृतम् वा; का चनम् = सुवर्णम्; न हरामि = न चोरयामि। तथा = अपि च; क्वचित् = कुत्रचित्; धात्र्याः = उपमातुः उत्संगे = क्रोड़े गतम् = वर्तमानम्; बालम् = बालकम्; न हरामि = तच्छरीरात् अलंकारादिकम् न आच्छिनद्मि इति भावः। चौर्ये = चोरकर्मणि; अपि मम = शर्विलकस्य; मतिः = बुद्धि; नित्यम् = सर्वदा; कार्यम् = कर्त्तव्यम् अकार्यम् = अकर्त्तव्यं च विचारयति = तच्छीला इति; कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकिनी इत्यर्थः सती; स्थिता = तिष्ठति।।६।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ पर प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।६।।

तद्विज्ञाप्यतां वसन्तसेना,-

तो 'वसन्तसेना' से कहो-

'अयं तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मितः।
अप्रकाशो ह्यलंकारो मत्स्नेहाद्धार्यतामिति,।।७।।

अन्वयः— अयम्, अलंकारः, तव, शरीरस्य, प्रमाणात्, इव, निर्मितः (अस्ति, तथा), अप्रकाशः, (अस्ति), हि, मत्स्नेहात्, धार्यताम्, इति।।७।।

शब्दार्थः— अयम् = यह, अलंकारः = आभूषण, तव = तुम्हारे, शरीरस्य = शरीर की, प्रमाणात् = नाप से, इव = मानों, निर्मितः = बनाया गया, (अस्ति = है, तथा = एवं) अप्रकाशः = न दिखाने लायक, (अस्ति = है), हि = अवश्य ही, मत्स्नेहात् = मेरे ऊपर प्रेम करने के कारण, धार्यताम् = पहना जाय; इति = ऐसा (कहना)।।

अर्थः— यह आभूषण मानों तुम्हारे शरीर की ही नाप से बनाया गया है। यह (दूसरों को) दिखाने के लायक भी नहीं है। मेरे ऊपर प्रेम करके (आप) इसे ले लें।।७।।

टीका— अयम् = दीयमानः; अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः = आभरणम्; तव = भवत्याः वसन्तसेनायाः इत्यर्थः; शरीरस्य = गात्रस्य; प्रमाणात् = परिमाणात्; इव निर्मितः = घटितः; अस्तीति शेषः; तथा = अनुचितः प्रकाशः यस्य सः अप्रकाशः = अप्रदर्शनीयः अस्ति; हि = अवश्यम्; मयि = मदनिकायामित्यर्थः, स्नेहात् = अनुरागात्; धार्यताम् = ग ह्यताम्।।७।।

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है पथ्यावक्त्र।

मदनिका—सव्विलअ! अप्पकाशो अलंकारओ। अअं च जणो त्ति दुवेवि ण जुज्जदि। ता उवणेहि दाव पेक्खामि एदं अलंकारअम्। (शर्विलक! अप्रकाशो लंकारः। अयं च जन इति द्वयमपि न युज्यते। तदुपनय तावत्। पश्याम्येनमलंकारम्।)

शर्विलकः— इदमलंकरणम्! (इति साशंक समर्पयति)

मदनिका—(निरूप्य) दिट्ठपुरुव्वो विअ अअं अलंकारओ। ता भणेहि कुदो दे एसो। (द ष्टपूर्व इवायमलंकारः। तद्भण कुतस्त एषः।)

शर्विलकः— मदनिके! किं तवानेन? ग ह्यताम्।

मदनिका— (सरोषम्) जइ मे प चअं ण गच्छसि, ता किंणिमित्तं मं णिक्किणासि?। (यदि मे प्रत्ययं न गच्छसि, तत्किंनिमित्तं मां निष्क्रीणासि?।)

शर्विलकः — अयि, प्रभाते मया श्रुतं श्रेष्ठिचत्वरे, यथा-'सार्थवाहस्य चारुदत्तस्य' इति।

(वसन्तसेना मदनिका च मूर्छां नाटयतः)

शर्विलकः — मदनिके! समाश्वसिहि। किमिदानीं त्व

विषादस्रस्तसर्वांगी संभ्रमभ्रान्तलोचना।
नीयमाना भुजिष्यात्वं कम्पसे नानुकम्पसे।।८।।

अर्थः—

मदनिका—शर्विलक! प्रकट रूप से न पहनने लायक आभूषण और वह जन दोनों की संगति नहीं बैठती अर्थात् दिखावे के लिये वेश्या आभूषण पहनकर लोगों के सामने जाती ही हैं। अतः तुम्हारा कहना माना न जायेगा। फिर भी दो, इस आभूषण को देखूँ।

शर्विलक — यह है आभूषण। (ऐसा कह कर शंका पूर्वक दे देता है)।

मदनिका—(देखकर) यह आभूषण पहले से देखा हुआ सा लगता है। तो बतलाओ कि यह तुम्हें कहाँ से मिला?

शर्विलक—मदनिका! तुम्हें इससे क्या? आभूषण ले लो।

मदनिका—(क्रोध के साथ) यदि तुम्हें मेरा विश्वास नहीं है तो किस लिए धन देकर मुझे छुड़ाते हो?

शर्विलक—अरे! सुबह मैंने सेठों के चौक में यह सुना था कि-'सार्थवाह 'चारुदत्त' का है।'

('वसन्तसेना' और 'मदनिका' मूर्छा का अभिनय करती हैं)।

अन्वयः— विषादस्रस्तसर्वांगी, संभ्रमभ्रान्तलोचना, कम्पसे; अभुजिष्यात्वम् नीयमाना, (अपि, किम्, मयि), न अनुकम्पसे।।८।।

शब्दार्थः—विषादस्रस्तसर्वांगी = दुःख से शिथिल सब अंगों वाली, संभ्रमभ्रान्तलोचना = घबराहट से च चल आँखों वाली, कम्पसे = काँप रही हो। अभुजिष्यात्वम् = स्वाधीनता को, नीयमाना = प्राप्त कराई जाती हुई (अपि = भी, किम् = क्यों, मयि = मेरे ऊपर), न = नहीं, अनुकम्पसे = कृपा कर रही हो।।

अर्थः—

शर्विलक—मदनिका! धीरज धरो। इस समय तुम क्यों-

दुःख से शिथिल सब अंगों वाली, घबड़ाहट से च चल आँखों वाली काँप रही हो? दासीपन से छुड़ाई जाती हुई (भी तुम मेरे ऊपर) कृपा क्यों नहीं कर रही हो?।।८।।

टीका— विषादेन = दुःखेन स्रस्तानि = शिथिलानि सर्वाणि = सम्पूर्णानि अंगानि = अवयवाः यस्याः सा; सम्भ्रमेण = भयेन भ्रान्ते = घूर्णिते लोचने = नेत्रे यस्याः स; कम्पसे = वेपसे; भुङ्क्ते स्वाम्युच्छिष्टम् या सा भुजिष्या = दासी, तस्याः भावः भुजिष्यात्वम् न भुजिष्यात्वम् अभुजिष्यात्वम् = अकिंकरीत्वम्, नीयमाना = प्राप्यमाणा अपि किं मयि शर्किलके न अनुकम्पसे = न दयसे?।।८।।

इस श्लोक में विभावना एवं विशेषोक्ति अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।८।।

मदनिका— (समाश्वस्य) साहसिअ! ण क्खु तुए मम कारणादो इमं अकज्जं करंतेण तस्सि गेहे को वि वावादिदो परिक्खदो वा?। (साहसिक! न खलु त्वया मम कारणादिदमकार्यं कुर्वता तस्मिन्गेहे को पि व्यापादितः परिक्षतो वा?।)

शर्विलकः— मदनिके! भीते सुप्ते न शर्विलकः प्रहरति; तन्मया न कश्चिद्व्यापादितो नापि परिक्षतः।

मदनिका— सच्चम् (सत्यम्?।)

शर्विलकः— सत्यम्।

वसन्तसेना— (संज्ञां लब्ध्वा) अम्महे, पच्चुवजीविदम्हि। (आश्चर्यम्, प्रत्युपजीवितास्मि।)

मदनिका— पिअम् पिअम्। (प्रियम्।)

शर्विलकः— (सेर्ष्यम्) मदनिके! किं नाम प्रियमिति?।

त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं
सद्व त्तपूर्वपुरुषे पि कुले प्रसूतः।

रक्षामि मन्यथविपन्नगुणो पि मानं
मित्रं च मां व्यपदिशस्यपरं च यासि।।६।।

अर्थः—

मदनिका— (धीरज धारण कर) हे साहसी! मेरे लिए इस बुरे काम को करते हुए तुमने उस घर में किसी को जान से मारा तो नहीं? अथवा किसी को घायल तो नहीं किया?

शर्विलक—मदनिका! डरे हुए और सोये हुए पर 'शर्विलक' वार नहीं करता है। इस लिए मैंने न तो किसी को मारा है और नहीं किसी को घायल ही किया है।

मदनिका—सच?

शर्विलक—सच।

वसन्तसेना— (होश में आकर) आश्चर्य है, कि मैं फिर जीवित हो गई।

मदनिका—प्रिय हुआ।

अन्वयः— सद्व त्तपूर्वपुरुषे, कुले, प्रसूतः, अपि, (अहम्) त्वत्नेहबद्धहृदयः, (सन्), हि, अकार्यम्, करोमि; मन्मथविपन्नगुणः, (सन्), अपि, मानम्, रक्षामि; (किन्तु, त्वम्) माम्, मित्रम्, व्यपदिशसि, च, अपरम्, च, यासि।।६।।

शब्दार्थः— सद्व त्तपूर्वपुरुषे = सदाचारी पुरुषों वाले, कुले = कुल में, प्रसूतः = पैदा हुआ, अपि = भी, अहम् = मैं, त्वत्स्नेहबद्धहृदयः = तुम्हारे प्रेम से बँधा हुआ हृदय वाला अर्थात् तुम्हारे प्रेम के आधीन, सन् = होता हुआ, हि = निश्चय, अकार्यम् = कुकर्म को, करोमि = करता हूँ; मन्मथविपन्नगुणः = कामदेव के कारण गुणहीन, सन् = होता हुआ, अपि = भी, मानम् = मान को, रक्षामि = बचाता हूँ; (किन्तु = परन्तु, त्वम् = तुम) माम् = मुझको, मित्रम् = मित्र, व्यपदिशसि = कहती हो, च = और, अपरम् = दूसरे को, दूसरे के पास, च = भी, यासि = जाती हो।।

अर्थः—

शर्विलक—(ईर्ष्या के साथ) मदनिका! क्या प्रिय हुआ?

सदाचारी पुरखों के कुल में पैदा हुआ भी मैं तेरे प्रेम के अधीन होकर ऐसा कुकर्म करता हूँ अर्थात् चोरी करता हूँ। कामदेव के प्रभाव के कारण गुणहीन होकर भी सम्मान की रक्षा करता हूँ। (इतने पर भी तू ऊपर से तो) मुझको अपना मित्र बतलाती है, और दूसरे (प्रेमी) के पीछे जाती है अर्थात् हृदय से किसी और को चाहती है।।६।।

टीका— सद् = समीचीनम् व त्तम् = कर्म येषाम् ते सद्व त्ताः = सदाचारपालनतत्पराः पूर्वपुरुषाः = पूर्वजाः यत्र तस्मिन्; कुले = वंशे; प्रसूतः = उत्पन्नः = अपि अहम् = शर्विलकः; त्वत्स्नेहेन = तव प्रेम्णा बद्धम् = वशीकृतम् हरति, हृयते वा हृदयम् = चेतः यस्य ताद शः सन् हि = निश्चितम्; अकार्यम् = अनुचितम् कर्म; करोमि = सम्पादयामि। मननं मत् = चेतना मथतीति मथः मतः = चेतनायाः मथः = मन्थनकर्ता कामदेवः इत्यर्थः तेन विपन्नाः = विनष्टाः गुणाः = सदाचारादयः यस्य ताद शः सन्; अपि; मानम् = आत्मसम्मानम्; रक्षामि = न त्यजामि इत्यर्थः; किन्तु त्वं माम् = शर्विलकमित्यर्थः; मित्रम् = प्रियम्; व्यपदिशसि = कथयसि; च = तथा; अन्यम् = अपरम् पुरुषम्, चारुदत्तमित्याशयः; च = अपि; यासि = सम्भोगार्थम् व्रजसि इति।।६।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है वसन्ततिलका।।६।।

(साकूतम्)

इह सर्वस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः।
निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः।।१०।।

अन्वयः— इह, सर्वस्वफलिनः, कुलपुत्रमहाद्रुमाः, वेश्याविहगभक्षिताः, अलम्, निष्फलत्वम्, यान्ति।।१०।।

शब्दार्थः— इह = इस संसार में, सर्वस्वफलिनः = सारा धन ही जिनका फल है, ऐसे कुलपुत्रमहाद्रुमाः = कुलीन पुत्र रूपी बड़े पेड़, वेश्याविहगभक्षिताः = वेश्यारूपी चिड़ियों के द्वारा खाये जाकर, अलम् = पूर्ण रूप से, निष्फलत्वम् = फल हीनता को, यान्ति = प्राप्त होते हैं।।

(अभिप्राय पूर्वक अर्थात् किसी बात को मन में लेकर)

अर्थः— इस संसार में अपना सारा धन ही जिनका फल है ऐसे कुलीन पुत्र रूपी बड़े पेड़ वेश्या रूपी चिड़ियों के द्वारा खाये जाकर एकदम निष्फल कर दिये जाते हैं। अर्थात् जिस प्रकार चिड़ियाँ फल खाकर पेड़ को फलहीन कर देती हैं, उसी प्रकार वेश्याएँ धन खाकर पुरुषों को गरीब कर देती हैं।।१०।।

टीकाः— इह = अस्मिन् जगति; सर्वं = निखिलम् स्वम् = धनमेव फलम् = प्रसवः इति सर्वस्वफलम्, तदस्ति एषामिति सर्वस्वफलिनः = समग्रधनरूपफलयुक्ताः; कुलपुत्राः = सद्वंशोत्पन्नाः जनाः एव महाद्रुमाः = महाव क्षाः; वेश्याः = गणिकाः एव विहगाः = पक्षिणः तैः भक्षिताः = खादिताः सन्तः; अलम् = पर्याप्तम्; निष्फलत्वम् = फलराहित्यम्; यान्ति = गच्छन्ति।।१०।।

यहाँ पर रूपक अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है—पथ्यावक्त्र।।१०।।

अयं च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः।
नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च।।११।।

अन्वयः— सुरतज्वालः, प्रणयेन्धनः, अयम्, कामाग्निः, (अस्ति), यत्र, नराणाम्, यौवनानि, धनानि, च, हूयन्ते।।११।।

शब्दार्थः— सुरतज्वालः = सम्भोग रूपी लपट वाली, प्रणयेन्धनः = प्रेम रूपी ईंधनवाली, अयम् = यह, कामाग्निः = काम वासना रूपी आग, (अस्ति = है) यत्र = जिसमें, नराणाम् = मनुष्यों की, यौवनानि = जवानियाँ, च = और, धनानि = सम्पत्तियाँ, हूयन्ते = होम की जाती हैं।।

अर्थः— सम्भोग जिसकी लपटें हैं, प्रेम जिसका ईंधन है, ऐसी कामवासना रूपी आग में मनुष्यों की जवानी और सम्पत्ति दोनों ही होम की जाती हैं।।११।।

टीका— सुरतम् = सम्भोगक्रीडा एव ज्वाला = शिखा यस्य सः; प्रणयः = अनुरागः एव इन्धनम् = दारु यस्य सः, अयम् = अनुभूयमानः, कामः = कामदेव; एव अग्निः = वह्निः अस्तीतिः; यत्र = यस्मिन् कामाग्नौ; नराणाम् = मानवानाम्; यौवनानि = तारुण्यानि; धनानि = सम्पत्तयश्च; हूयन्ते = भस्मसात् क्रियन्ते, आहुतयः इव प्रक्षिप्यन्ते।।११।।

यहाँ सांगरूपक अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है पथ्यावक्त्र।।११।।

वसन्तसेना—(सस्मितम्) अहो से अत्थाणे आवेओ। (अहो, अस्यास्थाने आवेगः।)

शर्विलकः— सर्वथा—

अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे ये
स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति।
श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो
भुजंगकन्यापरिसर्पणानि।।१२।।

वसन्तसेना— (मुस्कराकर) अहो! इसका रोष गलत जगह पर है अर्थात् इसका रोष बिना कारण के ही है।

अन्वयः— ये, पुरुषाः स्त्रीषु, च, श्रीषु, च, विश्वसन्ति, ते, अपण्डिताः, मे, मताः, हिं, श्रियः, तथैव, नार्यः, भुजंगकन्यापरिसर्पणानि, कुर्वन्ति।।१२।।

शब्दार्थः— ये = जो, पुरुषाः = पुरुष, स्त्रीषु = स्त्रियों पर, च = और, श्रीषु = धन पर, विश्वसन्ति = भरोसा रखते हैं; ते = वे पुरुष, अपण्डिताः = बेवकूफ (अज्ञ), मे = मुझे, मताः = लगते हैं; हि = क्योंकि, श्रियः = सम्पत्तियाँ, तथैव = उसी तरह, नार्यः = स्त्रियाँ, भुजंगकन्यापरिसर्पणानि = नागिन के समान (टेढ़ी) चाल, कुर्वन्ति = करती हैं, चलती हैं।।

शर्विलक—हर प्रकार से-

अर्थः— जो आदमी स्त्रियों एवं धन पर भरोसा रखते हैं; वे मुझे मूर्ख लगते हैं। सम्पति तथा स्त्रियाँ नागिन के समान टेढ़ी चाल चला करती हैं।।१२।।

टीकाः — ये पुरुषाः = जनाः; स्त्रीषु = रामासु; च = तथा; श्रीषु = सम्पत्तिषु च; विश्वसन्ति = विश्वासं कुर्वन्ति; ते पुरुषाः; अपण्डिताः = अप्रवीणाः, अज्ञाः इति यावत्; मे = मम, शर्विलकस्य इत्यर्थः; मताः = अभीष्टाः; मम बुद्धया ते मूर्खाः सन्ति इति भावः; हि = यतः; श्रियः = सम्पत्तयः; तथैव = तद्वदेव; नार्यः = स्त्रियः अपि; भुजंगकन्यानाम् = सर्पिणीनाम्, इव इत्यर्थः; परिसर्पणानि = कुटिलगमनानि; कुर्वन्ति = सम्पादयन्ति।।१२।।

इस श्लोक में दीपक एवं उपमा के परस्पर अंगांगिभाव के कारण संकर अलंकार तथा उपजाति छन्द है।।१२।।

स्त्रीषु न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति।
रक्तैव हि रन्तवया विरक्ताभावा तु हातव्या।।१३।।

अन्वयः— स्त्रीषु, रागः, न कार्यः; स्त्रियः, रक्तम्,, पुरुषम्, परिभवन्ति; हि, रक्ता, एव, रन्तव्या, विरक्तभावा, तु, हातव्या।।१३।।

शब्दार्थः— स्त्रीषु = स्त्रियों पर, रागः = प्रेम, न = नहीं, कार्यः = करना चाहिये; स्त्रियः = स्त्रियाँ, रक्तं = प्रेम करने वाले, पुरुषम् = पुरुष को, परिभवन्ति = अपमानित करती हैं; हि = केवल, रक्ता = प्रेम करने वाली स्त्री, एव = ही, रन्तव्या = रमण करने के योग्य है, विरक्तभावा = उदासीन (स्त्री), तु = तो, हातव्या = त्याग देने लायक (है)।।

अर्थः— स्त्रियों पर प्रेम नहीं करना चाहिए। स्त्रियाँ अपने पर प्रेम करने वाले पुरुष को अपमानित करती हैं। प्रेम करने वाली स्त्री के साथ ही रमण करना चाहिए। और उदासीन (प्रेम न करने वाली स्त्री) को त्याग देना चाहिए। अर्थात् उससे प्रेम नहीं करना चाहिए।।१३।।

टीकाः — स्त्रीषु = वनितासु; रागः = प्रीतिः; न कार्यः = न कर्तव्यः; स्त्रियः = वनिताः; रक्तम् = अनुरागशालिनम्; पुरुषम् = जनम्; परिभवन्ति = तिरस्कुर्वन्ति। हि = केवलम्; रक्ता =

अनुरागिणी स्त्री एव; रन्तव्या = रमणार्हा; विरक्तः = अनुरागशून्यः भावः यस्याः सा, अननुरागिणीत्यर्थः; हातव्या = परिवर्जनीया।।१३।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा आर्या छन्द है।

सुष्ठु खल्विदमुच्यते—

एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
र्विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः।।१४।।

अन्वयः— एताः, वित्तहेतोः, हसन्ति, च, रुदन्ति, च, पुरुषम्, विश्वासयन्ति, तु, न, विश्वसन्ति; तस्मात्, कुलशीलसमन्वितेन, नरेण, श्मशानसुमनाः, इव, वेश्याः, वर्जनीयाः।।१४।।

शब्दार्थः— एताः = ये (व्यापारी स्त्रियाँ), वित्तहेतोः = धन के लिये, हसन्ति = हँसती हैं, च = और, रुदन्ति = रोती हैं, पुरुषम् = पुरुष को, विश्वासयन्ति = विश्वास दिलाती हैं, तु = किन्तु, न = नहीं, विश्वसन्ति = विश्वास करती हैं; तस्मात् = इसलिये, कुलशीलसमन्वितेन = (अच्छे) कुल एवम् स्वभाव वाले, नरेण = मनुष्य के द्वारा, श्मशानसुमनाः इव = श्मशान भूमि के फूल की भाँति, वेश्याः = वेश्याएँ, वर्जनीयाः = त्याग देने के योग्य हैं।।

वास्तव में यह ठीक कहा जाता है—

अर्थः— ये (व्यापारी स्त्रियाँ) धन के लिए हँसती और रोती हैं। पुरुष को विश्वास दिलाती हैं, किन्तु (स्वयं पुरुष का) विश्वास नहीं करती हैं। इसलिए अच्छे कुल एवं स्वभाव वाले पुरुष को चाहिए कि वह वेश्याओं को श्मशान भूमि के फूल के समान छोड़ दे।।१४।।

टीकाः— एताः = वेश्याः; वित्तस्य = धनस्य, हेतोः = कारणात्; हसन्ति = दातुः विनोदार्थं हासम् कुर्वन्ति इत्यर्थः; च = तथा; रुदन्ति = विलपन्ति च; पुरुषम् = कामुकम जनमित्यर्थः; विश्वासयन्ति = प्रत्याययन्ति च, तु = किन्तु; न विश्वसन्ति = न प्रत्ययम् गच्छन्ति; तस्मात् = ततः; कुल च = सद्वंशश्च शील च = स्वभावश्च ताभ्याम् समन्वितेन = युक्तेन, कुलवता शीलवता चेत्यर्थः; नरेण = पुरुषेण; श्मशानस्य = पित वनस्य सुमनाः = पुष्पम् मालतीपुष्पाणि वा; इव वेश्याः = वारनार्यः; वर्जनीयाः = हातव्याः।।१४।।

पूर्वार्द्ध में दीपक अलंकार है। श्लोक के उत्तरार्द्ध में उपमा अलंकार है। इस प्रकार यहाँ दीपक एवं उपमा की संस ष्टि है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।१४।।

अपि च—

समुद्रवीचीव चलस्वभावाः संध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति।।१५।।

अन्वयः— समुद्रवीची, इव, चलस्वभावाः, सन्ध्याभ्रलेखा, इव, मुहूर्तरागाः, स्त्रियः, हृतार्थाः, (सत्यः), निरर्थम्, पुरुषं, निष्पीडितालक्तकवत्, त्यजन्ति।।१५।।

शब्दार्थः— समुद्रवीची = सागर की लहरी, इव = जैसी, चलस्वभावाः = च चल स्वभाव वाली; सन्ध याभ्रलेखा = सायंकालीन बादलों की पाँत, इव = जैसी, मुहूर्तरागाः = क्षण भर के लिये राग लालिमा, प्रेम वाली, स्त्रियः = स्त्रियाँ, हृतार्थाः = धन लेने वाली, (सत्यः = होकर), अर्थात्

धन लेकरके; निरर्थम् = निर्धन, पुरुषम् = पुरुष को, निष्पीडितालक्तकवत् = निचोड़े गये महावर के समान, त्यजन्ति = छोड़ देती हैं।।

और भी-

अर्थः— सागर की लहरों के समान च चल स्वभाव वाली, सायंकालीन बादलों की रेखा के समान क्षण भर के लिए राग (बादलों के पक्ष में-लालिमा एवं स्त्रियों के पक्ष में-प्रेम) वाली स्त्रियाँ (वेश्यायें) धन लेकर के (बाद में) निर्धन हुए मनुष्य को, निचोड़े गये महावर (अलक्तक) के समान, छोड़ देती हैं।।१५।।

टीकाः — समुद्रस्य = सागरस्य, वीची = तरंगः इव; चलः = अस्थिरः स्वभावः = प्रकृतिः यासाम् ताः, अतिचपलाः इत्यर्थः; सन्ध्यायाः = सायंकालस्य अभ्राणाम् = मेघानाम् लेखा = रेखा, इव; मुहूर्तम् = क्षणम् अल्पकालमित्यर्थः-रागः = अनुरागः (मेघलेखापक्षे रक्तिमा) यासाम् ताः; स्त्रियः = रमण्यः; हृतः = अपहृतः कामुकात् ग हीतः इति यावत्, अर्थः = धनम् याभिः तथाभूताः सत्यः; निर्गतः अर्थः यस्य तम् निरर्थम् = निर्धनम्; पुरुषम् = जनम्; निष्पीडितम् = निःसारितम् अलक्तकम् = लाक्षा तद्वत् त्यजन्ति = परित्यजन्ति।।१५।।

इस श्लोक में उपका अलंकार एवं उपजाति छन्द है।।१५।।

स्त्रियो नाम चपलाः-

अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा अन्यं ततो द ष्टिभिराह्वयन्ति।
अन्यत्र मु चन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते।।१६।।

अन्वयः— (स्त्रियः), हृदयेन, अन्यम् मनुष्यम्, कृत्वा, ततः, अन्यम् द ष्टिभिः, आह्वयन्ति, अन्यत्र, मदप्रसेकम्, मु चन्ति, शरीरेण, अन्यम्, च, कामयन्ते।।१६।।

शब्दार्थः— (स्त्रियः = स्त्रियाँ), हृदयेन = हृदय से, अन्यम् = दूसरे, मनुष्यम् = पुरुष को, कृत्वा = करके, ततः = उससे, अन्यम् = दूसरे को, द ष्टिभिः = आँखों से, आह्वयन्ति = बुलाती हैं; अन्यत्र = दूसरे पर, मदप्रसेकम् = मदिरा का कुल्ला, मु चन्ति = छोड़ती हैं, करती हैं; शरीरेण = शरीर से, अन्यम् = दूसरे को, कामयन्ते = चाहती हैं।

च चल स्वभाववाली स्त्रियाँ-

अर्थः— अपने हृदय में दूसरे पुरुष को रखकर उससे किसी दूसरे पुरुष को आँख के इशारों से बुलाती हैं। उससे भी दुसरे पुरुष पर मदिरा का कुल्ला करती हैं और अपनी शरीर से (उससे भी किसी) अन्य पुरुष को चाहती हैं अर्थात् आलिंगन करती हैं।।१६।।

टीकाः— स्त्रियः = वारनार्यः इत्यर्थः; हृदयेन = चेतसा; अन्यम् = इतरम्; मनुष्यम् = पुरुषम्; कृत्वा = निश्चित्य इत्यर्थः, ततः = तस्मात् पुरुषात्; अन्यम् = इतरम् जनम्; द ष्टिभिः = नेत्रेंगितैः इत्यर्थः; आह्वयन्ति = आकारयन्ति; अन्यम् = तस्मात् अन्यस्मिन् जने; मदस्य = मदिरायाः, प्रसेकम् = मुखात् प्रक्षेपम्, सेचनमित्यर्थः; मु चन्ति = त्यजन्ति, कुर्वन्ति, इत्यर्थः; शरीरेण कायेन, अन्यम् = तदतिरिक्तम् च, कामयन्ते = वा छन्ति, प्रेम्णा आलिंगन्ते।।१६।।

यहाँ पर दीपक अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-इन्द्रवज्रा। छन्द का लक्षण-'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः'।।१६।।

सूक्तं खलु कस्यापि—

न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति
न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति।
यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो
न वेशजाताः शुचयस्तथांगनाः।।१७।।

अन्वयः— पर्वताग्रे, नलिनी, न, प्ररोहति, गर्दभाः, वाजिधुरम्, न, वहन्ति; प्रकीर्णाः, यवाः, शालयः, न, भवन्ति, तथा, वेशजाताः, अंगनाः, शुचयः, न, (भवन्ति)।।१७।।

शब्दार्थः— पवताग्रे = पहाड़ की चोटी पर, नलिनी = कमललता, न = नहीं, प्ररोहति = उगती है; गर्दभाः = गदहे, वाजिधुरम् = घोड़े के भार को, न = नहीं, वहन्ति = ढोते हैं प्रकीर्णाः = बोए हुए, यवाः = जौ, शालयः = धान, न भवन्ति = नहीं होते हैं, तथा = और, वेशजाताः = वेश्या के घर में पैदा हुई अंगनाः = स्त्रियाँ, शुचयः = पवित्र, न = नहीं, (भवन्ति = होती हैं)।।

सचमुच किसी का कहा हुआ ठीक ही है-

अर्थः— पहाड़ की चोटी पर कमललता नहीं उगती है। गधे घोड़े के भार को नहीं ढोते हैं। (खेत में) बोए हुए जौ धान नहीं हो जाते हैं। इसी प्रकार वेश्या के घर में पैदा हुई स्त्रियाँ पवित्र नहीं होती हैं।।१७।।

टीकाः— पर्वतस्य = गिरेः, अग्रे = श्र ंगे; नलिनो = कमलिनी; न प्ररोहति = नोत्पद्यते; गर्दन्ति इति गर्दभाः = रासभाः; वाजिनाम् = अश्वानाम्, धुरम् = भारम् = अश्ववाह्यम्, भारमित्यर्थः, न वहन्ति = वोढुम् न समर्थाः भवन्ति इत्यर्थः, प्रकीर्णाः = क्षेत्रे प्रक्षिप्ताः; यवाः = सितशूकाः, शालयः = कलमाः; न भवन्ति = न जायन्ते; तथा वेशे = वेश्यालये जाताः = उत्पन्नाः; अंगनाः = स्त्रियः; शुचयः = पवित्राः; न भवन्तीति।।१७।।

इस श्लोक में द ष्टान्त अलंकार एवं वंशस्थ छन्द है।।१७।।

आः दुरात्मन् चारुदत्तहतक! अयं न भवसि। (इति कतिचित्पदानि गच्छति)

मदनिका— (अ चले ग हीत्वा) अइ असंबद्धभासअ असंभावणीए कुप्पासि। (अयि असंबद्धभाषक! असंभावनीये कुप्यसि?।)

शर्विलकः—कथमसंभावनीयं नाम?

मदनिका— एसो क्खु अलंकारओ अज्जआकेरओ। (एष खल्वलंकार आर्यासंबन्धी।)

शर्विलकः— ततः किम्?

मदनिका— स च तस्स अज्जस्स हत्थे विणिक्खित्तो। (स च तस्यार्यस्य हस्ते विनिक्षिप्तः।)

शर्विलकः— किमर्थम्?

मदनिका— (कर्णे) एव्वं विअ। (एवमिव।)

शर्विलकः— (सवैलक्ष्यम्) भोः कष्टम्,-

छायार्थं ग्रीष्मसंतप्तो यामेवाहं समाश्रितः।
अजानता मया सैव पत्रैः शाखा वियोजिता।।१८।।

अर्थः— अरे दुष्ट चारुदत्त! अब तुम न रहोगे अर्थात् अभी तुम्हें मारता हूँ। (ऐसा कह कर कई कदम चलता है)।

मदनिका—(आँचल पकड़ कर) हे असम्बद्ध बोलने वाले! असम्भावित पर कोप कर रहे हो?

शर्विलक—असम्भावनीय कैसे है?

मदनिका—वास्तव में यह आभूषण वसन्तसेना का है।

शर्विलक—उससे क्या?

मदनिका—वह आभूषण उन आर्य चारुदत्त के हाथ में धरोहर रक्खा गया था।

शर्विलक—किस लिए?

मदनिका—(कान में) इसलिए।

शर्विलक—(लज्जा के साथ) अरे दुःख है।

अन्वयः— ग्रीष्मसन्तप्तः, अहम्, छायार्थम्, याम्, एव, समाश्रित, अजानता, मया, सा, एव, शाखा, पत्रैः, वियोजिता।।१८।।

शब्दार्थः— ग्रीष्मसन्तप्तः = गर्मी से परेशान, अहम् = मैने, छायार्थ = छाँह के लिये, याम् = जिस (डाली) को, एव = ही, समाश्रितः = आश्रय बनाया, सहारा बनाया, अजानता = न जानने वाले, मया = मेरे द्वारा, सा = वह, एव = ही, शाखा = डाली, पत्रैः = पत्तों से, वियोजिता = रहित कर दी गयी।।

अर्थः— गर्मी से परेशान हुए मैंने छाँह के लिए जिस डाली का आश्रय लिया, उसी को अनजाने में मैने ही पत्तों से हीन बना दिया। अर्थात् अपनी कामाग्नि से परेशान होकर मैं जिस 'वसन्तसेना' से 'मदनिका' को छुड़ाना चाहा उसी 'वसन्तसेना' का आभूषण चुराया। वास्तव में यह भूल हो गयी।।१८।।

टीकाः— ग्रीष्मेण = निदाघेन सन्तप्तः = पीडितः; अहम् = शर्विलकः; छायार्थम् = अनातपार्थम्, याम् = शाखामित्यर्थः; एव समाश्रितः = आश्रितवान्; अजानता = अनभिज्ञेन, मया = शर्विलकेन; सैव = कृताश्रयैव; शाखा = शाला; पत्रैः = पर्णैः, छायासाधनभूतैः इति भावः; वियोजिता = पत्रशून्या कृता।।१८।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।१८।।

वसन्तसेना—कधं एसो वि सतप्पदि ज्जेव?। ता अजाणंतेण एदिणा एव्वं अणुचिट्ठिदम्। (कथमेषो पि सन्तप्यत एव। तदजानतैतेनैवमनुष्ठितम्)

शर्विलकः— मदनिके! किमिदानीं युक्तम्?।

मदनिका— इत्थं तुमं ज्जेव पंडिओ। अत्र त्वमेव पण्डितः।

शर्विलकः— नैवम्; पश्य-

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते।।१६।।

अर्थः- वसन्तसेना — क्या यह भी सन्ताप ही कर रहा है। तो अनजाने में ही इसने ऐसा किया।

शर्विलक—मदनिका — अब क्या उचित है?

मदनिका—इस विषय में तुम्हीं चतुर हो।

शर्विलक—ऐसा नहीं। देखो-

अन्वयः— एताः, स्त्रियः, हि, निसर्गात्, एव, पण्डिताः, खलु, नाम, तु, पुरुषाणाम्, पाण्डित्यम्, शास्त्रैः, एव, उपदिश्यते।।१६।।

शब्दार्थः— एताः = ये, स्त्रियः = स्त्रियाँ, हि = निश्चय ही, निसर्गात् = प्रकृति से, जन्म से, एव = ही, पण्डिताः = चतुर (होती हैं), खलु नाम = ऐसी सम्भावना की जाती है। तु = किन्तु, पुरुषाणाम् = पुरुषों की, पाण्डित्यम् = चतुरता, शास्त्रैः = शास्त्रों के द्वारा, एव = ही, उपदिश्यते = सिखाई जाती है।।

अर्थः— वास्तव में, ये स्त्रियाँ जन्म से ही चतुर होती हैं। पुरुषों की चतुरता तो शास्त्रों के द्वारा ही सिखाई गई होती है अर्थात् शास्त्र पढ़ने के बाद ही पुरुष चतुर होते हैं।।१६।।

टीकाः— एताः = इमाः; स्त्यायन्ति गर्भाः आसु इति स्त्रियः = नार्यः; हि = निश्चितम्; निसर्गात् = स्वभावात्; एव पण्डिताः = चतुराः, प्रवीणाः; भवन्तीति शेषः; नामेति सम्भावनायाम्; तु = किन्तु; पुरुषाणाम् = पुंसाम्; पाण्डित्यम् = नैपुण्यम्; शास्त्रैः = ग्रन्थाध्ययनैः इत्यर्थः; एव उपदिश्यते = शिक्ष्यते, वा कथ्यते विचक्षणैः इति।।१६।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-पथ्यावक्त्र।।१६।।

मदनिका— सव्विलअ। जइ मम वअणं सुणीअदि, ता तस्स ज्जेव महाणुभावस्स पडिणिज्जादेहि। (शर्विलक! यदि मम वचनं श्रूयते, तदा तस्यैव महानुभावस्य प्रतिनिर्यातय।)

शर्विलकः— मदनिके! यद्यसौ राजकुले मां कथयति।

मदनिका— ण चंदादो आदवो होदि। (न चन्द्रादातपो भवति।)

वसन्तसेना— साहु मदणिए! साहु। (साधु मदनिके! साधु)

शर्विलकः— मदनिके।

न खलु मम विषादः साहसे स्मिन्भयं वा
कथयसि हि किमर्थं तस्य साधोर्गुणांस्त्वम्?।
जनयति मम वेदं कुत्सितं कर्म लज्जां
न पतिरिह शठानां माद शां किं नु कुर्यात्?।।२०।।

अर्थः- मदनिका – शर्विलक! यदि मेरा कहना मानते हो तो उन्हीं महानुभाव आर्य चारुदत्त को लौटा दो।

शर्विलक—मदनिका! यदि ये चारुदत्त मेरे विषय में राजकुल में कह देंगे तो।

मदनिका—चन्द्रमा से गर्मी नहीं होती अर्थात् 'चारुदत्त' से ऐसी बात की आशा नहीं है।

वसन्तसेना—वाह! मदनिका वाह!!

अन्वयः— अस्मिन्, साहसे, मम, विषादः, वा, भयम्, न, खलु; (अस्ति), त्वम्, तस्य, साधोः, गुणान्, किमर्थं, कथयसि?हि, इदम्, कुत्सितम्, कर्म, वा, मम, लज्जाम्, जनयति, इह, न पतिः, माद शाम्, शठानाम्, किम्, नु, कुर्यात्?।।२०।।

शब्दार्थः—अस्मिन् = इस, साहसे = इस चोरी के काम में, मम = मुझे, विषादः = खेद, वा = अथवा भयम् = डर, न खलु = नहीं है, त्वम् = तुम तस्य = उन, साधोः = सज्जन के, गुणान् = गुणों को, किमर्थं = किस लिए, कथयसि = कह रही हो? हि = अवश्य ही, इदम् = यह, कुत्सितम् = बुरा कर्म = काम, वा = ही, मम = मेरी, लज्जाम् = लज्जा को जनयति = उत्पन्न कर रहा है, इह = इस विषय में, न पतिः = राजा, माद शाम् = हम जैसे, शठानाम् = धूर्तों का, किम् = क्या, कुर्यात् = करेगा?।

अर्थः -

शर्विलक—इस चोरी के काम में, सचमुच, मुझे न तो पछतावा ही है और न राजा के दण्ड आदि का डर ही। ऐसी हालत में तुम सज्जन उन आर्य 'चारुदत्त' के कृपा आदि गुणों की बात क्यों कह रही हो? अरे! मैंने तो चोरी रूप जिस बुरे काम को किया है, वही मुझे मेरी लज्जा उत्पन्न कर रहा है। नहीं तो इस विषय में राजा हम जैसे धूर्तों का कर ही क्या सकता है? अर्थात् कुछ नहीं कर सकता।।२०।।

टीकाः— अस्मिन् = मया सम्पादिते; साहसे = चौर्ये; मम = शर्विलकस्य; विषादः = खेदः; वा = अथवा; भयम् = भीतिः; न खलु = नैव; अस्तीतिः; अस्यामवस्थायाम् त्वम् = मदनिका इत्यर्थः; तस्य = मया लुण्ठितस्य; साधोः = सज्जनस्य, चारुदत्तस्येत्यर्थः; गुणान् = दयादक्षिण्यादिगुणान्, किमर्थं = कस्मात् हेतोः, कथयसि = वदसि?। हि = अवधारणे; इदम् = मया कृतम्; कुत्सितम् = निन्दितम्, कर्म = कार्यम्, चौर्यमिति यावत्; वा = एव; लज्जां = लज्जां जनयति = उत्पादयति; इह = अस्मिन् कार्ये-चौर्ये इति यावत्; न पतिः = राजा; माद शाम् = मत्सद शानाम्; शठानाम् = धूर्तानाम्; कि नु कुर्यात् = किं कर्तुं शक्नुयात्?।।२०।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं मालिनी छन्द है। छन्द का लक्षण- 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।।२०।।

तथापि नीतिविरुद्धमेतत्। अन्य उपायश्चिन्त्यताम्।

मदनिका — सो अअं अवरो उवाओ (सो यमपर उपायः।)

वसन्तसेना — को क्खु अवरो उवाओ हुविस्सदि?। (कः खल्वपर उपायो भविष्यति?।)

मदनिका — तस्स ज्जेव अज्जस्स केरओ भविअ एदं अलंकारअं अज्जआए उवणेहि। (तस्यैवार्यस्य संबन्धी भूत्वेममलंकारकमार्याया उपनय।)

शर्विलकः — एवं कृते कि भवतिं?।

मदनिका — तुमं दाव अचोरो, सो वि अज्जो अरिणो, अज्जआए सकं अलंकारअं उवगदं भोदि। (त्वं तस्वदचौरः, सो प्यार्यो न णः, आर्यया स्वको लंकार उपगतो भवति)।

शर्विलकः — नन्वतिसाहसमेतत्।

मदनिका — अइ! उवणेहि, अण्णधा अदिसाहसम्। (अयि! उपनय, अन्यथातिसाहसम्)

वसन्तसेना — साहु मदणिए! साहु। अभुजिस्सए विअ मंतिदम् (साधु मदनिके! साधु, अभुजिष्ययेव मन्त्रितम्।)

शर्विलकः —

मयाप्ता महती बुद्धिर्भवतीमनुगच्छता।
निशायां नष्टचन्द्रायां दुर्लभो मार्गदर्शकः।।२१।।

अर्थः—

फिर भी यह नीति के खिलाफ है। दूसरा तरीका सोचो।

मदनिका—तो दूसरा तरीका यह है।

वसन्तसेना— और कौन सा दूसरा तरीका होगा?

मदनिका — उन्हीं आर्य 'चारुदत्त' के आदमी बनकर इस आभूषण को आर्या वसन्तसेना के पास ले जाओ।

शर्विलक — ऐसा करने पर क्या होगा?

मदनिका — तुम चोर नहीं समझे जाओगे। वह आर्य चारुदत्त भी ऋण मुक्त हो जायेंगे और आर्या वसन्तसेना का आभूषण भी उनको मिल जायेगा।

शर्विलक — किन्तु यह तो बड़े साहस का काम है।

मदनिका — अरे ले जाओ। यदि ऐसा नहीं करोगे तभी बड़ी हिम्मत का काम होगा।

वसन्तसेना — वाह! मदनिका वाह! विवाह करके लाई गई अपनी स्त्री की भाँति तुमने सलाह दी।

अन्वयः— भवतीम्, अनुगच्छता, मया, महती, बुद्धिः, आप्ता, नष्ट-चन्द्रायाम्, निशायाम्, मार्गदर्शकः, दुर्लभः (भवति)।।२१।।

शब्दार्थः— भवतीम् = आप को, अनुगच्छता = अनुस त करने वाले, मया = मेरे द्वारा, महती = बड़ी, बुद्धिः = बुद्धि, आप्ता = पाई गयी; नष्टचन्द्रायाम् = चन्द्रमा से रहित, निशायाम् = रात में, मार्गदर्शकः = राह बतलाने वाला, दुर्लभ = दुर्लभ, (भवति = होता है)।

अर्थः -

शर्विलक—तुम्हारे अनुसार चलकर मैंने बड़ी बुद्धि पाई है। जिस रात में चन्द्रमा डूब जाता है, उस रात में राह बतलाने वाला दुर्लभ होता है।।२१।।

टीकाः — भवतीम् = त्वाम्; अनुगच्छता = अनुसरता; मया = शर्विलकेनेत्यर्थः; महती = श्रेष्ठा विशाला वा; बुद्धिः = मतिः; आप्ता = प्राप्ता; नष्टः = अदर्शनं गतः, चन्द्रः = चन्द्रमाः यस्याम् तथाभूतायाम्, अन्धकारपूर्णायामित्यर्थः; निशायाम् = रजन्याम्; मार्गस्य = पथःदर्शकः = निर्देशकः; दुर्लभः = दुष्प्रायः भवतीति।।२१।।

इस श्लोक में द ष्टान्त अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२१।।

मदनिका— तेण हि तुमं इमस्सिं कामदेवगेहे मुहुत्तअं चिट्ठ, जाव अज्जआए तुह आगमणं णिवेदेमि। (तेन हि त्वमस्मिन्कामदेवगेहे मुहूर्तकं तिष्ठ, यावदार्यायै तवागमनं निवेदयामि।)

शर्विलकः — एवं भवतु।

मदनिका — (उपस त्य) अज्जए! एसो क्खु चारुदत्तस्स सआसादो बम्हणो आअदो। (आर्ये! एष खलु चारुदत्तस्य सकाशाद् ब्राह्मण आगतः।)

वसन्तसेना — ह जे! तस्स केरअं त्ति कधं तुम जाणासि?। (चेटि! तस्य संबन्धीति कथं त्वं जानासि?।)

मदनिका — अज्जए! अत्तणकेरअं पि ण जाणामि?। (आर्ये! आत्मसंबन्धिनमपि न जानामि?।)

वसन्तसेना – (स्वगतं सशिरः कम्पं, विहस्य) जुज्जदि, (प्रकाशम्) पविसदु। (युज्यते, प्रविशशु।)

मदनिका – जं अज्जआ आणवेदि। (उपगम्य) पविसदु सव्विलओ! (यदार्याज्ञापयति। प्रविशतु शर्विलकः।)

शर्विलकः – (उपस त्य, सवैलक्ष्यम्) स्वस्ति भवत्यै।

वसन्तसेना – अज्ज! वदामि। उवविसदु अज्जो। (आर्य! वन्दे। उपविशत्वार्यः।)

शर्विलकः – सार्थवाहस्त्वां विज्ञापयति-'जर्जरत्वाद् ग हस्य दूरक्ष्यमिदं भाण्डम्ः तद्ग ह्यताम्'।

(इति मदनिकायाः समर्प्य प्रस्थितः)

वसन्तसेना – अज्ज! ममावि दाव पडिसंदेसं तहिं अज्जो णेदु। (आर्ये! ममापि तावत्प्रतिसंदेशं तत्रार्यो नयतु।)

शर्विलकः – (स्वगतम्) कस्तत्र यास्यति;। (प्रकाशम्) कः प्रतिसंदेशः?।

वसन्तसेना – पडिच्छदु अज्जो मदणिअम्। (प्रतीच्छत्वार्यो मदनिकाम्।)

शर्विलकः – भवति! न खल्ववगच्छामि।

वसन्तसेना – अहं अवगच्छामि। (अहमवगच्छामि।)

शर्विलकः – कथमिव?।

वसन्तसेना – अहं अज्जचारुदत्तेण भणिदा-'जो इमं अलंकारअं समप्पइस्सदि, तस्स तुए मदणिआ दादव्वा'। ता सो ज्जेव एदं दे देदित्ति एव्वं अज्जेण अवगच्छिदव्वम्। (अहमार्यचारुदत्तेन भणिता-'य इममलंकारकं समर्पयिष्यति, तस्य त्वया मदनिका दातव्या। तत्स एवैतां ते ददातीत्येवमार्येणावगन्तव्यम्।)

शर्विलकः – (स्वगतम्) अये विज्ञातो हमनया। (प्रकाशम्) साधु आर्यचारुदत्त! साधु;

गुणेष्वेव हि कर्त्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा।
गुणयुक्तो दरिद्रो पि नेश्वरैरगुणैः समः।।२२।।

अर्थः -

मदनिका—अतः कामदेव के इस मन्दिर में तुम थोड़ी देर बैठो। जब तक मैं आर्या वसन्तसेना को तुम्हारे आने की खबर दिये देती हूँ।

शर्विलक – ऐसा ही हो।

मदनिका – (पास में जाकर) आर्या! 'चारुदत्त' के यहाँ से यह ब्राह्मण आया हुआ है।

वसन्तसेना – चेटी! तुम्हें कैसे मालूम कि उनका आदमी है?

मदनिका – आर्या! क्या मैं अपने आदमी को भी नहीं पहचानूँगी?

वसन्तसेना – (अपने आप, शिर हिलाती हुई हँसकर) ठीक है। (प्रकट रूप में) आने दो।

मदनिका – जैसी आपकी आज्ञा। (शर्विलक के पास जाकर) शर्विलक! अन्दर चलिए।

शर्विलक – (पास में जाकर घबड़ाहट के साथ) आपका कल्याण हो।

वसन्तसेना – आर्य! प्रणाम करती हूँ। आप बैठें।

शर्विलक – सार्थवाह चारुदत्त आपको सूचित करते हैं अर्थात् आपसे कहे हैं कि–'घर के जर्जर होने से सोने के इस पात्र को सुरक्षा के साथ रखना कठिन है। इसलिए इसको ले लीजिए।'

(ऐसा कहकर मदनिका को देकर चल देता है)।

वसन्तसेना – आर्य! मेरा भी प्रतिसन्देश आप वहाँ लेते जायँ।

शर्विलक – (अपने आप) वहाँ कौन जायगा? (प्रकट रूप में) क्या प्रतिसन्देश है?

वसन्तसेना – आप 'मदनिका' को स्वीकार करें।

शर्विलक – आर्या! मैंने समझा नहीं।

वसन्तसेना – मैं समझ रही हूँ।

शर्विलक – किस प्रकार?

वसन्तसेना – आर्य 'चारुदत्त' ने मुझसे कहा है–'जो आदमी इस आभूषण को समर्पित करे उसको तुम मदनिका दे देना। इसलिए वे चारुदत्त ही आपको मदनिका दे रहे हैं ऐसा समझना चाहिए।

शर्विलक – (अपने आप) अरे! इसने मुझे जान लिया। (प्रकट रूप में) धन्य! आर्य चारुदत्त धन्य!

अन्वयः– पुरुषैः सदा, गुणेषु, एव, प्रयत्नः, कर्त्तव्यः, हि, गुणयुक्तः, दरिद्रः, अपि, अगुणैः, ईश्वरैः, समः, न, (भवति)।।२२।।

शब्दार्थः– पुरुषैः = पुरुषों के द्वारा, सदा = हमेशा, गुणेषु = गुणों में, एव = ही, प्रयत्नः = प्रयत्न, उद्योग, कर्त्तव्यः = करना चाहिये; हि = क्योंकि, गुणयुक्तः = गुणवान्, दरिद्रः = निर्धन, अपि = भी, अगुणैः = गुणहीन, ईश्वरैः = धनियों के, समः = समान, न = नहीं, भवति = होता है।।

मनुष्यों को हमेशा अच्छे गुणों को पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि गुणवान् दरिद्र भी गुणहीन धनिकों के समान नहीं (बल्कि उनसे बढ़ कर है)।।२२।।

टीका– पुरुषैः = जनैः; सदा = सर्वदा, गुणेषु = दयादाक्षिण्यादिषु; प्रयत्नः = उद्योगः; कर्तव्यः = विधेयः; हि = यतः; गुणैः = सद्‌गुणैः युक्तः = संवलितः; दरिद्रः = धनहीनः अपि; गुणैः = गुणविरहितैः; ईश्वरैः = धनसम्पन्नैः, समः = तुल्यः, न, भवतीति शेषः। अगुणेभ्यो धनसम्पन्नेभ्यः निर्धनः अपि गुणवान् श्रेष्ठः, इति भावः।।२२।।

इस श्लोक में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है।।२२।।

अपि च,–

गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किंचिदप्राप्यतमं गुणानाम्।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शंभोरलंघ्यमुल्लंघितमुत्तमांगम्।२३।।

अन्वयः– पुरुषेण, गुणेषु, यत्नः, कार्यः, गुणानां, किंचित्, अपि, अप्राप्यतमं, न, (अस्ति); उडुपेन, गुणप्रकर्षात्, अलंघ्यम्, शम्भोः, उत्तमांगम्, लंघितम्।।३।।

शब्दार्थः– पुरुषेण = मनुष्य के द्वारा, गुणेषु = गुणों में, यत्नः = उपाय, कार्यः = करना चाहिये, गुणानां = गुणों को, किंचित् = कुछ, अपि = भी, अप्राप्यतमं = दुर्लभ, न = नहीं, (अस्ति = हैं); उडुपेन = चन्द्रमा के द्वारा; गुणप्रकर्षात् = गुणों की महत्ता के कारण, अलंघ्यम् = न लांघे जाने वाले, शम्भोः = शिव के, उत्तमांगम् = शिरको, लंघितम् = लांघ लिया गया।

और भी-

मनुष्य को हमेशा अच्छे गुणों (दया, परोपकार आदि की प्राप्ति) में उपाय करना चाहिए। क्योंकि गुणों अर्थात् गुणी जनों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है। ताराओं के राजा चन्द्रमा ने (अपनी शीतलता आदि) गुणों की महत्ता के कारण ही किसी भी प्राणी के द्वारा न लांघे जाने वाले भगवान् शिवजी के मस्तक को लांघ लिया अर्थात् मस्तक पर बैठ गये।।२३।।

टीका— पुरुषेण = नरेण, गुणेषु = दयादाक्षिण्यादिषु, यत्नः = प्रयासः, कार्यः = कर्त्तव्यः, गुणानां = दयादाक्षिण्यादिस्वरूपाणामित्यर्थः, किंचिदपि = किमपि वस्तु; अप्राप्यतमं = दुर्लभं; नास्ति। उडुपेन = चन्द्रमसा; गुणप्रकर्षात् = गुणाधिक्यात्; अलंघ्यम् = केनापि लंघितुमशक्यं; शम्भोः = शिवस्य; उत्तमांगम् = शिरः; लंघितम् = आक्रान्तम्, अधिगतमित्यर्थः।।२३।।

यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त नाम है-उपेन्द्रवज्रा, छन्द का लक्षण - 'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ'।।२३।।

वसन्तसेना— को एत्थ पवहणिओ?। (को त्र प्रवहणिकः?।)

(प्रविश्य सप्रवहणः)

चेटः— अज्जए! सज्जं प्रवहणम्। (आर्ये! सज्जं प्रवहणम्।)

वसन्तसेना— ह जे मअणिए! सुदिट्ठं मं करेहि। दिण्णासि। आरुह पवहणम् सुमरेसिम्। (चेटि मदनिके! सुद ष्टां मां कुरु। दत्तासि। आरोह प्रवहणम्। स्मरसि माम्।)

मदनिका— (रुदती) परिच्चत्तह्मि अज्जआए। (परित्यक्तास्म्यार्यया।) (इति पादयोः पतति)

वसन्तसेना— संपदं तुमं ज्जेव्व वंदणीआ संवुत्ता। ता गच्छ। आरुह पवहणम्। सुमरेसि मम् (सांप्रतं त्वमेव वन्दनीया संव त्ता। तद्गच्छ, आरोह प्रवहणम्। स्मरसि माम्।)

शर्विलकः — स्वस्ति भवत्यै। मदनिके!

सुद ष्टः क्रियतामेव शिरसा वन्द्यतां जनः।
यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुण्ठनम्।।२४।।

अर्थः - वसन्तसेना — कोई गाड़ीवान् है यहाँ?

(गाड़ी के साथ प्रवेश करके)

चेट— आर्या! गाड़ी तैयार है।

वसन्तसेना— चेटी मदनिका! मुझे नजर भर (भली प्रकार) देख लो। तुम शर्विलक को दे दी गई हो। गाड़ी पर सवार होओ। मुझे याद रखना।

मदनिका — (रोती हुई) आपने मुझे छोड़ दिया (ऐसा कह कर 'वसन्तसेना' के पैरों पर गिरती है)।

वसन्तसेना — इस समय तो तुम्हीं पूजनीय हो गई हो। जाओ गाड़ी पर सवार होओ। मुझे याद रखना।

शर्विलक — आपका वसन्तसेना का कल्याण हो। हे मदनिके!

अन्वयः— एषः, जनः, सुद ष्टः, क्रियताम्; (तथा), शिरसा, वन्द्यतां; यत्र, ते, दुर्लभं, वधूशब्दावगुण्ठनं, प्राप्तम्।।२४।।

शब्दार्थः— एषः = यह, जनः = व्यक्ति, (अर्थात् वसन्तसेना), सुद ष्टः = भली-प्रकार देखा गया, क्रियताम् = किया जाय, (तथा = और), शिरसा = शिर से, वन्द्यतां = प्रणाम किया जाय;

यत्र = जिसके कारण, ते = तुम्हें (तुम्हारे द्वारा), दुर्लभं = दुर्लभ, वधूशब्दावगुण्ठनं = बहूशब्दरूप घूँघट; प्राप्तं = प्राप्त हुआ।।

अर्थः - 'वसन्तसेना' को भली भाँति देख लो और शिर झुका कर प्रणाम कर लो। जिन की कृपा से तुमने दुर्लभ बहू शब्द रूप धूँघट पाया है अर्थात् जिस 'वसन्तसेना' की कृपा से खुले रूप में रहने वाली तुम वेश्या से अब घूँघट में रहने वाली वधू हो गयी हो।।२४।।

टीका— एषः = पुरोवर्ती; जनः = वसन्तसेनारूपः जनः; सुद ष्टः = सम्यग् द ष्टः शोभनमवलोकितः वा; क्रियताम् = विधीयताम्; तथा शिरसा = मस्तकेन, शिरः-प्रणामेन इत्यर्थः; वन्द्यतां = प्रणम्यतां; यत्र = यस्मिन् जने यस्य जनस्य कारणाद्वा, ते = तव। दुर्लभं = दुष्प्राप्यं; वधूशब्दः = 'वधू' शब्दवाच्यत्वरूपम्, एव अवगुण्ठनम् = आवरणम्, प्राप्तम् = उपलब्धम्।।२४।।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में काव्यलिंग अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-पथ्यावक्त्र।।२४।।

(इति मदनिकया सह प्रवहणमारुह्य गन्तुं प्रव त्तः)

(नेपथ्ये)

कः को त्र भोः! राष्ट्रियः समाज्ञापयति-'एष खल्वार्यको गोपालदारको राजा भविष्यतीति सिद्धादेशप्रत्ययपरित्रस्तेन पालकेन राज्ञा घोषादानीय घोरे बन्धनागारे बद्धः। ततः स्वेषु स्वेषु स्थानेष्वप्रमत्तैर्भवद्भिर्भवितव्यम्'।

शर्विलकः— (आकर्ण्य) कथं राज्ञा पालकेन प्रियसुहृदार्यको मे बद्धः? कलत्रवांश्चास्मि संव त्तः। आः, कष्ट्म; अथवा-

द्वयमिदमतीव लोके प्रियं नराणां सुहृच्च वनिता च।
संप्रति तु सुन्दरीणां शतादपि सुहृद्विशिष्टतमः।।२५।।

(ऐसा कह कर 'मदनिका' के साथ गाड़ी पर चढ़कर जाने लगता है)

(पर्दे के पीछे)

अर्थः- अरे! यहाँ कौन कौन हैं! राजा के साले शकार अथवा राजकर्मचारी आज्ञा देते हैं कि— ''यह अहीर का पुत्र 'आर्यक' राजा होगा'' इसप्रकार किसी सिद्ध पुरुष के कहने पर विश्वास कर डरे हुए राजा 'पालक' ने उसे घर से लाकर कठोर कारागार में बन्द कर दिया है। इसलिये अपनी-अपनी जगहों पर आप सब पहरेदारों को सावधान हो जाना चाहिये।।

शर्विलक—(सुनकर) क्या राजा 'पालक' के द्वारा मेरा प्रिय मित्र 'आर्यक' बाँध लिया गया है? इधर मैं स्त्री-वाला हो गया हूँ। हाय! कष्ट है।

अन्वयः— लोके, सुहृद्, वनिता च, इदं, द्वयं, नराणाम्, अतीव, प्रियं; तु, सम्प्रति, सुन्दरीणां, शतात्, अपि, सुहृद्, विशिष्टतमः (अस्ति)।।२५।।

शब्दार्थः—लोके = दुनिया में, सुहृद् = मित्र, च = और, वनिता = स्त्री, इदं = यह, द्वयं = जोड़ी, नराणाम् = मनुष्यों को, अतीव = बहुत, प्रियं = प्रिय है, तु = किन्तु, सम्प्रति = इस समय, सुन्दरीणां = सुन्दर स्त्रियों के, शतात् = सौ से, अपि = भी, सुहृद् = मित्र, विशिष्टतमः = बढ़कर (अस्ति = है)।।

अथवा-

इस दुनियाँ में मित्र और स्त्री दोनों ही-मनुष्यों को बहुत प्रिय हैं। किन्तु इस समय (जबकि मित्र कारागार में है) सैकड़ों सुन्दर स्त्रियों से भी मित्र बढ़कर हैं।।२५।।

टीका— लोके = अस्मिन् संसारे; शोभनं ह्रदयम् अस्य इति सुहृद् = मित्रं; च = तथा; वनिता = भार्या च; इदम् = उक्तप्रकारकं, द्वयम् = उभयम्; नराणाम् = पुरुषाणाम्; अतीव = अधिकं; प्रियं = प्रीतिकरम्; अस्ति इति शेषः; तु = किन्तु; सम्प्रति = अधुना; सुन्दरीणां = स्त्रीणां; शतात् = शतसंख्यायाः; समूहात् इति यावत्; सुहृद् = मित्रं; विशिष्टतमः = श्रेष्ठतम; अधिकप्रियः इत्यर्थः; अस्तीतिशेषः।।२५।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-आर्या।

भवतु, अवतरामि। (इत्यवतरति)

मदनिका — (सास्रम जलिं बद्ध्वा) एव्वं ण्णेद्म। ता परं णेदु मं अज्जउत्तो समीवं गुरुअणाणम्। (एवं न्विदम्। तत्परं नयतु मामार्यपुत्रः समीपं गुरुजनानाम्)।

शर्विलकः — साधु प्रिये! साधु; अस्मच्चित्तसद शमभिहितम्। (चेटमुद्दिश्य) भद्र! जानीषे रेभिलस्य सार्थवाहस्योद्वसितम्?।

चेटः — अध इं। (अथ किम्।)

शर्विलकः — तत्र प्रापय प्रियाम्।

चेटः — जं अज्जो आणवेदि। (यदार्य आज्ञापयति।)

मदनिका — जधा अज्जउत्तो भणादि, अप्पमत्तेण दाव अज्जउत्तेण होदव्वम्। (यथार्थपुत्रो भणति, अप्रमत्तेन तावदार्यपुत्रेण भवितव्यम्।)

(इति निष्क्रान्ता)

शर्विलकः — अहमिदार्नी

ज्ञातीन्विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्
राजापमानकुपितांश्च नरेन्द्रभ त्यान्।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः।।२६।।

अर्थः- अच्छा, उतरता हूँ (गाड़ी पर से उतरता है)

मदनिका—(आँखों में आँसू भर कर तथा हाथ जोड़कर) यह ऐसा ही हो। तो आर्यपुत्र सबसे पहले मुझे घर के गुरुजनों के पास पहुँचा दें।

शर्विलक—वाह! प्रिय वाह!! हमारे मन के अनुसार ही कहा। (चेट के प्रति) अच्छे आदमी। 'रेभिल' का घर जानते हो?

चेट— और क्या?

शर्विलक—प्रिया मदनिका को वहाँ पहुँचा दो।

चेट— जैसी आपकी आज्ञा।

मदनिका—जैसा आप कहते हैं। तब आर्यपुत्र को भी सावधान रहना चाहिए। (ऐसा कहकर निकल जाती है)

शर्विलक—मैं इस समय—

अन्वयः— उदयनस्य, राज्ञः, यौगन्धरायणः, इव, सुहृदः, परिमोक्षणाय, ज्ञातीन्, विटान्, स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्, राजापमानकुपितान्, नरेन्द्रभ त्यान्, च, उत्तेजयामि।।२६।।

शब्दार्थः—उदयनस्य = उदयननामकस्य, राज्ञः = राजा को, (छुड़ाने के लिये), यौगन्धरायणः = यौगन्धरायण (की), इव = तरह, सुहृदः = मित्र के, परिमोक्षणाय = छुड़ाने के लिये, ज्ञातीन् = जाति के आदमियों को, विटान् = विटों को, स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान् = अपनी भुजा के पराक्रम से यश पानेवालों को, राजापमानकुपितान् = राजा के द्वारा किये गये अपमान से गुस्साये, हुए नरेन्द्रभ त्यान् = राजा के कर्मचारियों को, उत्तेजयामि = उत्तेजित करता हूँ।।

अर्थः- उदयन नामक राजा को छुड़ाने के लिये मन्त्री यौगन्धरायण की तरह मैं मित्र आर्यक को कारागार से छुड़ाने के लिये अपनी जाति के आदमियों, विटों, अपनी भुजाओं के पराक्रम से यश पाने वालों, राजा के द्वारा किये गये अपमान से गुस्साये हुए राजा के कर्मचारियों को उत्तेजित करता हूँ।।२६।।

टीका— उदयनस्य = उदयननाम्ना प्रसिद्धस्य; राज्ञः = वत्सराजस्य इत्यर्थः, (परिमोक्षणाय), यौगन्धरायणः एतन्नाम्ना प्रसिद्धः उदयनस्य प्रधानामात्यः इव; सुहृदः = मित्रस्य, बद्धस्य आर्यकस्य इत्यर्थः, परिमोक्षणाय = मोचनाय; ज्ञातीन् = बान्धवान्; विटान् = धूर्तजनान; स्वभुजविक्रमेण = स्वबाहुपराक्रमेण लब्धः = प्राप्तः वर्णः = ख्यातिः, यशः यैः तान्; राज्ञः = न पस्य, पालकस्य इत्यर्थः अपमानेन = तिरस्कारेण, राजककावमानेन इत्यर्थः। कुपितान् = क्रुद्धान्; नरेन्द्रस्य = न पस्य भ त्यान् = सेवकान् च; उत्तेजयामि।।२६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।।२६।।

अपि च,—

प्रियसुहृदमकारणे ग हीतं
रिपुभिरसाधुभिराहितात्मशंकैः।
सरभसमभिपत्य मोचयामि
स्थितमिव राहुमुखे शशांकबिम्बम्।।२७।।

अन्वयः— अकारणे, आहितात्मशंकैः, असाधुभिः, रिपुभिः, ग हीतं, राहुमुखे शशांकबिम्बम्, इव, स्थितं, प्रियसुहृदं, सरभसम्, अभिपत्य, मोचयामि।।२७।।

शब्दार्थः—अकारणे = कारण के न होने पर (भी), आहितात्मशंकैः = अपने मन में भय करने वाले, असाधुभिः = दुष्ट, रिपुभिः = शत्रुओं के द्वारा, ग हीतं = पकड़े गये, (अतः) राहुमुखे = राहु के मुख में, शशांकबिम्बम् = चन्द्रमा के मण्डल (के), इव = समान, स्थितं = वर्तमान, प्रियसुहृदं = प्रिय मित्र को, सरभसम् = वेगपूर्वक, अभिपत्य = हमला बोलकर, मोचयामि = छुड़ाता हूँ।।

अर्थः- विना कारण के ही अपने मन में भय करने वाले, दुष्ट शत्रुओं के द्वारा पकड़ कर बन्द किये गये, अतएव राहु के मुँह में वर्तमान चन्द्रमा के मण्डल के समान प्रिय मित्र 'आर्यक' को अचानक हमला बोल कर छुड़ाता हूँ।।२७।।

टीका— अकारणे = कारणाभावे सत्यपि; आहिता = स्थापिता, कृता इत्यर्थः; आत्मनि = स्वस्मिन् शंका = सन्देहः, भीतिः इति यावत्, यैः तैः; असाधुभिः = दुष्टैः; रिपुभिः = शत्रुभिः, पालकादिभिः इत्यर्थः; ग हीतं = कारागारे निबद्धम् अतः; रहति = ग हीत्वा त्यजति चन्द्रार्कौ इति राहुः = विधुन्तुदः तस्य मुखे = आनने; शशांकस्य = चन्द्रमसः बिम्बम् = मण्डलम् इव; स्थितं = वर्तमानं; प्रियसुहृदं = प्रियमित्रं; सरभसं = सवेगं यथा तथा; अभिपत्य = आक्रम्य; मोचयामि = बन्धनरहितं करोमि।।२७।।

यहाँ उपमा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-पुष्पिताग्रा। छन्द का लक्षण-

अयुजि नयुगरेफतो यकारो; युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।।२७।।

(इति निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

चेटः — अज्जए! दिट्टिआ वड्ढसि। अज्जचारुदत्तस्स सआसादो बह्मणो आअदो। (आर्ये! दिष्ट्या वर्धसे। आर्यचारुदत्तस्य सकाशाद् ब्राह्मण आगतः।)

वसन्तसेना — अहो, रमणीअदा अज्ज दिवसस्स। ता ह जे! सादरम् बन्धुलेन समं पपवेसेहिणम् णेम्। (अहो, रमणीयताद्य दिवसस्य। तच्चेटि! सादरम् बन्धुलेन समं प्रवेशयैनम्।)

चेटी — जं अज्जआ आणवेदि। (यदार्याज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता)

(विदूषको बन्धुलेन सह प्रविशति)

विदूषकः— ही ही भोः, तवच्चरणकिलेसविणिज्जिदेण रक्खसराआ रावणो पुप्फकेण विमाणेण गच्छदि। अहं उण बह्मणो अकिदतवच्चरणकिलेसो वि णरणारीजणेण गच्छामि। (आश्चर्यं भोः, तपश्चरणक्लेशविनिर्जितेन राक्षसराजो रावणः पुष्पकेण विमानेन गच्छति। अहं पुनर्ब्राह्मणो कृततपश्चरणक्लेशो पि नरनारीजनेन गच्छामि।)

चेटी — पेक्खदु अज्जो अम्हकेरकम् गेहदुआरम्। (प्रेक्षतामार्यो स्मदीयम् गेहद्वारम्।)

विदूषकः — (अवलोक्य, सविस्मयम्) अहो सलिलसित्तमज्जिदकिदहरिदोवलेवणस्स विविहसुअंधिकुसुमोवहारचित्तलिहिदभूमिभाअस्सगअणतलाअलोअणकोदूहलदूरुण्णामिदसीसस्स, दोलाअमाणावलंबिदैरावणहत्थब्भमाइदमल्लिआदामगुणालंकिदस्स, समुच्छिददंतिदंततोरणावभासिदस्स महारअणोवराओवसोहिणा पवणवलंदोलणाललंतच लग्गहत्थेण 'इदो एहि' त्ति वाहरंतेण विअ मं सोहग्गपडाआणिवहेणोवसोहिदस्स तोरणधरणत्थंभवेदिअणिक्खित्तसमुल्लसंतहरिदचूदपल्लवललामफटिअमंगलकलसाभिरामोह अपास्सस्स महासुरवक्खत्थलदुब्भेज्जवज्जणिरंतरपडिबद्धकणअकवाडस्स दुग्गदजणमणोरहाआसकरस्स, वसंतसेणाभवणदुआरस्स सस्सिरीअदा। जं सच्चं मज्झत्थस्स वि जणय बलाद्दिट्टिं आआरेदि। (अहो सलिलसिक्तमार्जितकृतहरितोपलेपनस्य विविधसुगन्धिकुसुमोपहारचित्रलिखितभूमिभागस्य, गगनतलावलोकनकौतूहलदूरोन्नामितशीर्षस्य दोलायमानावलम्बितैरावतहस्तभ्रमागतमल्लिकादामगुणालंकृतस्य समुच्छ्रितदन्तिदन्त- तोरणावभासितस्य महारत्नोपरागोपशोभिना, पवनबलान्दोलनाललच्चलाग्रहस्तेन 'इत एहि' इति व्याहरतेव मां सौभाग्यपताकानिवहेनोपशोभितस्य, तोरणधरणस्तम्भवेदिकानिक्षिप्त समुल्लसद्धरितचूतपल्लवेल्लामस्फटिकमंगलकलशाभिरामोभयपार्श्वस्य महासुरवक्षः, स्थलदुर्भेद्य वज्रनिरन्तरप्रतिबद्धकनककपाटस्य दुर्गतजनमनोरथायासकरस्य वसन्तसेनाभवनद्वारस्य सश्रीकता। यत्सत्यं मध्यस्थस्यापि जनस्य बलाद्द ष्टिमाकारयति।)

(ऐसा कह कर निकल जाता है)

(प्रवेश करके)

अर्थः—

चेट— आर्या! सौभाग्य से बढ़ रही है अर्थात् शुभ समाचार है। आर्य 'चारुदत्त' के पास से एक ब्राह्मण आया हुआ है।

वसन्तसेना— अहा! आज का दिन कितना भला है। तो चेटी! बन्धुल के साथ आदरपूर्वक इनको अन्दर ले आओ।

चेटी— जैसी आर्या की आज्ञा। ऐसा कह कर निकल जाती है।

(बन्धुल के साथ विदूषक मैत्रेय प्रवेश करता है)

विदूषक — अरे आश्चर्य है! राक्षसों का राजा रावण तपस्या करने में होने वाले कष्टों से पाये हुए 'पुष्पक' विमान से चला करता था। किन्तु मैं ब्राह्मण तपस्या की तकलीफ उठाये बिना ही वेश्या के साथ चल रहा हूँ अर्थात् मैं रावण से अधिक भाग्यवान् हूँ।

चेटी — आर्य! हमारे घर के दरवाजे को देखें।

विदूषक — (देखकर आश्चर्य के साथ) पानी छिड़क कर, झाड़ू लगाकर (फिर) जहाँ हरे रंग के गोबर से लीपा गया है; जहाँ की भूमि बहुत तरह के सुगन्धित फूलां के चढ़ाने से चित्र में बनी हुई सी लग रही है; आकाश की शोभा को देखने के लिये उत्सुकता के कारण जिसने अपना शिर काफी ऊँचा उठा रक्खा है; जो चंचल एवं लटकी हुई तथा ऐरावत हाथी के सूड़ के भ्रम को पैदा करने वाली 'मल्लिका' फूल की माला से शोभायमान है; जो हाथी के दाँत से बने हुए काफी ऊँचे तोरण से सुशोभित है; महँगे रत्नों की आभा से सुन्दर लगने वाले, हवा की झोकों से हिलने के कारण काँप रहे एवं चंचल अगले हिस्से रूपी हाथ से 'यहाँ आइये' इस प्रकार मुझे पुकारते हुए से, शुभसूचक पताका के झुण्डों से जो सुशोभित हो रहा है; तोरण को धारण करने के लिये बनाये गये खम्भों की वेदिकाओं पर रक्खे हुए, लहलहाते हरे-हरे आम के पत्तों से सुन्दर लगने वाले स्फटिक मणि से बने हुए, मंगल-कलशों से जिसके दोनों पार्श्व मनोहर है; जिसकी सोने की बनी हुई किवाड़ें 'हिरण्यकशिपु' की छाती के समान फाड़ने में मुश्किल तथा हीरे की बनी हुई कीलों से घने रूप से जड़ी हुई हैं; जो गरीब आदमियों के मन की इच्छा के लिए पीड़ा देने वाला है। अहा! 'वसन्तसेना' के महल के ऐसे द्वार की सुन्दर जो द्वार सचमुच निस्प ह आदमियों की आँखों को भी जबरदस्ती अपनी ओर खींच लेता है।

चेटी — एदु। इमम् पढमम् पओट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेतु, इमम् प्रथमम् प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः (प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भोः, इधो वि पढमे पकोट्ठे ससिसंखमुणालसच्छाहाओ, विणिहिदचुण्णमुट्ठिपांडुराओ विविहरअणपडिबद्धकंचणसोवाणसोहिदाओ, पासादपंतिओ, ओलंबिदमुत्तादामेहिं फटि, वादाअणमुहचंदेहिं णिज्झाअंती विअ उज्ज इणिं। सोत्तिओ विअ सुहोवविट्टो णिद्दाअदि दोवारिओ। सदहिणा कलमोदणेण पलोहिदा ण भक्खंति वाअसा बलिं सुधासवण्णदाए। आदिसदु भोदि। (आश्चर्यं भोः, अत्रापि प्रथमे प्रकोष्ठे शशिशंखमणालसच्छायाः विनिहितचूर्णमुष्टिपाण्डुराः विविधरत्न प्रतिबद्धकाचनसोपानशोभिताः प्रासादपङ्क्तयो वलम्बितमुक्तादामभिः स्फटिकवातायनमुखचन्द्रैर्निर्ध्यायन्तीवोज्जयिनीम्। श्रोत्रिय इव सुखोपविष्टो निद्राति

दौवारिकः। सदध्ना कलमोदनेन प्रलोभिता न भक्षयन्ति वायसा बलिं सुधासवर्णतया। आदिशतु भवती।)

चेटी — एदु एदु अज्जो। इमं दुदिअं पओट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इमं द्वितीयं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः— (प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भोः, इदो वि दुदिए पओट्ठे पज्जंतोवणीदजवसबुसकवलसुपुट तेल्लब्भंगिदविसाणा बद्धा पवहणबइल्ला। अअं अण्णदरो अवमाणिदो विअ कुलीणो दीहं णीससदि सेरिहो। इदो अ अवणीदजुज्झस्स मल्लस्स विअ मद्दीअदि गीवा मेसस्स। इदो इदो अवराणं अस्साणं केसकप्पणा करीअदि। अअं अवरो पाडच्चरो विअ दिढबद्धो मंदुराए साहामिओ। (अन्यतो वलोक्य च) इदो अ कूरच्चुअतेल्लमिस्सं पिंडं हत्थी पडिच्छाबीअदि मेत्थपुरिसेहिं। आदिसदु भोदी। (आश्चर्यं भोः, इहापि द्वितीये प्रकोष्ठे पर्यन्तोपनीतयवसबुसकवल- सुपुष्टास्तैलाभ्यक्तविषाणा बद्धाः प्रवहणबलीवर्दाः। अयमन्यतरो वमानित इव कुलीनो दीर्घं निःश्वसिति सैरिभः। इतश्चापनीतयुद्धस्य मल्लस्येव मर्द्यते ग्रीवा मेषस्य। इत इतो परेषामश्वानां केशकल्पना क्रियते। अयमपरः पाटच्चर इव द ढबद्धो मन्दुरायां शाखाम गः। इतश्च कूरच्युततैलमिश्रं पिण्डं हस्ती प्रतिग्राह्यते मात्रपुरुषैः। आदिशतु भवती।)

अर्थ—

चेटी— आइये, आइये! इस पहले प्रकोष्ठ में आप प्रवेश कीजिए।

विदूषक— (प्रवेश कर और देखकर) अरे! आश्चर्य! यहाँ पहले प्रकोष्ठ में भी चन्द्रमा, शंख एवं कमलनाल के समान चमकवाली, जगह-जगह पर रक्खी गयी। चूर्ण लगी हुई हथेली के छापों से सफेद; अनेक प्रकार के रत्नों से जड़ी गयीं सोने की सीढ़ियों से शोभित, महलों की कतारें, स्फटित मणि से बने हुए तथा लटकने वाली मोती की 'मालाओं से युक्त वातायन रूपी मुखचन्द्रों से मानों उज्जयिनी को ध्यान से देख रही हैं। आनन्द के साथ बैठा हुआ द्वारपाल वेदों का पाठ करने वाले ब्राह्मण के समान नींद ले रहा है। दही से सने हुए अगहनी धान के भात से ललचाये गये भी कौवे बलि को चूने के समान सफेद रंग का होने की वजह से, नहीं खा रहे हैं। श्रीमती बतावें।

चेटी — आर्या! आइये, आइये! इस दूसरे प्रकोष्ठ में प्रवेश कीजिए।

विदूषक— (प्रवेश करके और देखकर) अरे! आश्चर्य। यहाँ दूसरे प्रकोष्ठ में भी सामने डाली गयी घास एवं भूसा खाने से बलिष्ठ तथा तेल लगी हुई सीगों वाले गाड़ी के बैल बँधे हुए हैं। यह एक भैंसा, अपमानित, अच्छे कुल में उत्पन्न हुए की भाँति लम्बी-लम्बी साँसें ले रहा है। इस तरफ लड़कर के आये हुए पहलवान की भाँति भेंड़े की गर्दन मली जा रही है। इधर कुछ घोड़ों के बाल काट-छाँटकर ठीक किये जा रहे हैं। यहाँ घुड़साल में, चोर की भाँति, यह बन्दर कसकर बँधा हुआ है। (दूसरी तरफ देख कर) इस ओर महावत हाथी को कौर से टपकने वाले तेल से सना हुआ पिण्ड खिला रहा है। श्रीमती जी बतावें।

चेटी — एदु एदु अज्जो। इमं तइअं पओट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इमं त तीयं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः—(प्रविश्य, द ष्ट्वा च) ही भोः भे, इदो वि तइए पओट्ठे इमाइं दाव कुलउत्तजणोववेसणणिमित्तं विरचिदाइं आसणाइं। अद्धवाचिदो पासअपीठे चिट्ठइ पोत्थओ। एसो अ

साहीणमणिमअसारिआसहिदो पासअपीठो। इमे अ अवरे मअण संधिविग्गाहचदुरा विविहवण्णिआविलित्तचित्तफलअग्गहत्था इदोपरिब्भमन्ति गणिआ वुड्डविडा अ। आदिसदु भोदी। (आश्चर्यं भोः इहापि त तीये प्रकोष्ठे इमानि तावत्कुलपुत्रजनोपवेशननिमित्तं विरचितान्यासनानि। अर्धवाचितं पाश्कपीठे तिष्ठति पुस्तकम्। एतच्च स्वाधीनमणिमयसारिकासहित पाशकपीठम्। इमे चापरे मदनसंधि विग्रहचतुरा विविधवर्णिकाविलिप्तचित्रफलकाग्रहस्ता इतस्ततः परिभ्रमन्ति गणिका व द्ध विटाश्च। आदिशतु भवती।)

चेटी — आइये, आइये श्रीमान् जी। श्रीमान् जी इस तीसरे प्रकोष्ठ में प्रवेश करें।

विदूषक— (प्रवेश करके और देखकर) अरे! आश्चर्य है। इस तीसरे प्रकोष्ठ में धनी युवकों के बैठने के लिये ये आसन लगाये गये हैं। पाशा (जुआ का एक प्रकार) खेलने की चौकी पर आधी पढ़ी हुई एक किताब रक्खी है। और यह पाशा खेलने की चौकी असली मणि से बनी हुई मैनाओं (मैना पक्षी के शकल की गोटियों) से व्याप्त है। और ये युवक तथा युवतियों के काम-सम्बन्धी मिलाप तथा प्रेम-कलह कराने में चतुर वेश्याएँ तथा व द्ध विट अनेक रंगों से रंगे हुए चित्र हाथों में लिये इधर-उधर घूम रहे हैं। आप बतलाइये।

चेटी— आवें, आवें, श्रीमान् जी। इस चौथे खण्ड में श्रीमान् जी प्रवेश करें।

विदूषक— (प्रवेश करके और देखकर) अरे! आश्चर्य है। इस चौथे प्रकोष्ठ में भी युवतियों के हाथ से बजाये गये म दंग बादलों की भाँति, गम्भीर शब्द कर रहे हैं। पुण्य समाप्त हो जाने पर आकाश से गिरने वाले ताराओं के समान मँजीरे गिर रही हैं। भौंरों की गु जार की भाँति बाँसुरी मीठी तान से बजाई जा रही है। दूसरी स्त्री की ईर्ष्या के कारण प्रेम में कुपित हुई युवती स्त्री की भाँति, गोद में रक्खी हुई वीणा उँगलियों के द्वारा सहलाने से (बजाने के लिये) मिलाई जा रही है। और वेश्याओं की ये कुछ लड़कियाँ, फूलों के रसों को पीने से मतवाली भ्रमरियों के समान, बड़ी मीठी तान में गाती हुई नचाई जा रही हैं, और श्र ंगार से पूर्ण अभिनय सिखाये जा रहे हैं। थोड़ी टेढ़ी पानी से भरी हुई गगरियाँ झरोखों में हवा से ठण्डी हो रही हैं। बतलावें श्रीमती जी।

चेटी— एदु एदु अज्जो। इमं चउठ्ठं पअेट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इमं चतुर्थं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भो, इदो वि चउट्ठे पओट्ठे जुवदिकरताडिदा जलधरा विअ गंभीरं णदंति मुदंगा, हीणपुण्णाओ विअ गअणादो तारआओ णिवडंति कंसतालआ, महुअरविरुअं विअ महुरं वज्जदि वंसो। इअं अवरा ईसाप्पणअकुविदकामिणी विअ अंकारोविदा कररुहपरामरिसेण सारिज्जदि वीणा। इमाओ अवराओ कुसुमरसमत्ताओ विअ महुअरिओ अदिमहुरं पगीदाओ गणिआदारिआओ णच्चिअंति, णट्टअं पठिअंति, ससिंगारओ। ओवग्गिदा गवक्खेसु वादं गेण्हंति सलिलगग्गरीओ। आदिसदु भोदी। (आश्चर्यं भोः इहापि चतुर्थे प्रकोष्ठे युवतिकरताडिता जलधरा इव गम्भीरं नदन्ति म दंगाः, क्षीणपुण्या इव गगनात्तारका निपतन्ति कांस्यतालाः, मधुकरविरुतमिव मधुरं वाद्यते वंशः। इयमपरेर्ष्याप्रणयकुपित- कामिनीवांकारोपिताकररुहपरामर्शेन सार्यते वीणा। इमा अपराः कुसुमरसमत्ता इव मधुकर्यो तिमधुरं प्रगीता गणिकादारिका नर्त्यन्ते, नाट्यं पाठ्यन्ते सश्र ंगारम्। अल्पवल्गिता गवाक्षेपु वातं ग हंन्ति सलिलगगर्यः। आदिशतु भवती।)

चेटी – एदु एदु अज्जो। इमं पंचमं पओट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इमं प चमं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः–(प्रविश्य, द ष्ट्वा च) ही ही भोः, इदो वि पंचमे पओट्ठे अअं दलिद्दजणलोहुप्पादणअरो आहरइ उवचिदो हिंगुतेल्लगंधो। विविहसुरहिधूमुग्गारेहिं णिच्चं संताविज्जमाणं णीससदि विअ महाणसं दुवारमुहेहिं। अधिअं उसुसावेदि मं साहिज्जमाणबहुविहभक्खभोअणगंधो। अअं अवरो पडच्चरं विअ पोट्टिं धोअदि रूपिदारओ। बहुविहाहारविआरं उवसाहेदि सूवआरो। बज्झंति मोदआ, पच्चंति अपूवआ। (आत्मगतम्) अवि दाणिं इह वड्ढिअं भुंजसुत्ति पादोदअं लहिस्सं। (अन्यतो वलोक्य च) इदो गंधव्वच्छरगणेहिं विअ विविहालंकारसोहिदेहिं गणिआजणेहिं बंधुलेहिं अ जं सच्चं सग्गीअदि एदं गेहं। भो! के तुम्हे बंधुला णाम?। (आश्चर्यं भोः, इहापि प चमे प्रकोष्ठे यं दरिद्रजनलोभोत्पादनकर अहारत्युपचितो हिंगुतैलगन्धः। विविधसुरभिधूमोद्गारैर्नित्यं संताप्यमानं निःश्वसितीव महानसं द्वारमुखैः। अधिकमुत्सुकायते मां साध्यमानबहुविधभक्ष्यभोज- नगन्धः। अयमपरः पटच्चरमिव हमपशूदरपेशिं धावति रूपिदारकः। बहुविधाहारविकार- मुपसाधयति सूपकारः। बध्यन्ते मोदकाः। पच्यन्ते पूपकाः। अपीदानीमिह वर्धितं भुङ्क्ष्व इति पादोदकं लप्स्ये। इह गन्धर्वाप्सरोगणैरिव विविधालंकारशोभितैर्गणिकाजनैर्बन्धुलैश्च यत्सत्यं स्वर्गायते इदं गेहम्। भोः, के यूयं बन्धुला नाम?।)

बन्धुलाः– वयं खलु

परग हललिताः परान्नपुष्टाः परपुरुषैर्जनिताः परांगनासु।
परधननिरता गुणेष्ववाच्या गजकलभा इव बन्धुला ललामः।।२८।।

चेटी– आइये, आइये श्रीमान् जी! इस पाँचवें प्रकोष्ठ में श्रीमान् जी प्रवेश करें।

विदूषक– (प्रवेश करके और देखकर) अरे! आश्चर्य! यहाँ पाँचवें में भी दरिद्र आदमियों को ललचाने वाली, चारों ओर फैली हुई हींग और तेल की यह महक मुझे आकृष्ट कर रही है। हमेशा जलता हुआ रसोई घर भाँति-भाँ की महक से भरे हुए धुएँ को प्रकट करने वाले द्वज्ञर रूपी मुखों से मानो उछ्वास ले रहा है पकाये जाते हुए अनेक प्रकार के भोजनों की महक मुझे बहुत उत्सुक बना रही है दूसरा यह कसाई काटे गये पशु की अँतड़ी को, पुराने कपड़े की भाँति, धो रहा है। रसोइया भाँति-भाँति के भोजनों का प्रकार बना रहा है। लड्डू बाँधे जा रहे हैं। पूए छाने जा रहे हैं। (अपने आप) तो क्या अब यहाँ पर 'आइये! भोजन तैयार है, खाइये!' ऐसी प्रार्थना कर कोई मुझे पैर धोने के लिए बढ़कर जल देगा? (दूसरी ओर दोकर) यहाँ गन्धर्वों एवं अप्सराओं के झुण्डों की भाँति अनेक प्रकार के आभूषणों से सुशोभित वेश्याओं तथा बन्धुलों के कारण सचमुच यह घर स्वर्ग जैसा मालूम पड़ रहा है। अरे बन्धुल नाम वाले तुम कौन हो?

अन्वयः– परग हललिताः, परान्नपुष्टाः, परपुरुषैः, परांगनासु, जनिताः, परधननिरताः, गुणेषु, अवाच्याः, (वयं) बन्धुलाः, गजकलभाः, इव, ललामः।।२८।।

शब्दार्थः– परग हललिताः = दूसरे के घर में प्रेम से रहने वाले, परान्नपुष्टाः = दूसरों के दाने से पले हुए, परपुरुषैः = दूसरे पुरुषों के द्वारा, परांगनासु = दूसरे की स्त्रियों में, जनिताः = पैदा किये गये, परधननिरताः = पराये धन में निरत, गुणेषु = गुणों में, अवाच्याः = हीन, (वयं = हम) बन्धुलाः = बन्धुललोग, गजकलभाः = हाथियों के बच्चों, इव = जैसे, ललामः = विहार करते हैं।

अर्थः-

बन्धुलोग— वास्तव में दूसरे के घर में प्रेमपूर्वक रहने वाले, दूसरों के दाने से पले हुए, दूसरे पुरुषों के द्वारा दूसरे की स्त्रियों में पैदा किये गये, पराये धन को आनंद से खाने वाले, गुणों से हीन (हम) बन्धुल लोग हाथियों के बच्चों के समान विहार करते हैं।

टीका— परग हम् = अन्यभवनं ललितं = प्रियं येषां ते; परेषाम् = अन्येषाम् अनेन = धनेन इत्यर्थः पुष्टाः = पालिताः; परपुरुषैः = अन्यजनैः; परेषाम् = अन्येषाम् अंगनासु = स्त्रीषुः जनिताः = उत्पादिताः, वर्णसंकराः इति भावः; परधनेषु = अन्यविभवेषु निरताः = भोगासक्ताः; गुणेषु = सद्गुणेषु अवाच्याः = अवक्तव्याः, शून्याः इति यावत्; वन्धुलाः = उक्तलक्षणाः कुलटापुत्राः वयमिति गद्यस्थेन अन्वयः; गजकलभाः = जशावकाः इव; ललामः = विहरामः।।२८।।

इस श्लोक में उपका अलंकार एवं पुष्पिताग्रा छन्द है।

विदूषकः—आदिसदु भोदी। (आदिशतु भवती।)

चेटी— एदु एदु अज्जो। इमं छट्ठं पओट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इमं षष्ठं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भोः, इदो वि छट्ठे पओट्ठे अमुं दाव सुवण्णरअणाणं कम्मतोरणाइं णीलरअणविणिक्खित्ताइं इंदाउहट्ठाणं विअ दरिसअंति। वेदुरिअमोत्ति-अपवालअपुप्फराअइंदणीलकक्केतरअपद्मराअमरगअपहुदिआइं रअणविसेसाइं अण्णोण्णं विचारेन्तिसिप्पिणो। बज्झंति जादरूवेहिं माणिक्काइं। घडिज्जंति सुवण्णालंकारा। रत्तसुत्तेण गत्थीअंति मोत्तिआभरणाइं। घसीअंति धीरं वेदुरिआइं। छेदीअंति संखआ। सणिज्जंति पवालआ। सुक्खविअंति ओल्लविदकुंकुमपत्थरा। सालीअदि क्त्थूरिया। विसेसेण धिस्सदि चंदणरसो। संजोइअंति गंधजुत्तीओ। दीअदि मणिआकामुकाणां सकप्पूरं ताबोलं। अवलोईअदि सकडक्खअं। पअट्टदि हासो। पिबीअदि अ अणवरअं ससिक्कारं मइरा। इमे चेडा, इमा चेडिआओ, इमे अवरे अवधीरिदपुत्तदारवित्ता मणुस्सा आसवकरआपीदमदिरेहिं गणिआजणेहिं जे मुक्का ते पिअं। आदिसदु भोदी। (आश्चर्यं भोः, इहापि षष्ठे प्रकोष्ठे मूनि तावत्सुवर्णरत्नानां कर्मतोरणानि नीलरत्नविनिक्षिप्तानीन्दायुधस्थानमिव दर्शयन्ति। वैदूर्यमौक्तिकप्रबालकपुष्परागेन्द्रनी- लकर्केतरकपद्मरागमरकतप्रभ तीन्रत्नविशेषानन्योन्यं विचारयन्ति शिल्पिनः। वध्यन्ते जातरूपैर्माणिक्यानि। घट्यन्ते, सुवर्णालंकाराः। रक्तसूत्रेण ग्रथ्यन्ते मौक्तिकाभरणानि। घ ष्यन्ते धीरं वैदर्याणि। छिद्यन्ते शंखाः। शाणैर्घ ष्यन्ते प्रवालकाः। शोष्यन्त आर्द्रकुंकुम-प्रस्तराः। सार्यते कस्तूरिका। विशेषेण घ ष्यते चन्दनरसः। संयोज्यन्ते गन्धयुक्तयः;। दीयते गणिकाकामुकयोः सकर्पूरं ताम्बूलम्। अवलोक्यते सकटाक्षम्। प्रवर्तते हासः। पीयते चानवरतं ससीत्कारं मदिरा। इमे चेटाः, इमाश्चेटिकाः, इमे अपरे वधीरितपुत्रदारवित्ता मनुष्या आसवकरकापीतमदिरैर्गणिकाजनैर्ये मुक्तास्ते पिबन्ति। आदिशतु भवति।)

चेटी — एदु एदु अज्जो। इमं सत्तमं पओट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इमं सप्तमं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः— (प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भो! इधो वि सत्तमे पओट्ठे सुसिलिट्ठविहंगवाडीसुहणिसण्णाइं अण्णोण्णचुंबणपराइं सुहं अणुभवंति पारावदमिहुणाइं। दहिभत्तपूरिदोदरो बह्मणो विअ सुत्तं पढदि पंजरसुओ। इअं अवरा संमाणणालद्धपसरा विअ घरदासी अधिअं कुरुकुराह्मदि

मदणसारिआ। अणेअफलरसास्सादपह्वट्टकंठा कुंभदासी विअ कूअदि परपुट्ठा। आलंबिदा णागदंतेसु पंजरपरंपराओ। जोधीअंति लावआ। आलवीअंति कविंजला। पेसीअंति पंजरकवोदा। इदो तदो विविहमणिचित्तलिदो विअ अअं सहरिसं णच्चंतो रविकिरणसंतत्तं पक्खुक्खेवेहिं विधुवेदि विअ पासादं घरमोरो। (अन्यतो वलोक्य च) इदो पिंडीकिदा विअ चंदपादा पदगदिं सिक्खंता विअ कामिणीणं पच्छादो परिब्भमंति राअहंसमिहुणा। एदे अवरे वुड्ढमहल्लका विअ इदो तदो संचरंति घरसारसा। ही ही भो पसारणअं किदं गणिआए णाणपक्खिसमूहेहिं। जं सच्चं खु णंदणवणं विअ मे गणिआघरं पडिभासदि। आदिसदु भोदी। (आश्चर्यं भोः, इहापि सप्तमे प्रकोष्ठे सुश्लिष्टविहंगवाटीसुखनिषण्णान्यन्योन्यचुम्बनपराणि सुखमनुभवन्ति पारावतमिथुनानि। दधिभक्तपूरितोदरो ब्राह्मण इव सूक्तं पठति पंजरशुकः। इयमपरा संमाननालब्धप्रसरेव ग हदासी अधिकं कुरकुरायते मदनसारिका। अनेकफलरसास्वादप्रह्वष्टकण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा। आलम्बिता नागदन्तेषु पंजरपरंपराः। योध्यन्ते लावकाः। आलाप्यन्ते कपि जलाः। प्रेष्यन्ते पंजरकपोताः। इतस्ततो विविधमणिचित्रित इवायं सहर्षं न त्यन्रविकिरणसंतप्तं पक्षोत्क्षेपैर्विधुवतीव प्रासादं ग हमयूरः। इतः पिण्डीकृता इव चन्द्रपादाः पदगति शिक्षमाणानीव कामिनीनां पश्चात्परिभ्रमन्ति राजहंसमिथुनानि। एते परे व द्धमहल्लका इव इतस्ततः संचरन्ति ग हसारसाः। आश्चर्यं भोः, प्रसारणं कृतं गणिकया नानापक्षिसमूहैः। यत्सत्यं खलु नन्दनवनमिव मे गणिकाग हं प्रतिभासते, आदिशतु भवत्ति।)

चेटी— **एदु एदु अज्जो। इमं अट्टमं पओट्ठं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इममष्टमं प्रकोष्ठं प्रविशत्वार्यः।)**

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) भोदि! को एसो पट्टपावारअपाउदो अधिअदरं अच्चब्भुदपुणरुत्तालंकारालंकिदो अंगभंगेहिं परिक्खलंतो इदो तदो परिब्भमदि?। (भवति! क एष पट्टप्रावारकप्राव तो धिकतरमत्यद्भुतपुनरुक्तालंकारालंकृतो ंगभङ्गैः परिस्खलन्नितस्ततः परिभ्रमति?।)

चेटी— **अज्ज! एसो अज्जआए भादा भोदि। (आर्य! एष आर्याया भ्राता भवति।)**

विदूषकः—केत्तिअं तवच्चरणं वसंतसेणाए भादा भोदि?। अधवा

मा दाव जइ वि एसो उज्जलो
सिणिद्धो ल सुअंधो अ।
तह वि मसाणवीधीए जादो विअ
चंपअरुक्खो अणहिगमणीओ लोअस्स।।२६।।

'कियत्तपश्चरणं कृत्वा वसन्तसेनायाः भ्राता भवति?

मा तावद्यद्यप्येष उज्ज्वलः
स्निग्धश्च सुगन्धश्च।
तथापि श्मशानवीथ्यां जात इव
चम्पकव क्षो नभिगमनीयो लोकस्य।।२६।।

अर्थः-

विदूषक - आप बतलाइए।

चेटी— आर्य! आइये, आइये! इस छठे प्रकोष्ठ में आर्य प्रवेश करें।

विदूषक— (प्रवेश करके और देखकर) अरे! आश्चर्य! इस छठे प्रकोष्ठ में भी ये मरकत मणि (हरे रंग की मणि) जटित, सोने और रत्नों के (बने हुए) नक्काशीदार तोरण इन्द्रधनुष की सी शोभा दिखा रहे हैं। शिल्पीगण, वैदूर्य, मोती, मूंगा, पुष्पराग, इन्द्रनील, कर्केतरक, पद्मराग, मरकत आदि विशिष्ट रत्नों का आपस में विचार कर रहे हैं। सोने में मणियाँ जड़ी जा रही हैं। सोने के आभूषण गढ़े जा रहे हैं। लाल सूत्र से मोतियों के आभूषण गूंथे जा रहे हैं। धीरे-धीरे वैदूर्य मणियाँ घिसी जा रही हैं। शंख काटे जा रहे हैं। मूंगे सान से खरादे जा रहे हैं। गीली केशरों की तहे सुखाई जा रही हैं। कस्तूरी चलाई जा रही है (सूखने के लिये धूप में फैलाकर बार-बार डुलाई जा रही है)। चन्दनरस विशेष रूप से घिसा जा रहा है। गन्ध मिलाये जा रहे हैं। वेश्या और कामुक को कपूर मिला हुआ पान दिया जा रहा है। कटाक्षपूर्वक देखा जा रहा है। हँसी चल रही है। बराबर सी-सी करके मदिरा पी जा रही है। ये चेट है। ये चेटिकायें हैं। अपना पुत्र, स्त्री तथा धन सब कुछ छोड़ देने वाले, शकोरों में मदिरा पी चुकने वाली वेश्याओं के द्वारा जो छोड़ दिये गये हैं ऐसे ये दूसरे लोग मदिरा पी रहे हैं अर्थात् मदिरा पीकर वेश्याएँ उन्हें अकेला छोड़ कर चली गयी हैं। आप आगे निर्देश कीजिये।

चेटी— आर्य! आइये, आइये! इस सातवें प्रकोष्ठ में आप प्रवेश कीजिए।

विदूषक— (प्रवेश करके और देखकर) अरे! आश्चर्य! यहाँ सातवें प्रकोष्ठ में भी सुन्दर चिड़िया-घर (कपोतपालिका) पर आनन्द के साथ बैठे हुए आपस के चुम्बन में लगे हुए कबूतरों के जोड़े सुख का अनुभव कर रहे हैं। दही-भात से भरे हुए पेटवाले ब्राह्मण की भाँति, पिंजरे में बैठा तोता वेद के मन्त्रों को पढ़ रहा है। दूसरी यह मैना, आदर पाने से शिरचढ़ी घर की नौकरानी के समान, अधिक कुर-कुर शब्द कर रही है। अनेक फलों के रस को आस्वादित करने से प्रसन्न कण्ठ वाली कोयल कुट्टिनी स्त्री के समान कूक रही है। खूँटियों में पिंजरों की कतारें लटक रही हैं। बटेर लड़ाये जा रहे हैं। पिंजड़ों के कबूतर भेजे जा रहे हैं अर्थात् आकाश में उड़ाए जा रहे हैं। खुशी के मारे नाचता हुआ, रंग-विरंगी मणियों से चित्रित सा यह पालतू मोर पंखों के फड़फड़ाने से सूरज की किरणों से गरम हुए महल को मानों हवा कर रहा है। (दूसरी ओर देख कर) इधर इकट्ठी की गयी चन्द्रमा की किरणों के समान ऊँची जाति के हंसों के जोड़े सुन्दरी स्त्रियों के पीछे-पीछे सुन्दर गति को सीखते हुए से इधर-उधर घूम रहे हैं। दूसरे ये पालतू सारस पक्षी बहुत बूढ़े व्यक्तियों की तरह इधर-उधर घूम रहे हैं। ओह! आश्चर्य है! इस वेश्या ने भाँति-भाँति की चिड़ियों के झुण्डों को फैला रक्खा है। सच तो यह है कि वेश्या का यह घर मुझे देवताओं के वन की तरह मालूम पड़ रहा है। आप बतलाइए।

चेटी— आर्या! आइए, आइए। आप इस आठवें प्रकोष्ठ में प्रवेश करें।

विदूषक— (प्रवेश करके और देखकर) श्रीमती जी! यह कौन है, जो रेशमी दुपट्टे को ओढ़े हुए, अधिक रूप से अत्यन्त विलक्षण लगने वाले एक ही आभूषण को दो-तीन की संख्या में पहने अंगों को लचका कर डगमगाता हुआ इधर-उधर घूम रहा है?

चेटी — श्रीमान् जी! ये आर्या वसन्तसेना के भाई होते हैं।

विदूषक— कितनी तपस्या करके यह 'वसन्तसेना' का भाई हुआ है?

अन्वयः— मा, तावत्, यद्यपि, एषः, उज्ज्वलः, स्निग्धः, च, सुगन्धः, च, (अस्ति), तथापि, श्मशानवीथ्याम्, जातः, चम्पकव क्षः, इव, लोकस्य, अनभिगमनीयः, (अस्ति)।।२६।।

शब्दार्थः— मा तावत् = ऐसी बात नहीं है, यद्यपि = यद्यपि, एषः = यह, उज्ज्वलः = उजला, सुघड़, स्निग्धः = चिकना-चुपड़ा, च = और, सुगन्धः = सुगन्धित, (अस्ति = है), तथापि = तो भी, श्मशानवीथ्याम् = मरघट की गली में, जातः = उगे हुए, चम्पकव क्षः = चम्पा के पेड़, इव = जैसा, लोकस्य = लोगों के लिये, अनभिगमनीयः = त्याज्य, (अस्ति = है)।।

अर्थः— ऐसी बात नहीं है। यद्यपि यह सुघड़ तथा चिकना-चुपड़ा एवं सुगन्धित है। किन्तु फिर भी श्मशान की गली में उगे हुए चम्पा के पेड़ की तरह यह लोगों के लिये त्याज्य है।।२६।।

टीका— मा तावत् = 'कियत्तपश्चरणं कृत्वा वसन्तसेनायाः भ्राता भवति? इति कथनं न समीचीनम्; यद्यपि एषः = वसन्तसेनायाः भ्राता; उज्ज्वलः = धवलः, सौन्दर्ययुक्तः इति यावत्; स्निग्धः = प्रसाधनद्रव्यैः चिक्कणः; च = तथा; सुगन्धः = आमोदयुक्तः च अस्तीतिशेषः। तथापि; श्मशानवीथ्यां = श्मशानमार्गे; जातः = उत्पन्नः; चम्पकव क्षः = चम्पकपादपः इव; लोकस्य = जनस्य; अनभिगमनीयः = अस्प श्यः।।२६।।

(अन्यतो वलोक्य) भोदि! एसा उण का फुल्लपावारअपाउदा उवाणहजुअलणिक्खित्ततेल्लचिक्कणेहिं पादेहिं उच्चासणे उवविट्टा चिट्ठदि?। भवति! एषा पुनः का पुष्पप्रावारकप्राव तोपानद्युगल- निक्षिप्ततैलचिक्कणाभ्यां पादाभ्यामुच्चासन उज्वविष्टा तिष्ठति?।

चेटी — अज्ज! एसा खु अम्हाणं अज्जआए अत्तिआ। (आर्य? एषा खल्वस्माकमार्याया माता।)

विदूषकः— अहो से कवट्ठडाइणीए पोट्टवित्थारो। ता किं एदं पवेसिअ महादेवं विअ दुआरसोहा इह घरे णिम्मिदा?। (अहो अस्याः कपर्दकडाकिन्या उदरविस्तारः। तत्किमेतां प्रवेश्य महादेवमिव द्वारशोभा इह ग हे निर्मिता?।)

चेटी — हदास! मा एव्वं उवहस अम्हाणं अत्तिअं; एसा खु चाउत्थिएण पीडीअदि। (हताश! मैवमुपहसास्माकं मातरम्; एषा खलु चातुर्थिकेन पीड्यते।)

विदूषकः— (सपरिहासम्) भअवं चाउत्थिअ! एदिणा उवआरेण मं पि बम्हणं आलोएहि (भगवंश्चातुर्थिक! एतेनोपकारेण मामपि ब्राह्मणमवलोकय।)

चेटी — हदास! मरिस्ससि। (हताश! मरिष्यसि।)

विदूषकः— (सपरिहासम्) दासीए धीए! वरं ईदिसो शूणपीण जठरो मुदो ज्जेव।

सीधु सुरासवमत्तिअ एआवत्थं गदा हि अत्तिआ।
जइ मरइ एत्थ अत्तिआ भोदि सिआलसहस्सपज्जत्तिआ।।३०।।

(दास्याःपुत्रि! वरमीद शः शूनपीनजठरो म त एव।)

सीधुसुरासवमत्ता एवावदवस्थां गता हि माता।
यदि म्रियते त्र माता भवति श्र गालसहस्रपर्याप्तिका।।

अर्थः - (दूसरी ओर देखकर) श्रीमती जी! अच्छा यह कौन हैं जो फूल गढ़ी हुई ओढ़नी को ओढ़े, दोनों जूतों में तेल से चिकने पैरों को डाले ऊँचे आसन पर बैठी हैं?

चेटी — श्रीमान् जी! यह हमारी आर्या वसन्तसेना की माता हैं।

विदूषक— इस गन्दी डायन के पेट का फैलाव आश्चर्यजनक है! तो क्या महादेव के समान भारी पेटवाली इसको यहाँ (घर के भीतर) घुसाकर इस घर में सुन्दर दरवाजों को बनाया गया था?

चेटी— दुष्ट! हमारी माता जी की इस प्रकार हँसी मत करो। यह तो चौथिया बुखार से परेशान हैं।

विदूषक— भगवान् चौथिया बुखार! इसी उपकार से मुझ ब्राह्मण को भी देख लीजिए अर्थात् यदि आपके आने से यह मोटी हो रही है तो इसी प्रकार आकर मुझे भी मोटा कर दीजिए।

चेटी— दुष्ट! मर जाओगे।

विदूषक— (हँसी लेते हुए) बढ़ा हुआ एवं मोटा पेट वाला ऐसा आदमी मरा हुआ ही अच्छा है अर्थात् जीने से तो इनका मरना ही अच्छा है।

अन्वयः— सीधुसुरासवमत्ता, माता, एतावदवस्थाम्, गता, हि, यदि, अत्र, माता, म्रियते, (तु), श्र गालसहस्रपर्याप्तिका, भवति।।30।।

शब्दार्थः— सीधुसुरासवमत्ता = सीधु, सुरा एवं आसव (ये तीनों भिन्न-भिन्न मदिराओं के नाम हैं) से मतवाली, माता = जननी, एतावदवस्थाम् = इस हालत को, गता = प्राप्त हुई है, यदि = यदि, अत्र = इस समय, माता = जननी, म्रियते = मर जाती है, (तु = तो), श्र गालसहस्रपर्याप्तिका = हजारों सियारों की पूर्ति, भवति = होती है।।

अर्थः— सीधु, सुरा एवं आसव (ये तीनों भिन्न-भिन्न मदिराओं के नाम हं) से मतवाली (यह तुम लोगों की) माता इस हालत को प्राप्त हो गयी है। यदि इस समय यह माता मर जाती है तो हजारों सियारों की (पेट-) पूर्ति होगी।।30।।

टीका— सीधुसुरासवैः = त्रिविधैः मदिराविशेषैः मत्ता = प्राप्तमदा; माता = वसन्तसेनाजननी; एतावदवस्थाम् = एताद शीं दशां; गता = प्राप्ता; यदि = यदि, अत्र = अस्मिन् समये, माता = जननी, म्रियते = म त्युं गच्छति; तदा; श्र गालसहस्रस्य = श्र गालसमुदायस्य इत्यर्थः पर्याप्तिका = पूर्तिः त प्तिः इत्यर्थः, भवति = जायते।।30।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं आर्या छन्द है।

भोदि! किं तुम्हाणं जाणवत्ता वहंति?।

भवति! किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति?।

चेटी — अज्ज! णहि णहि। (आर्यं! नहि नहि।)

विदूषकः— किं वा एत्थ पुच्छीअदि? तुभ्हाणं खु पेम्मणिम्मलजले मअणसमुद्दे त्थणणिअंबजहणा ज्जेव जाणवत्ता मणहरणा। एव्वं वसंतसेणाए बहुवुत्तंतं अट्टपओट्टं भवणं पेक्खिअ जं सच्चं जाणमि, एकत्थं विअ तिविट्ठअं दिट्टं। पसंसिदुं णत्थि मे वाआविहवो। किं दाव गणिआघरो, अहवा कुबेरभवणपरिच्छेदो त्ति। कहिं तुम्हाणं अज्जआ?। (किं वात्र प च्छ्यते?। युष्माकं खलु प्रेमनिर्मलजले मदनसमुद्रे स्तननितम्बजघनान्येव यानपात्राणि मनोहराणि। एवं वसन्तसेनाया बहुव त्तान्तमष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य यत्सत्यं जानामि, एकस्थमिव त्रिविष्टपं द ष्टम्। प्रशंसितुं नास्ति मे वाग्विभवः। किं तावद्गणिकाग हं, अथवा कुबेरभवनपरिच्छेद इति। कुत्र युष्माकमार्या?।)

चेटी — अज्ज! एसा रुक्खवाडिआए चिट्ठदि। ता पविसदु अज्जो। (आर्य! एषा व क्षवाटिकायां तिष्ठति। तत्प्रविशत्वार्यः।)

विदूषकः—(प्रविश्य, द ष्ट्वा च) ही हो भो, अहो रुक्खवाडिआए एस्सिरीअदा। अच्छरीदिकुसुमपत्थारा रोविदाअणेअपादवा, णिरंतरपादवतलणिम्मिदा जुवदिजहणप्पमाणा पट्टदोला, सुवण्णजूधिआसेहालिआमालईमल्लिआणोमालि- आकुरबआअदिमोत्तअप्पहुदिकुसुमेहिं सअं णिवडिदेहिं जं सच्चं लहुकरेदि विअ णंदणवणस्स सस्सिरीअदं। (अन्यतो वलोक्य) इदो अ उदअंतसूरसमप्पहेहिं कमलरत्तोत्पलेहिं संझाअदि विअ दीहिआ। अवि अ,-

एसो असोअवुच्छो णवणिग्गमकुसुमपल्लवो भादि।
सुभडो व्व समरमज्झे घणलोहिदपंकचच्चिक्को।।३१।।

भोदु, ता कहिं तुम्हाणं अज्जआ?। (आश्चर्यं भोः, अहो व क्षवाटिकायाः सश्रीकता। अच्छरीतिकुसुमप्रस्तारा रोपिता अनेकपादपाः, निरन्तरपादपतलनिर्मिता युवतिजघनप्रमाणाः पट्टदोलाः, सुवर्णयूथिकाशेफालिकामालतीमल्लिकानवमल्लिकाकुरबकातिमुक्तकप्रभ तिकुसुमैः स्वयं निपतितैर्यत्सत्यं लघूकरोतीव नन्दनवनस्य सश्रीकताम्। इतश्च उदयत्सूर्यसमप्रभैः कमलरक्तोत्पलैः संध्यायते इव दीर्घिका। अपि च,-

एषो शोकव क्षो नवनिर्गमकुसुमपल्लवो भाति।

सुभट इव समरमध्ये घनलोहितपंकचर्चिकः।

भवतु, तत्कुत्र युष्माकमार्या?।

अर्थः—

श्रीमती जी! क्या आप की गाड़ी अथवा नैया आदि चलती हैं?

चेटी — आर्य! नहीं, नहीं।

विदूषक— अथवा इस विषय में पूछने की क्या बात है? वास्तव में प्रेमरूपी निर्मल जलवाले कामरूपी सागर में तुम लोगों के स्तन, नितम्ब और जाँघें ही मनोहर यानपात्र हैं। इस प्रकार विभिन्न चरित्रों वाले एवं आठ आँगन से युक्त 'वसन्तसेना' के महल को देखकर सचमुच मुझे लगता है कि मानो एक जगह पर इकट्ठा हुए स्वर्ग-लोक को देख लिया है। प्रशंसा करने के लिये मेरी वाणी में बल नहीं है। तो क्या यह वेश्या का घर है? अथवा 'कुबेर' के महल का एक हिस्सा है?। तुम्हारी आर्या वसन्तसेना कहाँ हैं?।

चेटी — आर्य! यह उद्यान में बैठी हैं। तो आप प्रवेश करें।

अर्थः—

विदूषक— (प्रवेश करके और देखकर) अरे आश्चर्य! उद्यान की सुन्दरता आश्चर्यजनक है। जिन पर भली भाँति फूलों का फैलाव होता है। ऐसे बहुत से पौधे लगाये गये हैं। युवतियों के जघन-स्थल की नाप वाली पटरियों के झूले सघन पेड़ों के नीचे बने हुए हैं। सोनजूही, शेफालिका, मालती, बेला, चमेली, कुरबक तथा मोगरा आदि अपने आप गिरे हुये फूलों से यह उद्यान सचमुच ही नन्दन वन की शोभा को तुच्छ कर रहा है। (दूसरी ओर देखकर) और इधर निकलते हुए सूर्य के समान कान्ति वाले साधारण एवं लाल वर्ण वाले कमलों से (यह) बावड़ी सन्ध्या का द श्य उपस्थित-सा कर रही है। और भी;-

अन्वयः— नवनिर्गतकुसुमपल्लवः, एषः, अशोकव क्षः, समरमध्ये, घनलोहितपंकचर्चिकः, सुभटः, इव, भाति।।३१।।

शब्दार्थः— नवनिर्गतकुसुमपल्लवः = नये निकले हुए फूलों एवं पत्तों वाला, एषः = यह, अशोकव क्षः = अशोक का पेड़ा, समरमध्ये = लड़ाई के बीच में, घनलोहितपंकचर्चिकः = गाढ़े खून रूपी कीचड़ से लथपथ हुए, सुभटः = वीर योद्धा की, इव = भाँति, भाति = शोभायमान हो रहा है।

अर्थः— नये निकले हुए फूलों एवं पत्तों (कोपलों) वाला यह अशोक का पेड़, लड़ाई के मैदान में गाढ़े खून रूपी कीचड़ से लथपथ हुए वीर योद्धा की भाँति, शोभायमान हो रहा है।।३१।।

टीका— नवनिर्गताः = नूतनोत्पन्ना कुसुमपल्लवाः = पुष्पपत्राणि यस्य सः; एषः = पुरोवर्तमानः; अशोकव क्षः = अशोकपादपः; समरमध्ये = समरांगणे; घनैः = सान्द्रैः लोहितैः = रक्तैः एव पंकैः = कर्दमैः चर्चिकः = चर्चितः कृतलेपनः इत्यर्थः; सुभटः = शूरः इव; भाति = शोभते।।३१।।

चेटी — अज्ज! ओणामेहि दिट्ठिं, पेक्ख अज्जअं। (आर्य अवनमय द ष्टिम्, पश्यार्याम्।)

विदूषकः— (द ष्ट्वा, उपस त्य) सोत्थि भोदीए। (स्वस्ति भवत्यै।)

वसन्तसेना — (संस्कृतमाश्रित्य) अये, मैत्रेयः। (उत्थाय) स्वागतम्, इदमासनम्;, अत्रोपविश्यताम्।

विदूषकः— उपविसदु भोदी। (उपविशतु भवती।)

(उभावुपविशतः)

वसन्तसेना — अपि कुशलं सार्थवाहपुत्रस्य?।

विदूषकः—भोदि! कुणलं। (भवति! कुशलम्।)

वसन्तसेना — आर्य मैत्रेय! अपीदानीं।

गुणप्रवालं विनयप्रशाखं विश्रम्भमूलं महनीयपुष्पम्।
तं साधुव क्षं स्वगुणैः फलाढ्यं सुहृद्विहंगाः सुखमाश्रयन्ति?।।३२।।

अर्थः— अच्छा, तो तुम्हारी आर्या वसन्तसेना कहाँ है?

चेटी— आर्य! द ष्टि नीची कीजिए। आर्या को देखिए।

विदूषक— (देखकर और समीप आकर) आप का कल्याण हो।

वसन्तसेना— (संस्कृत के माध्यम से) अरे! मैत्रेय है। (उठकर) स्वागत है। यह आसन है। यहाँ बैठिए।

विदूषक— आप बैठें।

(दोनों बैठते हैं)

वसन्तसेना— सार्थवाह के पुत्र आर्य 'चारुदत्त' कुशल से तो हैं?

विदूषक— श्रीमती जी! कुशल से हैं।

अन्वयः— गुणप्रवालं, विनयप्रशाखं, विश्रम्भमूलं, महनीयपुष्पम्, स्वगुणैः, फलाढ्यं, तं, साधुव क्षं, सुहृद्विहंगाः, सुखम्, आश्रयन्ति?।।३२।।

शब्दार्थः— गुणप्रवालं = गुण रूपी कोपलों वाले, विनयप्रशाखम् = नम्रता रूपी डालियों वाले, विश्रम्भमूलम् = विश्वासरूपी जड़ वाले, महनीयपुष्पम् = महानता रूपी फूल वाले, स्वगुणैः = अपने गुणों के द्वारा, फलाढ्यम् = फल-परिपूर्ण, तम् = उस, साधुव क्षम् = सज्जन रूपी व क्ष पर, सुहृद्विहंगाः = मित्र रूपी पक्षी, सुखम् = सुख पूर्वक, आश्रयन्ति = आश्रय लेते हैं?।।

अर्थः—

वसन्तसेना— आर्य मैत्रेय! क्या इस समय,

जिसके गुण ही कोंपलें हैं, नम्रता ही डालियाँ हैं, विश्वास ही जड़ है, महानता ही फूल है ऐसे अपने गुणों के द्वारा फलपरिपूर्ण उस सज्जन चारुदत्त रूपी व क्ष पर मित्र रूपी पक्षी सुखपूर्वक आश्रय लेते हैं?।।३२।।

टीका— गुणाः = दयादाक्षिण्यादिगुणाः एव प्रवालाः = किसलयाः यस्य तम्; विनयः = विनम्रता एव प्रशाखा = उत्कृष्टा शाखा यस्य तम्; विश्रम्भः = विश्वासः एव मूलं यस्य तम्; महनीयम् = श्रेष्ठं पूजनीयम् वा, पूजनीयचरितमेवेति भावः पुष्पम् = प्रसूनं यस्य तम्; स्वगुणैः = स्वक्षमादिगुणैः; फलाढ्यम् = फलसम्पन्नम्; श्रेष्ठगुणफलयुक्तमित्यर्थः; तम् = चारुदत्तरूपम्; साधुव क्षम् = सज्जनपादपम्; मित्राणि एव विहंगाः = पक्षिणः; सुखम् = सानन्दम् आश्रयन्ति = अवलम्बन्ते किम्?।।३२।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार एवं उपजाति छन्द है।

विदूषकः—(स्वगतम्) सुट्ठु उवलक्खिदं दुट्टविलासिणीए। (प्रकाशम्) अध इं। (सुष्ठूपलक्षितं दुष्टविलासिन्या। अथ किम्।)

वसन्तसेना— अये! किमागमनप्रयोजनम्?।

विदूषकः—सुणादु भोदी। तत्तभवं चारुदत्तो सीसे अंजलिं कदुअ भोदिं विण्णवेदि (श णोतु भवती। तत्रभवांश्चारुदत्तः शीर्षे जलिं कृत्वा भवतीं विज्ञापयति।)

वसन्तसेना— (अ जलिं बद्ध्वा) किमाज्ञापयति?।

विदूषकः—मए तं सुवण्णभंडअं विस्संभादो अत्तणकेरकेति कदुअ जूदे हारिदं। सो अ सहिओ राअवत्थहारी ण जाणीअदि कहिं गदो त्ति। (मया तत्सुवर्णभाण्डं विश्रम्भादात्मीयमिति कृत्वा द्यूते हारितम्। स च सभिको राजवार्ताहारी न ज्ञायते कुत्र गत इति।)

चेटी— अज्जए! दिट्टिआ वड्ढसि। अज्जो जूदिअरो संवुत्तो। (आर्ये! दिष्ट्या वर्धसे। आर्यो द्यूतकरः संव त्तः।)

वसन्तसेना — (स्वगतम्) कधं चोरेण अवहिदं पि सोंडीरदाए जूदे हारिदं त्ति भणादि?। अदो ज्जेव कामीअदि। (कथं चौरेणापहृतमपि शौण्डीरतया द्यूते हारितमिति भणति?। अत एव काम्यते।)

विदूषकः—ता तस्स कारणादो गेण्हदु भोदी इमं रअणावलिं। (तत्तस्य कारणाद् ग ह्णातु भवतीमां रत्नावलीम्।)

वसन्तसेना— (आत्मगतम्) किं दंसेमि तं अलंकारअं?। (विचिन्त्य) अधवा ण दाव। (किं दर्शयामि तमलंकारम्?। अथवा न तावत्।)

विदूषकः—किं दाव ण गेण्हदि भोदी एदं रअणावलिं?। (किं तावन्न ग ह्णाति भवमीमां रत्नावलीम्?।)

वसन्तसेना— (विहस्य, सखीमुखं पश्यन्ती) मित्तेअ! कधं ण गेण्हिस्सं रअणावलिं?। (इति ग हीत्वा पार्श्वे स्थापयति, स्वगतम्) कधं झीणकुसुमादो वि सहआरपादवादो मअरंदबिंदओ णिवडंति?। (प्रकाशम्) अज्ज! विण्णवेहि तं जूदिअरं मम वअणेणअज्जचारुदत्तं-'अहं पि पदोसे अज्जं पेक्खिदुं आअच्छामि' त्ति। (मैत्रेय! कथं न ग्रहीष्यामि रत्नावलीम्?। कथं हीनकुसुमादपि सहकारपादपान्मकरन्दविन्दवो निपतन्ति?। आर्य! विज्ञापय तं द्यूतकरं मम वचनेनार्यचारुदत्तम्-'अहमपि प्रदोष आर्यं प्रेक्षितुमागच्छामि' इति।)

विदूषकः—(स्वगतम्) किं अण्णं तहिं गदुअ गेण्हिस्सदि?। (प्रकाशम्) भोदि! भणामि-(स्वगतम्) 'णिअत्तीअदु इमादो गणिआपसंगादो' त्ति। (किमन्यत्तत्र गत्वा ग्रहीष्यति?। भवति! भणामि-'निवर्ततामस्माद्गणिकाप्रसंगात्' इति।)

(इति निष्क्रान्तः)

वसन्तसेना— ह जे! गेण्ह एदं अलंकारअं। चारुदत्तं अहिरमिदुं गच्छम्ह। (चेटि! ग हाणैतमलंकारम्। चारुदत्तमभिरन्तुं गच्छावः।)

चेटी— अज्जए! पेक्ख पेक्ख। उण्णमदि अकालदुद्दिणं। (आर्ये! पश्य पश्य, उन्नमत्यकालदुर्दिनम्।)

वसन्तसेना—

उदयन्तु नाम मेघा भवतु निशा वर्षमविरतं पततु।
गणयामि नैव सर्वं दयिताभिमुखेन हृदयेन।।३३।।

अर्थः—

विदूषक— (अपने आप) ठीक जाना इस दुष्ट वेश्या ने। (प्रकट रूप में) और क्या? अर्थात् आश्रय लेती हैं।

वसन्तसेना— जी! आप के आने का कारण क्या है?

विदूषक— श्रीमती जी सुनें। आदरणीय 'चारुदत्त' शिर पर हाथ जोड़कर आप को सूचित करते हैं।

वसन्तसेना— (हाथ जोड़कर) क्या आज्ञा देते हैं?

विदूषक— आपके द्वारा रक्खे गये उस सोने के भाण्ड को विश्वास पूर्वक अपना मानकर मैं जुए में हार गया और राजाओं का सन्देश पहुँचाने वाला वह सभिक न जाने कहाँ चला गया।

चेटी— आर्या! भाग्य से बढ़ रही हो अर्थात् तुम्हारा भाग्य बलवान है। आर्य 'चारुदत्त' जुआरी हो गये।

वसन्तसेना— (अपने आप) क्या चोर के द्वारा चुराये गये को भी, उदारता के कारण, 'जुए में हरा दिया' ऐसा कह रहे हैं? इसीलिए तो मैं उनको चाहती हूँ।

विदूषक— तो उसके बदले में आप इस रत्नों की माला को लीजिए।

वसन्तसेना— (अपने आप) क्या उस आभूषण को दिखला दूँ? (विचार कर) या अभी नहीं।

विदूषक— तो क्या आप इस रत्नावली को नहीं ले रही हैं?

वसन्तसेना— (हँसकर सखी के मुख को देखती हुई) मैत्रेय! रत्नावली को क्यों नहीं लूँगी? (लेकर पास में रखती हुई अपने आप) क्या म जरी से हीन भी आम के पेड़ से फूलों के रस की बूँदे

गिरती हैं? (प्रकट रूप में) श्रीमान् जी! मेरी तरफ से उन जुआरी आर्य 'चारुदत्त' से कहना कि—'मैं भी आज रात के पहले पहर में आर्य को देखने के लिये आऊँगी।'

विदूषक— (अपने आप) क्या वहाँ जाकर दूसरी कोई वस्तु लेंगी? (प्रकट रूप में) श्रीमती जी! कहूँगा-(अपने आप) 'कि इस वेश्या का साथ छोड़ दो।'

(ऐसा कहकर चला जाता है)

वसन्तसेना— चेटी! इस आभूषण को लो। 'चारुदत्त' से काम-क्रीडा करने चलेंगी।

चेटी— आर्या देखिये, विना समय के ही, दुर्दिन (पानी की फुहार छोड़ने वाली काली घटाएँ) उमड़ रही हैं।

अन्वयः— मेघाः, उदयन्तु, नाम; निशा, भवतु; अविरतम्, वर्षं, पततु; (अहं) दयिताभिमुखेन, हृदयेन, सर्वं, नैव, गणयामि।।३३।।

शब्दार्थः— मेघाः = घटाएँ, उदयन्तु = घिर आये, निशा = रात, भवतु = हो जाय, अवरितम् = लगातार, वर्षं = वर्षा, पततु = पड़े; (अहं = मैं), दयिताभिमुखेन = प्रियतम के लिये उमड़ने वाले अथवा तड़पने वाले, हृदयेन = हृदय के कारण, सर्वं = यह सब, नैव = नहीं, गणयामि = गिनती हूँ।।

अर्थः—

वसन्तसेना— घटाएँ भले ही घिर आये, रात हो जाय, लगातार पानी गिरता रहे, फिर भी मैं प्रियतम से मिलने के लिये तड़पने वाले हृदय के कारण इन सबकी कुछ भी परवाह नहीं करती।।३३।।

टीका— मेघाः = जलदाः; उदयन्तु = आविर्भवन्तु; नामेति स्वीकारे; निशा = रात्रिः; भवतु = अस्तु; अविरतम् = अनवरतम्; वर्षं = व ष्टिः; पततु = भवतु इत्यर्थः; अहं दयिताभिमुखेन = प्रियतममिलनोत्सुकेन इत्यर्थः; हृदयेन = चेतसा, सर्वं = निखिल-मेतत्; नैव गणयामि = नैव शोचामि।।३३।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-आर्या।।३३।।

ह जे! हारं गेण्हिअ लहुं आअच्छ। (चेटि! हारं ग हीत्वा शीघ्रमागच्छ।)

अर्थः- चेटी हार लेकर शीघ्र आओ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(सब निकल जाते हैं)

इति मदनिका-शर्विलको नाम चतुर्थोंकः।।

'मदनिका' और शर्विलक नामक चौथा अंक समाप्त।

प चमो ंकः

(ततः प्रविशत्यासनस्थः सोत्कण्ठश्चारुदत्तः)

चारुदत्तः— (ऊर्ध्वमवलोक्य) उन्नमत्यकालदुर्दिनम्। यदेतत्

आलोकितं ग हशिखण्डिभिरुत्कलापै-
र्हंसैर्यियासुभिरपाकृतमुन्मनस्कैः।
आकालिकं सपदि दुर्दिनमन्तरिक्ष-
मुत्कण्ठितस्य हृदयं च समं रुणद्धि।।१।।

अन्वयः— उत्कलापैः, ग हशिखण्डिभिः, आलोकितं; यियासुभिः, उन्मनस्कैः; हंसैः, अपाकृतम्; आकालिकम्, दुर्दिनम्, सपदि, अन्तरक्षिम्, उत्कण्ठितस्य, हृदयम्, च, समम्, रुमद्धि।।१।।

शब्दार्थः— उत्कलापैः = ऊपर की ओर पंख किये हुए, ग हशिखण्डिभिः = पालतू मोरों के द्वारा, आलोकितम् = देखा गया; यियासुभिः = जाने की इच्छा वाले, उन्मनस्कैः = खिन्न मन वाले, हंसैः = हंसों के द्वारा, अपाकृतम् = तिरस्कृत किया गया; आकालिकम् = कुसमय में होने वाला, दुर्दिनम् = बादलों से ढका हुआ दिन, सपदि = शीघ्र ही, अन्तरिक्षम् = आसमान को, उत्कण्ठितस्य = विरही के, हृदयम् = हृदय को, समं = साथ ही, रुणद्धि = ढँक रहा है।।

अर्थः— (इसके बाद आसन पर बैठा हुआ उत्कण्ठित चारुदत्त प्रवेश करता है)

चारुदत्त— (ऊपर की ओर देखकर) कुसमय में ही दुर्दिन (झड़ी लगाने वाला काला-काला मेघ) उमड़ रहा है। जो यह-

ऊपर की ओर पंख छितराए हुए पालतू मोरों के द्वारा (आनन्द के साथ) देखा गया, (मानसरोवर को) जाने की इच्छा वाले खिन्न-मन हंसों के द्वारा तिरस्कृत किया गया कुसमय का यह दुर्दिन (मेघों से युक्त दिन) शीघ्र ही आसमान तथा विरही आदमी के हृदय को साथ-साथ आच्छन्न कर रहा है।१।।

टीका— उद्गतः कलापः = पिच्छं यैः तैः, ऊर्ध्वप्रसारितपुच्छैः इत्यर्थः; ग हस्य = भवनस्य, शिखण्डः = बर्हं एषामस्तीति शिखण्डिनः = मयूराः, ग हपालितमयूराः इत्यर्थः, आलोकितम् = प्रसन्नतया अवलोकितम्; यियासुभिः = गन्तुमिच्छुभिः मानसरोवरमिति शेषः; उद्गतं = खिन्नमित्यर्थः मनः = चेतः येषां तैः; हंसैः = मरालैः; अपाकृतम् = तिरस्कृतम्; आकालिकम् = अनवसरोत्पन्नम्; दुर्दिनम् = मेघाच्छन्नं दिनम्; लक्षणया मेघः इत्यर्थः; सपदि = झटिति; अन्तरिक्षम् = आकाशम्; उत्कण्ठितस्य = विरहातुरस्य; हृदयम् = चेतश्च; समम् = साकम्; रुणद्धि = आच्छादयति।।१।।

इस श्लोक में 'सहोक्ति' अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

अपि च,—

मेघो जलार्द्रमहिषोदरभ ङ्गनीलो
विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः।

आभाति संहतबलाकग हीतशंखः
खं केशवो पर इवाक्रमितुं प्रव त्तः।।२।।

अन्वयः— जलार्द्रमहिषोदरभ ंगनीलः, विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः, संहतबलाकग हीतशंखः, अपरः, केशवः, इव, खम्, आक्रमितुं, प्रव त्तः, मेघ, आभाति।।२।।

शब्दार्थः—जलार्द्रमहिषोदरभ ंगनीलः = पानी से भीगे हुए भैंसे के पेट एवं भौंरे के समान नीला, विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः = बिजली की चमक रूपी बने हुए पीताम्बर का दुपट्टा धारण करने वाला (विष्णु के पक्ष में-बिजली की चमक के समान बना हुआ पीताम्बर ही है दुपट्टा जिसका), संहतबलाकग हीतशंखः-इकट्ठी हुई बगुलों की पाँत रूपी शंख को लेने वाला (विष्णु के पक्ष में-इकट्ठी हुई बगुलों की पाँत की भाँति लिया है 'पा चजन्य' नामक शंख जिसने), अपरः = दूसरे, केशवः = विष्णु (की), इव = तरह, आकाश को, आक्रमितुं = लाघने के लिये, प्रव त्तः = तैयार, मेघः = बादल, आभाति = शोभित हो रहा है।।

और भी—

अर्थः— पानी से भीगे हुए भैंसे के उदर एवं भौंरे के समान नीला, बिजली की चमक रूपी बने हुए पीताम्बर का दुपट्टा धारण करने वाला (विष्णु के पक्ष में-बिजली की चमक के समान बना हुआ पीताम्बर ही हैं दुपट्टा जिसका), इकट्ठी हुई बगुलों की पाँत रूपी शंख को लेने वाला (विष्णु के पक्ष में-इकट्ठी हुई बगुलों की पाँत की भाँति लिया है 'पा चजन्य नामक शंख जिसने), वामनरूपधारी दूसरे विष्णु के समान आकाश को व्याप्त करने के लिये तैयार मेघ शोभित हो रहा है।।२।।

टीका— जलेन = सलिलेन आर्द्रः = सिक्तदेहः यः महिषः = सैरिभः तस्य उदरं = कुक्षिः नीलः = श्यामः (मेघः विष्णुश्च); विद्युदः = तडिदः प्रभा = कान्तिः एव रचितम् = निर्मितम् पीतपटोत्तरीयम् = पीताम्बरोत्तरीयम्, यद्वा पीतपटम् उत्तरीयं च यस्य येन वा सः) संहताः = सुसम्बद्धाः बलाकाः = बकपंक्तयः एवं ग हीतः = ध तः शंखः येन तथोक्तः (विष्णुपक्षे-संहतबलाकावत् ग हीतशंखः = पा चजन्यशंख येन सः), अपरः = अन्यः; केशवः = विष्णुः इव; खम् = आकाशम्; आक्रमितुम् = आक्रान्तं कर्तुं; प्रव त्तः = उद्युक्तः; मेघः = जलदः; आभाति = शोभते।

श्लोक के प्रथम चरण में उपमा दूसरे चरण एवं तीसरे चरण में रूपक तथा मेघ में दूसरे केशव का संशय होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस प्रकार इन अलंकारों के परस्पर सापेक्ष होने से इस श्लोक में संकर अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।२।।

अपि च,—

केशवगात्रश्यामः कुटिलबलाकावलीरचितशंखः।
विद्युद्गुणकौशेयश्चक्रधर इवोन्नतो मेघः।।३।।

अन्वयः— केशवगात्रश्यामः, कुटिलबलाकावलीरचितशंखः, विद्युद्गुणकौशेयः, मेघः, चक्रधरः, इव, उन्नतः।।३।।

शब्दार्थः—केशवगात्रश्यामः = विष्णु की शरीर के समान साँवला, कुटिलबलाकावलीरचितशंखः = बगुलों की टेढ़ी पाँत रूपी शंख को धारण करने वाला, विद्युद्गुणकौशेयः = बिजली रूपी धागों का पीताम्बर पहनने वाला, मेघः = बादल, चक्रधरः इव = विष्णु के समान, उन्नतः = उमड़ रहा है।

और भी-

अर्थः— विष्णु की शरीर के समान साँवला, बगुलों की टेढ़ी पाँत रूपी शंख को धारण करने वाला, बिजली रूपी धागे से बना हुआ पीताम्बर पहनने वाला यह बादल विष्णु के समान उमड़ रहा है।।३।।

टीका— केशवस्य = विष्णोः गात्रम् = शरीरम् इव श्यामः = नीलः; कुटिला = वक्रा बलाकावली = वकपंक्तिसमूहः बकपंक्तिः सा एव रचितः = ध तः शंखः येन तथोक्तः विद्युदः = तडिदः एव गुणाः = तन्तवः तेषां कौशेयं यस्य सः यथोक्तः अथवा विद्युद्गुणः = विद्युल्लेखा एवं कौशेयं यस्य सः तथोक्तः; मेघः = जलदः; चक्रधरः = विष्णुः इव; उन्नतः = उद्गतः।।३।।

यहाँ पर उपमा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है—आर्या।

एता निषिक्तरजतद्रवसंनिकाशा।
धारा जवेन पतिता जलदोदरेभ्यः।
विद्युत्प्रदीपशिखया क्षणद ष्टनष्टा-
श्छिन्ना इवाम्बरपटस्य दशाः पतन्ति।।४।।

अन्वयः— निषिक्तरजतद्रवसंनिकाशाः, जलदोदरेभ्यः, जवेन, पतिताः, विद्युत्प्रदीपशिखयाक्षणद ष्टनष्टाः, एताः, धाराः, अम्बरपटस्य, छिन्नाः, दशाः, इव, पतन्ति।।४।।

शब्दार्थः— निषिक्तरजतद्रवसंनिकाशाः = छिड़के हुए चांदी के द्रव जैसी, जलदोदरेभ्यः = बादलों के उदर से, जवेन = वेग से, पतिताः = गिरती हुई, विद्युत्प्रदीपशिखया = बिजली रूपी दीपक की लौ के कारण, क्षणद ष्टनष्टाः = क्षणभर के लिए दिखलायी पड़कर अद श्य हो जाने वाली, एताः = ये, धाराः = धाराएँ, अम्बरपटस्य = आकाशरूपी कपड़े के, छिन्नाः = टूटे हुए, दशाः = छोर (के), इव = समान, पतन्ति = गिर रही हैं।।

अर्थः— छिड़के हुए चाँदी के द्रव जैसी, बादलों के उदर से वेग के साथ गिरती हुई बिजली रूपी दीपक की लौ के कारण क्षण भर के लिये दिखलायी पड़कर अद श्य हो जाने वाली, ये जल की धाराएँ आकाश रूपी कपड़े के टूटे हुए छोर के समान गिर रही हैं अर्थात् ये धाराएँ ऐसी मालूम पड़ती हैं मानो आकाश रूपी फटे कपड़े के सूत गिर रहे हों।।४।।

टीका— निषिक्ताः = क्षरिताः ये रजतस्य द्रवाः तेषां संन्निकाशाः = तुल्याः, रजत-द्रववत् धवलाः इति यावत्; जलदोदरेभ्यः = मेघजठरेभ्यः; जवेन = वेगेन; पतिताः = भ्रष्टाः; विद्युदेव = तडिदेव दीपशिखा = प्रदीपार्चिः तया; क्षणं = चिचित्कालमित्यर्थः द ष्टाः = दर्शनं गताः ततः नष्टाः = अदर्शनं गताः; एताः = अवलोक्यमानाः; धारा = जलधारा; अम्बरमेव = आकाशमेव पटं = वस्त्रं तस्य; दशाः = प्रान्तभागाः; इव पतन्ति = क्षरन्ति।।४।।

इस श्लोक में रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।

संसक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव
व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितैः।
तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः
पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना।।५।।

अन्वयः— संसक्तैः, चक्रवाकमिथुनै, इव; प्रडीनैः, हंसैः, इव; व्याविद्धैः, मीनचक्रमकरैः, इव; प्रोच्छ्रितैः, हर्म्यैः, इव; तैः, तैः, आकृतिविस्तरैः, वायुना, विश्लेषितैः, अनुगतैः, समुन्नतैः, मेघैः; इह, गगनं, पत्रच्छेद्यम्, इव, भाति।।५।।

शब्दार्थः— संसक्तैः = आपस में मिले हुए, चक्रवाकमिथुनैः = चकई-चकवा के जोड़ों के, इव = समान; प्रडीनैः = उड़ते हुए, हंसैः = हंसों के इव = समान; व्याविद्धैः = इधर-उधर फेंके गये, मीनचक्रमिथुनैः = मछलियों के झुण्ड तथा मकरों के, इव = तुल्य; प्रोच्छ्रितैः = अत्यन्त ऊँचे, हर्म्यैः = महलों के इव = समान तैः तैः = उन-उन, आकृतिविस्तरैः = आकार से फैलने वाले; वायुना = हवा से, विश्लेषितैः = छिन्न-भिन्न, अनुगतैः = एक दूसरे के पीछे चलने वाले, मेघैः = बादलों के द्वारा, इह = यहाँ, गगनम् = आकाश, पत्रच्छेद्यम् = चित्र की, इव = भाँति, भाति = सुशोभित हो रहा है।

अर्थः— आपस में मिले हुए चक्रवाक के जोड़ों के समान, उड़ते हुए हंसों की भाँति, फेंके हुए मछलियों के झुण्ड तथा मगरों की तरह, ऊँचे-ऊँचे महलों जैसे, भिन्न-भिन्न आकार से फैलने वाले; हवा की झोंकों से छिन्न-भिन्न, एक दूसरों के पीछे चलने वाले, उमड़ते हुए बादल के द्वारा यहाँ आकाश चित्र की भाँति सुशोभित हो रहा है।।५।।

टीका— (क्वचित्) संसक्तैः; = संगतैः चक्रवाकमिथुनैः = कोकयुगलैः इव; (क्वचित्) प्रडीनैः = उड्डीनैः हंसैः = मरालैः इव; (क्वचित्) व्याविद्धैः = प्रक्षिप्तैः भ्रान्तैः वा; मीनचक्रैः = मत्स्यसमूहैः; मकरैः = हिंस्रै; जलजन्तुविशेषैश्च इव; प्रोच्छ्रितैः = अभ्युन्नतैः; हर्म्यैः = प्रासादैः इव; इत्थं तैः तैः = ताद शैः इत्यर्थः, आकृतिभिः = आकारैः विस्तरैः = विस्त तैः बहुलैः वा; वायुना = पवनेन पवनवेगेनेतिभावः; विश्लेषितैः = भेदं प्रापितैः इतस्ततः चालितैः वा; अनुगतैः = युक्तैः, समभ्युन्नतैः = अत्युन्नतैः; मेघैः = जलदैः, इह = अस्मिन् स्थाने, गगनम् = नभः; पत्रच्छेद्यं = चित्रम् इव; भाति = राजते।।५।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।५।।

एतत्तद्ध तराष्ट्रवक्त्रसद शं मेघान्धकारं नभो
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधनो वा शिखी।
अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसाः संप्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्यां गताः।।६।।

अन्वयः— मेघान्धकारम्, एतत्, नभः, तद्ध तराष्ट्रवक्त्रसद शं, (वर्तते); अतिदर्पितबलः, शिखी, दुर्योधनः, वा, हृष्टः, (सन्), गर्जति; कोकिलः, अक्षद्यूतजितः, युधिष्ठिरः, इव, अध्वानं, गतः, सम्प्रति, हंसाः, पाण्डवा, इव, वनात्, अज्ञातचर्यां, गताः।।६।।

शब्दार्थः— मेघान्धकारकम् = बादलों के कारण अँधेरा, एतत् = यह, नभः = आकाश, तद्ध तराष्ट्रवक्त्रसद शं = उस ध तराष्ट्र के मुख के समान, (वर्तते = है); अतिदर्पितबलः = घमण्डको सूचित कर रहा है रूप जिसका ऐसा (दुर्योधन के पक्ष में अत्यन्त अभिमानी सेना वाला) शिखी = मोर, दुर्योधनः = दुर्योधन की, इव = तरह, हृष्टः = प्रसन्न (सन् = होता हुआ), गर्जति = गरज रहा है। कोकिलः = कोयल, अक्षद्यूतजितः = पाँसे के द्वारा जुए में हारे हुए, युधिष्ठिरः इव = युधिष्ठिर के समान, अध्वानं = मौन को (युधिष्ठिर के पक्ष में = वन मार्ग को) प्राप्त हो गई है। सम्प्रति = इस समय, हंसाः = हंस, पाण्डवाः = पाण्डवों (की), इव = भाँति, वनात् = वन (हंस के पक्ष में बनवास) से अज्ञातचर्याम् = अज्ञात वास को, गताः = चले गये।।

(आगे के इस श्लोक में दुर्योधन के राज्य तथा वर्षाकाल की अवस्था का एक साथ ही वर्णन किया गया है)-

अर्थः— बादलों के कारण अँधेरा यह आकाश उस ध तराष्ट्र के मुख के समान है (ध तराष्ट्र का मुँह भी आँखों के न होने से अन्धकार पूर्ण था और आकाश की भी सूर्य-चन्द्रमा रूपी दोनों आँखें बादलों में नष्ट हो गयी हैं)। अत्यन्त अभिमानी सेना है जिसकी ऐसे प्रसन्न दुर्योधन की भाँति घमण्ड को सूचित कर रहा है रूप जिसका ऐसा मोर प्रसन्न होकर गरज रहा है। कोयल पाँसे के द्वारा जुए में हारे हुए युधिष्ठिर के समान मौन (युधिष्ठिर के पक्ष में-'अध्वान' के माने वन मार्ग) को प्राप्त हो गयी है। इस समय हंस पाण्डवों के समान वन (हंसों के पक्ष में जल और पाण्डवों के पक्ष में-वनवास) से अज्ञातवास (अर्थात् मानसरोवर) को चले गये हैं।।६।।

टीका— मेघैः = जलदैः अन्धकारः = ध्वान्तं यत्र तत्; एतत् = परिद श्यमानम्;-नभः = गगनम्, तस्य = प्रसिद्धस्य ध तराष्ट्रस्य = दुर्योधनपितुः वक्त्रसद शम् = मुखतुल्यम्; वर्तते इति शेषः। ध तराष्ट्रमुखं नेत्रशून्यम् अतः अन्धकारपूर्णमासीत्। गगनमपि चन्द्रसूर्यादर्शनात् तमसाच्छन्नमस्तीति भावः। अतिदर्पितम्ः = अतिगर्वप्रकाशकं बलं = रूपं यस्य सः, अथवा अतिदर्पितं बलं = शक्तिः यस्य सः, मेघालोके शिखिनः प्रसन्नाः बलशालिनश्च भवन्ति, अति दर्पितम् = अत्यन्तगर्वसमन्वितं बलं = सैन्यं यस्य असौ, दुर्योधनः वा = इव; हृष्टः = प्रसन्नः सन्; गर्जति = मुहुः मुहुः शब्दं करोति। कोलिलः = पिकः; अक्षद्यूते = पाशक्रीडायां जितः = पराजितः युधिष्ठिरः = पाण्डवाग्रजः इव; अध्वानं = मौनं (युधिष्ठिरपक्षे-अध्वानं = वनपन्थानम्), गतः = प्राप्तः। सम्प्रति = अधुना; हंसाः = मरालाः; पाण्डवाः = पाण्डुपुत्राः इव; वनात्-जलात्, (पाण्डवपक्षे-वनवासात्) अज्ञातचर्याम् = अज्ञातवासम्; गताः = प्राप्ताः।

यहाँ पर उपमा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।६।।

(विचिन्त्य) चिरं खलु कालो मैत्रेयस्य वसन्तसेनायाः सकाशं गतस्य। नाद्याप्यागच्छति।

(प्रविश्य)

विदूषकः—अहो गणिआए लोभो अदक्खिण्दा अ, जदो ण कधा वि किदा अण्णा। अणेकहा सिणेहाणुसारं भणिअ किं पि, एवमेअ गहिदा रअणावली। एत्तिआए ऋद्धीए ण तए अहं भणिदो-'अज्जमित्तेअ! वीसमीअदु। मल्लकेण पाणीअं पि पिबिअ गच्छीअदु' ति। ता मा दाव दासीए धीआए गणिआए मुहं पि पेक्खिस्सं। (सनिर्वेदम्) सुट्ठु खु वुच्चदि-'अकंदसमुत्थिदा पउमिणी, अवंचओ वाणिओ, अचोरो सुवण्णआरो, अकलहो गामसमागमो, अकुद्धा गणिआ त्ति दुक्करं एदे संभावीअंति'। ता पिअवअस्सं गदुअ इमादो गणिआपसंगादो णिवत्तावेमि। (परिक्रम्य, द ष्ट्वा) कधं पिअवअस्सो रुक्खवाडिआए उपविट्टो चिट्टदि? ता जाव उवसप्पामि। (उपस त्य) सोत्थि भवदे। वड्ढदु भवं। (अहो गणिकाया लोभो दक्षिणता च। यतो न कथापि कृता न्या। अनेकधा स्नेहानुसारं भणित्वा किमपि, एवमेव ग हीता रत्नावली। एतावत्या ऋद्ध्या न तयाहं भणितः-'आर्यमैत्रेय! विश्रम्यताम्, मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यताम्' इति। तन्मा तावद्दास्याःपुत्र्या गणिकाया मुखमपि द्रक्ष्यामि। सुष्ठु खलूच्यते 'अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी, अव चको वणिक्, अचौरः सुवर्णकारः, अकलहो ग्रामसमागमः, अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते संभाव्यन्ते। तत्प्रियवयस्यं गत्वास्माद्गणिकाप्रसंगान्निवर्तयामि। कथं प्रियवयस्यो व क्षवाटिकायामुपविष्टस्तिष्ठति?। तद्यावदुपसर्पामि। स्वस्ति भवते। वर्धतां भवान्।)

चारुदत्तः— (विलोक्य) अये, सुहृन्मे मैत्रेयः प्राप्तः। वयस्य! स्वागतम्, आस्यताम्।

विदूषकः— उवविट्टो म्हि। (उपविष्टो स्मि।)

चारुदत्तः— वयस्य! कथय तत्कार्यम्।

विदूषकः— तं खु कज्जं विणट्टं। (तत्खलु कार्यं विनष्टम्।)

चारुदत्तः— किं तया न ग हीता रत्नावली?।

विदूषकः— कुदो अम्हॉणं एत्तिअं भाअधेअं?। णवणलिणकोमलं अंजलिं मत्थए कदुअ पडिच्छिआ। (कुतो स्माकमेतावद्भागधेयम्?। नवनलिनकोमलम जलिं मस्तके कृत्वा प्रतीष्टा।)

चारुदत्तः— तत्किं ब्रवीषि विनष्टमिति?।

विदूषकः— भो! कधं ण विणट्टं? जं अभुत्तपीदस्स चोरेहिं अवहिदस्स अप्पमुल्लस्य सुवण्णभंडअस्स कारणादो चतुस्समुद्दसारभूदा रअणमाला हारिदा। (भोः! कथं न विनष्टम्? यदभुक्तपोतस्य चोरैरपहृतस्याल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डस्य कारणाच्चतुःसमुद्रसारभूता रत्नमाला हारिता।)

चारुदत्तः— वयस्य! मा मैवम्;

यं समालम्ब्य विश्वासं न्यासो स्मासु तया कृतः।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्यैव दीयते।।७।।

(प्रवेश करके)

अर्थः—

विदूषकः—अहो! वेश्या वसन्तसेना का लालच और अनुदारता। क्योंकि दूसरी कोई बात तक न की। प्रेम-भरी बहुत सी इधर-उधर की बातें करके ऐसे ही रत्नावली ले ली। इतना धन रहने पर भी उसने मुझसे कहा तक नहीं कि-'आर्य मैत्रेय! आराम कीजिए। मल्लक (एक प्रकार का वर्तन) से पानी तो पीकर जाइये।' तो दासी की लड़की इस वेश्या वसन्तसेना का मुँह भी कभी नहीं देखूँगा। (खेद के साथ) ठीक ही कहा जाता है-'बिना जड़ के उगी हुई कमल-लता, न ठगने वाला बनियाँ, न चुराने वाला सुनार, बिना झगड़ा वाला ग्राम-सम्मेलन, लोभ न करने वाली वेश्या, इनकी उम्मीद करना मुश्किल है अर्थात् इनका मिलना मुश्किल है। तो चलकर प्रिय मित्र चारुदत्त को वेश्या के इस साथ से अलग करता हूँ। (घूमकर और देखकर) क्या प्रिय मित्र बगीचे में बैठे हुए हैं? तो उनके पास चलता हूँ। (पास जाकर) आपका कल्याण हो। आप बढ़ें।

चारुदत्त— (देखकर) अरे! मेरे मित्र मैत्रेय आ गये। मित्र! स्वागत है। बैठिये।

विदूषक — बैठ गया हूँ।

चारुदत्त— मित्र! उस काम को बतलाओ।

विदूषक — वह काम तो बिगड़ गया।

चारुदत्त— क्या उसने रत्नावली नहीं ली?

विदूषक — हम लोगों का इतना भाग्य कहाँ? नये कमल के समान कोमल अंजलि मस्तक पर करके उसने रत्नावली ले ली।

चारुदत्त— तब क्यों कहते हैं-कि बिगड़ गया।

विदूषक— अजी। क्यों नहीं बिगड़ गया? जो न खाये-पीये गये, चोरों द्वारा चुराये गये, कम कीमत वाले सोने के कारण चारों समुद्रों की साररूप रत्नावली को खो दिया।

अन्वयः— तया, यं, विश्वासं, समालम्ब्य, अस्मासु, न्यासः, कृतः, तस्य, महतः, प्रत्ययस्य, एव, एतत्, मूल्यं, प्रदीयते।।७।।

शब्दार्थः— तया = उस वसन्तसेना के द्वारा, यं = जिस, विश्वासं = विश्वासको, समालम्ब्य = पकड़कर, अस्मासु = हम लोगों में, अर्थात् हम लोगों के पास, न्यासः = धरोहर, कृतः = की गयी, रक्खी गयी, तस्य = उस, महतः = बहुत बड़े, प्रत्ययस्य = विश्वास की, एव = ही, एतत् = यह, मूल्यं = कीमत, प्रदीयते = दी जा रही है, चुकायी जा रही है।

अर्थः— **चारुदत्त—** मित्र! ऐसी बात मत कहो।

उसने जिस विश्वास के भरोसे हमारे पास धरोहर रक्खी, उस बहुत बड़े विश्वास की ही यह कीमत चुकायी जा रही है।।७।।

टीका— तया = वेश्या वसन्तसेनया इत्यर्थः; यं विश्वासं = प्रत्ययम्; समालम्ब्य = आश्रित्य; अस्मासु = सुद ढप्रीतिहीनेषु वा इति भावः; न्यासः = निक्षेपः; कृतः = विहितः; तस्य = पूर्वकृतस्य; महतः = विशालस्य, अगाधस्य इत्यर्थः; प्रत्ययस्य = विश्वासस्य; एव एतत् = रत्नावलीस्वरूपम्; मूल्यं = निष्क्रयः; प्रदीयते = समर्प्यते।।७।।

इस श्लोक में अतिश्योक्ति अलंकार एवं अनुष्टुप् छन्द है।

विदूषकः—भो वअस्स! एदं पि मे दुदिअं संदावकारणं जं सहीअणदिण्णसण्णाए पडंतोवारिदं मुहं कदुअ अहं उवहसिदो। ता अहं बम्हणो भविअ दाणिं भवंतं सीसेण पडिअ विण्णवेहिम-'णिवत्तीअदु अप्पा इमादो बहुपच्चवाआदो गणिआपसंगादो'। गणिआ णाम पादुअंतरप्पविट्टा विअ लेठ्ठुआ दुक्खेण उण णिराकरीअदि। अवि अ, भो वअस्स! गणिआ हत्थी काअत्थओ भिक्खु चाटो रासहो अ जहिं एदे णिवसंति तहिं दुट्टा वि ण जाअंति। (भो वयस्य! एतदपि मे द्वितीयं संतापकारणं यत्सखीजनदत्तसंज्ञया पटान्तापवारितं मुखं कृत्वा हमुपहसितः। तदहं ब्राह्मणो भूत्वेदानीं भवन्तं शीर्षेण पतित्वा विज्ञापयामि-'निवर्त्यतामात्मास्माद्बहुप्रत्यवायाद्गणिकाप्रसंगात्'। गणिका नाम पादुकान्तरप्रविष्टेव लेष्टुका दुःखेन पुनर्निराक्रियते। अपि च, भो वयस्य! गणिका, हस्ती, कायस्थो भिक्षुः, चाटो राजभश्च यत्रैते निवसन्ति तत्र दुष्टा अपि न जायन्ते।)

चारुदत्तः— वयस्य! अलमिदानीं सर्वं परिवादमुक्त्वा। अवस्थयैवास्मि निवारितः। पश्य;

वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति।।८।।

अर्थः—

विदूषक— हे मित्र! मेरे सन्ताप का दूसरा कारण यह भी है कि अपनी सखियों को इशारा करके, आँचल से मुँह ढककर उसने वसन्तसेना ने मेरी हँसी की। तो मैं ब्राह्मण होकर (भी आपके पैरों पर) शिर रखकर विनती करता हूँ....'आप अपने को बहुत सी कठिनाइयों से भरे हुए,

वेश्या के इस संग से हटा लें।' वेश्या तो जूते के भीतर घुसी हुई कंकड़ी के समान बाद में दुःख से निकाली जाती है।

और भी, हे मित्र!

वेश्या, हाथी, कायस्थ, भिखारी, धूर्त, गधा, जहाँ ये सब निवास करते हैं वहाँ पर दुष्ट भी नहीं रहते हैं (सज्जनों का तो कहना ही क्या?)।

चारुदत्त— मित्र! इस समय इस सब निन्दा को कहना व्यर्थ है। हालत के द्वारा ही (वेश्या के संग से) रोक दिया गया हूँ। देखो...

अन्वयः— तुरगः, त्वरितं, प्रयातुं, वेगं, करोति; तु, प्राणव्ययात्, (तस्य), चरणाः, तथा, न, वहन्ति; (इत्थं), पुरुषस्य, चलाः, स्वभावाः, सर्वत्र, यान्ति (किन्तु), ततः, खिन्नाः, पुनः, हृदयम्, एव, विशन्ति।।८।।

शब्दार्थः— तुरगः = घोड़ा, त्वरितं = जल्दी, प्रयातुं = जाने के लिये, वेगं = वेग को, करोति = करता है; तु = किन्तु, प्राणव्ययात् = निर्बलता के कारण (तस्य = उसके), चरणाः = पैर; तथा = उस प्रकार, न वहन्ति = नहीं ढोते हैं, नहीं चलते है; (इत्थम् = इसी प्रकार), पुरुषस्य = पुरुष के, चलाः = चंचल, स्वभावाः = स्वभाव, सर्वत्र = चारों ओर, यान्ति = जाते हैं, (किन्तु), ततः = वहाँ से, खिन्नाः = उदास होकर, पुनः = फिर, हृदय में ही, विशन्ति = घुस जाते हैं, लौट जाते हैं।

अर्थः— घोड़ा जल्दी जाने के लिये वेग करता है। किन्तु कमजोरी के कारण पैर उस प्रकार नहीं चलते हैं। (इसी प्रकार) पुरुष के चंचल स्वभाव अर्थात् मनोरथ चारों ओर जाते हैं, किन्तु (सफलता न मिलने पर) उदास होकर फिर हृदय में ही लौट आते हैं अर्थात् गरीब की सारी इच्छाएँ धन के बिना उसके मन में ही सड़ जाती हैं। इसी तरह वसन्तसेना को पाने की मेरी भी इच्छा मन में ही रह जा रही है)।।८।।

टीका— तुरगः = अश्वः; त्वरितं = सत्वरम्; प्रयातुं = गन्तुम्; वेगं = जवम्; करोति = विदधाति; तु = किन्तु; प्राणव्ययात् = बलक्षयात्, निर्बलतया इत्यर्थः; तस्य चरणाः = पादाः; तथा = तेन प्रकारेण, वेगेन इत्यर्थः; न वहन्ति = न चलन्ति; (इत्थम् = अनेनैव प्रकारेण), पुरुषस्य = निर्धनजनस्य इत्यर्थः; चलाः = चपलाः; स्वभावाः = प्रकृतयः; मनोरथाः इत्यर्थः; सर्वत्र = सर्वासु दिक्षुः; अर्थात् सर्वविषयेषु; यान्ति = व्रजन्ति; किन्तु ततः = तस्मात् खिन्नाः = दुःखिताः असफलतयेति भावः; पुनः = मुहुः; हृदयमेव = चेतः एव; विशन्ति = विलीयन्ते।।७।।

इस श्लोक में द ष्टान्त अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।८।।

अपि च, वयस्य!

यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता धनहार्यो ह्यसौ जनः।
(स्वगतम्) न गुणहार्यो ह्यसौ जनः। (प्रकाशम्)
वयमर्थैः परित्यक्ता ननु त्यक्तैव सा मया।।६।।

अन्वयः— यस्य, अर्थाः, (सन्ति), तस्य, सा, कान्ता, (अस्ति), हि, असौ, जनः, धनहार्यः, (अस्ति), वयं, अर्थैः, परित्यक्ताः, (अतः), ननु, सा, मया, त्यक्ता, एव।।६।।

शब्दार्थः— यस्य = जिसके, अर्थाः = धन, (सन्ति = हैं), तस्य = उसकी; सा = वह, कान्ता = प्रिया, (अस्ति = है), हि = क्योंकि, असौ = यह, जनः = जन, धनहार्यः = धन के द्वारा वश में करने के लायक, (अस्ति = है), वयं = हम लोग, अर्थैः = धन के द्वारा, परित्यक्ताः = छोड़

दिये गये (हैं), (अतः = इसलिये), ननु = अवश्य ही, सा = वह, मया = मेरे द्वारा, त्यक्ता = छोड़ी गयी, एव = ही (है)।।

अर्थः–

और भी मित्र!

जिस आदमी के पास धन है उसी की वह वसन्तसेना प्रिया है। क्योंकि यह जन (वेश्या वसन्तसेना) धन के द्वारा ही वश में करने के लायक है अर्थात् वश में होती है)।

(अपने आप) नहीं, यह जन वसन्तसेना गुणों के द्वारा वश में करने लायक है।

(स्पष्ट रूप में) धन ने हम लोगों को छोड़ दिया है। इस लिये मेरे द्वारा तो वह वसन्तसेना छोड़ ही दी गयी है।।६।।

टीका– यस्य = जनस्य; अर्थाः = धनानि; सन्तीति शेषः; तस्य = जनस्य, धनवतः इत्यर्थः; सा = वसन्तसेना; कान्ता = प्रिया अस्ति। हि = यतः; असौ जनः = वेश्या वसन्तसेना इत्यर्थः; धनेन = वित्तेन हार्यः = वशीकर्तुं योग्यः अस्ति; वयम् अर्थैः = धनैः; परित्यक्ताः = विरहिताः; अतः ननु = निश्चयमेव; सा = वसन्तसेना; मया = चारुदत्तेन; त्यक्ता = परित्यक्ता।।६।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-अनुष्टुप्।

विदूषकः–(अधो वलोक्य, स्वगतम्) जधा एसो उद्धं पेक्खिअ दीहं णिस्ससदि, तधा तक्केमि मए विणिवारिअंतस्स अधिअदरं वड्ढिदा से उक्कंठा। ता सुट्ठ खु एव्वं वुच्चदि-'कामो वामो' त्ति। (प्रकाशम्) भो वअस्स! भणिदं अ ताए-'भणेहि चारुदत्तं-अज्ज पओसे मए एत्थ आअंतव्वं' त्ति। ता तक्केमि रअणावलीए अपरितुट्टा अवरं मग्गिदं आअमिस्सदि त्ति। (यथैष ऊर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वसिति, तथा तर्कयामि मया विनिवार्य्यमाणस्याधिकतरं व द्धास्योत्कण्ठा। तत्सुष्ठु खल्वेवमुच्यते-'कामो वामः' इति। भो वयस्य! भणितं च तया-'भण चारुदत्तम्-अद्य प्रदोषे मयात्रागन्तव्यम्' इति। तत्तर्कयामि रत्नावल्या अपरितुष्टा परं याचितुमागमिष्यतीति।

चारुदत्तः–वयस्य! आगच्छतु, परितुष्टा यास्यति।

चेट– (प्रविश्य) अवेध माणहे। (अवेत मानवाः)।

जधा जधा वश्शदि अब्भखंडे तधा तधा तिम्मदि पुट्ठिचम्मे।
जधा जधा लग्गदि शीदवादे तधा तधा वेवदि मे हलक्के।।१०।।

यथा यथा वर्षत्यभ्रखण्डं तथा तथा तिम्यति प ष्ठचर्म।
यथा यथा लगति शीतवातस्तथा तथा वेपते मे हृदयम्।।

अर्थः–

विदूषक– (नीचे की ओर देखकर अपने आप) यह जिस प्रकार ऊपर की ओर देखकर लम्बी आहें भर रहे हैं, इससे मैं अनुमान करता हूँ कि मेरे द्वारा रोके गये इनकी उत्कण्ठा और भी अधिक बढ़ गयी है। तो यह ठीक ही कहा जाता है कि-''काम उलटा होता है'' (प्रकट रूप में) हे मित्र! और उसने कहा है कि-''चारुदत्त से कहना- आज सायंकाल (प्रदोष) में मुझे यहाँ (चारुदत्त के घर) आना है।'' तो मैं अनुमान करता हूँ कि रत्नावली से सन्तुष्ट न हुई वह कुछ और माँगने आयेगी।

चारुदत्त— मित्र! आवे। सन्तुष्ट होकर जायगी।

अन्वयः— यथा, यथा, अभ्रखण्डं, वर्षति, तथा, तथा, प ष्ठचर्म, तिम्यति, यथा, यथा, शीतवातः, लगति, तथा, तथा, मे हृदयं, वेपते।।१०।।

शब्दार्थः— यथा = जैसे, यथा = जैसे, अभ्रखण्डं = बादलों का टुकड़ा, वर्षति = बरस रहा है, तथा = वैसे, तथा = वैसे, प ष्टचर्म = पीठ का चमड़ा, तिम्यति = गीला हो रहा है, यथा = जैसे, यथा = जैसे, शीतवातः = ठण्डी हवा, लगति = लग रही है, तथा = वैसे, तथा = वैसे, मे = मेरा, हृदयम् = हृदय, कलेजा, वेपते = काँप रहा है।।

अर्थः—

चेट— (प्रवेश करके) मनुष्यों! समझो (कि)

जैसे जैसे बादलों का टुकड़ा बरस रहा है, वैसे वैसे पीठ का चमड़ा भीग रहा है। जैसे जैसे ठण्डी हवा लग रही है, वैसे वैसे मेरा हृदय काँप रहा है।।१०।।

टीका— यथा यथा अभ्रखण्डं = जलदशकलम्; वर्षति = जलं मु चति; तथा तथा प ष्ठचर्म = पश्चाद्भागः इत्यर्थः, तिम्यति = आर्द्रीभवति, यथा यथा शीतवातः = शीतलवायुः, लगति = शरीरस्पर्शं करोति, तथा तथा मे = मम चेष्टस्य इत्यर्थः, हृदयं = गात्रम्, वेपते = कम्पते।।१०।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-उपेन्द्रवज्रा। लक्षण-'उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।।१०।।

(प्रहस्य)

वंशं वाए शतच्छिद्दं शुशद्दं
वीण वाए शत्ततंतिं णदंतिं।
गीअं गाए गद्दहश्शाणुलूअं के
मे गाणे तुंबुलू णालदे वा।।११।।

वंशं वादयामि सप्तच्छिद्रं सुशब्दं
वीणां वादयामि सप्ततन्त्रीं नदन्तीम्।
गीतं गायामि गर्दभस्यानुरूपं
को मे गाने तुम्बुरुर्नारदो वा।।

अन्वयः— सप्तछिद्रं = सात छेदों वाली, सुशब्दं = सुन्दर शब्द वाली, वंशं = बाँसुरी को, वादयामि = बजाता हूँ। सप्ततन्त्रीं = सात तातों वाली, नदन्तीं = झंकार करती हुई, वीणां = वीणा को, वादयामि = बजाता हूँ। गर्दभस्य = गधा के, अनुरूपं = समान, गीतं = गीत को, गायामि = गाता हूँ, मे = मेरे, गाने = गाने में अर्थात् गाने के समान् तुम्बुरुः = तुम्बुरु नामक गन्धर्व, वा = अथवा, नारदः = नारद मुनि, कः = कौन (है)?।

(हँस कर)

अर्थः— सात छेदों वाली तथा सुन्दर शब्द वाली बाँसुरी बजाता हूँ। सात तारों वाली झंकार करती हुई वीणा बजाता हूँ। गधे के समान गाना गाता हूँ। मेरे गाने पर तुम्बुरु और नारद कौन हैं? अर्थात् मेरे गाने के सामने वे लोग भी कुछ नहीं हैं)।।११।।

टीका— सप्त छिद्राणि = बिलानि यस्मिन् तम्, सु = शोभनः शब्दः = ध्वनिः यस्य तं, वंशं-वेणुं, वादयामि = ध्वनितं करोमि। सप्ततन्त्र्यः = तन्तवः इत्यर्थः यस्यास्ताम्, नदन्तीम् = शब्दायमानां वीणा च वादयामि। गर्दभस्य = रासभस्य, अनुरूपं = योग्यं, गीतं = गानं, गायामि = करोमि इत्यर्थः। मे = मम, चेटस्य इत्यर्थः, गाने = गीताराधने, तुम्बुरुः = गानविद्याविशारदः एकः गन्धर्वः, वा = अथवा, नारदः कः? = कीद क् गुणयुक्तः? तुच्छः इत्यर्थः।।११।।

व्यतिरेक अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-उपजाति।।११।।

आणत्तम्हि अज्जआए वशंतशेणाए-'कुंभीलआ! गच्छ तुमं, मम आगमणं अज्जचारु दत्तश्श णिवेदेहि' त्ति। ता जाव अज्जचारुदत्तश्श गेहं गच्छामि। (परिक्रम्य, प्रविष्टकेन द ष्ट्वा) एशे चालुदत्ते रुक्यवाडिआए चिट्ठदि। एशे वि शे दुष्ट्टवडुके; ता जाव उपशप्पेमि। कधं ढक्किदे दुवाले रुक्खवाडिआए?। भोदु, एदश्श दुट्टवडुकश्श शण्णं देमि। (अवेत मानवाः! आज्ञप्तो स्म्यार्यया वसन्तसेनया-'कुम्भीलक! गच्छ त्वम्। ममागमनमार्यचारुदत्तस्य निवेदय' इति। तद्यावदार्यचारुदत्तस्य गेहं गच्छामि। एष चारुदत्तो व क्षवाटिकायां तिष्ठति। एषो पि स दुष्टबटुकः, तद्यावदुपसर्पामि। कथमाच्छादितं द्वारं व क्षवाटिकायाः। भवतु, एतस्य दुष्टबटुकस्य संज्ञां ददामि।)

(इति लोष्टगुटिकाः क्षिपति)

विदूषकः—अए, को दाणिं एसो पाआरवेट्टिदं विअ कइत्थं मं लोट्टकेहिं ताडेदि?। (अये! क इदानीमेष प्राकारवेष्टितमिव कपित्थं मां लोष्टकैस्ताडयति?।)

चारुदत्तः—आरामप्रासादवेदिकायां क्रीडद्भिः पारावतैः पातितं भवेत्।

विदूषकः—दासीए पुत्त दुट्टपारावआ! चिट्ठ चिट्ठ। जाव एदिणा दंडकट्ठेण सुपक्कं विअ चूअफलं इमादो पासादादो भूमिए पाडइस्सं। (दास्याः पुत्र दुष्टपारावत! तिष्ठ तिष्ठ यावदेतेन दण्डकाष्ठेन सुपक्कमिव चूतफलमस्मात्प्रासादाद्भूमौ पातयिष्यामि।)

(इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य धावति)

चारुदत्तः—(यज्ञोपवीतं आकृष्य) वयस्य! उपविश। किमनेन?। तिष्ठतु दयितासहितस्तपस्वी पारावतः।

चेट— कधं पारावदं पेक्खदि, मं ण पेक्खदि?। भोदु, अवराए लोट्टगुडिकाए पुणो वि ताडइस्सं। (कथं पारावतं पश्यति, मां न पश्यति? भवतु, अपरया लोष्टगुटिकया पुनरपि ताडयिष्यामि।) (तथा करोति)

विदूषकः—(दिशो वलोक्य) कधं कुंभीलओ?। ता जाव उवसप्पामि। (उपस त्य, द्वारमुद्घाट्य) अरे कुंभीलआ! पविश; साअदं दे। (कथं कुम्भीलकः? तद्यावदुपसर्पामि। अरे कुम्भीलक! प्रविश; स्वागतं ते।)

चेटः — (प्रविश्य) अज्ज! वंदामि। (आर्य! वन्दे।)

विदूषकः—अरे, कहिं तुमं ईदिसे दुहिणे अंधआरे आअदो?। (अरे, कुत्र त्वमीद शे दुर्दिने न्धकार आगतः?।)

चेटः— अले, एशा शा। (अरे, एषा सा।)

विदूषकः—का एसा का?। (कैषा का?।)

चेटः— एशा शा। (एषा सा।)

विदूषकः—किं दाणिं दासीए पुत्ता! दुब्भिक्खकाले वुड्ढरंको विअ उद्धकं सासाअसि-'एसा सा से' त्ति?। (किमिदानीं दास्याः-पुत्र! दुर्भिक्षकाले व द्धरंक इवोर्ध्वकं श्वासायसे 'एषा सा सा' इति?)

चेटः — अले, तुमं पि दाणिं इंदमहकामुको विअ सुट्ठु किं काकाअसि-'का के' त्ति?। (अरे त्वमपीदानीमिन्द्रमहकामुक इव सुष्ठु किं काकायसे-'का का' इति?।)

विदूषकः—ता कहेहि। (तत्कथय।)

चेटः — (स्वगतम्) भोदु एव्वं भणिशं। (प्रकाशम्) अले, पण्हं दे दइश्शं। (भवतु, एवं भणिष्यामि। अरे, प्रश्नं ते दास्यामि।)

विदूषकः—अहं दे मुंडे गोड्डं दइस्सं। (अहं ते मस्तके पादं दास्यामि।)

चेटः— अले, जाणाहि दाव, तेण हि कश्शिं काले चूआ मालेंति। (अरे, जानीहि तावत्; तेन हि कस्मिन्काले चूता मुकुलिता भवन्ति।)

विदूषकः—अरे दासीए पुत्ता! गिम्हे। (अरे दास्याःपुत्र! ग्रीष्मे।)

चेटः — (सहासम्) अले, णहि णहि। (अरे, नहि नहि।)

विदूषकः—(स्वगतम्) किं दाणिं एत्थ कहिस्सं?। (विचिन्त्य) भोदु, चारुदत्तं गदुअ पुच्छिस्सं। (प्रकाशम्) अरे, मुहुत्तअं चिट्ठ। (चारुदत्तमुपस त्य) भो वअस्स! पुच्छिस्सं दाव, कस्सिं काले चूआ मोलेंति?। (किमिदानीमत्र कथयिष्यामि?। भवतु, चारुदत्तं गत्वा प्रक्ष्यामि। अरे, मुहूर्तकं तिष्ठ। भो वयस्य! प्रक्ष्यामि तावत्, कस्मिन्काले चूता मुकुलिता भवन्ति?।)

चारुदत्तः—मूर्ख! वसन्ते।

विदूषकः—(चेटमुपगम्य) मुक्ख! वसंते। (मूर्ख! वसन्ते।)

चेटः— दुदिअं दे पण्हं दइश्शं। शुशमिद्धाणं गामाणं का लक्खअं कलेदि?। (द्वितीयं ते प्रश्नं दास्यामि। सुसम द्धानां ग्रामाणां का रक्षां करोति?।)

विदूषकः—अरे, रच्छा। (अरे, रथ्या।)

चेटः— (सहासम्) अले, णहि णहि। (अरे, नहि नहि।)

विदूषकः—भोदु, संसए पडिदम्हि। (विचिन्त्य) भोदु, चारुदत्तं पुणो वि पुच्छिस्सं। (भवतु, संशये पतितो स्मि। भवतु, चारुदत्तं पुनरपि प्रक्ष्यामि।)

(पुनर्निव त्य चारुदत्तं तथैवोदाहरति)

चारुदत्तः— वयस्य! सेना।

विदूषकः—(चेटमुपगम्य) अरे, दासीए पुत्ता! सेणा। (अरे दास्याःपुत्र! सेना।)

चेटः— अले दुवे वि एक्कश्शिं कदुअ शिग्घं भणाहि। (अरे, द्वे अप्येकस्मिन्कृत्वा शीघ्रं भण।)

विदूषकः—सेणावसंते। (सेनावसन्ते।)

चेटः— णं पलिवत्तिअ भणाहि। (ननु परिवर्त्य भण।)

विदूषकः—(कायेन परिव त्य) सेणावसंते। (सेनावसन्ते।)

चेटः— अले मुक्ख बडुका! पदाइं पलिवत्तावेहि। (अरे मूर्ख बटुक! पदे परिवर्तय।)

विदूषकः— (पादौ परिवर्त्य) सेणावसंते। (सेनावसन्ते।)

चेटः — अले मुक्ख! अक्खलपदाइं पलिवत्तावेहि। (अरे मूर्ख! अक्षरपदे परिवर्तय।)

विदूषकः— (विचिन्त्य) वसन्तसेणा। (वसन्तसेना।)

चेटः — एशा शा आअदा। (एषा सागता।)

विदूषकः— ता जाव चारुदत्तस्स णिवेदेमि। (उपस त्य) भो चारुदत्त! धणिओ दे आअदो। (तद्यावच्चारुदत्तस्य निवेदयामि। भो चारुदत्त! धनिकस्त आगतः।)

चारुदत्तः— कुतो स्मत्कुले धनिकः?।

विदूषकः— जइ कुले णत्थि, ता दुवारे अत्थि; एसा वसंतसेणा आअदा। (यदि कुले नास्ति, तद्वारे स्ति; एषा वसन्तसेनागता।)

चारुदत्तः— वसस्य! किं मां प्रतारयति?।

विदूषकः— जइ मे वअणे ण पत्तिआअसि, ता एदं कुंभीलअं पुच्छ। अरे दासीए पुत्ता कुंभीलअ! उपसप्प। (यदि मे वचने न प्रत्ययसे, तदिमं कुम्भीलकं प च्छ। अरे दास्याःपुत्र कुम्भीलक! उपसर्प।)

चेटः — (उपस त्य) अज्ज! वंदामि। (आर्य! वन्दे।)

चारुदत्तः—भद्र! स्वागतम्; कथय सत्यं प्राप्ता वसन्तसेना?।

चेटः — एशा शा आअदा वशंतसेणा। (एषा सागता वसन्तसेना।)

चारुदत्तः—(सहर्षम्) भद्र! न कदाचित्प्रियवचनं निष्फलीकृतं मया, तद्ग ह्यतां पारितोषिकम्।

(इत्युत्तरीयं प्रयच्छति)

चेटः— (ग हीत्वा प्रणम्य, सपरितोषम्) जाव अज्जआए णिवेदेमि। (यावदार्याया निवेदयामि।)

(इति निष्क्रान्तः)

विदूषकः—भो! अवि जाणासि, किंणिमित्तं ईदिसे दुद्दिणे आअदे त्ति?। (भो! अपि जानासि, किंनिमित्तमीद शे दुर्दिन आगतेति?।)

चारुदत्तः— वयस्य! न सम्यगवधारयामि।

विदूषकः—मए जाणिदं। अप्पमुल्ला रअणावली, बहुमुल्लं सुवण्णभंडअं त्ति ण परितुट्टा अवरं मग्गिदुं आअदा। (मया ज्ञातम्। अल्पमूल्या रत्नावली, बहुमूल्यं सुवर्णभाण्डमिति न परितुष्टा परं याचितुमागता।)

चारुदत्तः—(स्वगतम्) परितुष्टा यास्यति।

(ततः प्रविशत्युज्जवलाभिसारिकावेशेन सोत्कण्ठा वसन्तसेना, छत्रधारिणी, विटश्च)

विटः— (वसन्तसेनामुद्दिश्य)

अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनंगस्य ललितं
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरव क्षस्य कुसुमम्।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जाप्रणयिनी
रतिक्षेत्रे रंगे प्रियपथिकसार्थैरनुगता।।१२।।

अर्थः— आर्या वसन्तसेना ने मुझे आज्ञा दी है-''कुम्भीलक! जाओ तुम। मेरे आने को आर्य चारुदत्त से नम्रता पूर्वक बतलाओ।'' तो जब तक आर्य चारुदत्त के घर जाता हूँ। (प्रवेश करके दरवाजे से देखकर) यह आर्य चारुदत्त व क्षवाटिका में बैठे हैं। यह वह दुष्ट ब्राह्मण भी है। तो जब तक पास चलता हूँ। क्या व क्षवाटिका का दरवाजा बन्द है? अच्छा, इस दुष्ट ब्राह्मण को इशारा करता हूँ। (ऐसा कहकर कंकड़ियाँ फेंकता है)।

विदूषक— अरे! चहार दीवारी से घिरे हुए कैथ के समान यह कौन मुझे कंकरी से मार रहा है?।

चारुदत्त— (हो सकता है) व क्षवाटिका के महल की चौकी पर खेलते हुए कबूतरों ने गिरा दी हो।

विदूषक— दासी के बच्चे, दुष्ट कबूतर! ठहर-ठहर जब तक काठ के इस डण्डे से तुझे खूब पके हुए आम के फल के समान, इस महल से जमीन पर गिरता हूँ। (ऐसा कहकर लकड़ी का दंडा लेकर दौड़ता है)।

चारुदत्त— (यज्ञेपवीत को खींचकर) मित्र बैठो। इससे क्या बिगड़ गया? बेचारा कबूतर अपनी स्त्री के साथ बैठे।

चेट— क्या कबूतर को देख रहा है, मुझे नहीं देख रहा है? अच्छा दूसरी कंकड़ी से फिर मारूँगा।

(वैसा ही करता है)

विदूषक— (चारों ओर देखकर) क्या कुम्भीलक! तो जब तक समीप चलता हूँ। (पास में जाकर, दरवाजा खोलकर) अरे कुम्भीलक! भीतर आओ। तुम्हारा स्वागत है।

चेट — (प्रवेश करके) आर्य! प्रणाम करता हूँ।

विदूषक— अरे! ऐसे दुर्दिन अन्धकार में तुम कहाँ आये हो?

चेट — अरे! यह वह है।

विदूषक— कौन यह कौन?

चेटी— यह वह है।

विदूषक— दासी के बच्चे! अकाल के समय व द्ध गरीब के समान, इस समय क्यों लम्बी साँस ले रहा है ''एषा सा सा''।

चेट — अरे! तुम भी तो इस समय इन्द्रोत्सव के इच्छुक कौवे के समान अच्छा का का (कौन कौन) क्यों कर रहे हो?

विदूषक— तो बतलाओ।

चेट— (अपने आप) अच्छा, इस तरह कहूँगा। (प्रकट रूप में) अरे! तुम्हें प्रश्न पूछूँगा।

विदूषक— मैं तुम्हारे मस्तक पर लात मार दूँगा।

चेट — अरे! जानते हो? किस समय में आम बौराते हैं?

विदूषक— अरे! दासी के बच्चे गर्मी में।

चेट — (हँसकर) अरे, नहीं, नहीं।

विदूषक— (अपने आप) इस प्रश्न का अब क्या उत्तर दूँ?। (विचार कर) अच्छा, चलकर चारुदत्त से पूछता हूँ। (प्रकट रूप में) अरे! क्षण भर ठहर। (चारुदत्त के पास जाकर) हे मित्र जरा पूछता हूँ। किस समय में आम बौराते हैं?

चारुदत्त– मूढ! वसन्त में।

विदूषक – (चेट के पास जा कर) मूढ! वसन्त में

चेट – दूसरा प्रश्न तुम्हें देता हूँ। धन से भरे-पूरे गाँवों की रखवाली कौन करती है?।

विदूषक – अरे गली।

चेट – (हँसी के साथ) अरे, नहीं, नहीं।

विदूषक – अच्छा, सन्देह में पड़ गया हूँ। (सोचकर) अच्छा इस बार भी चारुदत्त से पूँछूगा।

(फिर लौट कर चारुदत्त से उसी प्रकार कहता है)।

चारुदत्त– मित्र! सेना।

विदूषक– (चेट के पास जाकर) अरे! दासी के बच्चे! सेना।

चेट– अरे दोनों को एक में मिलाकर जल्द बोलो।

विदूषक– सेना वसन्त।

चेट– उरे, उलट कर कहो।

विदूषक– (शरीर को घुमाकर) सेना वसन्त।

चेट– अरे मूर्ख ब्राह्मण के बच्चे! पदों को बदलो।

विदूषक– (पैरों को घुमा कर) सेना वसन्त।

चेट– अरे मूर्ख! अक्षर वाले पद में उलट फेर करो, पैरों में नहीं।

विदूषक– (सोचकर) वसन्त सेना।

चेट– यह वह आ गयी है।

विदूषक– तो जब तक चारुदत्त से निवेदन करता हूँ। (समीप जा कर) हे चारुदत्त! तुम्हारा महाजन आ गया है।

चारुदत्त– हमारे कुल में महाजन कहाँ से आया?।

विदूषक– यदि कुल में नहीं है तो दरवाजे पर है; यह वसन्तसेना आई है।

चारुदत्त– मित्र! क्या मुझे छल रहे हो?

विदूषक– यदि मेरे कहने में विश्वास नहीं कर रहे हो तो इस कुम्भीलक से पूछो। अरे दासी के बच्चे कुम्भीलक! पास आओ।

चेट– (पास जाकर) आर्य! प्रणाम कर रहा हूँ।

चारुदत्त– भले मनुष्य! स्वागत है। बतलाओ क्या सचमुच वसन्तसेना आई हैं?

चेट– यह वसन्तसेना आ गई है।

चारुदत्त– (खुशी के साथ) भले आदमी! मैंने प्रिय वचन कभी खाली नहीं किया है। तो पुरस्कार ग्रहण करो (ऐसा कह कर दुपट्टा देता है)।

चेट – (लेकर प्रणाम कर के सन्तोष के साथ) जब तक आर्या वसन्तसेना से कहता हूँ।

(ऐसा कह कर निकल जाता है)।

विदूषक— अरे! क्या जानते हो कि ऐसे दुर्दिन में किसलिए आई है?

चारुदत्त— मित्र! भली भाँति नहीं जान पा रहा हूँ।

विदूषक— मैं जानता हूँ। रत्नावली कम कीमत की है, सोने के आभूषणों का भाण्ड अधिक मूल्य का है; ऐसा सोचकर सन्तुष्ट न हुई वह और कुछ माँगने के लिए आई है।

चारुदत्त— (अपने आप) सन्तुष्ट हो कर जायगी।

(इसके बाद अभिसारिका के स्वच्छ वेश में उत्कण्ठित वसन्तसेना, छाता को पकड़ कर चलने वाली स्त्री और विट प्रविष्ट होते हैं)

अन्वयः— रतिसमयलज्जाप्रणयिनी, प्रियपथिकसार्थेः, अनुगता, रंगे, (इव), रतिक्षेत्रे, सलीलं, गच्छन्ती, एषा, अपद्मा, श्रीः, अनंगस्य, ललितं, प्रहरणं, कुलस्त्रीणां, शोकः, मदनवरव क्षस्य, कुसुमम् (अस्ति)।।१२।।

शब्दार्थः— रतिसमयलज्जाप्रणयिनी = सम्भोग के समय लजाने वाली, प्रियपथिकसार्थैः = पथिकों के प्रिय समूहों से, अनुगता = पीछा की गयी, रंगे = नाटक घर (की), (इव = भाँति), रतिक्षेत्रे = सम्भोग के स्थान में अर्थात् संकेत के स्थान में, सलीलं = हाव-भाव के साथ, गच्छन्ती = जाती हुई, एषा = यह वसन्तसेना, अपद्मा = विना कमलवाली, श्रीः = लक्ष्मी, अनंगस्य = कामदेव का, ललितं = सुकुमार, प्रहरणम् = अस्त्र, कुलस्त्रीणां = कुलीन स्त्रियों का, शोकः = अफसोस, (और) मदनवरव क्षस्य = कामदेव रूपी सुन्दर व क्ष का, कुसुमम् = फूल (अस्ति = है)।।

अर्थः— विट —(वसन्तसेना को उद्देश्य करके) सम्भोग के समय लजानेवाली, पथिकों के प्रिय समूहों से अनुगमन की जाने वाली, नाटकघर की भाँति (आनन्द देने वाले) संकेत-स्थान में हाव-भाव के साथ जाती हुई यह वसन्तसेना बिना कमल की लक्ष्मी है, कामदेवका सुकुमार अस्त्र है, कुलीन स्त्रियों का साक्षात् शोक है (क्योंकि इसकी सुन्दरता से खिंचकर कुलपुत्र वेश्यागामी बन जाते हैं। अतः उनकी स्त्रियाँ शोक करती हैं,) तथा कामरूपी सुन्दर व क्ष का फूल है।।१२।।

टीका— रतिसमये = रमणकाले लज्जायां = व्रीडायां प्रणयिनी = प्रीतियुक्ताः प्रियैः = अभीप्सितैः पथिकसार्थैः = पान्थसमूहैः; अनुगता = अनुस ता; एतेन वसन्तसेनायाः प्रसिद्धिः सूच्यते, रंगे = नाट्यशालायाम्, इव, रतिक्षेत्रे = सम्भोगस्थाने, सलीलं = सविलासम्; गच्छन्ती = व्रजन्ती; एषा = वसन्तसेना; नास्ति पद्मं = कमलं यस्याः सा अपद्मा = कमलोत्पत्तिरहिता इत्यर्थः; श्रीः = लक्ष्मीः अस्ति। अनंगस्य = कामदेवस्य, ललितं = सुकुमारं सुन्दरं वा; प्रहरणम् = आयुधं, कुलस्त्रीणां = कुलबधूनाम्; शोकः = सन्तापः; मदनः = कामः एव वरव क्षः श्रेष्ठपादपः तस्य, कुसुमं = प्रसूनम् अस्तीति सर्वत्र योज्यम्।।१२।।

इस श्लोक में मालारूपक अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण-रसैः रुदैश्छिन्नायमनसभला गः शिखरिणी।।१२।।

वसन्तसेने! पश्य पश्य

गर्जन्ति शैलशिखरेषु विलम्बिबिम्बा
मेघा वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः।

येषां रवेण सहसोत्पतितैर्मयूरैः
खं वीज्यते मणिमयैरिव तालव न्तैः।।१३।।

अन्वयः— वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः, शैलशिखरेषु, विलम्बिबिम्बाः, मेघाः, गर्जन्ति, येषां, रवेण, सहसा, उत्पतितैः, मयूरैः; मणिमयैः, तालव न्तैः, खं वीज्यते, इव।।१३।।

शब्दार्थः— वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः = विरहिणी स्त्रियों के हृदय के समान (मलिन), शैलशिखरेषु = पर्वत की चोटियों पर, विलम्बिबिम्बाः = लटकते हुए आकार वाले, मेघाः = बादल, गर्जन्ति = गरज रहे हैं। येषां = जिनके, रवेण = गरज से, सहसा = एकाएक, अचानक, उत्पतितैः = उड़े हुए, मयूरैः = मोरों के द्वारा, मणिमयैः = मणि के बने हुए, तालव न्तैः = पंखों से, खम् = आकाश, वीज्यते = हवा किया जा रहा है; इव = मानो।।

अर्थः—

वसन्तसेना देखो-देखो-

विरहिणी स्त्रियों के हृदय के समान मलिन, पर्वत की चोटियों पर लटकते हुए आकार वाले बादल गरज रहे हैं। जिनके गरजने से अचानक उड़े हुए मोरों के द्वारा अपने पंख रूपी मणिमय तालव न्तों से मानो आकाश को पंखा झला जा रहा है।।

टीका— वियुक्ताः = प्रोषितभर्तृकाः विरहिण्यः याः वनिताः = नार्यः तासां हृदयं = चेतः अनुकुर्वन्ति = अनुसरन्ति इति तथाभूताः, मलिनाः इति भावः। शैलानां = पर्वतानां शिखरेषु = श्रृंगेषु, विलम्बि = लम्बमानं बिम्बं = मण्डलं येषां ताद शाः, मेघाः = पयोधराः, गर्जन्ति = नदन्ति। येषां = मेघानां, रवेण = गर्जनेन, सहसा = झटिति, उत्पतितैः = उड्डीनैः, मयूरैः = शिखण्डिभिः, मणिमयैः = नीलरत्नादिनिर्मितैः, तालव न्तैः = व्यजनैः, खम् = आकाशं, वीज्यते इव।।१३।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।१३।।

अपि च,—

पंकक्लिन्नमुखाः पिबन्ति सलिलं धाराहता दर्दुराः
कण्ठं मु चति बर्हिणः समदनो नीपः प्रदीपायते।
संन्यासः कुलदूषणैरिव जनैर्मेघैर्वृतश्चन्द्रमा
विद्युन्नीचकुलोद्गतेव युवतिर्नैकत्र संतिष्ठते।।१४।।

अन्वयः— धाराहताः, पंकक्लिन्नमुखाः, दुर्दराः, सलिलं, पिबन्ति, समदनः, बर्हिणः, कण्ठं, मु चति, नीपः, प्रदीपायते, कुलदूषणैः, जनैः, संन्यासः, इव, मेघैः, चन्द्रमा, व तः, नीचकुलोद्गता, युवतिः, इव, विद्युत्, एकत्र, न, सन्तिष्ठते।।१४।।

शब्दार्थः— धाराहताः = (पानी की) धारा से ताडित, पंकक्लिन्नमुखाः = कीचड़ से लथपथ मुँहवाले, दर्दुराः = मेंढक, सलिलं = पानी को, पिबन्ति = पी रहे हैं। समदनः = कामातुर, ब्रर्हिणः = मोर, कण्ठं = गले की आवाज को, मु चति = छोड़ रहा है। नीपः = कदम्ब, प्रदीपायते = दीपक सा मालूम पड़ रहा है। कुलदूषणैः = कुल को दूषित करने वाले, जनैः = लोगों के द्वारा, संन्यासः इव = संन्यास की भाँति, मेघैः = बादलों के द्वारा, चन्द्रमा = चन्द्र, व तः = ढँका है, नीचकुलोद्गता = नीच कुल में पैदा हुई, युवतिः = जवान स्त्री, इव = जैसी, विद्युत् = बिजली, एकत्र = एक स्थान पर; न = नहीं, सन्तिष्ठते = ठहर रही है।।

और भी

अर्थः— (पानी की) धारा से ताडित एवं कीचड़ से लथ-पथ मुँहवाले मेंढक पानी पी रहे हैं। कामातुर मोर मीठी आवाज में बोल रहा है। कदम्ब का पेड़ दीपक सा मालूम पड़ रहा है। बादलों के द्वारा चन्द्रमा उसी प्रकार ढँक लिया गया है जिस प्रकार कुल को दूषित करने वाले लोगों के द्वारा संन्यास (कलंकित कर दिया जाता है), नीच कुल में पैदा हुई युवती के समान बिजली एक स्थान पर नहीं ठहर रही है।।१४।।

टीका— धाराभिः = जलधाराभिः, हताः = ताडिताः, पंकेन = कर्दमेन क्लिन्नानि = लिप्तानि मुखानि आननानि येषां ते; दर्दुराः = मण्डूकाः; सलिलं = जलं; पिबन्ति = आचामन्ति; मदनेन = कामेन सहितः समदनः = कामातुरः, बर्हिणः = मयूरः कण्ठं = कण्ठशब्दं; मु चति = त्यजति। नीपः = कदम्बः; प्रदीपायते = पुष्पैः प्रदीपवत् आचरति; कुलं = वंशं दूषयन्ति इति कुलदूषणाः = कुलकलंककराः तैः; जनैः = लोकैः; संन्यासः = यतिधर्मः इव; मेघैः = जलधरैः; चन्द्रमा = चन्द्रः; व तः = आच्छादितः भवति; नीचकुले = पतितवंशे उद्गता = उत्पन्ना; युवतिः = तरुणिः इव; विद्युत् = चपला; एकत्र = एकस्मिन् स्थले; न सन्तिष्ठते = न स्थिरतां गच्छति।।१४।।

वसन्तसेना— भाव! सुट्ठु दे भणिदं। (भाव! सुष्ठु ते भणितम्।) एषा हि,-

मूढे! निरन्तरपयोधरया मयैव
कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र?
मां गर्जितैरपि मुहुर्विनिवारयन्ती
मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी।।१५।।

अन्वयः— कुपिता, सपत्नी, इव, निशा, हे मूढे! निरन्तरपयोधरया, मया, एव, सह, कान्तः, यदि, अभिरमते, (तदा); अत्र, तव, किम्?; (ईद शैः) गर्जितैः अपि, मुहुः, विनिवारयन्ती, (मम), मार्गं, रुणद्धि।।

शब्दार्थः— कुपिता = कुपित हुई, सपत्नी = सौत, इव = जैसी, निशा = रात; ''हे मूढे! = हे मूर्ख! निरन्तरपयोधरया = घने पयोधर (रात के पक्ष में-बादल, सौत के पक्ष में-स्तन) वाली, मया = मेरे, एव = ही, सह = साथ, कान्तः = प्रियतम (रात के पक्ष में चन्द्रमा; सौत के पक्ष में चारुदत्त), यदि = यदि, अभिरमते = रमण करता है, (तदा = तो, तब), अत्र = इसमें, तव = तुम्हारा, किम्? = क्या? (ईद शैः = इस प्रकार वाले), गर्जितैः = बार-बार गरजने से, अपि = भी, मुहुः = बारम्बार, विनिवारयन्ती = मना करती हुई (मम = मेरे), मार्गं = रास्ताको, रुणद्धि = रोक रही है।

अर्थः—

वसन्तसेना— श्रीमान् जी! आप का कहना ठीक है। यह कुपित हुई सौत के समान रात-मूर्ख! यदि घने पयोधर (रात के पक्ष में बादल, सौत के पक्ष में-स्तन) वाली मेरे ही साथ प्रियतम (रात के पक्ष में-चन्द्रमा, सौत के पक्ष में-चारुदत्त) रमण करता है तो इस में तुम्हारा क्या? (इस प्रकार के) बार-बार गरजने से भी बारम्बार मुझे मना करती हुई रास्ता रोक रही है।।१५।।

टीका— कुपिता = क्रुद्धा; समानः = एकः पतिः = भर्ता यस्याः सा सपत्नी = एकपतिका स्त्री इव; निशा = रात्रिः; हे मूढे! = हे मूर्खे! मया सह रमणरतमपि कान्तं यासि अतस्त्वं मूर्खा असि इति

भावः; वसन्तसेने! इति शेषः; निरन्तराः = निविडाः पयोधराः जलदाः यस्यां सा ताद शया मया = निशया (सपत्नीपक्षे-निरन्तरौ = स्थूलत्वात् निविडौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः तया) एव सह = साकम्; कान्तः = प्रियः, यदि = चेत्; अभिरमते = क्रीडति; तदा अत्र = अस्मिन् विषये; तव = वसन्तसेनायाः किम्? = का हानिः? एताद शैः गर्जितैः = गर्जनैः, अपि मुहुः = बारम्बारम्; विनिवारयन्ती = निषेधयन्ती; मम मार्गं = पन्थानम्; रुणद्धि = आव णोति।।१५।।

यहाँ उपमा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।१५।।

विटः— भवतु एवं तावत्; उपालभ्यतां तावदियम्।

वसन्तसेना— भाव! किमनया स्त्रीस्वभावदुर्विदग्धयोपालब्धया? पश्यतु भावः

मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मु चन्त्वशनिमेव वा।
गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः।।१६।।

अर्थः—

विट — अच्छा तो ऐसा हो। इसे उलाहना दिया जाय।

वसन्तसेना— श्रीमान् जी! स्त्री स्वभाव के कारण हठी इस को उलाहना देने से क्या लाभ?। आप देखें—

अन्वयः— मेघाः, वर्षन्तु, गर्जन्तु, वा, अशनिम्, एव, मु चन्तुः (परन्तु), रमणाभिमुखाः, स्त्रियः, शीतोष्णं, न, गणयन्ति।।१६।।

शब्दार्थः— मेघाः = बादल, वर्षन्तु = बरसें, गर्जन्तु = गरजें, वा = अथवा, अशनिम् = वज्रको, एव = ही, मु चन्तु = छोड़ें, (परन्तु = किन्तु), रमणाभिमुखाः = रमण करने के लिये जाती हुई, स्त्रियाः = स्त्रियाँ, शीतोष्णं = ठण्डक-गर्मी को, न = नहीं गणयन्ति = गिनती हैं।।

अर्थः— बादल बरसें, गरजें अथवा वज्र ही गिरा दें। (परन्तु) प्रेमी के साथ रमण करने के लिये जाती हुई स्त्रियाँ ठण्डक-गर्मी की परवाह नहीं करती हैं।।१६।।

टीका— मेघाः = जलदाः; वर्षन्तु = सलिलं क्षरन्तु गर्जन्तु = नंदन्तु; वा = अथवा; अशनिं = वज्रम् एव; मु चन्तु = पातयन्तु। किन्तु रमणाय = रत्यर्थम् अभिमुखाः = गन्तुं तत्पराः; स्त्रियः = कामिन्यः; शीतोष्णं = शीतम् आतपं च न गणयन्ति = न किंचित्करं मन्यन्ते।।१६।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार एवं अनुष्टप् छन्द है।।१६।।

विटः— वसन्तसेने! पश्य पश्य, अयमपरः

पवनचपलवेगः स्थूलधाराशरौघः
स्तनितपटहनादः स्पष्टविद्युत्पताकः।
हरति करसमूहं खे शशांकस्य मेघो
न प इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रोः।।१७।।

अन्वयः— पवनचपलवेगः, स्थूलधाराशरौघः, स्तनितपटहनादः, स्पष्टविद्युत्पताकः, मेघः, मन्दवीर्यस्य, शत्रोः, पुरमध्ये, न पः, इव; खे, शशांकस्य, करसमूहं, हरति।।१७।।

शब्दार्थः— पवनचपलवेगः = हवा के द्वारा च चल वेग वाला (न प के पक्ष में हवा की भाँति च चल गति वाला), स्थूलधाराशरौघः = मोटी धारायें ही जिसके वाण के समूह हैं, (न प के पक्ष में मोटी धाराओं जैसा बाण-समूह वाला), स्तनित-पटहनादः = जिसका गरजना ही नगाड़े की

आवाज है। (न पके पक्ष में-बादलों की गड़गड़ाहट के तुल्य लड़ाई के नगाड़े की आवाज वाला), स्पष्टविद्युत्पताकः = स्पष्ट बिजली ही जिसकी पताका है, (न प के पक्ष में चमकती हुई बिजली की भाँति पताका वाला); मेघः = बादल; मन्दवीर्यस्य = मन्दपराक्रम वाले, शत्रोः = शत्रु के, पुरमध्ये = नगर के बीच में, न पः इव = राजा की भाँति; खे = आकाश में, शशांकस्य = चन्द्रमा के, करसमूहं = किरणों के समूह को, हरति = छीन ले रहा है।।१७।।

अर्थः— विट — वसन्तसेना! देखो, देखो! यह दूसरा—

(बादल और विजयी राजा का एक साथ वर्णन)

(पानी की) मोटी धाराएँ ही जिसके बाण के समूह हैं, जिसका गरजना ही नगाड़े की आवाज है, स्पष्ट बिजली जिसकी पताका है, ऐसा मेघ आकाश में चन्द्रमा की किरणों को उसी प्रकार से छीन ले रहा है अर्थात् छिपा दे रहा है जैसे हवा की भाँति चंचल गति वाला, मोटी मोटी धाराओं जैसा बाण-समूह वाला, बादलों की गड़गड़ाहट के तुल्य लड़ाई के नगाड़े की आवाज वाला, चमकती हुई बिजली की भाँति पताका वाला विजयी राजा मन्द पराक्रम वाले शत्रु (राजा) के कर (टैक्स) को छीन लेता है। (हरण कर लेता है)।।१७।।

टीका— पवनेन = वायुना चपलः = चंचलः वेगः = गतिप्रवाहः यस्य सः; अन्यत्रपवनः इव चपलः = अप्रतिहततीव्रः वेगः यस्य ताद शः; स्थूलाः = पुष्टाः धाराः = जलधाराः एव शरौघः = बाणसमूहः यस्य सः; अन्यत्र स्थूलाः धाराः इव शरौघः यस्य ताद शः; स्तनितं = गर्जितम् एव पटहस्य = ढक्कायाः नादः = ध्वनिः यस्य सः; अन्यत्रस्तनितमिव पटहस्य नादः यस्य ताद शः; स्पष्टा = सुव्यक्ता विद्युत् = चपला एव पताका = ध्वजः यस्य सः; अन्यत्र स्पष्टा विद्युत् इव पताका यस्य ताद शः; मेघः = जलदः; मन्दं = क्षीणं वीर्यं = पराक्रमः यस्य तस्य, क्षीणशक्तेः इत्यर्थः; शत्रोः = रिपोः; पुरमध्ये = राजधानीमध्ये; न पः = विजयी राजा इव; खे = आकाशे; शशांकस्य = चन्द्रस्य; करसमूहं = किरणजालम्, अन्यत्र-राजग्राह्यं धनम्; हरति = अपहरति, आच्छादयति इत्यर्थः; अन्यत्र-बलाद् ग ह्लाति।।१७।।

इस श्लोक में श्लेष एवं रूपक से पुष्ट होकर उपमा अलंकार तथा मालिनी छन्द है। छन्द का लक्षण- 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।।१७।।

वसन्तसेना— एव्वं ण्णेदं। ता कधं एसो अवरो?। (एवं न्विदम् तत्कथमेषो परः?)

एतैरेव यदा गजेन्द्रमलिनैराध्मातलम्बोदरै-
र्गर्जद्भिः सतडिद्बलाकशबलैर्मेघैः सशल्यं मनः।
तत्किं प्रोषितभर्तृवध्यपटहो हा हा हताशो बकः
प्राव ट् प्राव डिति ब्रवीति शठधीः क्षारं क्षते प्रक्षिपन्।।१८।।

अन्वयः— यदा, गजेन्द्रमलिनैः, आध्मातलम्बोदरैः, सतडिद्बलाकशबलैः, गर्जद्भिः, एतैः, मेघैः, एव, मनः, सशल्यं; भवति, हा, हा, तत्, प्रोषितभर्तृवध्यपटहः, हताशः, शठधीः, बकः, क्षते, क्षारं, प्रक्षिपन्, इव, किं, प्राव ट्, प्राव ट्, इति, ब्रवीति।।१६।।

शब्दार्थः— यदा = जबकि, गजेन्द्रमलिनैः = गजराजों के समान मलिन, आध्मातलम्बोदरैः = फूले हुए तथा लटकते हुए पेट वाले, सतडिद्बलाकशबलैः = विजली एवं बगुलों की पाँत से चितकबरे, गर्जद्भिः = गरजते हुए, एतैः = इन्हीं, मेघैः = बादलों के कारण, एव = ही, मनः = मन,

सशल्यं = काँटे से युक्त, (भवति = हो रहा है), हा हा = हाय हाय! तत् = तब, प्रोषितभर्त वध्यपटहः = परदेश गये हैं पति जिनके ऐसी चिविरहिणियों के लिए वध के समय बजने वाला नगाड़ा रूप, हताशः = अभागा, शठधीः = धूर्त बुद्धि वाला, बकः = बगुला, क्षते = घाव पर, क्षारं = नमक को, प्रक्षिपन् = छिड़कता हुआ, इव = सा, किं = क्यों, प्राव ट् = वर्षा, प्रावट = वर्षा, इति = ऐसा, ब्रवीति = बोल रहा है।

अर्थः—

वसन्तसेना— ऐसा ही है। तो क्यों यह दूसरा-

जब कि गजराजों के समान मलिन फूले हुए तथा लटकते हुए उदर वाले, बिजली एवं बगुलों की पाँत से चितकबरे, गरजते हुए इन्हीं बादलों के ही कारण विरहिनियों का मन काँटे से चुभ रहा है। हाय हाय! तब, परदेश गये हैं पति जिनके ऐसी विरहिनियों के लिए वध के समय बजने वाले नगाड़े की भाँति अभागा धूर्त बुद्धिवाला बगुला घाव पर नमक छिड़कता हुआ सा क्यों वर्षा, वर्षा- इस प्रकार चिल्ला रहा है।।१८।।

टीका— यदा = यस्मिन् काले; गजेन्द्रमलिनैः = गजेन्द्रवत् = गजरावत् मलिनैः = श्यामवर्णैः; आघ्मातानि = उच्छूनानि, जलभरितानि इत्यर्थः, अत एव लम्बानि = अद्यो लम्बमानानि उदराणि = जठराणि येषां तैः; तडिद्भिः = विद्युद्भिः बलाकाभिः = बकपंक्तिभिः सहिता सतडिद्बलाकाः अतएव शबलाः = विचित्राः तैः, गर्जद्भिः = ध्वनद्भिः; एतैः = आकाशे वर्तमानेः, मेघैः = जलदैः; एव मनः = विरहिणीनां चेतः इत्यर्थः; शल्येन = शंकुना शहितं सशल्यम् = विरहवेदनारूपशल्येन विद्धम् इत्यर्थः; भवतीति शेषः; हाहेतिखेदबोधकमव्ययम्; तत् = तस्मात् कारणात् तदा वा; प्रोषिताः, = विदेशं गताः भर्तारः = पतयः यासां ताः, वियोगिन्यः इत्यर्थः तासां (कृते) वध्यपटहः = वधकाले वाद्यमानः दुन्दुभिः, हता = विनष्टा आशा यस्य सः हताशः = आशाविहीनः भाग्यरहितः इति भावः; शठा = व चनशीला धीः = बुद्धिः यस्य सः, बकः० क्षते = व्रणे, क्षारं = लवणं, प्रक्षिपन् = योजयन्, इव किं = कस्मात्, प्राव ट् प्राव ट् = वर्षा वर्षा, इति ब्रवीति = उच्चैः वदति।।१८।।

यहाँ 'गजेन्द्रमलिनैः' में उपमा, 'वध्यपटहः' में रूपक एवं 'क्षारं क्षते प्रक्षिपन्' में निदर्शना अलंकार है। इस प्रकार इस श्लोक में इन सब अलंकारों की संस ष्टि है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।१८।।

विटः— वसन्तसेने! एवमेतत्। इदमपरं पश्य

बलाकापाण्डुरोष्णीषं विद्युदुत्क्षिप्तचामरम्।
मत्तवारणसारूप्यं कर्तुकाममिवाम्बरम्।।१६।।

अन्वयः— बलाकापाण्डुरोष्णीषं, विद्युदुत्क्षिप्तचामरम्, अम्बरम्, मत्तवारणसारूप्यं, कर्तुकामम्, इव, (प्रतिभाति)।।१६।।

शब्दार्थः— बलाकापाण्डुरोष्णीषं = बगुलियाँ अथवा बकपंक्तियाँ ही' जिसकी सफेद 'पगड़ी हैं (वारण = हाथी के पक्ष में-बगुलियों के समान जिसकी सफेद पगड़ी है), विद्युदुत्क्षिप्तचामरम् = बिजली ही जिस का डुलाया जाता हुआ चामर है ऐसा (वारण के पक्ष में-बिजली के समान चामर जिस पर डुलाया जा रहा है), अम्बरम् = आकाश, मत्तवारणसारूप्यं = मतवाले हाथी की समानता को, कर्तुकामम् = करने की इच्छावाला, इव = सा, (प्रतिभाति = मालूम पड़ता है)।

अर्थः—

विट — वसन्तसेना! यह ऐसा ही है। इस दूसरे (द श्य) को देखो-

बगुलियाँ ही जिसकी सफेद पगड़ी हैं, बिजली ही जिसका डुलाया जाता हुआ चामर है, ऐसा यह आकाश, बगुलियों के समान जिसकी सफेद पगड़ी है, बिजली के समान चामर जिस पर डुलाया जा रहा है, ऐसे मत्त हाथी की मानों समानता करना चाहता है।।१६।।

टीका— बलाका = बकपंक्तिः एव पाण्डुरम् = शुभ्रम् उष्णीषम् = शिरोवस्त्रं यस्य तत्; पक्षान्तरे-बलाकावत् पाण्डुरम् उष्णीषं यस्य तथा; विद्युत् = तडित् एव उत्क्षिप्तम् = ऊर्ध्वं चालितं चामरं = प्रकीर्णकं यस्य तथा भूतम् पक्षान्तरे-विद्युत् इव उत्क्षिप्तं चामरं यस्य तथा; अम्बरम् = आकाशं, मत्तवारणस्य = मत्तहस्तिनः सारूप्यं = साद श्यं; कर्तुकामम् = कर्तुमिच्छुकमिव; प्रतिभातीति शेषः।।१६।।

पहले और दूसरे चरण में रूपक, तीसरे चरण में उपका और चौथे चरण में उत्प्रेक्षा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-अनुष्टुप्।।१६।।

वसन्तसेना— भाव! पेक्ख पेक्ख। (भाव! पश्य पश्य।)

एतै रार्द्रतमालपत्रमलिनै रापीतसूर्यं नभो
वल्मीकाः शरताडिता इव गजाः सीदन्ति धाराहताः।
विद्युत्का चनदीपिकेव रचिता प्रासादसंचारिणी
ज्योत्स्ना दुर्बलभर्त केव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता।।२०।।

अन्वयः— आर्द्रतमालपत्रमलिनैः, एतैः, (मेघैः), नभः, आपीतसूर्यं, (जातम्) धाराहताः, वल्मीकाः, शरताडिताः, गजाः, इव, सीदन्ति; विद्युत्, प्रासादसचांरिणी, कांचनदीपिका, इव, रचिता; दुर्बलभर्त का, वनिता, इव, ज्योत्स्ना, मेघैः, प्रोत्सार्य, हृता।।२०।।

शब्दार्थः—आर्द्रतमालपत्रमलिनैः = गीले तमाल के पत्तों के समान मलिन, एतैः = इन, (मेघैः = मेघों के द्वारा), नभः = आकाश, आपीतसूर्यं = ढक लिया गया है सूर्य जिसमें ऐसा, (जातम् = हो गया है), धाराहताः = धाराओं से आहत, वल्मीकाः = दीमकों के घर; शरताडिताः = बाण से मारे गये, गजाः इव = हाथियों की भाँति, सीदन्ति = नष्ट हो रहे हैं; विद्युत् = बिजली, प्रासादसंचारिणी = महलों पर घूमने वाली, कांचनदीपिका = सोने का दीपक, इव = जैसी, रचिता = बना ली गयी है। दुर्बलभर्त का = कमजोर पति वाली, वनिता = स्त्री (की), इव = भाँति, ज्योत्स्ना = चाँदनी, मेघैः = बादलों के द्वारा, प्रोत्सार्य = जबरदस्ती छीनकर, हृता = हरली गयी है।।

अर्थः—

श्रीमान् जी! देखिये, देखिये-

गीले तमाल के पत्तों के समान नीले रंग के इन बादलों के द्वारा आसमान में सूर्य ढक दिया गया है, धाराओं से आहत वल्मीक (दीमकों के घर), बाण से मारे गये हाथियों के समान, नष्ट हो रहे हैं, बिजली महलों पर घूमने वाली सोने के दीपक जैसी बना ली गयी है, कमजोर है पति जिसका ऐसी स्त्री के समान चाँदनी का मेघों ने बलपूर्वक हरण कर लिया है।।२०।।

टीका— आर्द्राणि = जलसिक्तानि यानि तमालस्य = तमालव क्षस्य पत्राणि = पर्णानि तद्वत् मलिनाः = श्यामवर्णाः तैः; एतैः = द श्यमानैः मेघैः इति शेषः; नभः = आकाशम्; आपीतः = आच्छादितः सूर्यः = दिनकरः, धाराभिः = जलधाराभिः हताः = ताडिताः; वल्मीकाः = वामलूराः। शरैः = वाणैः ताडिताः = कृतप्रहाराः; गजाः = हस्तिनः इव; सीदन्ति = विषादं व्रजन्ति, नश्यन्ति इति भावः; विद्युत् = तडित्; प्रासादसंचारिणी = हर्म्यतले विहरणशीला; कांचनदीपिका = स्वर्णनिर्मितप्रदीपिका इव; रचिता = कल्पिता। दुर्बलः = बलहीनः भर्ता = पतिः यस्याः ताद शी; वनिता = स्त्री इव, ज्योत्स्ना = चन्द्रिका, मेघैः = जलदैः, प्रोत्सार्य = हठादुत्थाप्य, हृता = अपहृता।।२०।।

यहाँ पर उपमा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।२०।।

विटः— वसन्तसेने! पश्य पश्य

एते हि विद्युद्गुणबद्धकक्षा गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः।
शक्राज्ञया वारिधराः सधारा गां रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति।।२१।।

अन्वयः— विद्युद्गुणबद्धकक्षाः, अन्योन्यम्, अभिद्रवन्तः, गजाः, इव, सधाराः, एते, वारिधराः, शक्राज्ञया, गां, रूप्यरज्ज्वा, इव, समुद्धरन्ति,।।२१।।

शब्दार्थः— विद्युद्गुणबद्धकक्षाः = बिजली रूपी रस्सी से बँधी हुई कमर वाले (हाथी के पक्ष में-बिजली की भाँति रस्सी से कसी हुई कमर वाले), अन्योन्यम् = एक दूसरे को, अभिद्रवन्तः = धक्का देते हुए, गजाः = हाथियों (के), इव = समान, सधाराः = धाराओं वाले, एते = ये, वारिधराः = बादल, शक्राज्ञया = इन्द्र की आज्ञा से, गां = प थिवी को, रूप्यरज्ज्वा = चाँदी की रस्सी से, इव = मानो, समुद्धरन्ति = ऊपर उठा रहे हैं।

अर्थः—

विट— वसन्तसेना! देखो, देखो-

बिजली रूपी रस्सी से बँधी हुई कमर वाले, आपस में एक दूसरे को धक्का देते हुए हाथियों के समान, पानी की धाराओं वाले ये बादल इन्द्र की आज्ञा से जमीन को मानो पानी की धार रूपी चाँदी की रस्सियों के द्वारा ऊपर उठा रहे हैं।।२१।।

टीका— विद्युत् = तडित् एव गुणः = रज्जुः तेन बद्धा = संयमिता कक्षा = मध्यभागः येषां ते, गजपक्षे-विद्युद् इव गुणः तेन बद्धा = आबद्धा कक्षा = उदरभागः येषां ते; अन्योन्यं = परस्परम्; अभिद्रवन्तः = अभिगच्छन्तः; गजाः = करिणः इव; धाराभिः सहिताः सधाराः = जलधारायुक्ताः; एते = परिद श्यमानाः; वारिधराः = जलधराः; शक्रस्यः = इन्द्रस्य आज्ञया = आदेशेन, गां = प थ्वीं, रूप्यरज्ज्वा = रजतनिर्मित-रज्ज्वा इव, समुद्धरन्ति = ऊर्ध्वं कर्षन्ति।।२१।।

इस श्लोक में उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।।२१।।

अपि च, पश्य

महावाताध्मातैर्महिषकुलनीलैर्जलधरै-
श्चलैर्विद्युत्पक्षैर्जलधिभिरिवान्तः प्रचलितैः।
इयं गन्धोद्दामा नवहरितशष्पाङ्कुरवती
धरा धारापातैर्मणिमयशरैर्भिद्यत इव।।२२।।

अन्वयः— महावाताध्मातैः, महिषकुलनीलैः, विद्युत्पक्षैः, अन्तःप्रचलितैः, जलधिभिः, इव, चलैः, जलधरैः, नवहरितशष्पांकुरवती, गन्धोद्दामा, इयं, धरा, धारापातैः, मणिमयशरैः, भिद्यते, इव।।२२।।

शब्दार्थः— महावाताध्मातैः = प्रबल हवा से भरे हुए, महिषकुलनीलैः = भैसों के झुण्ड की भाँति नीले, विद्युत्पक्षैः = बिजलीरूपी पंखवाले, अन्तःप्रचलितैः = आकाश में हिलने वाले, जलधिभिः इव = सागरों के समान, चलैः = च चल, जलधरैः = बादलों के द्वारा, नवहरितशष्पांकुरवती = नयी हरी घासों के अंगुरवाली, गन्धोद्दामा = तेज महकवाली, इयं = यह, धरा = प थिवी, धारापातैः = धारापात (रूपी), मणिमयशरैः = मणिमय बाणों से, भिद्यते इव = भेदी सी जा रही है।।

और भी देखो-

अर्थः— प्रबल हवा से भरे हुए, भैंसों के झुण्ड की भाँति नीले, बिजली रूपी पंख वाले, आकाश में हिलने वाले सागरों की भाँति, इधर-उधर दौड़ने वाले, जल से भरे हुए बादलों के द्वारा, नयी हरी घासों के अंकुरवाली तथा तेज महक वाली यह प थ्वी धारापातरूपी मणिमय बाणों से भेदी सी जा रही है।।२२।।

टीका— महावातेन = प्रबलवायुना आध्मातैः = पूरितैः; महिषानां = कासराणां कुलानि = समूहाः इव नीलाः = श्यामाः तैः; विद्युत् = तडित् एव पक्षाः = पत्राणि येषां तैः अथवा विद्युद् एव पक्षाः तैः (करणभूतैः); अतः अन्तः = अन्तरिक्षे, प्रचलितैः = प्रसरद्भिः; जलधिभिः = सागरैः इव; चलैः = च चलैः; इतस्ततः = धावनपरैः इत्यर्थः, जलधरैः = मेघैः नवानां = नूतनानाम् अचिरोद्गतानाम् इत्यर्थः हरितानां = पालाशानां शष्पाणां = बालत णानां ये अंकुराः = अभिनवोद्भिदः तद्वती = शष्पप्ररोहशालिनी इत्यर्थः, गन्धेन = प्रथमव ष्टिजनितम त्तिकागन्धेन उद्दामा = उत्कटा, इयं = द श्यमाना, धरा = प थिवी, धारापातैः = जलधारापातैः, एव मणिमयशरैः = रत्ननिर्मितबाणैः, भिद्यते = विध्यते इव।।२२।।

इस श्लोक में उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।

वसन्तसेना— भाव! एसो अवरो!। (भाव! एषो परः।)

एह्येहीति शिखण्डिनां पटुतरं केकाभिराक्रन्दितः
प्रोड्डीयेव बलाकया सरभसं सोत्कण्ठमालिंगितः
हंसैरुज्झितपंकजैरतितरां सोद्वेगमुद्वीक्षितः
कुर्वन्न जनमेचका इव दिशो मेघः समुत्तिष्ठति।।२३।।

अन्वयः— शिखण्डिनां, केकाभिः, एहि एहि, एति, पटुतरम्, आक्रन्दितः, बलाकया, सरभसं, प्रोड्डीय, सोत्कण्ठम्, आलिंगितः, इव, उज्झितपंकजैः, हंसैः, अतितरां, सोद्वेगम्, उद्वीक्षितः, मेघः, दिशः, अ जनमेचकाः, कुर्वन्, इव, समुत्तिष्ठति।।२३।।

शब्दार्थः— शिखण्डिनां = मोरों की, केकाभिः = पिंहक के द्वारा, एहि एहि = आओ-आओ, इति = इस प्रकार, पटुतरम् = भली-भाँति, आक्रन्दितः = बुलाया गया, बलाकया = बगुलों की पाँतों के द्वारा, सरभसं = वेगपूर्वक, प्रोड्डीय = उड़कर, सोत्कण्ठम् = उत्कण्ठा के साथ, आलिंगितः = आलिंगन किया गया, इव = सा, उज्झितपंकजैः = कमलों को छोड़ने वाले, हंसैः = हंसों के द्वारा, अतितरां = अत्यन्त, सोद्वेगम् = घबड़ाहटपूर्वक, उद्वीक्षितः = देखा गया, मेघः = बादल, दिशः = दिशाओं को, अंजनमेचकाः = काजल से काली, कुर्वन् = करता हुआ, इव = सा, समुत्तिष्ठति = उमड़ रहा है।।

अर्थः—

वसन्तसेना—भाव! यह दूसरा-

मोरों की केका ध्वनि के द्वारा 'आओ, आओ' इस प्रकार भलीभाँति बुलाया गया, बगुलों की पाँतों के द्वारा वेग पूर्वक उड़कर उत्कण्ठा के साथ मानो आलिंगन किया गया तथा कमलों को छोड़ने वाले हंसों के द्वारा अत्यन्त घबराहट के साथ देखा गया बादल दिशाओं को काजल के समान काली करता हुआ उमड़ रहा है।।२३।।

टीका— शिखण्डिनां = मयूराणां, केकाभिः = वचनैः, एहि एहि = आगच्छ आगच्छ, इति = इत्थम्, पटुतरम् = उच्चैस्तरम्, आक्रन्दितः = आहूतः, आदरे त्र वीप्सा। बलाकया = बकपंक्त्या, सरभसं = सवेगं, प्रोड्डीय = उत्पत्य, सोत्कण्ठं = उत्कण्ठापूर्वकम् अथवा साभिलाषम्, आलिंगितः = कृतालिंगनः इव। उज्झितानि = परित्यक्तानि पंकजानि = कमलानि यैः ताद शैः, हंसैः = मरालैः, वर्षाकाले हंसाः कमलवनं जलाशयं वा परित्यज्य मानसं सरः गच्छन्ति इति प्रसिद्धिः, अतितराम् = अत्यधिकं; सोद्वेगं = सोत्कण्ठं यथा तथा, उद्वीक्षितः = अवलोकितः, मेघः = जलदः, दिशः = काष्ठाः, अ जनेन = कज्जलेन मेचकाः = मलिनाः, कुर्वन् इव समुत्तिष्ठति = समुज्ज म्भते।।२३।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।२३।।

विटः— **एवमेतत्; तथा हि पश्य**

निष्पन्दीकृतपद्मषण्डनयनं नष्टक्षपावासरं
विद्युद्भिः क्षणनष्टद ष्टतिमिरं प्रच्छादिताशामुखम्।
निश्चेष्टं स्वपितीव संप्रति पयोधाराग हान्तर्गतं
स्फीताम्भोधरधामनैकजलदच्छत्रापिधानं जगत्।।२४।।

अन्वयः— निष्पन्दीकृतपद्मषण्डनयनं, नष्टक्षपावासरं, विद्युद्भिः, क्षणनष्टद ष्टतिमिरं, प्रच्छादिताशामुखं, स्फीताम्भोधरधामनैकजलदच्छत्रापिधानं, पयोधाराग हान्तर्गतं, जगत्, सम्प्रति, निश्चेष्टं, स्वपिति, इव।।२४।।

शब्दार्थः— निष्पन्दीकृतपद्मषण्डनयनं = कमलों के समूह रूपी नेत्रों को बन्द करने वाला, नष्टक्षपावासरं = जिसके रात-दिन खतम हो गये हैं, ऐसा, विद्युद्भिः = बिजलियों से; क्षणनष्टद ष्टतिमिरं = क्षण भर में खतम हो जाता है और फिर दिखलाई पड़ने लगता है अन्धकार जिसमें ऐसा, प्रच्छादिताशामुखं = ढँका है दिशारूपी मुँह जिसका ऐसा, स्फीताम्भोधरधामनैक-जलदच्छत्रापिधानं = बढ़े हुए बादलों के निवासस्थान आकाश में बहुत से बादल ही जिसके ढकने वाले छाता हैं ऐसा, पयोधाराग हान्तर्गतं = जलधारारूपी घर में स्थित, जगत् = संसार, सम्प्रति = इस समय, निश्चेष्टं = निश्चलतापूर्वक, स्वपिति इव = सो सा रहा है।।

अर्थः—

विट— तुम्हारा कहना ठीक है। और देखो-

जिसने कमलों के समूह रूपी नेत्रों को बन्द कर लिया है, जिसके रात-दिन समाप्त हो गये हैं अर्थात् जिसके रात-दिन का पता नहीं चल रहा है। जिसमें बिजली की चमक से क्षण में अन्धकार समाप्त हो जाता है और पुनः दिखलाई पड़ने लगता है, जिसका दिशा रूपी मुँह ढक गया है, बढ़े हुए बादलों के निवास स्थान आकाश में बहुत से बादल ही जिसके

ढँकने वाले छाता हैं, ऐसा संसार इस समय जलधारा रूपी घर के भीतर मानो निश्चल होकर सो रहा है।।२४।।

टीका— निष्पन्दीकृतानि = निश्चलीकृतानि, मुकुलितानीत्यर्थः पद्मषण्डानि = कमलसमूहाः एव नयनानि = नेत्राणि येन तत्; निमीलितकमलनेत्रमिति भावः; नष्टौ = अदर्शनं गतौ, मेघैराव तत्वात् परिचेतुमशक्यौ इत्यर्थः; क्षपावासरौ = निशादिवसौ यस्मिन् तत्; विद्युद्भिः = चंचलाभिः; क्षणं = किंचित्कालं नष्टम् = अदर्शनं प्राप्तं पश्चात् द ष्टम् = अवलोकितं तिमिरम् = अन्धकारः यत्र तथाभूतं; प्रच्छादितानि = आच्छादितानि मेघसमूहैः इति शेषः, आशाः = दिशः एव मुखानि यस्य तत्; स्फीतानां = व द्धिंगतानाम्, बहूनामित्यर्थः अम्भोधराणां = जलधराणां धामनि = स्थाने, आकाशे इत्यर्थः, ये नैकजलदाः = भूरिमेघाः एव छत्राणि = आतपत्राणि तैः अपिधानम् आच्छानं यस्य तत्; पयसां = जलानां धाराः = प्रवाहाः एव ग हाणि = भवनानि तेषाम् अन्तर्गतम् = मध्यस्थितं; जगत् = भुवनं; सम्प्रति = अधुना, निश्चेष्टं = निश्चलं, स्वपिति इव = शयनं करोति इवेत्युप्रेक्षा।।२४।।

'पद्मषण्ड' में नेत्रत्व का, जलद में छत्रत्व का आरोप करने से रूपक और 'जगत् स्वपिति इव' मे उत्प्रेक्षा अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।२४।।

वसन्तसेना— भाव एव्वं ण्णेदं। ता पेक्ख पेक्ख। (भाव! एवं न्विदम्; तत्पश्य पश्य।)

गता नाशं तारा उपकृतमसाधाविव जने
वियुक्ताः कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः।
प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपतिशस्त्रस्य शिखिना
द्रवीभूतं मन्ये पतति जलरूपेण गगनम्।।२५।।

अन्वयः— असाधौ, जने, उपकृतम्, इव, ताराः, नाशं, गताः; कान्तेन, वियुक्ताः, स्त्रियः, इव, ककुभः, न, राजन्ति; त्रिदशपतिशस्त्रस्य, शिखिना, प्रकामम्, अन्तस्तप्तम्, (अत एव), द्रवीभूतं, गगनं, जलरूपेण, पतति, (इति, अहम्), मन्ये।।२५।।

शब्दार्थः—असाधौ = दुष्ट, जने = आदमी पर, उपकृतम् = उपकार (की), इव = तरह, ताराः = तारे, नाशं = नाश को, गताः = प्राप्त हो गए, कान्तेन = प्रेमी के द्वारा, वियुक्ताः = वियुक्त, छोड़ी गयी, स्त्रियः = स्त्रियों, इव = जैसी, ककुभः = दिशायें, न = नहीं, राजन्ति = शोभित हो रही है। त्रिदशपतिशस्त्रस्य = देवताओं के स्वामी (इन्द्र) के शस्त्र-वज्र की, शिखिना = आग से, प्रकामम् = अत्यन्त, अन्तरस्तप्तं = भीतर तपा हुआ, (अत एव = इसीलिये), द्रवीभूतं = पिघला हुआ, गगनम् = आकाश, जलरूपेण = जल के रूप से, पतति = गिर रहा है, (इति = ऐसा, अहम् = मैं) मन्ये = मानता हूँ।।

अर्थः— वसन्तसेना — भाव! ऐसा ही है। देखो-देखो तो-

दुष्ट आदमी पर किये गये उपकार की भाँति सभी तारे नाश को प्राप्त हो गए हैं प्रेमी के द्वारा वियुक्त स्त्रियों के समान, दिशाएँ शोभित नहीं हो रही हैं। देवताओं के स्वामी इन्द्र के वज्र की आग से भीतर ही अत्यन्त तपा हुआ आकाश मानो पिघलकर जल के रूप में गिर रहा है।।२५।।

टीका— असाधौ = दुष्टे; जने = व्यक्तौ, उपकृतं = विहितोपकारः इव; ताराः = नक्षत्राणि, नाशम् = अदर्शनं, गताः = प्राप्ताः। कान्तेन = प्रियेण, वियुक्ताः = वियोगं प्रापिताः, स्त्रियः =

वनिताः इव; ककुभः = दिशः न राजन्ति = न शोभन्ते। त तीया = यौवनाख्या दशा येषां ते त्रिदशाः = देवाः तेषां पतिः = राजा इन्द्रः इत्यर्थः तस्य शस्त्रस्य = आयुधस्य, वज्रस्येत्यर्थः, शिखिना = वह्निना, इन्द्रवज्राग्निना इत्यर्थः, अन्तः = अभ्यन्तरे तप्तं = सन्तप्तम् उष्णतां प्राप्तमित्यर्थः, अत एव द्रवीभूतं = द्रवतां प्राप्तं, गगनम् = आकाशम्, जलरूपेण सलिलरूपेण, पतति = स्रवति, इति अहं मन्ये = सम्भावयामीत्यर्थः।।२५।।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में उपमा और उत्तरार्द्ध में उत्प्रेक्षा अलंकार है। इस श्लोक के छन्द का नाम है-शिखरिणी।।२५।।

अपि च, पश्य—

उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः करोति तिमिरौघम्।
प्रथमश्रीरिव पुरुषः करोति रूपाण्यनेकानि।।२६।।

अन्वयः— प्रथमश्रीः, पुरुषः, इव, मेघः, अनेकानि, रूपाणि, करोति, (सः, कदाचित्) उन्नमति, नमति, वर्षति, गर्जति, तिमिरौघं, करोति।।२६।।

शब्दार्थः— प्रथमश्रीः = पहले पहल धन पाये हुए, पुरुषः = पुरुष (के), इव = समान, मेघः = बादल, अनेकानि = बहुत से, रूपाणि = रूपों को, करोति = कर रहा है। (सः = वह मेघ, कदाचित् = कभी) उन्नमति = उमड़ रहा है, नमति = झुक रहा है, वर्षति = बरस रहा है, गर्जति = गरज रहा है, तिमिरौघं = अन्धकार के समूह को, करोति = कर रहा है।

और भी देखो-

अर्थः— पहले पहल धन पाये हुए पुरुष के समान बादल बहुत से रूपों को (धारण) कर रहा है। (कभी तो वह) उमड़ रहा है, (कभी) झुक रहा है, (कभी) बरस रहा है, गरज रहा है तथा (कभी) अँधेरा कर रहा है।।२६।।

टीका— प्रथमा = अचिरागता श्रीः = सम्पत्तिः यस्य ताद शः, पुरुषः = जनः इव, मेघः = पयोदः, अनेकानि = विविधानि, रूपाणि = आकृतीः, करोति = विदधाति। सः = मेघः, कदाचित् उन्नमति = उत्तिष्ठति, कदाचित् नमति = अधः आगच्छति, कदाचित् वर्षति = जलं मु चति, कदाचित् गर्जति = गर्जनं करोति, कदाचित् तिमिरौघम् = अन्धकारसमूहं, करोति = विस्तारयतीत्यर्थः। प्रथमप्राप्तधनः अपि कदाचित् उन्नमति = गर्वमावहति, उर्ध्वशिरः सन् गच्छति, नमति = नम्रः भवति, वर्षति, = पर्याप्तधनं ददाति, गर्जति = क्रोधेन उच्चैः वदति, तिमिरौघं = पाप समूहं, करोति।।२६।।

एक ही मेघका उमड़ना आदि अनेक क्रियाओं से सम्बन्ध होने के कारण श्लोक में पूर्वार्द्ध में दीपक अलंकार और उत्तरार्द्ध में उपमा अलंकार है। इस प्रकार इस श्लोक में दीपक एवं उपमाकी संस ष्टि अलंकार एवं आर्या छन्द है।

विटः— **एवमेतत्**

विद्युद्भिर्ज्वलतीव संविहसतीवोच्चैर्बलाकाशतै-
र्माहेन्द्रेण विवल्गतीव धनुषा धाराशरोद्गारिणा।
विस्पष्टाशनिनिस्वनेन रसतीवाघूर्णतीवानिलै-
र्नीलैः सान्द्रमिवाहिभिर्जलधरैर्धूपायतीवाम्बरम्।।२७।।

अन्वयः— अम्बरम्, विद्युद्भिः, ज्वलति, इव; बलाकाशतैः, उच्चैः, संविहसति, इव; धाराशरोद्गारिणा, माहेन्द्रेण, धनुषा, विवल्गति, इव; विस्पष्टाशनिनिस्वनेन, रसति, इव; अनिलैः, आघूर्णति, इव; अहिभिः, इव, नीलैः, जलधरैः, सान्द्रं, धूपायति, इव।।२७।।

शब्दार्थः—अम्बरम् = आकाश, विद्युद्भिः = विजलियों से, ज्वलति इव = जल सा रहा है। बलाकाशतैः = बगुलों की सैकड़ों पातों से, उच्चैः = जोर से, संविहसति इव = हँस सा रहा है। धाराशरोद्गारिणा = धारा रूपी बाणों को बरसाने वाले, माहेन्द्रेण = इन्द्र के, घनुषा = धनुष से, विवल्गति इव = पैतरा बदल सा रहा है। विस्पष्टाशनिनिस्वनेन = स्पष्ट, वज्र के घोष = आवाज से, रसति इव = गरज सा रहा है। अनिलैः = हवाओं के द्वारा, आघूर्णति इव = घूम सा रहा है। अहिभिः = साँपों (की) इव = भाँति, नीलैः = नीले, जलधरैः = बादलों से, सान्द्रं = खूबघने रूप में, धूपायति इव = धूपित सा हो रहा है, धूपसा दिखाया जा रहा है।।

अर्थः— विट — ऐसा ही है-

आकाश बिजलियों से मानो जल रहा है, बगुलों की सैकड़ों पाँतों से अत्यधिक हँस सा रहा है, धारा रूपी बाणों को बरसाने वाले इन्द्रधनुष से मानो पैतरा बदल रहा है; वज्र के स्पष्ट घोष से गर्जन सा कर रहा है, हवाओं के द्वारा घूम सा रहा है और नीले सर्पों की भाँति (काले) बादलों से खूब घने रूप में धूपित सा हो रहा है।।२७।।

टीका— अम्बरम् = आकाशम्, विद्युद्भिः = तडिद्भिः, ज्वलति = उद्भासते इव। बलाकाः = बकपंक्तयः तासां शतैः = शतसंख्याकैः समूहैः इत्यर्थः, उच्चैः = तारं यथा तथा, संविहसति = सम्यक् हासं करोति इव, धाराः = जलधाराः एव शराः = बाणाः तान् उद्गिरति = वर्षति इति तेन, माहेन्द्रेण = इन्द्रसम्बन्धिना, धनुषा = कोदण्डेन, विवल्गति इव = प्लुतगति करोति इव। विस्पष्टः = सुव्यक्तः यः अशनेः = वज्रस्य स्वनः = ध्वनिः तेन, विद्युन्निर्घोषेणेत्यर्थः, रसति उच्चैः शब्दं करोति इव। अनिलैः = वायुभिः, आघूर्णति = भ्रमति इव, अहिभिः = सर्पैः इव, नीलैः = श्यामैः, जलधरैः = पयोदैः, सान्द्रम् = अत्यर्थं यथा तथा, धूपायति = धूपितं भवति इव।।२७।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'अहिभिः इव जलधरैः' में उपमा है। इस में प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।२७।।

वसन्तसेना—

जलधर! निर्लज्जस्त्वं यन्मां दयितस्य वेश्म गच्छन्तीम्।
स्तनितेन भीषयित्वा धाराहस्तैः पराम शसि।।२८।।

अन्वयः— हे जलधर! त्वं, निर्लज्जः, (असि) यत्, दयितस्य, वेश्म, गच्छन्तीं, मां, स्तनितेन, भीषयित्वा, धाराहस्तैः, पराम शसि।।२८।।

शब्दार्थः—हे जलधर! = हे जल से भरे-पूरे बादल! त्वं = तुम, निर्लज्जः = निर्लज्ज, (असि = हो), यत् = जो कि, दयितस्य = प्रेमी के, वेश्म = घर को, गच्छन्तीं = जाती हुई, मां = मुझको, स्तनितेन = गर्जन से, भीषयित्वा = डरा कर, धाराहस्तैः = धारा रूपी हाथों से, पराम शसि = छू रहे हो।।

अर्थः— वसन्तसेना — हे जल से भरे-पूरे बादल! तुम निर्लज्ज हो, जो कि प्रेमी के घर जाती हुई मुझको गर्जन से डराकर जल धरा रूपी हाथों से छू रहे हो।।२८।।

टीका— हे जलधर-हे पयोधर! त्वं निर्लज्जः = त्रपाविहीनः, लज्जाशून्यः इति यावत् असीति शेषः, यत् = यस्मात्, दयितस्य = प्रियस्य, वेश्म = भवनं, गच्छन्तीं मां; स्तनितेन = गर्जितेन, भीषयित्वा = त्रासयित्वा, धाराः = जलधाराः एव हस्ताः = कराः तैः, पराम शसि = स्प शसि।।२८।।

इस श्लोक में समासोक्ति अलंकार तथा आर्या छन्द है।।२८।।

भोः शक्र!

किं ते ह्यहं पूर्वरतिप्रसक्ता यत्त्वं नदस्यम्बुदसिंहनादैः?।
न युक्तमेतत्प्रियकाङ्क्षिताया मार्गं निरोद्धुं मम वर्षपातैः।।२६।।

अन्वयः— भो शक्र! अहं, किं, ते, पूर्वरतिप्रसक्ता, (आसम्)? यत्, त्वम्, अम्बुदसिंहनादैः, नदसि; प्रियकांक्षितायाः, मम, मार्गं, वर्षपातैः, निरोद्धुम्, एतत्, न, युक्तम्।।२६।।

शब्दार्थः— भो शक्र! = हे इन्द्र! अहं = मैं, किं = क्या, ते = तुम्हारे, पूर्वरति = प्रसक्ता = पहले प्रेम में आसक्त, (आसम् = थी)! यत् = जिससे, त्वम् = तुम, अम्बुदसिंहनादैः = बादलों के हिंनादों से, नदसि = गरज रहो हो? प्रियकाङ्क्षितायाः = प्रेमी को चाहने वाली, मम = मेरे, मार्गं रास्ता को, वर्षपातैः = वर्षा करके, निरोद्ध्म् = रोकना, एतत् = यह, न युक्तम् = ठीक नहीं है।।

अर्थः— हे इन्द्र! मैं क्या कभी पहले तुम्हारे प्रेम में आसक्त थी, जो तुम बादलों के सिंहनादों से गरज रहे हो? प्रेमी को चाहने वाली मेरा, वर्षा करके रास्ता रोकना यह ठीक नहीं है।।२६।।

टीका— भो शक्र! = हे इन्द्र! अहं = वसन्तसेना, किं ते = तव; पूर्वं = पुरा, रतौ = प्रेम्णि सम्भोगे वा प्रसक्ता = आसक्ता, आसमिति शेषः। यत् = यस्मात् कारणात्, त्वम् अम्बुदानां = जलदानां = सिंहनादैः सिंहवद्गर्जनैः क्रोधाभिव्य जकैः शब्दैः इति भावः; नदसि = गर्जसि, तथा प्रियः = प्रेमास्पदः चारुदत्तः इत्यर्थः काङ्क्षितः = वा छितः, सम्भोक्तुमिति शेषः, यया यस्याः वा तस्याः, मम = अभिसरणशीलायाः वसन्तसेनायाः; वर्षपातैः = धारासम्पातैः, निरोद्धुम् = अवरोद्धुं निवारयितुमित्यर्थः, एतत् न युक्तम् = न समीचीनम्।।२६।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है। यहाँ प्रयुक्त छन्द का नाम है-उपजाति।।२६।।

अपि च,—

यद्वदहल्याहेतोम षा वदसि शक्र! गौतमो स्मीति।
तद्वन्ममापि दुःखं निरपेक्ष! निवार्यतां जलदः।।३०।।

अन्वयः— हे शक्र! यद्वत्, अहल्याहेतोः, गौतमः, अस्मि, इति, (त्वम्) म षा, वदसि, हे निरपेक्ष! तद्वत्, मम, अपि, दुःखं (जानीहि, अतः), जलदः, निवार्यताम्।।३०।।

शब्दार्थः— हे शक्र = हे इन्द्र! यद्वत् = जिस प्रकार, अहल्याहेतोः = अहल्या के लिये, गौतमः = गौतम (अहल्या के पति का नाम), अस्मि = हूँ, इति = ऐसा, (त्वम् = तुम), म षा = असत्य, वदसि = कहते हो, हे निरपेक्ष! = हे पराई पीडा को न जानने वाले! तद्वत् = उसी प्रकार, मम = मेरे, अपि = भी, दुःखं = दुःख को, (जानीहि = जानो, अतः = इसलिये) जलदः = बादल, निवार्यताम् = रोका जाय।।

और भी-

अर्थः— हे इन्द्र — जिस प्रकार अहल्या के लिये 'मैं गौतम हूँ' यह तुमने झूठ कहा था। हे पराई पीडा को न जानने वाले! उसी प्रकार मेरा भी दुःख जानो और बादलों को रोक लो।।३०।।

टीका— हे शक्र = हे इन्द्र! यद्वत् = यथा, अहल्या = गौतमपत्नी तस्याः हेतोः = कारणात्, तया सह रन्तुमितिभावः, 'गौतमः अस्मि' इति = इत्थं त्वम्, म षा = असत्यं, वदसि = कथयसि, हे निरपेक्ष = हे परपीडानभिज्ञ! तद्वत् = तेनैव प्रकारेण, ममापि = कामपीडितायाः मम वसन्तसेनायाः अपीत्यर्थः, दुःखं = पीडां जानीहि, अतः जलदः = मम प्रियभवनं गमने विघ्नकारकः पयोदः, निवार्यताम् = अपसार्यताम्।।३०।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।

अपि च,—

गर्ज वा वर्ष वा शक्र! मु च वा शतशो शनिम्।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति।।३१।।

अन्वयः— हे शक्र! गर्ज, वा, वर्ष, वा, शतशः, अशनिं, मु च, (किन्तु) दयितं, प्रति, प्रस्थिताः, स्त्रियः, रोद्धुं, न, शक्याः, हि।।३१।।

शब्दार्थः— हे शक्र! = हे इन्द्र! गर्ज = गरजो, वा = अथवा, वर्ष = बरसो, वा = अथवा, शतशः = सैकड़ों वार, अशनिं = वज्र को, मु च = छोड़ो, (किन्तु = परन्तु) दयितं प्रति = प्रेमी के पास, प्रस्थिताः = जाती हुई, स्त्रियः = स्त्रियाँ, रोद्धुं = रोकने के न शक्याः = योग्य नहीं हैं, = अर्थात् नहीं रोकी जा सकती।।

और भी—

अर्थः— हे इन्द्र! गरजो चाहे बरसो अथवा सैकड़ों बार वज्र छोड़ो। किन्तु प्रेमी के पास जाती हुई स्त्रियाँ नहीं रोकी जा सकतीं।।३१।।

टीका— हे शक्र = हे देवराज! गर्ज = गर्जनं कुरु, वा = अथवा, वर्ष = जलवर्षणं कुरु, वा = किं वा, शतशः = अनेकशः इत्यर्थः, अशनिं = वज्रं, मु च = पातय, किन्तु दयितं = प्रणयिनं प्रति, प्रस्थिताः = चलिताः, स्त्रियः = कामिन्यः, रोद्धुम् = निवारयितुम्, न शक्या हि = न सम्भावाः।।३१।।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में दीपक एवं उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है— अनुष्टुप्।।३१।।

यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरूषाः।
अयि! विद्युत्प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि।।३२।।

अन्वयः— यदि, वारिधरः, गर्जति, तद्, गर्जतु, नाम, (यतः), पुरुषाः, निष्ठुराः, (भवन्ति, किन्तु), अयि, विद्युत्! त्वम्, अपि, च, प्रमदानां, दुःखं, न, जानासि?।।३२।।

शब्दार्थः— यदि, वारिधरः = बादल, गर्जति = गरजता है, तत् = तो, गर्जतुनाम = भलेहीं गरजे, (यतः = क्योंकि) पुरुषाः = पुरुष, निष्ठुराः = निर्दयी, भवन्ति = होते हैं, किन्तु), अयि = हे, विद्युत्

= बिजली, त्वम् = तुम, अपि = भी, प्रमदानाम् = कामिनियों की, दुखं = पीडाको, न जानासि = नहीं जानती हो?।।

अर्थः— यदि बादल गरजता है तो वह भले ही गरजे, क्योंकि पुरुष निर्दयी होते हैं। किन्तु हे बिजली! तुम भी क्या कामिनियों की पीडा को नहीं जानती हो।।३२।।

टीका— यदि = चेत्, वारिधरः = जलदः, गर्जति = ध्वनति, तत् = तु, गर्जतु = नदतु, नामेति स्वीकारे, यतः पुरुषाः = पुमांसः, निष्ठुराः = निर्दयाः, भवन्तीति शेषः, किन्तु अयि विद्युत्! = हे चपले! त्वमपि च = त्वं स्त्री भूत्वा अपीत्यर्थः, प्रमदानां = कामपीडितानां स्त्रीणां, दुःखं = पीडाम्, न जानासि = न वेत्सि?।।३२।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-आर्या।।३२।।

विटः— **भवति! अलमलमुपालम्भेन। उपकारिणी तवेयम्,-**

ऐरावतोरसि चलेव सुवर्णरज्जुः
शैलस्य मूर्ध्नि निहितेव सिता पताका।
आखण्डलस्य भवनोदरदीपिकेय-
माख्याति ते प्रियतमस्य हि सन्निवेशम्।।३३।।

अन्वयः— ऐरावतोरसि, चला, सुवर्णरज्जुः, इव, शैलस्य, मुर्ध्नि, निहिता, सिता, पताका, इव, आखण्डलस्य, भवनोदरदीपिका, इव, ते, प्रियतमस्य, सन्निवेशम्, आख्याति, हि।।३३।।

शब्दार्थः— ऐरावतोरसि = इन्द्र के हाथी ऐरावत की छाती पर, चला = चंचल, सुवर्णरज्जुः = सोने की रस्सी, इव = जैसी, शैलस्य = पर्वत की, मूर्ध्नि = चोटी पर, निहिता = रक्खी गई, सिता = सफेद, पताका = ध्वजा, इव = जैसी, आखण्डलस्य = इन्द्र के, भवनोदरदीपिका = घर की दीपिका, इव = जैसी, इयं = यह, बिजली, ते = तुम्हारे, प्रियतमस्य = प्रेमी के, सन्निवेशम् = घर को, आख्याति = बतला रही है।।

अर्थः— विट — श्रीमती जी! उलाहना देना बन्द कीजिए। यह बिजली तुम्हारा उपकार करने वाली है -

इन्द्र के हाथी ऐरावत की छाती पर च चल सोने की रस्सी के समान, पर्वत की चोटी पर रक्खी गई सफेद पताका की भाँति, इन्द्र के घर की दीपिका के तुल्य यह बिजली तुम्हारे प्रेमी के घर को बतला रही है।।३३।।

टीका— ऐरावतस्य = इन्द्रगजस्य उरसि = वक्षसि, स्थापितेति, चला चंचला, सुवर्णरज्जुः = सुपर्णनिर्मितं दाम इव शैलस्य = पर्वतस्प, मूर्ध्नि = शिखरे, निहिता = स्थापिता, सिता = धवला, पताका = ध्वजः, इव, आखण्डयति = विदारयति पर्वतान् इति आखण्डलः तस्य आखण्डलस्य = इन्द्रस्य, भवनोदरस्य = ग हमध्यस्य दीपिका = प्रदीपिका इव, इयं = विद्युत्, ते = तव, वसन्तसेनायाः इत्यर्थः, प्रियतमस्य = प्रेमपात्रस्य, चारुदत्तस्येत्यर्थः, सन्निवेशं = भवनम्, आख्याति = प्रकाशेन दर्शयति हि।।३३।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।३३।।

वसन्तसेना — भाव! एव्वं तं ज्जेव्व एदं गेहं। (भाव! एवं तदेवैतद्गेहम्।)

विटः— सकलकलाभिज्ञाया न किंचिदिह तवोपदेष्टव्यमस्ति। तथापि स्नेहः प्रलापयति। अत्र प्रविश्य कोपो न्यन्तं न कर्त्तव्यः।

यदि कुप्यसि नास्ति रतिः, कोपेन विना थवा कुतः कामः?।

कुप्य च कोपय च त्वं प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम्।।३४।।

अर्थः—

वसन्तसेना—भाव! ऐसी ही बात है। यह वही घर है।

विट — सभी कलाओं की जानकार तुम्हारे लिये यद्यपि कुछ उपदेश नहीं देना है। तो भी स्नेह कुछ कहने के लिये प्रेरित कर रहा है। यहाँ चारुदत्त के घर में प्रवेश करके बहुत अधिक कोप नहीं करना चाहिए।

अन्वयः— यदि, कुप्यसि, रतिः, न, अस्ति, अथवा, कोपेन, विना, कामः, कुतः? (अतः) त्वं, कुप्य, च, कान्तम्, च, कोपय, त्वं, प्रसीद, च, (कान्तम्) च, प्रसादय,।।३४।।

शब्दार्थः— यदि, कुप्यसि = कोपकरती हो, रतिः = प्रेम, न = नहीं, अस्ति = है। अथवा कोपेन = कोप के, विना = अभाव में, कामः = सम्भोग का आनन्द, कुतः = कहाँ? (अतः = इसलिये) त्वं = तुम, कुप्य = कोप करो, च = और, कान्तम् = प्रेमी को, च = भी, कोपय = कुपित करो, त्वं = तुम, प्रसीद = खुश होओ, च = और, (कान्तम् = प्रेमी को), च = भी, प्रसादय = खुश करो।

अर्थः— यदि तुम केवल कोप ही करती हो तो अनुराग नहीं है। अथवा कोप के बिना सम्भोग का आनन्द कहाँ! तुम कोप करो और प्रेमी को भी कोप कराओ एवं तुम खुश होओ और प्रेमी को भी खुश करो।।३४।।

टीका— यचि कुप्यसि = केवलं कोपम् एव करोसि इत्यर्थः, रतिः = अनुरागः सम्भोगक्रिया वा, नास्ति = न जायते। अथवा कोपेन = ईषत्प्रणयकोपेन विना, पूर्णतया कोपाभावे इत्यर्थः, कामः = सम्भोगानन्दप्राप्तिः, कुतः? अतः त्वं कुप्य = प्रणयकोपम् आवह, च = तथा, कान्तं च = प्रणयिनमपि, कोपय = क्रोधं कारय, पुनः त्वं प्रसीद प्रसन्ना भव, च = तथा, कान्तममि प्रसादय = चुम्बनादिभिः प्रसन्नं कुरु।।३४।। इस श्लोक में आर्या छन्द है।।३४।।

भवतु एवं तावत्। भो भोः! निवेद्यतामार्यचारुदत्ताय

एषा फुल्लकदम्बनीपसुरभौ काले घनोद्भासिते
कान्तस्यालयमागता समदना ह्रष्टा जलार्द्रालका।
विद्युद्वारिदगर्जितैः सचकिता त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी
पादौ नूपुरलग्नकर्दमधरौ प्रक्षालयन्ती स्थिता।।३५।।

अन्वयः— फुल्लकदम्बनीपसुरभौ, घनोद्भासिते, काले, समदना, ह्रष्टा, जलार्द्रालका, विद्युद्वारिदगर्जितैः, सचिकिता, त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी, कान्तस्य, आलयम्, आगता, एषा, नूपुरलग्नकर्दमधरौ, पादौ प्रक्षालयन्ती, स्थिता।।३५।।

शब्दार्थः— फुल्लकदम्बनीपसुरभौ = फुले हुए कदम्ब एवं नीपके कारण सुन्दरगन्धवाले, घनोद्भासिते = बादलों से सुशोभित, काले = समय में, समदना = काम से पीडित, ह्रष्टा = प्रसन्न, जलार्द्रालका = पानी से गीले केशोंवाली, विद्युद्वारिदगर्जितैः = बिदली तथा बादलों के

गरजने से, सचकिता = भयभीत, त्वद्दर्शनाकाङक्षिणी = तुम्हारे दर्शन को चाहने वाली, कान्तस्य = प्रियके, आलयम् = घर को, आगता = आई हुई, एषा = यह वसन्तसेना, नूपुरलग्नकर्दमधरौ = नूपुर में लिपटे हुए कीचड़ को धारण करने वाले, पादौ = पैरों को, प्रक्षालयन्ती = धोती हुई, स्थिता = खड़ी है।।

अर्थः— अच्छा! ऐसा ही। हे, हे! आर्य चारुदत्त से नम्रता के साथ कहो-

फूले हुए कदम्ब एवं नीप के कारण सुन्दर गन्ध वाले, बादलों से सुशोभित समय में काम से पीडित, प्रसन्न, पानी से गीले केशों वाली, बिजली तथा बादलों के गरजने से भयभीत, तुम्हारे दर्शन को चाहने वाली; प्रिय (चारुदत्त) के घर आई हुई यह (वसन्तसेना) नूपुर में लिपटे हुए कीचड़ को धारण करने वाले पैरों को धोती हुई (दरवाजे पर) खड़ी है।।३५।।

टीका— फुल्लैः = विकसितैः कदम्बैः = प्रियकैः नीपैः = धाराकदम्बैश्च सुरभिः = सुगन्धितः तस्मिन्; घनैः = मेघैः ऊद्भासिते = सुशोभिते; काले = समये; मदनेन = कामेन सहिता = संयुक्ता समदना = कामविह्वला इत्यर्थः; हृष्टा = प्रसन्ना, प्रियमिलनाशया प्रसन्ना इतिभावः; जलैः = मेघमुक्तैः सलिलैः आर्द्राः = सिक्ताः अलकाः = केशाः यस्याः सा; विद्युद्भिः = तडिद्भिः वारिदानां = जलदानां गर्जितैश्च = स्तनितैश्च; सचकिता = भयभीता; तव = चारुदत्तस्य दर्शनम् = अवलोकनम् आकाङ्क्षति इति त्वर्शनाकाङ्क्षिणी = तव दर्शनाय उत्कण्ठिता इत्यर्थः कान्तस्य = प्रियस्य, तवेत्यर्थः; आलयम् = भवनम; आगता = प्राप्ताः एषा = वसन्त सेना; नूपुरयोः = मंजीरयोः, कर्दमान् = पंकान् धरतः इति नूपुरलग्नकर्दमधरौ, पादौ = चरणौ, प्रक्षालयन्ती = धावयन्ती; स्थिता = वर्तमानास्ति।।३५।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।३५।।

चारुदत्तः— (आकर्ण्य) वयस्य! ज्ञायतां किमेतदिति।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (वसन्तसेनामुपगम्य; सादरम्) सोत्थि भोदीए। (यद्भवानाज्ञापयति। स्वस्ति भवत्यै।)

वसन्तसेना— अज्ज! वंदामि। साअदं अज्जस्स। (विटं प्रति) भाव! एसा छत्तधारिआ भावस्स ज्जेव्व भोदु। (आर्य! वन्दे। स्वागतमार्यस्य। भाव! एषा छत्रधारिका भावस्यैव भवतु।)

विटः— (स्वगतम्) अनेनोपायेन निपुणं प्रेषितो स्मि। (प्रकाशम्) एवं भवतु, भवति वसन्तसेने!

साटोपकूटकपटानृतजन्मभूमेः
शाठ्यात्मकस्य रतिकेलिकृतालयस्य।
वेश्यापणस्य सुरतोत्सवसंग्रहस्य
दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रयसिद्धिरस्तु।।३६।।

अर्थः—

चारुदत्त— (सुनकर) मित्र! मालूम करो। यह क्या है?

विदूषक— जैसी आप की आज्ञा। (वसन्तसेना के पास जाकर आदर के साथ) आप का भला हो।

वसन्तसेना— आर्य! प्रणाम कर रही हूँ। आपका स्वागत है। (विट से) भाव! छाता लेकर पीछे-पीछे चलने वाली यह स्त्री आप के साथ ही रहे।

अन्वयः— साटोपकूटकपटान तजन्मभूमेः:, शाठ्यात्मकस्य, रतिकेलिकृतालयस्य, सुरतोत्सवसंग्रहस्य, वेश्यापणस्य, दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रयसिद्धिः, अस्तु।।३६।।

शब्दार्थः— साटोपकूटकपटान तजन्मभूमे = गर्व के सहित माया छल एवं झूठ के जन्म-स्थान, शाठ्यात्मकस्य, = धूर्तता रूप आत्मा वाले, रतिकेलिकृतालयस्य = सम्भोग-क्रीडा के द्वारा अपना घर बनाया गया, सुरतोत्सवसंग्रहस्य = रमण के सुख के संग्रहवाले, वेश्यापणस्य = वेश्या रूपी बाजार की, दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रसिद्धिः = उदारता से बिकनेवालीः वस्तु की सुख के साथ लेन-देन अस्तु = होवे।।

अर्थः—

विट— (अपने आप) इस उपाय से बड़ी चतुरता के साथ लौटा दिया गया हूँ। (प्रकट रूप में) ऐसा ही हो। सुश्री वसन्तसेने!

गर्व के सहित माया, छल एवं झूठ का जो जन्मस्थान है अर्थात् जो गर्व आदि को उत्पन्न करता है धूर्तता ही जिस की आत्मा है, सम्भोग-क्रीडा ने जिसको अपना घर बनाया है अर्थात् जिसमें रतिक्रीडा की प्रधानता रहती है। जहाँ रमण के सुख का संग्रह है, ऐसे वेश्या रूपी बाजार की उदारता से न कि पैसे से बिकने वाली वस्तु की सुख के साथ लेन-देन होवे।।३६।।

टीका— आटोपः = गर्वः तेन सहितं साटोपं = सगर्वं यत् कूटं = माया कपटं = छलम् अन तम् = असत्यभाषणं एतेषां जन्मभूमेः = प्रादुर्भावस्थानस्य; शाठ्यं = धूर्तता एव आत्मा = स्वभावः यस्य ताद शस्य; रतिकेलिः = कामक्रीडा तेन कृतः यः आलयः = आश्रयः तस्य; कामक्रीडाश्रयभूतस्येत्यर्थः; सुरतमेव = रमणमेव उत्सवः = आनन्दः तस्य संग्रहः = संचयः यस्मिन् तथाभूतस्य; सम्भोगानन्दपूर्णस्येति भावः; वेश्यापणस्य = वेश्याव्यवहारस्य वेश्यारूपविपणेः वा; दाक्षिण्येन = उदारतया; न तु धनविनिमयेन इत्यर्थः, पण्यस्य = विक्रेयवस्तुनः स्वयौवनरूपस्येत्यभिप्रायः; सुखेन = आनन्देन = निष्क्रयः = आदानप्रदाने, विनिमयः इत्यर्थः; अस्तु = भवतु। अथवा दाक्षिण्यमेव = औदार्यमेव पण्यसुखस्य = मूल्यं दत्वा प्राप्तस्य वेश्यासम्भोगानन्दस्य निष्क्रयः = मूल्यं तस्य सिद्धिः = साफल्यम्; अस्तु = भवतु।।३६।।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।३६।।

(इति निष्क्रान्तो विटः)

वसन्तसेना — अज्ज मित्तेअ! कहिं तुम्हाणं जूदिअरो?। (आर्य मैत्रेय! कुत्र युष्माकं द्यूतकरः?।)

विदूषकः— (स्वगतम्) ही ही भो, जूदिअरो त्ति भणंतीए अलंकिदो पिअवअस्सो। (प्रकाशम्) भोदि! एसो खु सुक्खरुक्खवाडिआए। (आश्चर्यं भोः! द्यूतकर इति भणन्त्यालंकृतः प्रियवयस्यः। भवति! एष खलु शुष्कव क्षवाटिकायाम्।)

वसन्तसेना — अज्ज! का तुम्हाणं सुक्खरुक्खवाडिआ वुच्चदि?। (आर्य! का युष्माकं शुष्कव क्षवाटिकोच्यते?।)

विदूषकः— भोदि! जहिं ण खाईअदि, ण पीईअदि। (भवति! यत्र न खाद्यते, न पीयते।)

(वसन्तसेना स्मितं करोति)

विदूषकः— ता पविसदु भोदी। (तस्मात्प्रविशतु भवती।)

वसन्तसेना – (जनान्तिकम्) एत्थ पविसिअ किं मए भणिदव्वं?। (अत्र प्रविश्य किं मया भणितव्यम्?।)

चेटी – 'जूदिअर! अवि सुहो दे पदोसो? त्ति। ('द्यूतकर! अपि सुखस्ते प्रदोषः?' इति)

वसन्तसेना – अवि पारइस्सं!। (अपि पारयिष्यामि?।)

चेटी – अवसरो ज्जेव्व पारइस्सदि। (अवसर एव पारयिष्यति।)

विदूषकः– पविसदु भोदी। (प्रविशतु भवती।)

वसन्तसेना – (प्रवीश्योपस त्य च, पुष्पैस्ताडयन्ती) अइ जूदिअर! अवि सुहो दे पसोदो?। (अयि द्यूतकर! अपि सुखस्ते प्रदोषः?।)

चारुदत्तः– (अवलोक्य) अये, वसन्तसेना प्राप्ता। (सहर्षमुत्थाय) अयि प्रिये!

सदा प्रदोषो मम याति जाग्रतः
सदा च मे निःश्वसतो गता निशा।
त्वया समेतस्य विशाललोचने!
ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः।।३७।।

(ऐसा कह कर विट निकल जाता है)

अर्थः- वसन्तसेना – आर्य मैत्रेय! आप के जुआरी चारुदत्त कहाँ हैं?

विदूषक– (अपने आप) अरे! आश्चर्य! जुआरी यह कहती हुई इस के द्वारा प्रिय मित्र चारुदत्त अलंक त कर दिये गये। (प्रकट रूप में) श्रीमती जी,! यह सूखे व क्षों वाली वाटिका में हैं।

वसन्तसेना– आर्य! कौन सी सूखे व क्षों वाली आप की वाटिका कही जाती है?।

विदूषक– श्रीमती जी! जहाँ न कुछ खाया जाता है और न कुछ पिया जाता है।

(वसन्तसेना मुस्कराती है)

विदूषक– तो आप भीतर चलें।

वसन्तसेना–(अलग से) यहाँ प्रवेश करके मुझे क्या कहना चाहिए?।

चेटी – जुआरी! आपका सायंकाल तो सुखकर है? ऐसा!

वसन्तसेना – (ऐसा कहने में) क्या पार पा सकूँगी?।

चेटी – अवसर ही पार कर देगा अर्थात् अवसर ही वैसा कहने में आप को समर्थ बना देगा।

वसन्तसेना– आप प्रवेश करें।

विदूषक– (प्रवेश करके और चारुदत्त के पास जाकर फूलों से मारती हुई) जुआरी! आपका सायंकाल तो सुखदायक है?।

चारुदत्त– (देखकर) अरे। वसन्तसेना आ गयी! (प्रसन्नता के साथ उठकर)

अन्वयः सदा, जाग्रतः (एव) मम प्रदोषः, यति, सदा निश्वसतः। (एव) मे, निशा, गता, हे विशाललोचने। अद्य, त्वया, समेतस्य, मम, प्रदोषकः शोकान्तकरः, (भवति)।।३७।।

शब्दार्थः– सदा = हमेशा, जाग्रतः = जागते हुए, (एव = ही), मम = मेरा, प्रदोषः = प्रदोष = सायंकाल, याति = बीतता है। सदा = हमेशा, निश्वसतः = आहें भरते हुए, (एव = ही), मे = मेरी,

निशा = रात, गता = बीती है। हे विशाललोचने = हे बड़ी-बड़ी आँखों वाली! अद्य = आज, त्वया = तुम से, समेतस्य = मिलने वाले, मम = मेरा, प्रदोषकः = सायंकाल, शोकान्तकरः = दुःखों को समाप्त करने वाला, (भवति = हो रहा है)।।

अर्थः— हे प्रिये। हमेशा जागते हुए ही मेरा प्रदोष बीता है। और सर्वदा आहें भरते हुए ही मेरी रात बीती है। किन्तु हे बड़ी-बड़ी आँखों वाली स्त्री। आज तुम्हारे साथ मिलने वाले मेरा प्रदोष दुःखों को समाप्त करने वाला हो रहा है।३७।।

टीका— सदा = सर्वदा! जाग्रतः = अनिद्राणस्य एव, मम = त्वयि बद्धहृदयस्य चारुदत्तस्य इत्यर्थः, प्रदोषः = सन्ध्याकालः, याति = व्यतीतः भवति। सदा = नित्यं निश्वसतः = तव विरहाद्दीर्घं श्वसतः एव, मे = मम, निशा = अखिला रात्रिः; गता व्यतीता; भवतीति शेषः। विशाले दीर्घे लोचने = नेत्रे यस्याः तत्सम्बुद्धौ, अद्य = सम्प्रति, त्वया = प्रियया वसन्तसेनया इत्यर्थः; समेतस्य = सहितस्य, मम = चारुदत्तस्य, प्रदोषकः = सन्ध्यासमयः, शोकान्तकरः = शोकविनाशकः भवतीति शेषः।।३७।।

इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-वंशस्थ।।३७।।

तत्स्वागतं भवत्यै, इदमासनम्; अत्रोपविश्यताम्।

विदूषकः— इदं आसणं, उवविसदु भोदी। (इदमासनम्, उपविशतु भवती।)

(वसन्तसेना नाट्येनासीना, ततः सर्व उपविशन्ति)

चारुदत्तः— वयस्य! पश्य वश्य

वर्षोदकमुद्‍गिरता श्रवणान्तविलम्बिना कदम्बेन।
एकः स्तनो भिषिक्तो न पसुत इव यौवराज्यस्थः।।३८।।

अर्थः - तो आपका स्वागत है। यह आसन है। इस पर बैठें।

विदूषक— यह आसन है। आप बैठें!

(वसन्तसेना अभिनय पूर्वक बैठती है, उसके बाद सभी बैठते हैं)

अन्वयः— वर्षोदकम्, उद्‍गिरता, श्रवणान्तविलम्बिना, कदम्बेन, एकः, स्तनः, यौवराज्यस्थः, न पसुतः, इव, अभिषिक्तः।।३८।।

शब्दार्थः—वर्षोद्‍कम् = वर्षा के जल को, उद्‍गिरता = गिराते हुए, श्रवणान्त-विलम्बिना = कान के छोर पर लटकने वाले, कदम्बेनेन = कदम्ब के फूल के द्वारा, एकः = एक, स्तनः = स्तन, यौवराजस्यथः = युवराज-पद पर बैठे हुए, न पसुतः = राजकुमार (के), इव = समान, अभिषित्तः = नहलादिया गया, अभिषिक्त कर दिया गया।

अर्थः— **चारुदत्त**— मित्र! देखो, देखो-वर्षा के जल को गिराते हुए, कान के छोर पर लटकने वाले कदम्ब के फूल ने एक स्तन का, युवराज-पद पर बैठे हुए राजकुमार के समान, अभिषेक कर दिया है।।३८।।

टीका— वर्षस्य = व ष्टेः, उदकं = जलम्; उद्‍गिरता = मु चयता; श्रवणस्य = कर्णस्य अन्ते = अन्तिमे भागे विलम्बते = आलम्बते इति श्रवणान्त-विलम्बितेन; कदम्बेन = नीपकुसुमेनेत्यर्थः; एकः स्तनः = पयोधरः, वसन्तसेनायाः इतिशेषः; यौवराज्यस्थः = युवराजपदवीम् अधिरूढः; न परस्य = राज्ञः सुतः = पुत्रः इव; अभिसिक्तः = अभिषेकं प्रापितः सि चितः।।३८।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं आर्या छन्द है।।३८।।

तद्वयस्य! क्लिन्ने वाससी वसन्तसेनायाः। अन्ये प्रधानवाससी समुपनीयेतामिति।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि। (यद्भवानाज्ञापयति।)

चेटी— अज्ज मित्तेअ! तिट्ठ तुमं; अहं ज्जेव्व अज्जअं सुस्सूसइस्सं। (तथा करोति) (आर्य मैत्रेय! तिष्ठ त्वम्; अहमेवार्यां शुश्रूषयिष्यामि।)

विदूषकः—(अपवारितकेन) भो वअस्स! पुच्छामि दाव तत्थभोदिं किं पि। (भो वयस्य! प च्छामि तावत्तत्रभवतीं किमपि।)

चारुदत्तः— एवं क्रियताम्।

विदूषकः— (प्रकाशम्) अध किंणिमित्तं उण ईदिसे पणट्टचंदालोए दुद्दिणअंधआरे आअदा भोदी?। (अथ किंनिमित्तं पुनरीद शे प्रनष्टचन्द्रालोके दुर्दिनान्धकार आगता भवती?।)

चेटी — अज्जए! उजुओ बम्हणो। (आर्ये! ऋजुको ब्राह्मणः।)

वसन्तसेना — णं णिउणोत्ति भणाहि। (ननु निपुण इति भण।)

चेटी — एसा खु अज्जआ एव्वं पुच्छिदुं आअदा-'केत्तिअं ताए रअणावलीए मुल्लं' त्ति। (एषा खल्वार्या एवं प्रष्टुमागता-'कियत्तस्या रत्नावल्या मूल्यं' इति।)

विदूषकः— (जनान्तिकम्) भो! भणिदं मए-जधा अप्पमुल्ला रअणावली, बहुमुल्लं सुवण्णभंडअं। ण परितुट्टा अवरं मग्गिदुं आअदा। (भोः! भणितं मयायथा ल्पमूल्या रत्नावली, बहुमूल्यं सुवर्णभाण्डम्। न परितुष्टा, अपरं याचितुमागता।)

चेटी — सा ख अज्जआए अत्तणकेरकेत्ति भणिअ जूदे हारिदा। सो अ सहिओ राअवात्थहारी ण जाणीअदि कहिं गदो त्ति। (सा खल्वार्यया आत्मीयेति भणित्वा द्यूते हारिता। स च सभिको राजवार्ताहारी न ज्ञायते कुत्र गत इति।)

विदूषकः— भोदि! मंतिदं ज्जेव मंतीअदि। (भवति! मन्त्रितमेव मन्त्र्यते।)

चेटी — जाव सो अण्णेसीअदि ताव एदं ज्जेव्व गेण्ह सुवण्णभंडअं। (यावत्सो न्विष्यते तावदिदमेव ग हाण सुवर्णभाण्डम्।) (इति दर्शयति)

(विदूषको विचारयति)

चेटी — अदिमेत्तं अज्जो णिज्झाअदि। ता किं दिट्ठपुरुव्वो दे?। (अतिमात्रमार्यो निध्यायति। तत्किं द ष्टपूर्वस्ते?।)

विदूषकः— भोदि! सिप्पकुसलदाए ओबंधेदि दिट्टिं। (भवति! शिल्पकुशलतयावबध्नाति द ष्टिम्।)

चेटी— अज्ज! वंचिदोसि दिट्टीए। तं ज्जेव्व एदं सुवण्णभंडअं। (आर्य! व चितो सि द ष्ट्या! तदेवेदं सुवर्णभाण्डम्।)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो वअस्स! तं ज्जेव्व एदं सुवण्णभंडअं, जं अम्हाणं गेहे चोरेहिं अवहिदं। (भो वयस्य! तदेवेदं सुवर्णभाण्डम्, यदस्माकं ग हे चौरैरपहृतम्।)

चारुदत्तः— वयस्य!

यो स्माभिश्चिन्तितो व्याजः कर्तुं न्यासप्रतिक्रियाम्।
स एव प्रस्तुतो स्माकं किंतु सत्यं विडम्बना।।३६।।

अर्थः— तो मित्र! वसन्तसेना के दोनों वस्त्र भीग गये हैं। दूसरे दो अच्छे वस्त्र ले आओ।

विदूषक — जैसी आप की आज्ञा।

चेटी — आर्य मैत्रेय। तुम रुको। मैं ही आर्या वसन्तसेना की सेवा करूँगी। (वैसा करती है)।

विदूषक — (अलग से) हे मित्र! इन श्रीमती वसन्तसेना से कुछ पूँछता हूँ।

चारुदत्त— ऐसा ही करो।

विदूषक — (प्रकट रूप में) चन्द्रमा के प्रकाश से रहित दुर्दिन के कारण ऐसे अँधेरे समय में भला आप किसलिए आयी हैं?

चेटी — आर्ये! यह ब्रह्मण भोला-भाला है।

वसन्तसेना — नहीं, यह कहो कि चतुर है।

चेटी — यह आर्या यह पूँछने आई है कि उस रत्नावली का क्या मूल्य है?

विदूषक — (अलग से) अरे! मैंने कहा कि रत्नावली कम कीमत की है, सोने के आभूषण का भाण्ड अधिक दाम का है। (अतः उतने से) सन्तोष न करके और माँगने आयी है।

चेटी — आर्या उसे अपनी समझ कर जुए में हरा दीं। वह जुआ खेलाने वाला राजा के सन्देश को जहाँ तहाँ ले जाने वाला है। अतः न जाने कहाँ चला गया।

विदूषक — श्रीमती जी! कही गयी बात को ही कह रही है।

चेटी — जब तक वह जुआ खेलाने वाला ढूँढा जा रहा है तब तक इस सोने के आभूषणों के भाण्ड को ही आप ले लें। (ऐसा कह कर दिखलाती है)

(विदूषक सोचता-विचारता है)

चेटी — आर्य बहुत ध्यान से देख रहे हैं। तो क्या (यह) पहले से देखा हुआ है?।

विदूषक — श्रीमती जी! अच्छी कारीगरी के कारण आँखों को आकृष्ट कर रहा है।

चेटी — आर्य! (आप अपनी) आँखों के द्वारा ठगे गये हैं अर्थात् आँखों ने आपको धोखा दिया है। यह वही सोने के आभूषणों का पात्र है।

विदूषक — (खुशी के साथ) हे मित्र! यह वही आभूषणों का पात्र है। जिसे हमारे घर में चोरों ने चुराया था।

अन्वयः— अस्माभिः, न्यासप्रतिक्रियाम्, कर्तुं, यः, व्याजः, चिन्तितः; सः, एव, अस्माकं, प्रस्तुतः, (किन्तु), सत्यम्, (इयं) विडम्बना, (अस्ति)।।३६।।

शब्दार्थः— अस्माभिः = हमारे द्वारा, न्यासप्रतिक्रियाम् = धरोहर की क्षतिपूर्ति को, कर्तुं = करने के लिए, यः = जो, व्याजः = बहाना, चिन्तितः = सोचा गया था, सः = वह, एव = ही, अस्माकं = हम लोगों को, प्रस्तुतः = उपस्थित (है); (किन्तु) सत्यम् = सचमुच, (इय = यह,) विडम्बना = जालसाजी (अस्ति = है)।।

अर्थः— चारुदत्त— मित्र! जो बहाना हम लोगों ने धरोहर की क्षति-पूर्ति करने के लिये सोचा था वही (बहाना) हमारे सामने उपस्थित है। किन्तु सचमुच यह जाल साजी (प्रतारणा ही) है अर्थात् यह वह सुवर्णभाण्ड नहीं है जो हमारे घर से चोरी गया था, किन्तु हम लोगों की ढाँढस के लिये इसने दूसरा आभूषण ला रक्खा है।।३६।।

टीका— अस्माभिः न्यासस्य = निक्षेपस्य प्रतिक्रियां = क्षतिपूर्ति; कर्तुं = विधातुं; यः व्याजः = कपटः, चिन्तितः = विचारितः, कृतः इत्यर्थः; सः = व्याजः एव अस्माकम् = अस्माकं समक्षमित्यर्थः; प्रस्तुतः = उपस्थितः। याद शः व्याजः अस्माभिः वसन्तसेना प्रति कृतः, ताद शः एव तया अस्मान् प्रति विहितः इति भावः। किन्तु सत्यं = वस्तुतः, इयं विडम्बना = कपटाचारः नतु सत्यव्यवहारः।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-पथ्यावक्त्र।।३६।।

विदूषकः— भो वअस्स! सच्चं सवामि बम्हण्णेण। (भो वयस्य! सत्यं शपे ब्राह्मण्येन।)

चारुदत्तः— प्रियं नः प्रियम्।

विदूषकः— (जनान्तिकम्) भो! पुच्छामि-णं कुदो एदं समासादिदं त्ति। (भोः! प च्छामि-ननु कुत इदं समासादितमिति।)

चारुदत्तः— को दोषः?।

विदूषकः— (चेट्याः कर्णे) एव्वं विअ। (एवमिव।)

चेटी — (विदूषकस्य कर्णे) एव्वं विअ। (एवमिव।)

चारुदत्तः— किमिदं कथ्यते?। किं वयं बाह्याः?।

विदूषकः — (चारुदत्तस्य कर्णे) एव्वं विअ। (एवमिव।)

चारुदत्तः— भद्रे! सत्यं तदेवेदं सुवर्णभाण्डम्?

चेटी — अज्ज! अध इं। (आर्य! अथ किम्?।)

चारुदत्तः— भद्रे! न कदाचित्प्रियनिवेदनं निष्फलीकृतं मया। तद्ग ह्यतां पारितोषिकमिदमंगुलीयकम्।

(इत्यनंगुलीयकं हस्तमवलोक्य लज्जां नाटयति।)

वसन्तसेना — (आत्मगतम्) अदो ज्जेव्व कामीअसि। (अतएव काम्यसे।)

चारुदत्तः— (जनान्तिकम्) भोः! कष्टम्;

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात्कोपप्रसादा विफलीभवन्ति।।४०।।

अर्थः—

विदूषक— हे मित्र! मैं ब्राह्मणपन की सौगन्ध खाता हूँ कि यह सत्य है अर्थात् वही सुवर्णभाण्ड है।

चारुदत्त— प्रिय! हमारा प्रिय!

विदूषक — (अलग से) अरे! पूछता हूँ कि यह कहाँ मिला?

चारुदत्त— क्या बुराई है?

विदूषक — (चेटी के कान में) ऐसा ही है?

चेटी — (विदूषक के कान में) ऐसा ही है।

चारुदत्त— यह क्या कह रहे हो? क्या हम लोग बाहरी हैं?

विदूषक — (चारुदत्त के कान में) ऐसा ही है।

चारुदत्त— भद्रे! सचमुच क्या यह वही सुवर्ण भाण्ड है।

चेटी — आर्य! और क्या!

चारुदत्त— भद्रे! मैंने प्रिय-निवेदन कभी निष्फल नहीं किया है। तो पुरस्कार के रूप में इस अँगूठी को ग्रहण करो। (ऐसा कहकर बिना अँगूठी के हाथ को देखकर लज्जा का अभिनय करता है)।

वसन्तसेना — (अपने आप) इसीलिये (मेरे द्वारा) चाहे जाते हो।

अन्वयः— लोके, धनैः, वियुक्तस्य, नरस्य, आदितः, एव, जीवितेन, किं तावत्; प्रतिकारनिरर्थकत्वात्, यस्य, कोपप्रसादाः, विफलीभवन्ति।।४०।।

शब्दार्थः— लोके = संसार में, धनैः = धनों से, वियुक्तस्य = हीन, नरस्य = मनुष्य के, आदितः = जन्म से, एव = ही, जीवितेन = जीने से, किं तावत् = क्या लाभ। प्रतिकारनिरर्थकत्वात् = बदला चुकाने में असमर्थता के कारण, यस्य = जिसके, कोपप्रसादाः = कोप और कृपा, विफलीभवन्ति = निष्फल होते हैं।

अर्थः— **चारुदत्त—** (अलग से) अरे! दुःख है-

संसार में निर्धन मनुष्य के जन्म से ही जीने से क्या लाभ? बदला चुकाने में असमर्थ होने के कारण जिसके कोप और अनुग्रह दोनों ही निष्फल होते हैं अर्थात् निर्धन किसी पर खुश होकर उसे कुछ दे नहीं सकता है और नाराज होने पर उसका कुछ बिगाड़ भी नहीं सकता है, ।।४०।।

टीका— लोके = संसारे, धनैः = सम्पद्भिः; वियुक्तस्य = विहीनस्य, नरस्य = जनस्य, आदितः एव = जन्मतः एव, जीवितेन = जीवनेन, किं तावत् = किं फलमित्यर्थः, अर्थात् न किमपि फलम्। यस्य = धनरहितस्य जनस्य; कोपप्रसादाः = क्रोधानुग्रहाः; विफलीभवन्ति = निष्फलाः भवन्ति।।४०।।

श्लोक के पूर्वार्द्ध में अप्रस्तुत प्रशंसा एवं उत्तरार्द्ध में काव्यलिंग अलंकार है। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-उपजाति।।४०।।

अपि च,—

पक्षविकलश्च पक्षी शुष्कश्च तरुः सरश्च जलहीनम्।
सर्पश्चोद्ध तदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च।।४१।।

अन्वयः— लोके, पक्षविकलः, पक्षी, च, शुष्कः, तरुः, च, जलहीनं, सरः, च, उद्ध तदंष्ट्र, सर्पः, च, (एतत्, सर्वं) तुल्यम्।।४१।।

शब्दार्थः— लोके = संसार में, पक्षविकलः = पंख से हीन, पक्षी = चिड़िया, च = और, शुष्कः = सूखा, तरुः = पेड़, च = तथा, जलहीनं = जल से रहित, सरः = तालाब, च = एवं, उद्ध तदंष्ट्रः = दाँत उखाड़ा हुआ, सर्पः = साँप, (एतत् = यह, सर्वं = सब) तुल्यं = समान (है)

और भी—

अर्थः— संसार में, बिना पंख की चिड़ियाँ, सूखा पेड़, बिना जल का तालाब तथा दाँत उखाड़ा हुआ साँप एवं दरिद्र मनुष्य ये सभी समान होते हैं।४१।।

टीका— लोके = जगति, पक्षाभ्यां = पत्राभ्यां विकलः = विहीनः, पक्षी = खगः, शुष्कः = नीरसः, तरुः = व क्षः, जलेन = सलिलेन हीनं = विरहितं, सरः = जलाशयः; उद्ध ताः = उत्पाटिताःदंष्ट्राः

= दन्ताः यस्य तथाभूतः, दन्तविहीनः इत्यर्थः; सर्पः = भुजंगः; एतत् सर्वं तुल्यं = समानमेव ।।४१।।

इस श्लोक में मालोपमा अलंकार तथा आर्या छन्द है।

अपि च,—

शून्यैर्ग हैः खलु समाः पुरुषा दरिद्राः
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः।
यद्द ष्टपूर्वजनसंगमविस्म ताना
मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः।।४२।।

अन्वयः— दरिद्राः, पुरुषाः, खलु, शून्यैः, ग हैः, तोयरहितैः, कूपैः, च, शीर्णैः, तरुभिः, च, समाः, (भवन्ति), यत्, द ष्टपूर्वजनसंगमविस्म तानां, (तेषां), परितोषकालाः, एवं, विफलाः, भवन्ति।।४२।।

शब्दार्थः— दरिद्राः = निर्धन, पुरुषाः = मनुष्य, खलु = वस्तुतः, शून्यैः = सूने, ग हैः = घरों, तोयरहितैः = पानी से रहित, कूपैः = कुओं, च = तथा, शीर्णैः = सूखे, तरुभिः = पेड़ों से (के), समाः = समान, (भवन्ति = होते हैं)। यत् = क्योंकि, द ष्टपूर्वजनसंगमविस्म तानां = पहले के परिचित जनों के मिलने से (अपनी गरीबी को) भूल जाने वाले, (तेषां = उनके,) परितोषकालाः = प्रसन्नता के समय, एवं = इसी प्रकार, विफलाः = व्यर्थ, भवन्ति = होते हैं।।

और भी-

अर्थः— दरिद्र मनुष्य वस्तुतः सूने घरों; बिना पानी के कुओं तथा सूखे पेड़ों के समान है। क्योंकि पहले के परिचित जनों के मिलने से (खुशी के कारण अपनी दरिद्रता को) भूल जाने वाले निर्धन लोगों की प्रसन्नता के समय इसी तरह निष्फल हो जाते हैं।।४२।।

टीका— दरिद्राः = पूर्णतया धनरहिताः; पुरुषाः = मानवाः; खलु = निश्चयेन, शून्यैः = जनरहितैः;, ग हैः = भवनैः; तोयरहितैः = जलहीनैः; कूपैः = उदपानैः, शीर्णैः = शुष्कैः इत्यर्थः; तरुभिः = व क्षैश्च; समाः = तुल्याः भवन्तीति शेषः। यत् = यस्मातः; द ष्टपूर्वस्य = पूर्वपरिचितस्य जनस्य = व्यक्तेः संगमेन = मिलने न, मिलनजन्यानन्दाधिक्येन हेतुना इत्यर्थः, विस्म तानां = विस्म तनिजदैन्यानां तेषां = निर्धनजनानां; परितोषकालाः = सन्तोषसमयाः, पुरस्कारप्रदानस्य योग्यकालाः इत्यर्थः; एवं = अनेनैव प्रकारेण, यथा मम तथा इत्यर्थः; विफलाः = निष्फलाः भवन्ति = जायन्ते।।४२।।

इस श्लोक में मालोपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।।४२।।

विदूषकः— भो! अलं अदिमेत्तं संतप्पिदेण। (प्रकाशं, सपरिहासं) भोदि! समप्पीअदु ममकेरिआ ण्हाणसाडिआ। (भोः! अलमतिमात्रं संतापितेन। भवति! समर्प्यतां मम स्नानशाटिका।)

वसन्तसेना — अज्ज चारुदत्त! जुत्तं ण्णेदं इमाए रअणावलीए इमं जणं तुलइदुं। (आर्य चारुदत्त! युक्तं नेदमनया रत्नावल्या इमं जनं तुलयितुम्।)

चारुदत्तः— (सविलक्षस्मितं) वसन्तसेने! पश्य पश्य

कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति।
शंकनीया हि लोके स्मिन्निष्प्रतापा दरिद्रता।।४३।।

अर्थः— विदूषक — अरे! अधिक सन्ताप करना व्यर्थ है। (प्रकट रूप में, हँसी के साथ), श्रीमती जी! मेरी नहाने की धोती दे दीजिये।

वसन्तसेना— आर्य चारुदत्त! इस रत्नावली से इन जन को तौलना ठीक नहीं।

चारुदत्त— (लज्जा पूर्वक मुस्कराकर) वसन्तसेना! देखो, देखो-

अन्वयः— कः, भूतार्थं, श्रद्धास्यति, सर्वः, मां, तुलयिष्यति, हि, अस्मिन्, लोके, निष्प्रतापा, दरिद्रता, शंकनीया, (भवति)।।४३।।

शब्दार्थः— कः = कौन, भूतार्थं = सच्ची बात को, यथार्थ को, श्रद्धास्यति = मानेगा, सर्वः = सब, मां = मुझको, तुलयिष्यति = तौलेंगे, हि = क्योंकि, अस्मिन् = इस, लोके = लोक में, निष्प्रतापा = तेजहीन, दरिद्रता = निर्धनता, शंकनीया = सन्देह के योग्य (भवति = होती है)।।

अर्थः— कौन सच्ची बात का विश्वास करेगा? सभी मुझे तौलेंगे। क्योंकि इस संसार में, निर्बल दरिद्रता निश्चित रूप से शंका के योग्य होती है।।४३।।

टीका— कः = जनः, भूतार्थं = सत्यं, सुवर्णभाण्डं चौरैरपहृतमित्येवं रूपमिति भावः; श्रद्धास्यति = विश्वासं करिष्यति? हि = यतः; अस्मिन् = एतस्मिन्, लोके = संसारे, निष्प्रतापा = तेजशून्या; दरिद्रता = निर्धनता; शंकनीया = आशंकितुं योग्या भवतीति।।४३।।

विदूषकः— ह जे! किं भोदीए इध ज्जेव्व सुविदव्वं?। (चेटि! किं भवत्या इहैव सुप्तव्यम्?।)

चेटी — (विहस्य) अज्ज मित्तेअ! अदिमेत्तं दाणिं उजुअं अत्ताणअं दंसेसि। (आर्य मैत्रेय! अतिमात्रमिदानीम जुमात्मानं दर्शयसि।)

विदूषकः— भो वअस्स! एसो खु ओसारअंतो विअ सुहोवविट्टं जणं पुणो वि वित्थारिवारिधाराहिं पविट्टो पज्जण्णो। (भो वयस्य! एष खल्वपसारयन्निव सुखोपविष्टं जनं पुनरपि विस्तारिवारिधाराभिः प्रविष्टः पर्जन्यः।)

चारुदत्तः— सम्यगाह भवान्,—

अमूर्हि भित्त्वा जलदान्तराणि पंकान्तराणीव म णालसूच्यः।
पतन्ति चन्द्रव्यसनाद्विमुक्ता दिवो श्रुधरा इव वारिधाराः।।४४।।

अर्थः— विदूषक — चेटी! क्या आपको यहीं सोना है?

चेटी — (हँसकर) आर्य मैत्रेय! इस समय आप अपने को बहुत अधिक भोला-भाला दिखला रहे हैं।

विदूषक — हे मित्र! आनन्द से बैठे हुये लोगों को हटाता हुआ सा यह बादल फैलने वाली पानी की धाराओं के साथ फिर आ गया।

अन्वयः— हि, अमूः, वारिधाराः, म णालसूच्यः, पंकान्तराणि, इव, जलदान्तराणि, भित्त्वा, चन्द्रव्यसनात्, विमुक्ताः, दिवः, अश्रुधाराः, इव, पतन्ति।।४४।।

शब्दार्थः— हि = अवश्य ही, अमूः = ये, वारिधाराः = जल की धाराएँ; म णालसूच्यः = कमललता की जड़ के अंकुर, पंकान्तराणि = कीचड़ के भीतर की, इव = तरह, जलदान्तराणि = बादलों के पेटों को, भित्त्वा = चीरकर, चन्द्रव्यसनात् = चन्द्रमा की विपत्ति के कारण, विमुक्ताः = बहायी गयी, दिवः = आकाश की, अश्रुधाराः = आसुओं की धाराओं के, इव = समान, पतन्ति = गिर रही हैं।

अर्थः— चारुदत्त— आप ने ठीक कहा-

अवश्य ही ये जल की धाराएँ, कीचड़ को फाड़कर निकले हुये कमललता की जड़ के अंकुर के समान बादलों के पेट को चीर कर प्रेमी चन्द्रमा की विपत्ति के कारण बहायी गयी आकाश की आँसुओं की धाराओं के समान गिर रही हैं।।४४।।

टीका— हि = निश्चितम्; अमूः = एताः पुरो द श्यमानाः; वारिधाराः = जलधाराः; म णालानां = विसानां सूच्यः = अंकुराः; पंकस्य = कर्दमस्य अन्तराणि = अन्तर्भागान् इव; जलदानां = पयोदानाम् अन्तराणि = उदराणि, मध्यभागान् इत्यर्थः; भित्त्वा = विदार्य; चन्द्रस्य = चन्द्रमसः व्यसनात् = मेघावरणझरूपविपत्तेः कारणात्; विमुक्ताः = प्रवाहिताः; दिवः = आकाशस्य; अश्रुधाराः = नेत्राम्बुधाराः इव; पतन्ति = स्रवन्ति।।४४।।

इस श्लोक में समासोक्ति अलंकार तथा उपजाति छन्द है।।४४।।

अपि च,—

धाराभिरार्यजनचित्तसुनिर्मलाभि-
श्चण्डाभिरर्जुनशरप्रतिकर्कशाभिः।
मेघाः स्रवन्ति बलदेवपटप्रकाशाः
शक्रस्य मौक्तिकनिधानमिवोद्गिरन्तः।।४५।।

अन्वयः— बलदेवपटप्रकाशाः, मेघाः, आर्यजनचित्तसुनिर्मलाभिः, अर्जुनशरप्रतिकर्कशाभिः, चण्डाभिः, धाराभिः, शक्रस्य, मौक्तिकनिधानम्, उद्गिरन्तः, इव, स्रवन्ति।।४५।।

शब्दार्थः—बलदेवपटप्रकाशाः = बलदेव जी के वस्त्रों के समान आभा वाले, मेघाः = बादल, आर्यजनचित्तसुनिर्मलाभिः = सज्जनों के चित्त के समान विमल, अर्जुनशरप्रतिकर्कशाभिः = अर्जुन के तीरों के तुल्य कठोर, चण्डाभिः = तीखी, धाराभिः = धाराओं के द्वारा, शक्रस्य = इन्द्र के, मौक्तिकनिधानम् = मोतियों के खजाने को, उद्गिरन्तः = बिखराते हुए, इव = से, स्रवन्ति = झर रहे हैं।

और भी-

अर्थः— बलदेव जी के वस्त्रों के समान आभा वाले बादल सज्जनों के चित्त के समान विमल, अर्जुन के तीरों के तुल्य कठोर एवं तीखी धाराओं के द्वारा मानों इन्द्र के मोतियों के खजाने को विखराते हुए झर रहे हैं।।४५।।

टीका— बलदेवस्य = बलरामस्य पटवत् = वस्त्रवत् प्रकाशः = कान्तिः येषां ते; बलरामवस्त्रवन्नीलाः इत्यर्थः; मेघाः = जलदाः; आर्यजनस्य = सज्जनस्य चित्तवत् = चेतः इव सुनिर्मलाः = विमलाः मालिन्यरहिताः इत्यर्थः, ताभिः; अर्जुनस्य = पार्थस्य शरेण = बाणेन प्रतिकर्कशाः = सद शकठिनाः ताभिः; अत एव चण्डाभिः = तीक्ष्णाभिः; धाराभिः = जलप्रवाहैः; शक्रस्य = इन्द्रस्य; मौक्तिकनिधानं = मुक्तानिधिम्; उद्गिरन्तः = उद्वमन्तः इव; स्रवन्ति = क्षरन्ति।।४५।।

इस श्लोक में मालोपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।।४५।।

प्रिये! पश्य पश्य

एतैः पिष्टतमालवर्णकनिभैरालिप्तमम्भोधरैः
संसक्तैरुपवीजितं सुरभिभिः शीतैः प्रदोषानिलैः।

एषाम्भोदसमागमप्रणयिनी स्वच्छन्दमभ्यागता
रक्ता कान्तमिवाम्बरं प्रियतमा विद्युत्समालिंगति।।४६।।

अन्वयः— अम्भोदसमागमप्रणयिनी, स्वच्छन्दम्, आगता, रक्ता, प्रियतमा, इव, एषा, विद्युत्, पिष्टतमालवर्णकनिभैः, एतैः, अम्भोधरैः, आलिप्तम्; संसक्तैः, सुरभिभिः, शीतैः, प्रदोषानिलैः, उपवीजितं, च, कान्तम्, इव, अम्बरम्, समालिंगति।।४६।।

शब्दार्थः— अम्भोदसमागमप्रणयिनी = बादलों के समागम की प्रबल इच्छावाली, बादलों के उदय में प्रेम करने वाली, (प्रियतमा के पक्ष मे-बादलों के उमड़ने से प्रियतम की इच्छावाली), स्वच्छन्दम् = अपनी इच्छा के अनुसार, आगता = आयी हुई, रक्ता = लालरंगवाली (प्रियतमा के पक्ष में-अनुरागवाली), प्रियतमा = प्रेयसी, इव = जैसी, एषा = यह, विद्युत् = बिजली; पिष्टतमालवर्णकनिभैः = पिसे हुए तमाल के रंग जैसे, एतैः = इन; अम्भोधरैः = बादलों से, (कान्त-पक्ष में-अंगरागों से) आलिप्तम् = लेपन किये हुए, संसक्तैः = हमेशा बहने वाली, सुरभिभिः = सुगन्धित शीतैः = ठण्डी, प्रदोषानिलैः = सायंकाल की हवाओं से (कान्त के पक्ष में-शीतल सुगन्धित हवाओं से) उपवीजितं = पंखा झले जाते हुए, कान्तमिव = प्रेमी की भाँति, अम्बरम् = आकाश को, समालिंगति = अपने अंगों से लिपटा रही है।।

अर्थः— प्रिये! देखो, देखो-

बादलों के समागम की प्रबल इच्छा वाली, अपनी इच्छा से आयी हुई, लाल रंग वाली यह बिजली, पिसे हुये तमाल के रंग जैसे इन बादलों से घिरे हुये हमेशा बहने वाली सुगन्धित एवं ठण्डी सायंकाल की हवाओं से पंखा झले जाते हुये, आकाश का उसी प्रकार से आलिंगन कर रही है जैसे बादलों के उमड़ने से प्रियतम की इच्छा वाली, अपनी इच्छा से आयी हुई, अनुरागिणी कामिनी प्रेमी का आलिंगन करती है।।४६।।

टीका— अम्भोदस्य = मेघस्य समागमे = उदये प्रणयिनी = प्रेमशालिनी; प्रियतमापक्षे = अम्भोदस्य समागमात् = उदयात् प्रणयिनी = प्रियमिलनस्य = अभिलाषिणी; स्वच्छन्दम् = स्वतन्त्रम्; आगता = उदिता; प्रियतमापक्षे = प्राप्ता; रक्ता = रक्तवर्णा, प्रियतमापक्षे = अनुरागिणी; प्रियतमेव = प्रेयसीव; एषा = मेघसमूहे स्फुरन्ती; विद्युत् = तडित्, पिष्टं = चूर्णीकृतं यत् तमालवर्णकं = तमालपत्रस्य विलेपनं तन्निभैः = तत्तुल्यैः, श्यामवर्णैः इतिभावः, एतैः = पुरो द श्यमानैः; अम्भोधरैः = जलदैः, आलिप्तं = कृतालेपनं; (कान्तपक्षे = कस्तूरिकाद्यङ्गरागैः लिप्ताङ्गं), संसक्तैः = परस्परं मिलितैः; सततप्रवहणशीलैः वा, सुरभिभिः = सुगन्धिभिः, शीतैः = शीतलैः, प्रदोषानिलैः = सान्ध्यपवनैः, उपवीजितं = विहितव्यजनं, कान्तपक्षे-शीतलसु-गन्धितपवनैः उपवीजितं, कान्तं = प्रणयिनमिव, अम्बरं = आकाशं, समालिंगति = आलिङ्गितं करोति।।४६।।

समासोक्ति अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।४६।।

(वसन्तसेना श्र ंगारभावं नाटयन्ती चारुदत्तमालिंगति)

चारुदत्तः— (स्पर्शं नाटयन्प्रत्यालिंग्य)

भो मेघ! गम्भीरतरं नद त्वं तव प्रसादात्स्मरपीडितं मे
संस्पर्शरोमा श्चितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपैति गात्रम्।।४७।।

अर्थः— (वसन्तसेना श्र ंगारभाव का अभिनय करती हुई चारुदत्त का आलिंगन करती है)।

अन्वयः— भो मेघ! त्वं, गम्भीरतरं, नद, तव, प्रसादात्; स्मरपीडितं, मे, गात्रम्, स्पर्शरोमाचितजातरागं, (सत्), कदम्बपुष्पत्वम्, उपैति।।४७।।

शब्दार्थः— भो मेघ! = ऐ बादल! त्वं = तू: गंभीरतरं = और अधिक गम्भीरतापूर्वक, नद = गरज; तव = तेरी, प्रसादात् = कृपा से, स्मरपीडितं = कामदेव के द्वारा सताया गया, मे = मेरा, गात्रम् = शरीर, संस्पर्शरोमाचितजातरागं = स्पर्श से रोमांचित एवं उत्पन्न वासना वाला, (सत् = होता हुआ), कदम्बपुष्पत्वं = कदम्ब के फूल की तुलना को, उपैति = प्राप्त हो रहा है।।

अर्थः— **चारुदत्त—** (स्पर्श का अभिनय करते हुये बदले में आलिंगन करके)

ऐ बादल! तू और अधिक गम्भीरता से गरज, तेरी ही कृपा से कामदेव के द्वारा सताया गया मेरा शरीर (वसन्तसेना के) स्पर्श से रोमांचित एवं उत्पन्न—वासना वाला होकर कदम्ब फूल के समान हो रहा है।।४७।।

टीका— भो मेघ = हे जलद! त्वं गम्भीरतरं = सुगभीरं यथा तथा, गर्ज = नद। तव = भवतः; प्रसादात् = अनुरागात्, स्मरेण = कामेन पीडितं = सन्तापितं, मे = मम, गात्रं = शरीरं, स्पर्शेन = प्रियायाः वसन्तसेनायाः आलिंगनेन, रोमा चाः संजाताः अस्येति रोमाचितं = पुलकितं, तथा जातः = उत्पन्नः रागः = सम्भोगस्य अभिव्यंजकः अभिलाषः इत्यर्थः यस्मिन् ताद शं, सत् कदम्बस्य नीपस्य पुष्पत्वं = कुसुमभाव कदम्बपुष्पवत्कण्टकितावस्थामित्यर्थः, उपैति-प्राप्नोति।।४७।।

इस श्लोक में निदर्शना अलंकार एवं उपजाति छन्द है।।४७।।

विदूषकः—दासीए पुत्त दुद्दिण! अणज्जो दाणिं सि तुमं, जं अत्तभोदिं विज्जुआए भायावेसि। (दास्याः पुत्र दुर्दिन! अनार्य इदानीमसि त्वम्, यदत्रभवतीं विद्युता भीष्यसि।)

चारुदत्तः— वयस्य! नार्हस्युपालब्धुम्,-

वर्षशतमस्तु दुर्दिनमविरतधारं शतह्रदा स्फुरतु।
अस्मद्विधदुर्लभया यदहं प्रियया परिष्वक्तः।।४८।।

अर्थः—

विदूषक— दासी के बच्चे दुर्दिन! तुम बड़े अशिष्ट हो जो इस समय श्रीमती वसन्तसेना जी को बिजली से डरा रहे हो।

अन्वयः— अविरतधारं, दुर्दिनं, वर्षशतम्, अस्तु; शतह्रदा, स्फुरतु; यत्, अहम्, श्रस्मद्विधदुर्लभया, प्रियया, परिष्वक्तः।।४८।।

शब्दार्थः— अविरतधारं = बिना रुकी धारावाला, दुर्दिनं = दुर्दिन, वर्षशतम् = सौ वर्ष, अस्तु = होवे; शतह्रदा = बिजली, स्फुरतु = चमके। यत् = क्योंकि, अहम् = मैं, अस्मद्विधदुर्लभया = हमारे जैसे निर्धनों के लिये दुर्लभ, प्रियया = प्रिया के द्वारा, परिष्वक्तः = आलिंगित किया जा रहा हूँ।

अर्थः— चारुदत्त— मित्र! तुम्हें दुर्दिन को उलाहना नहीं देना चाहिये।

हमेशा धाराओं से बरसने वाला यह दुर्दिन सौ वर्ष तक रहे। बिजली चमकती रहे। क्योंकि हमारे जैसे निर्धनों के लिये दुर्लभ प्रिया के द्वारा मैं आलिंगित किया जा रहा हूँ।।४८।।

टीका— अविरताः = विरामरहिताः धाराः = जलधाराः यस्मिन् ताद शं; दुर्दिनं = मेघाच्छन्नः वर्षायुक्तश्च कालः; वर्षशतं = बहुकालव्यापि इत्यर्थः; अस्तु = भवतु, शतहदा = विद्युत् स्फुरतु = प्रकाशिता भवतु; यत् = यस्मात्, अहम् = चारुदत्तः; अस्मद्विधानां = अस्माद शदरिद्राणां जनानामित्यर्थः, दुर्लभया = दुष्प्रापया, प्रियया = प्रेयस्या, परिष्वक्तः = यथेच्छम् आलिंगितः।।४८।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है आर्या।

अपि च, वयस्य!

धन्यानि तेषां खलु जीवितानि
ये कामिनीनां ग हमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि
गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति।।४६।।

अन्वयः— तेषां, जीवितानि, खलु, धन्यानि, ये, ग हम्, आगतानां, कामिनीनां, मेघोदकशीतलानि, गात्राणि, गात्रेषु, परिष्वजन्ति।।४६।।

शब्दार्थः— तेषाम् = उनके, जीवितानि = जीवन, खलु = निश्चय ही, धन्यानि = धन्य हैं, ये = जो लोग, ग हम् = घर में, आगतानाम् = आयी हुयी, कामिनीनां = कामनियों के, मेघोदकशीतलानि = बादल के जल से ठण्डे, गात्राणि = अंगों को, गात्रेषु = अंगों में, ,परिष्वजन्ति = कस कर आलिंगित करते हैं।

और भी मित्र!

अर्थः— वास्तव में उन्हीं के जीवन धन्य हैं, जो घर में आयी हुई कामिनियों के बादल के जल से ठण्डे हुये गीले अंगों का अपने अंगों में कसकर आलिंगन करते हैं।।४६।।

टीका— तेषां = जनानाम्, जीवितानि = जीवनानि, खलु = निश्चयेन, धन्यानि = सफलानि इति भावः, ये = जनाः, ग हम् = भवनं, स्वेच्छया इति शेषः, आगतानां = प्राप्तानां, भूयान् = अधिकः कामः = मदनानुभूतिः यासां ताः तासां कामिनीनां = स्मरपीडितानां सुन्दरीणां, मेघानां = पयोदानाम् उदकैः = जलैः शीतलानि = शैत्ययुक्तानि, गात्राणि = अंगानि, गाढेषु = स्वांगेषु; परिष्वजन्ति = गाढम् आलिंगन्ति।।४६।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार एवं इन्द्रवज्रा छन्द है।।४६।।

प्रिये वसन्तसेने?

स्तम्भेषु प्रचलितवेदिसंचयान्तं
शीर्णत्वात्कथमपि धार्यते वितानम्
एषा च स्फुटितसुधाद्रवानुलेपा
त्संक्लिकन्ना सलिलभरेण चित्रभित्तिः।।५०।।

अन्वयः— प्रचलितवेदिस चयान्तं, वितानम्, शीर्णत्वात्, स्तम्भेषु, कथमपि, धार्यते। एषा, चित्रभित्तिः, च, स्फुटितसुधाद्रवानुलेपात्, सलिलभरेण, संक्लिन्न, (जाता)।।५०।।

शब्दार्थः— प्रचलितवेदिसंचयान्तं = हिल रहा है वेदी के समूह में छोर जिसका ऐसा, वितानम् = चँदोवा, शीर्णत्वात् = जर्जरता के कारण, स्तम्भेषु = खम्भों पर, कथमपि = किसी तरह,

धार्यते = धारण किया गया है। एषा = यह, चित्रभित्तिः = चित्र बनी हुई भीत, च = भी, स्फुटितसुधाद्रवानुलेपात् = गली हुई चूने की कलई के लिप जाने के कारण, सलिलभरेण = जल की अधिकता अथवा वेग से, संक्लिन्ना = एकदम गीली, (जाता = हो गयी है)।

अर्थः— प्रिये वसन्तसेने! (हवा की झोकों से) हिल रहा है वेदी के समूह में बँधा हुआ छोर जिसका ऐसा वितान जर्जर होने के कारण खम्भों पर बड़ी मुश्किल से ठहरा हुआ है। और यह चित्रित दीवार कहीं-कहीं गली हुई चूने की कलई (सुधा-द्रव) के लिप जाने के कारण जल के वेग से एकदम गीली हो गयी है।।५०।।

टीका— प्रचलितः = प्रकम्पितः वायुवेगेनेति शेषः वेद्याः = बद्धभूमेः संचये = समूहे, अन्तः = प्रान्तभागः यस्य ताद शं, वितानम् = वस्त्रवेश्म। जीर्णत्वात् = अतिप्राचीनत्वात्, स्तम्भेषु = स्थूणासु, कथमपि = अतिकठिनतया इत्यर्थः, धार्यते = स्थीयते। वायुवेगेन वितानस्य स्थितिः संशये निक्षिप्ता इति भावः। एषा = पुरोवर्तमाना, चित्रभित्तिः = चित्रैः अलंकतं कुड्य च; स्फुटितः = यत्र-तत्र गलितः यः सुधाद्रवः = लिप्ततरलचूर्णः तस्य अनुलेपात् = विलेपनात्, सलिल-भरेण = जलस्य आधिक्येन वेगेन वा; संक्लिन्ना = आर्द्रा जाता, अतः न स्थेयमत्रेति भावः।।५०।।

इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है। छन्द का लक्षण है-त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम।।५०।।

(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये इन्द्रधनुः; प्रिये! पश्य पश्य

विद्युज्जिह्वेनेदं महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन।
जलधरविव द्धहनुना विज म्भितमिवान्तरिक्षेण।।५१।।

अन्वयः— विद्युज्जिह्वेन, महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन, जलधरविव द्धहनुना, अन्तरिक्षेण, विज म्भितम्, इव।।५१।।

शब्दार्थः—विद्युज्जिह्वेन = बिजली रूपी जीभ वाले, महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन = इन्द्रधनुषरूपी ऊपर उठी हुई एवं लम्बी भुजा वाले, जलधरविव द्धहनुना = बादलरूपी बढ़ी हुई ठोढ़ी वाले, अन्तरिक्षेण = आकाश के द्वारा, विज म्भितम् इव = मानो जभाई ली गयी है।।

अर्थः— (ऊपर की ओर देखकर) अरे! इन्द्र धनुष! प्रिये, देखो! देखो!

बिजली रूपी जिह्वा वाले, इन्द्र धनुष रूपी ऊपर उठी हुई एवं लम्बी भुजावाले, पानी से भरे बादल रूपी बढ़ी हुई ठोढ़ी वाले आकाश ने मानों जँभाई ली है।।५१।।

टीका— विद्युत् = तडित् एव जिह्वा = रसना यस्य तेन; महेन्द्रस्य चापः = धनुः एव उच्छ्रितौ = उर्ध्वं प्रसारितौ भुजौ = बाहू यस्य ताद शेन; जलधरः = पयोधरः एव विव द्धः = व द्धिं प्राप्तः हनुः = चिबुकं यस्य तथोक्तेन; अन्तरिक्षेण = आकाशेन; विज म्भितमिव = मुखव्यादानमिव विहितमित्यर्थः।।५१।।

इस श्लोक में रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार तथा आर्या छन्द है।।५१।।

तदेहि, अभ्यन्तरमेव प्रविशावः (इत्युत्थाय परिक्रामति)

तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं शिलासु रुक्षं सलिलेषु चण्डम्।
संगीतवीणा इव ताड्यमानास्तालानुसारेण पतन्ति धाराः।।५२।।

अन्वयः— धाराः, तालीषु, तारं, विटपेषु, मन्द्रं, शिलाषु, रूक्षं, सलिलेषु, चण्डम्, ताड्यमानाः, संगीतवीणा, इव, तालानुसारेण, पतन्ति।।५२।।

शब्दार्थः— धाराः = जल की धाराएँ, तालाषु = ताल के पत्तों पर, तारं = ऊँचे स्वर से, विटपेषु = पेड़ों की डालियों पर, मन्दं = गम्भीर ध्वनिपूर्वक, शिलासु = पत्थर की चट्टानों पर, रूक्षं = कर्कशता के साथ; सलिलेषु = जल में, चण्डम् = प्रचण्ड रूप से, ताड्यमाना = बजायी जाती हुई, संगीतवीणा = संगीत की वीणा (की), इव = तरह, तालानुसारेण = ताल के अनुसार, पतन्ति = गिर रही हैं।

अर्थः— तो आओ, भीतर ही चलें (ऐसा कह कर उठकर घूमता है)

(पानी की) धाराएँ ताल के पत्तों पर ऊँचे स्वर, पेड़ों की डालियों पर गम्भीर पत्थर की चट्टानों पर कर्कश तथा जल में प्रचण्ड (ध्वनि) से, बजायी जाती हुई संगीत की वीणा के समान, ताल के अनुसार गिर रही हैं।।५२।।

टीक — धाराः = जलधाराः; तालीषु = तालपत्रेषु; तारम् = उच्चैः; विटपेषु = व क्षशाखासु, मन्द्रं = गम्भीरं, शिलासु = प्रस्तरखण्डेषु, रुक्षं = कर्कशं, सलिलेषु = जलेषु, चण्डम् = तीक्ष्णं यथा तथा, ताड्यमाना = वाद्यमाना, संगीतवीणा = संगीततन्त्री इव, तालानुसारेण = यथातालमित्यर्थः, पतन्ति = क्षरन्ति।।५२।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं उपजाति छन्द है।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(सब निकल जाते हैं)

इति दुर्दिनो नाम प चमो कः।

।।दुर्दिन नामक पाँचवां अंक समाप्त।।

षष्ठो ंकः

(ततः प्रविशति चेटी।)

चेटी— कधं अज्ज वि अज्जआ ण विवुज्झदि। भोदु, पबिसिअ पडिबोधइस्सं। (कथमद्यप्यार्या न विबुध्यते। भवतु, प्रविश्य प्रतिबोधयिष्यामि।)

(इति नाट्येन परिक्रामति।)

(ततः प्रविशति आच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना।)

चेटी— (निरूप्य।) उत्थेदु उत्थेदु अज्जआ, पभादं वसुत्तं। (उतिष्ठतूत्तिष्ठत्वार्या। प्रभातं संव त्तम्।)

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य।) गधं रत्ति ज्जेव्व पभादं सवुत्तं?। (कथं रात्रिरेव प्रभातं संव त्तम्?)

चेटी— अम्हाणं एसो पभादो, अज्जआए उण रत्तिज्जेव्व। (अस्माकमेतत् प्रभातम्, आर्यायाः पुना रात्रिरेव।)

वसन्तसेना— ह जे! कहिं उण तुम्हाणं जूदिअरो?। (चेटि! कुतः पुनर्युष्माकं द्यूतकरः?)

चेटी— अज्जए! वड्ढमाणअं समादिसिअ, पुप्फकरंडअं जिण्णुज्जाणं गदो अज्जचारुदत्तो। (आर्ये! वर्धमानकं समादिश्य पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं गत आर्यचारुदत्तः।)

वसन्तसेना— किं समादिसिअ?। (किं समादिश्य?)

चेटी— जोएहि रात्तीए पवहणं, वसन्तसेना गच्छदुत्ति। (योजय रात्रौ प्रवहणम्, वसन्तसेना गच्छत्विति।)

वसन्तसेना— ह जे! कहिं मए गन्तव्वं?। (चेटि! कुत्र मया गन्तव्यम्?)

चेटी— अज्जए! जहिं चारुदत्तो। (आर्ये! यत्र चारुदत्तः।)

वसन्तसेना— (चेटीं परिष्वज्य।) ह जे सुट्ठु ण णिज्झाइदो रत्तीए, ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं। ह जे! किं पविट्टा अहं इह अब्भंतरचदुस्सालअं?। (चेटिं! सुष्ठु न निध्यातो रात्रौ, तदद्य प्रत्यक्षं प्रेक्षिष्ये। चेटि! किं प्रविष्टाहमिहाभ्यन्तरचतुःशालकम्?।)

चेटी— ण केवलं अब्भंतरचदुस्सालअं, सव्वजणस्स वि हिअअं पविट्टा। (न केवलमभ्यन्तरचतुः शालकम्, सर्वजनस्यापि ह्रदयं प्रविष्टा।)

वसन्तसेना— अवि संतप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो?। (अपि संतप्यते चारुदत्तस्य परिजनः?।)

चेटी— संतप्पिस्सदि। (संतप्स्यति।)

वसन्तसेना— कदा?। (कदा?।)

चेटी— जदो अज्जआ गमिस्सदि। (यदार्या गमिष्यति।)

वसन्तसेना— तदो मए पढमं संतप्पिदव्वं। (सानुनयम्) ह जे! गेण्ह एदं रअणावलिं। मम बहिणीआए अज्जाधूदाए गदुअ समप्पेहि। भणिदव्वं च-'अहं सिरिचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी, तदा तुम्हाणं पि। ता एसा तुह ज्जेव्व कंठाहरणं होदु रअणावली'। (तदा मया प्रथमं संतप्तव्यम्। चेटि! ग हाणैतां रत्नावलीम्। मम भगिन्या आर्याधूतायै गत्वा

समर्पय। वक्तव्यं च-'अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नावली'।)

चेटी— अज्जए! कुपिस्सदि चारुदत्तो अज्जाए दाव। (आर्ये! कुपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत्।)

वसन्तसेना— गच्छ; ण कुपिस्सदि। (गच्छ; न कुपिष्यति।)

चेटी— (ग हीत्वा) जं आणवेदि। (इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविशति) अज्जए! भणादि अज्जा घूदा-'अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदाः; ण जुत्तं मम एदं गेण्हिदुं। अज्जउत्तो ज्जेव्व मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी'। (यदाज्ञापयति। आर्ये! भणत्यार्या घूता-'आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता; न युक्तं ममैतां ग्रहीतुम्। आर्यपुत्र एव ममाभरणविशेष इति जानातु भवती'।)

(इसके बाद चेटी प्रवेश करती है)

अर्थः—

चेटी— क्या आर्या वसन्तसेना अब भी नहीं सोकर उठ रही है? अच्छा, प्रवेश करके जगाऊँगी। (ऐसा कहकर अभिनय से घूमती है)।

(इसके बाद ढँके हुए शरीरवाली सोई हुई वसन्तसेना प्रवेश करती है)

चेटी— (देखकर) आर्ये! उठिए, उठिए। सबेरा हो गया।

वसन्तसेना— (जागकर) क्या रात ही सबेरा हो गयी?।

चेटी— हम लोगों का यह सबेरा है। किन्तु आर्या की तो रात ही है।

वसन्तसेना— चेटी! तुम लोगों के जुआरी आर्य चारुदत्त कहाँ हैं?।

चेटी— आर्ये! वर्धमानक को आज्ञा देकर आर्य चारुदत्त पुष्करण्डक नामक पुराने उद्यान में गये हैं।

वसन्तसेना— क्या आज्ञा देकर?।

चेटी— रात में ही गाड़ी ठीक करो चली जाय।

वसन्तसेना— चेटि! मुझे कहाँ जाना होगा?

चेटी— आर्ये! जहाँ चारुदत्त हैं।

वसन्तसेना— (चेटी को अपने शरीर से लिपटा कर) चेटि! रात में ठीक से नहीं देखा था। इसलिए आज आँखभर अर्थात् भलीभाँति देखूँगी। चेटि! क्या मैं यहाँ भीतरी चतुःशाला में आ गई हूँ।?

चेटी— न केवल भीतरी चतुःशाला में ही किन्तु सभी लोगों के हृदय में भी प्रवेश गई हो।

वसन्तसेना— क्या चारुदत्त का परिवार (मेरे यहाँ आने के कारण) दुःखी है?

चेटी— दुःखी होगा।

वसन्तसेना— कब?

चेटी— जब आर्या जायेंगी।

वसन्तसेना— तब तो मुझे ही सबसे पहले दुखी होना है। (विनय के साथ) चेटि! इस रत्नावली को ले लो। जाकर मेरी बहन आर्या धूता को समर्पित कर दो। और कह दो-'मैं गुणों से वश

में की गयी श्री चारुदत्त की दासी हूँ, तब आपकी भी दासी ही हूँ। इसलिए यह रत्नावली आपके ही गले का आभूषण होवे।'

(ततः प्रविशति दारकं ग हीत्वा रदनिका)

रदनिका— एहि वच्छ! सअडिआए कीलम्ह। (एहि वत्स! शकटिकया क्रीडावः।)

दारकः— (सकरुणम्) रदणिए! किं मम एदाए मट्टिआसअडिआए। तं ज्जेव सोवण्णसअडिअं देहि। (रदनिके! किं ममैतया म त्तिकाशकटिकया?। तामेव सौवर्णशकटिकां देहि।)

रदनिका— (सनिर्वेदं निःश्वस्य) जाद! कुदो अम्हाणं सुवण्णववहारो?। तादस्स पुणो वि रिद्धीए सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि। ता जाव विणोदेमि णं अज्जआवसंतसेणाए समीवं उपसप्पिस्सं। (उपस त्य) अज्जए! पणमामि। (जात! कुतो स्माकं सुवर्णव्यवहारः?। तातस्य पुनरपि ऋद्ध्या सुवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि। तद्यावद्विनोदयाम्येनम्। आर्यावसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि। आर्ये! प्रणमामि।)

वसन्तसेना— रदणिए! साअदं दे; कस्स उण अअं दारओ?। अणलंकिदसरीरो वि चंदमुहो आणंदेदि मम हिअअं। (रदनिके! स्वागतं ते; कस्य पुनरयं दारकः?। अनलंकृतशरीरो पि चन्द्रमुख आनन्दयति मम ह्रदयम्।)

रदनिका— एसो खु अज्जचारुदत्तस्स पुत्तो रोहसेणो णाम। (एष खल्वार्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम।)

वसन्तसेना— (बाहू प्रसार्य) एहि मे पुत्तअ! आलिंग। (इत्यंक उपवेश्य) अणुकिदं अणेण पिदुणो रूवं। (एहि मे पुत्रक! आलिंग। अनुकृतमनेन पितू रूपम्।)

रदनिका— ण केवलं रूवं, सीलं रूवं तक्केमि। एदिणा अज्जचारुदत्तो अत्ताणअं विणोदेदि। (न केवलं रूपम्, शीलमपि तर्कयामि। एतेनार्यचारूदत्त आत्मानं विनोदयति।)

वसन्तसेना— अध किंणिमित्तं एसो रोअदि?। (अथ किंनिमित्तमेष रोदिति?।)

रदनिका— एदिणा पडिवेसिअगहवइदारअकेरिआए सुवण्णसअडिआए कीलिदं। तेण अ सा णीदा। तदो उण तं मग्गंतस्स मए इअं मट्ठिआसअडिअ कदुआ दिण्णा। तदो भणादि-'रदणिए! किं मम एदाए मट्ठिआसअडिआए?। तं ज्जेव्व सोवण्णस-अडिअं देहि' त्ति। (एतेन प्रतिवेशिकग हपतिदारकस्य सुवर्णशकटिकया क्रीडितम्। तेन च सा नीता। ततः पुनस्तां याचतो मयेयं म त्तिकाशकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति-'रदनिके! किं ममैतया म त्तिकाशकटिकया?। तामेव सौवर्णशकटिकां देहि' इति।)

वसन्तसेना— हद्धी हद्धी; अहं पि णाम परसंपत्तीए संतप्पदि। भअवं कअंत! पोक्खरवत्तपडिद-जलबिंदुसरिसेहिं कीलसि तुमं पुरिस भाअधेएहिं। (इति सास्रा) जाद! मा रोद। सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि। (हा धिक् हा धिक; अयमपि नाम परसम्पत्त्या सन्तप्यते। भगवन्कृतान्त! पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुसद शैः क्रीडसि त्वं पुरुषभागधेयैः। जात! मा रुदिहि। सौवर्णशकटिकया क्रीडिष्यसि।)

दारकः— रदणिए! का एसा?। (रदनिके! कैषा?।)

वसन्तसेना— दे पिदुणो गुणणिज्जिदा दासी। (ते पितुर्गुणनिर्जिता दासी।)

रदनिका— जाद! अज्जआ दे जणणी भोदि। (जात! आर्या ते जननी भवति।)

दारकः— रदणिए! अलिअं तुमं भणासि; जइ अम्हाणं अज्जआ जणणी, ता कीस अलंकिदा?। (रदनिके! अलीकं त्वं भणसि; यद्यस्माकमार्या जननी, तत्किकथं-मलंकृता?।)

वसन्तसेना— जाद! मुद्धेण मुहेण अदिकरुणं मंतेसि। (नाट्येनाभरणन्यवतार्य रुदन्वती) एसा दाणिं दे जणणी संवुत्ता; ता गेण्ह एदं अलंकारअं, सोवण्णसअडिअं घडावेहि। (जात! मुग्धेन मुखेनातिकरुणं मन्त्रयसि। एषेदानीं ते जननी संव त्ता; तद्ग हाणैतमलंकारम्, सौवर्णशकटिकां कारय।)

दारकः— अवेहि, ण गेण्हिस्सं, रोदसि तुमं। (अपेहि, न ग्रहिष्यामि, रोदिषि त्वम्।)

वसन्तसेना— (अश्रूणि प्रम ज्य) जाद ण रोदिस्सं। गच्छ, कील। (अलंकारैर्म च्छकटिकां पूरयित्वा) जाद! कारेहि सोवण्णसअडिअं (जात! न रोदिष्यामि। गच्छ, क्रीड। जात! कारय सौवर्णशकटिकाम्।)

चेटी— आर्ये! तब चारुदत्त आर्या पर नाराज होंगे।

वसन्तसेना—जाओ, नहीं नाराज होंगे।

अर्थः—

चेटी— (लेकर) जैसी आपकी आज्ञा। (ऐसा कहकर निकल कर फिर प्रवेश करती है) आर्ये! आर्या धूता कह रही है-आर्यपुत्र ने प्रसन्न होकर इसे आपको दिया है, (इसलिए) मेरा लेना ठीक नहीं है। आप यह जान लें कि आर्यपुत्र ही मेरे विशेष आभूषण है।'

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका)

(उसके बाद बच्चे को लेकर रदनिका प्रवेश करती है)

रदनिका— आओ बेटे! गाड़ी से खेलें।

बच्चा— (करुणा के साथ) रदनिके! मिट्टी की इस गाड़ी से मुझे क्या? वही सोने की गाड़ी दो।

रदनिका— (दुःख के साथ लम्बी साँस लेकर) बेटे! हमारे यहाँ सोने का व्यवहार कहाँ? जब तुम्हारे पिताजी फिर धनी हो जायेंगे तब सोने की गाड़ी से खेलना। तो जब तक इसको बहलाती हूँ। आर्या वसन्तसेना के पास ले चलूँ। (पास में जाकर) आर्ये! प्रणाम करती हूँ।

अर्थः—

वसन्तसेना—रदनिके! तुम्हारा स्वागत है। यह बच्चा किसका है? आभूषणरहित शरीरवाला भी चन्द्रमा जैसा मुखवाला यह मेरे हृदय को आनन्दित कर रहा है।

रदनिका— यह आर्य चारुदत्त का पुत्र है। इसका नाम रोहसेन है।

अर्थः—

वसन्तसेना— (बाँहों को फैला कर) आओ मेरे बच्चे! मेरी शरीर से लिपट जाओ। (गोदी में बैठकर) इसने पिता के ही रूप की नकल की है।

रदनिका— न केवल रूप ही। अनुमान करती हूँ, स्वभाव भी (इसने पिता के समान ही पाया है)। आर्य चारुदत्त इससे अपने को बहलाते हैं।

वसन्तसेना— अच्छा, तो यह क्यों रो रहा है?

रदनिका— यह पड़ोसी घर वाले के बच्चे की सोने की गाड़ी से खेला है। वह बच्चा अपनी गाड़ी ले गया। तब फिर उस (सोने की गाड़ी) को माँगने पर मैंने मिट्टी की यह गाड़ी बनाकर दे दी। तभी से यह कह रहा है-'रदनिके! मुझे इस मिट्टी की गाड़ी से क्या? वही सोने की गाड़ी दो।'

वसन्तसेना— हाय! हाय!! यह भी परायी सम्पत्ति से दुःखी होता है। भगवान् क्रुद्ध दैव! कमल के पत्ते पर गिरी हुई पानी की बूँदों के समान मनुष्य के भाग्यों से तुम खिलवाड़ करते हो। (ऐसा कह कर आँखों में आँसुओं को भर कर) बेटे! मत रोओ। सोने की गाड़ी से खेलना।

बच्चा— रदनिके! यह कौन है?

वसन्तसेना— तुम्हारे पिता के गुणों के द्वारा वश में की गयी दासी।

रदनिका— बेटे! आर्या वसन्तसेना आपकी माता होती हैं।

बच्चा— रदनिके! तुम झूठ बोल रही हो। यदि हमारी माता हैं, तो किसलिए इतने आभूषण पहने हैं?

वसन्तसेना— बेटे! भोले-भाले मुँह से अत्यन्त करुणापूर्वक बोल रहे हो। (अभिनय से आभूषण उतार कर रोती हुई) लो, यह अब तुम्हारी माता हो गयी। तो इस आभूषण को ग्रहण करो। सोने की गाड़ी बनवा डालो।

बच्चा— जाओ नहीं लूँगा। तुम रो रही हो।

वसन्तसेना— (आँसुओं को पोछकर) बेटे। रोऊँगी नहीं। जाओ, खेलो। बच्चे! सोने की गाड़ी बनवा लो।

(बच्चे को लेकर रदनिका निकल जाती है)

(प्रविश्य)

रदनिका—अज्जए! एसो वड्ढमाणओ विण्णवेदि-'पक्खदुआरए सज्जं पवहणं' त्ति। (आर्ये! एष वर्धमानको विज्ञापयति-पक्षद्वारे सज्जं प्रवहणम्' इति।)

वसन्तसेना—ह जे! चिट्ठदु मुहुत्तअं; जाव अहं अत्ताणअं पसाधेमि। (चेटि! तिष्ठतु मुहूर्तकम्; यावदहमात्मानं प्रसाधायामि।)

रदनिका—(निष्क्रम्य) वड्ढमाणआ! चिट्ठ मुहुत्तअं; जाव अज्जआ अत्ताणअं पसाधेदि। (वर्धमानक! तिष्ठ मुहूर्तकम्; यावदार्यात्मानं प्रसाधयति।)

चेटः— ही ही भो, मए वि जाणत्थलके विशुमलिदे। ता जाव गेण्हिअ आअच्छामि। एदे णश्शालज्जुकडुआ बइल्ला। भोदु, पवहणेण ज्जेव गदागदिं कलिश्शं। (हीही भोः! मयापि यानास्तरणं विस्म तम्। तद्यावद्ग हीत्वागच्छामि। एतौ नासिकारज्जुकटुकौ बलीवर्दौ। भवतु, प्रवहणेनैव गतागतिं करिष्यामि। (इति निष्क्रान्तश्चेटः)

वसन्तसेना— ह जे! उवणेहि मे पसाहणं। अत्ताणअं पसाधइस्सं। (चेटि! उपनय मे प्रसाधनम्। आत्मानं प्रसाधयिष्यामि।) (इति प्रसाधयन्ती स्थिता)

(गाड़ी पर बैठा हुआ प्रवेश करके)

अर्थः—

चेट— रदनिके! रदनिके! आर्या वसन्तसेना से निवेदन करो-'बगल के दरवाजे पर पर्दे से ढकी हुई तैयार गाड़ी खड़ी है।'

(प्रवेश करके)

रदनिका— आर्ये! यह वर्धमानक सूचित करते हैं कि-'बगल के दरवाजे पर तैयार गाड़ी खड़ी है।

वसन्तसेना— चेटि! क्षण भर ठहरे। जब तक मैं अपने को सजा-सँवार लेती हूँ।

रदनिका— (निकलकर) वर्धमानक! क्षण भर ठहरो। जब तक आर्या अपने को सुसज्जित करती हैं।

चेट— अरे ताज्जुब! मैं भी गाड़ी का बिछावन भूल आया। तो जब तक लेकर आता हूँ। नाक में पहनाई गई नाथ के कारण ये दोनों बैल तीखे हैं। अच्छा, गाड़ी से ही जाना-आना करूँगा। (ऐसा कहकर चेट निकल जाता है)।

वसन्तसेना— चेटि! सजाने-सँवारने की चीजें लाकर मुझे दो। अपने को सुसज्जित करूँगी। (ऐसा कह कर श्र ंगार करती हुई स्थित होती है)।

(प्रविश्य प्रवहणाधिरूढः)

चेटः— लदणिए लदणिए! णिवेदेहि अज्जआये वशंतशेणाये-'ओहालिअं पक्ख दुआलए शज्जं पवहणं चिट्ठदि'। (रदनिके रदनिके! निवेदयार्यायै वसन्तसेनायै-'अपवारितं पक्षद्वारके सज्जं प्रवहणं तिष्ठति'।)

(प्रविश्य प्रवहणाधिरूढः)

स्थावरकश्चेटः— आणत्तम्हि लाअशालअशंठाणेण-'यावलआ! पवहणं गेण्हिअ पुप्फकलंडअं जिण्णुज्जाणं तुलिदं आअच्छेहि, त्ति। भोदु, तहिं ज्जेव गच्छामि। वहध बइल्ला! वहध। (परिक्रम्यावलोक्य च) कधं गामशअलेहिं लुद्धे मग्गे?। किं दाणिं एत्थ कलइश्शं?। (साटोपम्) अले ले, ओशलध ओशलध। (आकर्ण्य) किं भणाध-'एशे कश्शकेलके पवहणे' त्ति?। एशे लाअशालअशंठाणकेलके पवहणे त्ति। ता शिग्घं ओशलध। (अवलोक्य) कधं एशे अवले शहिअं विअ मं पेक्खिअ शहश ज्जेव जूदपलाइदे विअ जूदिअले ओहालिअ अत्ताणअं अण्णदो अवक्कंते?। ता को उण एशे? अधवा किं मम एदिणा? तुलिदलं गमिश्शं। अले ले गामलुआ! ओशलध ओशलध। (आकर्ण्य) किं भणाध-'मुहुत्तअं चिट्ठ, चक्कपलिवट्टिं देहि' त्ति?। अले ले, लाअशालअशंठाणकेलके हग्गे शूले चक्कपलिपट्टिं दइश्शं। अधवा एशे एआई तवश्शी। ता एव्वं कलेमि। एदं पवहणं अज्जचालुदत्तश्श रुक्खवाडिआए पक्खदुआलए थावेमि। (इति प्रवहणं संस्थाप्य) एशे म्हि आअदे। (आज्ञप्तो स्मि राजश्यालकसंस्थानेन-'स्थावरक! प्रवहणं ग हीत्वा पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं त्वरितमागच्छ' इति। भवतु, तत्रैव गच्छामि। वहतं बलीवर्दाः! वहतम्। कथं ग्रामशकटै रुद्धो मार्गः?। किमिदानीमत्र करिष्यामि? अरे रे, अपसरत अपसरत। किं भणथ-'एतत्कस्य प्रवहणम्' इति?। एतद्राजश्यालकसंस्थानस्य प्रवहणमिति। तच्छीघ्रमपसरत। कथमेषो परः सभिकमिव मां प्रेक्ष्य सहसैव द्यूतपलायित इव द्यूतकरो पवार्यात्मानमन्यतो पक्रान्तः?। तत्कः पुनरेषः?। अथवा किं ममैतेन?। त्वरितं गमिष्यामि। अरे रे ग्राम्याः! अपसरत अपसरत। किं भणथ-'मुहूर्तकं तिष्ठ, चक्रपरिव र्त्तिं देहि' इति?। अरे रे, राजश्यालकसंस्थानस्याहं शूरश्चक्रपरिव र्त्तिं दास्यामि। अथवा एष एकाकी तपस्वी। तदेवं करोमि। एतत्प्रवहणमार्यचारुदत्तस्य व क्षवाटिकायाः पक्षद्वारके स्थापयामि। एषो स्म्यागतः।) (इति निष्क्रान्तः)

चेटी— अज्जए! णेमिसद्दो विअ सुणीअदि। ता आअदो पवहणो। (आर्ये! नेमिशब्द इव श्रूयते। तदागतं प्रवहणम्।)

वसन्तसेना— ह जे! गच्छ तुवरदि मे हिअअं; ता आदेसेहि पक्खदुआलअं। (चेटि! गच्छ, त्वरयति मे ह्रदयम्ः तदादिश पक्षद्वारम्।)

चेटी— एदु एदु अज्जआ। (एत्वेत्वार्या।)

वसन्तसेना— (परिक्रम्य) ह जे! वीसम तुमं। (चेटि! विश्राम्य त्वम्।)

चेटी— **जं अज्जआ आणवेदि। (यदार्याज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्ता)**

वसन्तसेना— (दक्षिणाक्षिस्पन्दं सूचयित्वा, प्रवहणम धिरुह्य च) किं ण्णेदं फुरदि दाहिणं लोअणं? अधवा चारुदत्तस्स ज्जेव दंसणं अणिमित्तं पमज्जइस्सदि। (किं न्विदं स्फुरति दक्षिणं लोचनम्? अथवा चारुदत्तस्यैव दर्शनमनिमित्तं प्रमार्जयिष्यति।)

(प्रविश्य)

स्थावरकश्चेटः— ओशालिदा मए शअडा। ता जाव गच्छामि। (इति नाट्येनाधिरुह्य चालयित्वा, स्वगतम्) भालिके पवहणे। अधवा चक्कपलिवट्टिआए पलिश्शंतश्श भालिके पवहणे पडिभाशेदि। भोदु, गमिश्शं। जाध गोणा! जाध। (अपसारिता मया शकटाः। तद्यावद्गच्छामि। भारवत्प्रवहणम्। अथवा चक्रपरिवर्तनेन परिश्रान्तस्य भारवत्प्रवहणं प्रतिभासते। भवतु, गमिष्यामि। यातं गावौ! यातम्।)

(नेपथ्ये)

अरे रे दोवारिआ! अप्पमत्ता सएसु सएसु गुम्मट्ठाणेसु होध। एसो अज्ज गोवालदारओ गुत्तिअं भंजिअ गुत्तिवालअं वावादिअ बंधणं भेदिअ परिब्भट्टो अवक्कमदि, ता गेण्हध गेण्हध। (अरे रे दौवारिकाः! अप्रमत्ताः स्वेषु स्वेषु गुल्मस्थानेषु भवत। एषो द्य गोपालदारको गुप्तिं भङ्क्त्वा गुप्तिपालकं व्यापाद्य बन्धनं भित्वा परिभ्रष्टो पक्रामति, तद्ग ह्णीत ग ह्णीत।)

(प्रविश्यापटीक्षेपेण सभ्रान्त एकचरणलग्ननिगडो वगुण्ठित आर्यकः परिक्रामति)

(गाड़ी पर चढ़ा हुआ प्रवेश करके)

राजा के साले संस्थानक के द्वारा मुझे आज्ञा दी गयी है-'स्थावरक! गाड़ी लेकर पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में शीघ्र आओ।' अच्छा, वहीं जाता हूँ। चलो, बैलों! चलो। (घूमकर और देखकर) क्या गाँव की गाड़ियों से रास्ता रुक गया है? अब यहाँ क्या करूँ? (घमण्ड के साथ) अरे रे! हटो-हटो। (सुनकर) क्या कह रहे हो-'यह किसकी गाड़ी है?' यह राजा के साले संस्थानक की गाड़ी है। तो शीघ्र हटो। (देखकर) जुआ से भागा हुआ जुआरी के समान यह दूसरा जुआ खेलाने वाले के समान मुझे देखकर अपने को छिपाकर जल्दी से ही दूसरी ओर भाग गया? तो फिर यह कौन है? अथवा मुझको इससे क्या? शीघ्र ही चलूँ। अरे रे गाँव के आदमियों! हटो हटो। (सुनकर) क्या कह रहे हो-'क्षण भर ठहरो। जरा पहिये में सहारा लगा दो।' अरे! राजा के साले संस्थानक का शूर (सेवक) मैं पहिये में सहारा लगाऊँगा?। अथवा यह बेचारा अकेला है। तो ऐसा करता हूँ अर्थात् सहारा लगा देता हूँ। इस गाड़ी को आर्य चारुदत्त की व क्षवाटिका की खिड़की पर खड़ी कर देता हूँ। (गाड़ी खड़ी करके) यह मैं आ ही गया। (निकल जाता है)।

चेटी— गाड़ी की नेमि का शब्द सुनायी पड़ रहा है। इसलिये (प्रतीत होता है कि) गाड़ी आ गयी है।

वसन्तसेना—चेटि! चलो। मेरा हृदय उत्कण्ठित हो रहा है। अतः पक्षद्वार का रास्ता बतलाओ।

चेटी— आर्ये! आइये, आइये।

वसन्तसेना— (घूमकर) चेटि! तुम आराम करो।

चेटी— जो आर्या आज्ञा देती हैं। (निकल जाती है)

वसन्तसेना— (दाहिनी आँख का फड़कना सूचित करके और रथ पर चढ़कर) क्यों यह दाहिनी आँख फड़क रही है? अथवा चारुदत्त का दर्शन ही अनिष्ट को दूर करेगा।

(प्रवेश करके)

स्थावरक **चेट**— मैंने गाड़ियों को हटा दिया है। इसलिये अब जाता हूँ। (ऐसा कहकर अभिनय के साथ गाड़ी पर चढ़कर, चलाकर, अपने आप) गाड़ी बोझिल (मालूम पड़ती है)। अथवा पहिये में जोर लगाने के कारण थके हुए मुझको गाड़ी बोझिल सी लग रही है। अच्छा, चलूँगा। चलो, बैलों! चलो।

(पर्दे के पीछे)

अरे द्वारपालों! अपनी-अपनी चौकियों पर सावधान हो जाओ। यह अहीर का लड़का कारागार को तोड़कर, कारागार के रखवाले को मारकर, हथकड़ी को तोड़ कर छूटा हुआ भागा जा रहा है। अतः पकड़ो! पकड़ो।

(बिना पर्दा गिरे ही प्रवेश करके घबड़ाया हुआ एक पैर में पड़ी हुई बेड़ी वाला कपड़े से मुँह छिपाये हुए आर्यक घूमता है।)

चेटः— **(स्वगतम्) महते णअलीए शंभमे उप्पण्णे। ता तुलिदं तुलिदं गमिश्शं। (महान्नगर्यां सम्भ्रम उत्पन्नः। तत्त्वरितं त्वरितं गमिष्यामि।)**

(इति निष्क्रान्तः)

आर्यकः—

हित्वा हं नरपतिबन्धनापदेश-
व्यापत्तिव्यसनमहार्णवं महान्तम्।
पादाग्रस्थितनिगडैकपाशकर्षी
प्रभ्रष्टो गज इव बन्धनाद्भ्रमामि।।१।।

अन्वयः— महान्तम्, नरपतिबन्धनापदेशव्यापत्तिव्यसनमहार्णवं, हित्वा, पादाग्रस्थितनिगडैकपाशकर्षी, अहं, बन्धनात्, प्रभ्रष्टः, गजः, इव, भ्रमामि।।१।।

चेट— (अपने आप) नगरी में बहुत अधिक घबड़ाहट पैदा हो गई है। इसलिये जल्दी, जल्दी चलूँगा।

शब्दार्थः— महान्तम् = बहुत बड़े, नरपतिबन्धनापदेशव्यापत्तिव्यसनमहार्णवं = राजा की कैद के बहाने से होने वाली बहुत बड़ी आपत्ति रूप संकट के सागर को, हित्वा = पार करके, पादाग्रस्थितनिगडैकपाशकर्षी = पैर के निचले हिस्से में लगी बेड़ी रूप एक पाश को खींचने वाला, अहं = मैं बन्धनात् = बन्धन से, प्रभ्रष्टः = छूटे हुए, गजः इव = हाथी के समान, भ्रमामि = घूम रहा हूँ।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

अर्थः—

आर्यक— राजा की कैद के बहाने से होने वाली बहुत बड़े आपत्तिरूप संकट के विशाल महासागर को पार करके, पैर के निचले हिस्से में लगे; बेड़ी रूप एक पाश को खींचने वाला मैं, बन्धन से छूटे हुए हाथी के समान, घूम रहा हूँ।।१।।

टीका— महान्तम् = दुस्तरम् इत्यर्थः; नरपतेः = राज्ञः पालकस्य बन्धनं = कारागारावरोधः तदेव व्यपदेशः = ब्याजः तेन या व्यापत्तिः, विशाला आपत्तिः ताडनबधादिविपत्तिः तद्रूपं यत् व्यसनं = कष्टं संकटमित्यर्थः तदेव महार्णवः = विशालसागरः तै; हित्वा = कथंचित् परित्यज्य; पादाग्रे = चरणाग्रे स्थितः = संलग्नः यः निगडः = श्रंखला सः एव एकः = केवलः पाशः = अवरोधकः तं कर्षति इति तथोक्तः; अहम् = आर्यकः; बन्धनात् = श्रंखलायाः; प्रभ्रष्टः = च्युतः, गजः = हस्ती इव; भ्रमामि = चलामि।।१।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं प्रहर्षिणी छन्द है। छन्द का लक्षण-त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।।१।।

भोः, अहं खलु सिद्धादेशजनितपरित्रासेन राज्ञा पालकेन घोषादानीय विशसने गूढागारे बन्धनेन बद्धः। तस्माच्च प्रियसुहृच्छर्विलकप्रसादेन बन्धनात्परिभ्रष्टो स्मि। (अश्रूणि विस ज्य)

भाग्यानि मे यदि तदा मम को पराधो
यद्वन्यनाग इव संयमितो स्मि तेन।
दैवी च सिद्धिरपि लंघयितुं न शक्या,
गम्यो न पो बलवता सह को विरोधः?।।२।।

अर्थः— अरे! सिद्ध की भविष्यवाणी से डरे हुए राजा पालक के द्वारा मुझे अहीरों की बस्ती से मँगवाकर मार डालने वाले गुप्त कारागार में बेड़ियों से एवं हथकड़ियों से जकड़ दिया गया था। प्रिय मित्र शर्विलक की कृपा से उस कारागार से छूट गया हूँ। (आँसू बहाकर)

अन्वयः— यदि, मे, भाग्यानि, तदा, मम, कः, अपराधः; यत्, तेन, वन्यनागः, इव, संयमितः, अस्मि; दैवी, सिद्धिः, अपि, च, लङ्वयितुं, न, शक्या, (तथापि); न पः, गम्यः, बलवता, सह, कः, विरोधः?।।२।।

शब्दार्थः— यदि = यदि, मे = मेरे, भाग्यानि = भाग्य है, तदा = तब, मम = मेरा, कः = कौन, अपराधः = दोष? यत् = जिससे, तेन = उस राजा के द्वारा, वन्यनागः = जंगली हाथी, इव = जैसा, संयमितः = बन्धन में डाल दिया गया, अस्मि = हूँ; दैवी = भाग्यवश होने वाली, सिद्धिः = राज्य की प्राप्ति, अपि = भी, लंघयितुं = टाली जाने के लिये, न = नहीं, शक्या = योग्य है, (तथापि = तो भी) न पः = राजा, गम्यः = सेवा करने के योग्य है, बलवता = बलवान् के साथ, कः = कौन, विरोध?।।

अर्थः— यदि मेरे भाग्य हैं, तो उसमें मेरा कौन सा दोष? जिससे उस राजा पालक के द्वारा मैं, जंगली हाथी के समान, बन्धन में डाल दिया गया था। भाग्य वश होने वाली राज्य की सिद्धि भी टाली नहीं जा सकती। फिर भी राजा (सबके लिये) सेवा करने के योग्य है। (क्योंकि) बलशाली के साथ क्या विरोध? (अर्थात्-भाय में यदि राज्य होगा तो वह अवश्य मिलेगा। किन्तु इस समय बलशाली राजा से विरोध करके कष्ट उठाना ठीक नहीं है। उससे मेल कर लेना चाहिए)।।२।।

टीका— यदि = चेत्, मे = मम आर्यकस्य, भाग्यानि = राज्यभोगप्रदानि पूर्वकर्माणि; तदा = तर्हि; मम = मे, कः = कीद शः; अपराधः = दोषः? अर्थात् न को पि मम दोषः। यत् = यस्मात्; तेन = राज्ञा पालकेन; वने = अरण्ये भवः वन्यः = वनोत्पन्नः इत्यर्थः स चासौ गजः =

हस्ती, इव; संयमितः = निगडितः, बद्धः; अस्मि = वर्ते। दैवी = भाग्याधीना; सिद्धिः = राज्यलाभः, अपि च, लंघयितुम् = अतिक्रामयितु; न शक्या = न योग्या; भाग्यं यत् ललाटे लिखितं तत् मार्जितुं न शक्यते इत्यर्थः। तथापि न पः = राजा; गम्यः = आश्रयणीयः भवतीति शेषः; यतः बलवता = बलशालिना जनने; सह = साकं; कः = कीद शः; विरोधः = विवादः; निर्बलस्येति।।२।।

इस श्लोक में उपमा एवं अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।।२।।

तत्कुत्र गच्छामि मन्द भाग्यः?। (विलोक्य) इदं कस्यापि साधेरनाव तपक्षद्वारं गेहम्।

इदं ग हं भिन्नमदत्तदण्डो विशीर्णसंघिश्च महाकपाटः।
ध्रुवं कुटुम्बी व्यसनाभिभूतां दशां प्रपन्नो मम तुल्यभाग्यः।।३।।

तदिमं तावत्प्रविश्य तिष्ठामि।

(नेपथ्ये)

अर्थः— तो अभागा मैं कहाँ जाऊँ (देखकर) यह किसी सज्जन का खुली हुई खिड़की वाला घर है।

अन्वयः— इदं, ग हं, भिन्नम्, अदत्तदण्डः, विशीर्णसन्धिः, महाकपाटः, च, (अस्ति, अतः, ज्ञायते); मम, तुल्यभाग्यः, कुटुम्बी, ध्रुवं, व्यसनाभिभूतां, दशां, प्रपन्नः, (अस्ति)।।३।।

शब्दार्थः— इदं = यह, ग हं = घर, भिन्नम् = फूटा हुआ है, अदत्तखण्डः = बिना बेड़ा दी हुई, विशीर्णसन्धिः = फटे हुए जोड़ स्थान वाली, महाकपाटः = विशाल किवाड़, (अस्ति = है, अतः = इसलिये, ज्ञायते = मालूम पड़ता है) मम = मेरे, तुल्यभाग्यः = जैसा भाग्य वाला, कुटुम्बी = घर का मालिक, ध्रुवं = निश्चय ही, व्यसनाभिभूतां = दुःखों से भरी हुई, दशां = हालत को, प्रपन्नः = प्राप्त हुआ (अस्ति = है)।

अर्थः— यह घर फूटा हुआ है। बिना दण्ड लगायी हुई, फटे हुए जोड़-स्थान वाली, किवाड़ है। (अतः मालूम पड़ता है कि) मेरे जैसा मन्द भाग्यवाला यह घर का मालिक अवश्य ही दुःखों से भरी हालत को प्राप्त हो गया है।।३।।

इसलिए इसी में घुसकर बैठता हूँ।

टीका— इदं = पुरोवर्ति; ग हं = भवनं; भिन्नम् = यत्र तत्र स्फुटितम्। न दत्तः = संलग्नः दण्डः = अर्गला, यस्मिन् ताद शः; कपाटस्य उद्घाटितत्वात् ग हे धनशून्यता ज्ञायते इति भावः; विशीर्णः = जीर्णः सन्धि = फलकानां संयोजनं यस्य ताद शश्च अस्तीति शेषः; अतः ज्ञायते; मम तुल्यं = सद शं भाग्यं यस्य सः; कुटुम्बो = ग हस्वामी; ध्रुवम् = अवश्यं; व्यसनेन = विपत्त्या अभिभूताम् = आक्रान्तां; दशाम् = अवस्थां; प्रपन्नः = प्राप्तः अस्तीति शेषः।।३।।

इस श्लोक में उपका अलंकार एवं उपेन्द्रवज्रा छन्द है।।३।।

जाध गोणा! जाध। (यातं गावौ,! यातम्।)

आर्यकः— (आकर्ण्य) अये, प्रवहणमित एवाभिवर्तते।

भवेद्गोष्ठीयानं न च विषमशीलैरधिगतं
वधूसंयानं वा तदभिगमनोपस्थितमिदम्।
बहिर्नेतव्यं वा प्रवरजनयोग्यं विधिवशा-
द्विविक्तत्वाच्छून्यं मम खलु भवेद्दैवविहितम।।४।।

अन्वयः— इदम्, विषमशीलैः, अधिगतं, गोष्ठयानं, न, च, भवेत्; वा, वधूसंयानं, (न, भवेत्); (यत्) तदभिगमनोपस्थितम् (अस्ति); वा; मम, विधिवशात्, शून्यं, बहिः; नेतव्यं, प्रवरजनयोग्यं, (न भवेत्), विविक्तत्वात्, खलु, (मम), दैवविहितम्, भवेत्।।४।।

शब्दार्थः— इदम् = यह (गाड़ी), विषमशीलैः = खराब आचरणवालों के द्वारा अधिगतं = चढ़ी गयी, गोष्ठीयानं = उत्सव अथवा सभा में जाने वाली सवारी, न भवेत् = न हो? वा = अथवा, वधूसंयानं = दुलहिन की सवारी, (न भवेत् = न हो?) (यत् = जो) तदभिगमनोपस्थितम् = उसे ले जाने के लियेआयी हुई (अस्ति = है); वा = अथवा, मम = मेरे, विधिवशात् = भाग्य के कारण; शून्यं = सूनी, बहिः = बाहर, नेतव्यं = ले जाने वाली, प्रवरजनयोग्यं = बड़े लोगों के चढ़ने के लायक, (न भवेत् = न हो?), (अथवा) विविक्तत्वात् = निर्जन होने के कारण, खलु = निश्चय ही, (मम = मेरे) दैवविहितम् = भाग्य के द्वारा भेजी गयी, भवेत् = हो?।।

(पर्दे के पीछे)

बढ़े चलो बैलों! बढ़े चलो।

अर्थः—

आर्यक— (सुनकर) अरे, गाड़ी इधर ही आ रही है।

यह गाड़ी खराब आचरणवाले आदमियों के द्वारा चढ़ी गयी किसी उत्सव में जाने वाली सवारी न हो अथवा यह किसी दुलहिन की सवारी न हो जो उसे ले जाने के लिये आयी है? अथवा भाग्य के कारण सूनी बाहर ले जाने वाली, बड़े लोगों के चढ़ने के लायक न हो अथवा निर्जन होने के कारण खाली यह गाड़ी निश्चय ही मेरे भाग्य के द्वारा न भेजी गयी हो?।।४।।

टीका— इदम् = पुरोद श्यमानं प्रवहणं; विषयमशीलैः = भ्रष्टचरित्रैः; अधिगतम् = अधिष्ठितं; गोष्ठी = विद्वत्परिषत् सभा वा तत्र गमनार्थं यानं = प्रवहणं; न च भवेत् = न च स्यात्; वा = अथवा; वध्वाः = नूतनविवाहितायाः स्त्रियः संयानं = प्रवहण; न भवेत्, यत्; तस्याः = बध वाः अभिगमनाय = गन्तुमित्यर्थः, उपस्थितम् = आगतम्, अस्ति; वा = अथवा; मम = आर्यकस्य; विधिवशात् = भाग्यवशात्; शून्यं = रिक्तं; बहिः = बाह्यप्रदेशे; नेतव्यं = नेतुं योग्यं; प्रवरजनानां = श्रेष्ठजनानां योग्यम् = अधिरोहणोचितं; न भवेत्? अथवा, विविक्तत्वात् = निर्जनत्वात्, परिजनादिरहितत्वादितिभावः; खलु = निश्चितं, मम दैवेन = पूर्वपुण्येन विहितं = प्रापितमित्यर्थः; भवेत् = स्यात्।।४।।

इस श्लोक में सन्देह नामक अलंकार तथा शिखरिणी छन्द है।।४।।

(ततः प्रवहणेन सह प्रविश्य)

वर्धमानकश्चेटः— **हीमाणहे, आणीदे मए जाणत्थलके। लदणिए! णिवेदेहि अज्जआए वशंतशेणाए—'अवत्थिदे शज्जे पवहणे अहिलुहिअ पुप्फकलंटअं जिण्णुज्जाणं गच्छदु अज्जआ'। (आश्चर्यम्, आनीतं मया यानास्तरणम्। रदनिके! निवेदयार्यायै वसन्तसेनायै-'अवस्थितं सज्जं प्रवहणमधिरुह्य पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं गच्छत्वार्या'।)**

चेटः— **(श्रुत्वा) कधं णेउलशद्दे?। ता आअदा खु अजआ। अज्जए! इमे णश्श कडुआ बइल्ला। ता पिट्ठदो ज्जेव आलुहदु अज्जआ। (कथं नूपुरशब्दः?। तदागता खल्वार्या। आर्ये! इमौ नासिकारज्जुकटुकौ बलीवर्दौ। तत्प ष्ठत एवारोहत्वार्या।)**

(आर्यकस्तथा करोति)

चेटः— पादुप्फालचालिदाणं णेउलाणं वीशंतो शद्दो, भलक्कंते अ पवहणे। तथा तक्केमि शंपदं अज्जआए आलूढाए होदव्वं; ता गच्छामि। जाध गोणा! जाध। (पादोत्फालचालितानां नूपुराणां विश्रान्तः शब्दः, भाराक्रान्तं च प्रवहणम्। तथा तर्कयामि सांप्रतमार्ययारूढया भवितव्यम्ः तद्गच्छामि। यातं गावौ! यातम्।) (इति परिक्रामति)

(प्रविश्य)

वीरकः— अरे रे, अरे जअ-जअमाण-चंदणअ-मंगल-पुल्लभद्दप्पमुहा!

किं अच्छध वीसद्धा जो सो गोवालदारओ बद्धो।
भेत्तूण समं वच्चइ णरवइहिअअं अ बंधणं चावि।।५।।

(अरे रे, अये जय-जयमान-चन्दनक—मंगल-पुष्पभद्र-प्रमुखाः!

किं स्थ विश्रब्धा यः स गोपालदारको बद्धः।
भित्त्वा समं व्रजति नरपतिहृदयं च बन्धनं चापि।।

(उसके बाद गाड़ी के साथ प्रवेश करके)

अर्थः—

वर्धमानक चेट— आश्चर्य! मैं गाड़ी की बिछावन ले आया। रदनिके! आर्या वसन्तसेना से निवेदन करो-'तैयार गाड़ी खड़ी है, उस पर चढ़ कर आप पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में जाय।'

आर्यक— (सुनकर) यह वेश्या की सवारी है। और बाहर जाने वाली है। अच्छा, चढ़ता हूँ। (ऐसा कह कर धीरे से चढ़ता है)।

चेट— (सुनकर) क्या पायल का शब्द? तो निश्चय ही आर्या वसन्तसेना आ गयीं। आर्ये! ये बैल नाक में पहनायी गयी रस्सी के कारण तीखे हैं। इसलिए आप पीछे से ही चढ़ें।

(आर्यक वैसा ही करता है)

चेट— पैरों के उठाने से हिलने वाले नूपुरों की झंकार बन्द हो गयी है। गाड़ी भी बोझिल हो गयी है। इससे अन्दाज करता हूँ कि अब आर्या वसन्तसेना चढ़ चुकी होंगी। तो अब चलता हूँ। चलो बैलों! चलो (ऐसा कहकर घूमता है)।

अन्वयः— विश्रब्धाः, किं, स्थ, यः, गोपालदारकः, रुद्धः, सः, नरपतिहृदयं, च, बन्धनम्, अपि, समं, भित्त्वा, व्रजति।।५।।

शब्दार्थः— विश्रब्धाः = निश्चिन्त, किं = क्यों, स्थ = हो? यः = जो, गोपालदारकः = अहीर का लड़का, रुद्धः बन्दी था, सः = वह, नरपतिहृदयं = राजा के हृदय को, च = और, बन्धनं = बन्धन को, अपि = भी, समं = एक साथ, भित्त्वा = तोड़ कर, व्रजति = जा रहा है।।

(प्रवेश करके)

अर्थः—

वीरकः— अरे! अरे! जय, जयमान, चन्दनक, मंगल एवं पुष्पभद्र आदि प्रधान (रक्षकों)।

तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों खड़े हो? जो अहीर का लड़का बन्दी बनाया गया था, वह राजा के हृदय एवं बन्ध दोनों को एक साथ ही तोड़कर भागा जा रहा है।।५।।

टीका— विश्रब्धाः = विश्वस्ताः; किं = कथं; स्थ = तिष्ठथ। यः गोपालस्य = आभीरस्य दारकः = पुत्रः; रुद्धः = बद्धः आसीत्; सः नरपतेः = राज्ञः हृदयं = चेतः, च = तथा, बन्धनं = कारागार चापि; समं = साकं; भित्त्वा = विदार्य; व्रजति = पलायते इत्यर्थः।।५।।

इस श्लोक में सहोक्ति अलंकार एवं आर्या छन्द है।

अले पुरत्थिमे पदोलीदुआरे चिट्ठ तुमं। तुमं पि पच्छिमे, तुमं पि दक्खिणे, तुमं पि उत्तरे। जो वि एसो पाआरखंडो, एदं अहिरुहिअ चन्दणेण समं गदुअ अवलोएमि। एहि चन्दणअ! एहि, इदो दाव। अरे, पुरस्तात्प्रतोलीद्वारे तिष्ठ त्वम्, त्वमपि पश्चिमे, त्वमपि दक्षिणे, त्वमप्युतरे। यो प्येष प्राकारखण्डः, एनमधिरुह्य चन्दनेन समं गत्वावलोकयामि। एहि चन्दनक! एहि। इतस्तावत्।

चन्दनकः— **अरे रे वीरअ विसल्ल-भीमंगअ-दंडकालअ-दंड-सूरप्पमुहा!**

आअच्छध वीसत्था तुरिअं जत्तेह लहु करेज्जाह
लच्छी जेण ण रण्णोपहवइ गोत्तंतरं गंतुं।।६।।

(अरे रे वीरक—विशल्य-भीमांगद-दण्डकाल-दण्डशूरप्रमुखाः,
आगच्छथ विश्वस्तास्त्वरितं यतध्वं लघु कुरुत।
लक्ष्मीर्येन न राज्ञः प्रभवति गोत्रान्तरं गन्तुम्।।

अर्थः— अरे, तुम पूरब वाली गली के मुँहाने पर खड़े हो जाओ, तुम भी पश्चिम में, तुम दक्षिण में और तुम भी उत्तर में। और मैं चन्दन के साथ जाकर जो यह चहार दीवारी का हिस्सा है उस पर चढ़ कर देखता हूँ। आओ चन्दनक! आओ। इधर तो आओ।

(घबड़ाया हुआ प्रवेश करके)

अर्थः— **चन्दनक—** अरे! वीरक, विशल्य, भीमांगद, दण्डकाल, दण्डशूर आदि (रक्षकों)!

अन्वयः— हे विश्वस्ताः! आगच्छथ, त्वरितं, यतध्वं, लघु, कुरुत; येन, राज्ञः, लक्ष्मीः, गोत्रान्तरं, गन्तुम्, न, प्रभवति।।६।।

शब्दार्थः— हे विश्वस्ताः = हे विश्वासपात्रों! आगच्छथ = आओ, त्वरितं = जल्द, यतध्वं = कोशिश करो, लघु = शीघ्रता, कुरुत = करो, येन = जिससे, राज्ञः = राजा की, लक्ष्मीः = राज्य-लक्ष्मी, गोत्रान्तरं = दूसरे कुल को, गन्तुम् = जाने में, न = नहीं, प्रभवति = समर्थ हो।।

अर्थः— हे विश्वासपात्रों! आओ, शीघ्रता से (आर्यक को पकड़ने की) कोशिश करो, शीघ्रता करो। जिससे राजा पालक की राज्य-लक्ष्मी दूसरे कुल में न जा सके अर्थात् आर्यक राजा न हो सके।।६।।

टीका— हे विश्वस्ताः! = हे विश्वासपात्राणि! आगच्छथ = आयात; त्वरितं = शीघ्रं; यतध्वम् = आर्यकं ग हीतुं यत्नं कुरुत; लघु = झटिति; कुरुतयेन = येन हेतुना; राज्ञः = पालकस्य, लक्ष्मीः = राज्यश्रीः; गोत्रान्तरं = अन्यत् कुलं; गन्तुं = यातुं; न प्रभवति = न समर्था भवति।।६।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-गाथा।।६।।

अवि अ,—

उज्जाणेसु सहासु अ मग्ने णअरीअ आवणे घोसे।
तं तं जोहह तुरिअं संका वा जाअए जत्थ।।७।।

अपि च—

उद्यानेषु सभासु च मार्गे नगर्यामापणे घोषे।
तं तमन्वेषयत त्वरितं शंका वा जायते यत्र।।

अन्वयः— उद्यानेषु, सभासु, च, मार्गे, नगर्याम्, आपणे, घोषे, वा, यत्न, शंका, जायते, तं, तं, त्वरितम्, अन्वेषयत।।७।।

शब्दार्थः— उद्यानेषु = बगीचों में, सभासु = सभाओं में, च = भी, मार्गे = रास्ते में, नगर्याम् = नगरी में, आपणे = बाजार में, घोषे = अहीरों की बस्ती में, वा = अथवा, यत्र = जहाँ, शंका = सन्देह, जायते = पैदा हो, तम् = उसको, तम् = उसको, अर्थात् उस उस स्थान को, त्वरितम् = शीघ्र, अन्वेषयत = खोजो।।

और भी-

अर्थः— बगीचों में, सभाओं में, रास्ते में, नगरी, बाजार एवं अहीरों की बस्ती में, जहाँ कहीं शंका पैदा हो उन उन जगहों को शीघ्रतया खोजो।।७।।

टीका— उद्यानेषु = वाटिकासु, सभासु = समितिषु च; मार्गे = पथि; नगर्याम् = पुरि; आपणे = वस्तुक्रयविक्रयस्थाने; घोषे = आभीरपल्लयां; वा = अथवा; यत्र = यस्मिन् स्थाने; शंका = सन्देहः; जायते = उत्पद्यते तं तं = तं स्थानमित्यर्थः; त्वरितम् = शीघ्रतम्; अन्वेषयत = गवेषयत।।७।।

इस श्लोक में गाथा छन्द है।।७।।

रे रे वीरअ! किं किं दरिसेसि भणादि दाव वीसद्धं।
भेत्तूण अ बंधणअं को सो गोवालदारअं हरइ।।८।।
रे रे वीरक! किं किं दर्शयसि भणसि तावद्विश्रब्धम्।
भित्त्वा च बन्धनकं कः स गोपालदारकं हरति।।

अन्वयः— रे रे वीरक! किं किं, दर्शयसि, विश्रब्धं, किं, भणसि, तावत् बन्धनकम्, भित्त्वा, सः, कः, (यः), गोपालदारकम्, हरति।।८।।

शब्दार्थः— रे रे वीरक! = अरे वीरक! किं किं = क्या क्या, दर्शयसि = दिखला रहे हो, विश्रब्धं = विश्वासपूर्वक, किं भणसि = क्या कह रहे हो? तावत् = (यह समूह के अर्थ में प्रयुक्त है), बन्धनकम् = बन्धन को, भित्त्वा = तोड़कर, सः = वह, कः = कौन (है), (यः = जो), गोपालदारकम् = अहीर के लड़के को, हरति = छुड़ाये लिये जा रहा है।।

अर्थः— अरे वीरक! क्या क्या दिखला रहे हो? विश्वासपूर्वक क्या कह रहे हो? बन्धन को तोड़कर वह कौन अहीर के बच्चे को छुड़ाये लिये जा रहा है?।।८।।

टीका— रे रे वीरक! किं किं दर्शयसि = निर्दिशसि इत्यर्थः; विश्रब्धं = विश्वासपूर्वकं यथा तथा; किं भणसि = कथयसि, तावदिति साकल्ये। बन्धनकम् = काराग हमित्यर्थः, भित्त्वा = भङक्त्वा, सः कः = सः कः पुरुषः अस्ति, यः गोपालदारकम् = आभीरपुत्रं, हरति = बलात् आच्छिद्य याति।।८।।

इस श्लोक में आर्या छन्द का एक भेद गीति छन्द है।

कस्सट्टमो दिणअरो कस्स चउत्थो अ वट्टए चंदो।
छट्ठो अ भग्गवगहो भूमिसुओ पंचमो कस्स?।।९।।

कस्याष्टमो दिनकरः कस्य चतुर्थश्च वर्तते चन्द्रः।
षष्ठश्च भार्गवग्रहो भूमिसुतः पंचमः कस्य?।।

अन्वयः— कस्य, अष्टमः, दिनकरः, कस्य, चन्द्रः, चतुर्थः, च, वर्तते कस्य, भार्गवग्रहः, षष्ठः, च, भूमिसुतः, प चमः, वर्तते।।६।।

शब्दार्थः— कस्य = किसके, अष्टमः = आठवें, दिनकरः = सूर्य (है), कस्य = किसके, चन्द्रः = चन्द्रमाः, चतुर्थः = चौथे, वर्तते = है। कस्य = किसके भार्गवग्रहः = शुक्रग्रह, षष्ठः = छठे, च = और, भूमिसुतः = मंगल, प चमः = पाँचवें है।।

अर्थः— किसके आठवें स्थान पर सूर्य है? चन्द्रमा किसके चौथे स्थान पर है? किसके छठे स्थान पर शुक्र एवं पाँचवें स्थान पर मंगल है?।।६।।

टीका— कस्य = जनस्य, जन्मराशेः अष्टमः = अष्टमस्थानास्थितः, दिनकरः = सूर्यः, कस्य चन्द्रः = चन्द्रमाः, चतुर्थः = जन्मराशेः चतुर्थराशिस्थः, वर्तते = स्थितः अस्ति। कस्य, भार्गवसुतः = शुक्रः, षष्ठः = षष्ठस्थानस्थितः, च = तथा, भूमिसुतः = मंगलः, प चमः = जन्मराशेः पंचमस्थानीयः, वर्तते = अस्ति।।६।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।६।।

भण कस्स जम्मछट्ठो जीवो णवमो तहेअ सूरसुओ।
जीअंते चंदणए को सो गोवालदारअं हरइ।।१०।।
भण कस्य जन्मषष्ठो नवमस्तथैव सूरसुतः।
जीवति चन्दनके कः स गोपालदारकं हरति।।

अन्वयः— भण, जीवः, कस्य; जन्मषष्ठः, तथैव, सूरसुतः, (कस्य), नवमः?, चन्दनके, जीवति, सः, कः, (यः), गोपालदारकम्, हरति।।१०।।

शब्दार्थः— भण = बतलाओ, जीवः = ब हस्पति, कस्य = किसकी, जन्मषष्ठः = जन्मराशि से छठे (है), तथैव = उसी तरह, सूरसुतः = शनि, (कस्य = किसके), नवमः = नवें स्थान पर स्थित है, चन्दनके = चन्दनक के, जीवति = जिन्दा रहने पर, सः = वह, कः = कौन (है), (यः = जो), गोपालदारकम् = अहीर के बच्चे को, हरति = छुड़ाये ले जा रहा है।।

अर्थः— बतलाओ, ब हस्पति किसकी जन्म-राशि से छठे स्थान पर है? तथा शनि नवें स्थान पर है? चन्दनक के जिन्दा रहते हुए वह कौन है जो अहीर के बच्चे को छुड़ाये ले जा रहा है?।।१०।।

टीका— भण = ब्रूहि, जीवः = ब हस्पतिः, कस्य जनस्येति शेषः, जन्मनः = जन्मराशेः षष्ठः = षष्ठस्थानस्थितः अस्ति, तथैव, सूरसुतः = सूरस्य = सूर्यस्य सुतः = पुत्रः शनिः इत्यर्थः, कस्य नवमः = जन्मराशितः नवमराशिस्थितः इत्यर्थ। चन्दनके जीवति = वर्तमाने, सः कः अस्तु; यः गोपालस्य = गोपस्य दारकः = सुतः तम्, हरति = बलात् नयति।।१०।।

वीरकः— भड चंदणआ!

अवहरइ कोवि तुरिअं चंदणअ सवामि तुज्ज हिअएण।
जइ अद्धइददिणअरे गोवालअदारओ खुडिदो।।११।।

(भट चन्दनक!

अपहरति को पि त्वरितं चन्दनक शपे तव हृदयेन।

यथार्धोदितदिनकरे गोपालदारकः खुटितः।।)

अन्वयः— हे चन्दनक! तव, हृदयेन, शपे, को पि, त्वरितं, (आर्यकम्) अपहरति; यथा, अर्धोदितदिनकरे, गोपालदारकः, खुटितः।।११।।

शब्दार्थः— हे चन्दनक! तव = तुम्हारे, हृदयेन = हृदय से, शपे = सौगन्ध खाता हूँ। को पि = कोई, त्वरितं = जल्दी से, (आर्यकम् = आर्यक को) अपहरति = छुड़ाये लिये जा रहा है। यथा = जैसे कि, अर्धोदितदिनकरे = सूर्य के आधा निकलने पर, गोपालदारकः = गोपाल का पुत्र, खुटितः = बन्धन छोड़कर भगाया गया।।

वीरक— वीर चन्दनक!

अर्थः— मैं तुम्हारे हृदय की सौगन्ध खाता हूँ। हे चन्दनक! कोई जल्दी से आर्यक को छुड़ाये लिये जा रहा है। क्योंकि सूर्य के आधा निकलने के समय वह गोपाल-पुत्र भाग निकला था।।११।।

टीका— हे चन्दनक! तव हृदयेन = हृदयं स्प ष्ट्वा, शपे = शपथं करोमि। को पि = अज्ञातनामा जनः; त्वरितं = शीघ्रम्; आर्यकम् इति शेषः; अपहरति = अचूचुरदित्यर्थः। यथा अर्धोदितदिनकरे = सूर्योदयकाले; गोपालदारकः = आभीरपुत्रः आर्यकः इत्यर्थः; खुटितः = बन्धनं छित्वा मोचितः इत्यर्थः।।११।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।११।।

चेटः— **जाध गोणा! जाध। (यातं गावौ! यातम्।)**

चन्दनकः— (द ष्ट्वा) अरे रे, पेक्ख पेक्ख

ओहारिओ पवहणो वच्चइ मज्झेण राअमग्गस्स।
एदं दाव विआरह कस्स कहिं पवसिओ पवहणो त्ति।।१२।।

(अरे रे, पश्य पश्य

अपवारितं प्रवहणं व्रजति मध्येन राजमार्गस्य।
एतत्तावद्विचारय कस्य कुत्र प्रेषितं प्रवहणमिति।।)

अर्थः—

चेट— बढ़े चलो बैलों! बढ़े चलो।

चन्दक— (देखकर) अरे रे! देखो देखो—

अन्वयः— राजमार्गस्य, मध्येन, अपवारितं, प्रवहणं, व्रजति, एतत्, तावत्, विचारय, कस्य, प्रवहणं, कुत्र, प्रेषितम्, इति।।१२।।

शब्दार्थः— राजमार्गस्य = सड़क के, मध्येन = बीच से, अपवारितं = ढकी हुई, प्रवहणं = गाड़ी, व्रजति = जा रही है। एतत् = यह, तावत् = सब कुछ, विचारय = विचार करो, कस्य = किसकी, प्रवहणं = गाड़ी है, कुत्र = कहाँ, प्रेषितम् = भेजी गयी है, इति = ऐसा।

अर्थः— सड़क के बीचोबीच कपड़े से ढकी हुई गाड़ी जा रही है। यह सब पूछताछ करो कि किसकी गाड़ी है और कहाँ जा रही है?।।१२।।

टीका— राजमार्गस्य = सामान्यपथस्य; मध्येन = मध्यभागम् अवलम्ब्य इत्यर्थः; अपवारितम् = आच्छादितं; प्रवहणं = कर्णीरथः; व्रजति = गच्छति; एतत् = इदं; तावत् = साकल्येन, विचारय = जानीहि, कस्य जनस्य एतत् प्रवहणं = रथः; तथा कुत्र = कस्मिन् स्थाने; प्रेषितं = गन्तुं निर्दिष्टम्; इति।।१२।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-गाथा।।१२।।

वीरकः— **(अवलोक्य) अरे पवहणवाहआ! मा दाव एवंपवहणं वाहेहि। कस्सकेरकं एदं पवहणं? को वा इध आरूढो कहिं वावज्जइ?। (अरे प्रणहणवाहक! मा तावदेतत्प्रवहणं वाहय। कस्यैतत्प्रवहणम्? को वा इहारुढः कुत्र वा व्रजति?।)**

चेटः— **एशे खु पवहणे अज्जचालुदत्ताह केलके। इध अज्जआ वशंतशेणा आलूढा पुप्फकरंडअं जिण्णुज्जाणं कीलिदुं चालुदत्तश्ण णीअदि। (एतत्खलु प्रवहणमार्य चारुदत्तस्य। इहार्या वसन्तसेनारूढा पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं क्रीडितुं चारुदत्तस्य नीयते।)**

वीरकः— **(चन्दनमुपस त्य) एसो पवहणवाहओ भणादि-'अज्जचालुदत्तस्स पवहणं वशंतशेणा आलूढा। पुप्फकरंडअं जिण्णुज्जाणं णीअदि' त्ति। (एष प्रवहणवाहको भणति-'आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणं वसन्तसेनारूढा। पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं नीयते' इति।)**

चन्दनकः— **ता गच्छदु। (तद्गच्छतु।)**

वीरकः— **अणवलोइदो ज्जेव्व?। (अनवलोकित एव?)**

चन्दनकः— **अध इं। (अथ किम्।)**

वीरकः— **कस्स पच्चएण?। (कस्य प्रत्ययेन?)**

चन्दनकः— **अज्जचारुदत्तस्स। (आर्यचारुदत्तस्य।)**

वीरकः— **को अज्जचारुदत्तो, का वा वसंतशेणा, जेण अणवलोइदं वज्जइ?। (क आर्यचारुदत्तः, का वा वसन्तसेना, येनानवलोकितं व्रजति?।)**

चन्दनकः— **अरे, अज्जचारुदत्तं ण जाणासि, ण वा वसंतसेणिअं?। जइ अज्जचारुदत्तं वसंतसेणिअं वा ण जाणासि, ता गअणे जोण्हासहिदं चंदं पि तुमं ण जाणासि।**

को तं गुणारविंदं सीलमिअंकं जणो ण जाणादि।
आवण्णदुक्खमोक्खं चउसाअरसारअं रअणं।।१३।।

(अरे आर्यचारुदत्तं न जानासि, न वा वसन्तसेनाम्?। यद्यार्यचारुदत्तं वसन्तसेनां वा न जानासि, तदा गगने ज्योत्स्नासहितं चन्द्रमपि त्वं न जानासि।

कस्तं गुणारविन्दं शीलम गांकं जनो न जानाति।
आपन्नदुःखमोक्षं चतुःसागरसारं रत्नम्।।

अर्थः—

वीरक— (देखकर) अरे गाड़ीवान्। इस गाड़ी को आगे मत बढ़ाओ। यह किसकी गाड़ी है? इस पर कौन चढ़ा है, यह कहाँ जा रही है?

चेट— यह गाड़ी आर्य चारुदत्त की है। इस पर आर्या वसन्तसेना बैठी हैं। पुष्पकरण्डक नामक पुराने उद्यान में चारुदत्त के साथ क्रीडा करने के लिये जा रही हैं।

वीरक— (चन्दनक के पास जाकर) यह गाड़ीवान कहता है कि 'आर्य चारुदत्त की गाड़ी है, इस पर वसन्तसेना चढ़ी हैं। पुष्पकरण्डक नामक पुराने उद्यान में ले जायी जा रही हैं।''

चन्दनक— तो जाय।

वीरक— बिना देखे ही?

चन्दनक— और क्या?

वीरक— किसके विश्वास से?

चन्दनक— आर्य चारुदत्त के।

वीरक— आर्य चारुदत्त कौन है और वसन्तसेना कौन है, जिससे बिना देखे ही चली जाय?

चन्दनक— अरे! आर्य चारुदत्त को नहीं जानते हो और न वसन्तसेना को ही? यदि आर्य चारुदत्त और वसन्तसेना को नहीं जानते हो तो तुम आकाश में चाँदनी के सहित चन्द्रमा को भी नहीं जानते हो।

अन्वयः— गुणारविन्दम्, शीलम गांकम्, आपन्नदुःखमोक्षम्, चतुःसागरसारम्, रत्नम्, तम्, कः, जनः, न, जानाति।।१३।।

शब्दार्थः— गुणारविन्दम् = गुणों में कमल के समान, शीलम गाङ्कम् = स्वभाव में चन्द्रमा के तुल्य, आपन्नदुःखमोक्षम् = विपत्ती में पड़े हुए लोगों के दुःख को दूर करने वाले, चतुःसागरसारम् = चारों सागरों के सार रूप, रत्नम् = रत्न, तम् = उसको, कः = कौन, जनः = आदमी, न = नहीं, जानाति = जानता है।

अर्थः— गुणों में कमल के समान (सुन्दर), स्वभाव में चन्द्रमा के तुल्य (प्रिय), विपत्ति में पड़े हुए लोगों के दुःख को दूर करने वाले, चारों-सागरों के सारभूत रत्न उस (आर्य चारूदत्त) को कौन आदमी नहीं जानता ? (अर्थात् सभी उनको जानते हैं)।।१३।।

टीकाः— गुणेषु = दयापरोपकारादिषु अरविन्दम् इव = कमलम् इव; शीले = स्वभावे म गाङ्कः = चन्द्रः इव, तम्; आपन्नानाम् = दुःखितानां दुःखस्य = क्लेशस्य मोक्षः = मुक्तिः येन तम्; चतुर्ण्णां सागराणां सारम् = सारभूतम्ः रत्नम् = मणिस्वरूपम् इत्यर्थः, तम् = चारुदत्तम्; क५ जनः = कः मानवः; न जानाति = न वेत्ति। सर्वजनविदितं निखिलप्राणिसहायकं सच्चरित्रयुक्तं चारुदत्तं न कोश्यत्र यः न जानाति।।१३।।

इस श्लोक में रूपक अलङ्कार एवं आर्या छन्द है।

द्वावेव पूजनीयाविह नगर्यां तिलकभूतौ च।
आर्या वसन्तसेना धर्मनिधिश्चारुदत्तश्च।।
दो ज्जेव पूअणीआ इह ण्अरीए तिलअ भूदा अ
अज्जा वसंतसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ ।।१४।।

अन्वयः— इह, नगर्याम्, द्वौ, एव, पूजनीयौ, तिलकभूतौ, च, आर्या, वसन्तसेना, धर्मनिधिः, चारुदत्तः, च।।१४।।

शब्दार्थः— इह = इस, नगर्याम् = नगरी में, द्वौ = दो, एव = ही, पूजनीयौ = पूजनीय, (एवं), तिलकभूतौ = शिरमौर रूप (हैं), आर्या = आदरणी, वसन्तसेना = वसन्तसेना नामक वेश्या-पुत्री, (तथा) धर्मनिधिः = धर्मनिधि, चारुदत्तः = चारुदत्त।

अर्थः— इस (उज्जयिनी) नगरी में दो हो व्यक्ति पूजनीय एवं सिरमौर रूप हैं - आर्या वसन्तसेना और धर्मनिधि चारुदत्त।।१४।।

टीका— इह = अस्याम्; नगर्याम् = उज्जयिन्तां नगर्याम् इत्यर्थः, द्वौ = उभौ एव; पूजनीयौ = सम्माननाहौ, तिलकभूतौं = मुकुटस्वरूपौ इत्यर्थः, स्तः तयोः एका आर्या = माननीया, वसन्तसेना अस्ति द्वितीयः, धर्मनिधिः = धर्मस्य आकर; धर्मशीलः इति भावः, चारुदत्त वर्तते।। १४।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।

वीरकः— अरे चंदणआ !

जाणामि चारुदत्तं वसंतसेणं अ सुट्ठु जाणामि।
पत्तते अ राअकज्जे पिदरं पि अहं ण जाणामि।।१५।।

अरे चन्दनक—जानामि चारुदत्तं वसन्तसेनां च सुष्ठु जानामि।
प्राप्ते च राजकार्यो पितरमप्यहं न जानामि।।

अन्वयः— चारुदत्तम्, जानामि, वसन्तसेनाम्, च सुष्ठु जानामि, च, राजकार्ये, प्राप्ते, अहम्, पितरम्, अपि, न, जानामि।।१५।।

शब्दार्थः— चारुदत्तम् = चारुदत्त को, जानामि = जानता हूं, वसन्तसेनाम् = वसन्तसेना को, च = भी, सुष्ठु = भली-भाँति, जानामि = जानता हूँ, (च = पुनः), राजकार्ये = राजकार्य के, प्राप्ते = समुपस्थिते, अहम् = वीरकः, पितरम् = स्वजनकम्, अपि न जानामि = न विधि, न त्यजामि इत्यर्थः, का कथा पुनरन्येषाम् ?।।१५।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।

आर्यकः— (स्वगतम्) अयं मे पूर्ववैरी, अयं मे पूर्वबन्धुः, यतः

एककार्यनियोगे पि नानयोस्तुल्यशीलता।
विवाहे च चितायां च यथा हुतभुजोर्द्वयोः।।१६।।

अर्थः— **आर्यक—** (अपने आप) यह (वीरक) मेरा पूर्व (जन्म) का शत्रु है। यह (चन्दनक) मेरा पूर्व (जन्म) का भाई है। क्योंकि -

अन्वयः— एककार्यनियोगे, अपि, अनयोः, तुल्यशीलता, न, यथा, विवाहे, च, चितायाम्, च, द्वयोः, हुतभुजोः।।१६।।

शब्दार्थः— एककार्यनियोगे = एक काम में लगे रहने पर, अपि = भी, अनयोः = इन दोनों (चन्दनक एवं वीरक) के, तुल्यशीलता = स्वभाव में समानता, न = नहीं है, यथा = जैसे, विवाहे = विवाह में, च = और, चितायाम् = चिता में, द्वयोः = दोनों हुतभुजोः = आग की।।

अर्थः— इस प्रकार के ही काम में लगे रहने पर भी इन दोनों का स्वभाव एक समान नहीं है। जिस तरह विवाह की अग्नि तथा चिता की अग्नि - दोनों में समानता नहीं होती। (अर्थात् चन्दनक विवाह की आग के समान सुखदायी है और वीरक चिता की आग की तरह दुःखदायी है)।।१६।।

टीका— एकस्मिन् = समाने कार्ये = कर्मणि, एकत्र रक्षाकार्ये अपरत्र दहनकर्मणि, नियोगे = नियोजने; अपि; अनयोः = **चन्दनक**—वीरकयोः; तुल्यशीलता = समानः स्वभावः इत्यर्थः;

नास्ति; यथा = येन प्रकारेण; विवाहे = उद्वाहे; च = तथा; चितायाम् = शवदहनकाष्ठपु जे, च = अपि, द्वयोः = द्वयोः स्थानयोः स्थितयोः हुतभुजोः = अग्न्योः। यथा एकस्मिन् दहनकर्मणि प्रव त्तयोः विवाहस्य चितायाश्च अग्न्योः न समानता। एकस्मिन् शोभनता अपरस्मिन् उद्वेजकता भवति। तथैव एकस्मिन् रक्षाकार्ये संलग्नयोः चन्दनकवीरकयोः तुल्यस्वभावता नास्तीति भावः।।१६।।

चन्दनकः— तुम तंतिलो सेणावई रण्णे पच्चइदो। एदे धारिदा मए बइल्ला। अवलोएहि। (त्वं तन्त्रिलः सेनापती राज्ञः प्रत्ययितः। एतौ धारितौ मया वलीवर्दौ। अवलोकय।)

वीरकः— तुमं पि रण्णो पच्चइदो बलवई। ता तुमं ज्जेव अक्लोएहि। (त्वमपि राज्ञः प्रत्ययितो बलपतिः। तस्मात्त्वमेवावलोकय।)

चन्दनकः— मए अवलोइदं तुए अवलोइदं भोदि ? (मयावलोकितं त्वयावलोकितं भवति ?)

वीरकः— जं तुए अवलोइदं तं रण्णा पालएण अवलोइदं। (यत्त्वया वलोकितं तद्राज्ञा पालकेनावलोकितम्।)

चन्दनकः— अरे, उण्णा मेहि धुरं। (अरे, उन्नामय धुरम्।)

(चेटस्तथा करोति)

आर्यकः— (स्वागतम्) अपि रक्षिणो मामवलोकयन्ति। अशस्त्रश्चास्मि मन्दभाग्यः।

अथवा—

भीमस्यानुकरिष्यामि बाहुः शस्त्रं भविष्यति।
वरं व्यायच्छतो म त्युर्न ग हीतस्य बन्धने।।१७।।

अर्थः— **चन्दनक—** तुम राज्य की चिन्ता करने वाले राजा के विश्वासपात्र सेनापति हो। (लो) इन दोनों को मैंने पकड़ लिया है। देख लो।

वीरक— तुम भी राजा के विश्वस्त सेनापति हो। इसलिए तुम्हीं देख लो।

चन्दनक— क्या मेरे देख लेने से तुम्हारा देखना हो जाएगा ?

वीरक— यदि तुमने देख लिया तो मानो राजा पालक ने देख लिया।

चन्दनक— अरे ! जुआ उठाओ।

(चेट वैसा करता है)

अर्थः— **आर्यक—** (अपने आप) क्या सिपाही मुझे देखते हैं और अभागा मैं बिना शस्त्र के हूं अथवा-

अन्वयः— (अहम्), भीमस्य, अनुकरिष्यामि, (मे) बाहुः, शस्त्रम् भविष्यति; व्यायच्छतः, (मम), म त्युः, वरम्, बन्धने, ग हीतस्य, न।।१७।।

शब्दार्थः— (अहम् = मैं), भीमस्य = भीम की, अनुकरिष्यामि = नकल करूंगा। (मे = मेरी), बाहुः = भुजा, शस्त्रम् = शस्त्र, हथियार, भविष्यति = होगी। व्यायच्छतः = लड़ते हुए, (मम = मेरा) म त्यु = मरना, वरम् = अच्छा है, बन्धने = कारागार में, ग हीतस्य = बन्द किये गये का (मरना) न = नहीं।।

अर्थः— (मैं) भीम की नकल करूंगा। (मेरी) भुजा ही शस्त्र होगी। लड़ते हुए मर जाना अच्छा है, कारागार में पड़े हुए का नहीं (मरना ठीक है)।।१७।।

टीका— अहम् = आर्यकः; भीमस्य = व कोदरस्य; अनुकरिष्यामि = अनुकरणं करिष्यामि। मे बाहुः = भुजः, शस्त्रम् = प्रहरणम्; भविष्यति। व्यायच्छतः = युद्धं कुर्वतः, मम इति शेषः, म त्युः

= मरणम्, वरम् = प्रियम्, किन्तु बन्धने = कारागारे, ग हीतस्य = अवरुद्धस्य, म त्युः न वरम्। बन्धनात् युद्धे म त्युः अभीप्सितः। अतः युद्धम् एव करिष्यामीति भावः।।१७।।

अथवा साहसस्य तावदनवसरः।

(चन्दनको नाटयेन प्रवहणमारुह्यावलोकयति)

आर्यकः— शरणागतो स्मि।

चन्दकः— (संस्क तमाश्रित्य) अभयं शरणागतस्य।

आर्यकः—

त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च।।
भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं त्यजति।।१८।।

अर्थः— अथवा यह हिम्मत करने का समय नहीं है।

(चन्दनक अभिनय के साथ गाड़ी पर चढ़कर देखता है)

आर्यक— मैं आपकी शरण में आ गया हूँ।

चन्दनक— (संस्क त में) शरण में आये हुए को कोई डर नहीं है।

अन्वयः— यः, शरणगतम् त्यजति, तम्, जयश्रीः, खलु त्यजति, मित्राणि, बन्धुवर्गः, च, किल, जहति, (सः) सदा, उपहास्यः, च, भवति।।१८।।

शब्दार्थः— यः = जो, शरणागतम् = शरण में आये हुए को, त्यजति = छोड़ देता है, तम् = उसको, जयश्रीः = विजयलक्ष्मी, त्यजति = छोड़ देती है। मित्राणि = मित्र वर्ग, बन्धु वर्ग :- भाई-बन्धुओं का समूह, च = भी, किल = अवश्य ही,। जहति = छोड़ देता है। (सः = वह) सदा = हमेशा, उपहास्यः = हँसी का पात्र, च = भी, भवति = होता है।

अर्थः—

आर्यक— जो (व्यक्ति) शरण में आये हुए की रक्षा नहीं करता है, निश्चय ही उसको विजयलक्ष्मी त्याग देती है। मित्र तथा भाई-बन्धु भी उसे छोड़ देते हैं। और वह हमेशा हँसी का पात्र होता है।।१८।।

टीका— यः जनः इतिशेषः, शरणे = आश्रये आगतम् = प्राप्तं जनम्, त्यजति = जहाति, तम् = जनम्, जयश्रीः = विजयलक्ष्मीः, खलु = निश्चितम्, त्यजति = परित्यज्य गच्छति। मित्राणि = सुहृदः, बन्धुवर्गश्च = सम्बन्धिगणश्च, किल = अवश्यम्, जहति = त्यजन्ति, सः जन, सदा = सर्वदा, उपहास्यः = उपहसनीयः, च = अपि, भवति = जायते। शरणागतस्य परित्यागः सर्वथा निन्दादायकः असुखकरश्च भवतीति भावः।।१८।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है - आर्या।

चन्दनकः—**कधं अज्जओ गोवालदारओ सेणवित्तसिदी विअ पत्तरही साउणिअस्स हत्थे णिवडिदो। (विचिन्त्य) एसो अणवरावो सरणाअदो अज्जचारुदत्तस्य पवहणं आरूढो, पाणप्पदस्स मे अज्जसव्विलअस्स मित्तं। अण्णदो राअणिओओ। ता किं दाणिं एत्थ जुत्तं अणुचिट्ठिदुं। अधवा जं भोदु तं भोदु, पढमं ज्जेव अभअं दिण्णं।**

भीदाभअप्पदाणं दत्तस्य परोवआररसिअस्स।
जइ होइ होउ णाओ तहवि हु लोए गुणो जेव।।१६।।

(सभयमवतीर्य) दिट्ठो अज्जो - (इत्यर्वोक्ते) ण, अज्जआ वसंतसेणा। तदो एस भ्णादि - 'जुत्तं णेदं, सरिसं णेदं, जं अहं अज्जचारुदत्तं अहिसारिदुं गच्छन्ती राअमग्गे परिभूदा।' (कथमार्यको गोपालदारकः श्येनवित्रासित इव पत्ररथः शाकुनिकस्य हस्ते निपतितः ?। एषो नपराधः शरणागत आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणमारूढः, प्राणअप्रस्य मे आर्यशर्विलकस्य मित्रम्। अन्यतो राजनियोगः। तत्किमिदानीमत्र युक्तमनुष्ठातुम् ?। अथवा यद्भवतु तद्भवतु, प्रथममेवाभयं दत्त म्।)

भीताभयप्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य।
यदि भवति भवतु नाशस्तथापि खलु लोके गुण एव।।

अर्थः— **चन्दनक—**क्या! अहीर-पुत्र आर्यक बाज से डरे हुए पक्षी की भाँति बहेलिया के हाथ में आ पड़ा ? (विचार कर) (एक ओर तो) यह (बेचारा) निर्दोष है, शरण में आया हुआ है तथा आर्य चारुदत्त की गाड़ी पर चढ़ा हुआ है और मेरे जीवनदाता शर्विलक का मित्र है। दूसरी ओर राजा की आज्ञा है। तो अब इस विषय में क्या करना ठीक है ? अथवा जो हो सो हो, पहले ही अभय दे दिया है।

अन्वयः— भीताभयप्रदानम्, ददतः, परोपकाररसिकस्य, (जनस्य) यदि, नाशः, भवति, भवतु, तथापि, लोके, गुणः, एव, (भवति।।१८।।

शब्दार्थः— भीताभयप्रदानम् = डरे हुए के लिए अभय-दान को, ददतः = देने वाले, परोपकाररसिकस्य = परोपकार करने के प्रेमी, (जनस्य = व्यक्ति की), यदि = यदि, नाशः = म त्यु, भवति = होती है, (तो) भवतु = हो; तथापि = तो भी (मर जाने पर भी), लोके = संसार में, गुणः = प्रशंसा, एव = ही, (भवति = होती है)।।

अर्थः— डरे हुए को अभयदान देने वाले परोपकार करने के प्रेमी (आदमी) की यदि म त्यु हो जाती है तो होने दो। मर जाने पर भी संसार में (उसकी) प्रशंसा ही होती है अर्थात् मुझे आर्यक की रक्षा करनी चाहिए, चाहे इसमें हमारी म त्यु ही हो जाय।।१६।।

टीका— भीतेभ्यः = भयचकितेभ्यः; अभयस्य = अभीतेः प्रदानम् = दानम्; ददतः = अर्पयतः; कुर्वतः इत्यर्थः, परेषाम् = अन्येषाम् उपकारे = साहाय्ये रसिकस्य = अनुरागिणः, परोपकारतत्परस्येत्यर्थः, जनस्येति शेषः, यदि = चेत्ः, नाशः = म त्युः, भवति = जायते, तर्हि भवतु = अस्तु, तथापि = मरणे पि, लोके = संसारे, गुणः = यशः, एव भवति। परोपकारे म तं जनं लोकः प्रशंसते इतिभावः।। १६।।

द ष्ट आर्यः— न, आर्या वसन्तसेना। तदेषा भणति, - 'युक्तं नेदम्, सद शं नेदम्, यदहमार्यचारुदत्तमभिसर्तुं गच्छन्ती राजमार्गे परिभूता।'।

वीरकः— चन्दणआ ! एत्थ मह संसओ समुप्पण्णे। (चन्दनक ! अत्र मे संशयः समुत्पन्नः।)

चन्दनकः— कधं दे संसओ ?। (कथं ते संशयः ?।)

वीरकः—

संभमघग्घरकंठो तुमं पि जादो सि जं तुए मणिदं।
दिट्ठो मए खु अज्जो पुणो वि अज्जा वसंतसेणेत्ति।।२०।।

एत्थ मे अप्पच्चओ।

(संभ्रमघर्घरकण्ठस्त्वमपि जातो सि यत्त्वया भणितम्।
द ष्टो मया खल्वार्यः पुनरप्यार्या वसन्तसेनेति।।

अत्र मे प्रत्ययः)

अर्थः— (डर के साथ गाड़ी से उतर कर) देख लिया आर्य...... (यह आधा कहने पर) नहीं, आर्या वसन्तसेना। तो यह कहती है - 'यह उचित नहीं है, यह ठीक नहीं है; जो कि आर्य चारुदत्त से अभिसार (रमण) करने के लिये जाती हुई मेरा सड़क पर अपमान किया गया।'

वीरक—चन्दनक ! तुम्हारे कहने में मुझे सन्देह पैदा हो गया है।

चन्दनक—तुझे सन्देह क्यों है ?

अन्वयः— त्वम्, अपि, संभ्रमघर्घरकण्ठः, जातः, असि, यत्, त्वया, (पूर्वम्) भणितम्, मया, खलु, आर्यः, दुष्ट पुनरपि, आर्या, वसन्तसेना, इति।।२०।।

शब्दार्थः— त्वम् = तुम्, अपि = भी, संभ्रमघर्घरकण्ठः = घबराहट के कारण घर्घराहटपूर्ण कण्ठवाले, जातः = हो गये, असि = हो, यत् = जो कि, त्वया = तुम्हारे द्वारा, (पूर्वम् = पहले), भणितम् = कहा गया, मया = मेरे द्वारा, खलुः = निश्चित ही, आर्यः = आर्य, (आर्यक), दुष्टः = देखा गया, पुनरपि = और फिर, आर्या = माननीय, वसन्तसेना = वेश्या (देखी गयी), इति = ऐसा।।

अर्थः— **वीरक—**घबड़ाहट के कारण तुम्हारी आवाज घर्घरा (लड़खड़ा) रही है। और तुमने (पहले) कहा मैंने आर्य को देख लिया और बाद में कहा आर्या वसन्तसेना को देख लिया। (इससे मुझे संदेह हो गया है)।।२०।।

इसी (तुम्हारे दो तरह के कहने) में मुझे अविश्वास है।

टीका— त्वम् = चन्दनकः, अपि सम्भ्रमेण = असत्यवचनोद्वेगेन घर्घरः = घर्घर-ध्वनियुक्तः कण्ठः = गलप्रदेशः, यस्य ताद शः, जातः = सम्पन्न, असि = वर्तसे। यत् = यस्मात्; त्वया = चन्दनकेन, पूर्व भणितम् = उक्तम्, मया खलु = अवश्यमु, आर्यः = को पि पुरुषः, दुष्ट = अवलोकित, पुनरपि = आयः दुष्टः इत्युक्त्यनन्तरमेव, आर्या = मान्या, वसन्तसेना दुष्टा, इति = इत्थम्। अतः द्विविधवाक्यकथनेन में संशयः जातः इति भावः।।२०।।

इस श्लोक में गीति छन्द है।

चन्दनकः—**अरे, को अप्पच्चओ ? तुह। वर्अ दक्खिणत्ता अवत्तभासिणो। खल-खत्ति-खडो खडट्टोबिसअ-कण्णाट-कण्ण-प्पावरणअदविड-चोल-चीण-बर्वर-खेर-खान-मुख मधुघादपहुदाणं मिलिच्छजादीणं अणेअदेसभासाभिण्ण जहेट्ठं मंतआम, दिट्ठो दिट्ठा वा अज्जो अज्जआ वा। (अरे, को प्रत्ययस्तव ?। वयं दाक्षिणात्या अव्यक्त भाषिणः। खष-खत्ति-कड-कडट्ठोबिल-कर्णाट कर्ण-प्रावरण-द्राविड-चोल-चीन-बर्बर- खेर-खान-मुख-मधुघातप्रभ तीनां म्लेच्छजातीना- मनेकदेशभाषाभिज्ञा यथेष्टं मन्त्रयामः, द ष्टो द ष्टा वा, आर्य आर्या वा।)**

वीरकः— **णं अहं पि पलोएमि। राअअण्ण एसा। अहं रण्णे पच्चइदो। (नन्वहमति प्रलोकयामि। राजाज्ञैषा। अहम् राज्ञः प्रत्ययितः।)**

चन्दनकः—**ता किं अहं अप्पच्चइदो संवुत्तो ?। (तत्किमहमप्रत्ययितः संव त्तः ?।)**

वीरकः— **णं सामिणिओओ। (ननु स्वमिनियोगः।)**

चन्दनकः—**(स्वगतम्) अज्जगोवालदारओ अज्जचारुदत्तस्य पवहणं अहिरुहिअ अवक्कमदि त्ति जइ कहिज्जदि, तदो अज्जचारुदत्तो रण्ण सासिज्जइ। ता को एत्थ उवाओ। (विंचिन्त्य)**

कण्णाटकलहप्पओअं कलेमि। (प्रकाशम्) अरे वीरअ ! मए मन्दणकेण पलोइदं पुणो वि तुमं पलोएसि को तुम। (आर्यगोपालदारक आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणमधिरुह्यापक्रामतीति यदि मथ्यते, तदार्यचारुदत्तो राज्ञा शास्यते। तत्को त्रोपायः ?। कर्णाटकलहप्रयोगं करोमि। अरे वीरक ! मया चन्दनकेन प्रलोकितं पुनरपि त्वं प्रलोकयसि ?। कस्त्वम् ?।)

अर्थः—

वीरकः— अरे, तुमं पि को ? (अरे, त्वमपि कः ?।)

चन्दनकः—पूइज्जंतो माणिज्जंतो तुम अप्पणो जादिं ण सुमरेसि ?। (पूज्यमानो मान्यमानस्त्वमात्मनो जातिं न स्मरसि ?।)

वीरकः— (सक्रोधम्) अरे, का मह जादी ?। (अरे, का मम जातिः ?।)

चन्दनकः—को भण्उ ? (को भणतु ?।)

वीरकः— भण्उ। (भणतु।)

चन्दनकः—अहवा ण भणाभि,-

जाणंतो वि हु जादिं तुज्झ अ ण भणामि सीलविहवेण।
चिट्ठउ महच्चिअ मणे किं च कइत्थेण भग्गेण।।२१।।

(अथवा न भणामि,-

जानन्नपि खलु जातिं तव च न भणामि शीलविभवेन।
तिष्ठतु ममैव मनसि किं च कपित्थेन भग्नेन।।)

अर्थः—

चन्दनक— अरे ! तुम्हें अविश्वास क्यों है ? हम दक्खिन के निवासी अस्पष्ट बोलने वाले होते हैं। खष, खत्ति, कड, कडट्टोबिल, कर्नाट, कर्णप्रावरण, द्राविड़, चोल, चीन, बर्वर, खेर, खान, मुख, मधुघात आदि म्लेच्छ जातियों की अनेक देशों की भाषा को जानने वाले (हम लोग) जैसा चाहते हैं वैसा बोलते हैं - 'देखा गया' या 'देखी गयी', 'आर्य' या 'आर्या'।

वीरक— तो मैं भी देखता हूं। यह राजा की आज्ञा है। मैं राजा का विश्वासपात्र हूं।

चन्दनक— तो क्या मैं अविश्वसनीय हो गया हूं ?

वीरक— तो भी स्वामी की आज्ञा है।

चन्दनक— (अपने आप) यदि यह कह दूं कि आर्य गोपाल-पुत्र आर्य चारुदत्त की गाड़ी पर चढ़कर भाग रहा है तो राजा आर्य चारुदत्त को दण्ड देंगे। तो इसमें क्या उपाय है ? (सोचकर) कर्णाट (के लोगों) की भांति झगड़ा करूंगा। (प्रकट रूप में) अरे ! वीरक ! मुझ चन्दनक के द्वारा देखे जाने पर भी फिर तुम देख रहे हो। ? कौन हो तुम (दुबारा देखने वाले) ?

वीरक—अरे ! तुम्हीं कौन हो ?

चन्दनक— पूजनीय तथा माननीय तुम अपनी जाति की याद नहीं करते हो ?

वीरक— (क्रोध के साथ) अरे ! क्या है मेरी जाति ?

चन्दनक— कौन कहे ?

वीरक— कहो।

चन्दनक— अथवा नहीं कहूंगा -

अन्वयः— तव;, जातिम्, खलु, जानन्, अपि, शीलविभवेन, न, भणामि, (सा), मम, एव, मनसि, तिष्ठतु, कपित्थेन, भग्नेन, च, किम्।।२१।।

शब्दार्थः— तव = तुम्हारी, जातिम् = जाति को, खलु = निश्चय ही, जानन् = जानते हुए, अपि = भी, शीलविभवेन = सुशीलता के कारण, न = नहीं, भणामि = कहता हूँ अथवा कहूँगा, (सा = वह जाति), मम = मेरे, एव = ही, मनसि = मन में, तिष्ठतु = रहे, कपित्थेन = कैथ, भग्नेन = तोड़ने से, किं = क्या लाभ ?।।

वीरकः— णं भणउ, भण। (ननु भणतु, भणतु।)

(चन्दनकः सञ्ज्ञां ददाति)

अर्थः—

वीरक— अरे ! कहो, कहो।

(चन्दनक (उसकी जाति का परिचायक) इशारा करता है)

अर्थः— वीरक—अरे ! यह क्या है ?

वीरकः— अरे, किं णेदं। (अरे, किं न्विदम् ?।)

चन्दनकः—

सिण्णसिलाअलहत्थो पुरिसाणं कुच्चगंठिसंठवणो।
कत्तरिवावुदहत्थो तुमं पि सेणावई जादो।।२२।।

(शीर्णशिलातलहस्तः पुरुषाणा कूर्चग्रन्थिसंस्थापनः।
कर्तरीव्याप तहस्तस्त्वमपि सेनापतिर्जातः।)

अन्वयः— शीर्णशिलातलहस्तः, पुरुषाणाम्, कूर्चग्रन्थिसंस्थापनः, कर्तरीव्याप तहस्तः, त्वम्, अपि, सेनापतिः, जातः।।२२।

शब्दार्थः— शीर्णशिलातलहस्तः = टूटे पत्थर के टुकड़े को हाथ में रखने वाला, पुरुषाणाम् = पुरुषों की, कूर्चग्रन्थिसंस्थापनः = दाढ़ी की गाँठ छीलनेवाले, कर्तरीव्याप तहस्तः = कैची (चलाने) में व्यस्त हाथ वाला, त्वम् = तुम्, अपि = भी, सेनापतिः = सेनापति, जातः = हो गये हो।।

अर्थः—

चन्दनक— (उस्तरा पैना करने के लिये) टूटे पत्थर के टुकड़े को हाथ में रखनेवाला, पुरुषों की दाढ़ी छीलनेवाला एवं कैंची चलाने में व्यस्त हाथवाला तू (नाई) भी सेनापति हो गया है।।२२।।

टीका— शीर्णम् = भग्नं शिलातलम् = प्रस्तरखण्डः हस्ते = करे यस्य असौ, नापितः क्षुरं तीक्ष्णं विधातुं एकं प्रस्तरखण्डं स्वसमीपे स्थापयति। कार्यकाले सः प्रस्तरखण्डं हस्ते स्थाप्य तत्र क्षुरं स चाल्य तीक्ष्णं करोति। पुरुषाणाम् = जनानाम्, कूर्चानाम् = श्मश्रूणाम्। ग्रन्थेः = वन्धनस्य, मूलप्रदेशस्य इत्यर्थः, संस्थापनम् = समुच्छेदः येन ताद शः, कर्तर्याम् = केश-कर्तनाय अस्त्रविशेषे व्याप तः = संलग्नः हस्तः = करः यस्य सः = तथाभूतः, त्वमपि = त्वं नापितः

भूत्वा अपि इत्यर्थः, सेनापतिः = बलपतिः, जातः = भूतः। त्वत्सद शः नापितः अपि सेनापतिः जातः महदाश्चर्यम् एतदिति भावः।।२२।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।

वीरकः— अरे चन्दणआ ! तुमं पि माणिज्जंतो अप्पणो केरिकं जादिं ण सुमरेसि ?। (अरे चन्दनक! त्वमपि मान्यमान आत्मनो जातिं न स्मरसि ?।)

चन्दनकः— अरे, का मह चन्दणअस्स चन्दविसुद्धम्स जादी ? (अरे, का मम चन्दनकस्य चन्द्रविशुद्धस्य जातिः ?।)

वीरकः— को भणउ ?। (को भणतु ?।)

चन्दनकः—भणउ, भणउ। (भणतु, भणतु।)

(वीरको नाटये्न संज्ञा ददाति)

चन्दनकः—अरे, किं णेदं। (अरे, किं न्विदम् ?।)

वीरकः— अरे, सुणाहि सुणाहि,-

जादी तुज्झ विसुद्धा मादा भेरी पिदा वि दे पडहो।
दुम्मुह ! करडअभादा तुमं पि सेणावई जादो।।२३।।

(अरे, श णु श णु,—

जातिस्तव विशुद्धा माता भेरी पितापि ते पटहः।
दुर्मुख ! करटकभ्राता त्वमपि सेनापतिर्जातः।।)

अर्थः— **वीरक—**अरे चन्दनक ! माननीय तुम भी अपनी जाति की याद नहीं करते हो ?

चन्दनक— अरे ! चन्द्रमा के समान स्वच्छ मुझ चन्दनक की क्या जाति है ?

वीरक— कौन कहे ?

चन्दनक— कहो, कहो।

(वीरक अभिनय के साथ (जाति का परिचय कराने वाला) इशारा करता है।)

अर्थः—

चन्दनक— अरे ! यह क्या है ?

वीरक— अरे ! सुनो, सुनो -

अन्वयः— तव, जातिः, विशुद्धा, भेरी, ते माता, पिता, अपि, पटहः, हे दुर्मुख ! करटकभ्राता, त्वम्, अपि, सेनापतिः, जातः।।२३।।

शब्दार्थः— तव = तुम्हारी, जातिः = जाति, विशुद्धा = बड़ी पवित्र है, भेरी = दुन्दुभि, ते = तुम्हारी, माता = माँ (है), पिता = बाप, अपि = भी, पटहः = तासा (है)। हे दुर्मुख = हे कटु बोलनेवाले ! करटकभ्राता = करटक के भाई, त्वम् = तुम, अपि = भी, सेनापतिः, जातः = हो गये।।

अर्थः— हे कटु बोलने वाले ! तुम्हारी जाति एकदम पवित्र है। भेरी (दुन्दुभि) माता है, पटह (तासा) पिता है, करटक (एक प्रकार का चमड़े से मढ़ा बाजा) के भाई तुम (चमार) भी सेनापति हो गये।। २३।।

टीका— तव = चन्दनकस्य; जातिः = गोत्रम्; विशुद्धा = अतिनिर्मला अस्ति। भेरी = वाद्य विशेषः; ते = तब; माता = जननी; पोषिका इति पिता = जनकः अपि, पटहः = ढक्का अस्ति। हे दुर्मुख! = कटुभाषिन् ! करटकस्य = वाद्यविशेषस्य भ्राता = सहोदरः, त्वमपि = चर्मकारः अपीत्यर्थः = सेनापतिः = बलाधिपतिः, जातः = भूतः। चर्मकारः सेनापतिः जातः आश्चर्यम् एतत्।।२३।।

चन्दनकः—(सक्रोधम्) अहं चन्दणओ चम्मारओ ता पलोएहि पवहणं। (अहं चन्दनकश्चर्मकारः, तत्प्रलोकय प्रवहणम्।)

वीरकः— अरे, पवहणवाहआ ! पडिवत्तावेहि पवहणं। पलोइस्सं। (अरे प्रवहणवाहक ! परिवर्तय प्रवहणम्, प्रलोकयिष्यामि।)

(चेटस्तथा करोति, वीरकः प्रवहणमारोढुमिच्छति, चन्दनकः सहसा केशुषु ग हीत्वा पातयति, पादेन ताडयति च)

वीरकः— (सक्रोधमुत्थाय) अरे, अहं तुए वीसत्थो राआण्णत्तिं करेंतो सहसा केसेसु गेण्हिअ पादेन ताडिदो। ता सुणु रे, अहिअरणमज्झे जइ दे चउरंगं ण कप्पावेमि, तदो ण होमि वीरओ। (अरे, अहं त्वया विश्वस्तो राजाज्ञप्तिं कुर्वन्सहसा केशुषु)

ग हीत्वा पादेन ताडितः। तच्छ णु रे, अधिकरणमध्ये यदि ते चतुरंगं न कल्पयामि, तदा न भवामि वीरकः।)

चन्दनकः—अरे ! राअउलं अहिअरण वा वच्च। किं तुए सुणअसरिसेण ?।

(अरे ! राजकुलमधिकरणं वा व्रज। किं त्वया शुनकसद शेन ?।)

वीरकः— तथा। (इति निष्क्रान्तः)

चन्दनकः—(दिशो वलोक्य) गच्छ रे पवहणवाहआ ! गच्छ। जइ को वि पुच्छेदि तदो भणेसि - 'चंदणअवीरएहि अवलोइदं पवहणं वच्चइ। अज्जे वसंतसेणे ! इमं च अहिण्णाणं दे देमि। (गच्छ रे प्रवहणवाहक ! गच्छ। यदि को पि प च्छति तदा भण - 'चन्दनकवीरकाभ्यामवलोकितं प्रवहणं व्रजति' आर्ये वसन्तसेने ! इदं चाभिज्ञानं ते ददामि।) (इति खड्ग प्रयच्छति)

आर्यकः— (खड्गं ग हीत्वा, सहर्षमात्मगतम्)

अये शस्त्रं मया प्राप्तं स्पन्दते दक्षिणो भुजः।
अनुकूलं च सकलं हन्त संरक्षितो ह्यहम्।।२४।।

चन्दनक— (कोप करके) मैं चन्दनक चमार हूं ? तो (तुम) देख ले गाड़ी को।

वीरक— अरे गाड़ीवान् ! लौटाओ गाड़ी, देखूंगा।

(चेट गाड़ी लौटा लाता है, वीरक गाड़ी पर चढ़ना चाहता है, चन्दनक झपटकर वीरक के बालों को पकड़कर जमीन पर उसे गिराता और पैर से मारता है)।

वीरक— (गुस्से के साथ उठकर) अरे ! राजा की आज्ञा (का पालन) करते हुए मुझ विश्वसनीय (कर्मचारी) को एकाएक बाल पकड़कर तुमने पैर से मारा है। तो सुन रे ! कचहरी में यदि तुझे भली भांति दण्ड न दिलवाऊँ तो मैं वीरक नहीं।

चन्दनक— अरे ! राजकुल अथवा कचहरी में जा। कुत्ते जैसे तुझसे क्या ?

वीरक— अच्छा। (बाहर निकल जाता है)

चन्दनक— (चारों ओर देखकर) जाओ रे गाड़ीवान् जाओ। यदि कोई भी पूछे तो कह देना - ''चन्दनक और वीरक के द्वारा जांची गयी गाड़ी जा रही है।'' आर्ये वसन्तसेने ! यह निशानी तुम्हें देता हूं। (ऐसा कह कर तलवार दे देता है)।

अन्वयः— अये, मया, शस्त्रम्, प्राप्तम्, दक्षिणः, भुजः, स्पन्दते; सकलम्, अनुकूलम्, हन्त ! अहम्, हि, संरक्षित।।२४।।

शब्दार्थः— अये, शस्त्रप्राप्तौ हर्षसूचकम् अव्ययम् इदम्, मया = आर्यकेण, शस्त्रम् = आयुधम्, प्राप्तम् = उपलब्धम्, दक्षिणः = वामेतरः, भुजः = बाहुः, स्पन्दते = स्फुरति, दक्षिणांगस्य स्पन्दनं पुरुषाणां कृते शुभसूचकं मन्यते, सकलम् = सर्वम्, अनुकूलम् = अविरुद्धम्, सम्भवतीति शेषः, हन्त! इत्यपि प्रसन्नताबोधकमव्ययम्; अहम् = आर्यकः, हि = निश्चयेन, संरक्षितः = परिपात्रः इदानीं प्राप्तशस्त्रस्य मम भयं नास्ति इति भावः।।२४।।

अर्थः—

आर्यक— (तलवार लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने आप)

अरे! मैंने शस्त्र पा लिया। दायीं भुजा फड़क रही है। सब कुछ अनुकूल है। प्रसन्नता है, मैं बच गया हूँ।।२४।।

इस श्लोक में समाधिनामक अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है। अलंकार का लक्षण- ''समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद्वस्त्वन्तरागमात्।''।।२४।।

चन्दनकः—अज्जए!

एत्थ मए विण्णविदा पच्चइदा चंदणं पि सुमरेसि।
ण भणामि एस लुद्धो णेहस्स रसेण बोल्लामो।।२५।।

आर्ये!

अत्र मया विज्ञप्ता प्रत्ययिता चन्दनमपि स्मरसि।
न भणाम्येष लुब्धः स्नेहस्य रसेन ब्रूमः।)

अन्वयः— अत्र, मया, विज्ञप्ता, प्रत्ययिता, (त्वम्), चन्दनम्, अपि, स्मरसि, एषः, लुब्धः (सन्), न, भणामि, (किन्तु) स्नेहस्य, रसेन, ब्रूमः।।२५।।

शब्दार्थः— अत्र = इस विपत्ति के समय में, मया = मेरे द्वारा, विज्ञप्ता = सूचिता की गयी अथवा मुझसे परिचित हुई, प्रत्ययिता = जिसे मैंने रक्षा का विश्वास दिलाया है अथवा जिसके विषय में सिद्ध का वचन सत्य हो गया है, ऐसी, (त्वम् = तुम) चन्दनकम् = चन्दनक को, अपि = भी, स्मरसि = याद रखना, एषः = यह (मैं), लुब्धः सन् = लोभ के वश में होकर, न = नहीं, भणामि = कह रहा हूँ, (किन्तु) स्नेहस्य = प्रेम के, रसेन = रस के कारण, ब्रूमः = बोल रहा हूँ।

अर्थः—

चन्दनक— आर्ये! आपसे मेरी विनती है कि इस विपत्ति से निकल जाने पर निश्चिन्तता की हालत में (मुझ) चन्दनक को भी याद रखना। (यह बात) मैं किसी लालच के कारण नहीं कह रहा हूँ, (बल्कि) स्नेह रस के कारण कह रहा हूँ (अर्थात् मेरे कहने का यह मतलब नहीं है कि राजा होने पर मुझे कोई बड़ा पद देना। मैं केवल प्रेमवश कह रहा हूँ)।।२५।।

टीका— अत्र = अस्मिन् विपत्तिकाले, मया = चन्दनकेन, विज्ञप्ता = सूचिता मया सह परिचिता वा, प्रत्ययिता = स जातप्रत्यया सती अथवा विश्वासं प्रापिता अथवा प्रत्ययः = सिद्धस्य विश्वासः संजातः अस्याः सा त्वमितिशेषः, चन्दनम् = माम्, अपि स्मरसि = स्मरिष्यसि। एषः = एषः तवोपकारकः अहम्, लुब्धः = लोभपरवशः सन्, न भणामि = न वदामि। एतदर्थं ना हं भणामि यत् राज्यप्राप्तौ मह्यमुन्नतं पदं दास्यसि। किन्तु, स्नेहस्य = प्रेम्णः, रसेन = अनुभूत्या, ब्रूमः = कथयामः।।२५।।

इस श्लोक में गाथा छन्द है।।२५।।

आर्यकः—

चन्दनश्चन्द्रशीलाढ्यो दैवादद्य सुहृन्मम।
चन्दनं भोः स्मरिष्यामि सिद्धादेशस्तथा यदि।।२६।।

अन्वयः— चन्द्रशीलाढ्यः, चन्दनः, दैवात्, अद्य, मम, सुहृत्, (जातः), भोः (मित्र!), यदि, सिद्धादेशः, तथा (तदा), चन्दनम्, स्मरिष्यामि।।२६।।

शब्दार्थः— चन्द्रशीलाढ्यः = चन्द्रमा के समान स्वभाववाला, चन्दनः = चन्दनक, दैवात् = संयोग से, अद्य = आज, मम = मेरा, सुहृत् = मित्र, (जातः = हो गया है), भोः (मित्र!) = हे मित्र! यदि = यदि, सिद्धादेशः = सिद्ध की भविष्यवाणी, तथा = वैसी होगी अर्थात् सही निकलेगी, तदा = तब, चन्दनम् = चन्दनक को, स्मरिष्यामि = याद करूंगा।।२६।।

अर्थः—

आर्यक— चन्द्रमा के समान (सुन्दर) स्वभाववाला चन्दनक संयोग से आज मेरा मित्र हो गया है। हे (मित्र)! यदि सिद्ध की भविष्यवाणी सही निकली तो (मैं) चन्दनक को याद करूँगा।।२६।।

टीका— चन्द्रवत् शीलम् = स्वभावः तेन आढ्यः = सम्पन्नः, चन्दनः = चन्दनकः, दैवात् = संयोगात्, अद्य = अस्मिन् दिने, मम = आर्यकस्य, सुहृत् = मित्रम्, जातः इति शेषः। भोः मित्र! यदि = चेत्, सिद्धादेशः = सिद्धस्य कथनम्, तथा = सत्यम्, भवतीति शेषः, तदा = तस्मिन्काले, चन्दनम् = त्वामित्यर्थः, स्मरिष्यामि = स्मरणं करिष्यामि।।२६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२६।।

चन्दनकः—अभअं तुह देउ हरो विण्हू बम्हा रवी अ चंदो अ।
हत्तूण सत्तुवक्खं सुंभणिसुंभे जधा देवी।।२७।।
(अभयं तव ददातु हरो विष्णुर्ब्रह्मा रविश्च चन्द्रश्च।
हत्वा शत्रुपक्षं शुम्भनिशुम्भौ यथा देवी।)

अन्वयः— हरः, विष्णुः, ब्रह्मा, रविः, चन्द्रः, च, तव, अभयम्, ददातु, शत्रुपक्षम्, हत्वा, (तथैव, विजयम्, लभस्व), यथा, शुम्भनिशुम्भौ (हत्वा) देवी (प्राप्तवती)।।२७।।

शब्दार्थः— हरः = शंकर, विष्णु = हरि, ब्रह्मा = स ष्टिकर्ता, रविः = सूर्य, चन्द्रः = चन्द्रमा, तव = तुम्हें, अभयम् = अभय को, ददातु = प्रदान करें। शत्रुपक्षम् = शत्रु के दल को, हत्वा = मार कर, (तथैव = उसी प्रकार, विजयम् = विजय को, लभस्व = पाओ), यथा = जैसे, शुम्भनिशुम्भौ = शुम्भ एवं निशुम्भ को, (हत्वा = मारकर), देवी = देवी ने, (प्राप्तवती = पाया था)।।

अर्थः—

चन्दनक— शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य और चन्द्रमा तुम्हें अभय प्रदान करें। शत्रु के दल को मारकर (तुम उसी प्रकार विजय पाओ) जैसे शुम्भ एवं निशुम्भ को मारकर देवी ने पाया था।।२७।।

टीका— हरः = स ष्टिसंहारकः शिवः, विष्णुः = स ष्टिपालकः हरिः; ब्रह्मा = स ष्टिकर्ता, रविः = दिनकरः, चन्द्रः = निशाकरश्च, तव = आर्यकस्य, अभयम् = अभीतिम् ददातु = प्रयच्छतु, शत्रूणाम् = अरीणाम् पक्षम् = कुलम्, हत्वा = विनाश्य, (तथैव = तेनैव प्रकारेण, विजयम् = सफलताम्, लभस्व = प्राप्तं कुरू,) यथा = येन प्रकारेण, शुम्भनिशुम्भै = शुम्भनिशुम्भनामानौ राक्षसौ, (हत्वा = विनाश्य) देवी = दुर्गा, (प्राप्तवती = आदत्तवती)।।२७।।

इस श्लोक में तुल्ययोगिता एवं उपमा अलंकार तथा आर्या छन्द है।।२७।।

(चेटः प्रवहणेन निष्क्रान्तः)

चन्दनकः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अरे! णिक्कमंतस्स मे पिअवअस्सो सव्विलओ पिट्ठदो ज्जेव अणुलग्गो गदो। भोदु, पधाणदंडधारओ वीरओ राअपच्चअआरो विरोहिदो। ता जाव अहंपि पुत्तभादुपडिवुदो एदं ज्जेव अणुगच्छामि। (अरे! निष्क्रमतो मम प्रियवयस्यः शर्विलकः प ष्ठत एवानुलग्नो गतः। भवतु, प्रधानदण्डधारको वीरको राजप्रत्ययकारो विरोधितः। तद्यावदहमपि पुत्रभ्रात परिव त एतमेवानुगच्छामि।)

(इति निष्क्रान्तः)

(चेट गाड़ी के साथ निकल जाता है)

अर्थः—

चन्दनक— (पर्दे की ओर देखकर) अरे! बाहर निकलते ही मेरा प्रिय मित्र शर्विलक पीछे पीछे ही लगा हुआ निकल गया। अच्छा, राजा के विश्वासपात्र प्रधान अधिकारी वीरक से विरोध कर लिया है तो पुत्र और बन्धुओं के समेत मैं भी इसी आर्यक के पास जाता हूँ।

(ऐसा कह कर निकल जाता है)

इति प्रवहणविपर्यासो नाम षष्ठो कः।।

'प्रवहणविपर्यय' अर्थात् गाड़ी की अदला-बदली नामक छठा अंक समाप्त।।

सप्तमो ऽकः

(ततः प्रविशति चारुदत्तो विदूषकश्च)

विदूषकः—भो! पेक्ख पेक्ख पुप्फकरंडअजिण्णुज्जाणस्स सस्सिरीअदां। (भोः! पश्य पश्य पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानस्य सश्रीकताम्।)

चारुदत्तः— वयस्य! एवमेतत्; तथा हि—

वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकरपुरुषाः प्रविचरन्ति।।१।।

(इसके बाद चारुदत्त और विदूषक प्रवेश करते हैं)

अन्वयः— तरवः, वणिजः, इव; भान्ति, कुसुमानि, पण्यानि, इव, स्थितानि, मधुकरपुरुषाः, शुल्कम्, साधयन्तः, इव, प्रविचरन्ति।।१।।

शब्दार्थः— तरवः = व क्ष, वणिजः = बनियों, इव = जैसे, भान्ति = लग रहे हैं, सुशोभित हो रहे हैं। कुसुमानि = फूल, पण्यानि = बेंची जाने वाली चीजों (के); इव = समान, स्थितानि = वर्तमान हैं। मधुकरपुरुषाः = पुरुषों की भाँति भौंरे, शुल्कं = कर को, साधयन्तः = वसूल करते हुए, इव = से, प्रविचरन्ति = फिर रहे हैं।।

अर्थः—

विदूषक— अहा! देखिये, देखिये पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान (पुराने बगीचे) की सुन्दरता को। चारुदत्त— मित्र! ऐसा ही है। क्योंकि-

व क्ष बनियों जैसे लग रहे हैं। फूल बेची जाने वाली वस्तुओं के समान विराज रहे हैं। (सरकारी) पुरुषों की भाँति भौंरे कर वसूल करते हुए से फिर रहे हैं।।१।।

टीका— तरवः = व क्षाः, वणिजः = विक्रेतारः, इव = यथा, भान्ति = शोभन्ते। कुसुमानि = पुष्पाणि, पण्यानि = विक्रेयवस्तूनि, इव, स्थितानि = राजितानि। मधुकराः = भ्रमराः पुरुषाः = शुल्कग्राहिणः राजपुरुषाः इव, शुल्कम् = घट्टादिदेयम्, करमित्यर्थः; साधयन्तः = ग ह्लन्तः इव, प्रविचरन्ति = इतस्ततः भ्रमन्ति।।१।।

इस श्लोक में उपका अलंकार एवं आर्या छन्द है।।१।।

विदूषकः—भो! इमं असक्काररमणीअं सिलाअलं उववि सदु भवं। (भोः! इदमसंस्काररमणीयं शिलातलमुपविशतु भवान्।)

चारुदत्तः—(उपविश्य) वयस्य! चिरयति वर्धमानकः।

विदूषकः—भणिदो मए वड्ढमाणओ-'वसंतसेणिअं गेण्हिअ लहुं लहुं आअच्छ' त्ति। (भणितो मया वर्धमानकः-'वसन्तसेनां ग हीत्वा लघु लघ्वागच्छ' इति।)

चारुदत्तः—तत्किं चिरयति

किं यात्यस्य पुरः शनैः प्रवहणं तस्यान्तरं मार्गते
भग्ने क्षे परिवर्तनं प्रकुरुते छिन्नो थ वा प्रग्रहः।
वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगतिर्मार्गान्तरं याचते
स्वैरं प्रेरितगोयुगः किमथवा स्वच्छन्दमागच्छति।।२।।

अर्थः—

विदूषक— मित्र! बिना धोये झाड़े भी सुन्दर साफ इस शिला पर आप बैठ जाँय।

चारुदत्त— (बैठ कर) मित्र! वर्धमानक देर कर रहा है।

विदूषक— मैंने वर्धमानक से कहा था-वसन्तसेना को लेकर शीघ्र लौटो।

अन्वयः— किम्, अस्य, पुरः, प्रवहणम्, शनैः, याति, तस्य, अन्तरम्, मार्गते? अक्षे, भग्ने; परिवर्तनम्, कुरुते? अथवा, प्रग्रहः, छिन्नः? (अथवा) 'वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगतिः (सन्), मार्गान्तरम्, याचते? अथवा, स्वैरम्, प्रेरितगोयुगः, स्वच्छन्दम्, आगच्छति, किम्?।।२।।

शब्दार्थः— किम् = क्या, अस्य = इसके, पुरः = आगे, प्रवहणम् = गाड़ी, शनैः = धीरे-धीरे, याति = जा रही है, तस्य = उसके (से), अन्तरम् = अवकाश को, मार्गते = ढूँढ रहा है? अक्षे = धुरा के, भग्ने = टूट जाने पर, परिवर्तनम् = अदला-बदली को, कुरुते = कर रहा है? अथवा = या, प्रग्रहः = बैलों को संभालने की रस्सी, छिन्नः = टूट गयी? (अथवा), वर्त्मान्तोज्झितदारुवारितगतिः = रास्ता के बीच में रख छोड़े गये काठ से रुक गया है जाना जिसका ऐसा, (सन् = होता हुआ), मार्गान्तरम् = दूसरे रास्ते को, याचते = ढूँढ रहा है? अथवा = या, स्वैरम् = धीरे-धीरे प्रेरितगोयुगः = बैलों को हाँकता हुआ, स्वच्छन्दम् = मौज से, आगच्छति = आ रहा है, किम् = क्या?।।

अर्थः—

चारुदत्त— तो क्यों देर कर रहा है?

क्या वर्धमानक के आगे कोई दूसरी गाड़ी धीरे-धीरे जा रही है? और वह उस गाड़ी से आगे बढ़ने का रास्ता ढूँढ रहा है? अथवा धुरा टूट जाने पर बदल रहा है? अथवा रस्सी ही टूट गयी? अथवा सड़क के बीचो-बीच रख छोड़े गये भारी काठ से रास्ता रुक जाने के कारण दूसरा मार्ग ढूँढ रहा है अथवा धीरे-धीरे बैलों को हाँकता हुआ मौज से आ रहा है क्या?।।२।।

टीका— किम्; अस्य = वर्धमानकस्य, पुरः = अग्रे, प्रवहणम् = अन्यत् शकटम्, शनैः = मन्दं मन्दमित्यर्थः, याति = व्रजति, तस्य = पुरो गच्छतः प्रवहणस्य, अन्तरम् = गन्तुम् अवकाशम्, मार्गते = अन्विष्यति? अक्षे = शकटे, भग्ने = त्रुटिते सति, परिवर्तनम् = तस्य निःसारणं तथा तत्र अन्यस्य नियोजनम् इत्यर्थः, कुरुते = विदधाति? अथवा-विकल्पार्थे शब्दो यं प्रयुज्यते, प्रग्रहः = व षभबन्धनरश्मिः, छिन्नः = भग्नः? अथवा = उत्, वर्त्मनः = मार्गस्य अन्ते = मध्यभागे उज्झितम् = परित्यक्तम्, राजकर्मचारिभिः इति शेषः, यत् दारु = काष्ठम् तेन रुद्धा = वारिता गतिः = गमनम् यस्य ताद शः सन्, मार्गान्तरम् = अन्यं पन्थानम्, याचते = प्रार्थयति, अनुसरति इति भावः। अथवा, स्वैरम् = मन्दम्, शनैः शनैः इत्यर्थः, प्रेरितम् = स चालितं गोयुगम् = बलीवर्दद्वयं येन ताद शः सन्, स्वच्छन्दम् = यथेच्छम्, आगच्छति = आयाति, किम्?।।२।।

इस श्लोक में सन्देह नामक अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।२।।

(प्रविश्य, गुप्तार्यकप्रवहणस्थः)

चेटः— **जाध गोणा! जाध। (यातं गावौ! यातम्।)**

आर्यकः— **(स्वगतम्)**

नरपतिपुरुषाणां दर्शनाद्भीतभीतः
सनिगडचरणत्वात्सावशेषापसारः।
अविदितमधिरूढो यामि साधोस्तु याने
परभ त इव नीडे रक्षितो वायसीभिः।।३।।

अन्वयः— नरपतिपुरुषाणाम्, दर्शनात्, भीतभीतः, सनिगडचरणत्वात्, सावशेषापसारः, (अहम्) वायसीभिः, नीडे, रक्षितः, परभ तः, इव, साधोः, याने, अविदितम्, (तु), अधिरूढः, (सन्), यामि।।३।।

शब्दार्थः— नरपतिपुरुषाणाम् = सिपाहियों को, दर्शनात् = देखने से, भीतभीतः = डरा हुआ; सनिगडचरणत्वात् = बेड़ी से जकड़े रहने के कारण, सावशेषापसारः = पूर्णरूप से भाग निकलने में असमर्थ, (अहम् = मैं) वायसीभिः = कौओं की स्त्रियों के द्वारा, नीडे = घोसले में, रक्षितः = पाले गये, परभ तः इव = कोयल के समान, साधोः = सज्जन की, याने = गाड़ी पर, अविदितम् = छिपे रूप से, अधिरूढः = चढ़ा हुआ, यामि = जा रहा हूँ।।

अर्थः— (छिपकर बैठा हुआ आर्यक जिसमें ऐसी गाड़ी पर बैठा हुआ प्रवेश करके)

चेट— चलो बैलो! चलो।

आर्यक— (अपने आप) राजपुरुषों को देखने से अत्यन्त डरा हुआ, बेड़ी से पैर जकड़े रहने के कारण पूर्णरूप से भाग निकलने में असमर्थ, मैं कौवों की स्त्रियों के द्वारा घोसले में पाले गये कोयल के समान, किसी सज्जन पुरुष की सवारी पर छिपे रूप से चढ़कर जा रहा हूँ।।३।।

टीका— नरपतेः = राज्ञः पुरुषाणाम् = अधिकारिणाम्; रक्षिणामित्यर्थः; कोकिलपक्षे = नरपतिपुरुषाणाम् = शाकुनिकानामिति भावः; दर्शनात् = अवलोकनात्; भीत-भीतः = अभिभीतः; निगडेन = श्र ंखलया सहितः सनिगडः = सश्र ंखलः चरणः = पादः यस्य तस्य भावः तत्त्वं तस्मात्; चरणस्य सश्र ंखलत्वात्; (हेतोः); कोकिलपक्षे-सनिगडः इव सनिगडः = बाल्यान्मन्दगमनः चरणः = पादः यस्य तस्य भावः तत्त्वं तस्मात्, सावशेषः = कि चिदवशिष्टः अपसारः = पलायनं यस्य ताद शः, अहम्, वायसीभिः = काकीभिः, नीडे = कुलाये, रक्षितः = पालितः, परभ तः = कोकिल इव, साधोः = सज्जनस्य, आर्यचारुदत्तस्य इत्यर्थः, याने = प्रवहणे, अविदितम् = अज्ञातं यथा तथा, अधिरूढः = अधिष्ठितः सन्, यामि = व्रजामि।।३।।

अहो, नगरात्सुदूरमपक्रान्तो स्मि; तत्किमस्मात्प्रवहणादवतीर्य व क्षवाटिकागहनं प्रविशामि? उताहो प्रवहणस्वामिनं पश्यामि? अथ वा कृतं व क्षवाटिकागहनेन। अभ्युपपन्नवत्सलः खलु तत्रभवानार्यचारुदत्तः श्रूयते; तत्प्रत्यक्षीकृत्य गच्छामि।

स तावदस्माद्व्यसनार्णवोत्थितं निरीक्ष्य साधुः समुपैति निर्व त्तिम्।

शरीरमेतद्गतमीद शीं दशां ध तं मया तस्य महात्मनो गुणैः।।४।।

अर्थः— अहो! नगर से काफी दूर निकल आया हूँ। तो क्या इस गाड़ी से उतर कर पेडों के उद्यान के घने स्थान में घुस जाऊँ? अथवा गाड़ी के मालिक का दर्शन करूँ? अथवा बाग के घने स्थान में नहीं जाऊँगा। सुना जाता है कि पूज्य आर्य चारुदत्त शरणागत पर दया करने वाले हैं। इसलिये इनका दर्शन करके ही जाऊँगा।

अन्वयः— तावत्, सः, साधुः, अस्मात्, व्यसनार्णवोत्थितम्, (माम्), निरीक्ष्य, निर्व त्तिम्, समुपैति, ईद शीम्, दशाम्, गतम्, एतत्, शरीरम्, मया, तस्य, महात्मनः, गुणैः, ध तम्।।४।।

शब्दार्थः— तावत् = (यह केवल वाक्य की सुन्दरता के लिये प्रयोग किया गया है) सः = वह, साधुः = सज्जन, अस्मात् = इस, व्यवसनार्णवोत्थितम् = विपत्ति रूपी सागर से उबरा हुआ, (माम् = मुझको), निरीक्ष्य = देखकर, निर्व त्तिम् = सुख को, समुपैति = प्राप्त होंगे। ईद शीम् = ऐसी, दशाम् = हालत को, गतम् = गया हुआ, एतत् = यह शरीरम् = शरीर, मया = मेरे द्वारा, तस्य = उस, महात्मनः = महात्मा के, गुणैः = गुणों से, ध तम् = धारण किया गया है।।

अर्थः— वह सज्जन इस विपत्तिरूपी सागर से उबरा हुआ मुझे देखकर सुख को प्राप्त होंगे। मैंने ऐसी हालत में पड़े हुए इस शरीर को उन्हीं महात्मा के गुणों से ही धारण किया है।।४।।

टीका— सः = सर्वजनविदितः, साधुः = सज्जनः, चारुदत्तः इति शेषः, अस्मात् = अनुभूयमानात्, व्यसनम् = दुखम् एवं अर्णवः = सागरः तस्मात् उत्थितम् = निर्गतम्, रक्षितम् इत्यर्थः, मामितिशेषः, निरीक्ष्य = अवलोक्य, निर्व त्तिम् = परमं सुखं सन्तोषं वा, समुपैति = प्राप्स्यति। ईद शीम् = अनुभूयमानाम्, अतिदुःखकरीमित्यर्थः, दशाम् = अवस्थाम्, गतम् = प्राप्तम्, एतत् = तस्य प्रवहणे सुरक्षितं मदीयम्, शरीरम् = देहः, मया = आर्यकेण, तस्य = प्रसिद्धस्य; महात्मनः = सज्जनस्य, गुणैः = कीर्त्यादिभिः इत्यर्थः, वात्सल्यादिगुणैः वा; ध तम् = अवस्थापितम्।।४।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं वंशस्थ छन्द है।।४।।

चेटः— **इमं तं उज्जाणं, जाव उवशप्पामि। (उपस त्य) अज्जमित्तेअ!। (इदं तदुद्यानम्, यावदुपसर्पामि। आर्यमैत्रेय!।)**

विदूषकः—भो! पिअं दे णिवेदेमि। वड्ढमाणओ मंतेदि। आगदाए वसन्तसेणाए होदब्वं। (भोः! प्रियं ते निवेदयामि। वर्धमानको मन्त्रयति। आगतया वसन्तसेनया भवितव्यम्।)

चारुदत्तः—प्रियं नः प्रियम्।

विदूषकः—दासीए पुत्ता! किं चिरइदो सि?। (दास्याः पुत्र! किं चिरायितो सि?।)

चेटः— **अज्जमित्तेअ! मा कुप्प; जाणत्थलके विशुमलिदे त्ति कदुअ गदागर्द कलेंते चिलइदेम्हि। (आर्यमैत्रेय! मा कुप्य; यानास्तरणं विस्म तमिति कृत्वा गतागत कुर्वंश्चिरायितो स्मि।)**

चारुदत्तः—वर्धमानक! परिवर्तय प्रवहणम्। सखे मैत्रेय! अवतारय वसन्तसेनाम्।

विदूषकः—किं णिअडेण बद्धा से गोड्डा, जेण सअं ण ओदरेदि?। (उत्थाय, प्रवहणमुद्धाट्य) भो! ण वसंतसेणा, वसंतसेणो खु एसो। (किं निगडेन बद्धावस्याः पादौ, येन स्वयं नावतरति?। भोः! न वसन्तसेना, वसन्तसेनः खल्वेषः।)

चारुदत्तः—वयस्य! अलं परिहासेन। न कालमपेक्षते स्नेह। अथ वा स्वयमेवावतारयामि।

(इत्युत्तिष्ठिति)

आर्यकः— (द ष्ट्वा) अये अयमेव प्रवहणस्वामी। न केवलं श्रुतिरमणीयो द ष्टिरमणीयो पि। हन्त, रक्षितो स्मि।

चारुदत्तः—(प्रवहणमधिरुह्य, द ष्ट्वा च) अये, तत्को यं?।

करिकरसमबाहुः सिंहपीनोन्नतांसः
प थुतरसमवक्षास्ताम्रलोलायताक्षः।
कथमिदमसमानं प्राप्त एवंविधो यो
वहति निगडमेकं पादलग्नं महात्मा।।५।।

अर्थः—

चेट— यह वह पुष्पकरण्डक उद्यान है। जब तक पास चलता हूँ। (पास जाकर) आर्य मैत्रेय!

विदूषक— मित्र! आप से प्रिय निवेदन करता हूँ, वर्धमानक बोल रहा है। वसन्तसेना आ गयी होगी।

चारुदत्त— प्रिय है, हमारा प्रिय है।

विदूषक— दासी के बच्चे! क्यों देर की है?

चेट— आर्य मैत्रेय! कोप मत कीजिए। गाड़ी की गद्दी भूल गया था। इसलिये फिर जाना-जाना करने में देर हो गई।

चारुदत्त— वर्धमानक! गाड़ी घुमाओ। मित्र मैत्रेय! वसन्तसेना को उतारो।

विदूषक— क्या इनके पैर बेड़ी से बँधे हुए हैं, जिससे खुद नहीं उतर रही हैं? (उठकर, गाड़ी को खोलकर) मित्र! यह वसन्तसेना नहीं वसन्तसेन है।

चारुदत्त— मित्र! हँसी मत करो। प्रेम देरी को नहीं बर्दाश्त करता। अथवा खुद ही उतारता हूँ।

(ऐसा कह कर उठता है)

आर्यक— (देखकर) अरे! यही गाड़ी के मालिक हैं। केवल सुनने में ही सुन्दर नहीं, किन्तु देखने में भी मनोहर हैं। वाह! अब तो मेरी रक्षा हो गयी।

अन्वयः— करिकरसमबाहुः, सिंहपीनोन्नतांसः, प थुतरसमवक्षाः, ताम्रलोलायताक्षः, यः, एवंविधः, महात्मा, (अस्त, सः), कथम्, इदम्, असमानम्, (बन्धनम्) प्राप्तः, (सन्) पादलग्नम्, एकम्, निगडम्, वहति।।५।।

शब्दार्थः— करिकरसमबाहुः = हाथी के सूँड़ के समान भुजावाला, सिंहपीनोन्नतांसः = सिंह के समान मोटे एवं ऊँचे कन्धेवाला, प थुतरसमवक्षाः = ऊँची एवं समतल छाती वाला, ताम्रलोलायताक्षः = ताँबे की रंग की च चल तथा बड़ी-बड़ी आँखोंवाला, यः = जो, एवंविधः = इस प्रकार, महात्मा = महापुरुष, (अस्ति = है, सः = वह), कथम् = कैसे, इदम् = इस, असमानम् = अयोग्य, (बन्धनम् = बन्धन को), प्राप्तः सन् = प्राप्त होकर, पादलग्नम् = पैर में लगी हुई, एकम् = एक, निगडम् = बेड़ी को, वहति = धारण कर रहा है।।

अर्थः—

चारुदत्त— (गाड़ी पर चढ़कर और देखकर) अरे! तो यह कौन है?

हाथी के सूँड़ के समान जिसकी भुजाएँ हैं। सिंह के समान मोटे एवं ऊँचे जिसके कन्धे हैं। ऊँची एवं समतल जिसकी छाती है। ताँबे के रंग की, च चल तथा बड़ी-बड़ी जिसकी आँखें हैं-इस प्रकार का जो यह महात्मा है (वह) कैसे इस अयोग्य हालत में पड़कर पैर में लगी हुई एक बेड़ी को धारण कर रहा है?।।५।।

टीका— करिणः = गजस्य करेण = शुण्डेन समौ = तुल्यौ बाहू = भुजौ यस्य तथोक्तः, दीर्घबाहुः इत्यर्थः। सिंहस्य = म गराजस्य इव पीनौ = प्रपुष्टौ उन्नतौ = उच्छ्रितौ अंसौ = स्कन्धौ यस्य ताद शः। प थुतरम् = अतिविशालम् समम् = समानम्, वक्षः = वक्षस्थलं यस्य सः। ताम्रे = ईषद्रक्ते लोले = च चले अक्षिणी = नेत्रे यस्य तथोक्तः। यः = जनः, एवंविधः = एवम्प्रकारः, महात्मा = महापुरुषः महाशयः वा अस्तीतिशेषः, सः कथम् = केन प्रकारेण, असमानम् = अयोग्यम्, बन्धनमिति शेषः, प्राप्तः = उपगतः, सन् पादे = चरणे लग्नम् = संयुतम्, एकम्, निगडम् = श्र ंखलम्, वहति = धारयति।।५।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं मालिनी छन्द है।।५।।

ततः को भवान्?।

आर्यकः— **शरणागतो गोपालप्रकृतिरार्यको स्मि।**

चारुदत्तः— **किं घोषादानीय यो सौ राजा पालकेन बद्धः?।**

आर्यकः— **अथ किं।**

चारुदत्तः—

विधिनैवोपनीतस्त्वं चक्षुर्विषयमागतः।
अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम्।।६।।

अर्थः— तो आप कौन हैं?

आर्यक— शरण में आया हुआ अहीर का बालक आर्यक हूँ।

चारुदत्त— क्या जिसे अहीरों की बस्ती (घोष) से लाकर राजा पालक ने बन्दी बनाया था?

आर्यक— और क्या?

अन्वयः— विधिना, एव, उपनीतः, त्वम्, (मम), चक्षुर्विषयम्, आगतः, (असि)। अहम्, प्राणान्, अपि, जह्याम्, तु, शरणागतम्, त्वाम्, न।।६।।

शब्दार्थः— विधिना = भाग्य से, एव = ही, उपनीतः = लाये गए, त्वम् = तुम, (मम = मेरी), चक्षुर्विषयम् = आँखों के द श्य-भाव को, आगतः = प्राप्त हुए (असि = हो)। अहम् = मैं, प्राणान् = प्राणों को, अपि = भी, जह्याम् = छोड़ दूँ, तु = किन्तु शरणागतम् = शरण में आए हुए, त्वाम् = तुमको, न = नहीं, (छोड़ सकता)।।

अर्थः—

चारुदत्त— भाग्य के द्वारा ही लाये तुम मेरी आँखों के विषय हुए हो। चाहे मैं प्राणों को भले ही छोड़ दूँ, किन्तु शरण में आये हुए तुमको नहीं छोड़ सकता।।६।।

टीका— विधिना = भाग्येन; एव; उपनीतः = आनीतः; त्वम् = आर्यकः; मम चक्षुषोः = नयनयोः विषयम् = गोचरं द ष्टिपक्षमित्यर्थः, आगतः = प्राप्तः असीति शेषः। अहम् = चारुदत्तः; प्राणान् = असून्; अपि, जह्याम् = त्यजेयम्, तु = किन्तु, शरणे = रक्षणे आगतम् = उपस्थितम्, त्वाम् = आर्यकम्, न = न जह्यामिति।।६।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।

(आर्यको हर्षं नाटयति)

चारुदत्तः—वर्धमानक! चरणान्निगडमपनय।

चेटः— **जं अज्जो आणवेदि। (तथा कृत्वा) अज्ज! अवणीदाइं णिगलाइं। (यदार्य आज्ञापयति। आर्य! अपनीतानि निगडानि।)**

आर्यकः— **स्नेहमयान्यन्यानि द ढतराणि दत्तानि।**

विदूषकः—संगच्छेहि णिअडाइं। एसो वि मुक्को। संपदं अम्हे वच्चिस्सामो। (संगच्छस्व निगडानि। एषो पि मुक्तः। सांप्रतं वयं व्रजिष्यामः।)

चारुदत्तः—धिक्, शान्तम्।

आर्यकः— **सखे चारुदत्त! अहमपि प्रणयेनेदं प्रवहणमारूढः; तत्क्षन्तव्यम्।**

चारुदत्तः—अलंकृतो स्मि स्वयंग्राहप्रणयेन भवता।

आर्यकः— अभ्यनुज्ञातो भवता गन्तुमिच्छामि।

चारुदत्तः—गम्यताम्।

आर्यकः— भवतु, अवतरामि।

चारुदत्तः—सखे! नावतरितव्यम्। प्रत्यग्रापनीतसंयमनस्य भवतो लघुसंचारा गतिः। सुलभपुरुषसंचारे स्मिन्प्रदेशे प्रवहणं विश्वासमुत्पादयति, तत्प्रवहणेनैव गम्यताम्।

आर्यकः— यथाह भवान्।

चारुदत्तः—क्षेमेण व्रज बान्धवान्

आर्यकः— ननु मया लब्धो भवान् बान्धवः

चारुदत्तः—स्मर्तव्यो स्मि कथान्तरेषु भवता

आर्यकः— स्वात्मापि विस्मर्यते?।

चारुदत्तः—त्वां रक्षन्तु पथि प्रयान्तममराः

आर्यकः— संरक्षितो हं त्वया

चारुदत्तः—स्वैर्भाग्यैः परिरक्षितो सि

आर्यकः— ननु हे तत्रापि हेतुर्भवान्।।७।।

(आर्यक प्रसन्नता का अभिनय करता है)

अर्थः—

चारुदत्त— वर्धमानक! पैर से बड़ी निकाल दो।

चेट— जैसी आर्य की आज्ञा। (बेड़ी खोलकर) आर्य! बेड़ियों को निकाल दिया।

आर्यक— प्रेममय दूसरी अधिक मजबूत बेड़ियाँ पहना दी गयी हैं।

विदूषक— बेड़ियों को धारण करो। यह भी छूट गया। अब हम लोग जेल चलेंगे।

चारुदत्त— धिक्, चुप रहो।

आर्यक— मित्र चारुदत्त! मैं भी प्रेम के कारण इस गाड़ी पर चढ़ गया था। तो मुझे क्षमा कर देना चाहिये।

चारुदत्त— आपके द्वारा गाड़ी को स्वयं ग्रहण करने के स्नेह से अलंकृत हो गया हूँ।

आर्यक— आपसे आज्ञा लेकर जाना चाहता हूँ।

चारुदत्त— जाइए।

आर्यक— अच्छा तो, उतरता हूँ।

चारुदत्त— मित्र! उतरना नहीं चाहिए क्योंकि तुरंत बेड़ी कटने से (शरीर के सुन्न हो जाने के कारण) आप शीघ्र न चल सकेंगे। सिपाहियों के आने-जाने वाले इस स्थान में गाड़ी विश्वास पैदा करेगी। इसलिये गाड़ी से ही जाइये।

आर्यक— जैसी आपकी आज्ञा।

अन्वयः— क्षेमेण, बान्धवान्, व्रज। ननु, मया, भवान्, बान्धवः, लब्धः। भवता, कथान्तरेषु, स्मर्तव्यः, अस्मि। स्वात्मा, अपि, विस्मर्यते?। पथि, प्रयान्तम्, त्वाम्, अमराः, रक्षन्तु, अहम्, त्वया, संरक्षितः। स्वैः, भाग्यैः, परिरक्षितः, असि। ननु, हे, तत्र, अपि, भवान्, हेतुः।।७।।

शब्दार्थः— क्षेमेण = कुशलता के साथ, बान्धवान् = सम्बन्धियों के पास, व्रज = जाओ। ननु = निश्चय ही, मया = मेरे द्वारा, भवान् = आप, बान्धवः = सम्बन्धी, लब्धः = पा लिये गये हैं। भवता = आपके द्वारा, कथान्तरेषु = प्रसंगवश चलनेवाली बातचीत में, स्मर्तव्यः = याद किये जाने के योग्य, अस्मि = हूँ। स्वात्मा = अपनी आत्मा, अपि = भी, विस्मर्यते? = क्या भुलाया जाता है?। पथि = रास्ते में, प्रयान्तम् = जाते हुए, त्वाम् = तुमको, अमराः = देवता लोग, रक्षन्तु = बचावें। अहम् = मैं (आर्यक), त्वया = तुम्हारे द्वारा, संरक्षितः = बचाया गया हूँ। स्वैः = अपने, भाग्यैः = भाग्यों के द्वारा; परिरक्षितः = बचाये गये, असि = हो। ननु = निश्चय ही, हे = हे श्रद्धेय महानुभाव! तत्र = उसमें, अपि = भी, भवान् = आप, हेतुः = कारण है।।

अर्थः—

चारुदत्त— कुशलता के साथ अपने सम्बन्धियों के पास जाओ।

आर्यक— निश्चय ही मैंने आपको ही सम्बन्धी पा लिया है।

चारुदत्त— (कभी-कभी) बातचीत में मेरी याद कर लेना।

आर्यक— क्या अपना आत्मा भी भुलाया जाता है?

चारुदत्त— रास्ते में जाते हुए तुम्हारी रक्षा देवता करें।

आर्यक— मैं तुम्हारे द्वार बचाया गया अर्थात् रक्षित हुआ।

चारुदत्त— अपने भाग्यों के द्वारा बचाये गये हो।

आर्यक— मित्र! निश्चय ही इसमें भी आप कारण हैं।।७।।

टीका— क्षेमेण = कुशलेन, बान्धवान् = स्वजनानान्; व्रज = गच्छ। ननु = भोः, मया = आर्यकेणेत्यर्थः; भवान् = त्वम्; बान्धवः = स्वजनः; लब्धः = प्राप्तः। भवता = त्वया आर्यकेण इत्यर्थः; कथान्तरेषु = सामयिकवार्तासु, स्मर्तव्यः = स्मरणीयः; अस्मि। स्वात्मापि = स्वकीयः आत्मा अपि, विस्मर्यते = विस्मरणीयः भवति किम?। पथि = मार्गे, प्रयान्तम् = गच्छन्तम; त्वाम् = आर्यकम् इत्यर्थः; अमराः = देवाः; रक्षन्तु = रक्षां कुर्वन्तु। अहं = आर्यकः इत्यर्थः; त्वया = चारुदत्तेन; संरक्षितः = परित्रातः। स्वैः = स्वकीयैः; भाग्यैः = भागधेयैः एव; परिरक्षितः = संरक्षितः; असि। ननु = निश्चयेन; हे इति सम्बोधने; तत्रापि = भाग्यविहिते रक्षणे अपि; भवान् = त्वमेव; हेतुः = कारणम्।।७।।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।७।।

चारुदत्त— यदुद्यते पालके महती रक्षा न वर्तते, तच्छीघ्रमपक्रामतु भवान्।

आर्यकः— एवम्, पुनर्दर्शनाय। (इति निष्क्रान्तः)

चारुदत्त—

कृत्वैवं मनुजपतेर्महद् व्यलीकं
स्थातुं हि क्षणमपि न प्रशस्तमस्मिन्।
मैत्रेय! क्षिप निगडं पुराणकूपे
पश्येयुः क्षितिपतयो हि चारदृष्ट्या।।८।।

अर्थः—

चारुदत्त— क्योंकि पालक के उद्यत रहने पर आपकी भली-भाँति रक्षा नहीं हो सकती, इसलिये आप जल्द ही यहाँ से भाग जाये।

आर्यक— अच्छा, फिर दर्शन के लिये (आशा करता हुआ जाता हूँ)।

(ऐसा कहकर निकल जाता है)

अन्वयः— एवं, मनुजपतेः, महत्, व्यलीकम्, कृत्वा, अस्मिन्, (उद्याने), क्षणम्, अपि, स्थातुम्, न, प्रशस्तम्, हि; मैत्रेय! निगडम्, पुराणकूपे, क्षिप, हि, क्षितिपतयः, चारद ष्ट्या, पश्येयुः।।८।।

शब्दार्थः— एवं = इस प्रकार से, मनुजपतेः = राजा के, महत् = बहुत बड़े, व्यलीकम् = अपराध को, कृत्वा = करके, अस्मिन् = इस, (उद्याने = बगीचे में), क्षणम् = एक क्षण, अपि = भी, स्थातुम् = रुकना, न = नहीं, प्रशस्तम् = उचित, ठीक नहीं। मैत्रेय! = हे मैत्रेय! निगडम् = बेड़ी को, पुराणकूपे = पुराने कुँए में, क्षिप = फेंक दो। हि = क्योंकि, क्षितिपतयः = राजालोग, चारद ष्ट्या = दूत रूपी आँखों से, पश्येयुः = देखेंगे।

अर्थः—

चारुदत्त— इस प्रकार राजा का बहुत बड़ा अपराध करके इस बगीचे में क्षण भर भी रुकना उचित नहीं है। मैत्रेय! बेड़ी को पुराने कुएँ में फेंक दो, क्योंकि राजा लोग दूत रूपी आँखों से देखते हैं।।८।।

टीका— एवम् = इत्थम्, मनुजपतेः = राज्ञः; महत् = विशालम्; व्यलीकम् = अप्रियम्, कृत्वा = विधाय; अस्मिन् = एतस्मिन्; उद्याने इति शेषः; क्षणमपि = कि चित्कालमपीत्यर्थः, स्थातुम् = वर्तितुम; न प्रशस्तम् = न समीचीनम्; हीति पादपूरणे; अतः हे मैत्रेय! निगडम् = श्र ंखलम्, पुराणकूपे = प्राचीने उदपाने। एताद शे प्राचीने कूपे यत्र जनाः जलं पातुं न गच्छन्ति; क्षिप = पातय; हि = यतः; क्षितेः = प थिव्याः पतयः = पालकाः, राजानः इत्यर्थः; चाराः = गूढपुरुषाः, एव द ष्टिः = नेत्रम्, दर्शनसाधानमित्यर्थः, तया; पश्येयुः = अवलोकयेयुः।।८।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास नामक अलंकार एवं प्रहर्षिणी छन्द है।।८।।

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) सखे मैत्रेय! वसन्तसेनादर्शनोत्सुको यं जनः। पश्य—

अपश्यतो द्य तां कान्तां वामं स्फुरति लोचनम्।
अकारणपरित्रस्तं हृदयं व्यथते मम।।९।।

अर्थः— (बायी आँख के फड़कने को सूचित करके) मित्र मैत्रेय! यह जन (अर्थात् मैं) वसन्तसेना के न दिखलाई पड़ने से अथवा वसन्तसेना को देखने के लिए उतावला हो रहा है। देखो—

अन्वयः— अद्य, ताम्, कान्ताम्, अपश्यतः, मम, वामम्, लोचनम्, स्फुरति, अकारणपरित्रस्तम्, मम, हृदयम्, व्यथते।।९।।

शब्दार्थः— अद्य = आज, ताम् = उस, कान्ताम् = प्रियतमा को, अपश्यतः = न देखने वाले, मम = मेरी, वामम् = बायीं, लोचनम् = आँख, स्फुरति = फड़क रही है, अकारणपरित्रस्तम् = बिना कारण के ही घबराया हुआ, मम = मेरा, हृदयम् = हृदय, व्यथते = पीड़ित हो रहा है।।

अर्थः— आज उस प्रियतमा को न देखने वाले मेरी बायी आँख फड़क रही है। बिना कारण के ही घबराया हुआ मेरा हृदय पीड़ित हो रहा है।६।।

टीका— अद्य = अस्मिन् दिने, ताम् = प्राणोपमामित्यर्थः, कान्ताम् = प्रियाम्; अपश्यतः = अनवलोकयतः, मम = चारुदत्तस्य इत्यर्थः, वामम् = दक्षिणेतरम् लोचनम् = नेत्रम्, स्फुरति = स्पन्दने। अकारणम् = कारणं विनैव परित्रस्तम् = भयविह्वलम्, मम हृदयम् = मनः इत्यर्थः, व्यथते = पीडितं भवति।।६।।

इस श्लोक में विभावना अलंकार है। लक्षण- विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिः।।६।।

तदेहि, गच्छावः। (परिक्रम्य) कथमभिमुखमनाभ्युदयिकं श्रमणकदर्शनम्? (विचार्य) प्रविशत्वयमनेन पथा। वयमप्यनेनैव पथा गच्छामः।

अर्थः— तो आओ, चलें। (घूमकर) क्या सामने से ही बौद्ध-भिक्षु का अमंगलकारी दर्शन हुआ? (विचार कर) यह इस रास्ते से जाए। हम लोग भी इस दूसरे रास्ते से ही चलेंगे।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(इसके बाद सब निकल जाते हैं)

।।इत्यार्यकापहरणं नाम सप्तमो कः।।

।।आर्यक—अपहरण नामक सातवाँ अंक समाप्त।।

अष्टमों कः

(ततः प्रविशत्यार्द्रचीवरहस्तो भिक्षुः)

भिक्षुः— **अज्ञा! कलेध धम्मशंचअं,—**

शंजम्मध णिअपोटं णिच्चं जग्गेध झाणपडहेण।
विशमा इंदिअचोला हलंति चिलशंचिदं धम्मं।।१।।

(अज्ञाः! कुरुत धर्मचयम्,—

संयच्छत निजोदरं नित्यं जाग्रत ध्यानपटहेन।
विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसंचितं धर्मम्।।

अर्थः— (तब गीला कपड़ा हाथ में लिये हुए भिक्षु प्रवेश करता है)

अन्वयः— निजोदरम्, संयच्छत, ध्यानपटहेन, नित्यम्, जाग्रत, विषयाः, इन्द्रियचौराः, चिरसचितम्, धर्मम्, हरन्ति।।१।।

शब्दार्थः— निजोदरम् = अपने पेट को, संयच्छत = संकुचित करो; ध्यानपटहेन = ध्यान रूपी नगाड़े से, नित्यम् = हमेशा, जाग्रत = जागते रहो, विषमाः = बलशाली अथवा भयंकर, इन्द्रियचौराः = इन्द्रियरूपी चोर, चिरसचितम् = बहुत दिनों से इकट्ठा किये गये, धर्मम् = धर्म को, हरन्ति = छीन लेते हैं।।

अर्थः— भिक्षु (बौद्ध संन्यासी) — अरे अज्ञानी जनों! धर्म का स चय करो-

अपने पेट को संकुचित करो अर्थात् कम खाओ। ध्यान रूपी नगाड़े से हमेशा जागते रहो, क्योंकि इन्द्रियरूपी बलशाली चोर बहुत दिनों से स चित किये गये धर्म छीन लेते हैं।।१।।

टीका— निजोदरम्-निजम् = स्वकीयम् उदरम् = जठरम; संयच्छत = संकुचितं कुरुत; मिताहाराः भवत इत्यर्थः। ध्यानम् = स्वेष्टचिन्तनम् एव पटहः = ढक्का तेन; नित्यम् = सर्वदा; जाग्रत = जागरणं कुरुत; नित्यं इष्टदेवस्य ध्यानं कुरुत इति भावः। विषमाः = भयंकराः बलशालिनः इत्यर्थः; इन्द्रियाः = विषयग्रहणसाधनानि चक्षुरादीनि एव चौराः = तस्कराः; चिरेण = बहुकालेन सचितम् = एकत्रीकृतम्; धर्मम् = संकृतम्; हरन्ति = मुष्णन्ति।।१।।

यहाँ रूपक अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-आर्या।।१।।

अवि अ, अणिच्चदाए पेक्खिअ णवलं दाव धम्माणं शलणम्हि।

पंचज्जण जेण मालिदा इत्थिअ सालिअ गाम लक्खिदे।
अबले क चंडाल मालिदे अवसं वि शे णल शग्ग गाहदि।।२।।

अपि च, अनित्यतया प्रेक्ष्य केवलं तावद्धर्माणां शरणमस्मि।

प चजना येन मारिता स्त्रियं मारयित्वा ग्रामो रक्षितः।
अबलः क्व चण्डालो मारितो वश्यमपि स नरः स्वर्गं गाहते।।

और भी-

अर्थः— अनित्यता के भाव से देखकर अर्थात् संसार को क्षण-भंगुर समझकर मैं अब केवल धर्म की ही शरण में आ गया हूँ।

अन्वयः— येन, प चजनाः, मारिताः; स्त्रियम्, मारयित्वा, ग्रामः, रक्षितः; अबलः, चाण्डालः, च, मारितः; सः, नरः, अवश्यम्, स्वर्गम्, गाहते।।२।।

शब्दार्थः— येन = जिसके द्वारा, प चजनाः = पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मारिताः = मार डाले गये। स्त्रियम् = स्त्री (अविद्या) को, मारयित्वा = मारकर, ग्रामः = गाँव (शरीर), रक्षितः = बचाया गया। अबलः = निर्बल, चाण्डालः = चण्डाल (घमण्ड), च = भी, मारितः = मारा गया; सः = वह, नरः = मनुष्य, अवश्यम् = अवश्य ही; स्वर्गम् = स्वर्ग को, गाहते = अवगाहित करता है।।

अर्थः— जिसने पाँच जनों (इन्द्रियों) को मार दिया अर्थात् भलीभाँति वश में कर लिया, अविद्या रूपी स्त्री को मार कर शरीर रूपी गाँव की रक्षा कर ली तथा घमण्ड रूप निर्बल चाण्डाल का वध कर डाला वह मनुष्य अवश्य ही स्वर्ग में विहार करता है।।२।।

टीका— येन = प्रबुद्धेन जनेनेत्यर्थः; प चजनाः = प च ज्ञानेन्द्रियाणि इत्यर्थः; मारिताः = विनाशिताः; स्त्रियम् = अविद्यामित्यर्थः; मारयित्वा = नाशयित्वा; ग्रामः = आत्मनः निवासभूतं शरीरमिति भावः; रक्षितः = परित्रातः; अबलः = निर्बलः; चाण्डालः = अहंकारः इत्यर्थः; च; मारितः = गतप्राणः कृतः; सः नरः = सः जनः; अवश्यम् = निश्चितम्; स्वर्गम् = सुरलोकम्;। गाहते = गच्छति; स्वर्गे विचरतीति।।२।।

इस श्लोक में वैतालीय छन्द है। लक्षण- 'षड्विषमे ष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः। न समा त्र पराश्रिता कला वैतालीये न्ते रलौ गुरुः।।२।।

शिल मुंडिदे तुंड मुंडिदे चित्त ण मुंडिद कीश मुंडिदे।
जाह उण अ चित्त मुंडिदे शाहु शुट्ठ शिल ताह मुंडिदे।।३।।

शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किमर्थं मुण्डितम्?।
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम्।।

अन्वयः— शिरः, मुण्डितम्, तुण्डम्, मुण्डितम् (किन्तु, यदि) चित्तम्, न, मुण्डितम्, (तदा) किमर्थम्, मुण्डितम्? पुनः, यस्य, च, चित्तम्, साधु, मुण्डितम्, तस्य, शिरः, सुष्ठु, मुण्डितम्।।३।।

शब्दार्थः— शिरः = शिर, मुण्डितम् = मुँडा हुआ है, तुण्डम् = मुँह, मुण्डितम् = मुँड़ा हुआ है किन्तु, यदि = , चित्तम् = चित्त, न = नहीं, मुण्डितम् = मुँडा हुआ है तदा = तब, किमर्थम् = किस लिये, मुण्डितम्? = मुँडा हुआ है? पुनः = और, यस्य = जिसका, चित्तम् = चित्त, साधु = अच्छे प्रकार से, मुण्डितम् = मुँड़ा हुआ है साफ है, तस्य = उसका, शिरः = शिर, सुष्ठु = भली-भाँति, मुण्डितम् = मुँड़ा हुआ है।।

अर्थः— शिर मुँड़ाया, मुँह मुँड़ा लिया, किन्तु यदि चित्त नहीं मुँड़ाया तब किसलिए मुँड़ाया? और फिर जिसका चित्त अच्छे प्रकार से मुँड़ा हुआ अर्थात् साफ है उसका शिर भली भाँति मुँड़ गया है अर्थात् चित्त के पवित्र रहने पर बालों का मुँड़ाना भी सार्थक है। यदि चित्त साफ नहीं है तो बालों का मुँड़ाना व्यर्थ ही है।।३।।

टीका— शिरः = मस्तकम्; मुण्डितम् = केशरहितं कृतम्, तुण्डम् = मुखम्, मुण्डितम् = श्मश्रुहीनं कृतम्; किन्तु यदि, चित्तम् = चेतः, अन्तःकरणमित्यर्थः; न मुण्डितम् = मलिनान् भावान्

अपसार्य न विमलीकृतम्, तदा किमर्थम् = कस्मै प्रयोजनाय, मुण्डितम्? = केशादीनां अपसारणं कृतम्?। पुनः = किन्तु, यस्य = जनस्य, च, चित्तम् = अन्तःकरणम्, साधु = सम्यक्, मुण्डितम् = विमलीकृतम्, तस्य = जनस्य एव, शिरः = मस्तकादिक चेत्यर्थः, सुष्ठु = सम्यक्, मुण्डितम्।।३।।

इस श्लोक में वैतालीय छन्द है।

गिहिदकशाओदए एशे चीवले, जाव इदं लट्टिअशालकाहकेलके उज्जाणे पविशिअ पोक्खलिणीए पक्खालिअ लहुं लहुं अवक्कमिश्शं (गृहीतकषायोदकमेतच्चीवरम्, यावदेतद्राष्ट्रियश्यालकस्योद्याने प्रविश्य पुष्करिण्यां प्रक्षाल्य लघु लघ्वपक्रमिष्यामि।)

(परिक्रम्य, तथा करोति)

(नेपथ्ये)

शकारः— च्यिश्ट ले दुष्टशमणका! च्यिष्ट। (तिष्ठ रे दुष्टश्रमणक! तिष्ठ।)

भिक्षुः— (दृष्ट्वा, सभयम्) ही अविद, माणहे एशे शे लाअशालशंठाणे आअदे। एक्केण भिक्खुणा अवलाहे किदे, अण्णं पि जहिं जहिं भिक्खुं पेक्खदि, तहिं तहिं गोणं व्व णाशं विंधिअ ओवाहेदि; ता कहिं अशलणे शलणं गमिश्शं?। अथवा भट्टालके ज्जेव बुद्धे मे शलणे। (आश्चर्यम्, एष स राजश्यालसंस्थानक आगतः, एकेन भिक्षुणापराधे कृते न्यमपि यत्र यत्र भिक्षुं पश्यति, तत्र तत्र गामिव नासां विद्ध्वापवाहयति; तत्कुत्राशरणः शरणं गमिष्यामि?। अथवा भट्टारक एव बुद्धो मे शरणम्।)

(प्रविश्य, सखड्गेन विटेन सह)

शकारः— च्यिश्ट ले दुश्टशमणका! च्यिश्ट; आवाणअमज्झपविश्टश्श, विअ लत्तमूलअश्श शीदं दे मोडइश्शं। (इति ताडयति) (तिष्ठ रे दुष्टश्रमणक! तिष्ठ, आपानकमध्यप्रविष्टस्येव रक्तमूलकस्य शीर्षं ते भङ्क्ष्यामि।)

विटः— काणेलीमातः! न युक्तं निर्वेदधृतकषायं भिक्षुं ताडयितुम्। तत्किमनेन?। इदं तावत्सुखोपगम्यमुद्यानं पश्यतु भवान।

अशरणशरणप्रमोदभूतैर्वनतरुभिः क्रियमाणचारुकर्म।
हृदयमिव दुरात्मनामगुप्तं नवमिव राज्यमनिर्जितोपभोग्यम्।।४।।

अर्थः— यह कपड़ा गेरुआ रंग घोले गये पानी को सोख चुका है। तो इसको राजा के साले के बगीचे में घुसकर पोखरी में धोकर जल्दी जल्दी भाग जाऊँगा। (घूमकर वैसा ही करता है)।

(पर्दे के पीछे)

शकार— रुको रे दुष्ट श्रमणक! रुको।

भिक्षु— (देखकर डर के साथ) आश्चर्य! दुष्टता के लिये प्रसिद्ध यह राजा का साला संस्थानक आ गया। एक भिक्षु के द्वारा अपराध करने पर जहाँ-जहाँ दूसरे भी भिक्षु को देखता है वहाँ-वहाँ बैल के समान उसकी नाक को छेदकर बाहर भगा देता है। तो असहाय मैं किसकी शरण में जाऊँ? अथवा स्वामी बुद्ध ही मेरे रक्षक हैं।

(तलवार लिये हुए विट के साथ प्रवेश करके)

शकार— ठहर, रे दुष्टश्रमण! ठहर। मदिरा पीने वालों के समाज के बीच आई हुई लाल मूली के समान तेरे शिर को तोड़ता हूँ। (ऐसा कह कर मारता है)।

विट— पुंश्चली के बच्चे! वैराग्य के कारण गेरुआ कपड़ा पहननेवाले भिक्षुक को मारना ठीक नहीं है। तो इससे झगड़ने से क्या लाभ? आप जरा आनन्दपूर्वक सेवन करने के लायक इस बगीचे को देखें।

अन्वयः— अशरणशरणप्रमोदभूतैः, वनतरुभिः, क्रियमाणचारुकर्म; दुरात्मनाम्, हृदयम्, इव, अगुप्तम्; नवम, राज्यम्, इव, अनिर्जितापभोग्यम्, (उद्यानम्, भवान्, पश्यतु)।।४।।

शब्दार्थः— अशरणशरणप्रमोदभूतैः = बिना घरवालों के लिये आश्रय तथा आनन्द स्वरूप, वनतरुभिः = वन-व क्षों के द्वारा, क्रियमाणचारुकर्म = जिसमें सुन्दर काम किया जा रहा है। दुरात्मनाम् = दुष्टों के, हृदयम् = हृदय, इव = जैसा, अगुप्तम् = असंयत। नवम् = नये, राज्यमिव = राज्य की भाँति, अनिर्जितोपभोग्यम् = भली-भाँति वश में न किये गये और सबके उपभोग के योग्य, (उद्यानम् = बगीचे को, भवान् = आप, पश्यतु = देखें)।।

अर्थः— बिना घरवाले लोगों के लिये आश्रय तथा आनन्द स्वरूप वन-व क्षों के द्वारा जिसमें सुन्दर काम किया जा रहा है अर्थात् आश्रय, छाया एवं फल-फूल दिया जा रहा है। जो दुष्ट मनुष्यों के हृदय के समान अनियन्त्रित हैं, और नये राज्य की तरह भलीभाँति वश में नहीं किया गया और सबके उपभोग के योग्य है।।४।।

टीका— अशरणानाम् = ग हरहितानाम्, शरणानि = आश्रयाः प्रमोदभूताः = आनन्दस्वरूपाः, अशरणाश्च ते प्रमोदभूताश्च तैः; वनस्य = उपवनस्य तरुभिः = व क्षैः; क्रियमाणम् = आरब्धम्, चारु = मनोहरम्, कर्म = कार्यम्, दुरात्मनाम्, = दुष्टानाम् हृदयमिव = चित्तमिव; अगुप्तम् = अनियन्त्रितम्। नवम् = नूतनम्; राज्यमिव = साम्राज्यमिव; अनिर्जितम् = विजयिना सम्यक् न आपत्तीकृतं च तद् उपभोग्यं च = स्वेच्छया सम्भोगार्हं चेत्यर्थः।।४।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पुष्पिताग्रा छन्द है।।४।।

भिक्षुः— शाअदं; पशीददु उवासके। (स्वागतम्; प्रसीदतूपासकः।)

शकारः— भावे! पेक्ख पेक्ख, आक्कोशदि मं। (भाव! पश्य पश्य, आक्रोशति माम्।)

विटः— किं ब्रवीति?।

शकारः— उवाशके त्ति मं भणादि, किं हग्गे णाविदे?। (उपासक इति मां भणति, किमहं नापितः?।)

विटः— बुद्धोपासक इति भवन्तं स्तौति।

शकारः— थुणु शमणका! थुणु। (स्तुनु श्रमणक! स्तुनु।)

भिक्षुः— तुमं धण्णे, तुमं पुण्णे। (त्वं धन्यः, त्वं पुण्यः।)

शकारः— भावे! धण्णे पुण्णे त्ति मं भणादि। किं हग्गे शलावके कोश्टके कोंभकाले वा?। (भाव! धन्यः पुण्यः इति मां भणति। किमहं शलावकः (चार्वाकः) कोष्ठकं कुम्भकारो वा?।)

विट— काणेलीमातः! ननु 'धन्यस्त्वम्' 'पुण्यस्त्वम्' इति भवन्तं स्तौति।

शकारः— भावे! वा कीश एशे इध आगदे?। (भाव! तत्किमर्थमेष इहागतः?)

भिक्षुः— इदं चीवलं पक्खालिदुं। (इदं चीवरं प्रक्षालयितुम्।)

शकारः— अले दुश्टशमणका! एशे मम बहिणीवदिणा शव्वुज्जाणाणं पबले पुप्फुकलंडुज्जाणे दिण्णे, जहिं दाव शुणहका शिआला पाणिअं पिअंति। हग्गे वि पबलपुलिशे मणुश्शके ण ण्हाआमि; तहिं तुमं पुक्खलिणीए पुलाणकुलुत्थजूशशवण्णाइं उश्शगंधिआइं चीवलाइं पक्खालेशि?। ता तुमं एक्कपहालिअं कलेमि। (अरे दुष्टश्रमणक! एतेनमम भगिनीपतिना सर्वोद्यानानां प्रवरं पुष्पकरण्डोद्यानं दत्तम्, यत्र तावच्छुनकाः श्र गालाः पानीयं पिबन्ति। अहमपि प्रवरपुरुषो मनुष्यको न स्नामि; तत्र त्वं पुष्करिण्यां पुराणकुलित्थयूषसवर्णान्युग्रगन्धीनि चीवराणि प्रक्षालयसि?। तत्त्वामेकप्रहारिकं करोमि।)

विटः— काणेलीमातः! तथा तर्कयामि यथानेनाचिरप्रव्रजितेन भवितव्यम्।

शकारः— कधं भावे जाणादि?। (कथं भावो जानाति?।)

विटः— किमत्र ज्ञेयम्?। पश्य

> **अद्याप्यस्य तथैव केशविरहाद्गौरी ललाटच्छविः**
> **कालस्याल्पतया च चीवरकृतः स्कन्धे न जातः किणः।**
> **नाभ्यस्ता च कषायवस्त्ररचना दूरं निगूढान्तरं**
> **वस्त्रान्तं च पटोच्छ्रयात्प्रशिथिलं स्कन्धे न संतिष्ठते।।५।।**

अर्थः—

भिक्षु— स्वागत है। उपासक प्रसन्न होवें।

शकार— भाव! देखिए, देखिए। मुझे कोस रहा है अर्थात् गाली दे रहा है।

विट— क्या कह रहा है?

शकार— मुझे उपासक कह रहा है। क्या मैं नाई हूँ?

विट— 'बुद्ध का उपासक' ऐसा कहकर आपकी प्रशंसा कर रहा है।

शकार— प्रशंसा करो श्रमणक। प्रशंसा करो।

भिक्षु— तुम प्रशंसनीय हो। तुम पवित्र हो।

शकार— भाव! मुझको 'धन्य पुण्य' ऐसा कह रहा है। क्या मैं चार्वाक, भण्डार का घर अथवा कुम्हार हूँ?

विट— छिनार के लड़के! 'आप धन्य हैं। आप पवित्र हैं' ऐसा कह कर आपकी प्रशंसा ही कर रहा है।

शकार— श्रीमान् जी! तब यह क्यों इस बगीचे में आया?

भिक्षु— इस कपड़े को धोने के लिये।

शकार— अरे दुष्ट श्रमण! मेरे बहनोई ने सभी बागों में बढ़िया यह 'पुष्पकरण्ड' नाम का बाग मुझे दिया है, जहाँ कुत्ते और सियार पानी पीते हैं। अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य मैं भी जिसमें नहीं नहाता हूँ। तू उस पोखरी में पुरानी कुल्थी के माँड़ जैसे रंग वाले तेज बदबू से युक्त कपड़ों को धोता है?तो तुझे एक घूँसे मारता हूँ।

विट— छिनार के बेटे! मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि यह अभी हाल ही में संन्यासी हुआ है।

शकार— कैसे आप जानते हैं?

अन्वयः— अद्य, अपि, केशविरहात्, अस्य, ललाटच्छविः, तथैव, गौरी; कालस्य, अल्पतया, स्कन्धे, चीवरकृतः, किणः, च, न, जातः, कषायवस्त्ररचना, च, न, अभ्यस्ता, दूरम्, निगूढान्तरम्, पटोच्छ्रयात्, प्रशिथिलम्, वस्त्रान्तम्, च, स्कन्धे, न, संतिष्ठते।।५।।

शब्दार्थः— अद्य = आज, अपि = भी, केशविरहात् = शिर के बालों के न होने से (मुँड़वा देने से, अस्य = इसके, ललाटच्छविः = मस्तक की कान्ति, तथैव = वैसी ही, गोरी = गौरी (है)। कालस्य = समय के, अल्पतया = कम होने के कारण अर्थात् थोड़े ही समय से संन्यास लेने के कारण, स्कन्धे = कन्धे पर, चीवरकृतः = संन्यासी के कपड़ों के द्वारा किया गया, किणः = घट्ठा, च = भी, न = नहीं, जातः = पड़ा है। कषायवस्त्ररचना = गेरुआ वस्त्र पहनना, च = भी, न = नहीं, अभ्यस्ता = सीखा गया है। दूरम् = बहुत अधिक, निगूढ़ान्तरम् = शरीर के बिचले हिस्से को ढकने वाला, पटोच्छ्रयात् = कपड़े की लम्बाई के कारण, प्रशिथिलम् = ढीला-ढाला वस्त्रान्तम् = कपड़े का छोर, च = भी, स्कन्धे = कन्धे पर, न = नहीं, सन्तिष्ठते = ठहर रहा है।।

अर्थः—

विट— इसमें जानना क्या है? देखो-

आज भी, शिर के बालों के मुँड़वा देने से इसके मस्तक की कान्ति वैसे ही अर्थात् मुँड़ाने के समय के समान ही गोरी है। थोड़ा ही समय बीतने से कन्धे पर कपड़े (की गठरी लटकाने) का चिह्न भी नहीं पड़ा है। इसने गेरुआ वस्त्र पहनना भी नहीं सीखा है। शरीर के मध्य भाग को बहुत अधिक ढकने वाला, कपड़े की लम्बाई के कारण ढीला-ढाला, कपड़े का छोर कन्धे पर नहीं ठहर रहा है।।५।।

टीका— अद्य = अधुना, अपि, केशानाम् = कचानाम्, विरहात् = अभावात्, अचिरकेशमुण्डनात् इत्यर्थः, अस्य = भिक्षोः, ललाटस्य = मस्तकस्य छविः = कान्तिः, तथैव = ताद शी एव, यथा मुण्डनकाले आसीत्तथैवेत्यर्थः, गौरी = गौरवर्णा। कालस्य = संन्यासग्रहणसमयस्य अल्पतया = स्वल्पतया, स्कन्धे = अंशप्रदेशे, चीवरैः = वस्त्रैः कृतः = विहितः, किणः = शुष्कव्रणम्, च = अपि, न जातः = न उत्पन्नः। कषायवस्त्रस्य = गैरिकवस्त्र रचना = धारणम्, र जनकार्यम्, न अभ्यस्ता = न शीलिता। दूरम् = अत्यधिकम्, निगूढम् = आच्छादितम् अन्तरम् = शरीरस्य मध्यभागः येन तत्, पटस्य = वस्त्रस्य उच्छ्रयात् = दैध र्यात्, अतः प्रशिथिलम् = अतिशिथिलम्, वस्त्रान्तम् = वस्त्रस्य प्रान्तभागः, चापि, स्कन्धे = अंशदेशे, न सन्तिष्ठते = पूर्णतया न स्थिरं भवतीति।।५।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।५।।

भिक्षुः— उवाशके! एव्वं। अचिलपव्वजिदे हग्गे (उपासक? एवम्! अचिरप्रव्रजितो हम्।)

शकारः— ता कीशं तुमं जातमेत्तक ज्जेव ण पव्वजिदे?। (तत्किमर्थं त्वं जातमात्र एव न प्रव्रजितः?।) (इति ताडयति)

भिक्षुः— णमो बुद्धश्श। (नमो बुद्धाय।)

विटः— किमनेन ताडितेन तपस्विना? मुच्यताम्; गच्छतु।

शकारः— अले! चिष्ट दाव जाव शंपधालेमि। (अरे! तिष्ठ तावत्, यावत्संप्रधारयामि।)

विटः— केन सार्धम्?।

शकारः— अत्तणो हडक्केण। (आत्मनो हृदयेन।)

विटः— **हन्त, न गतः।**

शकारः— **पुत्रका हडक्का! भश्टके पुत्तके! एशे शमणके अवि णाम किं गच्छदु, किं च्यिश्टदु। (स्वगतम्) णावि गच्छदु, णावि च्यिश्टदु? (प्रकाशम्) भा शंपधालिदं मए हडक्केण शह। एशे मह हडक्के भणादि। (पुत्रक हृदय! भट्टारक पुत्रक! एष श्रमणको पि नाम किं गच्छतु, किं तिष्ठतु?। नापि गच्छतु, नापि तिष्ठतु। भाव! संप्रधारितं मया हृदयेन सह। एतन्मम हृदयं भणति।)**

विटः— **किं ब्रवीति?।**

शकारः— **मावि गच्छदु, मावि च्यिश्टदु। मावि ऊशशदु, मावि णीशशदु; इध ज्जेव झत्ति पडिअ मलेदु। (मापि गच्छतु, मापि तिष्ठतु; माप्युच्छ्वसितु, मापि निःश्वसितु। इहैव झटिति पतित्वा म्रियताम्।)**

भिक्षुः— **णमो बुद्धश्श; शलणागदम्हि। (नमो बुद्धाय; शरणागतो स्मि!)**

विटः— **गच्छतु।**

शकारः— **णं शमएण। (ननु समयेन।)**

विटः— **कीद शः समयः?।**

शकारः— **तधा कद्दमं फेलदु, जधा पाणिअं पंकाइलं ण होदि। अधवा पाणिअं पुंजीकदुअ कद्दमे फेलदु। (तथा कर्दमं प्रक्षिपतु, यथा पानीयं पंकाविलं न भवति।) अथवा पानीयं पुंजीकृत्य कर्दमे क्षिपतु।**

विटः— **अहो मूर्खता,—**

विपर्यस्तमनश्चेष्टैः शिलाशकलवर्ष्मभिः।
मांसव क्षैरियं मूर्खैर्भाराक्रान्ता वसुंधरा।।६।।

अर्थः—

भिक्षु— उपासक! ऐसा ही है। मैं अभी हाल में ही संन्यासी हुआ हूँ।

शकार— तो तुम जन्म लेते ही क्यों नहीं संन्यासी हो गये। (ऐसा कह कर मारता है)

भिक्षु— बुद्ध को नमस्कार है।

विट— इस बेचारे को मारने से क्या लाभ? छोड़ दो; जाय।

शकार— अरे! ठहर जरा, जब तक विचार करता हूँ।

विट— किसके साथ?

शकार— अपने हृदय के साथ।

विट— हाय! गया नहीं।

शकार— बेटे हृदय! राजा हृदय! क्या यह बौद्ध संन्यासी चला जाय अथवा ठहरे? (अपने आप) न तो जाय और न तो ठहरे ही। (प्रकट रूप में) श्रीमान् जी! मैंने हृदय के साथ सलाह कर लिया। यह मेरा हृदय कहता है।

विट— क्या कहता है?

शकार— न तो जाय। न ठहरे। न साँस ले। न साँस छोड़े। यहीं पर झट से गिर कर मर जाय।

भिक्षु— बुद्ध को नमस्कार है। शरण में आया हूँ।

विट– जाय।

शकार– एक शर्त पर।

विट– कैसी शर्त?

शकार– यह इस तरह कीचड़ फेंके जिससे कि पानी गदला न हो। अथवा पानी को इकट्ठा करके कीचड़ में फेंक दे।

अन्वयः– विपर्यस्तमनश्चेष्टैः, शिलाशकलवर्ष्मभिः, मांसव क्षैः, मूर्खैः, इयम्, वसुन्धरा, भाराक्रान्ता, (वर्तते)।।६।।

शब्दार्थः– विपर्यस्तमनश्चेष्टैः = विपरीत मन और काम वाले, शिलाशकलवर्ष्मभिः = पत्थर की पटिया के टुकड़े के समान शरीर वाले, मांसव क्षैः = मांस के पेड़ों (के समान), मूर्खैः = मूर्खों के द्वारा, इयम् = यह, वसुन्धरा = प थ्वी, भाराक्रान्ता = बोझिल, (वर्तते = है)।।

अर्थः–

विट– ताज्जुब की मूर्खता है–

विपरीत मन और काम वाले, पत्थर की शिला के टुकड़े के समान शरीर वाले, मांस के पेड़ों जैसे मूर्खों के द्वारा यह प थिवी बोझिल हो रही है।।६।।

टीका– विपर्यस्ते = विपरीते, व्यवहारविरुद्धे इत्यर्थः, मनश्चेष्टे = चेतश्चेतोव्यापारौ येषां ताद शैः; लोकविरुद्धस्य कार्यस्य चिन्तने सम्पादने च संलग्नैः इति भावः; शिलायाः = प्रस्तरखण्डस्य शकलानि = खण्डानि इव वर्ष्माणि = शरीराणि येषां तैः; मांसस्य = पिशितस्य व क्षाः = पादपाः तैः, मांसमयैः पादपैः विचारशून्यैः इति भावः; मूर्खैः = अज्ञैः; इयम् = आधारभूता, वसुन्धरा = प थ्वी, भाराक्रान्ता = अतिभारवती वर्तते इति।।६।।

इस श्लोक में उपमा एवं रूपक अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।६।।

(भिक्षुर्नाट्येनाक्रोशति)

शकारः– किं भणादि?। (किं भणति?।)

विटः– स्तौति भवन्तम्।

शकारः– थुणु थुणु, पुणो वि थुणु। (स्तुनु स्तुनु, पुनरपि स्तुनु।)

(तथा कृत्वा निक्रान्तो भिक्षुः)

विटः– काणेलीमातः! पश्योद्यानस्य शोभाम्

> **अमी हि व क्षाः फलपुष्पशोभिताः**
> **कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः।**
> **न पाज्ञया रक्षिजनेन पालिता**
> **नराः सदारा इव यान्ति निव तिम्।।७।।**

(बौद्ध संन्यासी अभिनय के द्वारा कोसता है)

अर्थः–

शकार– क्या कहता है?

विट– आपकी प्रशंसा कर रहा है।

शकार– प्रशंसा करो, और फिर भी प्रशंसा करो।

(वैसा करके भिक्षु निकल जाता है)

अन्वयः— फलपुष्पशोभिताः, कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः, अमी, व क्षाः, न पाज्ञया, रक्षिजनेन, पालिताः, सदाराः, नराः, इव, निर्व तिम्, यान्ति।।७।।

शब्दार्थः— फलपुष्पशोभिताः = फलों एवं फूलों से सुशोभित, कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः = मोटी पकी एवं निश्चल लताओं के द्वारा लपेटे गये, अमी = ये, व क्षाः = व क्ष; न पाज्ञया = राजा की आज्ञा से, रक्षिजनेन = सिपाहियों के द्वारा, पालिताः = रखवाली किये गये, सदाराः = सपत्नीक, नराः इव = पुरुषों के समान, निर्व तिम् = सुख को, यान्ति = जा रहे हैं, प्राप्त कर रहे हैं।।

अर्थः—

विट— छिनार के पुत्र! बगीचे की शोभा देखो-

फलों एवं फूलों से सुशोभित, मोटी, पकी तथा निश्चल लताओं के द्वारा भली-भाँति आलिंगित ये व क्ष, राजा की आज्ञा से सिपाहियों के द्वारा रखवाली किये गये सपत्नीक पुरुषों के समान, सुख को प्राप्त कर रहे हैं।।७।।

टीका— पुष्पाणि = कुसुमानि च, फलानि = प्रसवाश्च तैः शोभिताः = सुन्दराः; कठोराभिः = स्थूलाभिः प्राचीनाभिश्च निष्पन्दाभिः = निश्चलाभिः लताभिः = व्रततिभिः उपवेष्टिताः = आलिंगिताः; अमी = एते; व क्षाः = पादपाः; न परय = राज्ञः आज्ञया = आदेशेनः रक्षिजनेन = रक्षकलोकेन, पालिताः = रक्षिताः; दाराभिः = स्त्रीभिः सहिताः = युक्ताः सदाराः = सपत्नीकाः; नराः = मनुष्याः इवः, निर्व तिम् = सुखम्; यान्ति = प्राप्नुवन्ति इत्यर्थः।।७।।

इस श्लोक में उपमा एवं समासोक्ति अलंकार तथा वंशस्थ छन्द है।।७।।

शकारः— **शुष्टु भावे भणादि**

बहुकुशुमविचित्तिदा अ भूमी
कुशुमभलेण विणामिदा अ लुक्खा
दु मशिहललदाअलंबमाणा
पणशफला विअ बाणला ललंति।।८।।

सुष्ठु भावो भणति

बहुकुसुमविचित्रता च भूमिः कुसुमभरेण विनामिताश्च व क्षाः।
द्रुमशिखरलतावलम्बमानाः पनसफलानीव वानरा ललन्ति।।

अन्वयः— भूमिः, च, बहुकुसुमविचित्रता, (अस्ति), व क्षाः, च, कुसुमभरेण, विनामिताः, (सन्ति), द्रुमशिखरलतावलम्बमानाः, वानराः, पनसफलानि, इव, ललन्ति।।८।।

शब्दार्थः— भूमिः = प थिवी, बहुकुसुमविचित्रता = अनेक फूलों से रंग-विरंगी, (अस्ति = है)। व क्षाः = व क्ष, च = भी, कुसुमभरेण = फूलों के बोझ से, विनामिताः = झुकाये गये, (सन्ति = है)। द्रुमशिखरलतावलम्बमानाः = पेड़ों के ऊपर की टहनियों में लटके हुए, वानराः = वानर, पनसफलानि = कटहल के फल, इव = जैसे, ललन्ति = सुशोभित हो रहे हैं।।

अर्थः—

शकार— आप ठीक कह रहे हैं।

प थिवी अनेक रंग के फूलों से रंग-बिरंगी है। व क्ष फूलों के बोझ से झुकाये गये हैं। पेड़ों के ऊपर की टहनियों में लटके हुए वानर कटहल के फल के समान सुशोभित हो रहे हैं।।८।।

टीका— भूमिः = प थिवी; बहुभिः = अनेकैः, नानविधैः इत्यर्थः, कुसुमैः = प्रसूनैः विचित्रता = विविधवर्णरजिता, अस्तीति शेषः; व क्षाः = पादपाः; च = अपि; कुसुमानाम् = पुष्पाणाम्; भरेण विनामिताः = नम्रीकृताः, सन्तीतिशेषः। द्रुमाणाम् = पादपानाम्, शिखरलतासु = अग्रभागशाखासु अवलम्बमानाः = अधो लम्बमानाः, वानराः = कपयः; पनसस्य = कण्टकिफलस्य फलानि = प्रसवाः इव; ललन्ति = शोभन्ते, अत्रेति शेषः।।८।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पुष्पिताग्रा छन्द है।।८।।

विटः— **काणेलीमातः! इदं शिलातलमध्यास्यताम्।**

शकारः— **एशे म्हि आशिदे। (इति विटेन सहोपविशति) भावे! अज्ज वि तं वशंतशेणिअं शुमलामि। दुज्जणवअणं विअ हडक्कादो ण ओशलदि। (एषो स्म्यासितः। भाव! अद्यापि तां वसन्तसेनां स्मरामि। दुर्जनवचनमिव हृदयान्नापसरति।)**

विटः— **(स्वगतम्) तथा निरस्तो पि स्मरति ताम्। अथवा**

स्त्रीभिर्विमानितानां कापुरुषाणां विवर्धते मदनः।
सत्पुरुषस्य स एव तु भवति म दुर्नैव वा भवति।।९।।

अर्थः—

विट— पुंश्चली के पुत्र! इस शिलातल पर बैठिए।

शकार— यह बैठ गया। श्रीमान् जी! आज भी उस वसन्तसेना को याद करता हूँ। कठोर वचन के समान वह मेरे हृदय से नहीं निकल रही है।

विट— (अपने आप) उस प्रकार तिरस्कृत होने पर भी उसकी याद करता है। अथवा—

अन्वयः— स्त्रीभिः, विमानितानाम्, कापुरुषाणाम्, मदनः, विवर्धते, तु, सत्पुरुषस्य, सः, एव, म दुः, भवति, वा, न, एव, भवति।।९।।

शब्दार्थः— स्त्रीभिः = स्त्रियों के द्वारा, विमानितानाम् = तिरस्कृत, कापुरुषाणाम् = नीच पुरुषों का, मदनः = काम, विवर्धते = अधिक बढ़ जाता है। तु = किन्तु, सत्पुरुषस्य = सज्जनपुरुषों का, सः = वह, एव = ही, म दुः = कम, भवति = हो जाता है, वा = अथवा, न = नहीं, एव = ही, भवति = होता है।।

अर्थः— स्त्रियों द्वारा तिरस्कृत नीच पुरुषों की कामवासना अधिक बढ़ जाती है। किन्तु सज्जन पुरुषों की कामवासना कम हो जाती है अथवा होती ही नहीं।।९।।

टीका— स्त्रीभिः = वांछिताभिः नारीभिः, विमानितानाम् = तिरस्कृतानाम्, निष्फलीकृत-कामया चानामित्यर्थः, मदनः = कामः, विवर्धते = व द्धिं गच्छति। तु = किन्तु, सतः = सज्जनस्य पुरुषस्य = जनस्य, कुलीनस्येति यावत्, सः = मदनः एव, म दुः = क्षीणः, भवति = जायते, वा = अथवा, नैव भवति = नैव उत्पद्यते।।९।।

यहाँ पर अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-आर्या।

शकारः— भावे! का वि बेला थावलकचेडश्शभणिदश्श 'पवहणं गेण्हिअ लहुं लहुं आअच्छे' त्ति। अज्ज वि ण आअच्छदि त्ति। चिलम्हि बुभुक्खिदे। मज्झण्हे ण शक्कीअदि पादेहिं गंतुं। ता पेक्ख

पेक्ख

णहमज्झगदे शूले दुप्पेक्खे कुविदवाणलशलिच्छे।
भूमी दढशंतत्ता हदपुत्तशदेव गंधाली।।१०।।

(भाव! कापि बेला स्थावरकचेटस्य भणितस्य 'प्रवहणं ग हीत्वा लघु लघ्वागच्छ' इति। अद्यापि नागच्छतीति। चिरमस्मि बुभुक्षितः। मध्यान्हने न शक्यते पादाभ्यां गन्तुम्। तत्पश्य पश्य

नभोमध्यगतः सूर्यो दुःप्रेक्ष्यः कुपितवानरसद शः।
भूमिर्द ढसंतप्ता हतपुत्रशतेव गान्धारी।।)

अर्थः—

शकार— श्रीमान् जी! स्थावरक नौकर से यह कहे हुए कितनी देर हो गयी कि 'गाड़ी लेकर बहुत जल्द आओ'। अभी भी नहीं आ रहा है। बहुत देर से भूखा हूँ। दोपहर में पैदल नहीं चला जा सकता। तो देखिये, देखिये—

अन्वयः— नभोमध्यगतः, सूर्यः, कुपितवानरसद शः, दुःप्रेक्ष्यः, (अस्ति), हतपुत्रशता, गान्धारी, इव, भूमिः, द ढसन्तप्ता, (जाता)।।१०।।

शब्दार्थः— नभोमध्यगतः = आकाश के बीचो-बीच स्थित, सूर्यः = सूर्य, कुपितवानरसद शः = क्रुद्ध हुए वानर के समान, दुःप्रेक्ष्यः = मुश्किल से देखे जाने के योग्य, (अस्ति = है)। हतपुत्रशता = मारे गये थे सौ पुत्र जिसके ऐसी, गान्धारी इव = गान्धारी के समान, भूमिः = प थिवी, द ढ़सन्तप्ता = बहुत अधिक सन्तप्त (प थिवी के पक्ष में-तपी हुई, गान्धारी के पक्ष में-दुःखी) (अस्ति = हो गयी है)।।

अर्थः— आकाश के बीचोबीच स्थित सूर्य, क्रुद्ध हुए वानर के (मुँह के) समान, मुश्किल से देखा जा सकता है। मारे गये थे सौ पुत्र जिसके ऐसी गान्धारी के समान यह प थिवी बहुत अधिक सन्तप्त (प थिवी के पक्ष में-तपी हुई, गान्धारी के पक्ष में-दुःखी) है।।१०।।

टीका— नभसः = आकाशस्य मध्ये = मध्यभागे गतः = स्थितः, सूर्यः = प्रभाकरः, कुपितवानरेण = क्रुद्धकपिना सद शः = समानः, दुःप्रेक्ष्यः = दुःखेन द्रष्टुं शक्यः, अस्तीति शेषः। हतम् = विनाशितम्, पुत्राणाम् = सुतानाम्, शतम् = शतसंख्याकः समूहः यस्याः ताद शी, गान्धारी = दुर्योधन जननी इव, भमिः = प थिवी, द ढ़म् = अत्यर्थं यथा स्यात्तथा सन्तप्ता = उष्णा, पक्षे सन्तापयुक्ता जातेति।।१०।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं आर्या छन्द है।।१०।।

विटः— **एवमेतत्**

छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवलं निद्रायते गोकुलं
त ष्णार्तैश्च निपीयते वनम गैरुष्णं पयः सारसम्।
संतापादतिशंक्तिैर्न नगरीमार्गो नरैः सेव्यते
तप्तां भूमिमपास्य च प्रवहणं मन्ये क्वचित्संस्थितम्।।११।।

अन्वयः— प्रतिमुक्तशष्पकवलम्, गोकुलम्, छायासु, निद्रायते, त ष्णार्तैः, वनम गैः, च, उष्णम्, सारसम्, पयः, निपीयते, संतापात्, अतिशंकितैः, नरैः, नगरीमार्गः, न, सेव्यते, (अतः, अहं) मन्ये, (यत्), तप्ताम्, भूमिम्, अपास्य, प्रवहणम्, क्वचित्, संस्थितम् (अस्ति)।।११।।

शब्दार्थः— प्रतिमुक्तशष्पकवलम् = छोड़ दिया है घासों का चरना जिसने ऐसा, गोकुलम् = गायों का झुण्ड, छायासु = छाया में, निद्रायते = नींद ले रहा है, त ष्णार्तैः = प्यास से व्याकुल, वनम गैः = जंगली जानवरों के द्वारा, च = भी, उष्णम् = गर्म, सारसम् = सरोवरों का, पयः = जल, पीयते = पीया जा रहा है; सन्तापात् = गर्मी से, अतिशंकितैः = अत्यन्त डरे हुए, नरैः = मनुष्यों के द्वारा, नगरीमार्गः = नगरी की सड़क, न = नहीं, सेव्यते = इस्तेमाल की जा रही है, नहीं चली जा रही है; (अतः = इसलिये, अहम् = मैं) मन्ये = समझता हूँ (यत् = कि), तप्ताम् = तपी हुई, भूमिम् = भूमिको, अपास्य = छोड़कर प्रवहणम् = गाड़ी, क्वचित् = कहीं, संस्थितम् = ठहरा (अस्ति = है)।।

अर्थः—

विट— हाँ ऐसी ही बात है—

गायों का झुण्ड कोमल घासों का चरना छोड़कर छाया में नींद ले रहा है। प्यास से व्याकुल जंगली जानवर सरोवरों का गर्म जल पी रहे हैं। गर्मी से अत्यन्त डरे हुए मनुष्य नगरी की सड़क से नहीं चल रहे हैं। अतः मैं समझता हूँ कि तपी हुई भूमि को छोड़कर वह गाड़ी कहीं (छाया में) ठहर गयी है।।१२।।

टीका— प्रतिमुक्ताः = परित्यक्ताः शष्पाणाम् = बालत णानाम्, कवलाः = ग्रासाः येन तत्, गवां कुलम् = समूहः, छायासु = अनातपेषु, निद्रायते = स्वपिति। त ष्णार्तैः = पिपासापीडितैः, वनम गैः = अरण्यपशुभिश्च, उष्णम् = घर्मेण तप्तं, सरसः = सरोवरस्य इदं सारसम् =सरोवरसम्बन्धि, पयः = जलम्, निपीयते = नितरां पीयते। सन्तापात् = आतपात्, अतिशंकितैः = अतिभीतैः, नरैः = जनैः, नगर्याः = उज्जयिनीनगर्य्याः मार्गः = पन्थाः, न सेव्यते = न गम्यते। अतः अहं मन्ये = स्वीकरोमि, यत् तप्ताम् = उष्णाम्, भूमिम् = प थिवीम्, अपास्य = परित्यज्य, प्रवहणम् = शकटम्, क्वचित् = कुत्रचित्, संस्थितम् = निव त्तगतिव्यापारम्, अस्तीति।।११।।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।११।।

शकारः— भावे!

शिलषि मम णिलीणे भाव शुज्जश्श पादे
शउणिखगविहंगा लुक्खशाहाशु लीणा।
णलपुलिशमणुश्शा उण्हदीहं शशंता
घलशलणणिशण्णा आदवं णिव्वहंति।।१२।।

(भाव!)

शिरसि मम निलीनो भाव! सूर्यस्य पादः
शकुनिखगविहंगा व क्षशाखासु लीनाः।
नरपुरुषमनुष्या उष्णदीर्घं श्वसन्तो
ग हशरणनिषण्णा आतपं निर्वहन्ति।।१२।।

अन्वयः— हे भाव! सूर्यस्य, पादः, मम, शिरसि, निलीनः (अस्ति); शकुनिखगविहंगाः, व क्षशाखासु, लीनाः, (सन्ति); नरपुरुषमनुष्याः, उष्णदीर्घम्, श्वसन्तः, ग हशरणनिषण्णाः, आतपम्, निर्वहन्ति।।१२।।

शब्दार्थः— हे भाव! = हे श्रीमान् जी, सूर्यस्त = सूर्य की, पादः = किरण, मम = मेरे, शिरसि = शिर पर, निलीनः = पड़ी, (अस्ति = है)। शकुनिखगविहंगाः = पक्षी (खग, विहंग) व क्षशाखासु = व क्ष की डालों में, लीनाः = छिपे हुए, (सन्ति = है)। नरपुरुषमनष्याः = मनुष्य (नर, पुरुष), उष्णदीर्घम् = गरम तथा लम्बी (जैसे हो तैसे), श्वसन्तः = साँस लेते हुए, ग हशरणनिषण्णाः = घर (शरण) में बैठे हुए, आतपम् = गर्मी को, निर्वहन्ति = बिता रहे हैं।।

अर्थः—

शकार— श्रीमान् जी।

सूर्य की किरण मेरे शिर पर पड़ रही हैं। पक्षी व क्ष की डालों में छिप गये हैं। मनुष्य गर्म तथा लम्बी साँसें लेते हुए घर में बैठे हुए गर्मी को बिता रहे हैं।।१२।।

टीका— हे भाव! = हे विद्वन्! सूर्यस्य = भानोः; पादः = किरणः; मम = शकारस्य; शिरसि = मस्तके; निलीनः = नितरां पतितः; अस्तीति शेषः। शकुनिखग-विहंगाः = पक्षिणः; व क्षस्य = पादपस्य शाखासु = लतासु, लीनाः = निशब्दं स्थिताः इत्यर्थः, सन्तीतिशेषः। नरपुरुषमनुष्याः = पुरुषाः, उष्णम् = सन्तप्तम् च तत् दीर्घम् = विस्त तं; यथा तथा; श्वसन्तः = श्वासक्रियां कुर्वन्तः; ग हशरणेषु = भवनेषु निषण्णाः = स्थिताः; आतपम् = धर्मकालमित्यर्थः निर्वहन्ति = यापयन्ति।।१२।।

श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-मालिनी।।१२।।

भावे! अज्ज वि शे चेडे णाअच्छदि। अत्तणो विणोदणणिदित्तं किं पि गाइश्शं (गति गायति) भावे! भावे! शुदं तुए जं मए गाइदं?। (भाव! अद्यापि स चेटो नागच्छति। आत्मनो विनोदननिमित्तं किमपि गास्यामि। भाव भाव! श्रुतं त्वया यन्मया गीतम्?।)

विटः— **किमुच्यते। गन्धर्वो भवान्।**

शकारः— **कधं गंधव्वे ण भविश्शं?।**

हिंगुज्जले जीलकभद्दमुश्ते वचाह गंठी शगुडा अ शुंठी।
एशे मए शेविद गंधजुत्ती कधं ण हग्गे मधुलश्शले त्ति।। १३।।

कथं गन्धर्वो न भविष्यामि?

हिंगूज्वला जीरकभद्रमुस्ता वचाया ग्रन्थिः सगुडा च शुण्ठी।
एषा मया सेविता गन्धयुक्तिः कथं नाहं मधुरस्वर इति।।

अर्थः— श्रीमान् जी! अब भी वह चेट नहीं आ रहा है। अपने को बहलाने के लिये कुछ गाऊँगा। (ऐसा कह कर गाता है)। श्रीमान् जी! तुमने सुना जो मैंने गाया?।

विट— क्या कहना! आप गन्धर्व हैं।

शकार- मैं गन्धर्व क्यों न होऊँ?

अन्वयः— हिंगूज्ज्वला, जीरकभद्रमुस्ता, वचायाः ग्रन्थिः, सगुडा, शुण्ठो, च; एषा, गन्धयुक्तिः, मया, सेविता, (तर्हि), अहम् कथम्, मधुरस्वरः, न, (भवेयम्) इति।।१३।।

शब्दार्थः— हिंगूज्ज्वला = हींग के कारण सफेद, जीरकभद्रमुस्ता = जीरा सहित नागरमोथी, वचायाः = वच की, ग्रन्थिः = गाँठ, सगुडा = गुड़ से मिलायी हुई, शुण्ठी = सोंठ-एषा = यह

गन्धयुक्तिः = सुगन्धित मिलावट, मया = मेरे द्वारा, सेविता = सेवन की गयी है, (तर्हि = तो) अहम् = मै, कथम् = कैसे, मघुरस्वरः = मीठास्वर वाला, न = नहीं, (भवेयम् = होऊँ)। इति = यह पादपूर्ति के लिये हैं।।

अर्थः—

शकार— हींग मिलाने के कारण सफेद जीरा सहित नागर मोथा, वच की गाँठ और गुड़ मिलायी हुई सोंठ-इस सुगन्धित योग का मैंने (प्रतिदिन स्वर सुधारने के लिये) सेवन किया है, तो मैं मीठा स्वर वाला क्यों न होऊँ?।।१३।।

टीका— हिंगुभिः = वाल्हीकैः उज्ज्वला = शुभ्रा वासिता वा, जीरकसहिता जीरणसहिता भद्रमुस्ता = 'नागर मोथा' इति प्रसिद्धः द्रव्यविशेषः, वचायाः = उग्रगन्धायाः, ग्रन्थिः = काण्डः, सगुडा = गुडमिश्रिता, शुण्ठी = लोके सोंठ इति ख्यातः शुष्कार्द्रकः, च; एषा = पूर्वकथिता इत्यर्थः, गन्धयुक्तिः = गन्धयोगः, मया = शकारेण, सेविता = भुक्ता, तर्हि अहम् = सुस्वरार्जनकृतयत्नः शकारः इत्यर्थः, कथम् = कस्मात् काणात्, मधुरस्वरः मधुरः = श्रवणसुभगः स्वरः = कण्ठध्वनिः यस्य ताद शः, न भवेयमिति, अपि तु भवेयमिति?।।१३।।

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।।१३।।

भावे! पुणो वि दाव गाइश्शं। (तथा करोति) भावे भावे! शुदं तुए जं मए गाइदं

भाव! पुनरपि तावद्गास्यामि। भाव भाव! श्रुतं त्वया यन्मया गीतम्?।)

विटः— **किमुच्यते गन्धर्वो भवान्।**

शकारः— **कधं गधव्वे ण भवामि?।**

हिंगुज्जले दिण्णमलीचचुण्णे वग्घालिदे तेल्लधिएण मिश्शे।
भुत्ते मए पालहुदीअमंशे कधं ण हग्गे मधुलश्शलेत्ति।।१४।।

(कथं गन्धर्वो न भवामि?)

हिंगूज्ज्वलं दत्तमरीचचूर्णं व्याघारितं तैलघ तेन मिश्रम्।
भुक्तं मया पारभ तीयमांसं कथं नाहं मधुरस्वर इति।।

अर्थः— श्रीमान् जी! तो मैं फिर भी गाऊँगा। (गाकर) श्रीमान् जी! श्रीमान जी! आपने सुना, जो मैंने गाया?।

विट— क्या कहना! आप गन्धर्व हैं।

अन्वयः— हिंगूज्ज्वलम्, दत्तमरीचचूर्णम्, तैलघ तेन, मिश्रम्, व्याघारितम्, पारभ तीयमांसम्, मया, भुक्तम्, अहम्, कथम्, न, मधुरस्वरः, (भवेयम्), इति।।१४।।

शब्दार्थः— हिंगूज्ज्वलम् = हींग से वासित, दत्तमरीचचूर्णम् = मिर्च के चूर्ण से मिला हुआ, तैलघ तेन = तेल एवं घी से, मिश्रम् = मिला हुआ, (एवं) व्याघारितम् = बघारा हुआ, पारभ तीयमांसम् = कोयल का मांस, मया = मेरे द्वारा, भुक्तम् = खाया गया है, अहम् = मैं, कथम् = कैसे, न = नहीं, मधुरस्वरः = मीठा स्वरवाला, (भवेयम् = होऊँ), इति = यह पादपूर्ति के लिये है।।

अर्थः—

शकार— क्यों न गन्धर्व होऊँ?

मैंने हींग से वासित, काली मिर्च के चूर्ण से मिला हुआ तथा तेल एवं घी से मिला और बघारा हुआ कोयल का मांस खाया है; तो मैं मीठा स्वर वाला क्यों न होऊँ।।१४।।

टीका— हिंगुभिः = वाल्हीकैः उज्ज्वलम् = शुभ्रम्, हिंगुवासितमित्यर्थः; दत्तम् = मिश्रितं मरिचानाम् = कोलकानाम्, चूर्णम् = चूर्णीकृतं रजः यस्मिन् तत्; तैलसहितेन घ तेन तैलघ तेन अथवा तैल च घ त च तयोः समाहारः तेन तैलघ तेन मिश्रम् = संयुक्तम्; विशेषेण आधारितं व्याघारितम् = घ तपक्वमित्यर्थः; परभ तः एव पारभ तः = कोकिलः तस्य इदं पारभ तीयम् = कोकिलसम्बन्धि मांसम् = आमिषम्, मया = शकारेण; भुक्तम् = खादितम्; अहम् = शकारः; कथम् = कस्मात्; न मधुरः = श्रवणप्रियः स्वरः = कण्ठध्वनिः यस्य सः; भवेयमिति।।१४।।

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

भावे! अज्ज वि चेडे णाअच्छदि! भाव! अद्यापि चेटी नागच्छति।)

विटः— स्वस्थो भवतु भवान्, संप्रत्येवागमिष्यति।

(ततः प्रविशति प्रवहणाधिरूढा वसन्तसेना चेटश्च)

चेटः— भीदे खु हग्गे, मज्झण्हिके शुज्जे। मा दाणिं कुविदे लाअशालशंठाणे हुविश्शदि। ता तुलिदं वहामि। जाध गोणा! जाध। (भीतः खल्वहम्, माध्याह्निकः सूर्यः। नेदानीं कुपितो राजश्यालसंस्थानको भविष्यति। तत्त्वरितं वहामि। यातं गावौ! यातम्।)

वसन्तसेना— हद्धी हद्धी, ण हु वड्ढमाणअस्स अअं सरसंजोओ। किं णेदं?। किं णु खु अज्जचारुदत्तेण वाहणपडिस्समं परिहरंतेण अण्णे मणुस्सो अण्णं पवहणं पेसिदं भविस्सदि?। फुरदि दाहिणं लोअणं, वेवदि मे हिअअं, सुण्णाओ दिसाओ, सव्वं ज्जेव विसंठुलं पेक्खामि। (हा धिक् हा धिक्, न खलु वर्धमानकस्यायं स्वरसंयोगः। किं न्विदम्? किं नु खल्वार्यचारुदत्तेन वाहनपरिश्रमं परिहरतान्यो मनुष्यो न्यत्प्रवहणं प्रेषितं भविष्यति?। स्फुरित दक्षिणं लोचनम्, वेपते मे हृदयम्, शून्या दिशः, सर्वमेव विसंष्ठुलं पश्यामि।)

शकारः— (नेमिघोषमाकर्ण्य) भावे भावे! आगदे पवहणे। (भाव भाव! आगतं प्रवहणम्।)

विटः— कथम् जानासि?।

शकारः— किं ण पेक्खदि भावे? बुड्ढशूअले विअ घुलघुलाअमाणे लक्खीअदि। (किं न पश्यति भावः? व द्धशूकर इव घुरघुरायमाणं लक्ष्यते।)

विटः— (द ष्ट्वा) साधु लक्षितम् अयमागतः।

शकारः— पुत्तका थावलका चेडा! आगदे शि? (पुत्रक स्थावरक चेट! आगतो सि।)

चेटः— अध इं। (अथ किम्।)

शकारः— पवहणे वि आगदे?। (प्रवहणमप्यागतम्?)

चेटः— अध इं। (अथ किम्।)

शकारः— गोणा वि आगदे?। (गावावप्यागतौ?।)

चेटः— अध इं। (अथ किम्।)

शकारः— तुमं पि आगदे?। (त्वमप्यागतः?।)

चेटः— (सहासम्) भट्टके! अहं पि आगदे। (भट्टारक! अहमप्यागतः।)

शकारः— ता पवेशेहि पवहणं। (तत्प्रवेशय प्रवहणम्।)

चेटः— कदलेण मग्गेण?। (कतरेण मार्गेण?।)

शकारः— एदेण ज्जेव पगालखंडेण। (एतेनैव प्रकारखण्डेन।)

चेटः— भट्टके! गोणा मलेंति। पवहणे वि भज्जेदि। हग्गे वि चेडे मलामि। (भट्टारक! व षभौ म्रियेते। प्रवहणमपि भज्यते। अहमपि चेटो म्रिये।)

शकारः— अले! लाअशालके हग्गे; गोणा मले, अवले कीणिश्शं; पवहणे भग्गे अवलं घडाइश्शं; तुमं मले, अण्णे पवहणवाहके हुविश्शदि। (अरे! राजश्यालको हम्; व षभौ म तौ, अपरौ क्रेष्यामि। प्रवहणम् भग्नम्, अपरं कारयिष्यामि। त्वं म तः अन्यः प्रवहणवाहको भविष्यति।)

चेटः— शव्वं उववण्णं हुविश्शदि, हग्गे अत्तणकेलके ण हुविश्शं। (सर्वमुपपन्नं भविष्यति, अहमात्मीयो न भविष्यामि।)

शकारः— अले! शव्वं पि णश्शदु; पगालखंडेण पवेशेहि पवहणं। (अरे! सर्वमपि नश्यतु; प्राकारखण्डेन प्रवेशय प्रवहणम्।)

चेटः— विभज्ज ले पवहण! शमं शामिणा विभज्ज। अण्णे पवहणे भोदु। भट्टके गदुअ णिवेदेमि। (प्रविश्य) कथं ण भग्गे?। भट्टके एशे उवत्थिदे पवहणे। (विभ ज रे प्रवहण! समं स्वामिना विभ ज। अन्यत्प्रवहणं भवतु। भट्टारकं गत्वा निवेदयामि। कथं न भग्नम्?। भट्टारक! एतदुपस्थितं प्रवहणम्।)

शकारः— ण छिण्णा गोणा?। ण मला लज्ज?। तुमं पि ण मले?। (न छिन्नौ व षभौ?। न म ता रज्जवः? त्वमपि न म तः?।)

चेटः— अघ इं। (अथ किम्।)

शकारः— भावे! आअच्छ; पवहणं पेक्खामो। भावे! तुमं पि मे गुलु पलमगुलु। पेक्खीअशि शादलके अब्भंतलकेत्ति पुलक्कलण्णीएत्ति तुमं दाव पवहणं अग्गदो अहिलुह। (भाव! आगच्छ; प्रवहणं पश्यावः। भाव! त्वमपि मम गुरुः परमगुरुः। प्रेक्ष्यसे सादरको भ्यन्तरक इति पुरस्करणीय इति त्वं तावत्प्रवहणमग्रतो धिरोह।)

विटः— एवं भवतु। (इत्यारोहति)

शकारः— अधवा चिट्ठ तुमं। तुह् बप्पकेलके पवहणे, जेण तुमं अग्गदो अहिलुहशि। हग्गे पवहणशामी; अग्गदो पवहणं अहिलुहामि। (अथवा तिष्ठ त्वम्। तव पित संबन्धि प्रवहणम्, येन त्वमग्रतो धिरोहसि। अहं प्रवहणस्वामी; अग्रतः प्रवहणमधिरोहामि।)

विटः— भवानेवं ब्रवीति।

शकारः— जइ वि हग्गे एव्वं भणामि, तधा वि तुह एशे आदले 'अहिलुह भश्टके' त्ति भणिदुं। (यद्यप्यहमेवं भणामि, तथापि तवैष आचारः 'अधिरोह भट्टारक! इति भणितुम्।)

विटः— आरोहतु भवान।

शकारः— एशे शंपदं अहिलुहामि। पुत्तका थावलका चेडा! पलिवत्तावेहि पवहणं। (एष सांप्रतमधिरोहामि। पुत्रक स्थावरक चेट! परिवर्तय प्रवहणम्।)

चेटः— (परावर्त्य) अहिलुहदु भट्टालके। (अधिरोहतु भट्टारकः।)

शकारः— (अधिरुह्यावलोक्य च शंकां नाटयित्वा, त्वरितमवतीर्य, विटं कण्ठे वलम्ब्य) भावे भावे! मलेशि मलेशि। पवहणाधिलूढा लक्खशी चोले वा पडिवशदि। ता जइ लक्खशी, तदो उभे वि मूशे। अध चोले, तदो उभे वि खज्जे। (भाव भाव! म तो सि म तो सि।

प्रवहणाधिरूढा राक्षसी चौरो वा प्रतिवसति। तद्यदि राक्षसी, तदोभावपि मुषितौ। अथ चौरः तदोभावपि खादितौ।)

विटः— **न भेतव्यम्; कुतो त्र व षभयाने राक्षस्याः संचारः?। मा नाम ते मध्याह्नार्कतापच्छिन्नद ष्टेः स्थावरकस्य सक चुकां छायां द ष्ट्वा भ्रान्तिरुत्पन्ना?।**

शकारः— पुत्तका थावलका चेडा! जीवेशि?। (पुत्रक स्थावरक चेट! जीवसि?।)

चेटः— अध इं। (अथ किम्।)

शकारः— भावे! पवहणाहिं इत्थिआ पडिवशदि; ता अवलोएहि। (भाव! प्रवहणान्तः स्त्री प्रतिवसति; तदवलोकय।)

विटः— कथं स्त्री?।

अवनतशिरसः प्रयाम शीघ्रं पथि व षभा इव वर्षताडिताक्षाः।
मम हि सदसि गौरवप्रियस्य कुलजनदर्शनकातरं हि चक्षुः।।१५।।

अर्थः— श्रीमान् जी! अब भी चेट नहीं आ रहा है।

विट— आप घबड़ायें नहीं, अभी आ जायेगा।

(तब गाड़ी पर बैठी हुई वसन्तसेना तथा चेट प्रवेश करते हैं।)

चेट— मुझे बड़ा डर लग रहा है! सूर्य मध्याह में आ गया अर्थात् दिन के बारह बज गये। राजा के साले संस्थानक कहीं क्रुद्ध न हों? इसलिये जल्दी जल्दी गाड़ी हाँकता हूँ। बढ़े चलो बैलों, बढ़े चलो।

वसन्तसेना— हा! खेद है! खेद है! निश्चय ही वर्धमानक की यह आवाज नहीं है। यह क्या है? क्या गाड़ी के श्रम को बचाते हुए आर्य चारुदत्त ने दूसरा गाड़ीवान् तथा दूसरी गाड़ी भेज दी है? दाहिनी आँख फड़क रही है। मेरा कलेजा काँप रहा है। दिशाएँ सूनी (लग रही) है। सब कुछ विपरीत दिखलाई पड़ रहा है।

शकार— (गाड़ी की घड़घड़ाहट सुनकर) भाव! भाव! गाड़ी आ गयी।

विट— कैसे जानते हो?

शकार— क्या आप नहीं देख रहे हैं? बूढ़े सूअर की भाँति घुर-घुर करती (गाड़ी) मालूम पड़ रही है।

विट— (देखकर) ठीक जाना! यह आ गया।

शकार— बेटा स्थावरक चेट! आ गये?

चेट— और क्या?

शकार— गाड़ी भी आ गयी?

चेट— और क्या?

शकार— बैल भी आ गये?

चेट— और क्या?

शकार— तुम भी आ गये?

चेट— (हँसी के साथ) मालिक! मैं भी आ गया हूँ।

शकार— तो गाड़ी को अन्दर ले आओ।

चेट— किस रास्ते से?

शकार— इस चहारदिवारी के टूटे हिस्से से।

चेट— मालिक! दोनों बैल मर जायेंगे। गाड़ी भी टूट जायगी। मैं सेवक भी मर जाऊँगा।

शकार— अरे! मैं राजा का साला हूँ। बैल मर जायें तो दूसरा खरीद लूँगा। गाड़ी टूट जायेगी तो दूसरा बनवा लूँगा। तुम मर जाओगे तो दूसरा गाड़ीवान् हो जायेगा।

चेट— सब कुछ ठीक हो जायेगा। बस मैं न रहूँगा।

शकार— अरे! सब कुछ नष्ट हो जाय। उसी टूटी दीवार से ही गाड़ी भीतर लाओ।

चेट— टूट जा री गाड़ी! मालिक के साथ टूट जा। दूसरी गाड़ी हो जाये। मालिक के समीप जाकर अभी निवेदन करता हूँ। (घुस कर के) क्या नहीं टूटी? मालिक! यह गाड़ी हाजिर है।

शकार— बैल नहीं टूटे! रस्सियाँ नहीं मरीं! और तुम भी नहीं मरे?

चेट— जी हाँ।

शकार— भाव! आओ, गाड़ी देखें। भाव! तुम भी मेरे गुरु हो परमगुरु हो। सम्मान की निगाह से देखे जाते हो और मेरे हृदय को जानने वाले हो। इसलिये तुम्हीं आगे चलने के योग्य हो। अतः तुम ही आगे गाड़ी पर सवार होओ।

विट— ऐसा ही हो (ऐसा कह कर चढ़ता है)।

शकार— अथवा रुको तुम। तुम्हारे पिता की गाड़ी है, जो पहले चढ़ रहे हो? मैं गाड़ी का मालिक हूँ; अतः आगे गाड़ी पर चढूँगा।

चेट— आपने ही ऐसा कहा था।

शकार— यद्यपि मैंने ऐसा कहा था तो तुम्हारा भी तो कर्त्तव्य था कि मुझसे कहते—''मालिक आप ही पहले चढ़ें।''

विट— आप चढ़िये।

शकार— अच्छा, यह मैं अब चढ़ता हूँ। बेटा स्थावरक चेट! गाड़ी घुमाओ।

चेट— (घुमाकर) स्वामी चढ़िए।

शकार— (चढ़कर और देखकर, शंकाका अभिनय करके, जल्दी से उतरकर विट के गले में लिपटकर) भाव! भाव!! मर गये मर गये। गाड़ी पर राक्षसी चढ़ी है, अथवा चोर निवास करता है। तब यदि राक्षसी है तो हम दोनों लुट गये। यदि चोर है तो दोनों ही खाये गये।

विट— डरना नहीं चाहिए। इस बैलगाड़ी में राक्षसी कहाँ से आ सकती है? कहीं मध्यान्हकालीन सूर्य की गरमी से चकाचौंध आँखवाले तुम्हें, स्थावरक चेट की कुर्तावाली परछाई देखकर भ्रम तो नहीं पैदा हो गया है?

शकार— बेटा स्थावरक नौकर! जिन्दा हो?

चेट— जी हाँ।

शकार— भाव! गाड़ी के भीतर स्त्री बैठी है। देखो तो।

अन्वयः— (तदा), पथि, वर्षताडिताक्षाः, व षभाः, इव, अवनतशिरसः, (वयम्), शीघ्रम्, प्रयाम; हि, सदसि, गौरवप्रियस्य, मम, चक्षुः, कुलजनदर्शनकात्तरम्, हि।।१५।।

शब्दार्थः— (तदा = तब तो), पथि = रास्ते में, वर्षताडिताक्षाः = वर्षा से ताडित आँखों वाले, व षभाः = बैलों (के), इव = समान, अवनतशिरसः = शिर नीचा किये हुए, (वयम् = हम लोग), शीघ्रम् = जल्द, प्रयाम = भाग चलें। हि = क्योंकि; सदसि = समाज में, गौरवप्रियस्य = बड़ाई चाहने वाले, मम = मेरी, चक्षुः = आँख, कुलजनदर्शनकातरम् = कुलीन स्त्रियों को देखने में डरपोक (है)।।

अर्थः—

विट— क्या स्त्री?

(तब तो) रास्ते में वर्षा (की धारा) से ताड़ित आँखों वाले बैलों के समान सिर नीचा किये हुए हम जल्द ही भाग चलें। क्योंकि समाज में बड़ाई चाहने वाले मेरी आँख कुलीन स्त्रियों को देखने में डरपोंक है अर्थात् समर्थ नहीं है।।१५।।

टीका— तदा = यदि प्रवहणे स्त्री तिष्ठति तदा, पथि = मार्गे; वर्षेण = व ष्टिजलेन ताडितानि = आहतानि अक्षीणि = नेत्राणि = नेत्राणि येषां तथोक्ताः; व षभाः = व षाः, इव; अवनतानि = नम्रीकृतानि, शीघ्रम् = झटिति; प्रयाम = अपगच्छाम्। हि = यतः; सदसि = सभायां समाजे वा; गौरवम् = प्रतिष्ठा प्रियम् = इष्टं यस्य तस्य; मम = विटस्य; चक्षुः = नेत्रम्; कुलजनस्य = कुलीनस्य स्त्रीजनस्य दर्शने = अवलोकने कातरम् = भीरु विमुखं वा।।१५।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पुष्पिताग्रा छन्द है।।१५।।

वसन्तसेना— (सविस्मयमात्मगतम्) कधं मम णअणाणं आआसअरो ज्जेव्व राअसालओ?। ता संसइदम्हि मंदभाआ। एसो दाणिं मम मंदभाइणीए ऊसरक्खेत्त-पडिदो विअ बीअमुट्ठी णिप्फलो इव आगमणो संवुतो। ता किं एत्थ करइस्सं?। (कथं मम नयनयोरायासकर एव राजश्यालः?। तत्संशयितास्मि मन्दभाग्या। एतदिदानीं मम मन्दभागिन्या ऊषरक्षेत्रपतित इव बीजमुष्टिर्निष्फलमिहागमनं संव त्तम्। तत्किमत्र करिष्यामि?।)

शकारः— कादले खु एशे वुड्ढचेडे पवहणं णावलोएदि। भावे! आलेएहि पवहणं। (कातरः खल्वेष व द्धचेटः प्रवहणं नावलोकयति। भाव! आलोकय प्रवहणम्।)

विटः— को दोषः?। भवत्वेवं तावत्।

शकारः— कधं शिआला उड्डेंति, वाअशा वच्चेंति? ता जाव भावे अक्खीहिं भक्खीअदि, दंतेहिं पेक्खीअदि, ताव हग्गे पलाइश्शं। (कथं श्र गाला उड्डीयन्ते, वायसा व्रजन्ति?। तद्यावद्भावो क्षिभ्यां भक्ष्यते, दन्तैः प्रेक्ष्यते, तावदहं पलायिष्ये।)

विटः— (वसन्तसेनां द ष्ट्वा; सविषदमात्मागतम्) कथमये, म गी व्याघ्रमनुसरति?। भोः! कष्टम्;

शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पुलिनान्तरशायिनम्।
हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता।।१६।।

अर्थः— वसन्तसेना— (आश्चर्य से, अपने आप) क्या मेरी आँखों में खटकनेवाला राजा का साला ही है? तो अभागिन मैं (अपने प्राणों के बारे में) सन्देह में पड़ गयी हूँ। इस समय मुझ

मन्दभागिनी का यहाँ आना, ऊषर खेत में पड़ी हुई बीज की मुट्ठी के समान, व्यर्थ हो गया। तो यहाँ क्या करूँ?।

शकार— यह बूढ़ा चेट डरपोक होने से गाड़ी को नहीं देख रहा है। भाव! तुम गाड़ी को देखो।

विट— क्या बुरा है? अच्छा ऐसा ही हो।

शकार— क्या सियार उड़ रहे हैं? कौए भाग रहे हैं? तो जब तक भाव (विट) (राक्षसी के द्वारा) आँखों से खाया जाता है तथा दाँतों से देखा जाता है तब तक मैं भाग जा रहा हूँ।

अन्वयः— हंसी, शरच्चन्द्रप्रतीकाशम्, पुलिनान्तरशायिनम्, हंसम्, परित्यज्य, वायसम्, समुपस्थिता।।१६।।

शब्दार्थः— हंसी = हंस की स्त्री, शरच्चन्द्रप्रतीकाशम् = शरद ऋतु के चन्द्रमा के समान, पुलिनान्तरशायिनम् = नदी के किनारे वाली भूमि में सोये हुए, हंसम् = हंस को, परित्यज्य = छोड़ कर, वायसम् = कौवे के पास, समुपस्थिता = आ गयी।।

अर्थः—

विट— (वसन्तसेना को देखकर, दुःखपूर्वक अपने आप) अरे! कैसे हरिणी बाघ का पीछा कर रही है? अर्थात् वसन्तसेना दुष्ट शकार के पास कैसे आ रही है? अरे! खेद है-

हंसी, शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान स्वच्छ नदी के दूसरे तट पर सोये हुए अथवा नदी के किनारेवाली भूमि में सोये हुए हंस को छोड़कर कौवे के पास आ गयी अर्थात् हंस के समान चारुदत्त को छोड़कर यह वसन्तसेना कौवे के तुल्य इस शकार के पास आ गई।।१६।।

टीका— हंसी = मराली, शरदः = शरत्कालस्य चन्द्रः = चन्द्रमा तेन प्रतीकाशम् = तुल्यम्, पुलिनस्य = जलादचिरनिर्गतटस्य अन्तरे = मध्ये शेते यः तम्, अथवा अन्यत्पुलिनं पुलिनान्तरं तस्मिन् शायिनम्, नद्याः अपरतटे शयानमित्यर्थः; हंसम् = मरालम्; परित्यज्य = त्यक्त्वा; वायसम् = काकम्; समुपस्थिता = आगता।।१६।।

यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द कानाम है-पथ्यावक्त्र।

(जनान्तिकम्) वसन्तसेने! न युक्तमिदम्, नापि सद शमिदम्;

पूर्वं मानादवज्ञाय द्रव्यार्थे जननीवशात्।

वसन्तसेना— ण। (न।) (इति शिरश्चालयति।)

विटः— अशौण्डीर्यस्वभावेन वेशभावेन मन्यते।।१७।।

अन्वयः— पूर्वम्, मानात्, अवज्ञाय, (सम्प्रति), जननीवशात्, द्रव्यार्थे, (आगता, असि; अथवा) अशौण्डीर्यस्वभावेन, वेशभावेन (आगता, असि, इति) मन्यते।।१७।।

शब्दार्थः— पूर्वम् = पहले, (जब कि दस हजार सोने की मोहरों के साथ गाड़ी आयी थी), मानात् = घमण्ड के कारण, अवज्ञाय = दुत्कार कर, (सम्प्रति = अब), जननीवशात् = माता के कारण द्रव्यार्थे = धन के लिए, (आगता = आयी हुई, असि हो, अथवा = या) अशौण्डीर्यस्वभावेन = स्वाभिमान से रहित स्वभाववाले, वेशभावेन = वेश्यापन के कारण, (आगता = आयी हुई, असि = हो, इति = ऐसा) मन्यते = माना जा रहा है।।

अर्थः— (पास में) वसन्तसेने! यह उचित नहीं, यह योग्य भी नहीं।

पहले घमण्ड के कारण दुत्कार कर माता के भेजने से घन के लिए-(आई हो)

वसन्तसेना—नहीं। (ऐसा कह कर शिर हिलाती है।)

विट— (तब) स्वाभिमान से रहित स्वभाववाले वेश्यापन के कारण (आई हो) यह समझा जाय।।१७।।

टीका— पूर्वम् = पुरा; यदा दशसहस्रसुवर्णमुद्राणामलंकाराः प्रवहण च शकारेण प्रेषितं तदा इत्यर्थः; शकारमिति शेषः; अवज्ञाय = तिरस्कृत्य; सम्प्रति जननीवशात् = मातुः आज्ञावशात्; द्रव्यार्थे = प्रचुरधनलाभार्थम्; आगता असि। विटस्य इति कथनानन्तरं यदा वसन्तसेना अस्वीकृतिसूचकं 'न' शब्दमुच्चार्य शिरश्चालयति तदा पुनः विटेन कथ्यते-अथवा अशौण्डीर्यम् = अनौदार्यम् अथवा गर्वराहित्यं स्वभावः = प्रकृतिः यस्य ताद शेन; वेशभावेन = वेश्यात्वेन; हेतुना; आगता असीति, मन्यते = स्वीक्रियते, अस्माभिः इति शेषः।।१७।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।१७।।

ननूक्तमेव मया भवतीं प्रति-'सममुपचर भद्रे! सुप्रियं चाप्रियं च।'

वसन्तसेना— पवहणविपज्जासेण आगदा। सरणागदम्हि। (प्रवहणविपर्यासेनागता। शरणागतास्मि।)

विटः— न भेतव्यं न भेतव्यम् भवतु; एनं वंचयामि। (शकारमुपगम्य।) काणेलीमातः! सत्यं राक्षस्येवात्र प्रतिवसति।

शकारः— भावे भावे! जइ लक्खशी पडिवशदि, ता कीश ण तुमं मूशेदि? अध चोले, ता किं तुमं ण भक्खिदे?। (भाव भाव! यदि राक्षसी प्रतिवसति; तत्कथं न त्वां मुष्णाति?। अथ चौरः, तदा किं त्वं न भक्षितः?।)

विटः— किमनेन निरूपितेन?। यदि पुनरुद्यानपरम्परया पद्भ्यामेव नगरीमुज्जयिनीं प्रविशावः, तदा को दोषः स्यात्?।

शकारः— एवं किदे किं भोदि?। (एवं कृते किं भवति?।)

विटः— एवं कृते व्यायामः सेवितो धुर्याणां च परिश्रमः परिहृतो भवति।

शकारः— एवं भोदु। थावलआ चेडा! णेह पवहणं। अधवा चिश्ट। चिश्ट; देवदाणं बम्हणाणं च अग्गदो चलणेण गच्छामि। णहि णहि, पवहाणं अहिलुहिअ गच्छामि, जेण दूलदो मं पेक्खिअ भणिश्शंति-'एशे शे लश्टिअशाले भश्टालके गच्छदि'। (एवं भवतु। स्थावरक चेट! नय प्रवहणम्। अथवा तिष्ठ तिष्ठ; देवतानां ब्राह्मणानां चाग्रतश्चरणेन गच्छामि। नहि नहि, प्रवहणमधिरुह्य गच्छामि, येन दूरतो मां प्रेक्ष्य भणिष्यन्ति-'एष स राष्ट्रियश्यालो भट्टारको गच्छति'।)

विटः— (स्वगतम्) दुष्करं विषमौषधीकर्तुम्। भवतु। एवं तावत्। (प्रकाशम्) काणेलीमातः! एषा वसन्तसेना भवन्तमभिसारयितुमागता।

वसन्तसेना—संतं पावं संतं पावं। (शान्तं पापम्, शान्तं पापम्।)

शकारः— (सहर्षम्) भावे भावे, मं पबलपुलिशं मणुश्शं वाशुदेवकं। (भाव भाव! मां प्रवरपुरुषं मनुष्यं वासुदेवकम्।)

विटः— अथ किम्।

शकारः— तेण हि अपुव्वा शिली शमाशदिदा। तश्शिं काले मए लोशाविदा, शंपदं पादेशुं पडिअ पशादेमि। (तेन ह्यपूर्वा श्रीः समासादिता। तस्मिन्काले मया रोषिता, सांप्रतं पादयोः पतित्वा प्रसादयामि।)

विटः— **साध्वभिहितम्।**

शकारः— एशे पादेशुं पडेमि। (इति वसन्तसेनामुपस त्य) अत्तिके, अम्बिके? शुणु मम विण्णत्तिं।

एशे पडामि चलणेशु विशालणेत्ते!
हश्तंजलिं दशणहे तव शुद्धदंति!।
जं तं मए अवकिदं मदणातुलेण
तं खम्मिदाशि वलगत्ति! तव म्हि दाशे।।१८।।

(एष पादयोः पतामि। मातः, अम्बिके! श्र णु मम विज्ञप्तिम्।
एष पतामि चरणयोर्विशालनेत्रे! हस्ता जलिं दशनखे तव शुद्धदन्ति!।
यत्तव मयापकृतं मदनातुरेण तत्क्षामितासि वरगात्रि! तवास्मि दासः।)

अर्थः— किन्तु मैंने तो पहले ही आपसे कह दिया था—'भद्रे! प्रिय और अप्रिय सबके साथ एक जैसा बर्ताव करो।'

वसन्तसेना— गाड़ी के बदल जाने से आ गयी। शरणागत हूँ।

विट— डरो मत, डरो मत। अच्छा, इस शकार को बहकाता हूँ। (शकार के पास जाकर) पुंश्चली के पुत्र! सचमुच राक्षसी ही इस गाड़ी में रहती है।

शकार— भाव! भाव! यदि राक्षसी है तो क्यों नहीं तुमको लूट लिया और यदि चोर है तो तुम्हें क्यों नहीं खा लिया!

विट— इस विचार से क्या लाभ! यदि बागों ही बागों से होकर पैदल ही उज्जयिनी नगरी में प्रवेश करें तो क्या दोष है!

शकार— ऐसा करने से क्या होगा!

विट— ऐसा करने से व्यायाम हो जायेगा और बैलों का परिश्रम भी बच जायेगा।

शकार— ऐसा ही हो। स्थावरक चेट! गाड़ी लाओ। अथवा रुको, रुको। देवताओं और ब्राह्मणों के सामने पैदल ही चलता हूँ। नहीं, नहीं, गाड़ी पर चढ़कर चलता हूँ जिससे लोग मुझे दूर से ही देखकर कहेंगे कि 'यह वह हमारा स्वामी राजा का साला जा रहा है।'

विट— (अपने आप) विष को दवा बनाना कठिन है। अच्छा। तो इस प्रकार। (प्रकट रूप में) पुंश्चली के पुत्र! यह वसन्तसेना आप से अभिसार करने आयी है अर्थात् आपके साथ रमण करने के लिये छिप कर आयी है।

वसन्तसेना— पाप शान्त हो, पाप शान्त हो।

शकार— (प्रसन्नता के साथ) भाव, भाव! मुझ श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य वासुदेव से?

विट— और क्या?

शकार— तब तो अपूर्व लक्ष्मी हाथ लग गयी। उस समय मैंने उन्हें नाराज कर दिया था, अब पैरों पर गिर कर मनाऊँगा।

विट— ठीक कहा।

अन्वयः— हे विशालनेत्रे! एषः, (अहम्), चरणयोः, पतामि; हे शुद्धदन्ति! तव, (चरणयोः), दशनखे, हस्ता जलिम्, (करोमि); हे वरगात्रि! मदनातुरेण, मया, यत्, तव, अपकृतम्, तत्, क्षामिता, असि; (अहम्), तव, दासः, अस्मि।।१८।।

शब्दार्थः— हे विशालनेत्रे! = हे बड़ी बड़ी आँखों वाली! एषः = यह (अहम् = मैं शकार), चरणयोः = पैरों पर, पतामि = गिरता हूँ। हे शुद्धदन्ति! = हे सुन्दर दाँतों वाली! तव = तुम्हारे (चरणयोः = पैरों के) दशनखे = दश नखों में, हस्ता जलिम् = हाथों की अंजलि को, (करोमि = करता हूँ, रखता हूँ)। हे वरगात्रि! = हे सलोने शरीर वाली!, मदनातुरेण = कामदेव से पीड़ित, मया = मेरे द्वारा, यत् = जो, तव = तुम्हारा, अपकृतम् = बुरा किया गया है, अपकार किया गया है, तत् = उसको, क्षामिता = क्षमा करायी गयी, असि = हो। (अहम् = मैं), तव = तुम्हारा, दासः = दास, अस्मि = हूँ।।

अर्थः—

शकारः— यह मैं तुम्हारे पैरों पर गिरता हूँ। (ऐसा कह कर, वसन्तसेना के पास जाकर) माता भवानी! मेरी प्रार्थना सुनो।

हे बड़ी बड़ी आँखोंवाली! यह मैं पैरों पर गिरता हूँ। हे सुन्दर दाँतों वाली! तुम्हारे पैरों के दश नखों में हाथों की अ जलि रखता हूँ। हे सलोने शरीर वाली! कामदेव से पीडित मैने तुम्हारा जो बुरा किया है, उसको तुमसे क्षमा कराता हूँ अर्थात् माफ करने के लिये विनती करता हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ।।१८।।

टीका— विशाले = दीर्घे नेत्रे = नयने = यस्याः सा विशालनेत्रा तत्सम्बुद्धौ; एषः = अयम्; (अहम् = शकारः), चरणयोः = पादयोः; तवेति शेषः; पतामि = पतितः भवामि;। हे शुद्धदन्ति! शुद्धाः = विमलाः दन्ताः = रदाः यस्याः सा तत्सम्बुद्धो हे शुद्धदन्ति = हे शुभ्रदशने! तव = भवत्याः; चरणयोः, दशनखे = दशानां नखानां समाहारः दशनखं तस्मिन् दशनखे = दशनखरे; हस्तयोः = करयोः अ जलिम् = सम्पुटम्; करोमीति। वरम् = सुकोमलम् गात्रम् = शरीरम् यस्यास्तत्सम्बुद्धो हे वरगात्रि! = हे सुकोमलांगि! मदनेन = कामेन आतुरः = पीडितःतेन, कामपीडितेन; मया = शकारेण इत्यर्थः; यत् तव = भवत्याः; अपकृतम् = अप्रियं कृतम्; तत् = अप्रियकर्तव्यम्; क्षामिता = मर्षिता; असि। अहं तव = वसन्तसेनायाः; दासः = सेवकः, अस्मि = भवामि।।१८।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।१८।।

वसन्तसेना— (सक्रोधम्) अवेहि, अणज्जं मंतेसि। (अपेहि, अनार्यं मन्त्रयसि।) (इति पादेन ताडयति)

शकारः— (सक्रोधम्)

जे चुंबिदे अंबिकमादुकेहिं गदे ण देवाण वि जे पणामं
शे पाडिदे पादलेण मुंडे वणे शिआलेण जधा मुदंगे।।१६।।

यच्चुम्बितमम्बिकामात कामिर्गतं न देवानामपि यत्प्रणामम्।
तत्पातितं पादतलेन मुण्डं वने श गालेन यथा म तांगम्।।

अर्थः—

वसन्तसेना—(क्रोध के साथ) दूर हटो, अनुचित बात बोल रहे हो। (ऐसा कह कर पैर से मारती है)।।

अन्वयः— यत्, अम्बिकामात काभिः, चुम्बितम्, यत्, देवानाम्, अपि, प्रणामम्, न, गतम्, तत्, मुण्डम्, (त्वया), पादतलेन, (तथैव), पातितम्, यथा, वने, श्र गालेन, म तांगम्।।१६।।

शब्दार्थः— यत् = जो, अम्बिकामात काभिः = माताओं के द्वारा, चुम्बितम् = चूमा गया, यत् = जो, देवानाम् = देवताओं के, अपि = भी, प्रणामम् = प्रणाम को, न = नहीं, गतम् = गया,

प्राप्त हुआ, तत् = वह, मुण्डम् = मस्तक, (त्वया = तुम्हारे द्वारा), पादतलेन = पैर के तलवे से, (तथैव = उसी प्रकार,) पातितम् = गिरा दिया गया, ठुकरा दिया गया, यथा = जैसे, वने = वन में, श्र गालेन = सियार के द्वारा, म तांगम् = मरा शरीर।।

अर्थः—

शकार— (क्रोध के साथ)

जिसे मेरी माता (अम्बिका) ने चूमा है, जो देवों के सामने प्रणाम करने के लिये भी नहीं झुका, उसी मेरे मस्तक को तूने पैर के तलवे से उसी प्रकार गिरा दिया जैसे वन में सियार के द्वारा मरा शरीर (कुचला जाता है)।।१६।।

टीका— यत् = मम मुण्डमित्यर्थः, अम्बिकामात काभिः = जननीभिः, चुम्बितम् = चुम्बनं कृतम्, वात्सल्येनेति शेषः। यत् = मुण्डम्, देवानाम् = सुराणाम्, अपि, प्रणामम् = प्रणतिम्, न गतम् = न प्राप्तम्, तत् मुण्डम् = शिरः, ममेति शेषः, त्वया पादतलेन = चरणतलेन; तथैव पार्तितम् = प्रक्षिप्तम्, यथा = येन प्रकारेण; वने = अरण्ये, श्र गालेन = जम्बुकेन, म तस्य = गतप्राणस्य अंगम् = शरीरम्।।१६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

अले थावलआ चेडा! कहिं तुए एशा शमाशादिदा?
अरे स्थावरक चेट! कुत्र त्वयैषा समासादिता?।

चेटः— **भश्टके! गामशअलेहिं लुद्धे लाअमग्गे। तदो चालुदत्तश्श लुक्खवाडिआए पवहणं थाविअ तहिं ओदलिअ जाव चक्कपलिवट्टिअं कलेमि, ताव एशा पवहणविपज्जाशेण इह आलूढे त्ति तक्केमि। (भट्टक! ग्रामशकटैः रुद्धो राजमार्गः। तदा चारुदत्तस्य व क्षवाटिकायां प्रवहणं स्थापयित्वा तत्रावतीयं यावच्चक्रपरिव र्त्ति करोमि, तावदेषा प्रवहणविपर्यासेनेहारूढेति तर्कयामि।)**

शकारः— **कधं पवहणविपज्जाशेण आगदा, ण मं अहिशालिदुं?। ता ओदल ओदल मम केलकादो पवहणादो। तुमं तं दलिद्दशत्थवाहपुत्तकं अहिशालेशि। मम केलकाइं गोणाइं वाहेशि। ता ओदल ओदल गब्भदाशि! ओदल ओदल। (कथं प्रवहणविपर्यासेनागता, न मामभिसारयितुम्? तदवतरावतर मदीयात्प्रवहणात्। त्वं तं दरिद्रसाथवाहपुत्रकमभिसरसि; मदीयौ गावौ वाहयसि। तदवतरावतर गर्भदासि! अवतरावतर।)**

वसन्तसेना—**तं अज्जचारुदत्तं अहिसारेसि त्ति जं सच्चं, अलंकिदम्हि इमिणा वअणेण। संपदं जं भोदु तं भोदु। (तमार्यचारुदत्तमभिसरसीति यत्सत्यम्, अलंकृता स्म्यमुना वचनेन। सांप्रतं यद्भवतु तद्भवतु।)**

शकारः—

एदेहि दे दशणहुप्पलमंडलेहिं
हत्थेहि चाडुशदताडणलंपडेहिं।
कट्टामि दे वलतणुं णिअजाणकादो
केशेशु बालिदइअं वि जहा जडाऊ।।२०।।

(एताभ्यां ते दशनखोत्पलमण्डलाभ्यां
हस्ताभ्यां चाटुशतताडनलम्पटाभ्याम्।

कर्षामि ते वरतनुं निजयानका-
त्केशेषु बालिदयितामिव यथा जटायुः।।)

अर्थः— अरे! स्थावरक चेट! तुझे यह कहाँ मिल गयी?

चेट— स्वामी! देहाती गाड़ियों से सड़क भर गयी थी। तब चारुदत्त की व क्ष वाटिका के सामने गाड़ी खड़ी करके, वहाँ उतर कर जैसे ही पहिये में सहारा लगाया वैसी ही यह गाड़ी के बदलने से इस में चढ़ गयी-ऐसा मेरा अनुमान है।

शकार— क्या गाड़ी की अदला-बदली के कारण आ गयी है, मुझसे अभिसार करने के लिये नहीं? तो उतर मेरी गाड़ी से। तूँ सार्थवाह के पुत्र उस दरिद्र चारुदत्त के प्रति अभिसरण करती हो और मेरे बैलों को गाड़ी में जोतती हो। तो उतर, उतर गर्भदासि! उतर, उतर।

वसन्तसेना—'उस आर्य चारुदत्त के प्रति अभिसरण करती हो' यह जा कहा वह सच है। इस वचन से मैं अलंकृत हो गयी हूँ। अब जो हो, सो हो।

अन्वयः— दशखनोत्पलमण्डलाभ्याम्, चाटुशतताडनलम्पटाभ्याम्, एताभ्याम्, हस्ताभ्याम्, केशेषु, (ग हीत्वा), ते, वरतनुम्, निजयानकात्, (तथैव), कर्षामि, यथा, जटायुः, बालिदयिताम्, (अकर्षत्)।।२०।।

शब्दार्थः— दशनखोत्पलमण्डलाभ्याम् = दश नख रूपी कमल-समूह से युक्त, चाटुशतताडनलम्पटाभ्याम् = मीठे वचनों के समान पीटने के लालची, एताभ्याम् = इन दोनों, हस्ताभ्याम् = हाथों से, केशेषु = बालों में, (ग हीत्वा = पकड़कर), ते = तुम्हारे, वरतनुम् = सुन्दर शरीर को, निजयानकात् = अपनी गाड़ी से, (तथैव = उसी प्रकार), कर्षामि = खींचता हूँ, यथा = जैसे, जटायुः = जटायु ने, बालिदयिताम् = बालि की स्त्री को, (अकर्षत् = खींचा था)।।

अर्थः—

शकारः— दश नख रूपी कमल समूह से युक्त एवं मीठे वचनों के समान पीटने के लालची इन (अपने) हाथों से केश पकड़ कर तुम्हारे सुन्दर शरीर को अपनी गाड़ी से उसी प्रकार खींचता हूँ, जिस प्रकार जटायु ने बालि की स्त्री तारा को (खींचा था)।।२०।।

टीका— दश = दशसंख्याकाः नखाः = नखराः एव उत्पलानाम् = कमलानां मण्डलम् = समूहः ययोः ताभ्याम्; चाटुशतानि = प्रियवचनशतानि इव ताडनानि = प्रहाराः तेषु लम्पटाभ्याम् = लोलुपाभ्याम्, तत्पराभ्यामित्यर्थः; एताभ्याम् = तव पुरः वर्तमानाभ्याम्; हस्ताभ्याम् = कराभ्याम्; केशेषु = शिरोरुहेषु ग हीत्वा इति शेषः; ते = तव; वरतनुम् = श्रेष्ठशरीरम्, सुकोमलं शरीरमित्यर्थः; निजात् = स्वकीयात् यानकात् = प्रवहणात्; तथैव; कर्षामि = आकृष्य पातयामि, यथा = येन प्रकारेण; जटायुः = ग द्ध्रराजः, अनेन नाम्ना प्रसिद्धः पक्षिविशेषः; बालिदयिताम् = बालिप्रियां ताराम्; अकर्षत् इति।।२०।।

इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।२०।।

विटः—

अग्राह्या मूर्धजेष्वेताः स्त्रियो गुणसमन्विताः।
न लताः पल्लवच्छेदमहन्त्युपवनोद्भवाः।।२१।।

अन्वयः— गुणसमन्विताः, एताः, स्त्रियः, मूर्धजेषु, अग्राह्याः; उपवनोद्भवाः, लताः, पल्लवच्छेदम्, न अर्हन्ति।।२१।।

शब्दार्थः— गुणसमन्विताः = गुणों से युक्त, एताः = ये, स्त्रियः = स्त्रियाँ, मूर्धजेषु = केशों में, अग्राह्याः = पकड़ने के योग्य नहीं हैं। उपवनोद्भवाः = फुलवाड़ी में पैदा होने वाली, लताः = लताएँ, पल्लवच्छेदम् = पत्ता तोड़ने के, न = नहीं, अर्हन्ति = योग्य होतीं।।

अर्थः—

विट— गुणों से युक्त इन स्त्रियों के केश नहीं पकड़ने चाहिए। व क्षवाटिका में पैदा होने वाली लताएँ पत्ता तोड़ने के योग्य नहीं होतीं अर्थात् उनका पत्ता तोड़ना ठीक नहीं होता।।२१।।

टीका— गुणैः = सौन्दर्यादिभिः कलादिभिश्च समन्विताः = युक्ताः; एताः = वसन्तसेनातुल्याः; स्त्रियः = कामिन्यः; मूर्धजेषु = केशेषु; केशावच्छेदेनेत्यर्थः; अग्राह्याः = ग्रहीतुमयोग्याः। एताः सम्मानयोग्याः भवन्ति, न तु ताडनार्हाः इति भावः। तथा हि-उपवनम् = उद्यानम् उद्भवः = उत्पत्तिस्थलं यासां ताः उपवनोद्भवाः = उद्याने उत्पन्नाः सयत्नं लालिताश्चेत्यभिप्रायः; लताः = वल्लयः, पल्लवानाम् = किसलयानाम् छेदम् = भंगम्, छेदनम्; न अर्हन्ति = किसलयच्छेदयोग्याः न भवन्ति।।२१।।

इस श्लोक में द ष्टान्त अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२१।।

तदुत्तिष्ठ त्वं। अहमेनामवतारयामि। वसन्तसेने! अवतीर्य्यताम्।

(वसन्तसेना वतीर्य्य एकान्ते स्थिता।)

शकारः— (स्वगतम्।) जे शे मम वअणावमाणेण तदा लोशग्गी शंधुक्खिदे, अज्ज एदाए पादप्पहालेण अणेण पज्जलिदे, तं शम्पदं मालेमि णं। भोदु एब्बं दाव। (प्रकाशम्।) भावे भावे।

जदिच्छशे लम्बदशा-विशालं
पावालअं शुत्तशदेहिं जुत्तम्।
मंशं च खादुं, तह तुट्टिं कादुं
चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहूत्ति।।२२।।

यः स मम वचनावमानेन तदा रोषाग्निः सन्धुक्षितः, अद्य एतस्याः पादप्रहारेणानेन प्रज्वलितः, तत् साम्प्रतं मारयाम्येनाम्। भवतु एवं तावत्।

यदीच्छसि लम्बदशाविशालं
प्रावारकं सूत्रशतैर्हि युक्तम्।
मांसं च खादितुं तथा तुष्टिं
कर्तुं चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू इति।।

अर्थः— इसलिये तुम उठो। मैं इसको उतारता हूँ। वसन्तसेने! उतर जाइये।

(वसन्तसेना उतर कर एक किनारे खड़ी हो जाती है)

शकारः— (अपने आप) जो क्रोध रूपी आग पहले इसके वचन के तिरस्कार से लगी थी, वह आज इस के पैर के इस प्रहार से भभक करके जल उठी है। तो अब इसे मारूँगा। अच्छा, इस तरह! भाव! भाव!!

अन्वयः— यदि, सूत्रशतैः, युक्तम्, लम्बदशाविशालम्; प्रावारकम्, तथा, चुहू, चुहू चुक्कु चुहू चुहू' इति, (ध्वनिम्, कुर्वन), मांसम्, खादितुम्, तुष्टिम्, च, कर्तुम् इच्छसि।।२२।।

शब्दार्थः— यदि = यदि, सूत्रशतैः = सैकड़ों सूतों से, युक्तम् = युक्त (अर्थात् बने हुये),

लम्बदशाविशालम् = लम्बी किनारी से विशाल, प्रावारकम् = दुपट्टा को, तथा = और, 'चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू' इति = ऐसी (ध्वनिम् = आवाज को, कुर्वन् = करते हुये), मांसम् = मांस को, खादितुम् = खाने के लिये, तुष्टिम् = त प्ति को, च = भी, कर्तुम् = करने के लिये, इच्छसि = चाहते हो।।

अर्थः— यदि तुम सैकड़ों सूतों से बने हुए, लम्बी किनारी वाले, विशाल दुपट्टे को मुझसे (लेना) चाहते हो और चुहू-चुहू, चुक्कु, चुहू-चुहू-इस प्रकार (की आवाज के साथ चूसते हुए) मांस खाना और त प्ति चाहते हो।।२२।।

टीका— यदि = चेत्, सूत्राणाम् = तन्तूनाम् शतैः = समूहैः इत्यर्थः, वा सूत्राणाम् = विविधरंगरजितानां सूत्राणाम्, शतैः = समूहैः, युक्तम् = समन्वितम्, लम्बाभिः = दीर्घाभिः दशाभिः = वस्त्रान्तैः विशालम् = विस्त तम्, प्रावारकम् = उत्तरीयम्। तथा 'चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू' इति = इत्थम्, ध्वनिं कुर्वन् मांसम् = पिशितम्, खादितुम्-भोक्तुम्, तुष्टिम् = त प्तिम्, च = अपि, कर्तुम् = विधातुम्, इच्छसि = वा छसि।।२२।।

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

विटः— ततः किम्?।

शकारः— मम पिअं कलेहि। (मम प्रियं कुरु।)

विटः— बाढं करोमि, वर्जयित्वा त्वकार्यम्।

शकारः— भावे! अकज्जाह गन्धे वि णत्थि। लक्खशी कावि णत्थि। (भावे! अकार्यस्य गन्धो पि नास्ति। राक्षसी कापि नास्ति।)

विटः— उच्यतां तर्हि।

शकारः— मालेहि वशंतशेणिअं। (मारय वसन्तसेनां।)

विटः— (कर्णौ पिधाय)—

बालां स्त्रियं च नगरस्य विभूषणं च
वेश्यामवेशसद शप्रणयोपचाराम्।
एनामनागसमहं यदि घातयामि
केनोडुपेन परलोकनदीं तरिष्ये?।।२३।।

अर्थः—

विट— तो क्या?

शकार— मेरा प्रिय करो।

विट— हाँ, करूँगा, किन्तु अनुचित काम को छोड़कर।

शकार— भाव! अनुचित काम की गन्ध भी नहीं है। कोई राक्षसी नहीं है।

विट— तो कहिए।

शकार— मारो वसन्तसेना को।

अन्वयः— यदि, अहम्, नगरस्य, विभूषणम्, अवेशसद शप्रणयोपचाराम्, वेश्याम्, बालाम्, अनागसम्, एनाम्, स्त्रियम्, घातयामि, (तर्हि), केन, उड्पेन, परलोकनदीम्, तरिष्ये?।।२३।।

शब्दार्थः— यदि = यदि, अहम् = मैं, नगरस्य = नगर की, विभूषणम् = ललामभूत;

अवेशसद शप्रणयोपचाराम् = वेश्याओं के अयोग्य (अर्थात् सच्चा) प्रेम-व्यवहार करने वाली, वेश्याम् = वेश्या, बालाम् = तरुणी, अनागसम् = निरपराध, एताम् = इस, स्त्रियम् = अबला को, घातयामि = मारता हूँ, (तर्हि = तो), केन = किस, उडुपेन = नौका से, परलोकनदीम् = परलोक की नदी (वैतरणी) को, तरिष्ये = पार करूँगा?।।

अर्थः—

विट— (कानों को ढँककर)

यदि मैं उज्जैन नगर की ललाम भूत, वेश्याओं के अयोग्य सच्चा प्रेम व्यवहार करने वाली अर्थात् कुलीन स्त्री की भाँति प्रेम व्यवहार करने वाली वेश्या, तरुणी, निरपराध, इस अबला को मारता हूँ तो परलोक की नदी (वैतरणी) को किस नौका से पार करूँगा?।।२३।।

टीका— यदि = चेत्; अहम् = विटः इत्यर्थः; नगरस्य = पुरः, उज्जयिन्याः इत्यर्थः; विभूषणम् = अलंकरणम्; अवेशसद शः = वेश्याजनविपरीतः, कुलनारीजनोचितः इत्यर्थः, प्रणयस्य = प्रीतेः उपचारः = व्यवहारः यस्याः ताम्; वेश्याम् = गणिकाम्, बालाम् = तरुणीम्; नास्ति = न विद्यते आगः = अपराधः यस्याः ताद शीम्, निरपराधामित्यर्थः; एनाम् = पुरो वर्तमानाम्; स्त्रियम् = अबलाम्; घातयामि = हन्मि; तर्हि केन उडुपेन = प्लवेन, परलोकनदीम् = वैतरणीम्; तरिष्ये = अतिक्रमिष्यामि?।।२३।।

इस श्लोक में परिकर अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।२३।।

शकारः— अहं ते भेडकं दइश्शं। अण्णं च, विवित्ते उज्जाणे इघ मालंतं को तुमं पेक्खिश्शदि?। (अहं त उडुपं दास्यामि। अन्यच्च विविक्ते उद्यान इह मारयन्तं कस्त्वां प्रेक्षिष्यते?।)

विटः—

पश्यन्ति मां दश दिशो वनदेवताश्च
चन्द्रश्च दीप्तकिरणश्च दिवाकरो यम्।
धर्मानिलौ च गगनं च तथान्तरात्मा
भूमिस्तथा सुकृतदुष्कृतसाक्षिभूताः।।२४।।

अर्थः—

शकार— मैं तुम्हें नौका दूंगा। और दूसरी बात यह है कि इस एकान्त बगीचे में इसे मारते हुए तुम्हें कौन देखेगा?

अन्वयः— सुकृतदुष्कृतसाक्षिभूताः, दश, दिशः, वनदेवताः, च, चन्द्रः, च, दीप्तकिरणः, अयम्, दिवाकरः, च धर्मानिलौ, च, गगनम्, च, तथा, अन्तरात्मा, तथा, भूमिः, माम्, पश्यन्ति।।२४।।

शब्दार्थः— सुकृतदुष्कृतसाक्षिभूताः = पाप-पुण्य की साक्षी, दश = दश, दिशः = दिशाएँ, वनदेवताः = वन की देवताएँ, चन्द्रः = चन्द्रमा, दीप्तकिरणः = चमकती हुई किरणों वाला, अयम् = यह, दिवाकरः = सूर्य, धर्मानिलौ = धर्म और हवा, गगनम् = आकाश, तथा = और, अन्तरात्मा = सब के भीतर वर्तमान ईश्वर, तथा = एवं, भूमिः = प थिवी, माम् = मुझको, पश्यन्ति = देख रहे हैं। श्लोक में बहुत से आये हुए 'च' संयोजन के लिये प्रयुक्त किये गये हैं।

अर्थः—

विट— पाप-पुण्य की साक्षी दशों दिशाएँ, वन की देवताएँ, चन्द्रमा और चमकती हुई किरणों

वाला यह सूर्य, धर्म और हवा, आकाश और अन्तरात्मा तथा प थिवी-(ये सब) मुझे देख रहे हैं।।२४।।

टीका— विविक्ते मारयन्तं कस्त्वां प्रेक्षिष्यते'? इति शकारकथनस्योत्तरं दातुं यथाशास्त्रं वदति विटः—सुकृतदुष्कृतयोः = पुण्यपापयोः साक्षिभूताः = साक्षाद्द्रष्टारः, लिंगविभक्तिविपरिणामेन विशेषणमेतत् सर्वैरेव कर्त पदैः अन्वेति, दश = दशसंख्याकाः, दिशः = काष्ठाः वनदेवताः = अरण्याधिष्ठात देव्यश्च, चन्द्रः = चन्द्रमा; च, अयं सूर्याभावे रात्रौ आकाशस्थः सन् सर्वकर्मसाक्षी भवति, दीप्ताः = पूर्णतया प्रकाशिताः किरणाः = अंशवः यस्य ताद शः, अयम् = मस्तकस्थितः इत्यर्थः, दिवाकरः = चण्डांशुश्च, धर्मश्च = सुकृतश्च अनिलश्च = वायुश्चेति धर्मानिलौः सुकृतवायू च, गगनम् = आकाश च, तथा = अन्तरात्मा = हृदि स्थितः ईश्वरः, तथा भूमिः = प थिवी च, माम् = विटम्, पश्यन्ति = अवलोकयन्ति।।२४।।

इस श्लोक में तुल्ययोगिता अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।२४।।

शकारः— तेण हि पडंतोवालिदं कदुअ मालेहि। (तेन हि पटान्तापवारितां कृत्वा मारय।)

विटः— मूर्ख! अपध्वस्तो सि।

शकारः— अघम्मभीलू एशे वुड्ढकोले। भोदु, थावलअं चेडं अणुणेमि। पुत्तका थावलका चेडा! शोवण्णखंडुआइं दइश्शं। (अधर्मभीरुरेष व द्धकोलः। भवतु, स्थावरकं चेटमनुनयामि। पुत्रक स्थावरक चेट! सुवर्णकटकानि दास्यामि।)

चेटः— जहं पि पहिलिश्शं। (अहमपि परिधास्यामि।)

शकारः— शोवण्णं दे पीढके कालइश्शं। (सौवर्णं ते पीठकं कारयिष्यामि।)

चेटः— अहं पि उवशिश्शं। (अहमप्युपवेक्ष्यामि।)

शकारः— शव्वं दे उच्छिश्टअं दइश्शं। (सर्वं त उच्छिष्टं दास्यामि।)

चेटः— अहं पि खाइश्शं। (अहमपि खादिष्यामि।)

शकारः— शव्वचेडाणं महत्तलकं कलइश्शं। (सर्वचेटानां महत्तरकं कारयिष्यामि।)

चेटः— भट्टके! हुविश्शं। (भट्टक! भविष्यामि।)

शकारः— ता मण्णेहि मम वअणं। (तन्मन्यस्व मम वचनम्।)

चेटः— भट्टके! शव्वं कलेमि वज्जिअ अकज्जं। (भट्टक! सर्वं करोमि वर्जयित्वा कार्यम्।)

शकारः— अकज्जाह गन्धे वि णत्थि। (अकार्यस्य गन्धो पि नास्ति।)

चेटः— भणादु भट्टके। (भणतु भट्टकः।)

शकारः— एणं वशंतशेणिअं मालेहि। (एनां वसन्तसेनां मारय।)

चेटः— पशीददु भट्टके। इअं मए अणज्जेण अज्जा पवहणपलिवत्तणेण आणीदा। (प्रसीदतु भट्टकः। इयं मयानार्येणार्या प्रवहणपरिवर्तनेनानीता।)

शकारः— अले चेडा! तवावि ण पहवामि। (अरे चेट! तवापि न प्रभवामि?)

चेटः— पहवदि भट्टके शलीलाह, ण चालित्ताह। ता पशीददु पशीददु भट्टके। भाआमि खु अहं। (प्रभवति भट्टकः शरीरस्य, न चारित्र्यस्य। तत्प्रसीदतु प्रसीदतु भट्टकः। बिभेमि खल्वहम्।)

शकारः— तुमं मम चेडे भविअ कश्श भाआशि?। (त्वं मम चेटो भूत्वा कस्माद्बिभेषि?।)

चेटः— **भट्टके! पललोअश्श। (भट्टक! परलोकात्।)**

शकारः— के शे पललोए?। (कः स परलोकः?।)

चेटः— **भट्टके! शुकिददुक्किदश्श पलिणामे। (भट्टक! सुकृतदुष्कृतस्य परिणामः)**

शकारः— केलिशे शुकिदश्श पलिणामे?। (कीद शः सुकृतस्य परिणामः?।)

चेटः— **जादिशे भट्टके बहुशुवण्णमंडिदे। (याद शो भट्टको बहुसुवर्णमण्डितः।)**

शकारः— दुक्किदश्श केलिशे?। (दुष्कृतस्य कीद शः?।)

चेटः— **जादिशे हग्गे पलपिंडभक्खके भूदे, ता अकज्जं ण कलइश्शं। (याद शो हं परपिण्डभक्षको भूतः, तदकार्यं न करिष्यामि।)**

शकारः— अले! ण मालिश्शशि?। (अरे! न मारयिष्यसि?)

(इति बहुविधं ताडयति)

चेटः— **पिट्ठयदु भट्टके, मालेदु भट्टके, अकज्जं ण कलइश्शं।**

जेण म्हि गब्भदाशे विणिम्मिदे भाअधेअदोशेहिं।
अहिअं च ण कीणिश्शं तेण अकज्जं पलिहलामि।।२५।।

(ताडयतु भट्ट कः, मारयतु भट्टकः, अकार्यं न करिष्यामि।)

येनास्मि गर्भदासो विनिर्मितो भागधेयदोषैः।
अधिकं च न क्रीणिष्यामि तेनाकार्यं परिहरामि।।)

अर्थः—

शकारः— तो कपड़े के आँचल से ढक कर मार दो।

विट— मूर्ख! पतित हो।

शकार— यह बूढ़ा सुअर अधर्म से डरता है। अच्छा, स्थावरक चेट को मनाता हूँ। बेटा स्थावरक चेट! सोने के कड़े दूँगा।

चेट— मैं भी पहन लूँगा।

शकार— तेरे लिये सोने की चौकी बनवा दूँगा।

चेट— मैं भी बैठूँगा।

शकार— तुझे सारी जूठन दूँगा।

चेट— मैं भी खा लूँगा।

शकार— सभी नौकरों का प्रधान बनवा दूँगा।

चेट— मालिक! बन जाऊँगा।

शकार— मालिक! अनुचित काम को छोड़ कर सब कुछ करूँगा।

शकार— अनुचित काम की गन्ध भी नहीं है।

चेट— तो बतलाइए, स्वामी।

शकार— इस वसन्तसेना को मारो।

चेट— स्वामी कृपा करें। गाड़ी के बदल जाने से यह आर्या वसन्तसेना मुझ विधर्मी के द्वारा यहाँ लायी गयीं।

शकार— अरे चेट! क्या तुझ पर भी मेरा अधिकार नहीं है?

चेट— स्वामी शरीर के मालिक हैं, चरित्र के नहीं। तो स्वामी प्रसन्न हों प्रसन्न हों। अवश्य ही मैं डरता हूँ।

शकार— तुम मेरे सेवक होकर किससे डरते हो?

चेट— स्वामी! परलोक से।

शकार— कौन है वह परलोक?

चेट— स्वामी पुण्य-पाप का फल।

शकार— पुण्य का फल कैसा होता है?

चेट— जैसे बहुत से सोने से आप सुशोभित हैं।

शकार— पाप का फल कैसा होता है?

चेट— जैसा मैं दूसरे का अन्न खाने वाला हूँ। इसलिये कुकर्म नहीं करूँगा।

शकार— अरे! नहीं मारेगा?

(ऐसा कह कर बहुत प्रकार से मारता है)

अन्वयः— येन, भागधेयदोषैः, गर्भदासः, विनिर्मितः, अस्मि; तेन, अधिकम्, न, क्रीणिष्यामि, अकार्यम्, च, परिहरामि।।२५।।

शब्दार्थः— येन = जिस कारण से (क्योंकि), भागधेयदोषैः = भाग्य के दोष के कारण, गर्भदासः = जन्म से ही दास, विनिर्मितः = बनाया गया, अस्मि = हूँ। तेन = इसलिए, अधिकम् = और अधिक को, न = नहीं, क्रीणिष्यामि = खरीदूँगा। अकार्यम् = अनुचित कार्य को, च = भी, परिहरामि = बचाऊँगा, न करूँगा।।

अर्थः—

चेट— मालिक! पीटें चाहे मारें, किन्तु अनुचित काम नहीं करूँगा।

क्योंकि पूर्व जन्म के भाग्य के दोष के कारण मैं जन्म से ही दास बनाया गया हूँ। इसलिये (अनुचित काम करके पाप) अधिक नहीं मोल लूँगा। मैं अनुचित काम न करूँगा।।२५।।

टीका— येन = येन कारणेन, यतः इत्यर्थः; भागधेयानाम् = भाग्यानाम् दोषैः = त्रुटिभिः; पापपरिणामैः इति यावत्; गर्भदासः = आ जन्मनः सेवकः; विनिर्मितः = विहितः; विधिना इति शेषः, अस्मि = भवामि। तेन = तस्मात् हेतो, अधिकम् = एतस्मादतिरिक्तम्; न क्रीणिष्यामि = न अर्जयिष्यामि, अतः अधिकं पापं न करिष्यामि इति भावः। अकार्यम् = अनुचितं कर्म, चापि, परिहरामि = त्यजामि, न करिष्यामीति।।२५।।

इस श्लोक के छन्द का नाम है-आर्या।।२५।।

वसन्तसेना— भाव! शरणागद ह्मि। (भाव! शरणागतास्मि।)

विटः— काणेलीमातः! मर्षय मर्षय। साधु स्थावरक! साधु।

चेटः— अप्येष नाम परिभूतदशो दरिद्रः

प्रेष्यः परत्र फलमिच्छति नास्य भर्त्ता।
तस्मादमी कथमिवाद्य न यान्ति नाशं
ये वर्धयन्त्यसद शं सद शं त्यजन्ति।।२६।।

अर्थः—

वसन्तसेना— भाव! मैं शरण में आयी हूँ।

विट— पुंश्चली के पुत्र। क्षमा करो, क्षमा करो। धन्य स्थावरक! धन्य!

अन्वयः— परिभूतदशः, दरिद्रः, प्रेष्यः, अपि, एषः, परत्र, फलम्, नाम, इच्छति, (किन्तु), अस्य, भर्त्ता, न, (इच्छति), तस्मात्, ये, असद शम्, वर्धयन्ति, सद शम्, त्यजन्ति, अमी, अद्य, कथमिव, नाशम्, न, यान्ति।।२६।।

शब्दार्थः— परिभूतदशः = दयनीय हालतवाला, दरिद्रः = निर्धन, प्रेष्यः = दास, अपि = भी, एषः = यह, परत्र = परलोक में, फलम् = फलको, नाम = कदाचित्; इच्छति = चाहता है। (किन्तु = परन्तु), अस्य = इसका (इस चेट का), भर्त्ता = स्वामी, न = नहीं, (इच्छति = चाहता है)। तस्मात् = तब, ये = जो लोग, असद शम् = अनुचित को, वर्धयन्ति = बढ़ाते हैं, सद शम् = उचित को, त्यजन्ति = छोड़ देते हैं; अमी = ये, अद्य = आज ही, कथमिव = किसलिये, नाशम् = नाश को, न यान्ति = नहीं जाते, नहीं प्राप्त होते।।

अर्थः— दयनीय हालत वाला यह दरिद्र दास स्थावरक परलोक के फल की इच्छा करता है, किन्तु इसका स्वामी (शकार) नहीं। तब जो (शकार जैसे) लोग अनुचित कामों की ढेर लगाते हैं और उचित काम को छोड़ देते हैं, वे आज ही विनाश को क्यों नहीं प्राप्त हो जाते?।।२६।।

टीका— परिभूता = तिरक ता दशा = अवस्था यस्य सः, विपन्नावस्थः इत्यर्थः; दरिद्रः = निर्धनः; प्रेष्यः = परिचारकः, एषः = पुरो वर्तमानः चेटः; परत्र = परलोके; फलम् = सत्परिणतिम्; नामेति सम्भावनायाम्; इच्छति = वा छति। किन्तु अस्य = चेटस्येत्यर्थः; भर्त्ता = प्रभुः; शकारः; न = परलोके फलं नेच्छति इत्यर्थः; तस्मात् = तस्मात् कारणात्; ये = शकारसद शाः जनाः; असद शम् = अकार्यम्; अयोग्यं जनमिति वा; वर्धयन्ति = स चितं कुर्वन्ति; उत्साहितं कुर्वन्ति वा; सद शम् = समीचीनं कर्म, योग्यं जनं वा; त्यजन्ति = परिहरन्ति; अमी = एते, असद शवर्धकाः सद शत्यागिनः शकारादयः इत्यर्थः; अद्य = सम्प्रत्येव; कथमिव = किमर्थमित्यर्थः; नाशम् = म त्युम्; न यान्ति = न गच्छन्ति?।

इस श्लोक में परिसंख्या एवं अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार और वसन्ततिलका छन्द है।।२६।।

अपि च,—

रन्ध्रानुसारी विषमः कृतान्तो
यदस्य दास्यं तव चेश्वरत्वम्।
श्रियं त्वदीयां यदयं न
भुङ्क्ते यदेतदाज्ञां न भवान्करोति।।२७।।

अन्वयः— कृतान्तः, रन्ध्रानुसारी, विषमः, (अस्ति), यत्, (तेन), अस्य, दास्यम्, तव, च, ईश्वरत्म्। (कृतम्)। यत्, अयम्, त्वदीयाम्, श्रियम्, न, भुङ्क्ते, यत्, भवान्, एतदाज्ञाम्, न, करोति।।२७।।

शब्दार्थः— कृतान्तः = दैव, रन्ध्रानुसारी = दोष देखने वाला, विपरीत (उलटा कार्य करने वाला), (अस्ति = है); यत् = क्योंकि, (तेन = उसके द्वारा), अस्य = इस चेट को, दास्यम् = दासपन, तव = तुम्हें, ईश्वरत्वम् = मालिकपन, (कृतम् = किया गया है), यत् = जो, अयम् = यह चेट, त्वदीयाम् = तुम्हारी, श्रियम् = धन-सम्पत्ति को, न = नहीं, भुङ्क्ते = खा रहा है, भोग रहा है, यत् = जो भगवान् = आप, एतदाज्ञाम् = इसकी आज्ञा को, न = नहीं, करोति = करते हैं।

अर्थः— और भी-

दैव दोष देखनेवाला एवं उलटा कार्य करने वाला है, क्योंकि उसने इस धार्मिक चेट को दासता तथा तुम अधर्मी शकार को प्रभुता दी है, एवं जो यह चेट तुम्हारी धन-सम्पत्ति का उपभोग नहीं करता है। और आप इसके आज्ञाकारी नौकर नहीं हैं अर्थात् तुम्हारी जगह चेट की और चेट की जगह तुमको न देकर विधाता ने उलटा काम किया है।।२७।।

टीका— कृतान्तः = दैवम्, रन्ध्रम् = छिद्रम्, दोषमित्यर्थः विपत्तिं वा, अनुसरति = अनुगच्छति इति रन्ध्रानुसारी = छिद्रान्वेषी, विषमः = विपरीतः, पक्षपातीत्यर्थः, कृतान्तस्य विषमत्वे कारणमाह-यत् = यतः तेन कृतान्तेनेति शेषः, अस्य = धर्मशीलस्य चेटस्य, दास्यम् = दासता, तव = पापिनः शकारस्य च, ईश्वरत्वम् = प्रभुत्वम्, कृतमिति शेषः, यत् = यस्मात्, अयम् = चेटः, त्वदीयाम् = शकारसम्बधिनीम्, श्रियम् = सम्पत्तिम्, सौख्यमिति भावः, न भुङ्क्ते = न सेवते, नानुभवतीत्यर्थः, यत् = यस्मात्, भवान् एतस्य = चेटस्य इत्यर्थः, आज्ञाम् = आदेशम्; न करोति = न विदधाति।।२७।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं उपजाति छन्द है।।२७।।

शकारः— **(स्वगतम्) अघम्मभिलुए वुड्ढखोडे। पललोअभिलू एशे गब्भदाशे। हग्गेलट्टिअशाले कश्श भाआमि वलपुलिशमणुश्शे?। (प्रकाशम्) अले गब्भदाशे चेडे! गच्छ तुमं। ओवलके पविशिअ वीशंते एअंते च्यिश्ट। (अधर्मभीरुको व द्धश्र गालः। परलोकभीरुरेष गर्भदासः। अहं राष्ट्रियश्यालः कस्माद्बिभेमि वरपुरुषमनुष्यः?। अरे गर्भदास चेट! गच्छ त्वम्। अपवारके प्रविश्य विश्रान्त एकान्ते तिष्ठ।)**

चेटः— **जं भट्टके आणवेदि। (वसन्तसेनामुपस त्य) अज्जए! एत्तिके मे विहवे। (यद्भट्टक आज्ञापयति। आर्ये! एतावन्मे विभवः।) (इति निष्क्रान्तः)**

शकारः— **(परिकरं बध्नन्) च्यिष्ट वशंतशेणिए! च्यिश्ट, मालइश्शं। (तिष्ठ वसन्तसेने! तिष्ठ, मारयिष्यामि।)**

चेटः— **आः, ममाग्रतो व्यापादयिष्यसि? (इति गले ग हणाति)**

शकारः— **(भूमौ पतति) भावे! भश्टकं मालेदि। (इति मोहं नाटयति, चेतनां लब्ध्वा)**

शव्वकालं मए पुश्टे मंशेण अ घिएण अ।
अज्ज कज्जे शमुप्पण्णे जादे मे वेलिए कधं।।२८।।

(भावो भट्टकं मारयति।)

सर्वकालं मया पुष्टो मांसेन च घ तेन च।
अद्य कार्ये समुत्पन्ने जातो मे वैरी कथम्?।।

अर्थः—

शकार— (अपने आप) यह बूढा सियार (विट) अधर्म से डरने वाला है। यह जन्म से ही दास (चेट) परलोक से डरता है। किन्तु राजा का साला, श्रेष्ठ पुरुष मनुष्य मैं किससे डरता हूँ? (प्रकट रूप में) अरे! जन्म का दास चेट! तू जा। घर में घुस कर विश्राम करते हुए एकान्त में ठहर।

चेट— जैसी स्वामी की आज्ञा। (वसन्त सेना के पास जाकर) श्रीमती जी! मेरा इतना ही वश था। (ऐसा कहकर निकल जाता है)।

शकार— (कमर बाँधते हुए) ठहर, वसन्तसेना! ठहर, मारूँगा।

विट— अरे! मेरे सामने मारोगे? (ऐसा कह कर गला पकड़ लेता है)।

शकार— (जमीन पर गिरता है) भाव! (अपने) मालिक को मारता है। (ऐसा कह कर मूर्च्छा का अभिनय करता है फिर होश में आकर)।

अन्वयः— सर्वकालम्, मया, मांसेन, च, घ तेन, च, पुष्टः, (त्वम्), अद्य, कार्ये, समुत्पन्ने, मे, वैरी, कथम्, जातः?।।२८।।

शब्दार्थः— सर्वकालम् = सदा, मया = मेरे द्वारा, मांसेन = मांस से, च = और घ तेन = घी से, च = भी, पुष्टः = मजबूत किये गये, (त्वम् = तुम), अद्य = आज कार्ये = कार्य, समुत्पन्ने = आ पड़ने पर, मे = मेरा, वैरी = शत्रु, कथम् = कैसे, जातः = हो गया।।

अर्थः— सदा मैंने तुझे मांस और घी से पुष्ट किया है। आज काम आ पड़ने पर तू मेरा शत्रु कैसे हो गया है?।।२८।।

टीका— सर्वकालम् = सर्वदा; सति कार्ये, असति कार्ये चेत्यर्थः; मया = प्रभुणा शकारेण; मांसेन = पिशितेन च, घ तेन = सर्पिषा च, पुष्टः = शक्तिसम्पन्नः कृतः, त्वमितिशेषः, अद्य = सम्प्रति, कार्ये = प्रयोजने, समुत्पन्ने = सम्प्राप्ते, मे = मम, स्वपोषकस्य इत्यर्थः, वैरी = विरोधी, कथम् = कस्मात्, जातः? = भूतः?।।२८।।

इस शलोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।२८।।

(विचिन्त्य) भोदु, लद्धे मए उवाए। दिण्णा बुड्ढखोडेण शिलश्चालणशण्णा। ता एदं पेशिअ वशंतशेणिअं मालइश्शं। एव्वं दाव। (प्रकाशम्) भावे! जं तुमं मए भणिदे, तं कघं हग्गे एव्वं वड्ढकेहिं मल्लकप्पमाणेहिं कुलेहिं जादे अकज्जं कलेमि? एव्वं एदं अंगीकलावेदुं मए भणिदं।

भवतु, लब्धो मयोपायः। दत्ता व द्धश्र गालेन शिरश्चालनसंज्ञा। तदेतं प्रेष्य वसन्तसेनां मारयिष्यामि। एवं तावत्। भाव! यत्त्वं मया भणितः, तत्कथमहमेवं ब हत्तरैः मल्लकप्रमाणैः कुलैर्जातो कार्यं करोमि?। एवमेतदंगीकारयितुं मया भणितम्।)

विटः— **किं कुलेनोपदिष्टेन, शीलमेवात्र कारणम्।**

भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः।।२६।।

अर्थः— (सोचकर) अच्छा, मुझे तरीका सूझ गया। बूढ़े सियार (विट) ने शिर हिलाकर वसन्तसेना को इशारा किया है। तो इसको यहाँ से भेजकर वसन्तसेना को मारूँगा। तो ऐसा हो। (प्रकट रूप में) भाव! जो मैंने तुमसे कहा है; तो भला प्याला जैसे बड़े कुल में पैदा हो कर मैं अनुचित काम कैसे करूँगा? यह सब कुछ तो मैंने इससे (वसन्तसेना से)

अपने को स्वीकार कराने के लिए कहा था (ताकि डर कर वसन्तसेना मुझे स्वीकार कर ले)।

अन्वयः— कुलेन, उपदिष्टेन, किम्? (यतः), अत्र, शीलम्, एव, कारणम्; सुक्षेत्रे, कण्टकिद्रुमाः, सुतराम्, स्फीताः, भवन्ति।।२६।।

शब्दार्थः— कुलेन = वंश, उपदिष्टेन = कहने से, वर्णन करने से, किम् = क्या? (यतः = क्योंकि), अत्र = इसमें (अनुचित काम करने में), शीलम् = स्वभाव, एव = ही, करणम् = कारण (है)। सुक्षेत्रे = अच्छे खेत में, कण्टकिद्रुमाः = काँटेदार पौधे, सुतराम् = बहुत अधिक, स्फीताः = सम द्ध, बढ़नेवाले; भवन्ति = होते हैं।

अर्थः—

विट— कुल का वर्णन से क्या लाभ? क्योंकि इसमें (अनुचित काम करने में) तो स्वभाव ही कारण है। अच्छे खेत में भी काँटेदार पौधे बहुत अधिक सम द्ध हो जाते हैं (इसी तरह अच्छे कुल में भी बुरे आचरण वाले व्यक्ति पैदा हो जाते हैं)।।२६।।

टीका— कुलेन = वंशेन; उपदिष्टेन = वर्णितेन, कथितेनेत्यर्थः; किम्? = किं फलम्? न किमपि इत्यर्थः। यतः अत्र = अकार्यकरणे; शीलम् = स्वभावः एव; कारणम् = हेतुः। तथाहि-सुक्षेत्रे = उर्वरायां भूमौ; कण्टकिनः = कण्टकयुक्ताः द्रुमाः = व क्षाः; सुतराम् = अत्यन्तम्; स्फीताः = व द्धिंगताः; भवन्ति = जायन्ते।।२६।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२६।।

शकारः— **भावे! एशा तव अग्गदो लज्जाअदि, ण मं अंगीकलेदि, ता गच्छ। थावलअचेटे मए पिश्टिदे गदे वि। एशे पलाइअ गच्छदि। ता तं गेण्हिअ आअच्छदु भावे। (भाव! एषा तवाग्रतो लज्जते न मामंगीकरोति। तद्गच्छ स्थावरकचेटो मया ताडितो गतो पि। एष प्रपलाय्य गच्छति। तस्मात्तं ग हीत्वागच्छतु भावः।)**

विटः— **(स्वगतम्)**

अस्मत्समक्षं हि वसन्तसेना
शौण्डीर्यभावान्न भजेत् मूर्खम्।
तस्मात्करोभ्येष विविक्तमस्य
विविक्तविश्रम्भरसो हि कामः।।३०।।

अर्थः—

शकार— भाव! यह तुम्हारे सामने ले जाती है, इसलिए मुझे स्वीकार नहीं कर रही है। अतः तुम जाओ। मेरे द्वारा पीटा गया स्थावरक चेट भी गया। यह भाग कर जा रहा है। इसलिए उसे पकड़ कर ले आइए।

अन्वयः— वसन्तसेना, शौण्डीर्यभावात्, अस्मत्समक्षम्, मूर्खम्, न, भजेत; तस्मात्, एषः, (अहम्), अस्याः, विविक्तम्, करोमि; हि, कामः, विविक्तविश्रम्भरसः, (भवति)।।३०।।

शब्दार्थः— वसन्तसेना = वसन्तसेना, शौण्डीर्यभावात् = गर्वीलेपन की आदत के कारण, अस्मत्समक्षम् = हमारे सामने, मूर्खम् = मूर्खको, न भजेत = न अंगीकार करे। तस्मात् = तो, एषः = यह, (अहम् = मैं), अस्याः = इस वसन्तसेना के लिये, विविक्तम् = एकान्त को, करोमि = कर देता हूँ। हि = क्योंकि, कामः = काम, विविक्तविश्रम्भरसः = निर्जन एवं विश्वस्त स्थान में आनन्ददायक, (भवति = होता है)।

अर्थः—

विट— (अपने आप) वसन्तसेना गर्वीलेपन की आदत के कारण हमारे सामने इस मूर्ख को शायद अंगीकार न करे। अतः मैं वसन्तसेना के लिए एकान्त कर देता हूँ, क्योंकि काम निर्जन एवं विश्वस्त स्थान में आनन्ददायक होता है।।३०।।

टीका— वसन्तसेना = पुरः स्थिता एषा चारुदत्तानुरागिणी वेश्या; शौण्डीर्वर्यावात् = अभिमानस्वभावयुक्तत्वादित्यर्थः; अस्मत्समक्षम् = ममाग्रे; मूर्खम् = विवेकहीनम्; शकारमिति शेषः; न भजेत् = नांगीकुर्यात्। तस्मात् = तस्मात् कारणात्, ममाग्रे अंगीकारास्वीकारात् इत्यर्थः, एषः = अत्र वर्तमानः अहमिति शेषः; अस्याः = वसन्तसेनायाः; विविक्तम् = विजनम्; करोमि = सम्पादयामि। हि = यतः; कामः = मदनः; सम्भोगः इत्यर्थः; विविक्ते = निर्जने विश्रम्भे = जनस चाराभावात् उत्पन्ने विश्वासे च रसः = आस्वादः, आनन्दः इति यावत्।।३०।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं उपजाति छन्द है।।३०।।

(प्रकाशम्) एवं भवतु, गच्छामि।

वसन्तसेना— (पटान्ते ग हीत्वा) णं भणामि शरणागदम्हि। (ननु भणामि शरणागतास्मि।)

विट— वसन्तसेने! न भेतव्यं न भेतव्यं; काणेलीमातः! वसन्तसेना तव हस्ते न्यासः।

शकारः— एव्वं; मम हश्ते एशा णाशेण च्यिश्टदु। (एवम्; मम हस्ते एषा न्यासेन तिष्ठतु।)

विटः— सत्यम्?

शकारः— शच्चं। (सत्यम्।)

विटः— (किंचिद्गत्वा) अथवा मयि गते न शंसो हन्यादेनाम्। तदपवारितशरीरः पश्यामि तावदस्य चिकीर्षितम् (इत्येकान्ते स्थितः)

शकारः— भोदु, मालइश्शं। अधवा कवडकावडिके एशे बम्हणे वुड्ढखोडे कदावि ओवालिदशलीले गडिअ शिआले भविअ हुलुभुलिं कलेदि। ता एदश्श वंचणाणिमित्तं एव्वं दाव कलइश्शं। (कुसुमावचयं कुर्वन्नात्मानं मण्डयति) वाशू वाशू, वशंतशेणिए! एहि। (भवतु मारयिष्यामि। अथवा कपटकापटिक एष ब्राह्मणो व द्धश्र गालः कदाचिदपवारितशरीरो गत्वा श्र गालो भूत्वा कपटं करोति। तदेतस्य व चनानिमित्तमेवं तावत्करिष्यामि। बाले बाले वसन्तसेने! एहि।)

विटः— अये, कामी, संव त्तः। हन्त, निर्व तो स्मि, गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः)

शकारः—

शुवण्णअं देमि पिअं वदेमि पडेमि शिशेण शवेश्टणेण।
तधा वि मं णेच्छशि शुद्धदंति! किं शेवअं कश्टमआ मणुश्शा।।३१।।

(सुवर्णकं ददामि प्रियं वदामि पतामि शीर्षेण सवेष्टनेन।
तथापि मां नेच्छसि शुद्धदन्ति! किं सेवकं कष्टमया मनुष्याः।।)

अर्थः— (प्रकट रूप में) ऐसा ही हो, जाता हूँ।

वसन्तसेना— (कपड़े का छोर पकड़ कर) मैं कहती हूँ न, कि मैं शरणागत हूँ।

विट— वसन्तसेना! डरो मत, डरो मत। पुंश्चलीपुत्र! वसन्तसेना तुम्हारे हाथ में धरोहर है।

शकार— ऐसा ही सही। मेरे हाथ में यह धरोहर रूप से रहे।

विट— सचमुच?

शकार— सचमुच।

विट— (कुछ दूर जाकर) अथवा मेरे चले जाने पर यह क्रूर इसको मार न डाले। अतः छिपकर इसके इरादे को देखता हूँ। (ऐसा कह कर एकान्त में खड़ा हो जाता है।

शकार— अच्छा, अब मारूँगा। अथवा धूर्तों में अगुआ यह ब्राह्मण बूढ़ा सियार कहीं अपने आप को छिपा कर (यहाँ से) जाकर सियार सा बन कर कपट करता हो?। तो इस (विट) को ठगने के लिए ऐसा करता हूँ। (फूल तोड़ता हुआ अपने आपको सजाता है) बालें! बाले! वसन्तसेने! आओ।

विट— अरे, यह तो कामी बन गया। अहा! निश्चिन्त हो गया। जाता हूँ। (ऐसा कह कर निकल जाता है)

अन्वयः— (अहम्, तुभ्यम्), सुवर्णकम्, ददामि; प्रियम्, वदामि, सवेष्टनेन, शीर्षेण, पतामि; तथापि, हे शुद्धदन्ति! माम्, सेवकम्, किम्, न, इच्छसि? (सत्यम्) मुनष्याः, कष्टमयाः, (भवन्ति)।।३१।।

शब्दार्थः— (अहम् = मैं, तुभ्यम् = तुमको), सुवर्णकम् = सोना, ददामि = देता हूँ, प्रियम् = मीठी बात, वदामि = कहता हूँ; सवेष्टनेन = पगड़ी सहित, शीर्षेण = शिर से, पतामि = गिरता हूँ, तथापि = तो भी, हे शुद्धदन्ति = हे चमकीले दाँतों वाली! माम् = मुझ, सेवकम् = सेवक को, किम् = क्यों, न = नहीं, इच्छसि = चाहती हो? (सत्यम् = सच है), मनुष्याः = मनुष्य, कष्टमयाः = निर्दय, (भवन्ति = होते हैं)।।

अर्थः—

शकार— मैं तुम्हें सोना देता हूँ। मीठी बात कहता हूँ। पगड़ी बधे हुए शिर से (तुम्हारे पैरों पर) गिरता हूँ; तो भी हे चमकीले दाँतों वाली! मुझ सेवक को क्यों नहीं चाहती हो? (सच है) मनुष्य बड़े निर्दय होते हैं।।३१

टीका— अहम्, तुभ्यम्, सुवर्णम् एव सुवर्णकम् = सुवर्णदशसाहस्रिकम्, अलंकारम्, इत्यर्थः; चतुर्थे अंके अस्य वर्णनमायाति; ददामि = समर्पयामि। प्रियम् = चाटुकारि वचनम्; प्रथमांके स्य निर्देशः; वदामि कथयामि। वेष्टनेन = उष्णीषेण सहितं सवेष्टनम् = सोष्णीषं तेन; शीर्षेण = शिरसा; पतामि = प्रणमामि, तव चरणयोरिति शेषः। तथापि एतेषां कार्याणां सम्पादने पिः हे शुद्धदन्ति = हे शुभ्रदशने! माम् = तवानुनयपरमित्यर्थः; सेवकम् = परिजनम्; किम् = कथम्; नेच्छसि = न वा छसि? अहं सर्वदा तवानुनये कृतयत्नः एवास्मि। पर च न ज्ञायते कस्मात्वं मां न कामयसे? संत्यम्, मनुष्याः = मानवाः; कष्टमयाः = क्लेशमयाः, निर्दयाः।।३१।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं उपजाति छन्द है।।३१।।

वसन्तसेना— को एत्थ संदेहो?। (अवनतमुखी 'खलचरित' इत्यादिश्लोकद्वयं पठति)।

खलचरित निकृष्ट! जातदोषः
कथमिह मां परिलोभयसे धनेन?।
सुचरितचरितं विशुद्धदेहं
न हि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति।।३२।।

अन्वयः— हे खलचरित! निकृष्ट! (त्वम्), जातदोषः, (सन्), इह, माम्, धनेन, कथम्, परिलोभयसे? मधुपाः, सुचरितचरितम्, विशुद्धदेहम्, कमलम्, हि, न, परित्यजन्ति।।३२।।

शब्दार्थः— हे खलचरित! = हे दुष्टचरित वाले! निकृष्ट! = अधम! (त्वम् = तुम), जातदोषः = दोषों की खान, (सन् = होकर), इह = यहाँ, माम् = मुझको, धनेन = धन से, कथम् = क्यों, परिलोभयसे? = लुभा रहे हो? मधुपाः = भौंरे, सुचरितचरितम् = सुन्दर स्वभाव वाले, विशुद्धदेहम् = निर्मल आकार वाले, कमलम् = कमल को, हि = अवश्य ही, न = नहीं, परित्यजन्ति = छोड़ते हैं।।३२।।

अर्थः—

वसन्तसेना— इसमें क्या सन्देह है? (नीचे की ओर मुँह किये हुए 'खलचरित' आदि दो श्लोक पढ़ती है)

हे दुष्ट चरितवाले अधम्! तुम अनेकों दोषों की खान होकर यहाँ मुझे धन से क्या लुभा रहे हो? भौंरे सुन्दर स्वभाव एवं निर्मल आकार वाले कमल को नहीं छोड़ते हैं। अर्थात् मैं तुम्हारे धन के लालच से कमल की तरह पवित्र एवं गुणी चारुदत्त को नहीं छोड़ सकती।।३२।।

टीका— खलस्य = दुष्टस्य चरितम् = आचरणम् इव चरितं यस्य असौ खलचरितः तत्सम्बुद्धो हे खलचरित! = हे दुष्टाचरण! निकृष्ट! = हे अधम! त्वं जातः = उत्पन्नः दोषः = पापम् यस्य ताद शः; अथवा जाते = जनने दोषः = कलंकः यस्य ताद शः, वर्णः संकरः इत्यर्थः; तथाभूतः सन्नपि; इह = अत्र; प्रणयविषये वा; माम् = विपुलवैभवसम्पन्नां वसन्तसेनामित्यर्थः; धनेन = तुच्छेन अर्थेन; कथम् = किमर्थम्, परिलोभयसे? = प्रलोभयसे? मधुपाः = भ्रमराः, अर्थतः भ्रमर्यश्चापि ग ह्यन्ते; सुचरितम् = सुन्दरम्, जनमनोहारकमित्यर्थः, चरितम् = स्वभावः, आह्लादकत्वादि यस्य तथोक्तम्; विशुद्धः = निर्मलः देहः = आकृतिः यस्य ताद शम् (पुरुषपक्षे तु भव्याकृतिम्), हि = निश्चिंतम्; न = नहि; परित्यजन्ति त्यक्त्वा अन्यत्र गच्छन्ति।।३२।।

इस श्लोक में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार एवं पुष्पिताग्रा छन्द है।।३२।।

यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रो पि।
शोभा हि पणस्त्रीणां सद शजनसमाश्रयः कामः।।३३।।

अन्वयः— कुलशीलवान्, पुरुषः, दरिद्रः, अपि, यत्नेन, सेवितव्यः; हि, सद शजनसमाश्रयः, कामः, पणस्त्रीणाम्, शोभा (अस्ति)।।३३।।

शब्दार्थः— कुलशीलवान् = सुन्दर कुल एवं स्वभाववाला, पुरुषः = पुरुष, दरिद्रः = निर्धन, अपि = भी, सेवितव्यः = सेवा किये जाने के योग्य, सेवनीय, होता है, हि = क्योंकि, सद शजनसमाश्रयः = अपने योग्य आदमी के साथ किया गया, कामः = प्रेम-व्यवहार, पणस्त्रीणाम् = वेश्याओं की, शोभा = शोभा, प्रशंसनीय बात, (अस्ति = है)।

अर्थः— यदि सुन्दर कुल एवं स्वभाववाला पुरुष निर्धन हो तो भी यत्नपूर्वक उसकी सेवा करनी चाहिये अर्थात् उसके साथ विहार करना चाहिये। क्योंकि अपने योग्य आदमी के साथ किया गया प्रेम व्यवहार वेश्याओं की शोभा है।।३३।।

टीका— कुलशीलवान् = संद्वशप्रशस्तस्वभावयुक्तः, वन्दनीयकुलवान् प्रशंसनीय स्वभावश्चेत्यर्थः; पुरुषः = नरः; दरिद्रः = अतिनिर्धनः अपि; यत्नेन = प्रयत्नेन, न तु हठात् झटिति वेति भावः; सेवितव्यः = सेवनार्हः; अस्ति। हि = यतः; सद शजनः = अनुरूपजनः समाश्रयः = अवलम्बनम्, विषय इति यावत् ताद शः; कामः = मदनः; कामक्रीडेति भावार्थः;

पणस्त्रीणाम्-पणेन = मूल्येन लभ्याः स्त्रियः = रमण्यः पणस्त्रियः तासाम्; शोभा = आभूषणम्; प्रशंसनीयं वस्तु इत्यर्थः।।३३।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं आर्या छन्द है।।३३।।

अवि अ; सहआरपादवं सेविअ ण पलासपादवं अंगीकरिस्सं। (को त्र संदेहः? अपि च, सहकारपादपं सेवित्वा न पलाशपादपमंगीकरिष्यामि।)

शकारः— दाशीए घीए! दलिद्दचालुदत्तके शहआलपादवे कडे, हग्गे उण पलाशे भणिदे, किंशुके वि ण कडे। एव्वं तुमं मे गालिं देंती अज्ज वि तं ज्जेव चालुदत्तकं शुभ लेशि? (दास्याः पुत्रि! दरिद्रचारुदत्तकः सहकारपादपः कृतः, अहं पुनः पलाशो भणितः, किंशुको पि न कृतः। एतं त्वं मह्यं गालीं ददत्यद्यापि तमेव चारुदत्तकं स्मरसि?।)

वसन्तसेना— हिअअगदो ज्जेव्व किंत्ति न सुमरीअदि?। (हृदयगत एव किमिति न स्मर्यते?।)

शकारः— अज्ज वि दे हिअअगदं तुमं च शमं ज्जेव मोडेमि। ता दलिद्दशत्थवाहअमणुश्शकामुकिणि! च्यिश्ट च्यिश्ट। (अद्यापि ते हृदयगतं त्वां च सममेव मोटयामि। तद्दरिद्रसार्थवाहक-मनुष्यकामुकिनि! तिष्ठ तिष्ठ।)

वसन्तसेना—भण भण, पुणो वि भण सलाहणिआइं एदाइं अक्खराइं। (भण भण, पुनरपि भण श्लाघनीयान्येतान्यक्षराणि।)

शकारः— पलित्ताअदु दाशीए पुत्ते दलिद्दचालुदत्तके तुमं। (परित्रायतां दास्याः पुत्रो दरिद्रचारुदत्तकस्त्वाम्।)

वसन्तसेना—परित्ताअदि जदि मं पेक्खदि। (परित्रायते यदि मां प्रेक्षते।)

शकारः-

किं शे शक्के वालिपुत्ते महिंदे लंभापुत्ते कालणेमी शुबंधू।
लुद्दे लाआ दोणपुत्ते जडाऊ चाणक्के वा धुंधुमाले तिशंकू।।३४।।
(किं स शक्रो बालिपुत्रो महेन्द्रो रम्भापुत्रः कालनेमिः सुबन्धुः।
रुद्रो राजा द्रोणपुत्रो जटायुश्चाणक्यो वा धुन्धुमारस्त्रिशंकुः।।)

अर्थः— और भी-

आम के पेड़ का सेवन करके पलाश के व क्ष को स्वीकार नहीं करूँगी अर्थात् आम के पेड़ के समान सुन्दर चारुदत्त को छोड़ कर पलाश के समान फिजूल तुम्हारे साथ प्रेम व्यवहार न करूँगी?

शकार— दासी की लड़की! दरिद्र चारुदत्त को आम का पेड़ बना दिया और मुझे पलाश कहा? पलाश का फूल भी नहीं बनाया। इस तरह मझे गाली देती हुई आज भी उसी चारुदत्त की याद कर रही हो?।

वसन्तसेना— वह हमारे हृदय में मौजूद ही हैं, फिर उनकी याद क्यों न की जाती?

शकार— आज ही तुझे और तेरे हृदय में स्थित उस चारुदत्त को एक साथ ही मरोड़ डालता हूँ। तो दरिद्र मनुष्य सार्थवाह को चाहने वाली! ठहर, ठहर।

वसन्तसेना— कहो, कहो, फिर भी कहो, ये अक्षर प्रशंसा करने लायक हैं।

शकार— (लो अब) दासी का बच्चा दरिद्र चारुदत्त तुम्हारी रक्षा कर ले।

वसन्तसेना— यदि मुझे देखते (तो अवश्य) बचाते।

अन्वयः— सः, किम्, शक्रः; बालिपुत्रः, महेन्द्रः? रम्भापुत्रः, कालनेमिः, सुबन्धुः? राजा, रुद्रः? द्रोणपुत्रः, जटायुः? चाणक्यः? धुन्धुमारः, वा, त्रिशंकुः, (अस्ति)?।।३४।।

शब्दार्थः— सः = वह, किम् = क्या, शक्रः = इन्द्र है? बालि का पुत्र महेन्द्र है? रम्भा का पुत्र कालनेमि, सुबन्धुः = सुबन्धु है? राजा = राजा, रुद्रः = रुद्र है? द्रोणपुत्रः = द्रोण का पुत्र, जटायुः = जटायु है? चाणक्यः = चाणक्य, धुन्धुमारः = धुन्धुमार, वा = अथवा, त्रिशंकुः = त्रिशंकु है?

अर्थः—

शकार— वह (चारुदत्त) क्या इन्द्र है? बलि का पुत्र महेन्द्र है? या रम्भा का पुत्र कालनेमि अथवा सुबन्धु है? वह राजा रुद्र है अथवा द्रोण का पुत्र जटायु है? अथवा चाणक्य है, धुन्धुमार अथवा त्रिशंकु है?।।३४।।

टीका— सः = चारुदत्तः इत्यर्थः; किं शक्रः = किम् इन्द्रः? बालिपुत्रः = बालिसुतः; महेन्द्रः = इन्द्रः? रम्भायाः = प्रसिद्धायाः वर्गस्याप्सरसः इत्यर्थः, पुत्रः = सुतः; कालनेमिः = रावणस्य मातुलः राक्षसविशेषः, सुबन्धुः = राजविशेषः, राक्षसविशेषः वा? राजा = शासकः; रुद्रः = शिवः? द्रोणस्य = द्रोणाचार्यस्य पुत्रः = तनयः; जटायुः = ग ध्रराजः? चाणक्यः = कौटिल्यः; धुन्धुमारः = असुरविशेषः; वा = अथवा; त्रिशंकुः = इक्ष्वाकुवंश्यः एकः राजा; अस्तीतिशेषः।।३४।।

इस श्लोक में शालिनी छन्द है। शालिनी छन्द का लक्षण- मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।।३४।।

अधवा, एदे वि दे ण लक्खंति।

चाणक्केण जधा शीदा मानिदा भालदे जुए।
एव्वं दे मोडइश्यामि जडाऊ विअ दोव्वदिं।।३५।।

अथवा, एते पि त्वां न रक्षन्ति।

चाणक्येन यथा सीता मारिता भारते युगे।
एतं त्वां मोटयिष्यामि जटायुरिव द्रोपदीम्।।३५।।

(इति ताडयितुमुद्यतः)

अन्वयः— यथा, भारते, युगे, चाणक्येन, सीता, मारिता; जटायुः, द्रौपदीम् इव, एवम्, त्वाम्, मोटयिष्यामि।।३४।।

शब्दार्थः— यथाः = जैसे, भारते = महाभारत, युगे = युग में, चाणक्येन = चाणक्य के द्वारा, सीता = जानकी, मारिता = मारी गयी थी। जटायुः = जटायु ने, द्रोपदीम् = द्रौपदी को, इव = जैसे, एवम् = उसी प्रकार, त्वाम्ः तुमको, मोटयिष्यामि = मारूँगा।।

अर्थः— अथवा ये भी तुम्हारी रक्षा नहीं करते।

जैसे भारत के युग में चाणक्य ने सीता को मारा था तथा जटायु ने द्रोपदी को (समाप्त कर दिया था) उसी प्रकार मैं तुझे मारूँगा।।३५।।

इस श्लोक में हतोपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।३५।।

वसन्तसेना— **हा अत्ते! कहिं सि?। हा अज्जचारुदत्त! एसो जणो असंपुण्णमणोरधो ज्जेव विवज्जदि, ता उद्धं अक्कंदइस्सं। अधवा वसंतसेणा उद्धं अक्कंददि त्ति लज्जणीअं खु एदं। णमो अज्जचारुदत्तस्स। (हा मातः! कुत्रासि?। हा आर्यचारुदत्त! एष जनो संपूर्णमनोरथ एव विपद्यते, तदूर्ध्वमाक्रन्दयिष्यामि। अथवा वसन्तसेनोर्ध्वमाक्रन्दतीति लज्जनीयं खल्वेतत्। नम आर्यचारुदत्ताय।)**

शकारः— अज्ज वि गब्भदाशी तश्श ज्जेव पावश्श णामं गेण्हदि?। (इति कण्ठे पीडयन्) शुमल गब्भदाशि! शुमल। (अद्यापि गर्भदासी तस्यैव पापस्य नाम गृह्णाति? स्मर गर्भदासि! स्मर।)

वसन्तसेना—णमो अज्जचारुदत्तस्स। (नम आर्यचारुत्ताय।)

शकारः— मल गब्भदाशि! मल। (म्रियतां गर्भदासि! म्रियताम्।) (नाट्येन कण्ठे निपीडयन्मारयति)

(वसन्तसेना मूर्च्छिता निश्चेष्टा पतति)

शकारः— (सहर्षम्)

एदं दोशकलंडिअं अविणअश्शावासभूदं खलं
लत्तं तश्श किलागदश्श लमणे कालागदं आअदं।
किं एशे शमुदाहलामि णिअअं बाहूण शूलत्तणं
णीशाशे वि मलेइ अंब शुमला शीदा जधा भालदे।।३६।।

(एतां दोषकरण्डिकामविनयस्यावासभूतां खलां
रक्तां तस्य किलागतस्य रमणे कालागतामागताम्।
किमेष समुदाहरामि निजकं बाह्वोः शूरत्वं
निःश्वासापि म्रियते म्बा सुम ता सीता यथा भारते।।

अर्थः—

वसन्तसेना—हाय माँ कहाँ हो? हाय आर्य चारुदत्त! यह जन वसन्तसेना बिना इच्छा पूरी हुए ही मर रहा है। तो जोर-जोर से रोते हुए चिल्लाऊँगी। अथवा वसन्तसेना जोर-जोर से रोती हुई चिल्ला रही है-यह लज्जा की बात है। आर्य चारुदत्त को नमस्कार है।

शकार— अभी अब भी यह गर्भदासी उसी पापी का नाम ले रही है? (ऐसा कह कर, गला दबाता हुआ) याद करो गर्भदासी याद करो।

वसन्तसेना— आर्य चारुदत्त को नमस्कार है।

शकार— मरो गर्भदासी! मरो। (अभिनय के साथ गले में दबाता हुआ मारता है)।

अन्वयः— दोषकरण्डिकाम्, अविनयस्य, आवासभूताम्, खलाम्, रक्ताम्, आगतस्य, तस्य, रमणे, आगताम्, किल, कालागताम्, एताम्, (हत्वा), एषः, (अहम्); निजकम्, बाह्वोः, शूरत्वम्, किम्, उदाहरामि? निःश्वासा, अपि, अम्बा, (तथैव), म्रियते, यथा, भारते, सीता, सुम ता।।३६।।

शब्दार्थः— दोषकरण्डिकाम् = दोषों की पिटारी, अविनयस्य = उद्दण्डता का, आवासभूताम् = निवासरूप, घर, खलाम् = दुष्ट, रक्ताम् = (चारुदत्त से) प्रेम करने वाली, आगतस्य = आये हुए, तस्य = उस (चारुदत्त) के, रमणे = रमण में, आगताम् = आयी हुई, किल = निश्चय ही, कालागताम् = म त्यु के द्वारा प्राप्त हुई, एताम् = इस (वसन्तसेना) को, (हत्वा

= मार कर), एषः = यह, (अहम् = मैं); निजकम् = अपने, भुजयोः = भुजाओं के, शूरत्वम् = पराक्रम को, किम् = क्या, उदाहरामि = वर्णन करूँ? निःश्वासा = साँस रहित, अपि = भी, अम्बा = माता (वसन्तसेना), (तथैव = उसी प्रकार), म्रियते = मर रही है, यथा = जैसे, भारते = भारत युग में सीता = जानकी, सुम ता = भली-भाँति मर गयी थी।।

(वसन्तसेना मूर्छित एवं निश्चेष्ट होकर गिर पड़ती है)

अर्थः—

शकार— (प्रसन्नता के साथ)

दोषों को पिटारी, उद्दण्डता का घर, दुष्ट, (चारुदत्त) से प्रेम करने वाली, यहाँ आये हुए उस (चारुदत्त) से रमण के लिए निश्चय ही म त्यु के द्वारा लायी गयी इस वसन्तसेना को (मार कर) यह मैं भुजाओं के अपने पराक्रम का क्या वर्णन करूँ? श्वास के न रहने पर भी यह माता वसन्तसेना उसी प्रकार मर रही है जिस प्रकार महाभारत के युग में सीता भली-भाँति मर गयी थी।।३६।।

टीका— दोषाणाम् = पापानां दुष्टव्यवहाराणां वा करण्डिकाम् = पेटिकाम्; दोषपूर्णामित्यर्थः; अविनयस्य = औद्धत्यस्य, माद शमान्यजनास्वीकाररूपस्य इत्यर्थः; आवासभूताम् = निवासस्थानरूपाम्; खलाम् = दुष्टाम्; रक्ताम् = अनुरागपूर्णाम्, चारुदत्ते इति शेषः; आगतस्य = पूर्वसंकेतेन उपस्थितस्य; जीर्णोद्याने इति शेषः; तस्य = चारुदत्तस्य इत्यर्थः; रमणे = सम्भोगे, रमणार्थमिति यावत्; आगताम् = प्राप्ताम्; किल = निश्चितम्; कालेन = म त्युना; आगताम् = स चाल्य आनीतामित्यर्थः; एताम् = वसन्तसेनाम्; हत्वा इति शेषः; एषः = वीरकर्मणि संलग्नः; अहम्; निजकम् = स्वकीयम्; बाह्वोः = भुजयोः; शूरत्वम् = वीरत्वम्; किमुदाहरामि = किं वर्णयामि? मम भुजयोः शूरत्वं वर्णनातीतमित्यर्थः। निःश्वासा = प्राणवायुरहिता; अपि; अम्बा = माता, वसन्तसेना इत्यर्थः; तथैव म्रियते = गतप्राणा भवति; यथा = येन प्रकारेण; भारते = भारते युगे; सीता = जानकी; सुम ता = सुष्ठु म ता।।३६।।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द और उपमा अलंकार है।।३६।।

इच्छंतं मम णेच्छति त्ति गणिआ लोशेण मे मालिदा
शुण्णे पुप्फकलंडके त्ति शहशा पाशेण उत्ताशिदा।
शेवावंचिदभादुके मम पिदा मादेव शा दोप्पदी
जे शे पेक्खदि णेदिशं ववशिदं पुत्ताह शूलत्तणं।।३७।।

इच्छन्तं मां नेच्छतीति गणिका रोषेण मया मारिता
शून्ये पुष्पकरण्डक इति सहसा पाशेनोत्त्रासिता।
स वा व चितो भ्राता मम पिता मातेव सा द्रौपदी
यो सौ पश्यति नेद शं व्यवसितं पुत्रस्य शूरत्वम्।।

अन्वयः— इच्छन्तम्, माम्, गणिका, न, इच्छति, इति, रोषेण, मया, शून्ये, पुष्पकरण्डके, सहसा, पाशेन, उत्त्रासिता, मारिता, च, सः, मम, भ्राता, वा, पिता, व चितः, द्रौपदी, इव, सा, माता, च, (व चिता), यः, असौ, पुत्रस्य, ईद शम्, शूरत्वम्, व्यवसितम्, च, न, पश्यति।।३७।।

शब्दार्थः— इच्छन्तम् = चाहनेवाले, माम् = मुझको, गणिका = वेश्या (वसन्तसेना), न = नहीं, इच्छति = चाहती है; इति = इसी, रोषेण = क्रोध से, मया = मेरे द्वारा, शून्ये = निर्जन, पुष्पकरण्डके = पुष्पकरण्डक नामक उद्यान में, सहसा = एकाएक अथवा जबर्दस्ती, पाशेन = (बाहु) पाश से, उत्त्रासिता = भयभीत की गयी, और मारिता = मारी गयी। सः = वह, मम = मेरा, भ्राता = भाई, वा = और, पिता = पिता, व चितः = व चित (रह गया), द्रौपदीव = द्रौपदी के समान, सा = वह, माता = माता, जननी, च = भी, (व चिता = व चित रह गयी); यः = जो, असौ = यह, पुत्रस्य = लड़के की, ईद शम् = ऐसी, शूरत्वम् = शूरता को, व्यवसित च = कार्य को भी, न = नहीं, पश्यति = देख रही है।।

अर्थः— 'चाहनेवाले मुझको यह वेश्या नहीं चाहती है।' इसी क्रोध से मैंने इस निर्जन पुष्पकरण्डक नामक बगीचे में बाहुरूपी पाश से गला घोंटकर उसको मार डाला। वह मेरा भाई, मेरा पिता एवं द्रौपदी के समान मेरी माता व चित रह गयी, जिसने अपने पुत्र के इस प्रकार वीरतापूर्ण कार्य को नहीं देखा।।३७।।

टीका— इच्छन्तम् = अभिलषन्तम्, सम्भोगार्थमिति भावः; माम् = शकारम्, प्रभुतासम्पन्नं राजश्यालकम्; गणः = समूहः अस्ति अस्याः गणिका, गणयतीति वा गणिका = वारस्त्री, नेच्छति = न स्वीकरोति इत्यर्थः; इति रोषेण = कोपेन; हेतुना; मया = शकारेण; शून्ये = निर्जने; पुष्पकरण्डके = पुष्पकरण्डनामके उद्याने; सहसा = झटिति, बलेन वा; पाशेन = र जुरूपेण बाहुना इत्यर्थः; उत्त्रासिता = त्रासं प्रापिता, भ शं पीडिता वा; प्रथममिति शेषः; ततः मारिता = नाशिता च। सः मम = मे; भ्राता = सहोदरः, वा = तथा; पिता = जनकः; व चितः = प्रतारितः; द्रौपदीव = द्रुपदपुत्रीव; सा = असतीत्वकर्मणा विख्याता; माता = जननी च; व चितेति? यः असौ = यः असौ भ्राता, पिता च; तथा या असौ = जननी च; पुत्रस्य = मम शकारस्येत्यर्थः; ईद शम् = अश्रुतपूर्वम्; शूरत्वम् = वीरत्वम्; व्यवसितम् = उद्योग च; न पश्यति = नावलोकयति।।३७।।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द और उपमा अलंकार है।।३७।।

भोदु, शंपदं वुड्ढखोडे आगमिश्शदि त्ति। ता ओशलिअ च्यिश्टामि।

(भवतु, सांप्रतं व द्धश्र गाल आगमिष्यतीति। ततो पस त्य तिष्ठामि।)

(तथा करोति)

(प्रविश्य, चेटेन सह)

विटः— **अनुनीतो मया स्थावरकश्चेटः। तद्यावत्काणेलीमातरं पश्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) अये, मार्ग एव पादपो निपतितः। अनेन च पतता स्त्री व्यापादिता। भोः पाप! किमिदमकार्यमनुष्ठितं त्वया?। तवापि पापिनः पतनात्स्त्रीवधदर्शनेनातीव पातिता वयम्। अनिमित्तमेतत्, यत्सत्यं वसन्तसेनां प्रति शंकितं मे मनः। सर्वथा देवताः स्वस्ति करिष्यन्ति। (शकारमुपस त्य) काणेलीमातः! एवं मयानुनीतः स्थावरकश्चेटः।**

शकारः— भावे! शाअदं दे। पुश्तका थावलका चेडा! तवावि शाअदं। (भाव! स्वागतं ते। पुत्रक स्थावरक चेट! तवापि स्वागतम्।)

चेटः— **अध इं। (अथ किम्।)**

विटः— **मदीयं न्यासमुपनय।**

शकारः— **कीदिशे णाशे? (कीद शो न्यासः?।)**

विटः— **वसन्तसेना।**

शकारः— **गडा। (गता।)**

विटः— **क्व?।**

शकारः— **भावश्श ज्जेव पिश्टदो। (भावस्यैव प ष्ठतः।)**

विटः— **(सवितर्कम्) न गता खलु सा तया दिशा।**

शकारः— **तुमं कदमाए दिशाए गडे?। (त्वं कतमया दिशा गतः?।)**

विटः— **पूर्वया दिशा।**

शकारः— **शा वि दक्खिणाए गडा। (सापि दक्षिणया गता।)**

विटः— **अहं दक्षिणया।**

शकारः— **शा वि उत्तलाए। (साप्युत्तरया।)**

विटः— **अत्याकुलं कथयसि, न शुद्ध्यति मे न्तरात्मा; तत्कथय सत्यम्।**

शकारः— **शवामि भावश्श शीशं अत्तणकेलकेहिं पादेहिं। ता शंठावेहि हिअअं। एशा मए मालिदा। (शपे भावस्य शीर्षमात्मीयाभ्यां पादाभ्याम्, ततः संस्थापय हृदयम्। एषा मया मारिता।)**

विटः— **(सविषादम्) सत्यं त्वया व्यापादिता?।**

शकारः— **जइ मम वअणे न पत्तिआअशि, ता पेक्ख पढमं लश्टिअशालशंठाणाह शूलत्तणं। (यदि मम वचने न प्रत्ययसे, तत्पश्य प्रथमं राष्ट्रियश्यालसंस्थानस्य शूरत्वम्।) (इति दर्शयति)**

विटः— **हा, हतो स्मि मन्दभाग्यः। (इति मूर्च्छितः पतति)**

शकारः— **ही ही, उवलदे भावे। (ही ही, उपरतो भावः।)**

चेटः— **शमश्शशदु शमश्शशदु भावे। अविचालिअं पवहणं आणंतेण ज्जेव मए मढमं मालिदा। (समाश्वसितु समाश्वसितु भावः। अविचारितं प्रवहणमानयतैव मया प्रथमं मारिता।)**

विटः— **(समाश्वस्य, सकरुणम्) हा वसनतसेने!**

दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता याता स्वदेशं रति-
र्हा हालंकृतभूषणे सुवदने क्रीडारसोद्भासिनि!।
हा सौजन्यनदि प्रहासपुलिने हा माद शामाश्रये!
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः।।३८।।

अर्थः— अच्छा, अब वह बूढ़ा सियार (विट) आ जायेगा, इसलिए इससे हट कर खड़ा होता हूँ।

(वैसा ही करता है)

(चेट के साथ प्रवेश करके)

विट— मैंने स्थावरक चेट को मना लिया है। तो अब पुंश्चली के बच्चे (शकार) को देखता हूँ। (घूमकर और देखकर) अरे! रास्ते में ही पेड़ गिरा हुआ है। और गिरते हुए इसने स्त्री मार डाली। अरे पाप! तूने यह कैसा कुकर्म कर डाला! तुझ पापी के गिरने के कारण

होने वाले स्त्री-वध के देखने से हम लोग भी अत्यन्त पतित हो गये। यह अपशकुन है। अतः सचमुच ही वसन्तसेना के लिए मेरा मन शंकित हो गया है। देवता सब प्रकार से कल्याण करेंगे। (शकार के पास जाकर) पुंश्चली के पुत्र! अच्छा मैंने स्थावरक चेट को मना लिया है।

शकार— श्रीमान् जी! आपका स्वागत है। बेटा स्थावरक चेट! तुम्हारा भी स्वागत है।

चेट— बहुत अच्छा।

विट— मेरी धरोहर लौटाओ।

शकार— कैसी धरोहर?

विट— वसन्तसेना।

शकार— गयी।

विट— कहाँ?

शकार— आप के ही पीछे।

विट— (सोच-विचार के साथ) वह उस दिशा से तो गयी नहीं।

शकार— तुम किस दिशा से गये थे?

विट— पूर्व दिशा से।

शकार— वह भी दक्षिण दिशा से गयी।

विट— मैं दक्षिण दिशा से गया था।

शकार— वह भी उत्तर दिशा से गयी।

विट— बड़ी घबड़ाहठ के साथ कह रहे हो। मेरी आत्मा विश्वास नहीं कर रही है। तो सच-सच कहो।

शकार— मैं अपने पैरों से आपके शिर की शपथ खाता हूँ। तो हृदय को स्थिर करो। उसे मैंने मार दिया।

विट— (खेद के साथ) सचमुच तुमने मार दिया?

शकार— यदि मेरी बात में विश्वास नहीं करते हो तो सबसे पहले राजा के साले संस्थानक की वीरता देखो। (दिखलाता है)

विट— हाय! मन्दभाग्यवाला मैं मारा गया। (ऐसा कहकर मूर्च्छित होकर गिरता है)

शकार— अहो! भाव मर गया।

आप धीरज रखिये, धीरज रखिये। बिना बिचारे गाड़ी को लाते हुए मैंने ही उसे पहले मार दिया था।

अन्वयः— दाक्षिण्योदकवाहिनी, विगलिता; रतिः, स्वदेशम्, याता; हा! हा! अलंकृतभूषणे! सुवदने! क्रीडारसोद्भासिनि! हा प्रहासपुलिने! सौजन्यनदि! हा! माद शाम्, आश्रये! हा! हा! मन्मथस्य, विपणिः, सौभाग्यपण्याकरः, नश्यति।।३८।।

शब्दार्थः— दाक्षिण्योदकवाहिनी = उदारता रूपी जल की नदी, विगलिता = नष्ट हो गयी। रतिः = कामदेव की स्त्री रति, स्वदेशम् = अपने देश (स्वर्ग) को, याता = चली गयी। हा! हा! अलंकृतभूषणे! = हा! आभूषणों को सुशोभित करने वाली! सुवदने = सुन्दर मुँहवाली!

क्रीडारसोद्भासिनि! = (काम--) क्रीडा को सुशोभित करने वाली! हा प्रहासपुलिने! = हा! हासपरिहास रूपी बालुकामय किनारों वाली! सौजन्यनदि = सुजनता की नदी! हा! = हा, माद शाम् = हम जैसे लोगों की, आश्रये! = आश्रय, सहारा! हा! हा! मन्मथस्य = कामदेव की, विपणिः = बाजार, सौभाग्यपण्याकरः = सुन्दरता रूपी बेची जाने वाली चीजों की खान; नश्यति = नष्ट हो गयी।।

अर्थः—

विट— (धीरज धारण करके करुणा पूर्वक) हाय वसन्तसेना!

उदारता रूपी जल की नदी नष्ट हो गयी, कामदेव की स्त्री रति अपने देश (स्वर्ग) को चली गयी। हा! आभूषणों को सुशोभित करने वाली! सुन्दर मुँहवाली! काम क्रीडा के आनन्द को प्रकाशित करने वाली! हा! हास-परिहास रूपी बालुकामय किनारों वाली! सुजनता की नदी! हा! हम जैसे लोगों को आश्रय देने वाली! हाय! कामदेव की बाजार, सुन्दरता रूपी बेची जाने वाली चीजों की निधि नष्ट हो गयी।।३८।।

टीका— हा हेति खेदसूचकमव्ययं सर्वत्र योजनीयम्। दाक्षिण्यम् = औदार्यम् एव उदकम् = जलम् तस्य वाहिनी = नदी; विगलिता = विनष्टा शुष्केतियावत्। रतिः = कामस्य स्त्री; स्वदेशम् = स्वनिवासस्थानम्; स्वर्गमिति यावत; याता = गता। वसन्तसेना मनुष्यस्त्रीदेहधारिणी साक्षात् रतिः आसीत्। अस्माकमधन्यतया सा सम्प्रति भूलोकात् स्वलोकं स्वर्ग प्रयातेति भावः। हा! हा! अलंकृतानि = सुशोभितानि भूषणानि = अलंकरणानि यया तत्सम्बुद्धो; हे स्वप्राकृतशौन्दर्यातिशयेन अलंकारविभूषणे! इत्यर्थः। सुवदने! = सुमुखि! क्रीडायाम् = काम-क्रीडायाम्, सुरते इत्यर्थः; रसस्य = अपूर्वानन्दस्य; उद्भासिनि = प्रकाशिके! सम्भोगे विविधकामव्यापारैः निरतिशयानन्ददायिनि! इत्यर्थः। हा! प्रकृष्टः = आह्लादकरः हासः = स्मितम् एव पुलिनम् = वालुकामयतटम् यस्याः तथाभूते! सौजन्यस्य = सुजनतायाः नदि! = तरंगिणि! हा! माद शाम् = अस्मत्सद शविटानाम्; आश्रये! = शरणदे! हा! हा! मन्मथस्य = कामस्य, विपणिः = पण्यवीथिका, क्रयविक्रयस्थलमित्यर्थः; सौभाग्यपण्याकरः-सौभाग्यम् = सौन्दर्यम्, विलासादीनाम्दभुतत्वमिति वा, तदेव पण्यम् = विक्रय्यवस्तुजातम्, तस्य आकरः = खनिः, उत्पत्तिभूमिरिति भावः।। करुणो त्ररसः।।३८।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।३८।।

(सास्रम्) कष्ट। भोः! कष्टम्

किं नु नाम भवेत्कार्यमिदं येन त्वया कृतम्।
अपापा पापकल्पेन नगरश्रीर्निपातिता।।३९।।

अन्वयः— किम्, नु, नाम, कार्यम्, भवेत्; येन, त्वया, इदम्, कृतम्; पापकल्पेन, (त्वया), अपापा, नगरश्रीः, निपातिता।।३९।।

शब्दार्थः— किम् = कौन, नु = यह प्रश्नवाचकता का द्योतक अव्यय है, नाम = यह सम्भावना के अर्थ में प्रयुक्त अव्यय है, कार्यम् = काम, भवेत् = होगा? येन = जिसके कारण, त्वया = तुम्हारे द्वारा, इदम् = यह, कृतम् = किया गया है। पापकल्पेन = पाप के समान, (त्वया = तुम्हारे द्वारा), अपापा = पापरहित, नगरश्रीः = नगरकी लक्ष्मी अथवा शोभा, निपातिता = मार दी गयी।।

अर्थः— (आँखों में आँसू भर कर) अरे! कष्ट है कष्ट। कौन सा काम पूरा होगा? जिसके कारण तूने यह स्त्रीवध किया है। पाप के समान तूने पापरहित, नगर की लक्ष्मी को मार दिया है।।३६।।

टीका— किम् = कीद शमित्यर्थः; नु = प्रश्ने अव्ययपदम्; नाम = सम्भावनायाम् अव्ययपदम्; कार्यम् = कृत्यम्; भवेत् = पूर्ण स्यात्? येन = कारणेन, यत्कार्यार्थमित्यर्थः; त्वया = शकारेण; इदम् = वसन्तसेनामारणरूपं कार्यम्; कृतम् = सम्पादितम्; पापकल्पेन = विग्रहधारिणा द्वितीयेन पापेनेत्यर्थः; अपापा = निष्पापा; दोषरहितेति भावः; नगरश्रीः = नगरलक्ष्मीः नगरशोभा वा; निपातिता = विनाशिता।।३६।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।३६।।

(स्वगतम्) अये! कदाचिदयं पाप इदमकार्यं मयि संक्रामयेत्। भवतु, इतो गच्छामि।

(इति परिक्रामति)

(शकार उपगम्य धारयति)

विटः— **पाप! मा मा स्प्राक्षीः। अलं त्वया, गच्छाम्यहम्।**

शकारः— **अले! वशंतशेणिअं शअं ज्जेव मालिअ मं दूशिअ कहिं पलाअशि? शंपदं ईदिशे हग्गे अणाधे पाविदे। (अरे! वसन्तसेनां स्वयमेव मारयित्वा मां दूषयित्वा कुत्र पलायसे?। सांप्रतमीद शो हमनाथः प्राप्तः।)**

विटः— **अपध्वतो सि।**

शकारः—

अत्थं शदं देमि शुवण्णअं दे कहावणं देमि शवोडिअं दे
एशे दुशद्दाण फलक्कमे मे शामाण्णए भोदु मणुश्शआणं।।४०।।

(अर्थं शतं ददामि सुवर्णकं ते कार्षापणं ददामि सवोडिकं ते।
एष दोषस्थानं पराक्रमो मे सामान्यको भवतु मनुष्यकाणाम्।।)

अर्थः— (अपने आप) अरे। शायद यह पापी इस दुष्कर्म को मेरे ही ऊपर थोप दे। अच्छा, यहाँ से जाता हूँ।

(ऐसा कह कर घूमता है)

(शकार पास में जाकर पकड़ता है)

विट— पापी! मत छुओ। रहने दो। मैं जाता हूँ।

शकार— अरे! वसन्तसेना को स्वयं ही मार कर, मुझे दोषी ठहरा कर कहाँ भाग रहे हो? अब मैं ऐसा अनाथ हो गया हूँ।

विट— तुम पतित हो।

अन्वयः— (अहम्) ते, शतम्, सुवर्णकम्, अर्थम्, ददामि; ते, सवोडिकम्, कार्षाणपम्, ददामि; दोषस्थानम्, मे, एषः, पराक्रमः, मनुष्याणाम्, सामान्यकः, भवतु।।४०।।

शब्दार्थः— (अहम् = मैं), ते = तुम्हें, शतम् = सौ, सुवर्णकम् = सोना भर, अर्थम् = धन को, ददामि = दूँगा। ते = तुम्हें, सवोडिकम् = कौड़ियों के साथ, कार्षापणम् = एक कार्षापण (तत्कालीन सोने का सिक्का), ददामि = दूँगा। दोषस्थानम् = अपराध का कारण, मे =

मेरा, एषः = यह, पराक्रमः = पराक्रम, मनुष्याणाम् = मनुष्यों का, सामान्यकः = साधारण (कार्य), भवतु = हो जाये।

अर्थः—

शकार— मैं तुम्हें सौ सोने की मोहरों की धनराशि दूँगा। मैं तुम्हें बीस कौड़िओं के साथ एक कार्षापण दूँगा। अपराध का कारण मेरा यह पराक्रम (वसन्तसेना का वध) मनुष्यों का साधारण कार्य हो जाये (अर्थात् यह दोष किसी और साधारण मनुष्य पर लगा दो)।।४०।।

टीका— अहम्, ते = तुभ्यम्; शतम् = शतसंख्याकम्, अधिकमिति यावत्; सुवर्णकम् = सुवर्णमुद्राराशिमित्यर्थः; शतसुवर्णमुद्रापरिमितमिति यावत्; अर्थम् = धनम्; ददामि = दास्यामित्यर्थः। ते = तुभ्यम्, विटाय, सवोडिकम्-वोडिकाभिः = कपर्दिकाभिः सहितं सवोडिकम् = बहुकपर्दिसमन्वितम्; वेष्टिकम् = उष्णीषं कटीबन्धनमित्याहुः। कार्षापणम् = कार्षिकम्। ददामि = दास्यामि; दोषस्य = अपराधस्य, पापस्य वसन्तसेनामारणरूपत्येत्यर्थः, स्थानम् = कारणमिर्थः; मे = मम; एषः = सम्प्रत्येव अनुष्ठितः; पराक्रमः = वसन्तसेनावधरूपं शौर्यम्; मनुष्याणाम् = जनानाम्; सामान्यकः = साधारणः; भवतु = अस्तु।।४०।।

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।।४०।।

विटः— **धिक्, तवैवास्तु।**

चेटः— **शंतं पावं। (शान्तं पापम्।)**

(शकारो हसति)

विटः—

अप्रीतिर्भवतु विमुच्यतां हि हासो
धिक्प्रीतिं परिभवकारिकामनार्याम्।
मा भूच्च त्वयि मम संगतं कदाचि-
दाच्छिन्नं धनुरिव निर्गुणं त्यजामि।।४१।।

अर्थः—

विट— (तुम्हें) धिक्कार है। (यह धन) तेरे ही पास रहे।

चेट— पाप शान्त हो।

(शकार हँसता है)

अन्वयः— हासः, विमुच्यताम्; अप्रीतिः, भवतु, हि; परिभवकारिकाम्, अनार्याम्, प्रीतिम्, धिक्; त्वयि, मम, संगतम्, कदाचित्, मा भूत्, च; आच्छिन्नम्, निर्गुणम्, धनुः, इव, (त्वाम्) त्यजामि।।४१।।

शब्दार्थः— हासः = हँसी, विमुच्यताम् = छोड़ो। अप्रीतिः = मित्रता का न होना, भवतु = हो, हि = अवश्य ही। परिभवकारिकाम् = अनादर कराने वाली, अनार्याम् = निन्दनीय, प्रीतिम् = मित्रता को, धिक् = धिक्कार (है)। त्वयि = तुममें (तुम से) मम = मेरा, संगतम् = साथ, कदाचित् = कभी भी, मा भूत् = न हो। आच्छिन्नम् = टूटे हुए, निर्गुणम् = डोरी से रहित, धनुः इव = धनुष की भाँति, (त्वाम् = तुमको), त्यजामि = छोड़ रहा हूँ।

अर्थः—

विट— हँसी छोड़ो। मेरा और तुम्हारा प्रेम न हो। अनादर कराने वाली निन्दनीय इस मित्रता को धिक्कार है। मेरा एवं तुम्हारा साथ फिर कभी भी न हो। टूटे हुए तथा प्रत्य चा रहित धनुष की भाँति अच्छे गुणों से हीन तुम्हें छोड़ रहा हूँ।।४१।।

टीका— हासः = हास्यम्; विमुच्यताम् = त्यज्यताम्। अप्रीतिः = अमैत्री; भवतु = अस्तु; त्वया सह ममेति शेषः; हि = निश्चये। परिभवस्य = अनादरस्य, निन्दायाः इति यावत्; कारिकाम् = कारिणीम्; प्रीतिम् = प्रणयम्; त्वया सहेति शेषः; धिक् = धिगस्त्विति भावः। त्वयि = दुर्जने शकारे; मम = विटस्य, संगतम् = मेलनम्; कदाचित् = कस्मिन्नपि काले; मा भूत् = न भवतु च। आच्छिन्नम् = भग्नम्; निर्गुणम् = मौर्वीरहितम्; धनुः = चापः, इव = यथा; गुणहीनं त्वाम् = शकारम्; त्यजामि = जहामि।।४१।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं प्रहर्षिणी छन्द है।।४१।।

शकारः— भावे! पशीद पशीद। एहि। णलिणीए पविशिअ कीलेम्ह। (भाव! प्रसीद प्रसीद। एहि। नलिन्यां प्रविश्य क्रीडावः।)

विटः—

अपिततमपि तावत्सेवमानं भवन्तं
पतितमिव जनो यं मन्यते मामनार्यम्।
कथमहमनुयायां त्वां हतस्त्रीकमेनं
पुनरपि नगरस्त्रीशंकिताद्धाक्षिद ष्टम्।।४२।।

अर्थः—

शकार— भाव! खुश हो जाओ, खुश हो जाओ। आओ, इस कमलवाले तालाब में उतर कर विहार करें।

अन्वयः— भवन्तम्, सेवमानम्, अपतितम्, अपि, माम्, अयम्, जनः, पतितम्, इव, मन्यते; (किन्तु, सम्प्रति) हतस्त्रीकम्, (अतः), नगरस्त्रीशंकिताद्धाक्षिद ष्टम्, एनम्, त्वाम्, पुनरपि, कथम्, अनुयायाम्।।४२।।

शब्दार्थः— भवन्तम् = आप को, सेवमानम् = सेवित करते हुए, अपतितम् = पापरहित, अपि = भी, माम् = मुझको, अयम् = यह, जनः = जन समूह, पतितम् = पतित, इव = जैसा, मन्यते = समझता है। (किन्तु = परन्तु, सम्प्रति = अब), हतस्त्रीकम् = स्त्री को मारने वाले, (अतः = इसलिए), नगरस्त्रीशंकिताद्धाक्षिद ष्टम् = नगर की स्त्रियों के द्वारा शंकापूर्वक अधखुली आँखों से देखे गये, एवम् = इस, त्वाम् = तुमको, पुनरपि = फिर भी, कथम् = कैसे, अनुयायाम् = अनुस त कर सकता हूँ।।

अर्थः—

विट— (वसन्तसेना को मारने के पहले भी) आपकी सेवा करते हुए पाप-रहित भी मुझको लोग दुर्जन एवं पापी जैसा समझते हैं। (परन्तु अब) स्त्री को मारने वाले अतः नगर की स्त्रियों के द्वारा शंकापूर्वक अधखुली आँखों से देखे गये तुम्हारा साथ फिर भी मैं कैसे दे सकता हूँ।।४२।।

टीका— भवन्तम् = त्वां शकारम्; अत्र त्वामिति वक्तव्ये भवन्तमिति प्रयोगः व्यंग्यार्थपरः; सेवमानम् = भजमानम्; अपतितम् = पापरहितम्; अपि माम् = त्वत्सहवासिनं विटम्; अयम् = एषः;

जनः = साधारणः लोकः; पतितमिव = पापिनमिव; मन्यते = स्वीकरोति। किन्तु सम्प्रति = सम्पादिते त्वया स्त्रीवधे इत्यर्थः; हता = मारिता स्त्री = अबला येन तम्; अतः नगरस्य = उज्जयिनीनगर्याः स्त्रीभिः = अबलाभिः शंकितम् = संदिग्धम्, अर्द्धाक्षिभिः = अर्द्धसंकुचितलोचनैः द ष्टः = अवलोकितः तम्; वा नगरस्त्रीभिः शंकितैः = शंकापूर्णैः अर्द्धाक्षिभिः = अर्द्धोन्मीलितलोचनैः द ष्टम्; एनम् = पुरो वर्तमानम्; त्वाम् = स्त्रीघातकं शकरम्; पुनरपि = मुहुरपि; कथम् = केन प्रकारेण; अनुयायाम् = अनुसरेयम्?।।४२।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं मालिनी छन्द है।।४२।।

(सकरुणम्) वसन्तसेने!

अन्यस्यामपि जातौ मा वेश्या भूस्त्वं हि सुन्दरि!।
चारित्र्यगुणसंपन्ने जायेथा विमले कुले।।४३।।

अन्वयः— हे सुन्दरि! त्वम्, अन्यस्याम्, जातौ, अपि, वेश्या, मा भूः। हे चारित्र्यगुणसम्पन्ने! (त्वम्) विमले, कुले, जायेथाः।।४३।।

शब्दार्थः— हे सुन्दरि! = हे सुन्दर शरीरवाली! त्वम् = तुम, अन्यस्याम् = दूसरे, जातौ = जन्म में, अपि = भी, वेश्या = वेश्या, भा भूः = न हो ओ। हे चारित्र्यगुणसंपन्ने = हे चरित्र गुण से युक्त (वसन्तसेना)! (त्वम् = तुम), विमले = पवित्र, कुले = कुले में, जायेथाः = जन्म लो।।

(करुणापूर्वक) हे वसन्तसेना!

अर्थः— हे सुन्दरी! तुम दूसरे जन्म में भी वेश्या न होओ। चरित्रगुण से युक्त वसन्तसेना! तुम किसी पवित्र खान-दान में पैदा होओ अथवा तुम किसी चरित्रगुण से सम्पन्न पवित्र कुल में जन्म लो।।४३

टीका— हे सुन्दरि = हे सुगात्रे! त्वम् = स्प हणीय गुणसम्पन्ना वसन्तसेना; अन्यस्याम् = अपरस्याम्; जातौ = जन्मनि; अपि; वेश्या = गणिका; मा भूः = न भव। चारित्र्यमेव = चरितत्वमेव गुणः = प्रशंसनीयम् आचरणं तेन सम्पन्ना = पूर्णा तत्सम्बुद्धौ हे चारित्र्यगुणसम्पन्ने! वसन्तसेने! अथवा चारित्र्यम् = सौशील्यम्, गुणाः = परोपकारादिगुणाः, तैः सम्पन्ना = सम द्धा तत्सम्बुद्धौ! त्वम्, विमले = सदाचारादिसम्पन्ने सुनिर्मले; कुले = वंशे; जायेथाः = उत्पद्येथाः।।४३।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।४३।।

शकारः— मम केलके पुप्फकलंकजिण्णुज्जाणे वशंतशेणिअं मालिअ कहिं पलाअशि? एहि, मम आवुत्तश्श अग्गदो ववहालं देहि। (मदीये पुष्पकरण्डकजीर्णोद्याने वसन्तसेनां मारयित्वा कुत्र पलायसे? एहि, मम आवुत्तस्याग्रतो व्यवहारं देहि।) (इति धारयति)

विटः— आः, तिष्ठ जाल्म!। (इति खड्गमाकर्षति)

शकारः— (सभयमपस त्य) किं ले, भीदेशि, ता गच्छ। (कि रे, भीतो सि? तद्गच्छ।)

विटः— (स्वगतम्) न युक्तमवस्थातुम्। भवतु, यत्रार्यशर्विलकचन्दनकप्रभ तयः सन्ति, तत्र गच्छामि।

(इति निष्क्रान्तः)

शकारः— णिधणं गच्छ। अले थावलका पुश्तका! कीलिशे मए कडे?। (निधनं गच्छ। अरे स्थावरक पुत्रक! कीद शं मया कृतम्?।)

चेटः— **भट्ठके! महंते अकज्जे कडे। (भट्ठक! महदकार्यं कृतम्।)**

शकारः— **अले चेडे! किं भणाशि अकज्जे कडेत्ति?। भोदु, एव्वं दाव। (नानाभरणान्यवतार्य) गेण्ह एदं अलंकारअं मए ताव दिण्णे। जेत्तिके वेले अलंकलेमि तेत्तिकं वेलं मम। अण्णं तव। (अरे चेट! किं भणस्यकार्यं कृतमिति?। भवतु, एवं तावत्। ग हाणेममलंकारम्। मया तावद्दत्तम्। यावत्यां वेलायामलंकरोमि तावतीं वेलां मम। अन्यदा तव।)**

चेटः— **भट्ठके ज्जेव एदे शोहंति, किं मम एदेहिं?। (भट्टक एवैते शोभन्ते, किं ममैतैः?।)**

शकारः— **ता गच्छ एदाइं गोणाइं गेण्हिअ मम केलकाए पाशादवालग्गपदोलिकाए च्चिश्ट। जाव हग्गे आअच्छामि। (तद्गच्छ, एतौ व षभौ ग हीत्वा मदीयायां प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायां तिष्ठ। यावदहमागच्छामि।)**

चेटः— **जं भट्टके आणवेदि। (यद्भट्टक आज्ञापयति।) (इति निष्क्रान्तः)**

शकारः— **अत्तपलित्ताणे भावे गदे अदंशणं। चेडं वि पाशादबालग्गपदोलिकाए णिगलपूलिदं कदुअ थावइश्शं। एव्वं मंते लक्खिदे भोदि, ता गच्छामि। अधवा पेक्खामि दाव एदं। किं एशा मला आदु पुणो घि मालइश्शं। (अवलोक्य) कधं शुमला?। भोदु, एदिणा पावालएण पच्छादेमि णं। अधवा णामं किदे एशे। ता के वि अज्जपुलिशे पच्चहिजाणेदि। भोदु, एदिणा वादालीपुंजिदेण शुक्खपण्णपुडेण पच्छादेमि। (तथा कृत्वा, विचिन्त्य) भोदु, एव्वं दाव। शंपदं अधिअलणं गच्छिअ ववहालं लिहावेमि, जहा अत्थश्श कालणादो शत्थवाहचालुदत्ताकेण ममकेलकं पुप्फकलंडकं जिण्णुज्जाणं पवेशिअ वशंतशेणिआ वावादिदे त्ति।**

चालुदत्तविणाशाय कलेमि कवडं णवं।
णअलीए विशुद्धाए पशुघादं व्व दालुणं।।४४।।

(आत्मपरित्राणे भावो गतो दर्शनम्। चेटमपि प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायां निगडपूरितं कृत्वा स्थापयिष्यामि। एवं मन्त्रो रक्षितो भवति, तद्गच्छामि। अथवा पश्यामि तावदेनाम्-किमेषा म ता? अथवा पुनरपि मारयिष्यामि। कथं सुम ता! भवतु, एतेन प्रावारकेण प्रच्छादयाम्येनाम्। अथवा नामांकित एषः, तत्को प्यार्यपुरुषः प्रत्यभिज्ञास्यति। भवतु, एतेन वातालीपु जितेन शुष्कपर्णपुटेन प्रच्छादयामि। भवतु, एवं तावत्। सांप्रतमधिकरणं गत्वा व्यवहारं लेखयामि, यथा-अर्थस्य कारणात्सार्थवाहकचारुदत्तकेन मदीयं पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं प्रवेश्य वसन्तसेना व्यापादितेति।

चारुदत्तविनाशाय करोमि कपटं नवम्।
नगर्यां विशुद्धायां पशुघातमिव दारुणम्।।

अर्थः—

शकार— मेरे पुष्पकरण्डक नामक प्राचीन बगीचे में वसन्तसेना को मार कर कहाँ भाग रहे हो? चलो मेरे जीजा (राजा) के सामने सफाई दो। (ऐसा कहकर पकड़ता है)

विट— आह! नीच! ठहर। (ऐसा कहकर तलवार खींचता है)

शकार— (भयपूर्वक हटकर) क्यों रे, डर गया? अच्छा जा।

विट— (अपने आप) (यहाँ) रुकना ठीक नहीं। अच्छा, जहाँ आर्य शर्विलक तथा चन्दनक आदि हैं वहीं जाता हूँ। (ऐसा कह कर निकल जाता है)

शकार— मर जा! अरे बेटा स्थावरक! मैंने कैसा काम किया?

चेट— मालिक! बड़ा बुरा काम किया।

शकार— अरे चेट! क्या कह रहा है 'बुरा काम किया' अच्छा, ऐसा हो। (बहुत से आभूषणों को अपने शरीर से निकाल कर) ले इस आभूषण को। मैंने तुझे दे दिया। जब तक मैं पहनूँगा तब तक यह मेरा रहेगा और बाकी समय में तेरा।

चेट— आपके शरीर पर ही ये अच्छे लगते हैं। मेरा इनसे क्या मतलब?

शकार— तो जा। इन बैलों को लेकर मेरे महल की नयी अटारी वाली गली में ठहर। जब तक मैं आता हूँ।

चेट— जैसी मालिक की आज्ञा? (ऐसा कहकर निकल जाता है)

अर्थः—

शकार— अपने बचाव के लिये विट चला गया। चेट को भी बेड़ी में बाँधकर महल की नयी अटारी वाली गली में रक्खूँगा। इस प्रकार भेद छिपा रह जायेगा। तो; जाता हूँ। अथवा पहले इस (वसन्तसेना) को देखता हूँ। क्या यह मर गयी? अथवा और मारूँ? (देख कर) क्या बिलकुल मर गयी? अच्छा, इस दुपट्टे से इसको ढक देता हूँ। अथवा इस वस्त्र पर तो नाम लिखा है, तो कोई भला आदमी पहचान लेगा। अच्छा हवा के झोकों से इकट्ठा किये गये सूखे पत्तों की इस ढेरी से ढक देता हूँ। (वैसा करके सोचकर) अच्छा तो ऐसा करूँ। अब कचहरी में जाकर रिपोर्ट (अभियोग) लिखाता हूँ कि धन के लिये सार्थवाह चारुदत्त ने पुष्पकरण्डक नामक मेरे पुराने बगीचे में ले जाकर वसन्तसेना को मार दिया।

अन्वयः— (अस्याम्, विशुद्धायाम्, नगर्याम्, दारुणम्, पशुघातम्, इव, चारुदत्तविनाशाय, नवम्, कपटम्, करोमि।।४४।।

शब्दार्थः— (अस्याम् = इस), विशुद्धायाम् = पवित्र, नगर्याम् = नगरी में, दारुणम् = भयंकर, पशुघातम् = पशु के वध, इव = जैसा, चारुदत्तविनाशाय = चारुदत्त के विनाश के लिये, नवम् = नये, कपटम् = कपट को, छलको, करोमि = करता हूँ।।

अर्थः— इस पवित्र नगरी में भयंकर पशुवध के समान चारुदत्त के विनाश के लिये मैं एक नया कपट करता हूँ।।४४।।

टीका— अस्याम्, विशुद्धायाम् = पवित्रायाम्; नगर्याम् = उज्जयिन्यामित्यर्थः; दारुणम् = भयंकरम्; पशुघातम् = पशुमारणमिव; चारुदत्तस्य विनाशाय = नाशाय, बधायेत्यर्थः; नवम् = नूतनम्; कपटम् = छलम्; करोमि = विदधामि।।४४।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।४४।

भोदु, गच्छामि। (इति निष्क्रम्य, द ष्ट्वा सभयम्) अविद मादिके। जेण जेण गच्छामि मग्गेण तेण ज्जेव एशे दुश्टशमणके गहिदकशाओदकं चीवलं गेण्हिअ आअच्छदि। एशे मए णशिं च्छिदिअ वाहिदे किदवेले कदावि मं पेक्खिअ एदेण मालिदे त्ति पआशइश्शदि। ता कधं गच्छामि। (अवलोक्य) भोदु, एदं अद्धपडिदं पाआलखंडं उल्लंघिअ गच्छामि।

एशे म्हि तुलिदतुलिदे लंकाणअलीए गअणे गच्छंते।
भूमिए पाआले हणूमशिहले विअ महेंदे।।४५।।

भवतु, गच्छामि। अविदमादिके! येन येन गच्छामि मार्गेण, तेनैवैष दुष्टश्रमणको ग हीतकषायोदकं चीवरं ग हीत्वागच्छति। एष मया नासां छित्त्वा वाहितः कृतवैरः कदापि मां प्रेक्ष्यैतेन मारितेति प्रकाशयिष्यति। तत्कथं गच्छामि?। भवतु एतमर्धपतितं प्राकारखण्डमुल्लंघ्य गच्छामि।

एषो स्मि त्वरितत्वरितो लंकानगर्यां गगने गच्छन्।

भूम्यां पाताले हनूमच्छिखर इव महेन्द्रः।

(इति निष्क्रान्तः)

अर्थः— अच्छा, जाता हूँ। (निकलकर देखकर भयपूर्वक) ओह! जिस जिस रास्ते से जाता हूँ, उसी से यह दुष्ट बौद्ध संन्यासी गेरुये रंग में रंगे हुए वस्त्र को लेकर आता है। नाक छेद कर इसको मैंने (बगीचे से) भगा दिया था, तो शायद उसी बैर के कारण मुझको देखकर-'इसने ही वसन्तसेना को मारा है' ऐसा कह न दे। तो कैसे जाऊँ? (देखकर) अच्छा, आधी गिरी हुई इस चहार दिवारी को लाँघ कर जाता हूँ।

अन्वयः— एषः, (अहम्), आकाशे, भूम्याम्, पाताले, हनुमच्छिखरे, लंकानगर्याम्, गच्छन्, महेन्द्रः, इव, त्वरितत्वरितः, (गच्छामि)।।४५।।

शब्दार्थः— एषः = यह, (अहम् = मैं), आकाशे = आकाश में, भूम्याम् = भूमि में, पाताले = पाताल में, हनुमच्छिखरे = हनुमान् की चोटी पर, लंकानगर्याम् = लंका में (को), गच्छन् = चलता हुआ, महेन्द्रः इव = महेन्द्र पर्वत की भाँति, त्वरितत्वरितः = बड़ी शीघ्रता से, (गच्छामि = जा रहा हूँ)।

अर्थः— यह मैं (शकार) आकाश भूमि, पाताल, एवं हनुमान की चोटी (वस्तुतः महेन्द्र पर्वत की चोटी) एवं लंका में (को) जाते हुए महेन्द्र (वस्तुतः हनुमान्) की भाँति बड़ी शीघ्रता से जा रहा हूँ।।४५।।

(ऐसा कह कर निकल जाता है)

टीका— एषः = गमने त्वरान्वितः अहं शकारः; आकाशे = गगने; भूम्याम् = प थिव्याम्; पाताले = प थिव्याः अधस्तले लोकेः हनुमच्छिखरे = हनुमच्छ ंगे; महेद्रशिखरे इति वक्तव्ये मौर्ख्याधिक्यात् हनुमच्छिखरे इति वदति; लंकापुर्याम् = लंकानगर्याम्; गच्छन् = व्रजन्; महेन्द्रः = महेन्द्रपर्वतः इव; हनुमानिवेति वक्तव्ये महेन्द्रः इवेति वदति; त्वरितत्वरितः = अतित्वरायुक्तः सन्; गच्छामि इति।।४५।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।४५।।

(प्रविश्यापटीक्षेपेण)

संवाहको भिक्षुः— पक्खालिदे एशे मए चीवलखंडे। किं णु हु शाहाए शुक्खावइश्शं। इध वाणला विलुप्पंति। किं णु हु भूमीए धूलीदोशे होदि, ता कहिं पशालिअ शुक्खावइश्शं। (द ष्ट्वा) भोदु, इध वादालीपुंजिदे शुक्खवत्तसंचए पशालइश्शं। (तथा कृत्वा) णमो बुद्धश्य। (इत्युपविशति) भोदु, धमक्खलाइं उदाहलामि। ('पचज्जण जेण मालिदा' (८/२) इत्यादि पूर्वोक्तं पठति) अधवा अलं मम एदेण श गेण। जाव ताए वशंतशेणिआए बुद्धोवाशिआए पच्चुवआलं ण कलेमि, जाए दशाणं शुवण्णकाणं किदे जूदिअलेहिं णिक्कीदे, तदो पहुदि ताए कीदं विअ अत्ताणअं अवगच्छामि। (द ष्ट्वा) किं णु खु पण्णोदले शमुश्शशदि?। अधवा

वादादवेण तत्ता चीवलतोएण तिम्मिदा पत्ता।
एदे विथिण्णपत्ता मण्णे पत्ता विअ फुलंति।।४६।।

(प्रक्षालितमेतन्मया चीवरखण्डम्। किं नु खलु शाखायां शुष्कं करिष्यामि? इह वानरा विलुम्पन्ति। किं नु खलु भूम्याम्?। धूलीदोषो भवति। तत्कुत्र प्रसार्य शुष्कं करिष्यामि?। भवतु, इह वातालीपु जिते शुष्कपत्रसंचये प्रसारयिष्यामि। नमो बुद्धाय। भवतु, धर्माक्षराण्युदाहरामि। अथवालं ममैतेन स्वर्गेण। यावत्तस्या वसन्तसेनाया ब द्धोपासिकायाः प्रत्युपकारं न करोमि, यया दशानां सुवर्णकानां कृतेन द्यूतकाराभ्यां निष्क्रीतः, ततः प्रभ ति तया क्रीतमिवात्मानमवगच्छामि। किं नु खलु पर्णोदरे समुच्छ्वसिति? अथवा

वातातपेन तप्तानि चीवरतोयेन स्तिमितानि पत्राणि।

एतानि विस्तीर्णपत्राणि मन्ये पत्राणीव स्फुरन्ति।।

(वसन्तसेना संज्ञां लब्ध्वा, हस्तं दर्शयति)

(विना पर्दा उठाए ही प्रवेश करके)

अर्थः—

संवाहक भिक्षु— कपड़े के इस टुकड़े को मैंने धो लिया। क्या इसे पेड़ की डाली पर सुखा लूँ? यहाँ वानर फाड़ देंगे। तो क्या जमीन पर (सुखा लूँ)? धूलि से गंदा हो जायगा। तब कहाँ फैला कर सुखाऊँ? अच्छा, हवा के झोंको के द्वारा इकट्ठा किये गये सूखे पत्तों की इस ढेर पर फैलाऊँगा। (फैला कर) बुद्ध को नमस्कार है। (बैठ जाता है) अच्छा धार्मिक अक्षरों का पाठ करता हूँ (प चजनाः येन मारिताः, ८'२ इत्यादि पहले का श्लोक पढ़ता है) अथवा इस स्वर्ग से मेरा क्या (मतलब)? जब तक बुद्ध की सेविका उस वसन्तसेना का प्रत्युपकार नहीं करता हूँ, जिसने सोने की दश मोहरें देकर जुआरियों से मुझे छुड़ाया था, तब तक मैं अपने को उस (वसन्तसेना) के द्वारा खरीदा गया समझता हूँ। (देखकर) पत्तों के भीतर क्या साँस सी ले रहा है? अथवा—

अन्वयः— वातातपेन, तप्तानि, एतानि, पत्राणि, चीवरतोयेन, स्तिमितानि, (सन्ति), विस्तीर्णपत्राणि, पक्षिण (पत्राणि) इव, स्फुरन्ति, (इति, अहम्), मन्ये।।

शब्दार्थः— वातातपेन = हवा सहित घाम से, तप्तानि = तपे हुये, एतानि ये, पत्राणि = पत्ते, चीवरतोयेन = कपड़े के जल से, स्तिमितानि = कुछ गीला, (सन्ति = होते हुए), विस्तीर्णपत्राणि = फेले हुए पंखे वाले, पक्षिणः = पक्षियों (के), इव = समान, स्फुरन्ति = हिल रहे हैं, (इति = ऐसा, अहम् = मैं), मन्ये = सोचता हूँ, मानता हूँ।।

अर्थः— हवा सहित घाम से तपे हुये ये पत्ते कपड़े के जल से कुछ गीला (आर्द्र) होकर मानों फैले हुए पंखवाले पक्षियों के समान हिल रहे हैं।।४६।।

(वसन्तसेना चेतना पाकर हाथ दिखाती है)

टीका— वातेन = पवनेन सहितः आतपः = धर्मः तेन; तप्तानि = शुष्कतां गतानि; एतानि = वस्त्रावारभूतानि, पत्राणि = पर्णानि; चीवरस्य = वस्त्रखण्डस्य तोयेन = जलेन; स्तिमितानि = कि चिदार्द्रत्वं प्राप्तानि; सन्ति; विस्तीर्णानि = प्रस तानि पर्णानि = पत्राणि येषां तानि; पक्षिणः = खगाः, इव स्फुरन्ति = स्पन्दन्ते, इति अहं मन्ये = स्वीकरोमि।।४६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं आर्या छन्द है।।४६।।

भिक्षुः— **हा हा, शुद्धालंकालभूशिदे इत्थिआहत्थे णिक्कमदि। कधं दुदिए वि हत्थे?। (बहुविधं निर्वर्ण्य) पच्चभिआणामि विअ एदं हत्थं। अधवा, किं विचालेण?। शच्चं शे ज्जेव हत्थे जेण मे अभअं दिण्णं। भोदु, पेक्खिश्शं। (नाट्येनोद्घाट्य द ष्ट्वा, प्रत्यभिज्ञाय च) शा ज्जेव बुद्धोवाशिआ। (हा हा, शुद्धालंकारभूषितः स्त्रीहस्तो निष्क्रामति। कथं द्वितीयो पि हस्तः?। प्रत्यभिजानामीवैतं हस्तम्। अथवा, किं विचारेण। सत्यं स एव हस्तो येन मे भयं दत्तम्। भवतु, पश्यामि। सैव बुद्धोपासिका।)**

(वसन्तसेना पानीयमाकाङ्क्षति)

भिक्षुः— **कधं उदअं मग्गेदि?। दूले च दिग्घिआ। किं दाणिं एत्थ कलइश्शं?। भोदु, एदं चीवलं शे उवलि गालइश्शं। (कथं उदकं याचते?। दूरे च दीर्घिका। किमिदानीमत्र करिष्यामि?। भवतु, एतच्चीवरमस्या उपरि गालयिष्यामि।) (तथा करोति)**

(वसन्तसेना संज्ञां लब्ध्वोत्तिष्ठति, भिक्षुः पटान्तेन वीजयति)

वसन्तसेना— अज्ज! को तुमं?। (आर्य! कस्त्वम्?।)

भिक्षुः— **किं मं ण शुमलेदि बुद्धोवाशिआ दशशुवण्णणिक्कीदं?। (किं मां न स्मरति बुद्धोपासिका दशसुवर्णनिष्क्रीतम्?।)**

वसन्तसेना—सुमरामि, ण उण जधा अज्जो भणादि। वरं अहं उवरदा ज्जेव। (स्मरामि, न पुनर्यथा र्यो भणति। वरमहमुपरतैव।)

भिक्षुः— **बुद्धोवाशिए! किं ण्णेदं?। (बुद्धोपासिके! किं न्विदम्।)**

वसन्तसेना—(सनिर्वेदम्।) जं सरिसं वेसभावस्स। (यत्सद शं वेशभावस्य।)

भिक्षुः— **उट्ठेदु उट्ठेदु बुद्धोवाशिआ एदं पादवसमीवजादं लदं ओलंबिअ। (उत्तिष्ठतूत्तिष्ठतु बुद्धोपासिकैतां पादपसमीपजातां लतामवलम्ब्य।) (इति लतां नामयति)**

(वसन्तसेना ग हीत्वोत्तिष्ठति)

भिक्षुः— **एदश्शि विहाले मम धम्मबहिणिआ चिट्ठदि। तहिं शमश्शशिदमआ भविअ उवाशिआ गेहं गमिश्शदि। ता शेणं शेणं गच्छदु बुद्धोवाशिआ। (इति परिक्रामति, द ष्ट्वा) ओशलध अज्जा! ओशलध। एशा तलुणी इत्थिआ, एशो भिक्खु त्ति शुद्धे मम एशे धम्मे।**

हत्थशंजदो मुहशंजदो इंडियशंजदो शे खु माणुशे।
किं कलेदि लाअउले तश्श पललोओ हत्थे णिच्चले।।४७।।

(एतस्मिन्विहारे मम धर्मभगिनी तिष्ठति। तत्र समाश्वस्तमना भूत्वोपासिका गेहं गमिष्यति। तच्छनैः शनैर्गच्छतु बुद्धोपासिका। अपसरत आर्याः! अपसरत। एषा तरुणी स्त्री, एष भिक्षुरिति शुद्धो ममैष धर्मः।

हस्तसंयतो मुखसंयत इन्द्रियसंयतः स खलु मनुष्यः।
किं करोति राजकुलं तस्य परलोको हस्ते निश्चलः।।)

अर्थः—

भिक्षु— हा! हा! (यह तो) सुन्दर आभूषणों से सजा हुआ स्त्री का हाथ निकल रहा है। क्या दूसरा भी हाथ निकल रहा है? (बहुत प्रकार से देख कर) इस हाथ को पहचान सा रहा हूँ।

अथवा विचार से क्या, लाभ? सचमुच यह तो वही हाथ है जिसने मुझे अभय दिया था। अच्छा, तो देखता हूँ। (अभिनय पूर्वक उघाड़ कर, देख कर तथा पहचान कर) वहीं बुद्ध की उपासिका वसन्तसेना है।

(वसन्तसेना पानी चाहती है)

भिक्षु— क्या जल माँग रही हैं। बावड़ी दूर है। अब यहाँ क्या करूँ? अच्छा, इस कपड़े को इसके ऊपर निचोड़ूँगा। (वैसा करता है)

(वसन्तसेना चेतना पाकर उठती है, भिक्षु कपड़े के आँचल से उसको हवा करता है)

वसन्तसेना— आर्य! आप कौन हैं?

भिक्षु— क्या, बुद्ध की उपासिका सोने की दश मोहरों के द्वारा खरीदे गये मुझको याद नहीं कर रही हैं।

वसन्तसेना— याद कर रही हूँ। किन्तु उस तरह नहीं जैसा आप कह रहे हैं। इससे तो मैं मरी ही अच्छी।

भिक्षु— बुद्ध की उपासिका! यह क्या हुआ?

वसन्तसेना— (दुःख के साथ) जो वेश्यापन के अनुकूल है।

भिक्षु— बुद्ध की उपासिका व क्ष के समीप उगी हुई इस लता का सहारा लेकर उठ जायें, उठ जायें। (ऐसा कह कर लता को झुकाता है)

(वसन्तसेना लता को पकड़ कर उठती है)

भिक्षु— इस बौद्ध-मठ में मेरी धर्म-बहन रहती है। वहाँ स्वस्थचित्त होकर आप घर जायेंगी। तो धीरे-धीरे चलें बुद्धोपासिका (आप)। (ऐसा कह कर घूमता है, देखकर) भले आदमियों! हटो, हटो। यह युवती स्त्री है और यह मैं भिक्षु हूँ। इसलिये यह मेरा पवित्र धर्म है।

अन्वयः— स, खलु, मनुष्यः, (यः), हस्तसंयतः, मुखसंयतः, इन्द्रियसंयतः, (अस्ति); राजकुलम्, तस्य किम्, करोति, परलोकः, (तस्य) हस्ते, निश्चलः।।४७।।

शब्दार्थः— सः = वह, खलु = वस्तुतः, मनुष्यः = मनुष्य है; (यः = जो), हस्तसंयतः = हाथ से संयत, मुखसंयतः = मुँह से संयत, इन्द्रियसंयतः = इन्द्रियों से संयत, (अस्ति = है)। राजकुलम् = राजकुल, तस्य = उसका, किम् = क्या, करोति = करता है। परलोकः = परलोक, (तस्य = उसके), हस्ते = हाथ में, निश्चलः = ध्रुव है।।

अर्थः— वही वस्तुतः मनुष्य है जिसका हाथ मुँह तथा इन्द्रियाँ भली-भाँति वश में रहती हैं। राज कुल उसका क्या कर सकता है? परलोक (स्वर्ग आदि) उसके हाथ में निश्चित है अर्थात् मरने पर वह अवश्य ही अच्छे लोकों को जाता है।।४७।।

टीका— सः खलु = निश्चितम्; मनुष्यः = मनुष्यत्वेन मान्यः; यः हस्तेन = करेण संयतः = नियमितः; हस्तेन यः किमप्यकार्यं न करोति इति भावः। मुखेन = जिह्वया इत्यर्थः संयतः = संयमयुक्तः; जिह्वया यः कदापि अप्रियमसत्य च न वदतीति भावः। इन्द्रियैः = करणैः संयतः = संयमितः;। राजकुलम् = शासकसमूहः विचारालयः, तस्य = एताद शस्य संयतस्य, जनस्य किं करोति = किं विदधाति; न किमपीत्यर्थः। परलोकः = स्वर्गादिः;

तस्य हस्ते = करे; निश्चलः = ध्रुवः। सः अवश्यमेव स्वर्गादिकं पुण्यं लोकं गच्छतीति भावः।।४७।।

इस श्लोक में परिसंख्या अलंकार एवं गीति तथा उपगीति से मिश्रित छन्द है।।४७।।

(इति निष्क्रान्ताः)

(सब निकल जाते हैं)

इति वसन्तसेनामोटनो नामाष्टमो ऽकः।

'वसन्तसेना का गला घोंटना- नामक आठवाँ अंक

नवमो ंकः

(ततः प्रविशति शोधनकः)

शोधनकः— **आणत्तम्हि अधिअरणभोइएहिं-'अरे सोहणआ! ववहारमंडवं गदुअ आसणाइं सज्जीकरेहि' त्ति। ता जाव अधिअरणमंडवं सज्जिदुं गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एदं अधिअरणमंडवं। एस पविसामि। (प्रविश्य; संमार्ज्यासनमाघाय) विवित्तं कारिदं मए अधिअरणमंडवं। विरइदा मए आसणा। ता जाव अधिअरणिआणं उण णिवेदेमि। (परिक्रम्यावलोक्य च) कध एसो रट्टिअस्सालो दुट्टदुज्जणमणुस्सो इदो एव्व आअच्छदि?। ता दिट्टिपधं परिहरिअ गमिस्सं। (आज्ञप्तो स्म्यधिकरणभोजकैः-'अरे शोधनक! व्यवहारमण्डपं गत्वासनानि सज्जीकुरु' इति। तद्यावदधिकरणमण्डपं सज्जितुं गच्छामि। एषो धिकरणमण्डपः। एष प्रविशामि। विवक्तिः कारितो मयाधिकरणमण्डपः। विरचितानि मयासनानि। तद्यावदधिकरणिकानां पुनर्निवेदयामि। कथमेष राष्ट्रियश्यालो दुष्टदुर्जनमनुष्य इत एवागच्छति?। तद्द ष्टिपथं परिहृत्य गमिष्यामि।)**

(इत्येकान्ते स्थितः)

(ततः प्रविशत्युज्ज्वलवेषधारी शकारः)

शकारः—

ण्हादे हं शलिलजलेहिं पाणिएहिं
उज्जाणे उववणकाणणे णिशण्णे।
णालीहिं शह जुवदीहिं इश्तिआहिं
गंधव्वेहिं शुविहिदएहिं अंगकेहिं।।१।।

स्नातो हं सलिलजलैः पानीयैरुद्यान उपवनकानने निषण्णः।
नारीभिः सह युवतीभिः स्त्रीभिर्गन्धर्व इव सुहितैरंगकैः।।

(इसके बाद शोधनक प्रवेश करता है)

अर्थः—

शोधनक— न्यायालय के अधिकारियों ने मुझे आज्ञा दी है-'अरे शोधनक! न्यायालय में जाकर आसनों को ठीक से लगा दो।' इसलिए जब तक न्यायालय को व्यवस्थित करने के लिए जाता हूँ। (घूमकर और देख कर) यह न्यायालय है। यह मैं इसमें प्रवेश करता हूँ। (घुसकर, सफाई करके तथा आसन रख कर) मैंने न्यायालय को स्वच्छ करा दिया है। आसनों को मैंने ठीक से लगा दिया है। तो मैं फिर न्यायाधीशों से निवेदन करता हूँ। (घूम कर और देख कर) क्या यह राजा का साला दुष्ट दुर्जन आदमी इधर ही आ रहा है? तो इसकी आँखों से बच कर जाऊँगा।

(ऐसा कह कर एकान्त में खड़ा हो जाता है)

(उसके बाद उज्ज्वल वेश धारण किये हुए शकार प्रवेश करता है)

अन्वयः— अहम्, सलिलजलैः, पानीयैः, स्नातः; नारीभिः, युवतीभिः, सह, उद्याने, उपवनकानने, निषण्णः; सुहितैः, अंगकैः, गन्धर्वः, इव, (प्रतीतः, भवामि)।।१।।

शब्दार्थः— अहम् = मैंने, सलिलजलैः = जल (सलिल) से, पानीयैः = पानी से, स्नातः = नहाया है। नारीभिः = स्त्रियों के, युवतीभिः = युवती (जवान), स्त्रिभिः = स्त्रीयों के, सहं = साथ, उद्याने = बगीचे, उपवनकानने = वाटिका (बगीचे) में, निषण्णः = बैठा हुआ, सुहितैः = सजे हुए, अंगकैः = अंगों से, गन्धर्वः = गन्धर्व, इव = जैसा (प्रतीतः = मालूम (ज्ञात), भवामि = होता हूँ)।।१।।

अर्थः—

शकार— मैं पानी से नहाया हूँ। युवती स्त्रियों के साथ फूल के उपवन में बैठा हुआ सजे हुए अंगों से मैं गन्धर्व जैसा लगता हूँ।।१।।

टीका— अहम् = विशिष्टाधिकारसम्पन्नः शकारः इत्यर्थः; सलिलैः जलैः पानीयैः = जलैः; स्नातः = कृतस्नानः; नारीभिः युवतीभिः स्त्रीभिः = वनिताभिः; सह = साकम्; उद्याने उपवनकानने = ग हवाटिकायामित्यर्थः; निषण्णः = उपविष्टाः; सुहितैः = सुविहितैः, सुभूषितैः इत्यर्थः; अंगकैः = अवयवैः; उपलक्षितः अहमिति शेषः; गन्धर्वः = गानविद्या-परायणः देवयोनिविशेषः; इव; प्रतीतः भवामीति।।१।।

इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।।१।।

खणेण गंठी खणजूलके मे खणेण बाला खणकुंतले वा।
खणेण मुक्के खण उद्धचूडे चित्ते विचित्ते हगे लाअशाले।।२।।

क्षणेन ग्रन्थिः क्षणजूलिका मे क्षणेन बालाः क्षणकुन्तला वा
क्षणेन मुक्ताः क्षणमूर्ध्वचूडाश्चित्रो विचित्रो हं राजश्यालः।

अन्वयः— मे (केशेषु), क्षणेन, ग्रन्थिः, क्षणजूलिका, (भवति); क्षणेन, (ते) बालाः, वा, क्षणकुन्तलाः, क्षणेन, मुक्ताः, क्षणम्, ऊर्ध्वचूडाः (भवन्ति); (सत्यम्) अहम्, चित्रः, विचित्रः, राजश्यालः, (अस्मि)।।२।।

शब्दार्थः— मे = मेरे, (केशेषु = शिर के बालों में), क्षणेन = एक क्षण में, ग्रन्थिः = गाँठ (लगती है), क्षणजूलिका = एक क्षण में जूड़ा, (भवति = होती है, बँधती है)। क्षणेन = एक क्षण में; (ते = के केश) बालाः = मामूली बाल, वा = और, क्षणकुन्तलाः = क्षणभर में घुँघराले बाल, क्षणेन = क्षणभर में, मुक्ताः = बिखेरे गये, क्षणम् = क्षणभर में ऊर्ध्वचूडाः = ऊपर की ओर जूड़ा, (भवन्ति = बन जाते हैं)। (सत्यम् = सचमुच), अहम् = मैं, चित्रः = विलक्षण, विचित्रः = अद्‌भुत, राजश्यालः = राजा का साला, (अस्मि = हूँ)।।

अर्थः— मेरे शिर के बालों में एक क्षण में गाँठ लगती है तो दूसरे क्षण में जूड़ा बँधती है। क्षण भर में वे मामूली बाल बन जाते हैं तो दूसरे क्षण में घुँघराले बाल हो जाते हैं। पुनः क्षणभर में ही वे बिखेर दिये जाते हैं तो क्षणभर में ही ऊपर की ओर जूड़ा बन जाते हैं। (सचमुच) मैं बड़ा ही चित्र-विचित्र राजा का साला हूँ।।२।।

टीका— मे = मम; केशेष्विति शेषः; क्षणेन = क्षणकालम्; कस्मिंश्चित् समये इत्यर्थः; ग्रन्थिः = ग्रन्थिबन्धनम्; बालानामेकत्र संयमनमित्यर्थः; क्षणेन जूलिका = जूटिका ('जूडा' इति प्रसिद्धः); भवतीति शेषः। क्षणेन (ते = केशाः) बालाः = साधारणकेशाः; वा = अथवा; क्षणेन कुन्तलाः = कुटिलबालाः; क्षणेन मुक्ताः = बन्धनहीनाः, इतस्ततः प्रक्षिप्ताः इत्यर्थः; क्षणम् ऊध र्वचूडा-ऊर्ध्वम् = उपरिभागे चूडा = शिखा येषां तथाभूताः; भवन्ति। सत्यम्; अहम् = शकारः; चित्रः विचित्रः = विलक्षणः; राज्ञः = शासकस्य, पालकस्येत्यर्थः; श्यालः = स्त्रीभ्राता; अस्मीति शेषः।।२।।

अवि, अ विशगंठिगब्भपविश्टेण विअ कीडएण अंतलं मग्गमाणेण पाविदं मए महदंतलं ता कश्श एदं किविणचेष्टिअं पाडइश्शं?। (स्म त्वा) आं, शुमलिदं मए। दलिद्दचालुदत्तश्श एदं किविणचेश्टिअं पाडइश्शं। अण्णं च, दलिद्दे खु शे। तश्श शव्वं शंभावीअदि। भोदु, अधिअलणमंडवं गदुअ अग्गदो ववहालं लिहावइश्शं, जधा-चालुदत्तकेण वशंतशेणिआ मोडिअ मालिदा। ता जाव अधिअलणमंडवं ज्जेव्व गच्छामि (परिक्रम्यावलोक्य च) एशं तं अधिअलणमंडवं। एत्थ पविशामि। (प्रविश्यावलोक्य च) कधं आशणाइं दिण्णइं च्यिश्टंति?। जाव आअश्शंति अधिअलणभोइआ, दाव एदर्शिं दुव्वचत्तले मुहुत्तअं उवविशिअ पडिवालइश्शं।

अपि च, विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेनेव कोटकेनान्तरं मार्गमाणेन प्राप्तं मया महदन्तरम्। तत्कस्येदं कृपचेष्टितं पातयिष्यामि?। आं, स्म तं मया। दरिद्रचारुदत्तस्येदं कृपणचेष्टितं पातयिष्यामि। अन्यच्च, दरिद्रः खलु सः। तस्य सर्वं संभाव्यते। भवतु, अधिकरणमण्डपं गत्वा ग्रतो व्यवहारं लेखयिष्यामि, यथा-चारुदत्तेन वसन्तसेना मोटयित्वा मारिता। तद्यावदधिकरणमण्डपमेव गच्छामि। एष सो धिकरणमण्डपः। अत्र प्रविशामि। कथमासनानि दत्तानि तिष्ठन्ति?। यावदागच्छन्त्यधिकरणभोजकाः, तावदेतस्मिन्दूर्वाचत्वरे मुहूर्तमुपविश्य प्रतिपालयिष्यामि।)

(तथा स्थितः)

शोधनकः— **(अन्यतः परिक्रम्य, पुरो द ष्ट्वा) पेदे अधिअरणिआ आअच्छन्ति; ता जाव उवसप्पामि। (एते धिकरणिका आगच्छन्ति; तद्यावदुपसर्पामि।) (इत्युपसर्पति)**

(ततः प्रविशति श्रेठिकायस्थादिपरिव तो धिकरणिकः)

अधिकरणिकः— **भो भोः श्रेष्ठिकायस्थौ!**

श्रेष्ठिकायस्थौ— **आणवेदु अजो। (आज्ञापयत्वार्यः।)**

अधिकरणिकः— **अहो! व्यवहारपराधीनतया दुष्करं खलु परिचित्तग्रहणमधिकरणिकैः।**

छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतं
स्वान्दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम्।
तैः पक्षापरपक्षवर्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्प श्यते
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः।।३।।

अर्थः— और भी-

विष की गाँठ के भीतर घुसे हुए कीड़े के समान मार्ग ढूँढते हुए मैंने महान उपाय पा लिया है। तो इस कुकृत्य को किसके ऊपर थोप दूँगा। (याद करके) हाँ, याद आ गयी। इस कुकृत्य को चारूदत के ऊपर थोप दूँगा। और वह दरिद्र भी है। अतः उसके लिए सब कुछ सम्भव माना जा सकता है। तो, न्यायालय में जाकर सबसे पहले ही विवाद को लिखवाऊँगा कि-'चारुदत्त ने वसन्तसेना का गला घोंट कर मार डाला।' तो जब तक न्यायालय में ही चलता हूँ। (घूम कर और देखकर) वह यह न्यायालय है। इसमें घुसता हूँ। (घुस कर और देखकर) क्या आसन लगा दिये गये हैं? जब तक न्यायालय के अधिकारी आते हैं तब तक इस दूब वाले चबूतरे पर थोड़ी देर बैठ कर प्रतीक्षा करता हूँ।

(उसी प्रकार बैठता है)

शोधनक— (दूसरी ओर घूमकर एवं सामने देखकर) ये न्यायालय के अधिकारी आ रहे हैं। तो उनके पास चलता हूँ। (ऐसा कह कर पास में जाता है)

(उसके बाद श्रेष्ठी तथा कायस्य आदि से घिरा हुआ न्यायाधीश प्रवेश करता है)

अधिकरणिक(न्यायाधीश)— सेठ जी और कायस्थ जी!

श्रेष्ठिकायस्थ— आर्य! आज्ञा दीजिये।

अधिकरणिक— अहो! विवाद (व्यवहार) के पराधीन होने के कारण न्यायाधीशों के द्वारा दूसरों (वादी-प्रतिवादी) के चित्त को जानना कठिन है। (अर्थात् अपराधी लोग सच्ची बात को छिपा देते हैं। अतः सच्चाई का पता लगाना बड़ा मुश्किल है)।

अन्वयः— पुरुषाः, न्यायेन, दूरीकृतम्, कार्यम्, छन्नम्, (कृत्वा), उपक्षिपन्ति; रागाभिभूताः; (ते), अधिकरणे, स्वयम्, स्वान्, दोषान्, न, कथयन्ति; (अतः), पक्षापरपक्षवर्धितबलैः, तैः, दोषैः, न पः, स्प श्यते; संक्षेपात्, द्रष्टुः, अपवादः, एव, सुलभः; गुणः, (तु), दूरतः, (एव)।।३।।

शब्दार्थः— पुरुषाः = मनुष्य, न्यायेन = न्याय से, दूरीकृतम् = रहित, कार्यम् = कार्य को, छन्नम् = छिपा हुआ, (कृत्वा = करके), उपक्षिपन्ति = उपस्थित करते हैं। रागाभिभूताः = आसक्ति अथवा क्रोध के वशीभूत, (ते = वे लोग), अधिकरणे = न्यायालय में, स्वयम् = अपने आप, स्वान् = अपने, दोषान् = दोषों को, न = नहीं, कथयन्ति = बतलाते हैं। (अतः = इसलिये), पक्षापरपक्षवर्धितबलैः = वादी और प्रतिवादी से बढ़ाये गये बल वाले, तैः = उन, दोषैः = दोषों से, न पः = राजा, स्प श्यते = छुआ जाता है (अर्थात् दूषित होता है), संक्षेपात् = संक्षेप से, द्रष्टुः = न्यायाधीश को, अपवादः = अपयश, एव = ही, सुलभः = आसान है; गुणः = यश, (तु = तो), दूरतः = दूर, (एव = ही; है)।।

अर्थः— मनुष्य (वादी तथा प्रतिवादी) न्यास से रहित अर्थात् अनुचित काम को छिपा करके (फैसला के लिये) उपस्थित करते हैं। (अपने प्रयोजन को सिद्ध करने को) आसक्ति अथवा क्रोध के वशीभूत वे लोग न्यायालय में स्वयं अपने दोषों को नहीं बतलाते हैं। इसलिए वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षों से बढ़ाये गये बलवाले उन दोषों से राजा दूषित होता है (अर्थात् दोनों पक्ष जब बात को छिपा कर पेश करते हैं तब राजा भी ठीक-ठीक निर्णय नहीं कर पाता अतः वह भी दोषी ठहरता है)। संक्षेप में न्यायाधीश को अपयश मिलना ही आसान है, यश का मिलना तो दूर रहा।।३।।

टीका— पुरुषाः = स्वपक्षोपस्थापनपराः वादिप्रतिवादिजनाः; न्यायेन = नीत्या सत्येन वा; दूरीकृतम् = वर्जितम्; कार्यम् = अभियोगादिकम्; छन्नम् = असत्यं सत्येनाव तं सत्यमसत्येनाच्छादितम्; कृत्वा = विधाय; उपक्षिपन्ति = उपस्थापयन्ति। रागेण = आसक्त्या क्रोधेन वा अभिभूताः = आक्रान्ताः; रागोपहितचित्ताः इत्यर्थः; ते = वादिप्रतिवादिप्रभ तयः; अधिकरणे = न्यायालये; स्वयम्; स्वान् = आत्मीयान्; दोषान् = अपराधान्; न कथयन्ति = न वदन्ति; न स्वीकुर्वन्ति इत्यर्थः। अतः पक्षापरपक्ष वर्धितबलौ-पक्षः = वादी वादिसम्बद्धजनश्च, अपरपक्षः = प्रतिवादी प्रतिवादिसम्बन्धजनस्य ताभ्यां पक्षापरपक्षाम्याम् = दोषसंस्थापननिराकरणपराभ्यां पक्षविपक्षाम्याम्, वर्धितम् = अधर्माचरणेन व द्धिंगतम्, बलम् = पातनशक्तिः येषां ताद शैः; तैः = व्यवहारविवेचने उपस्थापितैः, दोषैः = पापैः; न पः = राजा, राज्ञः प्रतिनिधिभूतः न्यायाधीशः इत्यर्थ; स्प श्यते = सम्बध्यते। निर्णीतस्य सत्यस्य यथार्थस्य च न्यायायस्य अभावे न्यायाधीशः दोषभाग्भवति। संक्षेपात् = सारतः; किं बहुना

कथनेनेति भावः; द्रष्टुः = निर्णेतुः, व्यवहारदर्शिनः न्यायाधीशस्य; अपंवादः = अयशः; एव; सुलभः = सुखलभ्यः, अनायासप्राप्तः इत्यर्थः; गुणः = प्रशंसा कीर्तिर्वा तु दुरतः एव = दुर्लभः एव।।३।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।३।।

अपि च,—

छन्नं दोषमुदाहरन्ति कुपिता न्यायेन दूरीकृताः स्वान्दोषान्
कथयन्ति नाधिकरणे सन्तो पि नष्टा ध्रुवम्।
ये पक्षापरपक्षदोषसहिताः पापानि संकुर्वते
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुगुणो दूरतः।।४।।

अन्वयः— कुपिताः, (अतः), न्यायेन, दूरीकृताः, (ये, पुरुषाः), अधिकरणे, छन्नम्, दोषम्, उदाहरन्ति; (तथा), स्वान्, दोषान्, न, कथयन्ति; (एभिः, सह, ते), सन्तः, अपि, ध्रुवम्, नष्टाः, (भवन्ति); ये पक्षापरपक्षदोषसहिताः, पापानि, संकुर्वते; संक्षेपात्, द्रष्टुः, अपवादः, एव, सुलभः; गुणः, (तु), दूरतः, एव।।४।।

शब्दार्थः— कुपिता = क्रुद्ध, (अतः = अतएव) न्यायेन = न्याय से, सत्य से, दूरीकृताः = हीन, (ये पुरुष = जो पुरुष), अधिकरणे = न्यायालय में, छन्नम् = छिपे हुए, दोषम् = (दूसरों के) दोष को, उदारहन्ति = उपस्थित करते हैं; (तथा = तथा) स्वान् = अपनी दोषान् = गलतियों को, न कथयन्ति = नहीं कहते हैं; (एभिः सह = इन लोगों के साथ, ते = वे); सन्तः = सज्जन व्यक्ति अपि = भी ध्रुवम् = निश्चय ही, नष्टाः = नष्ट, (भवन्ति = होते हैं); ये जो पक्षापरपक्षदोषसहिताः = वादी एवं प्रतिवादी के दोषों में भागीदार होकर, पापानि = पाप, संकुर्वते = करते है। संक्षेपात् = संक्षेप (मे), द्रष्टुः = न्यायाधीशको, अपवादः = अपयश, एव = ही, सुलभः = आसान है अर्थात् आसानी से मिलता है, गुणः = यश, (तु = तो), दुरतः एव = दूर रहा।।

अर्थः— और भी-

कुपित अतएव न्याय से हीन (जो पुरुष) न्यायालय में छिपा करके (दूसरों के) दोष उपस्थित करते हैं, तथा न्यायालय में अपनी गलतियों को नहीं कहते हैं; (ऐसे लोगों के साथ) वे सज्जन व्यक्ति भी निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं, जो वादी एवं प्रतिवादी के दोष में भागीदार होकर पाप करते हैं। संक्षेप में न्यायाधीश को अपयश मिलना ही आसान है, यश तो दूर रहा।।४।।

टीका— कुपिताः = क्रुद्धाः (अतः = अस्मात् कारणात्), न्यायेन = नीत्या, सत्ये नेत्यर्थः; दूरीकृताः = विरहिताः; ये = ये पुरुषाः इति शेषः, अधिकरणे = न्यायभवने; छन्नम् = असत्यं सत्येन गुप्तं सत्यमसत्येनाव तम्, गुप्तमित्यर्थः; दोषम् = पापम् अपराधं वा, अन्योन्यस्येति शेषः; उदाहरन्ति = वाचनिकैः पत्रलेख्यादिभिर्वा प्रमाणैः उपस्थापयन्ति; तथा स्वान् = निजान्; दोषान् = अपराधन्; न कथयन्ति = न प्रकाशयन्ति। एभिः छलप्रप चनिबद्धहृदयैः जनैः सह; ते सन्तः = साधवः, वस्तुतः अपराधरहिताः न्यायाधीशादयः अपि; ध्रुवम् = अवश्यम्; नष्टाः = पतिताः; भवन्तीति शेषः; ये = साधवः; पक्षाणाम् = वादिपक्षाणाम् अपरपक्षाणाम् = प्रतिवादिपक्षाणाम् दोषेण = पापेन सहिताः = युक्ताः; रागलोभादिना अज्ञानेन वा पक्षापरपक्षाणां दोषैः सहिताः इत्यर्थः; पापानि = अनुचितकार्याणि; संकुर्वते = कुर्वन्ति।

संक्षेपात् = सारतः; द्रष्टुः = न्यायादर्शिनः; अपवादः = अपकीर्तिरेव; दोषः इत्यर्थः; सुलभः = अनायासलभ्यः, गुणः = यशस्तु; दूरतः एव = दुष्प्रापः एव भवतीति।।४।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।४।।

यतो धिकरणिकः खलु

शास्त्रज्ञः कपटानुसारकुशली वक्ता न च क्रोधन-
स्तुल्यो मित्रपरस्वकेषु चरितं द ष्ट्वै दत्तोत्तरः।
क्लीबान्पालयिता शठान्व्यथयिता धर्म्यो न लोभान्वितो
द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयो राज्ञश्च कोपापहः।।५।।

अन्वयः— (अधिकरणिकः), शास्त्रज्ञः, कपटानुसारकुशली, वक्ता, न च क्रोधनः, मित्रपरस्वकेषु, तुल्यः, चरितम्, द ष्ट्वा, एव, दत्तोत्तरः, क्लीबान्, पालयिता, शठान, व्यथयिता, धर्म्यः, न, लोभान्वितः, द्वार्भावे, परतत्त्वबद्धहृदयः, च, राज्ञः, कोपापहः, (भवेत्)।।५।।

शब्दार्थः— (अधिकरणिकः = न्यायाधीशः), शास्त्रज्ञः, = शास्त्रों को जानने वाला, कपटानुसारकुशलीः = कपट को पकड़ने में चतुर, वक्ता = बोलने में चतुर, न च क्रोधनः = क्रोध न करने वाला, मित्रपरस्वकेषु = मित्र, शत्रु एवं अपने लोगों में, तुल्यः = समान रखने वाला, चरितम् = व्यवहार को, द ष्ट्वा = देखकर, एव = ही, दत्तोत्तरः = उत्तर देने वाला, क्लीबान् = दुर्बलों को, पालयिता = पालने वाला, बचाने वाला, शठान् = धूर्तों को, व्यथयिता = दण्ड देने वाला, धर्म्यः = धार्मिक, न लोभान्वितः = निर्लोभी, द्वार्भावे = उपाय रहने पर, परतत्त्वबद्धहृदयः = पूरी सही बात को (खोज निकालने में) दत्तचित्त, च = और, राज्ञः = राजा के, कोपापहः = कोप को नष्ट करने वाला, (भवेत् = होना चाहिये)।।

अर्थः— क्योंकि न्यायाधीश तो

शास्त्रों को जानने वाला; (मनुष्यों को) कपट को पकड़ने में चतुर; वक्ता; क्रोध न करने वाला; मित्र, शत्रु एवं अपने लोगों में समान भाव रखने वाला; (वादी प्रतिवादी के) व्यवहार को देख कर ही उत्तर देने वाला; दुर्बलों का रक्षक; धूर्तों को दण्ड देने वाला; धार्मिक; निर्लोभी; उपाय रहते पूरी सही बात को खोज निकालने में दत्तचित्त एवं राजा के कोप को नष्ट करने वाला होना चाहिए।।

टीका— अधिकरणिकः कीद शः भवितव्यः इति जिज्ञासायां कथयति-अधिकरणिकः; शास्त्राणि = धर्मशास्त्राणि नीतिशास्त्राणि च जानातीति शास्त्रज्ञः = मनुस्म त्यादिशास्त्रमर्मज्ञः; कपटस्य = कैतवस्य, वादिप्रतिवादिविहितस्येति शेषः, अनुसारे = अनुसरणे, ग्रहणे इति यावात्, कुशलः = प्रवीणः, वक्ता = वाग्मी, न च क्रोधनः = क्रोधी, मित्रेषु = सुहृत्सु, परेषु = स्वसम्बन्धरहितेषु शत्रुषु वा, स्वकेषु = स्वसम्बन्धिषु च; शत्रौ मित्रेषु = सुहृत्सु, परेषु = स्वसम्बन्धरहितेषु शत्रुषु वा, स्वकेषु = स्वसम्बन्धिषु च; शत्रौ मित्रे चेत्यर्थः; तुल्यः = समन्यायः न्यास्याग्रे सम्बन्धासम्बन्धविषयेष्वसमीक्ष्यकारी इत्यर्थः; चरितम् = व्यवहारम्; द ष्ट्वा = अवलोक्यैव; दत्तम् = श्रावितम्, उत्तरम् = निर्णयः येन तथाभूतः; क्लीबान् = दुर्बलान्, वित्तरहितानित्यर्थः, पालयिता = रक्षकः; शठान् = दुष्टान्; व्यथयिता = दण्डयिता; घर्माद् अनपेतः धर्म्यः = धर्मानुसारी; धार्मिकः इति यावत्; न लोभेन = त ष्णया अन्वितः = युक्तः, लोभविरहितः इति यावत्; द्वार्भावे-द्वाः = द्वारम्,

उपायः इत्यर्थः, तस्य भावे = उपस्थितौ, उपाये सतीत्यर्थः, परतत्त्वबद्धहृदयः-परम् = उत्कृष्टम् यत् तत्त्वम् = याथार्थ्यं तस्मिन् बद्धः, = संलग्नम्, हृदयम् = चेतः यस्य ताद शः, पूर्ण सत्यम् अन्वेष्टुं दत्तमतिः इति भावः, अथवा परेषाम् = अन्येषाम्, वादिप्रतिवादिनामित्यर्थः, तत्त्वे = यथार्थताज्ञाने बद्धहृदयः = दत्तचित्तः; च = तथा; राज्ञः = शासकस्य; कोपम् = क्रोधम् अपहन्ति = दूरीकरोतीति कोपापहः = क्रोधापसारक; भवेदिति शेषः।।५।।

इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडित छन्द है।।५।।

श्रेष्ठिकायस्थौ— अज्जस्स वि णाम गुणे दोसो त्ति वुच्चदि। जइ एव्वं, ता चंदालोए वि अंधआरो त्ति वुच्चदि। (आर्यस्यापि नाम गुणे दोष इत्युच्यते। यद्येवम्; तदा चन्द्रालोके प्यन्धकार इत्युच्यते।)

अधिकरणिकः— भद्र शोधनक! अधिकरणमण्डपस्य मार्गमादेशय।

शोधनकः— एदु एदु अधिअरणभोइओ! एदु। (एत्वेत्वधिकरणभोजक! एतु।)

(इति परिक्रामन्ति)

शोधनकः— एदं अधिअरणमंडवं। ता पविसंतु अधिअरणभोइआ। (अयमधिकरणमण्डपः, तत्प्रविशन्त्वधिकरणभोजकाः।

(सर्वे च प्रविशन्ति)

अधिकरणिकः— भद्र शोधनक! बहिर्निष्क्रम्य ज्ञायताम्-'कः कः कार्यार्थी, इति।

शोधनकः— जं अज्जो आणवेदि। (इति निष्क्रम्य) अज्जा! अधिअरणिआ भणंति-'को को इध कज्जत्थी' त्ति। (यदार्य आज्ञापयति। आर्याः! अधिकरणिका भणन्ति-'कः क इह कार्यार्थी' इति।)

शकारः— (सहर्षम्) उवत्थिए अधिअलणिए? (साटोपं परिक्रम्य) हग्गे वलपुलिशे मणुश्शे वाशुदेवे लश्टिअशाले लअशाले कज्जत्थी। (उपस्थिता अधिकरणिकाः? अहं वरपुरुषो मनुष्यो वासुदेवो राष्ट्रियश्यालो राजश्यालः कार्यार्थी।)

शोधनकः—(ससंभ्रमम्) हीमादिके, पढमं ज्जेव रट्टिअसालो कज्जत्थी। भोदु, अज्ज! मुहुत्तं चिट्ठ। दाव अधिअरणिआणं णिवेदेमि। (उपगम्य) अज्जा! एसो खु रट्टिअसालो कज्जत्थी ववहारं उवत्थिदो। (हन्त, प्रथममेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी। भवतु, आर्य! मुहुर्तं तिष्ठ। तावदधिकरणिकानां निवेदयामि। आर्याः एष खलु राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी व्यवहारमुपस्थितः।)

अधिकरणिकः— कथं प्रथममेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी?। यथा सूर्योदये उपरागो महापुरुषा नपातमेव कथयति। शोधनक! व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण भवितव्यम्। भद्र! निष्क्रम्योच्यताम्-'गच्छाद्य, न द श्यते तव व्यवहारः' इति।

शोधनकः—जं अज्जो आणवेदि त्ति। (निष्क्रम्य; शकारमुपगम्य) अज्ज! अधिअरणिआ भणंति-'अज्ज! गच्छ। ण दीसदि तव ववहारो त्ति'। (यदार्य आज्ञापयतीति। आर्य! अधिकरणिका भणन्ति-'अद्य गच्छ। न द श्यते तव व्यवहारः'।)

शकारः— (सक्रोधम्) आः, किं ण दीशदि मम ववहाले?। जइ ज दीशदि, तदो आवुत्तं लाआणं पालअं बहिणीवर्दिं विण्णविअं बहिर्णिं अत्तिकं च विण्णविअ एदं अधिअलणिअं दूले फेलिअ एत्थ अण्णं अधिअलणिअं ठावइश्शं। (आः, किं न द श्यते मम व्यवहारः!। यदि

न द श्यते, तदावुत्तं राजानं पालकं भगिनीपतिं विज्ञाप्य भगिर्नी मातरं च विज्ञाप्यैतमधिकरणिकं दूरीकृत्यात्रान्यमधिकरणिकं स्थापयिष्यामि।)

(इति गन्तुमिच्छति)

शोधनकः— अज्ज रट्टिअशालअ! मुहुत्तअं चिट्ठ। दाव अधिअरणिआणं णिवेदेमि। (अधिकरणिकमुपगम्य) एसो रट्टिअशालो कुविदो भणादि। (आर्य राष्ट्रियश्याल! मुहूर्तं तिष्ठ। तावदधिकरणिकानां निवेदयामि। एष राष्ट्रियश्यालः कुपितो भणति।)

(इति तदुक्तं भणति)

अधिकरणिकः— सर्वमस्य मूर्खस्य संभाव्यते। भद्र! उच्यताम्-'आगच्छ, द श्यते तव व्यवहारः'।

शोधनकः—(शकारमुपगम्य) अज्ज! अधिअरणिआ भणंति-'आअच्छ, दीसदि तव ववहारो'; ता पविसदु अज्जो। (आर्य! अधिकरणिका भणन्ति-'आगच्छ; द श्यते तव व्यवहारः'; तत्प्रविशत्वार्यः।)

शकारः— हो, पढमं भणंति - 'ण दीशदि, शंपदं दीशदि' त्ति। ता णाम भीदभीदा अधिअलणभोइआ! जेत्तिअं हग्गे भणिश्शं तेत्तिअं पत्तिआवइश्शं। भोदु, पविशामि (प्रविश्योपस त्य) शुशुहं अम्हाणं, तुम्हाणं पि शुहं देमि णदेमि अ। (ही, प्रथमं भणन्ति न द श्यते, सांप्रतं द श्यत इति। तन्नाम भीतभीता अधिकरणभोजकाः; यद्यदहं भणिष्यामि तत्तत्प्रत्याययिष्यामि। भवतु, प्रविशामि। सुसुखमस्माकम्, युष्माकमपि सुखं ददामि न ददामि च।)

अधिकरणिकः— (स्वगतम्) अहो, स्थिरसंस्कारता व्यवहारार्थिनः। (प्रकाशम्) उपविश्यताम्।

शकारः— आं, अत्तण केलकाशे भूमी। ता जहिं मे लोअदि तहिं उवविशामि। (श्रेष्ठिनं प्रति) एश उवविशामि। (शोधनकं प्रति) णं एत्थ उवविशामि। (इत्यधिकरणिकमस्तके हस्तं दत्त्वा) एश उवविशामि। (आं, आत्मीयैषा भूमिः। तद्यत्र मह्यं रोचते तत्रोपविशामि। एष उपविशामि। नन्वत्रोपविशामि। एष उपविशामि) (इति भूमावुपविशति)

अधिकरणिकः— भवान्कार्यार्थी?

शकारः— अध इं? (अथ किम?)

अधिकरणिकः— तत्कार्यं कथय।

शकारः— कण्णे कज्जं कधइश्शं। एव्वं वडुके मल्लक्कपमाणाह कुडे हग्गे जादे।

लाअशशुले मम पिदा लाआ। तादश्श होइ जामादा।
लाअशि आले हग्गे ममावि बहिणीवदी लाआ।।६।।

(कर्णे कार्यं कथयिष्यामि। एवं ब हति मल्लकप्रमाणस्य कुले हं जातः।
राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
राजश्यालो हं ममापि भगिनीपती राजा।।)

अर्थः—

श्रेष्ठि-कायस्थ— क्या आप के गुणों में भी दोष है, ऐसा कहा जा सकता है अर्थात् क्या आप में भी दोष निकाला जा सकता है? यदि ऐसी बात है तो चाँदनी में भी अँधेरा कहा जा सकता है।

अधिकरणिक— भले मनुष्य शोधनक! न्यायालय का रास्ता बतलाओ।

शोधनक— आइये, आइये, न्यायाधीश महोदय जी! आइये।

(इस प्रकार सभी घूमते हैं)

शोधनक— यह न्यायालय का भवन है, तो माननीय न्यायाधीश प्रवेश करें।

(सभी प्रवेश करते हैं)

अधिकरणिक— भले मनुष्य शोधनक! बाहर जाकर मालूम करो कि-'कौन-कौन से लोग मुकदमा पेश करना चाहते हैं'।

शोधनक— जैसी आप की आज्ञा। (ऐसा कह कर और निकल कर) सज्जनों न्यायाधीश कहते हैं कि-'यहाँ कौन-कौन से लोग मुकदमा पेश करना चाहते हैं?'

शकार— (प्रसन्नता के साथ) न्यायाधीश लोग आ गये? (घमण्ड के साथ चलकर) मैं बड़ा आदमी, मनुष्य, वासुदेव, राजा का शाला, राजश्याल मुकदमा पेश करना चाहता हूँ (कार्यार्थी हूँ)।

शोधनक— (घबराहट के साथ) दुःख है, पहले ही पहल राजा का साला (कार्यार्थी) मुकदमा पेश करने वाला है। अच्छा श्रीमान् जी! क्षण भर ठहरिये। तो न्यायाधीश महोदय से कह दूँ। (न्यायाधीश के पास में जाकर) आर्य! यह राजा का साला कार्यार्थी होकर निर्णय के लिए आया है।

अधिकरणिक— क्यों पहले ही राजा का साला कार्यार्थी है? जैसे सूर्योदय के समय का ग्रहण किसी महान् आदमी की म त्यु को सूचित करता है। वैसे ही इसका सबसे पहले यहाँ आना अशुभ-सूचक है। शोधनक! आज का न्याय-विचार घबराहट से परिपूर्ण होगा। भले मनुष्य! निकल कर कहो-'जाओ' आज तुम्हारा मुकदमा नहीं विचारा जायगा।

शोधनक— जैसी आप की आज्ञा। (निकल कर शकार के पास जाकर) श्रीमान्, जी! न्यायाधीश लोग कहते हैं-'आज जाओ। तुम्हारा मुकदमा नहीं विचारा जायगा।''

शकार— (क्रोध के साथ) आह, मेरा मुकदमा नहीं विचारा जायगा? यदि नहीं विचारा जायगा तो, मैं अपने जीजा, बहन के पति, राजा पालक से कह कर, बहन तथा माता से कह कर इस न्यायाधीश को हटा कर दूसरे न्यायाधीश को नियुक्त करा दूँगा।

(ऐसा कह कर जाना चाहता है)

शोधनक— माननीय राजा के साले जी! क्षण भर रुकिये। जरा न्यायाधीश महोदय से निवेदन करता हूँ। (न्यायाधीश के पास जाकर) यह राजा का साला नाराज होकर कहता है। (ऐसा कह कर जो कुछ उसने कहा था उसे कहता है।)

अधिकरणिक— इस मूर्ख से सब कुछ सम्भावना की जा सकती है। भले आदमी। जाकर उससे कहो-'आओ' तुम्हारा मुकदमा विचारा जायगा।

शोधनक— (शकार के पास जाकर) श्रीमान् जी! न्यायाधीश महोदय कहते हैं कि-'आओ' तुम्हारा मुकदमा देखा (विचारा) जायगा।' तो आप प्रवेश करें।

शकार— पहले कहते थे कि 'नहीं देखा जायगा और अब कहते हैं कि देखा जायगा'-तो निश्चय ही न्यायाधीश महोदय डर गये हैं। (इसलिए) जो जो मैं कहूँगा वह वह सब मान्य करा लूँगा। तो, प्रवेश करता हूँ (प्रवेश करके और न्यायाधीश के पास जाकर) हमारा भली-भाँति सुख है। आप लोगों को भी सुख देता हूँ अथवा नहीं देता हूँ (जैसी मेरी इच्छा)।

अधिकरणिक— (अपने आप) (न्यायालय से निर्णय चाहने वाले) इस कार्यार्थी की निर्भीकता आश्चर्य पैदा करने वाली है! (प्रकट रूप में) बैठिए।

शकार— हाँ यह जमीन अपनी है। तो जहाँ मुझे अच्छा लगेगा वहाँ बैठूँगा। (श्रेष्ठी से) यहाँ मैं बैठूँगा। (शोधनक से) अच्छा यहाँ बैठता हूँ। न्यायाधीश के सिर पर हाथ रखकर यह बैठता हूँ। (ऐसा कह कर जमीन पर बैठता है)

अधिकरणिक— आप निर्णय चाहते हैं?

शकार— और क्या?

अधिकरणिक— तो कार्य बतलाइए।

शकार— कान मे कहूँगा। (क्योकि) महान कुल में उत्पन्न हुआ हूँ।

अन्वयः— मम, पिता, राजश्वसुरः; राजा, तातस्य, जमाता, भवति;, अहम्, राजश्यालः, राजा, अपि, मम, भगिनीपतिः, (अस्ति)।।६।।

शब्दार्थः— मम = मेरे, पिता = पिताजी, राजश्वसुरः = राजा के श्वसुर हैं, राजा = राज्य करने वाला व्यक्ति, तातस्य = पिता के, जमाता = दामाद, भवति = होता है। अहम् = मैं, राजश्यालः = राजा का साला हूँ। राजा = राज्य करने वाला व्यक्ति (पालक), अपि = भी, मम = मेरे, भगिनीपतिः = जीजा हैं।।

अर्थः— मेरे पिता राजा के ससुर हैं। राजा हमारे पिता जी के दामाद होते हैं। मैं राजा का साला हूँ। राजा भी मेरी बहन का पति है।।६।।

टीका— मम = व्यवहारार्थिनः शकारस्य इत्यर्थः; पिता = जनकः; राजश्वसुरः-राज्ञः = शासकस्य पालकस्येत्यर्थः श्वसुरः = स्त्रीपिताः अस्ति। राजा = पालकः इत्यर्थ; तात्स्य = पितुः, जामाता = दुहितुः पतिः, भवति = अस्ति। अहम् = अभियोगं ग हीत्वा स्वयमुपस्थितः; राज्ञः श्यालः = जायाभ्राता; अस्मीतिशेषः; राजापि मम = शकारस्य; भगिन्याः-स्वसुः पतिः = भर्ता; अस्तीति शेषः।।६।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।६।।

अधिकरणिकः— **सर्वं ज्ञायते,**

किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति नितरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः।।७।।

तदुच्यतां कार्यम्।

अन्वयः— कुलेन, उपदिष्टेन, किम्? शीलम्, एव, अत्र, कारणम्; सुक्षेत्रे, कण्टकिद्रुमाः, नितराम्, स्फीताः, भवन्ति।।७।।

शब्दार्थः— कुलेन = कुलके, उपदिष्टेन = कहने से, किम् = क्या? शीलम् = चरित्र, एव = ही, अत्र = यहाँ, न्यायालय में, कारणम् = (निर्णय का) कारण (होता है)। सुक्षेत्रे = सुन्दर खेत में, कण्टकिद्रुमाः = काँटेदार व क्ष, नितराम् = बहुत अधिक, स्फीताः = विशाल, भवन्ति = होते हैं।।

अर्थः—

अधिकरणिक— सब कुछ मालूम है,

खान-दान के कहने से क्या (फायदा)? (क्योंकि मनुष्य का) चरित्र ही यहाँ न्यायालय में (निर्णय का) कारण होता है। सुन्दर उपजाऊ खेत में काँटेदार व क्ष बहुत अधिक बढ़ते हैं।।७।।

तो कार्य बतलाइये।

टीका— कुलेन = वंशेन; उपदिष्टेन = वर्णितेन; किम् = किं प्रयोजनम्? शीलम् = चरित्रम्; एव; अत्र न्यायालये; कारणम् = हेतुः, निर्णयकारणमित्यर्थः। सुक्षेत्रे = उर्वरायां भूमौ; कण्टकिद्रुमाः = कण्टकयुक्ताः व क्षाः; नितराम् = अत्यधिकम्; स्फीताः = विशालाः, बुद्धियुक्ताः इत्यर्थः; भवन्ति = जायन्ते।।७।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।७।।

शकारः— एव्वं भणामि, अवलद्धाह वि ण अ मे किं पि कलइश्शदि, तदो तेण बहिणीवदिणा परितुश्ष्टेण मे कीलिदुं लक्खिदुं शव्वुज्जाणाणं पवले पुप्फकलंडकजिण्णुज्जाणे दिण्णे। तहिं च पेक्खिदुं अणुदिअहं शोशावेदुं शोधावेदुं पोत्थावेदुं लुणावेदुं गच्छामि। देव्वजोएण पेक्खामि, ण पेक्खामि वा, इत्थिआशलीलं णिवडिदं। (एवं भणामि, अपराद्धस्यापि न च मे किमपि करिष्यति, ततस्तेन भगिनीपतिना परितुष्टेन मे क्रीडितुं रक्षितुं सर्वोद्यानानां प्रवरं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं दत्तम्। तत्र च प्रेक्षितुमनुदिवसं शुष्कं कारयितुं पुष्टं कारयितुं लून कारयितुं गच्छामि। दैवयोगेन पश्यामि, न पश्यामि वा, स्त्रीशरीरं निपतितम्।)

अधिकरणिकः— अथ ज्ञायते का स्त्री विपन्नेति?।

शकारः— हंहो अधिअलणभोइआ! किंत्ति ण जाणामि?। तं तादिर्शि णअलमंडणं कंचणशदभूशणिअं केण वि कुपुत्तेण अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो शुण्णं पुप्फकलंडकजिण्णुज्जाणं पवेशिअ बाहुपाशबलक्कालेण वशंतशेणिआ मालिदा, ण मए। (अहो अधिकरणभोजकाः! किमिति न जानामि तां ताद शीं नगरमण्डनं का चनशतभूषणाम्? केनापि कुपुत्रेणार्थकल्यवर्तस्य कारणाच्छून्यं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेना मारिता, न मया।) (इत्यर्धोक्ते मुखमाव णोति)

अधिकरणिकः— अहो नगररक्षिणां प्रमादः। भोः श्रेष्ठिकायस्थौ! न मयेति व्यवहारपदं प्रथममभिलिख्यताम्।

कायस्थः — जं अज्जो आणवेदि। (तथा कृत्वा) अज्ज! लिहिदं। (यदार्य आज्ञापयति। आर्य! लिखितम्।)

शकारः— (स्वगतम्) हीमादिके, उत्तलाअंतेण विअ पाअशपिंडालकेण अज्ज मए अत्ता एव्व णिण्णाशिदो। भोदु, एव्वं दाव। (प्रकाशम्) अहो अधिअलणभोइआ! णं भणामि, मए ज्जेव दिश्टा। किं कोलाहलं कलेध?। (आश्चर्यम्, त्वरां कुर्वाणेनेव पायसपिण्डारकेणाद्य मयात्मैव निर्नाशितः। भवतु। एवं तावत्, अहो अधिकरणभोजकाः! भणामि, मयैव द ष्टा। किं कोलाहलं कुरुत?।) (इति पादेन लिखितं प्रो छति)

अधिकरणिकः— कयं त्वया ज्ञातं यथा खल्वर्थनिमित्तं बाहुपाशेन व्यापादिता?।

शकारः— हंहो, णूणं पडिशूणाए मोघट्ठाणाए गीवालिआए णिशुवण्णकेहिं आहलणट्ठाणेहिं तक्केमि। (हंहो, नूनं परिशून्य या मेघस्थानया ग्रीवालिकया निःसुवर्णकैराभरण-स्थानैस्तर्कयामि।)

श्रेष्ठिकायस्थौः— जुज्जदि विअ। (युज्यत इव।)

शकारः— (स्वगतम्) दिश्टिआ पच्चुज्जीविद म्हि। अविद मादिके। (दिष्ट्या प्रत्युज्जीवितो स्मि। अविद मादिके।)

श्रेष्ठिकायस्थौ— भो! कं एसो ववहारो अवलंबदि?। (भोः, कमेष व्यवहारो वलम्बते?।)

अधिकरणिकः— इह हि द्विविधो व्यवहारः।

श्रेष्ठिकायस्थौ— केरिसो?। (कीद शः?।)

अधिकरणिकः— वाक्यानुसारेण, अर्थानुसारेण च। यस्तावद्वाक्यानुसारेण, स खल्वर्थिप्रत्यर्थिभ्यः। यश्चार्थानुसारेण स चाधिकरणिकबुद्धिनिष्पाद्यः।

श्रेष्ठिकायस्थौ— ता वसंतसेणामादरं अवलंबदि ववहारो। (तद्वसन्तसेनामातरमवलम्बते व्यवहारः।)

अधिकरणिकः— एवमिदम्। भद्र शोधनक! वसन्तसेनामातरमनुद्वेजन्नाह्वय।

शोधनकः— तधा। (इति निष्क्रम्य, गणिकामात्रा सह प्रविश्य) एदु एदु अज्जा। (तथा, एत्वेत्वार्या।)

व द्धा— गदा मे दारिआ मित्तघरअं अत्तणो जोव्वणं अनुभविदुं। एसो उण दीहाऊ भणादि-'आअच्छ, अधिअरणिओ सद्दावेदि; ता मोहपरवसं विअ अत्ताणअं अवगच्छामि। हिअअं मे थरथरेदि। अज्ज! आदेसेहि मे अधिअरणमंडवस्स मग्गं। (गता मे दारिका मित्रग हमात्मनो यौवनमनुभवितुम्। एष पुनदीर्घायुर्भणति-'आगच्छ, अधिकरणिक आह्वयति, तन्मोहप-रवशमिवात्मानमवगच्छामि। हृदयं मे प्रकम्पते। आर्य! आदिश मह्यमधिकरण- मण्डपस्य मार्गम्।)

शोधनकः—एदु एदु अज्जा। (एत्वेत्वार्या।)

(उभौ परिक्रामतः)

शोधनकः—एदं अधिअरणमंडवं। एत्थ पविसदु अज्जा (एषो धिकरणमण्डपः। अत्र प्रविशत्वार्या।)

(इत्युभौ प्रविशतः)

व द्धा— (उपस त्य) सुहं तुम्हाणं भोदु भावमिस्साणं। (सुखं युष्माकं भवतु भावमिश्राणाम्।)

अधिकरणिकः— भद्रे! स्वागतम्; आस्यताम्।

व द्धा— तधा। (तथा।) (इत्युपविष्टा)

शकारः— (साक्षेपम्) आगदाशि वुड्ढकुट्टणि! आगदाशि। (आगतासि व द्धकुट्टनि! आगतासि।)

अधिकरणिकः— अये, त्वं किल वसन्तसेनाया माता।

व द्धा— अध इं। (अथ किम्)

अधिकरणिकः— अथेदानीं वसन्तसेना क्व गता?।

व द्धा— मित्तघरअं। (मित्रग हम्।)

अधिकरणिकः— किंनामधेयं तस्या मित्रम्?।

व द्धा— (स्वगतम्) हद्धी हद्धी; अदिलज्जणीअं खु एदं। (प्रकाशम्) जणस्स पुच्छणीओ अअं अत्थो, ण उण अधिअरणिअस्स। (हा धिक् हा धिक्, अतिलज्जनीयं खल्विदम्। जनस्य प च्छनीयो यमर्थः, न पुनरधिकरणिकस्य।)

अधिकरणिकः— अलं लज्जया; व्यवहारस्त्वां प च्छति।

श्रेष्ठिकायस्थौ— ववहारो पुच्छदि। णत्थि दोसो, कधेहि। (व्यवहारः प च्छति। नास्ति दोषः, कथय।)

व द्धा— कधं ववहारो?। जइ एव्वं, ता सुणंतु अज्जमिस्सा। सो खु सत्थवाहविणअदत्तस्स णत्तिओ, साअरदत्तस्स तणओ, सुगहीदणामहेओ अज्जचारुदत्तो णाम, सेट्ठिचत्तरे पडिवसदि। तहिं मे दारिआ जोव्वणसुहं अणुभवति। (कथं व्यवहारः?। यद्येवं, तदा श्र ण्वन्त्वार्यमिश्राः। स खलु सार्थवाहविनयदत्तस्य नप्ता, सागरदत्तस्य तनयः, सुग हीतनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम, श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति। तत्र मे दारिका यौवनसुखमनुभवति।)

शकारः— शुदं अज्जेहिं?। लिहीअंदु? एदे अक्खला। चालुदत्तेण शह मम विवादे (श्रुतमार्यैः? लिख्यन्तामेतान्यक्षराणि। चारुदत्तेन सह मम विवादः।)

श्रेष्ठिकायस्थौ— चारुदत्तो मित्तो त्ति णत्थि दोसो। (चारुदत्तो मित्रमिति नास्ति दोषः।)

अधिकरणिकः— व्यवहारो यं चारुदत्तमवलम्बते।

श्रेष्ठिकायस्थौ— एव्वं विअ। (अवमिव।)

अधिकरणिकः— धनदत्त! वसन्तसेनार्यचारुदत्तस्य ग हं गतेति लिख्यतां व्यवहारस्य प्रथमः पादः। कथमार्यचारुदत्तो प्यस्माभिराह्वाययितव्यः?। अथवा व्यवहारस्तमाह्वयति। भद्र शोधनक! गच्छ। आर्यचारुदत्तं स्वैरमसंभ्रान्तमनुद्विग्नं सादरमाह्वय प्रस्तावेन—'अधिकरणिकस्त्वां द्रष्टुमिच्छति' इति।।

शोधनकः—जं अज्जो आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः, चारुदत्तेन सह प्रविश्य च)

एदु एदु अज्जो। (यदार्य आज्ञापयति। एत्वेत्वार्यः।)

चारुदत्तः—(विचिन्त्य)

परिज्ञातस्य मे राज्ञा शीलेन च कुलेन च।
यत्सत्यमिदमाह्वानमवस्थामभिशंकते।।८।।

अर्थः—

शकार— अच्छा कहता हूँ। अपराध कर देने पर भी मेरा कोई कुछ नहीं कर सकेगा, तो खुश हुए उन जीजा जी ने मुझे, विहार एवं रक्षा के लिए सभी बगीचों में श्रेष्ठ पुष्प-करण्डक नामक जीर्णोद्यान दिया है। और वहाँ मैं प्रतिदिन देखभाल करने के लिये, सफाई करने के लिए, खाद आदि डालने के लिए तथा कटवाने छँटवाने के लिए जाता हूँ। संयोगवश मैंने वहाँ स्त्री का एक शरीर पड़ा देखा अथवा नहीं देखा।

अधिकरणिक— अच्छा, यह कुछ मालूम पड़ता है कि कौन स्त्री मरी है?

शकार— अहो! न्यायाधीश महोदय! प्रसिद्ध सुन्दरी, नगर की शोभा, सोने के आभूषणों से सुसज्जित उसको क्यों नहीं जानता हूँ? कलेवे जैसे तुच्छ धन के लिए किसी दुर्जन आदमी ने सूने पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में घुस कर बाहु-पाश से बलपूर्वक (दबाकर) वसन्तसेना को मार दिया। मैंने नहीं। (ऐसा आधा करने पर ही मुँह ढक लेता है)।

अधिकरणिक— नगर की रखवाली करने वाले सिपाहियों को असावधानी आश्चर्यजनक है। हे श्रेष्ठि कायस्थ! 'मैंने नहीं' (न मया)' यह अभियोग-शब्द पहले लिख लीजिए।

कायस्थ— जैसी आप की आज्ञा। (लिख कर) श्रीमान् जी! लिख लिया।

शकार— (अपने आप) आश्चर्य है! जल्दी करते हुए मैंने (गरम-गरम) खीर पीने वाले व्यक्ति की भाँति अपना ही नाश कर लिया। अच्छा। तो ऐसा (कहूँ) माननीय न्यायाधीश महोदय! मैं तो यह कहता हूँ कि 'मैंने ही देखा।' क्या हल्ला मचा रहे हो? (ऐसा कह कर लिखे हुए को पैर से पोंछ देता है)।

अधिकरणिक— यह तुमने कैसे जाना कि-'धन के लिए बाहु पाश से मारी गयी?

शकार— श्रीमान् जी! उसकी सूनी एवं खाली गर्दन तथा आभूषण पहनने के स्थानों को सोने की आभूषणों से खाली होने से ऐसा अनुमान करता हूँ।

श्रेष्ठी-कायस्थ— सही सा लगता है (अर्थात् हो सकता है)।

शकार— (अपने आप) सौभाग्य से मैं फिर जीवित सा हो गया हूँ। सन्तोष है।

श्रेष्ठ-कायस्थ— अच्छा यह मुकदमा (व्यवहार) किसी पर आश्रित है अर्थात् इसमें कौन अपराधी है?

अर्थः—

अधिकरणिक— यहाँ दो तरह का व्यवहार है?

श्रेष्ठि-कायस्थ— कैसा?

अधिकरणिक— वादी-प्रतिवादी के बयान के अनुसार होने वाला एवं सही तथ्य के अनुसार होने वाला। जो बयान के अनुसार होता है वह तो वादी-प्रतिवादी (की युक्तियों) से तथा जो सही तथ्य के अनुसार होता है वह न्यायाधीश की अपनी बुद्धि से निर्णय करने के लायक होता है।

श्रेष्ठि-कायस्थ— तब तो यह मुकदमा (व्यवहार) वसन्तसेना की माता पर आश्रित होता है।

अधिकरणिक— ऐसा ही है। भले आदमी शोधनक! वसन्तसेना की माता को बुला लाओ। और उनसे कह देना कि घबड़ाने की जरूरत नहीं है।

शोधनक— बहुत अच्छा (ऐसा कह कर, निकल कर फिर वेश्या वसन्तसेना की माता के साथ प्रवेश करके) आइये, आइये, श्रीमती जी।

वद्धा— मेरी बेटी वसन्तसेना मित्र चारुदत्त के घर अपनी युवावस्था का आनन्द लेने के लिए गयी है। और यह दीर्घायु कहता है-'आओ न्यायाधीश बुला रहे हैं।' इस लिए मैं अपने को मूर्छित सी महसूस कर रही हूँ। मेरा कलेजा काँप रहा है। आर्य! मुझे न्यायालय का रास्ता बतलाइए।

शोधनक— आइये, इधर से आइये श्रीमती जी।

(दोनों घूमते हैं)

शोधनक— यह न्यायालय है। आप इसमें प्रवेश करें।

(इसके बाद दोनों प्रवेश करते हैं)

वद्धा— (पास जाकर) विद्वानों में श्रेष्ठ आप लोगों का कल्याण हो।

अधिकरणिक— भली महिला (आप का) स्वागत है। बैठिये।

वद्धा— अच्छा। (बैठ जाती है)

शकार— (आक्षेप पूर्वक) आ गयी बूढ़ी कुट्टनी आ गयी?

अधिकरणिक— अजी, तुम वसन्तसेना की माता हो?

वद्धा— जी हाँ।

अधिकरणिक— अच्छा, इस समय वसन्तसेना कहाँ गयी है?

वद्धा— मित्र के घर।

अधिकरणिक— उसके मित्र का क्या नाम है?

वद्धा— (अपने आप) हाय, हाय! यह (बात) अत्यन्त लज्जाजनक है। (प्रकट रूप में) यह बात साधारण व्यक्ति के पूछने लायक है, न्यायाधीश के नहीं।

अधिकरणिक— लजाने की बात नहीं। मुकदमा (व्यवहार) तुम से पूछ रहा है (न कि मैं)।

श्रेष्ठि-कायस्थ— मुकदमा (व्यवहार) पूछता है। कोई दोष नहीं है। कहो।

वद्धा— क्या मुकदमा (व्यवहार)? यदि ऐसी बात है तो आदरणीय आप लोग सुनें। वह सार्थवाह विनयदत्त के नाती, सागरदत्त के पुत्र, प्रातःस्मरणीय आर्य चारुदत्त हैं, जो सेठों के चौक में रहते हैं। वहाँ मेरी बेटी जवानी का आनन्द ले रही है।

शकार— सुना श्रीमानों ने? लिखिये इन अक्षरों को। चारुदत्त के साथ मेरा विवाद है।

श्रेष्ठी-कायस्थ— चारुदत्त (वसन्तसेना) का मित्र है, यह कोई दोष नहीं है।

अधिकरणिक— यह मुकदमा (व्यवहार) चारुदत्त पर आश्रित होता है।

श्रेष्ठी-कायस्थ— हाँ, ऐसा ही है।

अधिकरणिक— धनदत्त! (यह कायस्थ का नाम है), 'वसन्तसेना आर्य चारुदत्त के घर गयी है' व्यवहार के इस पहले चरण को लिखिये। क्या हमें आर्य चारुदत्त को भी बुलाना पड़ेगा? अथवा मुकदमा (व्यवहार) उनको बुला रहा है। भले आदमी शोधनक! जाओ! 'प्रसंगवश न्यायाधीश आपको देखना चाहते हैं' ऐसा कहकर आर्य चारुदत्त को बुला लाओ। उनसे यह भी कहना कि वे धीरे-धीरे, बिना घबड़ाये एवं बिना चिन्ता किये आवें।

शोधनक— जैसी आर्य आज्ञा देते हैं (ऐसा कहकर निकलकर और चारुदत्त के साथ प्रवेश करके) आइए, आर्य, आइए

अन्वयः— राज्ञा, शीलेन, च, कुलेन, च, परिज्ञातस्य, मे, यत्, इदम्, आह्वानम्, (अस्ति, तत्) सत्यम्, अवस्थाम्, अभिशंकते।।८।।

शब्दार्थः— राज्ञा = राजा के द्वारा, शीलेन = स्वभाव से, च = और, कुलेन = कुल से, च = भी, परिज्ञातस्य = भली-भाँति जाने गये, मे = मेरा, यत् = जो, इदम् = यह, आह्वानम् = बुलावा (अस्ति = है, तत् = वह), सत्यम् = सचमुच, अवस्थाम् = अवस्था को, अभिशंकते = सन्देह करता है।

अर्थः—

चारुदत्त— (सोचकर) राजा के द्वारा स्वभाव एवं कुल से भली-भाँति जाने गये मेरा जो यह बुलावा है वह सचमुच दरिद्रता के कारण शंका पैदा कर रहा है। (क्योंकि दोष गरीबों पर ही मढ़े जाते हैं।)।।८।।

टीका— राज्ञा = न पेण, राजप्रतिनिधिभूतेन, न्यायाधीशेनेति यावत्; शीलेन = स्वभावेन; च = तथा; कुलेन = सद्वंशेनेत्यर्थः चापि, परिज्ञातस्य = परिचितस्य; मे = मम, चारुदत्तस्येति यावत्; यदिदम् = सम्प्रत्येव प्राप्तम्; आह्वानम् = आकारणम्; अस्ति, तत् = आह्वानमित्यर्थः; सत्यम् = निश्चितम्; अवस्थाम् = दशाम्, 'दरिद्रावस्थामित्यर्थः; अभिशंकते = आशंकते।।८।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।८।।

(सवितर्कं, स्वगतम्)

ज्ञातो नु किं स खलु बन्धनविप्रयुक्तो
मार्गागतः प्रवहणेन मयापनीतः।
चारेक्षणस्य न पतेः श्रुतिमागतो वा
येनाहमेवमभियुक्त इव प्रयामि।।९।।

अन्वयः— बन्धनविप्रयुक्ताः, मार्गागतः, सः, मया, प्रवहणेन, अपनीतः, (अयम्, विषयः), किम्, नु, खलु, चारेक्षणस्य, न पतेः, ज्ञातः, वा, श्रुतिम्, आगतः; येन, अहम्, अभियुक्तः, इव, एवम्, प्रयामि।।९।।

शब्दार्थः— बन्धनविप्रयुक्तः = कारागार से छूटा हुआ, मार्गागतः = मार्ग के क्रम से आया हुआ, सः = वह (आर्यक), मया = मेरे द्वारा, प्रवहणेन = गाड़ी से, अपनीतः = दूसरी जगह पहुँचा दिया गया, (अयम् = यह, विषयः = विषय), किम् = क्या; नु = यह सोचने विचारने की अवस्था को सूचित करने के लिए आया है, खलु = यह वाक्य को सुन्दर बनाने के लिये आया है; चारेक्षणस्य = दूत रूपी आँखों वाले, न पतेः = राजा को, ज्ञातः = मालूम हो गया? वा = अथा, श्रुतिम् = (उनके) कान को, आगतः = पहुँच गया? येन = जिससे, अहम् = मैं, अभियुक्तः = अपराधी, इव = जैसा, एवम् = इस प्रकार, प्रयामि = जा रहा हूँ।।

(तर्क-वितर्क के साथ अपने आप)

अर्थः— कारागार से छूटा हुआ आर्यक रास्ते में मेरे पास आया और मैंने अपनी गाड़ी से उसे दूसरी जगह पहुँचा दिया-क्या यह बात दूत रूपी आँखों वाले राजा को मालूम हो गयी अथवा उन्होंने सुन लिया। जिससे कि मैं अपराधी के समान इस प्रकार (न्यायालय में) जा रहा हूँ।।९।।

टीका— बन्धनात् = काराग हात् विप्रयुक्तः = मुक्तः, निःस त्य पलायितः इत्यर्थः; मार्गेण = पथा; मार्गक्रमेण, आगतः = आयातः, मम समीपे प्राप्तः; सः = आर्यकः; मया = चारुदत्तेन; प्रवहणेन = शकटेन; अपनीतः = स्थानान्तरं प्रापितः; अयं विषयः; किम्; नु = वितर्के, खल्विति वाक्यालंकारे; चाराः = दूताः एव ईक्षणम् = नयनम् यस्य तस्य; न पतेः = राज्ञः; ज्ञातः = विदितः; वा = अथवा; श्रुतिम् = श्रवणम्; आगतः = प्रातः कर्णपरम्परया श्रुतः वेत्यर्थः; येन = येन हेतुना; अहम् = चारुदत्तः, अभियुक्तः = अपराधस्य सम्पादनेन अभियोगदूषितः जनः इव, एवम् = इत्थम्, अधिकरणिकेन आहूतः सन्; प्रयामि = अधिकरणमण्डपं गच्छामि।।९।।

इस श्लोक में रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।९।।

अथवा किं विचारितेन?। अधिकरणमण्डपमेव गच्छामि। भद्र शोधनक! अधिकरणस्य मार्गमादेशय।

शोधनकः— एदु एदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः।)

(इति परिक्रामतः)

चारुदत्तः— (सशंकम्) तत्किमपरम्?

रूक्षस्वरं वाशति वायसो य-
ममात्यभ त्या मुहुराह्वयन्ति।
सव्यं च नेत्रं स्फुरति प्रसह्य
ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति।।१०।।

अर्थः— अथवा विचार करने से क्या लाभ? न्यायालय में ही चलता हूँ। भले आदमी शोधनक! न्यायालय के मार्ग को बतलाओ।

शोधनक— आइये, आइये, आर्य।

(ऐसा कह कर घूमते हैं)

अन्वयः— अयम्, वायसः, रूक्षस्वरम्, वाशति; अमात्यभ त्याः, मुहुः, आह्वयन्ति; च, सव्यम्, नेत्रम्, च, स्फुरति; अनिमित्तानि, हि, प्रसह्य, मम, खेदयन्ति।।१०।।

शब्दार्थः— अयम् = यह, वायसः = कौवा, रूक्षस्वरम् = रूखी बोली में, वाशति = चिल्ला रहा है। अमात्यभ त्याः = मन्त्रियों के सेवक (अर्दली), मुहुः = बार-बार, आह्वयन्ति = बुला रहे हैं। सव्यम् = बायीं, नेत्रम् = आँख, च = भी, स्फुरति = फड़क रही है। अनिमित्तानि = अपशकुन, हि = निश्चित ही, प्रसह्य = जबर्दस्ती, मम = मुझे, खेदयन्ति = उदास बना रहे हैं।।

अर्थः—

चारुदत्त— (शंका के साथ) तब यह और क्या?

यह कौआ रूखी बोली में चिल्ला रहा है, मन्त्रियों के सेवक बार-बार बुला रहे हैं तथा मेरी बायीं आँख फड़क रही है और ये अपशकुन जबर्दस्ती मुझे उदास बना रहे हैं।।१०।।

टीका— अयम् = पुरो वर्तमानः इत्यर्थ; वायसः = काकः, रूक्षस्वरम् = नीरसशब्दम्, कर्कशं तथा तथेति यावत्; वाशति = शब्दायते! अमात्यानाम् = राजनियुक्तानाम् अधिकरणभोजकानाम् भ त्याः = सेवकाः, सम्प्रतिव्यवहारे 'अर्दली' तिख्याताः न्यायालयभ त्याः; मुहुः = बारम्बारम्; आह्वयन्ति = आकारयन्ति। सव्यम् = वामम्, नेत्रम् = लोचन च; स्फुरति = स्पन्दते; पुरुषाणां वामनयनस्य स्फुरणमशुभसूचकं शास्त्रे वर्णितमस्ति। किमधिकम्? अनिमित्तानि = अपशकुनानि, दुर्लक्षणानि; हि = निश्चितम्; प्रसह्य = बलात्; मम = मां चारुदत्तमित्यर्थः; खेदयन्ति = क्लेशयन्ति।।१०।।

इस श्लोक में समुच्चयालंकार एवं उपजाति छन्द है।।१०।।

शोधनकः—एदु एदु अज्जो सैरं असंभंतं। (एत्वेत्वार्यः स्वैरमसंभ्रान्तम्।)

चारुदत्तः— (परिक्रम्याग्रतो वलोक्य च)

शुष्कव क्षस्थितो ध्वाङ्क्ष आदित्याभिमुखस्तथा।
मयि चोदयते वामं चक्षुर्घोरमसंशयम्।।११।।

अर्थः—

शोधनक— आप बिना घबराहट के एवं स्वतन्त्रता के साथ आइये।

अन्वयः— शुष्कव क्षस्थितः, तथा, आदित्याभिमुखः ध्वाङ्क्षः, मयि, वामम्, चक्षुः, चोदयते; असंशयम्, घोरम्, (वर्तते)।।११।।

शब्दार्थः— शुष्कव क्षस्थितः = सूखे व क्ष पर बैठा हुआ, तथा = और, आदित्याभिमुखः = सूर्य की ओर मुँह किये हुए, ध्वाङ्क्षः = कौवा, मयि = मेरे ऊपर, वामम् = बायीं, चक्षुः = आँख, को चोदयते = डाल रहा है। असंशयम् = निश्चय ही, घोरम् = भयंकर, विपत्ति (वर्तते = है)।

अर्थः—

चारुदत्त— (घूम कर तथा आगे देख कर)

सूखे व क्ष पर सूर्य की ओर मुँह करके बैठा हुआ यह कौवा मेरे ऊपर अपनी बायीं आँख डाल रहा है। निश्चय ही कोई भयंकर विपत्ति है।।११।।

टीका— शुष्कव क्षे = नीरसपादपे स्थितः = वर्तमानः; तथा = एवम्; अभि = अभिगतम्, सम्मुखे वर्तमानमित्यर्थः; मुखम् = आननं यस्य सः अभिमुखः, आदित्यस्य सूर्यस्य अभिमुखः सन्; ध्वाङ्क्षः = काकः; मयि = चारुदत्ते; वामम् = सव्यम्; चक्षुः = नेत्रम्; चोदयते = प्रेरयति; असंशयम् = अवश्यमेव; घोरम् = भयंरम्, दारुणं भयमित्यर्थः;।।११।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।११।।

(पुनरन्यतो वलोक्य) अये! कथमयं सर्पः?।

मयि विनिहितद ष्टिर्भिन्ननीला जनाभः
स्फुरितविततजिह्वः शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः।
अभिपतति, सरोषो जिह्मिताध्मातकुक्षि-
र्भुजगपतिरयं मे मार्गमाक्रम्य सुप्तः।।१२।।

अन्वयः— भिन्ननीला जनाभः, स्फुरितविततजिह्वः, शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः, मे, मार्गम्, आक्रम्य, सुप्तः, अयम्, भुजगपतिः, सरोषः, जिह्मिताध्मातकुक्षिः, (तथा), मयि, विनिहितद ष्टिः, (सन्), अभिपतति।।१२।।

शब्दार्थः— भिन्ननीला जनाभः = खूब फेंटे गये काले आँजन के समान रंगवाला, स्फुरितविततजिह्वः = निकली हुई जीभ को लपलपाता हुआ, शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः = सफेद-सफेद चार दाँतों वाला, मे = मेरे; मार्गम् = रास्ते को, आक्रम्य = घेर कर, सप्तः = पड़ा हुआ, अयम् = यह, भुजगपतिः = बहुत बड़ा साँप, सरोषः = क्रुद्ध, जिह्मिताध्मातकुक्षिः = टेढ़ा और फूला पेट वाला, (तथा = और) मयि = मुझपर, विनिहितद ष्टिः = आँख लगाने वाला, (सन् = होता हुआ), अभिपतति = झपट रहा है।।

अर्थः— (फिर दूसरी ओर देख कर) अरे! क्या यह साँप?

खूब फेंटे गये काले आँजन के समान रंग वाला, निकली हुई जीभ को लपलपाता हुआ, सफेद-सफेद चार दाँतों वाला, मेरे रास्ते में फैल कर पड़ा हुआ यह बहुत बड़ा साँप क्रोधपूर्वक हवा से फूले हुए पेट को टेढ़ा करता हुआ मुझ पर आँख लगाये मेरी ओर झपट रहा है।।१२।।

टीका— भिन्ननीला जनाभः-भिन्नम् = म दितम् नीलम् = नीलवर्णम् यत् अ जनम् = कज्जलम् तस्य आभा इव आभा = कान्तिः यस्य ताद शः; स्फुरितविततजिह्वः-स्फुरिता = च चला वितता = विस्त ता, मुखाद्बहिनिःसारितेत्यर्थः; जिह्वा = रसना यस्य ताद शः; शुक्लम् = शुभ्रम् दंष्ट्राणाम् = दशनानाम्, विषयुक्तानामिति यावत्; चतुष्कम् = चतुष्टयम् यस्य सः; मे =

मम; मार्गम् = पन्थानम्; आक्रम्य = अभिव्याप्येत्यर्थः; सुप्तः = पतितः इत्यर्थः; सुप्तः इत्यस्य निद्राणः इत्यर्थे अभिपतनानुपपत्तिः; अयम् = पुरो वर्तमानः; भुजगानाम् = सर्पाणाम् पतिः = स्वामी; विशालकायः सर्पः इति यावत्; सरोषः-रोषेण = क्रोधेन सहितः = युक्तः सरोषः = क्रुद्धः; अतः; जिह्मितः = वक्रीकृतः आध्यामातः = वायुना पूरितः कुक्षिः = उदरम् यस्य ताद शः; तथा मयि = चारुदत्ते; विनिहता = समर्पिता द ष्टिः = लोचनं येन तथा भूतः सन् अभिपतति = अभिमुखमागच्छति, आक्रमणं करोतीत्यर्थः।।१२।।

इस श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार एवं मालिनी छन्द है।।१२।।

अपि च, इदम्

स्खलति चरणं भूमौ न्यस्तं न चार्द्रतमा मही
स्फुरति नयनं, वामो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते।
शकुनिरपरश्चायं तावद्विरौति हि नैकशः
कथयति महाघोरं म त्युं न चात्र विचारणा।।१३।।

अन्वयः— भूमौ, न्यस्तम्, चरणम्; स्खलति; मही, च, आर्द्रतमा, न, (वर्तते), नयनन्, स्फुरति; वामः, बाहुः, च, मुहुः, विकम्पते; अयम्, अपरः, शकुनिः, च, तावत्, नैकशः विरौति; (एतत्, सर्वम्), महाघोरम्, म त्युम्, कथयति; अत्र, च, विचारणा, न, (अस्ति)।।१३।।

शब्दार्थः— भूमौ = जमीन पर, न्यस्तम् = रखा हुआ, चरणम् = पैर, स्खलित = फिसल रहा है। मही = भूमि, च = भी, आर्द्रतमा = अधिक गीली, न = नहीं, (वर्तते = हैं)। नयनम् = (बायीं) आँख, स्फुरति = फड़क रही है। वामः = बाँया, बाहुः = बाहु। च = भी, मुहुः = बार-बार, विकम्पते = काँप रहा है। अयम् = यह, अपरः = दूसरा, शकुनिः = पक्षी, च = भी, तावत् = वस्तुतः, नैकशः = बारम्बार, विरौति = चिल्ला रहा है। (एतत् = यह, सर्वम् = सब); महाघोरम् = भयंकर, म त्युम् = म त्यु को, कथयति = कह रहा है, सूचना दे रहा। अत्र = इसमें, विचारणा = विचार, सन्देह, न = नहीं, (अस्ति = है)।।१३।।

अर्थः— और भी, यह -

जमीन पर रखा हुआ पैर फिसल रहा है-किन्तु भूमि भी गीली नहीं है। (बायीं) आँख फड़क रही है तथा बाँया बाहु बार-बार काँप रहा है। और यह दूसरा पक्षी भी बारम्बार चिल्ला रहा है। ये सब भयंकर म त्यु की सूचना दे रहे हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।।१३।।

टीका— भूमौ = प थिव्याम्; न्यस्तम् = स्थापितम्; दत्तमिति यावत्; चरणम् = पादः, स्खलति = भ्रश्यति। मही = प थिवी; च = अपि; आर्द्रतमा = अत्यधिकम् जलक्लिन्ना अत्यार्द्रा इत्यर्थः; न वर्तते = नास्ति। नयनम् = नेत्रम्; स्फुरति = स्पन्दते। पुरुषाणां वामनेत्रस्फुरणं न शुभावहमित्युक्तं पुरा। वामः = दक्षिणेतरः; विकम्पते = स्फुरति। पराजयसूचकमेतत्। अयम् = पुरो वर्तमानः; अपरः = काकातिरिक्तः कश्चिदन्यः; शकुनिः = पक्षिश्चः तावत् नैकशः = मुहुः; विरौति = विकटं शब्दायते; रुदतीत्यर्थः। एतत्सर्व महाघोरम् = अतिभयंकरम्; म त्युम् = मरणम्; कथयति = निर्दिशति। अत्र = अस्मिन् विषये; विचारणा = तर्कः; सन्देहः इति भावः; न = नास्ति।।१३।।

इस श्लोक में विभावना एवं काव्यलिंग अलंकार तथा हरिणी छन्द है। छन्द का लक्षण-नसमरसला गः षड्वेदै र्हयैर्हरिणी मता।।१३।।

सर्वथा देवताः स्वस्ति करिष्यन्ति।

शोधनकः— एदु एदु अज्जो। इमं अधिअरणमंडवं पविसदु अज्जो। (एत्वेत्वार्यः। इममधिकरणमण्डपं प्रविशत्वार्यः।)

चारुदत्तः—(प्रविश्य, समन्तादवलोक्य) अहो, अधिकरणमण्डपस्य परा श्रीः। इह हि

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलं दूतोर्मिशंखाकुलं
पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरं नागाश्वहिंस्राश्रयम्।
नानावाशककंकपक्षिरचितं कायस्थसर्पास्पदं
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिंस्रैः समुद्रायते।।१४।।

अर्थः— सब प्रकार से देवता कल्याण करेंगे।

शोधनक— आर्य! आइये, आइये। यह न्यायालय है। आप इसमें प्रवेश करें।

चारुदत्त— (घुसकर और चारों ओर देखकर) अहा! न्यायालय की अत्यन्त अच्छी शोभा है। क्योंकि यहाँ—

अन्वयः— चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसंलिलम्, दूतोर्मिशंखाकुलम्; पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरम्, नागाश्वहिंस्राश्रयम्, नानावाशककंकपक्षिरचितम्, कायस्थसर्पास्पदम्, नीतिक्षुण्णतटम् च, राजकरणम्, हिंस्रैः, समुद्रायते।।१४।।

शब्दार्थः— चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलम् = सोच-विचार में लगे एवं डूबे हुए मन्त्री ही जिनमें जल है; दूर्तोर्मिशंखाकुलम् = जो लहर तथा शंख जैसे दूतों से भरा है, पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरम् = जहाँ चारों ओर (न्यायालय के किनारों पर) रहने वाले गुप्तचर ही नक्र और मगर हैं, नागाश्वहिंस्राश्रयम् = जहाँ हाथी घोड़े रूपी भयंकर जन्तु मौजूद हैं, नानावाशकक-कंपक्षिरचितम् = जो बहुत तरह से बोलने वाले (वादी-प्रतिवादी रूपी) ककंपक्षियों से भरा हुआ है, कायस्थसर्पास्पदम् = कायस्थरूपी साँपों का घर, नीतिक्षुण्णतटम् = राजनीति से टूटा हुआ है किनारा जिसका ऐसा, राजकरणम् = कचहरी, हिंस्रैः = घातक लोगों के कारण, समुद्रायते = समुद्र के समान लग रहा है।।

अर्थः— सोच-विचार में लगे एवं डूबे हुए मन्त्री ही जिमसें जल हैं, जो लहर तथा शंख जैसे दूतों से भरा है, जहाँ चारों ओर रहने वाले गुप्तचर ही नक्र और मगर हैं, जहाँ हाथी-घोड़े रूपी भयंकर जन्तु मौजूद हैं, जो बहुत तरह से बोलने वाले (वादी-प्रतिवादी रूपी) कंक पक्षियों से भरा हुआ है, कायस्थ रूपी साँपों का घर, राजनीति से टूटा हुआ है किनारा (मर्यादा) जिसका ऐसा यह राजकरण (कचहरी) घातक लोगों के कारण समुद्र के समान लग रहा है।।१४।।

टीका— चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलम्-चिन्तायाम् = तत्त्वार्थविनिर्णयविचारणे, आसक्ताः = संलग्नाः, अत एव निमग्नाः = तल्लीनाः, मन्त्रिणः = परामर्शदातारः, दूताः = संदेशहराः, एव ऊर्मयः = वीचयः, शंखाः = कम्बवश्च, अथवा ऊर्म्यूढाः शंखाः, तैः आकुलम् = परिव्याप्तम्ः पर्यन्तेषु = प्रान्तभागेषु, स्थिताः = वर्तमानाः, चाराः = गूढपुरुषाः, गुप्तचराः इत्यर्थः, ते एव नक्राः = कुम्भीराः, मकराः = स्वनाम-प्रसिद्धाः जलजन्तुविशेषाश्च यत्र तत्; नागाः = हस्तिनः अश्वाः = वाजिनश्च ते एव हिंस्राः = हिंस्रजन्तवः तेषाम् आश्रयः = स्थितिः, नाना = बहुविधाः, वाश्यन्ते इति वाशकाः = शब्दं कुर्वन्तः वादिप्रतिवादिजनाः एव कंकपक्षिणः = मांसप्रियाः पक्षिविशेषाः तैः रचितम् = व्याप्तम्। कायस्थाः = लेखनोपजीविनः इत्यभिप्रायः,

ते एव सर्पाः = भुजगाः, तेषाम् आस्पदम् = स्थानम् उभयत्र कौटिल्येन साम्यमवगन्तव्यम्। नीतिः = नयः, सामादिरूपः इत्यर्थः, तया क्षुण्णम् = भग्नम्, तटम् = मर्यादा यस्य तत्; चेतिपादपूरकम्; राजकरणम् = न्यायाधिकरणम्, हिंस्रैः = हिंसाशीलैः प्राणिभिः; समुद्रायते = समुद्रः इव आचरति।।१४।।

इस श्लोक में उपमा एवं रूपक अलंकार का संकर है तथा प्रयुक्त छन्द का नाम है-शार्दूलविक्रीडित।।१४।।

भवतु। (प्रविश्य शिरोभिघातमभिनीय, सवितर्कम्) अहह, इदमपरम्

सव्यं मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा।
पन्थाः सर्पेण रुद्धो यं, स्वस्ति चास्मासु दैवतः।।१५।।

अन्वयः— मे, सव्यम्, चक्षुः, स्पन्दते; तथा, वायसः, विरौति; अयम्, पन्थाः, सर्पेण, रुद्धः, अस्मासु, दैवतः, स्वस्ति; (भविष्यति)।।१५।।

शब्दार्थः— मे = मेरी, सव्यम् = बाँयी, चक्षुः = आँख, स्पन्दते = फड़क रही है। तथा = और, वायसः = कौवा, विरौति = चिल्ला रहा है। पन्थाः = रास्ता, सर्पेण = साँप से, रुद्धः = रुका हुआ है। अस्मासु = मेरे ऊपर अर्थात् मेरा, दैवतः = भाग्य से, स्वस्ति = कल्याण, (भविष्यति = होगा)।।

अर्थः— अच्छा। (प्रवेश करते हुए शिर टकराने का अभिनय करके सोच-विचार के साथ) ओह, यह दूसरा (अपशकुन)-

मेरी बायीं आँख फड़क रही है तथा कौवा चिल्ला रहा है एवं रास्ता साँप से रुका हुआ है। मेरा भाग्य से ही कल्याण होगा।।१५।।

टीका— मे = मम, चारुदत्तस्येत्यर्थः, सव्यम् = वामम्; चक्षुः = नेत्रम्; स्पन्दते = स्फुरति। तथा वायसः = काकः; विरौति = रूक्षं शब्दं करोतीत्यर्थः। अयम् = एषः, पुरोवर्तमानः; पन्थाः = मार्गः; सर्पेण = अहिना, रुद्धः आक्रान्तः; अस्तीतिशेषः; अस्मासु = अस्माकमित्यर्थः; दैवतः = भाग्यादेव; स्वस्ति = कल्याणं भविष्यतीति।।१५।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।१५।।

तावत्प्रविशामि। (इति प्रविशति)

अधिकरणिकः— अयमसौ चारुदत्तः। य एषः

घोणोन्नतं मुखमपांगविशालनेत्रं
नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम्।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु
नह्याकृतिः सुसद शं विजहाति व त्तम्।।१६।।

अन्वयः— घोणोन्नतम्, अपांगविशालनेत्रम्, एतत्, मुखम्, हि, अकारणदूषणानाम्, भाजनम्, न, (भवितुम्, शक्नोति); (यतः) नागेषु, गोषु, तुरगेषु, तथा नरेषु, आकृतिः, सुसद शम्, व त्तम्, नहि, विजहाति।।१।६।

शब्दार्थः— घोणोन्नतम् = ऊँची नाक से युक्त, अपांगविशालनेत्रम् = विशाल कोनों वाली आँखों से युक्त, एतत् = यह, मुखम् = मुँह, हि = निश्चय ही, अकारण-दूषणानाम् = विना कारण के ही, अपराधों का, भाजनम् = पात्र (अर्थात् कर्ता), न = नहीं, (भवितुं शक्नोति = हो

सकता है)। (यतः = क्यों कि), नागेषु = हाथियों में, गोषु = गायों या बैलों में, तुरगेषु = घोड़ों में, तथा = और, नरेषु = मनुष्यों में, आकृतिः = चेहरा (आकार), सुसद शम् = अपने योग्य, व त्तम् = आचरण को, नहि = नहीं, विजहाति = त्यागता है।।

अर्थः— तो प्रवेश करता हूँ (ऐसा कह कर प्रवेश करता है)

अधिकरणिक— यह है वह चारुदत्त। जो यह-

ऊँची नाक से युक्त तथा विशाल कानों वाली आँखों से युक्त यह मुँह (अर्थात् चारुदत्त) निश्चय ही बिना कारण के अपराधों को कर्ता नहीं हो सकता। क्योंकि हाथी, गाय, घोड़ा तथा मनुष्य का चेहरा (आकार) अपने योग्य आचरण का त्याग नहीं करता (अर्थात् सुन्दर चेहरा अनुचित काम नहीं कर सकता)।।१६।।

टीका— घोणा = नासिका, उन्नता = उद्गता यस्मिन् तत्, घोणया नासिका उन्नतम् = ऊर्ध्वंगतम् वा; शुकच चुवत्प्रशस्तनासिकमित्यर्थः; अपांगयोः = नेत्रान्तयोः विशाले = दीर्घे नेत्रे = नयने यत्र ताद शम्; एतेन नेत्रयोः दीर्घत्वमुक्तम्; एतत् = चारुदत्त-सम्बन्धि; मुखम् = आननम्; हि = निश्चितम्; अकारणेन = हठेन, अरोपितानाम् = दोषाणाम्, अपराधानामित्यर्थः भाजनम् = पात्रम्, कर्त्ता इति यावत्; नहि भवितुं शक्नोतीति शेषः। यतः नागेषु = गजेषु; गोषु = व षभेषु धेनुषु च; तुरगेषु = अश्वेषु, तथा = अपि च; नरेषु = मनुष्येषु; आकृतिः = आकारः; शरीरनिर्माणमित्यर्थः; सुसद शम् = योग्यम्; आकृत्यनुसारमित्यर्थः; व त्तम् = अचारणम्; नहि विजहाति = नहि त्यजति।।

इस श्लोक में दीपक तथा अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।१६।।

चारुदत्तः—भोः! अधिकृतेभ्यः स्वस्ति। एंहो नियुक्ताः! अपि कुशलं भवताम्?।

अधिकरणिकः— (ससंभ्रमम्) स्वागतमार्यस्य। भद्र शोधनक! आर्यस्यासनमुपनय।

शोधनकः—(आसनमुपनीय) इदं आसणं। एत्थ उवविसदु अज्जी। (इदमासनम्। अत्रोपविशत्वार्यः।)

(चारुदत्त उपविशति)

शकारः— (सक्रोधम्) आगदेशि ले इश्तिआघादआ! आगदेशि?। अहो णाए ववहालेः धम्मे ववहाले जं एदाह इश्थिआघादकाह आशणे दीअदि। (सगर्वम्) भोदु णं दीअदु। (आगतो सि रे स्त्रीघातक! आगतो सि?। अहो न्याय्यो व्यवहारः, अहो धर्म्यो व्यवहारः; यदेतस्मै स्त्रीघातकायासनं दीयते। भवतु, ननु दीयताम्।)

अधिकरणिकः— आर्य चारुदत्त! अस्ति भवतो स्या आर्याया दुहित्रा सह प्रसक्तिः प्रणयः प्रीतिर्वा?।

चारुदत्तः— कस्याः?।

अधिकरणिकः— अस्या। (इति वसन्तसेनामातरं दर्शयति)

चारुदत्तः— (उत्थाय) आर्ये! अभिवादये।

व द्धा— जाद! चिरं मे जीव। (स्वगतम्) अअं सो चारुदत्तो। सुणिक्खित्तं खु दारिआए जोव्वणं। (जात! चिरं मे जीव। अयं स चारुदत्तः। सुनिक्षिप्तं खलु दारिकया यौवनम्।)

अधिकरणिकः— आर्या! गणिका तव मित्रम्?।

(चारुदत्तो लज्जां नाटयति)

शकारः—

लज्जाए भीलुदाए वा चालित्तं अलिए णिगूहिदुं।
शअं मालिअ अत्थकालणाए दाणिं गूहदि ण तं हि भश्टके।।१७।।

(लज्जया भीरुतया वा चारित्रमलीकं निगूहितुम्।
स्वयं मारयित्वार्थकारणादिदानीं गूहति न तद्धि भट्टकः।।)

अर्थः—

चारुदत्त— अधिकारियों का कल्याण हो। कर्मचारियों! आप लोग कुशल से तो हैं?

अधिकरणिक— (जल्दी के साथ) आर्य का स्वागत है। भले आदमी शोधनक! आर्य (चारुदत्त) को आसन लाकर दो।

शोधनक— (आसन पास लाकर) यह आसन है। आप इस पर बैठें। (चारुदत्त बैठता है)

शकार— (क्रोध के साथ) आ गया रे स्त्री मारने वाला! आ गया? अहो! कैसा न्यायपूर्ण व्यवहार है, कैसा धर्मपूर्ण व्यवहार (मुकदमे का विचार) है, जो कि इस स्त्री मारने वाले को आसन दिया जा रहा है। अच्छा, तो दीजिये।

अधिकरणिक— आर्य चारुदत्त! क्या आपका इन श्रीमती की लड़की (वसन्तसेना) के साथ घनिष्ठ प्रेम, प्रेम अथवा साधारण मित्रता है?

चारुदत्त— किसकी?

अधिकरणिक— इनकी (ऐसा कह कर वसन्तसेना की माता को दिखलाता है)।

चारुदत्त— (उठकर) आर्ये! प्रणाम करता हूँ।

व द्धा— मेरे बेटे! बहुत दिन तक जियो। (अपने आप) यही वह चारुदत्त है। (तब तो बेटी ने अपना यौवन भली प्रकार से (अर्थात् योग्य हाथों में) सौंपा है।

अर्थः—

अधिकरणिक— आर्य! वेश्या (वसन्तसेना) तुम्हारी मित्र है?

(चारुदत्त लजाने का अभिनय करता है)

अन्वयः— अर्थकारणात्, स्वयम्, मारयित्वा, इदानीम्, (त्वम्), लज्जया, वा, भीरुतया, अलीकम्, चारित्रम्, निगूहितुम् (यतसे); (किन्तु) भट्टकः, हि, तत्, न, गूहति।।१७।।

शब्दार्थः— अर्थकारणात् = घन के लिये, स्वयम् = अपने आप, मारयित्वा = मारकर, इदानीम् = इस समय, (त्वम् = तुम), लज्जया = लज्जा के कारण, वा = अथवा, भीरुतया = डर के कारण, अलीकम् = अप्रिय, चरित्रम् = चरित को, निगूहितुम् = छिपाने के लिये, (यतसे = कोशिश कर रहे हो। किन्तु = परन्तु) भट्टकः = स्वामी (राजा अथवा न्यायाधीश, हि = निश्चित ही, तत् = उसको, न = नहीं, गूहति = छिपायेगा।।

अर्थः—

शकार— धन के लिये वसन्तसेना को स्वयं मार कर इस समय तू लज्जा अथवा डर के कारण अपने बुरे चरित को छिपाने की कोशिश कर रहा है। किन्तु राजा अथवा न्यायाधीश उसको नहीं छिपायेगा अर्थात् सारी बातें वह अवश्य प्रकट कर देगा।।१७।।

टीका— अर्थकारणादिति-अर्थस्य = धनस्य कारणात् = हेतोः; धनार्थमिति यावत्; स्वयम् = आत्मना मारयित्वा = हत्वा; वसन्तसेनामिति शेषः; इदानीम् = सम्प्रति; त्वम्, लज्जया = व्रीडया; वा = अथवा; भीरुतया = दण्डस्य भयेन; अलीकम् = अप्रियम्, कुत्सितमिति यावत्; चारित्रम् = चरितम्, कार्यमित्यर्थः; आत्मनः इति शेषः; निगूहितुम् = गोपायितुम्; यतसे इति शेषः; किन्तु; भट्टकः = स्वामी; राजा पालकः न्यायाधीशः वा; हि = निश्चितम्; तत् = अलीकम्; न = नहि; गूहति = अपह्नूते।।१७।।

इस श्लोक में वैतालीय छन्द है।।१७।।

श्रेष्ठिकायस्थौ— अज्जचारुदत्त! भणाहि। अलं लज्जाए; ववहारो खु एसो। (आर्य चारुदत्त! भण। अलं लज्जया। व्यवहारः खल्वेषः।)

चारुदत्तः— (सलज्जम्) भो अधिकृताः! मया कथमीद शं वक्तव्यम्-यथा गणिका मम मित्रमिति?। अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्र्यम्।

अधिकरणिकः—

व्यवहारः सविघ्नो यं त्यज लज्जां हृदि स्थिताम्।
ब्रूहि सत्यमलं धैर्यं छलमत्र न ग ह्यते।।१८।।

अन्वयः— श्रेष्ठी-कायस्थ— आर्य चारुदत्त! बोलिये। लज्जा नहीं करनी चाहिये। यह मुकदमा (व्यवहार) है।

अर्थः—

चारुदत्त— (लज्जा के साथ) हे अधिकारियों! मेरे द्वारा यह कैसे कहा जा सकता है कि वेश्या मेरी मित्र है? अथवा इस विषय में यौवन ही दोषी है, न कि चरित्र।

अन्वयः— अयम्, व्यवहार, सविघ्नः, (अतः) हृदि, स्थिताम्, लज्जाम्, त्यज; सत्यम्, ब्रूहि; धैर्यम्, अलम्; अत्र, छलम्, न, ग ह्यते।।१८।।

शब्दार्थः— अयम् = यह, व्यवहार मुकदमा, सविघ्नः = संकटों से भरपूर (है), (अतः = इसलिए); हृदि = हृदय में, स्थिताम् = वर्तमान, लज्जाम् = लज्जा को, त्यज = छोड़ो। सत्यम् = सच-सच, ब्रूहि = बोलो। धैर्यम् = धीरज, अलम् = व्यर्थ है। अत्र = यहाँ, छलम् = छल-कपट, न = नहीं, ग ह्यते = ग्रहण किया जाता, माना जाता।

अर्थः—

अधिकरणिक— यह मुकदमा (व्यवहार) संकटों से भरपूर है (अतः) हृदय में वर्तमान लज्जा छोड़ो। सच-सच बोलो। धैर्य धारण कर चुप रहना ठीक नहीं। यहाँ छल-कपट को नहीं माना जाता है।।१८।।

टीका— अयम् = एषः, प्रचलितः इत्यर्थः; व्यवहारः = अभियोगविचारः; सविघ्नः = विघ्नैः पूर्णः; वर्तते। अतः हृदि = हृदये; स्थिताम् = वर्तमानाम्; लज्जाम् = व्रीडाम्, त्यज = मु च। सत्यम् = यथार्थम्; ब्रूहि = वद। धैर्यम् = गाम्भीर्यम्; अलम् = व्यर्थम्। अत्र = अस्मिन् न्यायालये; छलम् = छद्म न ग ह्यते = न स्वीक्रियते।।१८।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।

अलं लज्जया, व्यवहारस्त्वां प च्छति।

चारुदत्तः—अधिकृत! केन सह मम व्यवहारः?।

शकारः— (साटोपम्) अले! मए शह ववहाले। (अरे! मया सह व्यवहारः।)

चारुदत्तः—त्वया सह मम व्यवहारः सुदुःसहः।

शकारः— अले इश्तिआघादआ! तं तादिर्शि लअणशदभूशणिअं वशंतशेणिअं मालिअ शंपदं कवडकावडिके भविअ णिगूहेशि?। (अरे स्त्रीघातक! तां ताद शीं रत्नशतभूषणां वसन्तसेनां मारयित्वा, सांप्रतं कपटकापटिको भूत्वा, निगूहसि?।)

चारुदत्तः—असंबद्धः खल्वसि।

अधिकरणिकः— आर्यचारुदत्त! अलमनेन; ब्रूहि सत्यम्। अपि गणिका तव मित्रम्?।

चारुदत्तः—एवमेव।

अधिकरणिकः— आर्य! वसन्तसेना क्व?।

चारुदत्तः—ग हं गता।

श्रेष्ठिकायस्थौ— कघं गदा, कदा गदा, गच्छंती वा केण अणुगदा?। (कथं गता, कदा गता, गच्छन्ती वा केनानुगता?।)

चारुदत्तः—(स्वगतम्) किं प्रच्छन्नं गतेति ब्रवीमि?।

श्रेष्ठिकायस्थौ— अज्ज! कधेहि। (आर्य! कथय।)

चारुदत्तः—ग हं गता। किमन्यद्ब्रवीमि?।

शकारः— मम केलकं पुप्फकलंडकजिण्णुज्जाणं पवेशिअ अत्थणिमित्तं बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा। अए! शंपदं वदशि घलं गदेत्ति?। (मदीयं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं प्रवेश्यार्थनिमित्तं बाहुपाशबलात्कारेण मारिता। अये! सांप्रतं वदसि ग हं गतेति?।)

चारुदत्तः— आः, असंबद्धप्रलापिन्?

अभ्युक्षितो सि सलिलैर्न बलाहकानां
चाषाग्रपक्षसद शं भ शमन्तराले।
मिथ्यैतदाननमिदं भवतस्तथाहि
हेमन्तपद्ममिव निष्प्रभतामुपैति।।१६।।

अर्थः— लज्जा मत करो। मुकदमा (व्यवहार) तुमसे पूछता है।

चारुदत्त— अधिकारी! किसके साथ मेरा मुकदमा (व्यवहार) है?

शकार— (घमण्ड के साथ) अरे! मेरे साथ व्यवहार है।

चारुदत्त— तुम्हारे साथ मेरा मुकदमा (व्यवहार) होना दुःसह्य है।

शकार— और स्त्री का बध करने वाले! अत्यन्त सुन्दरी रत्न जटित सैकड़ों आभूषण पहनी हुई उस वसन्तसेना को मार कर इस समय कपट पूर्वक धूर्त बनकर छिपा रहे हो?

चारुदत्त— तू असंगत बात कहने वाला है।

अधिकरणिक— आर्य चारुदत्त! इसे रहने दो। सच बतलाओ। क्या वेश्या वसन्तसेना तुम्हारी मित्र है?

चारुदत्त— हाँ, ऐसा ही है।

अधिकरणिक— आर्य! वसन्तसेना कहाँ है?

चारुदत्त— घर गयी।

श्रेष्ठी-कायस्थ— कैसे गयी, कब गयी और जाती हुई उसके साथ कौन गया?

चारुदत्त— (अपने आप) क्या कह दूँ कि 'छिप कर गयी'?

श्रेष्ठी-कायस्थ— आर्य! बतलाइये।

चारुदत्त— घर गयी। और क्या कहूँ?

शकार— मेरे पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में ले जाकर धन के लिये बलात् बाहुपाश में जकड़कर मार डाला है। अरे! अब कहता है कि 'घर गयी'।

अन्वयः— एतत्, मिथ्या, (अस्ति); तथा हि, बलाहकानाम्; सलिलैः, अभ्युक्षितः, न, असि; तथापि, अन्तराले, चाषाग्रपक्षसद शम्, भवतः, इदम्, आननम्, हेमन्तपद्मम्, इव, निष्प्रभताम्, उपैति।।१६।।

शब्दार्थः— एतत् = यह, मिथ्या = झूठा, (अस्ति = है); तथाहि = उदाहरणार्थ, बलाहकानाम् = बादलों के सलिलैः = जल से, अभ्युक्षितः = भीगे, न = नहीं, असि = हो; (किन्तु = परन्तु), अन्तराले = (कहने के) बीच में, चाषाग्रपक्षसद शम् = नीलकण्ठ पक्षी की पाँख के छोर के समान, भवतः = आपका, इदम् = यह, आननम् = मुँह, हेमन्तपद्मम् = हेमन्त ऋतु में कमल, इव = जैसा, भ शम् = एकदम, निष्प्रभताम् = मलिनता को, उपैति = प्राप्त हो रहा है।।

अर्थः—

चारुदत्त— अरे! अनर्गल बकने वाले!

यह एकदम झूठा है; उदाहरणार्थ,-तुम बादलों के जल से भीगे नहीं हो, (किन्तु फिर भी इस बात को) कहने में नीलकण्ठ पक्षी की पाँख के छोर के समान आप का यह मुँह हेमन्त ऋतु में कमल की तरह एकदम मलिन हो रहा है।।१६।।

टीका— एतत् = इदम्, भवतः वचनम्; मिथ्या = असत्यम्; अस्तीति शेषः। तथाहि = एतस्माद्धेतोः, उदाहरणाय वा; बलाहकानाम् = मेघानाम्; सलिलैः = जलैः; अभ्युक्षितः = सिक्तः; न असि = न वर्तसे; तथापि त्वम्; अन्तराले = कथनमध्ये; पक्षे अन्तरिक्षे च; चाषः = किकीदिविः, पक्षिविशेषः, 'नीलकण्ठ' इति ख्यातः; तस्य अग्रपक्षः = पक्षाग्रम्, तस्य सद शम् = तुल्यम्; भवतः = श्रीमतः; दुष्टस्य अनुपकारिणः शकारस्य कृते आदरार्थाभिधायकः भवच्छशब्दप्रयोगः उपहासाभिव्य जकः; इदम् = एतत्, प्रवदनपरमित्यर्थः; आननम् = मुखम्; हेमन्तस्य = हेमन्तर्तोः पद्मम् = कमलमिव, हेमन्ते कमलानि तुषारपातेन निष्प्रभतां प्राप्नुवन्ति; निष्प्रभताम् = कान्तिशून्यताम्; उपैति = प्राप्नोति।।१६।।

इस श्लोक में उपमा एवं विभावना अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।।१६।।

अधिकरणिकः— (जनान्तिकम्)

तुलनं चाद्रिराजस्य समुद्रस्य च तारणम्।
ग्रहणं चानिलस्येव चारुदत्तस्य दूषणम्।।२०।।

(प्रकाशम्) आर्यचारुदत्तः खल्वसौ कथमिदमकार्यं करिष्यति?। ('घोणा-' (६/१६) इत्यादि पठति)

अन्वयः— चारुदत्तस्य, दूषणम्, अद्रिराजस्य, तुलनम्, समुद्रस्य, तारणम्, अनिलस्य, ग्रहणम्, इव, (वर्तते)।।२०।।

शब्दार्थः— चारुदत्तस्य = चारुदत्त का, दूषणम् = दोष अर्थात् दोष निकालना, अद्रिराजस्य = हिमालय के, तुलनम् = तौलने, समुद्रस्य = समुद्र के, तारणम = तैर कर पार कराने, अनिलस्य = हवा को, ग्रहणम् = पकड़ने, इव = जैसा, (वर्तते = है)।।

अर्थः—

अधिकरणिक— (अलग से)

चारुदत्त का दोष निकालना पर्वतराज हिमालय के तौलने के समान, समुद्र को तैर कर पार करने के समान एवं हवा को पकड़ने के समान है (अर्थात् चारुदत्त को दोषी ठहराना आसान बात नहीं है)।।२०।।

(प्रकट रूप में) यह आर्य चारुदत्त हैं, भला ये इस कुकृत्य को कैसे करेंगे? ('घोणा' ६/१६ इत्यादि श्लोक पढ़ता है)।

टीका— चारुदत्तस्य = कुलेन आचरणेन चातिनिर्मलस्य चारुदत्तस्येत्यर्थः; दूषणम् = दोषनिःसारणम्; चारुदत्ते दोषारोपणमिति यावत्; अद्रिराजस्य = नगाधिराजस्य हिमालयस्य; तुलनम् = तुलया गुरुत्वमापनमिव; समुद्रस्य = सागरस्य; तारणम् = सन्तरणेन अपरपारे प्रापणमिव; अनिलस्य = वायोः; ग्रहणम् = करे धारणमिव; वर्तते इति।।२०।।

इस श्लोक में मालोपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२०।।

शकारः— किं पक्खवादेण? ववहाले दीशदि। (किं पक्षपातेन व्यवहारो द श्यते।)

अधिकरणिकः— अपेहि, मूर्ख!

वेदार्थान्प्राकृतस्त्वं वदसि, न च ते जिह्वा निपतिता,
मध्याह्ने वीक्षसे र्कं, न तव सहसा द ष्टिर्विचलिता।
दीप्ताग्नेः पाणिमन्तः क्षिपसि, स च ते दग्धो भवति नो
चारित्र्याच्चारुदत्तं चलयसि, न ते देहं हरति भूः।।२१।।

अर्थः—

शकार— क्या पक्षपात के साथ मुकदमा (व्यवहार) देखा जाता है?

अन्वयः— त्वम्, प्राकृतः, (सन्), वेदार्थान्, वदसि, (किन्तु), ते, जिह्वा, न, च, निपतिता; मध्यान्हने, अर्कम्, वीक्षसे, (किन्तु), सहसा, तव, द ष्टिः, न, विचलिता; दीप्ताग्नेः, अन्तः, पाणिम्, क्षिपसि, (किन्तु), ते, सः, दग्धः, नो, भवति; चारुदत्तम्, चारित्र्यात्, चलयसि, (किन्तु, भूः, ते देहम्, न हरति।।२१।।

शब्दार्थः— त्वम् = तू, प्राकृतः = नीच, (सन् = होता हुआ), वेदार्थान् = वेदों के अर्थों को, वदसि = कह रहा है, (किन्तु = फिर भी), ते = तेरी, जिह्वा = जीभ, न च = नहीं, निपतिता = गिरी। मध्यान्हने = दोपहर के समय में, अर्कम् = सूर्य को, वीक्षसे = देख रहा है, किन्तु, सहसा = एकाएक, तव = तुम्हारी, द ष्टिः = आँख, न विचलिता = चौंधिया नहीं गयी। दीप्ताग्नेः = धधकती आग के, अन्तः = बीच में, पाणिम् = हाथ को, क्षिपसि = डाल रहा है, (किन्तु, ते = तेरा, सः = वह (हाथ), दग्धः = जला हुआ, नो = नहीं, भवति = हो रहा है। चारुदत्तम् = चारुदत्त को, चारित्र्यात् = चरित्र से, चलयसि = भ्रष्टा कर रहा है, किन्तु, भूः = प थिवी, ते = तुम्हारी, देहम् = देह को, न हरति = छिपा नहीं लेती।।

अर्थः—

अधिकरणिक— हट, मूर्ख!

तू नीच होकर भी वेदों का अर्थ कह रहा है, परन्तु तेरी जीभ नहीं गिरी। तू दोपहर के समय सूर्य को देख रहा है; किन्तु एकाएक तुम्हारी आँख चौंधिया नहीं गयी। तू धधकती आग के बीच में अपना हाथ डाल रहा है, किन्तु तेरा हाथ जल नहीं जा रहा है। तू

चारुदत्त को चरित्र से भ्रष्ट कर रहा है अर्थात् बतला रहा है, परन्तु प थिवी तुम्हारी देह को अपने भीतर छिपा नहीं लेती।।२१।।

टीका— त्वम् = पुरो वर्तमानः शकारः; प्राकृतः = नीचः, सन्; वेदार्थान् = श्रुत्यर्थान्, वदसि = कथयसि; किन्तु ते = तव; जिह्वा = रसना; न च निपतिता = न च भ्रष्टा। नीचस्य हि वेदार्थकथने जिह्वापातः वेदार्थसद शस्य चारुदत्तनाम्नः उच्चारणे तव नीचस्य जिह्वापातः भाव्यः, मध्यान्हे = मध्यदिने; अर्कम् = सूर्यम्; वीक्षसे = पश्यसि; तथापि सहसा = झटिति; तव = ते; द ष्टिः = नेत्रम; न विचलिता = न विनष्टा। दीप्ताग्नेः = प्रज्वलिताग्नेः; अन्तः = मध्ये; पाणिम् = हस्तम्, क्षिपसि = प्रवेशयसि; किन्तु ते = तव नीचस्य; सः = पाणिश्च; दग्धः = भस्मीभूतः; नो = नहि; भवति = जायते। चारुदत्तम् = कीर्तिधवलं चारुदत्तमित्यर्थः; चारित्र्यात् = लोकाभिनन्दितात् चरितात्; चालयसि = च्यावयसि; किन्तु भूः = प थिवी; ते = पापिनः शकारस्य; देहम् = शरीरम्; न हरति = स्वान्ते न ग ह्णाति।।२१।।

इस श्लोक में निदर्शना तथा विशेषोक्ति अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-सुमधुरा। लक्षण- म्रौ म्नौ मो नो गुरुश्चेद्वसुशररसैरुक्ता ससुमधुरा।।२१।।

आर्यचारुदत्तः कथमकार्यं करिष्यति?।

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि।
स श्रेयसां कथमिवैकनिधिर्महात्मा
पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम्।।२२।।

अन्वयः— हि, येन, समुद्रम्, उदकोच्छ्रयमात्रशेषम्, कृत्वा, अनपेक्षितानि, धनानि, दत्तानि; श्रेयसाम्, एकनिधिः, सः, महात्मा, धनार्थम्, अवैरिजुष्टम्, पापम्, कथमिव, करिष्यति?।।२२।।

शब्दार्थः— हि = क्योंकि, येन = जिसके द्वारा, समुद्रम = समुद्र को, उदकोच्छ्रय-मात्रशेषम् = जल को ढेरमात्र शेष, कृत्वा = बनाकर, अनपेक्षितानि = बिना माँगे गये, धनानि = धन, दत्तानि = दे दिये गये। श्रेयसाम् = कल्याणों का, एकनिधिः = सबसे महान् आश्रय, सः = वह, महात्मा = सज्जन (चारुदत्त), धनार्थम् = धन के लिये, अवैरिजुष्टम् = शत्रुओं के द्वारा भी अकरणीय, पापम् = पाप को, कथमिव = कैसे, करिष्यति = करेगा।।

अर्थः— आर्य चारुदत्त कैसे पाप काम करेंगे?।

क्योंकि, जिसने रत्न दानकर करके समुद्र को केवल जल का ढेर मात्र बनाकर बिना माँगे ही बहुत धन दे डाला; कल्याणों का सबसे महान् आशय वही महात्मा चारुदत्त धन के लिये कैसे इस पाप को करेगा? जिस को कि शत्रु भी नहीं कर सकते।।२२।।

टीका— हि = यतः; येन = चारुदत्तेन; समुद्रम् = सागरम्; उदकेन = जलेन उदकस्य = जलस्य वा उच्छ्रय = उच्चता, औन्नत्यमित्यर्थः, तन्मात्रम् = तदेव शेषः = अवशिष्टम् यस्य तम्; कृत्वा = विधाय; अनपेक्षितानि = अनभिलषितानि, अयाचितानीति यावत्; घनानि = अर्थाः; बहुवचनमत्र वैविध्यसूचनार्थम्; दत्तानि = समर्पितानि, वितीर्णानीत्यर्थः; श्रेयसाम् = कल्याणानाम् पुण्यानाम् वा एकः = अद्वितीयः निधिः = आकर, अद्वितीयाश्रयः इत्यर्थः; सः = जगति प्रसिद्धः; महात्मा = महाशयः, चारुदत्तः इत्यर्थः; धनार्थम् = वित्ताय; वित्तय; अवैरिजुष्टम्-वैरिणा = शत्रुणा न जुष्टम् = न सेवितम् न कृतमित्यर्थः; पापम् = नीचं कर्म; कथमिव = केन प्रकारेण; करिष्यति = विधास्यति।।२२।।

इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार तथा वसन्ततिलका छन्द है।।२२।।

व द्धा— हदास! जो तदाणिं णासीकिदं सुवण्णभंडअं रतिं चोरेहिं अवहिदं ति तस्स कारणादो चदुस्समुद्दस रभूदं रअणावलि देसि, सा दाणिं अत्थकल्लवत्तस्स कालणादो इमं अकज्जं करेदि?। हा जादे! एहि मे पुत्ति!। (हताश! यस्तदानीं न्यासीकृतं सुवर्णभाण्डं रात्रौ चौरैरपहृतमिति तस्य कारणाच्चतुःसमुद्रसारभूतां रत्नावलीं ददाति, स इदानीमर्थकल्यवर्तस्य कारणादिदमकार्यं करोति?। हा जाते! एहि मे पुत्रि!।) (इति रोदिति)

अधिकरणिकः— आर्य चारुदत्त! किमसौ पद्भ्यां गता, उत प्रवहणेनेति?।

चारुदत्तः—ननु प्रत्यक्षं न गता। तन्न जाने किं पद्भ्यां गता, उत प्रवहणेनेति।

(प्रविश्य, सामर्षः)

वीरकः—

पादप्पहारपरिभवविमाणणाबद्धगरुअवेरस्स।
अणुसोअंतस्स इअं कधं पि रत्ती पभादा मे।।२३।।

पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य।
अनुशोचत इयं कथमपि रात्रिः प्रभाता मे।।

अर्थः—

व द्धा— अभागा! जिसने उस समय धरोहर के रूप में रखे हुए सोने के जेवरों के डिब्बे को चोरों के चुरा लेने पर उसके बदले में चारों समुद्रों की सार रूप रत्नावली दे दी थी, वही इस समय कलेवा के समान तुच्छ धन के लिए इस कुकृत्य को करेगा? हाय बेटी! आओ मेरी पुत्री! (ऐसा कह कर रोती है)।

अधिकरणिक— आर्य चारुदत्त! क्या वह पैदल गयी अथवा गाड़ी से?

चारुदत्त— मेरे सामने नहीं गयी। तो मैं नहीं जानता कि पैदल गयी अथवा गाड़ी से।

अन्वयः— पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य, अनुशोचतः, मे, इयम्, रात्रिः, कथमपि, प्रभाता।।२३।।

शब्दार्थः— पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य = पैर से मारने के अनादर से होने वाले अपमान के द्वारा बहुत बड़ा वैर बांधने वाले, (अतः), अनुशोचतः = सोच करने वाले, मे = मेरी, इयम् = यह, रात्रिः = रात, कथमपि = किसी तरह से, प्रभाता = प्रभातवाली हो गयी अर्थात् बीत गयी।।

(प्रवेश करके, क्रोधपूर्वक)

अर्थः—

वीरक— (चन्दनक के द्वारा) पैर से मारने के अनादर से होने वाले अपमान के द्वारा बहुत बड़ा वैर बाँधने वाले मुझ वीरक की सोचते हुए ही यह रात किसी तरह से बीती है।।२३।।

टीका— पादेति-पादेन = चरणेन प्रहारः = ताडनम्, तेन, चन्दनकस्येति शेषः, यः परिभवः = तिरस्कारः तेन या विमानना = अवमानना, क्षोभ, इति यावत्, तया बद्धम् = स्वीकृतम् गुरुकम् = महत् वैरम् = शत्रुत्वम् येन तस्य; अतः अनुशोचतः = चिन्तां कुर्वतः, मे = मम, वीरकस्य इत्यर्थः; इयम् = अद्यैव व्यतीता; रात्रिः = निशा; कथमपि = येन केनापि रूपेण, असुखेनेति यावत्; प्रभाता = प्रभातरूपेण परिणता, व्यतीतेति यावत्।।२३।।

इस श्लोक में गाथा छन्द है।।२३।।

ता जाव अधिअरणमंडवं उपसप्पामि। (प्रवेष्टकेन) सुहं अज्जमिस्साणं।

तद्यावदधिकरणमण्डपमुपसर्पामि। सुखमार्यमिश्राणाम्।)

अधिकरणिकः— अये! नगररक्षाधिकृतो वीरकः। वीरक! किमागमनप्रयोजनम्?।

वीरकः— ही, बंधणभेअणसंभमे अज्जकं अण्णेसंतो, ओवाडिदं पवहणं वच्चदि त्ति विआरं करंतो अण्णेसंतो, 'अरे! तुए वि आलोइदे, मए वि आलोइदव्वो' त्ति भणंतो ज्जेव चंदणमहत्तरएण पादेण ताडिदोम्हि। एदं सुणिअ अज्जमिस्सा पमाणं। (ही, बन्धनभेदनसंभ्रमे आर्यकमन्वेषयन्, अपवारितं प्रवहणं व्रजतीति विचारं कुर्वन्नन्वेषयन्, 'अरे! त्वयाप्यालोकितम्, मयाप्यालोकितव्यम्' इति भणन्नेव चन्दनमहत्तरकेण, पादेन ताडितो स्मि। एतच्छ्रुत्वार्यमिश्राः प्रमाणम्।

अधिकरणिकः— भद्र! जानीषे कस्य तत्प्रवहणमिति?।

वीरकः— इमस्स अज्जचारुदत्तस्स। वसंतसेणा आरूढा पुप्फकरंडकजिण्णुज्जाणं कीलिदुं णीअदि त्ति पवहणवाहएण कहिदं। (अस्यार्यचारुदत्तस्य। वसन्तसेनारूढा पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं क्रीडितुं नीयत इति प्रवहणवाहकेन कथितम्।)

शकारः— पुणो वि शुदं अज्जेहिं?। (पुनरपि श्रुतमार्यैः?।)

अधिकरणिकः—

एष भो! निर्मलज्योत्स्नो राहुणा ग्रस्यते शशी।
जलं कूलावपातेन प्रसन्नं कलुषायते।।२४।।

अर्थः— इसलिए न्यायालय में चलता हूँ। (हाथ उठाकर) विद्वान् पुरुषों! आपका कल्याण हो।

अधिकरणिक— अरे! नगर की रखवाली के लिए नियुक्त वीरक है। वीरक! तुम्हारे आने का क्या कारण है?

वीरक— अहो! कारागार तोड़कर जल्दी में भागने वाले आर्यक को ढूँढते हुए 'ढकी हुई गाड़ी जा रही है' यह विचार करते हुए तथा तलाशी लेते हुए (निरीक्षण करते हुए) महान् चन्दनक ने उस समय मुझे लात से मारा जब कि मैं उससे कह ही रहा था कि—'अरे तूने चन्दनक ने भी गाड़ी देख ली मुझे भी देख लेनी चाहिए'।

अधिकरणिक— भले आदमी! जानते हो वह किसकी गाड़ी थी?

वीरक— इन आर्य चारुदत्त की। गाड़ीवान् ने कहा कि-'इस पर बैठी हुई वसन्तसेना पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में क्रीडा करने के लिये ले जायी जा रही हैं।

शकार— महानुभावों! आपने फिर भी सुन लिया?

अन्वयः— भो! निर्मलज्योत्स्नः, एषः, शशी, राहुणा, ग्रस्यते; कूलावपातेन, प्रसन्नम्, जलम्, कलुषायते।।२४।।

शब्दार्थः— भो! = दुःख है! निर्मलज्योत्स्नः = निर्मल चाँदनी वाला, एषः = यह, शशी = चन्द्रमा, राहुणा = राहु के द्वारा, ग्रस्यते = ग्रसा जा रहा है। कूलावपातेन = तट के गिरने से, प्रसन्नम् = निर्मल, जलम् = जल, कलुषायते = गन्दा हो रहा है।

अर्थः—

अधिकरणिक— दुःख है! निर्मल चाँदनी वाला यह चन्द्रमा राहु के द्वारा ग्रसा जा रहा है। तट के

गिरने से निर्मल जल गन्दा हो रहा है। अर्थात् दुर्भाग्य के कारण निर्मल चरित्र वाला चारुदत्त कलंकित हो रहा है।।२४।।

टीका— भो! इति खेदाभिव्य जकमव्ययपदम्। निर्मला = विमला, शुभ्रेति भावः, ज्योत्स्ना = चन्द्रिका यस्य ताद शः; एषः = अयम्, पुरो वर्तमानः; शशी = चन्द्रः; राहुणा = सैंहिकेयेन, दुष्टग्रह-रूपेण शकारेण इत्यर्थः; ग्रस्यते = ग्रासविषयीक्रियते। कूलावपातेन-कूलस्य = तटस्य अवपातेन = पतनेन; प्रसन्नम् = सुनिर्मलम्; जलम् = सलिलम्; कलुषायते = मलिनायते।।२४।।

इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२४।।

वीरक! पश्चादिह भवतो न्यायं द्रक्ष्यामः। य एषो धिकरणद्वार्यश्वस्तिष्ठति, तमेनमारुह्य गत्वा पुष्पकरण्डकोद्यानं द श्यतामस्ति तत्र काचिद्विपन्ना स्त्री न वेति।

वीरकः— जं अज्जो आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः, प्रविश्य च) गदोम्हि तहिं। दिट्ठं च मए एत्थिआकलेवरं सावएहिं विलुप्पंतं। (यदार्य आज्ञापयति। गतो स्मि तत्र। द ष्टं च मया स्त्रीकलेवरं श्वापदैर्विलुप्यमानम्।)

श्रेष्ठिकायस्थौ— कध तुए जाणिदं इत्थिआकलेवरं त्ति?। (कथं त्वया ज्ञातं स्त्रीकलेवरमिति?।)

वीरकः— सावसेसेहिं केसहत्थपाणिपादेहिं उवलक्खिदं मए। (सावशेषैः केशहस्तपाणिपादैरुपलक्षितं मया।)

अधिकरणिकः— अहो! धिक् वैषम्यं लोकव्यवहारस्य

यथा यथेदं निपुणं विचार्यते तथा तथा संकटमेव द श्यते।
अहो सुसन्नव्यवहारनीतयो, मतिस्तु गौः पंकगतेव सीदति।।२५।।

अर्थः— वीरक! हम लोग बाद में तुम्हारे मुकदमे (अभियोग) पर विचार करेंगे। न्यायालय के दरवाजे पर जो यह घोड़ा बँधा है, उस पर चढ़ कर पुष्पकरण्डक नामक बगीचे में जाकर देखो कि वहाँ कोई मरी हुई स्त्री है अथवा नहीं।

वीरक— जैसी श्रीमान् की आज्ञा। (ऐसा कह कर निकल जाता है और पुनः प्रवेश करके) गया था वहाँ। वहाँ पर मैंने हिंसक जन्तुओं के द्वारा खाये जाते हुए स्त्री के शरीर को देखा है।

श्रेष्ठी-कायस्थ— तुमने कैसे जाना कि (वह) स्त्री का शरीर था?

वीरक— (खाने से) बाकी बचे हुए शिर के बालों, हाथों और पैरों से मैंने समझ लिया।

अन्वयः— इदम्, यथा, मथा, निपुणम्, विचार्यते; तथा, तथा, संकटम्, एव, द श्यते; अहो! व्यवहारनीतयः, सुसन्नः, (भवन्ति); तु, मतिः, पंकगता, गौः, इव, सीदति।।२५।।

शब्दार्थः— इदम् = यह (मुकदमा), यथा = जैसे, यथा = जैसे, निपुणम् = सावधानी से, विचार्यते = विचारा जाता है; तथा = वैसे, तथा = वैसे, संकटम् = संकटपूर्ण उलझा हुआ, एव = ही, द श्यते = दिखलायी देता है। अहो! = ओह! व्यवहारनीतयः = मुकदमा (व्यवहार) के प्रमाण, सुसन्नाः = भली-भाँति पुष्ट, (भवन्ति = हो रहे हैं), तु = परन्तु मतिः = बुद्धि, पंकगता = कीचड़ में फँसी हुई, गौ = गाय (की), इव = तरह, सीदति = खिन्न हो रही है।।

अर्थः—

अधिकरणिक— अहो! संसार के व्यवहार की विलक्षणता का को धिक्कार है, यह (मुकदमा) जैसे जैसे सावधानी से विचारा जाता है वैसे-वैसे ही उलझा हुआ ही दिखलायी देता है। ओह! मुकदमा (व्यवहार) के प्रमाण भली-भाँति पुष्ट हो रहे हैं। परन्तु मेरी बुद्धि कीचड़ में फँसी हुई गाय के समान खिन्न हो रही है।।२५।।

टीका— इदम् = एतदभियोगप्रकरणम्; यथा यथा = येन येन प्रकारेण; निपुणम् = सम्यक्, अवधानतया वा; विचार्यते = निर्णीयते; तथा तथा = तेन तेन प्रकारेण; संकटम् = विपत्तिबहुलमेव; द श्यते = अवलोक्यते, प्रतीयते इत्यर्थः; अस्माभिः इति शेषः। अहो! इति खेदे; व्यवहारस्य = अभियोगविचारस्य नीतयः = पद्धतयः; सुसन्नाः = सम्यक् पुष्टाः; भवन्तीति शेषः। तु = किन्तु; मतिः = बुद्धिः, ममेतिशेषः; पंके = कर्दमे, गता = पतिता; पंकनिमग्ना इत्यर्थः; गौरिव = सौरभेयीव; सीदति = निमज्जति, अवसादं गच्छतोत्यर्थः।।२५।।

यहाँ उपमा अलंकार है। इस श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-वंशस्थ।।२५।।

चारुदत्तः—(स्वगतम्)

यथैव पुष्पं प्रथमे विकाशे समेत्य पातुं मधुपाः पतन्ति।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।।२६।।

अन्वयः— यथैव, प्रथमे, विकाशे, पुष्पम्, पातुम्, भ्रमराः, समेत्य, पतन्ति; एवम्, मनुष्यस्य, विपत्तिकाले, छिद्रेषु, अनर्थाः, बहुलीभवन्ति।।२६।।

शब्दार्थः— यथैव = जैसे, प्रथमे = पहले, विकाशे = खिलने के समय, पुष्पम् = फूल को, पातुम् = पीने के लिये, भ्रमराः = भौंरे, समेत्य = इकट्ठा, होकर, पतन्ति = गिरते हैं। एवम् = इसी तरह, मनुष्यस्य = मनुष्य की, विपत्तिकाले = आपत्ति के समय, छिद्रेषु = जरा से दोषों में अनर्थाः = अनिष्ट, बहुलीभभवन्ति = बहुत से हो जाते हैं।।

अर्थः—

चारुदत्त— (अपने आप)

जैसे पहले पहल खिलने के समय फूल का रस पीने के लिये भौंरे इकट्ठा होकर उस पर गिरते हैं, इसी तरह मनुष्य की आपत्ति के समय जरा सा दोष पाकर अनेक अनिष्ट आ घेरते हैं।।२६।।

टीका— यथैव = येन प्रकारेणैव; प्रथमे = प्रारम्भिके, विकाशे = उन्मेषे; विकाशस्य आरम्भकाले इत्यर्थः; तदा सौरभाधिक्यात्; पुष्पम् = प्रसूनम्; मकरन्दमित्यर्थः; पातुम् = आस्वादितुम्; भ्रमराः = द्विरेफाः समेत्य = एकत्रीभूय; पतन्ति = वेगेन आगच्छन्ति। एवम् = इत्थम्; मनुष्यस्य = जनस्य; विपत्तिकाले = आपत्तिसमये; छिद्रेषु = रन्ध्रेषु, दोषेष्वित्यर्थः; व्यसनेषु इति यावत; अनर्थाः = विपत्तयः; बहुलीभवन्ति = स्फारीभवन्ति।।२६।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा तथा उपमा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-उपजाति।।२६।।

अधिकरणिकः— आर्यचारुदत्त! सत्यमभिधीयताम्।

चारुदत्तः—

दु ष्टात्मा परगु णमत्सरी मनु ष्यो
रागान्धः परमिह हन्तु कामबु द्धिः।
किं यो यद्वदति म षैव जातिदोषा-
त्तद्ग्राह्यं भवति, न तद्विचारणीयम्।।२७।।

अर्थः—

अधिकरणिक— आर्य चारुदत्त! सच-सच कहिये।

अन्वयः— इह, दुष्टात्मा, परगुणमत्सरी, रागान्धः, परम्, हन्तुकामबुद्धिः, यः, मनुष्यः, जातिदोषात्, म षा, एव, यत्, वदति, किम्, तत्, ग्राह्यम्, भवति,? तत्, विचारणीयम्, न?।।२७।।

शब्दार्थः— इह = यहाँ, दुष्टात्मा = नीचस्वभाववाला, परगुणमत्सरी = दूसरे के गुणों के प्रति ईर्ष्या करने वाला, रागान्धः = क्रोध से अन्धा, परम् = दूसरे को, हन्तु-कामबुद्धिः = मारने की इच्छा वाला, यः = जो, मनुष्यः = मनुष्य, जातिदोषात् = स्वाभाविक दुष्टता के कारण, म षा = झूठा, एव = ही, यत् = जी, वदति = कहता है, किम् = क्या, तत् = वह, ग्राह्यम् = मानने लायक, भवति = होता है! तत् = वह, विचारणीयम् = विचार करने के योग्य, न = नहीं, (होता)?।।

अर्थः—

चारुदत्त— यहाँ, दुरात्मा, दूसरे के गुणों के प्रति ईर्ष्या करने वाला, क्रोध से अन्धा, दूसरे को मारने की इच्छा वाला मनुष्य अपनी स्वाभाविक दुष्टता के कारण झूठा ही जो कुछ कहता है वह मानने के लायक होता है? क्या वह विचार करने के योग्य नहीं होता?।।२७।।

टीका— इह = न्यायालये, अधिकरणे, संसारे वा; दुष्टात्मा-दुष्टः = कलुषितः आत्मा = अन्तःकरणम् यस्य असौ, दुराशयः इत्यर्थः; परेषाम् = अन्येषाम् गुणेषु = शुभप्रकृतिषु उत्कर्षेषु वा, मत्सरः = द्वेषः सो स्यास्तीति मत्सरी = ईर्ष्यालुः; रागेण = क्रोधेन अन्धः = विवेकविहीनः; अतः परम् = अन्यं जनम्; हन्तुम् = विनाशयितुम्, कामः = इच्छा प्रयोजनम् वा यस्याः सा हन्तुकामा, हन्तुकामा बुद्धिः = मतिः यस्य ताद शः। यः = यः कश्चित्; मनुष्यः = जनः; जातिदोषात् = नीचकुलोत्पन्नत्वात्, अथवा जातौ = जनने दोषात् = निन्द्यभावात्, वर्णसंकरत्वादित्यर्थः; म षा = मिथ्या; एव; यत् वदति = कथयति; किम् तत् = तस्य असत्यकथनम्; ग्राह्यम् = मान्यम्; भवति = अस्ति? तत् = तस्य मिथ्याभाषणम्; विचारणीयम् = विवेचनीयम्, सत्यमसत्यं वेतिरूपेण विवेचनीयमित्यर्थः; न = न भवति?।।२७।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा एवं परिकर अलंकार तथा प्रहर्षिणी छन्द है।।२७।।

अपि च,—

यो हं लतां कुसुमितामपि पुष्पहेतो-
राकृष्य नैव कुसुमावचयं करोमि।
सो हं कथं भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे
केशे प्रग ह्य रुदतीं प्रमदां निहन्मि?।।२८।।

अन्वयः— यः, अहम्, कुसुमिताम्, लताम्, अपि, पुष्पहेतोः, आकृष्य, पुष्पावचयम्, न, करोमि; सः, अहम्, भ्रमरपक्षरुचौ, सुदीर्घे, केशे, प्रग ह्य, रुदतीम् प्रमदाम्, कथम्, निहन्मि?।।२८।।

शब्दार्थः— यः = जो, अहम् = मैं, कुसुमिताम् = फूली हुई, लताम् = लता को, अपि = भी, पुष्पहेतोः = फूल के लिये, आकृष्य = खींचकर, पुष्पावचयम् = फूलों का चयन करना, न = नहीं, करोमि = करता हूँ; सः = वह, अहम् = मैं, भ्रमरपपक्षरुचौ = भौंरों की पाँखों के समान रंग वाले, सुदीर्घे = लम्बे-लम्बे, केशे = बालों को प्रग ह्य = पकड़कर, रुदतीम् = रोती हुई, प्रमदाम् = स्त्री को, कथम् = कैसे, निहन्मि = मारता हूँ? अर्थात् कैसे मार सकता हूँ?।।

अर्थः— और भी-

जो मैं फूली हुई लता को भी फूल लेने के लिये खींचकर फूल नहीं तोड़ता हूँ; वही मैं भौरों की पाँखों के समान काले रंग वाले लम्बे लम्बे बालों को पकड़ कर रोती हुई स्त्री को कैसे मार सकता हूँ!।।२८।।

टीका— यः = परमकारुणिकः इति भावः, अहम् = चारुदत्तः; कुसुमिताम्-कुसुमानि = पुष्पाणि स जातानि अस्यां ताद शीम्, प्रफुल्लितामित्यर्थः; लताम् = वल्लीम्, अपि; पुष्पाणाम् = कुसुमानाम् हेतोः = कारणात्; पुष्पाणि ग्रहीतुमित्यर्थ; आकृष्य = आकर्षणं कृत्वाः; पुष्पाणाम् = प्रसूनानाम् अवचयम् = चयनम्, त्रोटनमित्यर्थः; न करोमि = न सम्पादयामि। सः = एताद शः दयालुः इति भावः; अहम् = अभियुक्तत्वेन उपस्थितः चारुदत्त इत्यर्थः; भ्रमरपक्षरुचौ-भ्रमरस्य = द्विरेफस्य पक्षयोरिव = छदयोरिव रुचिः = आभा यस्य ताद शे; भ्रमरपक्षवत्कृष्णे इत्यर्थः; सुदीर्घे = सुविशाले, प्रशस्ते इत्यर्थः; केशे = कुन्तले, प्रग ह्य = बलात् ग हीत्वा; रुदतीम् = क्रन्दन्तीम्; प्रमदाम् = ललनाम्, कथम् = केन प्रकारेण; निहन्मि = मारयामि?।।२८।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।२८।।

शकारः— हंहो अधिअलणभोइआ! किं तुम्हें पक्खवादेण ववहालं पेक्खध? ज्जेण अज्ज वि एशे हदाशचालुदत्ते आशणे घालीअदि। (हंहो अधिकरणभोजकाः! किं यूयं पक्षपातेन व्यवहारं पश्यत? येनाद्याप्येष हताशचारुदत्त आसने धार्यते।)

अधिकरणिकः— भद्र शोधनक! एवं क्रियताम्।

(शोधनकस्तथा करोति)

चारुदत्तः— विचार्यताम्। भो अधिकृताः! विचार्यताम्। (इत्यासनादवतीर्य भूमावुपविशति)

शकारः— (स्वगतम्, सहर्ष नर्तित्वा) ही, अणेण मए कडे पावे अण्णश्श मश्तके निवडिदे। ता जहिं चालुदत्ताके उवविशदि तहिं हग्गे उवविशामि। (तथा कृत्वा) चालुदत्ता! पेक्ख पेक्ख मं। ता भण भण मए मालिदे त्ति। (ही, अनेन मया कृतं पापमन्यस्य मस्तके निपातितम्। तद्यत्र चारुदत्त उपविशति तत्राहमुपविशामि। चारुदत्त! पश्य पश्य मां;। तद्भण भण मया मारितेति।)

चारुदत्तः— भो अधिकृताः ('दुष्टात्मा-'(६/२७) इत्यादि पूर्वोक्तं पठति, सनिः-श्वासं, स्वगतम्)

मैत्रेय भोः! किमिदमद्य ममोपघातो
हा ब्राह्मणि! द्विजकुले विमले प्रसूता।

हा रोहसेन! हि न पश्यसि मे विपत्तिं,
मिथ्यैव नन्दसि परव्यसनेन नित्यम्।।२६।।

अर्थः—

शकार— हे माननीय न्यायाधीश महोदयों! क्या आप लोग पक्षपात के साथ मुकदमा (व्यवहार) देखते हैं! जो अब भी इस नीच चारुदत्त को आसन पर बैठा रक्खा है।

अधिकरणिक— भले शोधनक! ऐसा ही (जैसा शकार कहता है) कीजिये (शोधनक वैसी ही करता है)

चारुदत्त— विचार कीजिये। हे अधिकारियों! विचार कीजिये। (ऐसा कह कर आसन से उतर कर जमीन पर बैठ जाता है)

शकार— (अपने आप, प्रसन्नता पूर्वक नाच कर) अहा! मेरे द्वारा किया गया पाप दूसरे के मस्तक पर मढ़ गया। तो जहाँ चारुदत्त बैठा था वहाँ मैं बैठूंगा। (वैसा करके) चारुदत्त! देखो, देखो मुझे। तो कहो, कहो कि मैंने (वसन्तसेना को) मारा है।

चारुदत्त— हे अधिकारियों! ('दुष्टात्मा' ६/२७) इत्यादि पहले कहा गया श्लोक पढ़ता है, लम्बी साँस लेकर, अपने आप)

अन्वयः— भो मैत्रेय! इदम्, किम्?, अद्य, मम, उपघातः, (आगतः)? विमले, द्विजकुले, प्रसूता, हा ब्राह्मणि! हा रोहसेन! मे, विपत्तिम्, न हि, पश्यसि; मिथ्या, एव, परव्यससेन, नित्यम्, नन्दसि।।२६।।

शब्दार्थः— भोः = हे; मैत्रेय! = सखे विदूषक! इदम् = यह, किम् = क्या? अद्य = आज, मम = मेरा, उपघातः = विनाश, (आगतः = आ गया है)? विमले = निर्मल, द्विजकुले = ब्राह्मण कुल में, प्रसूता = पैदा हुई, हा = हाय, ब्राह्मण की स्त्री! हा रोहसेन! = हाय बेटा रोहसेन! मे = मेरी, विपत्तिम् = विपत्ति को, न हि = नहीं, पश्यसि = देख रहे हो, = मिथ्या झूठ-मूठ, एव = ही, परव्यसनेन = केवल बच्चों के खिलवाड़ से, निम्य् = हमेशा, नन्दसि = प्रसन्न हो रहे हो।।

अर्थः— हे मैत्रेय! यह क्या! आज मेरा विनाश आ गया है। निर्मल ब्राह्मण कुल में पैदा हुई हा ब्राह्मणी अर्थात् मेरी स्त्री हाय! बेटा रोहसेन! तुम मेरे विपत्ति नहीं देख रहे हो, व्यर्थ में ही केवल बालकों के लायक खिलवाड़ से हमेशा प्रसन्न हो रहे हो।।२६।।

टीका— भो मैत्रेय! = हे सखे विदूषक! इदम् = एतत्; किम् = किमुपस्थितमित्यर्थः; सामान्येन उक्त्वा पुनः विव णोति-अद्य = अस्मिन् दिने; मम = चारुदत्तस्य, दोषशून्यस्येति यावत्; उपघातः = विनाशः; आगतः?। विमले = विशुद्धे; द्विजस्य = ब्राह्मणस्य कुले = वंशे; प्रसूता = जाता; हा! इति खेदे व्ययम्; ब्राह्मणि! जाये। स्वपत्न्याः इदं संबोधनम्; हा रोहसेन! = हा पुत्र रोहसेन! मे = मम, स्वपितुः इत्यर्थः; विपत्तिम् = आपत्तिम्; न हि पश्यसि = न हि अवलोकयसि; मिथ्यैव = व थैव; परव्यसेनन-परेण = केवलेन व्यसनेन = बालसुलभक्रीडनेन; नित्यम् = सर्वदा; नन्दसि = आनन्दमनुभवसि।।२६।।

इस श्लोक में वसन्ततिलका छन्द है।।२६।।

प्रेषितश्च मया तद्वार्तान्वेषणाय वसन्तसेनासकाशं शकटिकानिमित्तं च तस्य प्रदत्तान्यलंकरणानि प्रत्यर्पयितुम्; तत्कथं चिरयते?।

(ततः प्रविशति ग हीताभरणो विदूषकः)

विदूषकः—पेसिदो म्हि अज्जचारुदत्तेण वसंतसेणासआसं, तहिं अलंकरणाइं गेण्हिअ, जघा-'अज्जमित्तेअ! वसंतसेणाए वच्छो रोहसेणो अत्तणो अलंकारेण अलंकरिअ जणणीसआसं पेसिदो। इमस्म आहरणं दादव्वं, ण उण गेण्हिदव्वं। ता समप्पेहि' त्ति। ता जाव वसंतसेणासआसं ज्जेव्व गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च आकाशे) कधं भावरेभिलो?। भो भावरेभिल! किंणिमित्तं तुमं उव्विग्गो उव्विग्गो विअ लक्खीअसि?। (आकर्ण्य) किं भणासि-'पिअवअस्सो चारुदत्तो अधिअरणमंडवे सद्दाइदो' त्ति?। ता ण हु अप्पेण कज्जेण होदव्वं। (विचिन्त्य) ता पच्छा वसंतसेणासआसं गमिस्सं। अधिअरणमंडवं दाव गमिस्सं। (परिक्रम्यावलोक्य च) इदं अधिअरणमंडवं। ता जाव पविसामि। (प्रविश्य) सुहं अधिअरणभोइआणं। कहिं मम पिअवअस्सो?। (प्रेषितो स्म्यार्यचारुदत्तेन वसन्तसेनासकाशम्, तत्रालंकरणानि ग हीत्वा, यथा-'आर्यमैत्रेय! वसन्तसेनया वत्सो रोहसेन आत्मनो लंकारेणालंकृत्य जननीसकाशं प्रेषितः। अस्याः आभरणं दातव्यम्, न पुनर्ग्रहीतव्यम्; तत्समर्पय' इति। तद्यावद्वसन्तसेनासकाशमेव गच्छामि। कथं भावरेभिलः?। भो भावरेभिल! किंनिमित्तं त्वमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे?। किं भणसि-'प्रियवयस्यश्चारुदत्तो धिकरणमण्डप आहूतः' इति?। तन्न खल्वल्पेन कार्येण भवितव्यम्। तत्पश्चाद्वसन्तसेनासकाशं गमिष्यामि। अधिकरणमण्डपं तावद्गमिष्यामि। अयमधिकरणमण्डपः। तद्यावत्प्रविशामि। सुखमधिकरणभोजकानाम्। कुत्र मम प्रियवयस्यः?।)

अधिकरणिकः— नन्वेष तिष्ठति।

विदूषकः—वअस्स! सोत्थि दे। (वयस्य! स्वस्ति ते।)

चारुदत्तः—भविष्यति।

विदूषकः—अवि क्खेमं दे?। (अपि क्षेमं ते?।)

चारुदत्तः—एतदपि भविष्यति।

विदूषकः—भो वअस्त! किंणिमित्तं उव्विग्गो उविग्गो विअ लक्खीअसि? कुदो वा सद्दाइदो?। (भो वयस्य! किंनिमित्तमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे? कुतो वाहूतः?।)

चारुदत्तः—वयस्य!

मया खलु नशंसेन परलोकमजानता।
स्त्री रतिर्वाविशेषेण शेषमेषो भिधास्यति।।३०।।

अर्थः— मैंने उसका समाचार जानने के लिए तथा खिलौने की गाड़ी बनाने के लिए रोहसेन को वसन्तसेना के द्वारा दिये गये आभूषणों को लौटाने के लिए मैत्रेय को वसन्तसेना के पास भेजा था तो वह क्यों देर कर रहा है?

(उसके बाद जेवरों को लिए हुए विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक— आर्य चारुदत्त ने आभूषणों के साथ मुझे वसन्तसेना के पास भेजा है और कहा है कि— ''आर्य मैत्रेय! वसन्तसेना ने अपनी जेवरों से बेटा रोहसेन को अलंकृत करके उसकी माता के पास भेजा है। इसको वसन्तसेना को जेवर देना चाहिये, न कि उससे लेना चाहिये। तो उन जेवरों को उसे लौटा दो।' तो जब तक मैं वसन्तसेना के पास ही जाता हूँ। (घूमकर और देखकर आकाश की ओर...) क्या विद्वान् रेभिल हैं? रेभिल किसलिए तुम चिन्तित से दिखायी पड़ रहे हो? (सुनकर) क्या कह रहे हो-'प्रिय मित्र चारुदत्त न्यायालय में बुलाये गये हैं।' तो अवश्य ही कोई बड़ा कारण होगा। (सोचकर) तो बाद

में वसन्तसेना के पास जाऊँगा। पहले न्यायालय में ही जाऊँगा। (घूमकर और देखकर) यह न्यायालय है। तो जब तक प्रवेश करता हूँ। (घुसकर) माननीय अधिकारियों का कल्याण हो। कहाँ है मेरा प्रियमित्र?

अधिकरणिक— यह बैठा है।

विदूषक— मित्र! तुम्हारा कल्याण हो।

चारुदत्त— होगा।

विदूषक— मित्र! तुम कुशल से तो हो?

चारुदत्त— यह भी होगा।

विदूषक— हे मित्र! किस कारण से बहुत अधिक उद्विग्न-सा दीख रहे हो? यहाँ किसलिए बुलाए गये हो?

अन्वयः— परलोकम्, अजानता, न शंसेन, मयाः, खलु, स्त्री, वा, अविशेषेण, रतिः, शेषम्; एषः, अभिधा यति।।३०।।

शब्दार्थः— परलोकम् = परलोक को, अजानता = न जानने वाले, न शंसेन = क्रूर, मया = मेरे द्वारा, खलु = निश्चय ही, स्त्री = एक साधारण स्त्री, वा = अथवा; अविशेषेण = साक्षात्, रतिः = कामदेव की स्त्री रति....., शेषम् = शेष बात को, एषः = यह (शकार), अभिधास्यति = बतलायेगा।।

अर्थः—

चारुदत्त— मित्र!

परलोक को न जानने वाले एवं क्रूर मैंने एक स्त्री अथवा (यह कहना चाहिए कि) साक्षात् कामदेव की स्त्री रति को.... शेष बात (अर्थात् मार दी) यह (शकार) बतलायेगा।।३०।।

टीका— परलोकम् = उत्तमं स्वर्गादिलोकम्; अजानता = अब्द्ध्यमानेन; न, शंसति = हिनस्तीति न शंसस्तेन न शंसेन = घातकेन; मया = चारुदत्तेन; खलु = निश्चितम्। स्त्री = सामान्या योषितः; वा = अथवा; अविशेषेण = अभेदेन, साक्षादित्यर्थः; रतिः = कामप्रिया, शेषम् = वक्तव्यावशिष्टम्; एषः = पुरोवर्तमानः शकारः; अभिधास्यति = कथयिष्यति।।३०।।

इस श्लोक में आक्षेप एवं अतिशयोक्ति अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-पथ्यावक्त्र।।३०।।

विदूषकः—किं किम्?। (किं किम्?।)

चारुदत्तः—(कर्णे) एवमेवम्।

विदूषकः—को एव्वं भणादि?। (क एवं भणति?।)

चारुदत्तः—(संज्ञया शकारं दर्शयति)नन्वेष तपस्वी हेतुभूतः कृतान्तो मां व्याहरति।

विदूषकः—(जनान्तिकम्) एव्वं कीस ण भणीअदि-गेहं गदे त्ति?। (एवं किमर्थं न भण्यते-ग हं गतेति?।)

चारुदत्तः—उच्यमानमप्यवस्थादोषान्न ग ह्यते।

विदूषकः—भो भो अज्जा! जेण दाव पुरट्ठावणविहारारामदेउलतडागकूवजूवेहिं अलंकिदा णअरी उज्जइणी, सो अणीसो अत्थकल्लवत्तकारणादो एरिसं अकज्जं अणुचिट्ठदि त्ति?। (सक्रोधम्) अरे रे काणेलीसुदा राअश्शालसंठाणआ उस्सुंखलआ किदजणदोसभडआ

बहुसुवण्णमंडिदमक्कडआ! भण भण मम अग्गदो, जो दाणिं मम पिअवअस्सो कुसुमिदं माधवीलदं पि आअट्ठिअ कुसुमावचअं ण करेदि कदा वि आअट्ठिदाए पल्लवच्छेदो भोदि त्ति, सो कधं एरिसं अकज्जं उहअलोअविरुद्धं करेदि?। चिट्ठ रे कुट्टणिपुत्ता! चिट्ठ। जाव एदिणा तव हिअअकुडिलेण दंडअट्ठेण मत्थअं दे सदखंडं करेमि। (भो भो आर्याः! येन तावत्पुरस्थापनविहारारामदेवालयतडागकूपयूपैरलंकृता नगर्युज्जयिनी, सो नीशो र्थ- कल्यवर्तकारणादीद शमकार्यमनुतिष्ठतीति?। अरे रे कुलटापुत्र राजश्यालसंस्थानक उच्छ ृंखलक कृतकजनदोषभाण्ड बहुसुवर्णमण्डितमर्कटक! भण भण ममाग्रतः, य इदानीं मम प्रियवयस्यः कुसुमितां माधवीलतामप्याकृष्य कुसुमावचयं न करोति कदाप्याकृष्टतया पल्लवच्छेदो भवतीति, स कथमीद शमकार्यमुभयलोकविरुद्धं करोति?। तिष्ठ रे कुट्टिनीपुत्र! तिष्ठ। यावदेतेन तव हृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेन मस्तकं ते शतखण्डं करोमि।)

शकारः— (सक्रोधम्) शुणंतु शुणंतु अज्जमिश्शा! चालुदत्तकेण शह मम विवादे ववहाले वा; ता कीश एशे काकपदशीशमश्तका मए शिले शदखंडे कलेदि?। मा दाव; ले दाशीए पुत्ता, दुट्ठबडुका!। (श्र ण्वन्तु श्र ण्वन्त्वार्यमिश्राः! चारुदत्तेन सह मम विवादो व्यवहारो वा; एत्किमर्थमेष काकपदशीर्षमस्तको मम शिरः शतखण्डं करोति?। मा तावत; रे दास्याःपुत्र दुष्टबटुक!।)

(विदूषको दण्डकाष्ठमुद्यम्य पूर्वोक्तं पठति; शकारः सक्रोधमुत्थाय ताडयति; विदूषकः प्रतीपं ताडयति; अन्यो न्यं ताडयतः; विदूषकस्य कक्षदेशादाभरणानि पतन्ति)

शकारः— (तानि ग हीत्वा, द ष्ट्वा ससाध्वसम्) पेक्खंतु पेक्खंतु अज्जा! एदे खु ताए तवश्शिणीए केलका अलंकाला। (चारुदत्तमुद्दिश्य) इमश्श अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो एशा मालिदा वावादिदा अ। (पश्यन्तु पश्यन्त्वार्याः! एते खलु तस्यास्तपस्विन्या अलंकाराः। अस्यार्थकल्यवर्तस्य कारणादेषा मारिता व्यापादिता च।)

(अधिकृताः सर्वे धोमुखा स्थिताः)

चारुदत्तः—(जनान्तिकम्)

अयमेवंविधे काले द ष्टो भूषणविस्तरः।
अस्माकं भाग्यवैषम्यात्पतितः पातयिष्यति।।३१।।

अर्थः—

विदूषक— क्या, क्या?

चारुदत्त— (कान में) इस इस प्रकार।

विदूषक— कौन ऐसा कहता है?

चारुदत्त— (इशारा करके शकार को दिखलाता है) यह बेचारा बहाना बना हुआ है; (किन्तु वस्तुतः) यमराज ही मुझे (इस प्रकार) कह रहा है।

विदूषक— (अलग से) ऐसा क्यों नहीं कह देते कि-घर चली गयी?

चारुदत्त— कहा गया भी (मेरी) दरिद्रता के कारण नहीं माना गया।

विदूषक— हे मान्यजनों! जिसने उपनगर-निर्माण, बौद्ध विहार, बगीचा मन्दिर, तालाब, कुँआ तथा यज्ञस्तम्भों से उज्जयिनी नगरी को अलंकृत किया है, वही इस समय निर्धन होकर कलेवा के समान तुच्छ धन के लिए ऐसे कुकृत्य को करेगा? (क्रोध के साथ) अरे छिनार के बच्चे,

राजा के साले संस्थानक, उद्दण्ड, लोगों पर दोष मढ़ने वाले, बहुत से सोने से लदे हुए बन्दर! कहो, कहो मेरे सामने। 'शायद खींचने से पत्ते टूट जायँ' ऐसा सोच कर इस समय जो मेरा प्रिय मित्र फली हुई माधवी लता को भी झुका कर फूल नहीं तोड़ता है, वही दोनों लोकों के विरुद्ध इस प्रकार के कुकर्म को करेगा? ठहर रे कुटनी के बच्चे ठहर! जब तक तेरे हृदय के समान टेड़े लकड़ी के इस डण्डे से तेरे मस्तक के सौ टुकड़े करता हूँ।

शकार— (क्रोध के साथ) महानुभावों! सुनिये, सुनिये। चारुदत्त के साथ मेरा झगड़ा अथवा मुकदमा है; तब क्यों कौवा के पैर के समान सिर-माथे वाला यह मेरे सिर को सौ टुकड़े करता है? नहीं तो, अरे दासी के बच्चे शरारती ब्राह्मण!

(विदूषक काठ के दण्डे को उठा कर पहले कही हुई बात को ही फिर कहता है; शकार क्रोधपूर्वक उठकर पीटता है, विदूषक बदले में मारता है, वे आपस में एक दूसरे को मारते हैं, विदूषक की काँख से अलंकार गिरते हैं।)

शकार— (उन अलंकारों को उठा कर, देख कर भय के साथ) महानुभावों! देखिये, देखिये; उस बेचारी (वसन्तसेना) के ये आभूषण हैं। कलेवा के समान इसी तुच्छ धन के लिए यह (वसन्तसेना) मारी गयी और नष्ट की गयी है।

(सभी अधिकारी नीचा मुँह करके बैठ जाते हैं)

अन्वयः— एवंविधे, काले, अस्माकम्, भाग्य-वैषम्यात्, पतितः, (तथा, अधिकारिभिः), द ष्टः, अयम्, भूषणविस्तरः, पातयिष्यति।।३१।।

शब्दार्थः— एवंविधे = ऐसे, काले = समय में, अस्माकम् = हमारे, भाग्यवैषम्यात् = भाग्य के दोष से, पतितः = गिरा हुआ, (तथा = और, अधिकारिभिः = अधिकारियों के द्वारा) द ष्टः = देखा गया, अयम् = यह, भूषण-विस्तरः = आभूषणों का समूह, पातयिष्यति = गिरा देगा।।

अर्थः—

चारुदत्त— (अलग से)

ऐसे समय में हमारे भाग्य के दोष से गिरा हुआ तथा अधिकारियों द्वारा देखा गया आभूषणों का यह समूह मुझे विपत्ति में गिरा देगा।।३१।।

टीका— एवंविधे = एताद शे, संकटपूर्णे दोषारोपपूर्णे; काले = समये; अस्माकम् = चारुदत्तादीनाम्, आदिशब्देन बान्धवादयः ग ह्यन्ते; भाग्यस्य = अद ष्टस्य वैषम्यात् = दोषात्; दौर्भाग्यादिति यावत्; पतितः = कक्षदेशात् स्खलितः भ्रष्टः वा; तथा अधिकारिभिरिति शेषः, द ष्टः = अवलोकितः; अयम् = एषः, भूमौ पातितः; भूषणानाम् = आभूषणानाम् विस्तरः = समूहः; पातयिष्यति = विपत्तौ भ्रंशयिष्यति; मामिति शेषः। अपराधरहितस्या पि मे सापराधत्वमनेन सिध्यतीति भावः।।३१।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।३१।।

विदूषकः—भो! कीस भूदत्थं ण णिवेदीअदि?। (भोः! किमर्थ भूतार्थो न निवेद्यते?)

चारुदत्तः—वयस्य!

दुर्बलं न पतेश्चक्षुर्नैतत्तत्त्वं निरीक्षते।
केवलं वदतो दैन्यमश्लाघ्यं मरणं भवेत्।।३२।।

अर्थः—

विदूषक— अजी! क्यों नहीं सही-सही बात बतला दी जाती।

अन्वयः— न पतेः, चक्षुः, दुर्बलम्, एतत्, तत्त्वम्, न, निरीक्षते, (अतः), केवलम्, दैन्यम्, वदतः, (मम): अश्लाध्यम्, मरणम्, भवेत्।।३२।।

शब्दार्थः— न पतेः = राजा (राजा के अधिकारियों) की, चक्षुः = आँख, दुर्बलम् = कमजोर (होती है)। एतत् यह, तत्त्वम् = सही बात को, न = नहीं, निरीक्षते = देखती है। (अतः = इसलिये), केवलम् = केवल, दैन्यम् = दीनतापूर्वक, वदतः = वचन कहने वाले, (मम = मेरा), अश्लाध यम् = निन्दनीय; मरणम् = मरण, भवेत् = होगा।।

अर्थः—

चारुदत्त— मित्र!

राजा (राजा के अधिकारियों) की आँख कमजोर होती है। यह इस सही बात को नहीं देखती। केवल हीनतापूर्वक वचन कहना तो मेरा निन्दनीय मरण ही होगा अर्थात् दीनतापूर्ण बात कहना निन्दनीय म त्यु के समान है।।३२।।

टीका— न पतेः = राज्ञः, राजप्रतिनिधिभूतस्य न्यायाधीशस्येत्यर्थः; चक्षुः = नेत्रम्, दुर्बलम् = बलहीनम्, सत्यं द्रष्टुमसमर्थमित्यर्थः; भवति। चारचक्षुषः साक्ष्यावलम्बनाः राजानः यथार्थं साक्षात्कर्तुमसमर्थाः भवन्तीतिभावः। एतत् = राज्ञः चक्षुः; तत्त्वम् = सत्यमर्थम्; न निरीक्षते = नावलोकयति। अतः केवलम् = एकमात्रम्; दैन्यम् = दीनताप्रदर्शनपूर्वकं यथा तथा, दैन्यम् = कातरभावं वा; वसन्तसेना मया न मारितेतिरूपमिति यावत्; वदतः = कथ्यतः; ममेति शेषः; अश्लाध्यम् = अयशस्करम्; मरणम् = म त्युः; भवेत् = सम्पद्येत।।३२।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।३२।।

अधिकरणिकः— कष्टं भो! कष्टम्;

अंगारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य ब हस्पतेः।
ग्रहो यमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः।।३३।।

अन्वयः— अंगारकविरुद्धस्य, प्रक्षीणस्य, ब हस्पतेः, पार्श्वे, धूमकेतुः, इव, अयम्, अपरः, ग्रहः, उत्थितः।।३३।।

शब्दार्थः— अंगारकविरुद्धस्य = मंगल ग्रह जिसका विरोधी है ऐसे, प्रक्षीणस्य = दुर्बल, ब हस्पतेः = ब हस्पति ग्रह के, पार्श्वे = समीप में, धूमकेतुः = पुच्छलतारा, इव = जैसा, अयम् = यह, अपरः = दूसरा, ग्रहः = ग्रह, उत्थितः = प्रकट हुआ है।।

अर्थः—

अधिकरणिक— दुःख है, अरे दुःख है-

मंगल ग्रह जिसका विरोधी है ऐसे, दुर्बल ब हस्पति ग्रह के समीप पुच्छलतारा के समान यह (जेवरों का गिरना) दूसरा ग्रह प्रकट हुआ है।।३३।।

टीका— अंगारकः = मंगलग्रहः विरुद्धः विपरीतः यस्य ताद शस्य; प्रक्षीणस्य = नीचस्थानस्थित्या स्वशक्तिहीनस्य; व हस्पतेः = जीवस्य, पार्श्वे = समीपे; धूमकेतः = उत्पातग्रहः। इव = यथा; अयम् = विदूषककक्षप्रदेशादलंकारभ्रंशः; अपरः = अन्यः, सामान्यविशिष्टः; ग्रहः = विरुद्धग्रहः इत्यर्थः; उत्थितः = उद्‌गतः।।३३।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा तथा उपमा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है-पथ्यावक्त्र।।३३।।

श्रेष्ठिकायस्थौ— (विलोक्य, वसन्तसेनामातरमुद्दिश्य) अवहिदा दाव अज्जा एदं सुवण्णभंडअं अवलोएदु, सो ज्जेव्व एसो ण वेत्ति (अवहित तावदार्येदं सुवर्णभाण्डमवलोकयतु तदेवेदं न वेति।)

व द्धा— (अवलोक्य) सरिसो एसो, ण उण सो। (सद शमेतद्, न पुनस्तत्।)

शकारः— आं, वुड्ढकुट्टणि! अक्खीहिं मंतिदं वाआए मूकिदं। (आं, व द्धकुट्टनि? अक्षिभ्यां मन्त्रितं वाचा मूकितम्।)

व द्धा— हदास! अवेहि। (हताश! अपेहि।)

श्रेष्ठिकायस्थौ— अप्पमत्तं कधेहि, सो ज्जेव एसो ण वेत्ति। (अप्रमत्तं कथय, तदेवैतन्न वेति।)

व द्धा— अज्ज! सिप्पिकुसलदाए ओबंधेदि दिट्ठिं। ण उण सो। (आर्य! शिल्पिकुशलतयावबध्नाति द ष्टिम्। न पुनस्तत्।)

अधिकरणिकः— भद्रे, अपि जानास्येतान्याभरणानि? व द्धा - णं भणामि, ण हु ण हु अणभिजाणिदो। अह वा कदा वि सिप्पणा घडिदो भवे। (ननु भणामि, न खलु न खल्वनभिज्ञातः। अथवा कदापि शिल्पिना घटितो भवेत्।)

अधिकरणिकः— पश्य श्रेष्ठिन्।

वस्त्वन्तराणि सद शानि भवन्ति नूनं
रूपस्य भूषणगुणस्य च कृत्रिमस्य।
द ष्ट्वा क्रियामनुकरोति हि शिल्पिवर्गः
साद श्यमेव कृतहस्ततया च द ष्टम्।।३४।।

अर्थः—

श्रेष्ठी-कायस्थ— (देखकर तथा वसन्तसेना की माता को उद्देश्य करके) अच्छा, आप सावधान होकर सोने की जेवरों के इस डिब्बे को देखिये, वही यह है अथवा नहीं।

व द्धा— (देखकर) उसी के समान है, किन्तु वही नहीं है।

शकार— अच्छा, बूढ़ी कुट्टनी! (तुम्हारी) आँखों ने कह दिया (भले ही तुम्हारी) वाणी चुप रही।

व द्धा— अभागे! हटो।

श्रेष्ठी-कायस्थ— सावधानी के साथ बतलाओ। यह वही है अथवा नहीं।

व द्धा— आर्य! कारीगरी की बारीकी के कारण यह आँख को आकृष्ट कर रहा है। किन्तु वह (जिसे वसन्तसेना ने पहना था) नहीं है।

अधिकरणिक— भली महिला! क्या आप इन आभूषणों को जानती हैं?

व द्धा— कहती तो हूँ कि नहीं, यह अनजान नहीं हैं। अथवा शायद कारीगर ने (वैसा ही) बना दिया हो।

अन्वयः— नूनम्, कृत्रिमस्य, रूपस्य, भूषणगुणस्य, च, सद शानि, वस्त्वन्तराणि, भवन्ति; हि, शिल्पिवर्गः, द ष्ट्वा, क्रियाम्, अनुकरोति; कृतहस्ततया, एव, च, साद श्यम्, द ष्टम्।।३४।।

शब्दार्थः— नूनम् = निश्चय ही, कृत्रिमस्य, = बनावटी, रूपस्य = आकार के, च = भी, सद शानि = तुल्य, वस्त्वन्तराणि = दूसरी वस्तुयें, भवन्ति = होती हैं। हि = क्योंकि, शिल्पिवर्गः = कारीगर वर्ग, द ष्ट्वा = देखकर, क्रियाम् = बनावट की, अनुकरोति = नकल करता

है। कृतहस्ततया = हाथ की सफाई के कारण, एव = ही, साद श्यम् = समानता, द ष्टम् = देखी जाती है।।

अर्थः—

अधिकरणिक— सेठ जी देखो-

निश्चय ही बनावटी आकार एवं जेवरों के सुन्दरता आदि गुणों में दूसरी वस्तुयें भी एक जैसी होती हैं। क्योंकि कारीगर (किसी चीज को) देख कर (उसकी) बनावट की नकल करता है। (कारीगर) हाथ की सफाई के कारण ही (दो वस्तुओं में) समानता देखी जाती है।।३४।।

टीका— नूनम् = निश्चितम्; कृत्रिमस्य = क्रिययास जातस्य, मानवनिर्मितस्येत्यर्थः; रूपस्य = आकृतेः; भूषणानाम् = अलंकाराणाम् गुणस्य = सौन्दर्यादिगुणस्य; च = अपि; सद शानि = अनुरूपाणि; वस्त्वन्तराणि = अन्यानि वस्तूनि; भवन्ति = जायन्ते, हि = यतः; शिल्पिवर्गः = आभूषणनिर्मात णां समूहः; द ष्ट्वा = विलोक्य इत्यर्थः; क्रियाम् = कलाम्; अनुकरोति = अनुसन्दधाति। इत्थमनुकरणस्य भावे सति-कृतहस्ततया-कृतः = अभ्यस्तः हस्तः = वस्तुनिर्माणे हस्तपाटवम् यैः ताद शाः तेषां भावः तया कृतहस्ततया = हस्तनैपुण्येन; एव, च; साद श्यम् = साम्यम्; द ष्टम् = अवलोकितम्; अस्माभिरिति शेषः।।३४।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।३४।।

श्रेष्ठिकायस्थौ— अज्जचारुदत्तस्स केरकाइं एदाइं। (आर्यचारुदत्तीयान्येतानि।)

चारुदत्तः— न खलु न खलु।

श्रेष्ठिकायस्थौ— ता कस्स?। (तदा कस्य?।)

चारुदत्तः— इहात्रभवत्या दुहितुः।

श्रेष्ठिकायस्थौ— कधं एदाइं ताए विओअं गदाइं?। (कथमेतानि तस्या वियोगं गतानि?।)

चारुदत्तः— एवं गतानि। आं, इदम्।

श्रेष्ठिकायस्थौ— अज्जचारुदत्त! एत्थं सच्चं वत्तव्वं; पेक्ख पेक्ख।

सच्चेण सुहं खु लब्भइ सच्चालावेण होइ पावं।
सच्चं त्ति दुवेवि अक्खरा मा सच्चं अलिएण गूहेहि।।३५।।

(आर्यचारुदत्त! अत्र सत्यं वक्तव्यम्; पश्य पश्य

सत्येन सुखं खलु लभ्यते सत्यालापे न भवति पातकम्।

सत्यमिति द्वे अप्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय।।)

अर्थः—

श्रेष्ठी-कायस्थ— ये आर्य चारुदत्त के हैं।

चारुदत्त— नहीं, नहीं अर्थात् मेरे नहीं हैं।

श्रेष्ठी-कायस्थ— तब किसके हैं?

चारुदत्त— इन श्रीमती की लड़की के अर्थात् वसन्तसेना के।

श्रेष्ठी-कायस्थ— ये उससे अलग कैसे हो गये?

चारुदत्त— इस प्रकार हो गये। हाँ, यह-

अन्वयः— सत्येन, खलु, सुखम्, लभ्यते; सत्यालापे, पातकम्, न, भवति; सत्यम्, इति, द्वे, अपि, अक्षरे; सत्यम्, अलीकेन, मा, गूहय।।३५।।

शब्दार्थः— सत्येन = सत्य से, खलु = निश्चय ही, सुखम् = सुख, लभ्यते = मिलता है। सत्यालापे = सत्य बोलने पर, पातकम् = पाप, न = नहीं, भवति = होता। सत्यम् = सत्य, इति = यह, द्वे = दो, अपि = भी, अक्षरे = अक्षर हैं। सत्यम् = सत्य को, अलीकेन = असत्य से, मा = मत गूहय = छिपाओ।।

अर्थः—

श्रेष्ठी-कायस्थ— आर्य चारुदत्त! यहाँ सच बोलना चाहिये। देखो, देखो, सत्य से निश्चय ही सुख मिलता है। सत्य बोलने पर पाप नहीं लगता। सत्य' केवल दो अक्षर है। सत्य को असत्य से मत छिपाओ।।३५।।

टीका— सत्येन = सत्यभाषणेनेत्यर्थः; खलु = निश्चितम्; सुखम् = आनन्दः; लभ्यते = प्राप्यते। सत्यस्य = यथार्थस्य अलापे = भाषणे; पातकम् = पापम्; न भवति = न जायते। 'सत्यम्' इति द्वे अक्षरे = वर्णे स्तः; अलीकेन = असत्येन; मा गूहय = न संव णु।।३५।।

इस श्लोक में वैतालीय छन्द है।।३५।।

चारुदत्तः—आभरणान्याभरणानीति न जाने, किंत्वस्मद्ग हादानीतानीति जाने।

शकारः— उज्जाणं पवेशिअ पढमं मालेशि। कवडकावडिआए शंपदं णिगूहेशि?। (उद्यानं प्रवेश्य प्रथमं मारयसि। कपटकापटिकतया सांप्रतं निग हसि?।)

अधिकरणिकः— आर्यचारुदत्त! सत्यमभिधीयताम्—

इदानीं सुकुमारे स्मिन्निःशकं कर्कशाः कशाः।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माकं मनोरथैः।।३६।।

अर्थः—

चारुदत्त— आभूषण (वे ही) आभूषण हैं इस बात को नहीं जानता। किन्तु ये हमारे ही घर से लाये गये हैं यह जानता हूँ।

शकार— पहले तो बगीचे में ले जाकर उसे मार दिया और अब कपटपूर्वक धूर्तता से छिपा रहे हो?

अन्वयः— इदानीम्, सुकुमारे, अस्मिन्, तव, गात्रे, कर्कशाः, कशाः, अस्माकम्, मनोरथै, सह, निःशंकम्, पतिष्यन्ति,।।३६।।

शब्दार्थः— इदानीम् = अब; सुकुमारे = सुकुमार, अस्मिन् = इस, तव = तुम्हारे, गात्रे = शरीर पर, कर्कशा = कठोर, कशाः = कोड़े, अस्माकम् = हम लोगों के, मनोरथैः = मनोरथों के, सह = साथ, निःशंकम् = निर्भयता पूर्वक, पतिष्यन्ति = पड़ेंगे।।

अर्थः—

अधिकरणिक— आर्य चारुदत्त! सच बोलिये-

अब सुकुमार तुम्हारे इस शरीर पर कठोर कोड़े, हम लोगों के मनोरथ के साथ ही निर्भयतापूर्वक पड़ेंगे (अर्थात् तुम्हें बचाने की हम लोगों की इच्छा गिर गयी है। अब तुम्हें कोड़े लगेंगे)।।३६।।

टीका— इदानीम् = सम्प्रति, अपराधे सिद्धे सतीत्यर्थः; सुकुमारे = सुकोमले; अस्मिन् = अत्र वर्तमाने, तव = भवतः; गात्रे = शरीरे; कर्कशाः = अतिकठोराः; कशाः = अश्वादेस्ताडन्यः;

अस्माकम् = अधिकरणिकादीनाम्; मनोरथैः = तव रक्षणेन सहितैः अभिलाषैः; सह = साकम्; निःशंकम् = निर्भयं यथा स्यात्तथा; पतिष्यन्ति = निक्षिप्ताः भविष्यन्ति।।३६।।

इस श्लोक में सहोक्तिअलंकार तथा पथ्यवक्त्र छन्द है।।३६।।

चारुदत्तः—

अपापानां कुले जाते मयि पापं न विद्यते।
यदि संभाव्यते पापमपापेन च किं मया?।।३७।।

अन्वयः— अपापानाम, कुले, जाते, मयि, पापम् , विद्यते; यदि; (मयि), पापम्, संभाव्ये, (तर्हि), अपापेन, च, मया, किम्?।।३७।।

शब्दार्थः— अपापानाम् = पाप रहित व्यक्तियों के, कुले = कुल में, जाते = पैदा हुए, मयि = मुझ में, पापम् = पाप, न = नहीं, विद्यते = है। यदि = यदि, (मयि = मुझ में), पापम् = पाप, संभाव्यते = सोचा जाता है, (तर्हि = तो), अपापेन = पापरहित, च = भो, मया = मुझसे, किम् = क्या (लाभ)?।।

अर्थः—

चारुदत्त— पापरहित व्यक्तियों के कुल में पैदा हुए मुझमें पाप नहीं है। यदि (मुझमें) पाप की शंका होती है तो पापरहित होने से भी मुझसे क्या (लाभ)?।।३७।।

टीका— न विद्यते पापं येषु ते अपापाः = पापरहिताः, पुण्यशालिनः इत्यर्थः, तेषाम्; कुले = सद्वंशे, जाते = उत्पन्ने; मयि = चारुदत्ते; पापम = पातकम्; न विद्यते = न वर्तते। यदि = चेत्; पापम् = अधम्, सम्भाव्यते = मन्यते; युष्माभिः मयीति शेषः; तर्हि अपापेन = पाप-शून्येन; च = अपि; मया = चारुदत्तेन; किम् = किं फलम्?।।३७।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।३७।।

(स्वगतम्) न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीवितेन कृत्यम्। (प्रकाशम्) भोः! किं बहुना।

मया किल न शंसेन लोकद्वयमजानता।
स्त्रीरत्नं च विशेषेण शेषमेषो भिधास्यति।।३८।।

अन्वयः— परलोकम्, अजानता, न शंसेन, मया, खलु, स्त्री, वा, अविशेषेण, रतिः, शेषम्, एषः, अभिधास्यति।।३८।।

शब्दार्थः— परलोकम् = परलोक को, अजानता = न जानने वाले, न शंसेन = क्रूर, मया = मेरे द्वारा, खलु = निश्चय ही, स्त्री = एक साधारण स्त्री, वा = अथवा, अविशेषेण = साक्षात्, रतिः = कामदेव की स्त्री रति...शेषम् = शेष बात को, एषः = यह (शकार), अभिधास्यति = बतलाएगा।।

अर्थः— (अपने आप) और वसन्तसेना से रहित मेरे जीने से क्या मतलब? (प्रकट रूप में) अजी! अधिक क्या-

दोनों लोकों (इस लोक और स्वर्ग लोक) को न जानने वाले तथा क्रूर मैंने विशेष रूप से रत्नस्वरूप एक स्त्री को....शेष (अर्थात् मार दी) यह (शकार) कहेगा।।३८।।

टीका— परलोकम् = स्वर्गादिकमित्यर्थः; अजानता = अबुद्ध्यमानेन; = क्रूरेण; मया = चारुदत्तेन; खलु = निश्चितम्; स्त्री = योषित्; वा = अथवा; अविशेषेण = साक्षादित्यर्थः; रतिः = कामपत्नी....; शेषम् = अवशिष्टम्; एषः शकारः; अभिधास्यति = कथयिष्यति।।३८।।

इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।३८।।

शकारः— **वावादिता। अले! तुमं पि भण, मए वावादिदेत्ति। (व्यापादिता। अरे! त्वमपि भण, मया व्यापादितेति।)**

चारुदत्तः—त्वयैवोक्तम्।

शकारः— **शुणेध शुणेध भट्टालका! एदेण मालिदा। एदेण ज्जेव शंशए छिण्णे। एदश्श दलिद्दचालुदत्तश्श शालीले दंडे घालीअदु। (श्र णुत श्र णुत भट्टारकाः! एतेन मारिता। एतेनैव संशयच्छिन्नः। एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य शरीरो दण्डो धार्यताम्।)**

अधिकरणिकः— **शोधनक! यथाह राष्ट्रियः। भो राजपुरुषाः! ग ह्यतामयं चारुदत्तः।**

(राजपुरुषा ग ह्णन्ति)

व द्धा— **पसीदंतु पसीदंतु अज्जमिस्सा!। ('जो दाव चोरेहिं अवहिस्स'-इत्यादि पूर्वोक्तं पठति) ता जदि वावादिदा मम दारिआ वावादिदा। जीवदु मे दीहाऊ। अण्णं च, अत्थिपच्चत्थिण्णं व्यवहारो। अहं अत्थिणी। ता मुंचध एदं। (प्रसीदन्तु प्रसीदन्त्वार्यमिश्राः! तद्यदि व्यापादिता मम दारिका, व्यापादिता। जीवतु मे दीर्घायुः। अन्यच्च अर्थिप्रत्यर्थिनोर्व्यवहारः। अहमर्थिनी। तन्मु चतैनम्)**

शकारः— **अवेहि गब्भदाशि! गच्च, किं तव एदिणा?। (अपेहि गर्भदासि! गच्छ, किं तवैतेन?।)**

अधिकरणिकः— **आर्ये! गम्यताम्। हे राजपुरुषाः! निष्क्रामयतैनाम्।**

व द्धा— **हा जाद! हा पुत्तअ!। (हा जात! हा पुत्रक!।) (इति रुदती निष्क्रान्ता)**

शकारः— **(स्वगतम्) कडं मए एदश्श अत्तणो शलिशं। शंपदं गच्छामि। (कृतं मयैतस्यात्मनः सद शम्, सांप्रतं गच्छामि।)**

(इति निष्क्रान्तः)

अधिकरणिकः— **आर्यचारुदत्त! निर्णये वयं प्रमाणम्; शेषे तु राजा। तथापि शोधनक! विज्ञाप्यतां राजा पालकः—**

'अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह।।३६।।

अर्थः—

शकार— मार दी। अरे! तुम भी कहो कि मैंने मार दी है।

चारुदत्त— तूने ही कह दिया।

शकार— सुनिये, अधिकारीगण! सुनिये। इसने मारी है। इसने ही सन्देह खतम कर दिया। इस दरिद्र चारुदत्त के लिये शारीरिक दण्ड निश्चित किया जाय।

अधिकरणिक— शोधनक! जैसा राजा के साले (शकार) ने कहा (वैसा करो)। हे सिपाहियों (राजपुरुषों) इस चारुदत्त को पकड़ लिया जाय।

(सिपाही पकड़ते हैं)

व द्धा— विद्वान् आर्यजनों! कृपा कीजिए, कृपा कीजिए। ('यः तावत् चौरेः अपहृतस्य' इत्यादि पहले कहा गया वाक्य कहती है) तो यदि मेरी बेटी मारी गयी तो मारी गयी। मेरा

चिर जीवी (चारूदत्त) जिन्दा रहे। और दूसरी बात यह है कि मुकदमा वादी और प्रतिवादी का है। मैं वादी हूँ। तो इसको छोड़ दें।

शकार— दूर हट गर्भदासी! जा तेरा इससे क्या मतलब?

अधिकरणिक— श्रीमती जी! जाइये! हे सिपाहियों! इसे (वसन्तसेना की माता को) निकालो।

वृद्धा— हाय बेटे! हाय पुत्र! (इस प्रकार रोती हुई निकल जाती है)।

शकार— (अपने आप) मैंने इस चारुदत्त के लिये अपने अनुसार काम कर दिया। अब जा रहा हूँ। (ऐसा कहकर निकल जाता है)

अधिकरणिक— आर्य चारुदत्त! फैसला (निर्णय) करने के हम लोग अधिकारी हैं और बाकी बातों के राजा। तो भी शोधनक! राजा पालक को यह सूचित किया जाय कि-

अन्वयः— अयम्, विप्रः, पातकी, (अस्ति, तथा पि), न हि, वध्यः (इति), मनुः, अब्रवीत्; तु, अक्षतैः, विभवैः, सह, अस्मात्, राष्ट्रात्, निर्वास्यः।।३६।।

शब्दार्थः— अयम् = यह, विप्रः = ब्राह्मण, पातकी = पापी, (अस्ति = है, तथापि = तो भी), न हि = नहीं, वध्यः = वध करने के योग्य, (अस्ति = है, इति = ऐसा); मनुः = मनु ने, अब्रवीत् = कहा है; तु = किन्तु, अक्षतैः = समूची, विभवैः = सम्पत्ति के, सह = साथ, अस्मात् = इस, राष्ट्रात् = राष्ट्र से, निर्वास्यः = निकाल देने का पात्र है।

अर्थः— यह ब्राह्मण पापी होने पर भी वध करने के योग्य नहीं है, ऐसा मनु ने कहा है, किन्तु समूची सम्पत्ति के साथ इसे इस राष्ट्र से बाहर निकाल देना चाहिये।।३६।।

टीका— अयम् = वसन्तसेनायाः वधे अभियुक्तः; विप्रः = ब्राह्मणः; पात की = अबलावधपापकर्मा; अस्ति; तथापि न हि वध्यः = प्राणदण्डयोग्यः; इति-मनुः = धर्मशास्त्र-प्रणेता एकः ऋषिः; अब्रवीत् = अकथयत्। तु = किन्तु; अक्षतैः = असमग्रैः; विभवैः = सम्पत्तिभिः; सह = साकम्; अस्मात् = भवच्छासितात्; राष्ट्रात् = राज्यात्; निर्वास्यः = बहिष्करणीयः।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।३६।।

शोधनकः—**जं अज्जो आणवेदि। (इति निष्क्रम्य, पुत्रः प्रविश्य, सास्रम्) अज्जा! गदम्हि तहिं। राआ पालओ भणादि-'जेण अत्थकल्लवत्तस्स कालणादो वसंसेणा वावादिदा, तं ताइं ज्जेव आहरणाइं गले वंधिअ डिंडिमं ताडिअ दक्खिणमसाणं णइअ सूले भज्जेध' त्ति। जो को वि अवरो एरिसं अकज्जं अणुचिट्ठदि सो एदिणा सणिआरदंडेण सासीअदि। (यदार्य आज्ञापयति, आर्याः! गतो स्मि तत्र। राजा पालको भणति'येनार्थकल्यवर्तस्य कारणाद्वसन्तसेना व्यापादिता, तं तान्येवाभरणानि गले बद्ध्वा डिण्डिमं ताडयित्वा दक्षिणश्मशानं नीत्वा शूले भङ्क्त' इति। यः को प्यपर ईद शमकार्यमनुतिष्ठति स एतेन सनिकारदण्डेन शास्यते।**

चारुदत्तः—**अहो, अविम श्यकारी राजा पालकः। अथवा**

ईद शे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिताः।
स्थाने खलु महीपाला गच्छन्ति कृपणां दशाम्।।४०।।

अर्थः—

शोधनक— जैसी श्रीमान् की आज्ञा। (ऐसा कह कर और फिर प्रवेश करके, आँखों में आँसू भर कर) महानुभावों मैं वहाँ गया था। राजा पालक कहते हैं कि—जिसने कलेवा जैसे तुच्छ धन

के लिए वसन्तसेना का वध किया उसको वे ही जेवर गले में बाँध कर, ढिढोरा पीट कर, दक्षिण दिशा के श्मशान में लेजा कर शूली पर चढ़ा दो।' और जो कोई दूसरा ऐसा बुरा काम करेगा वह इस अपमान सहित दण्ड से शाषित किया जायगा।।

अन्वयः— मन्त्रिभिः, ईद शे, व्यवहाराग्नौ परिपातिताः, महीपालाः, कृपणाम्, दशाम्, गच्छन्ति, (इति), स्थाने, खलु।।४०।।

शब्दार्थः— मन्त्रिभिः = मन्त्रियों के द्वारा, ईद शे = इस तरह की, व्यवहाराग्नौ = मुकदमा-विचार रूपी आग में, परिपातिताः = झोके गये, महीपालाः = राजा लोग, कृपणाम् = शोचनीय, दशाम् = दशा को, गच्छन्ति = प्राप्त होते हैं। (इति = इह), स्थाने = ठीक, उपयुक्त स्थान पर, खलु = ही, (है)।।

अर्थः—

चारुदत्त— अहह! राजा पालक बिना बिचारे काम करने वाला है। अथवा मन्त्रियों के द्वारा इस तरह की मुकदमा विचार रूपी आग में झोंके (डाले) गये राजा लोग शोचनीय दशा को प्राप्त होते हैं, यह ठीक ही है।।४०।।

टीका— मन्त्रिभिः = सचिवैः, तत्तदधिकारिभिरित्यर्थः; ईद शे = एताद शे, वस्तुतः झटिति निर्णेतुमशक्ये इत्यर्थः; व्यवहारः = अभियोगविचारः एव अग्निः = बह्निः तस्मिन्, विवादनिर्णयरूपाग्नौ इति यावत्; परिपातिताः = मन्त्रदानेन निक्षिप्ताः; महीपालाः = यान्ति, प्राप्नुवन्ति; इति यत् तत् स्थाने खलु = युक्तमेव।।४०।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा एवं रूपक अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।

अपि च,—

ईद शैः श्वेतकाकीयै राज्ञः शासनदूषकैः।
अपापानां सहस्राणि हन्यन्ते च हतानि च।।४१।।

अन्वयः— श्वेतकाकीयैः, राज्ञः, शासनदूषकैः, ईद शैः, (अधिकरणिकैः), अपापानाम्, सहस्राणि, हतानि, च, हन्यन्ते, च,।।४१।।

शब्दार्थः— श्वेतकाकीयैः = 'कौवा सफेद है' इस प्रकार का भी विश्वास कर लेने वाले, राज्ञः = राजा के, शासनदूषकैः = शासन को दूषित करने वाले, ईद शैः = ऐसे, (अधिकरणिकैः = न्यायाधीशों के द्वारा), अपापानाम् = निरपराध व्यक्तियों के, सहस्राणि = हजार, हतानि = मारे गये हैं, च = और, हन्यन्ते = मारे जाते हैं।।

अर्थः— और भी-

'कौवा सफेद है' इस प्रकार का भी विश्वास कर लेने वाले, राजा के शासन को दूषित करने वाले ऐसे (न्यायाधीशों) के द्वारा हजारों निरपराध आदमी मारे गये हैं और अब भी मारे जाते हैं।।४१।।

टीका— श्वेतकाकीयैः = 'श्वेतः काकः, इत्येवं विपरीतार्थ स्वीकुर्वद्भिः, शब्दप्रमाणप्रधानैः विवेकशून्यैः इत्यर्थः; अथवा श्वेतकाकीयैः = श्वेतकाकतुल्यैः (बकसद शैः), बहिः शुभ्रै अन्तः कृष्णैश्चेति भावः; अतः राज्ञः = शासकस्य; शासनम् = दण्डपद्धतिम् दूषयन्ति ये तैः तथोक्तैः, अनुचितमार्गप्रदर्शिभिः; ईद शैः = एताद शैः विवेकभ्रष्टैः; अधिकरणिकैः इति शेषः; अपापानाम् = पापरहितानाम् विगतमलानामिति यावत्; सहस्राणि = बहूनि; हतानि = मारितानि; च

= तथा; सम्प्रत्यपि हन्यन्ते = मार्यन्ते चापि। एभिः विवेकशून्यैः अधिकारिभिः महान् निरपराधः लोकसमुदायः हन्यते इति भावः।।४१।।

यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।४१।।

सखे मैत्रेय! गच्छ, मद्वचनादम्बामपश्चिममभिवादयस्व। पुत्रं च मे रोहसेनं परिपालयस्व।

विदूषकः— मूले छिण्णे कुदो पादवस्स पालणं?। (मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम्?।)

चारुदत्तः— मा मैवम्;

न णां लोकान्तरस्थानां देहप्रतिकृतिः सुतः।
मयि यो वै तव स्नेहो रोहसेने स युज्यताम्।।४२।।

अर्थः— मित्र मैत्रेय! जाओ मेरी ओर (मेरे वचन से) माता जी को आखिरी प्रणाम कहना। और मेरे पुत्र रोहसेन की देख भाल करना।

विदूषक— जड़ के ही कट जाने पर डालियों की देख भाल कैसे की जा सकती है? (अर्थात् तुम्हारे विना रोहसेन का जीना कठिन है)।

अन्वयः— सुतः, लोकान्तरस्थानाम्, न णाम्, देहप्रतिकृतः, (भवति); (अतः), मयि, तव, यः, स्नेहः, सः, रोहसेने, वै, युज्यताम्।।४२।।

शब्दार्थः— सुतः = पुत्र, लोकान्तरस्थानाम् = परलोक में गये हुए, न णाम् = लोगों का, देहप्रतिकृतिः = अपना प्रतिनिधि अथवा दूसरी देह, (भवति = होता है)। (अतः) मयि = मेरे ऊपर, तव = तुम्हारा, यः = जो, स्नेहः = प्रेम है, सः = वह, रोहसेने = रोहसेन में (अर्थात् मेरे पुत्र में), वे = अवश्य ही, युज्यताम् = लगा दिया जाय।।

अर्थः—

चारुदत्त— पुत्र परलोक में गये हुये लोगों का अपना प्रतिनिधि होता है। इसलिये मेरे ऊपर तुम्हारा जो प्रेम है उसे रोहसेन में लगा दिया जाय।।४२।।

टीका— सुतः = पुत्रः; अन्यः लोकः लोकान्तरं तस्मिन् लोकान्तरे = स्वर्गादौ तिष्ठन्तीति; न णाम् = मानवानाम्; देहप्रतिकृतिः-देहस्य = शरीरस्य प्रतिकृतिः = प्रतिमा, अपरः देहः इत्यर्थः; अतः मयि = चारुदत्ते; तव = भवतः, मैत्रेयस्येत्यर्थः; यः = अपूर्वः; स्नेहः = प्रेम; अस्ति सः = स्नेहः; रोहसेने अर्प्यताम्।।४२।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।४२।।

विदूषकः—भमो वअस्स! अहं ते पिअवअस्सो भविअ तुए विरहिदाइं पाणाइं धारेमि?। (भो वयस्य! अहं ते प्रियवयस्यो भूत्वा त्वया विरहितान्प्राणान्धारयामि?।)

चारुदत्तः—रोहसेनमपि तावदर्शय।

विदूषकः—एव्वं, जुज्जदि। (एवम्, युज्यते।)

अधिकरणिकः— भद्र शोधनक! अपसार्यतामयं बटुः।

(शोधनकस्तथा करोति)

अधिकरणिकः— कः को त्र भोः?। चाण्डालानां दीयतामादेशः।

(इति चारुदत्तं विस ज्य, निष्क्रान्ताः सर्वे राजपुरुषाः)

शोधनकः— इदो आअच्छदु अज्जो। (इत आगच्छत्वार्यः।)

चारुदत्तः— (सकरुणम्, 'मैत्रेय भोः! किमिदमद्य' (६/२६) इत्यादि पठति; आकाशे)

> **विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते मे विचारे**
> **क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य।**
> **अथ रिपुवचनाद्वा ब्राह्मणं मां निहंसि**
> **पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेतः।।४३।।**

अर्थः—

विदूषक— हे मित्र! मैं तुम्हारा प्रिय मित्र होकर तुम्हारे बिना जी सकूँगा?

चारुदत्त— तनिक, रोहसेन को भी (मुझे) दिखला दो।

विदूषक— अच्छा, ठीक है।

अधिकरणिक— भले आदमी शोधनक! इस ब्राह्मण को हटा दो।

(शोधनक वैसा ही करता है)

अधिकरणिक— कौन! अरे यहाँ कौन है? चाण्डालों (जल्लादों) को आज्ञा दी जाय (चारुदत्त को फाँसी पर लेजाकर लटकाने के लिये)।

(इस प्रकार चारुदत्त को छोड़कर सभी राजकीय कर्मचारी निकल जाते हैं)

शोधनक— आर्य इधर आइये।

अन्वयः— विषसलिलतुलाग्निप्रार्थिते, मे, विचारे (सति), वीक्ष्य, अद्य, इह, शरीरे, क्रकचम्, दातव्यम्; अथ, रिपुवचनात्, वा, माम् ब्राह्मणम्, निहंसि, (चेत्), पुत्रपौत्रैः, समेतः, नरकमध्ये, पतसि।।४३।।

शब्दार्थः— विषसलिल-तुला ग्नि-प्रार्थिते = विष, जल, तराजु (तुला), तथा आग के द्वारा परीक्षणीय मे = मेरे, विचारे = मुकदमा के निर्णय होने पर, वीक्ष्य = देखकर, अद्य = आज, इह = इस, शरीरे = शरीर पर, क्रकचम् = आरा, दातव्यम् = देना चाहिये, चलाना चाहिये। अथ = यदि, रिपुवचनात् = शत्रु के कहने से, वा = ही, माम् = मुझ, ब्राह्मणम् = ब्राह्मण को, निहंसि = मारते हो, (चेत् = तो), पुत्रपौत्रैः = पुत्र तथा पौत्रों के, समेतः = साथ, नरकमध्ये = नरक में, पतसि = गिरोगे।।

अर्थः—

चारुदत्त— (करुणा के साथ, मैत्रेय भोः 'किमिदमद्य' ६/२६ इत्यादि पढ़ता है; आकाश में) मेरे मुकदमा के निर्णय में विष, जल, तराजू (तुला) तथा आग के द्वारा (दिव्य) परीक्षा की प्रार्थना मेरे द्वारा करने पर, उसे भली-भाँति देखकर ही आज मेरे इस शरीर पर आरा चलाना चाहिये किन्तु यदि शत्रु (शकार) के कहने से ही (हे राजन्) मुझ ब्राह्मण को मारते हो तो तुम पुत्र तथा पौत्रों के साथ (अर्थात् अपने समूचे खान-दान के साथ) नरक में गिरोगे।।

टीका— विषम् = गरलम्, विषपानमित्यर्थः, सलिलम् = जलम्, जले मज्जनमिथ्यर्थः, तुला = तुलारोहणमिथ्यर्थः; अग्निः = वह्निः, वह्निप्रवेशन-मित्यर्थः, तैः विषसलिलतुलाग्निभिः, दिव्यसाधनैः इत्यर्थः, प्रार्थिते = परीक्षितुम् अभीष्टे; मे = मम, चारुदत्तस्येत्यर्थः; विचारे = व्यवहारनिर्णये, अभियोगविचारे सति; वीक्ष्य = द ष्ट्वा, दीव्यपरीक्षां द ष्ट्वा इत्यर्थः; अद्य = अधुना; इह = अस्मिन्, मामकीने; शरीरे = देहे; क्रकचम् = करपत्त्रम्। दातव्यम् =

दातुमुचितम्; न परस्येति शेषः; अथ = सम्यक् परीक्षां न विधायेत्यर्थः; रिपोः = शत्रोः, शकारस्येत्यर्थः, वचनात् = कथनात्; वा = एव; माम् = निरपराधम्; ब्राह्मणम् = द्विजम्; सर्वथा हन्तुमयोग्यमित्यर्थः; निहंसि = मारयसि, चेत् = तदा; पुत्रपौत्रैः = सुततत्सुतादिभिः; निखिलैः परिवारैः इत्यर्थः; समेतः = संयुक्तः; नरकमध्ये = निरयान्तरे; पतसि = गमिष्यसीति।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार एवं मालिनी छन्द है।।४३।।

अयमागतो स्मि।

यह मैं आ ही गया हूँ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इस प्रकार सभी निकल जाते हैं

इति व्यवहारो नाम नवमो ंकः।

व्यवहार नाम नवाँ अंक समाप्त।।

दशमो ऽङ्कः

(ततः प्रविशति चाण्डालद्वयेनानुगम्यमानश्चारुदत्तः)

उभौ—

तक्किं ण कलअ कालण णववहबंधणअणे णिउणा।
अचिलेण शीशलेअणशूलालोवेशु कुशलम्ह।।१।।
(तत्किं न कलय कारणं नववधबन्धनयने निपुणौ।
आचरेण शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु कुशलौ स्वः।।

अन्वयः— तत्, किम्, कारणम्, न, कलय; (आवाम्), नववधबन्धनयने, निपुणौ, अचिरेण, शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु, कुशलौ, स्वः।।१।।

शब्दार्थः— तत् = तो, किम् = क्या, कारणम् = मतलब को, न = नहीं, कलय = जानते हो? (आवाम् = हम दोनों), नववधबन्धनयने = नये वध और बन्धन के लिये ले जाने में, निपुणौ = परम चतुर, अचिरेण = बहुत जल्द, शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु = शिर काटने और शूली (फाँसी) पर चढ़ाने में, कुशलौ = निपुण, स्वः = हैं।।

(इसके बाद दो चाण्डालों से पीछा किया जाता हुआ (अनुगत) चारुदत्त प्रवेश करता है)

अर्थः—

दोनों— (चाण्डाल)—

तो क्या (इस रास्ते से हमारे जाने का) मतलब तुम नहीं जानते हो? हम दोनों (प्रति दिन के) नये वध और बन्धन के लिये (किसी अपराधी को) ले जाने में परम चतुर हैं, बहुत जल्द शिर काटने और शूली (फाँसी) पर चढ़ाने में निपुण हैं।।१।।

टीका— तत् = तु; किमिति प्रश्ने; कारणम् = हेतुम्; अनेन मार्गेण आवयोः गमते इति भावः; न कलय = न विचारय? न जानासि? इति भावः। आवाम् नवौ = नवीनौ यौ वधबन्धौ = नाशबन्धनौ तयोः नयने = प्रापणे; अथवा नवः = नवीनः यः वधः = मारणम् तस्मै बन्धः = बन्धनम् तस्य नयने = प्रापणे, वधाय दाने इत्यर्थः; अथवा नववधाय बन्धः = बन्धनस्थानमित्यर्थः, तत्र नयने = अपराधिनं ग हीत्वा गमने; निपुणौ = परमप्रवीणौ; तथा अचिरेण = अविलम्बेन; शीर्ष्णः = शिरसः छेदनेषु = कर्तनेषु तथा शूले = प्राणापहारके लौहफलके आरोपेषु = आरोपणेषु; वध्यस्येति शेषः; कुशलौ = परमचतुरौ; स्वः = वर्तावहे।।१।।

इस श्लोक में गाथा छन्द है।।१।।

ओशलध अज्जा! ओशलध। एशे अज्जचालुदत्ते

दिण्णकलवीलदामे गहिदे अम्हेहिं वज्झपुलिसेहिं।
दीवे व्व मंदणेहे थोअं थोअं खअं जादि।।२।।

अपसरतार्याः अपसरत। एष आर्यचारुदत्तः

दत्तकरवीरदामा ग हीत आवाभ्यां वध्यपुरुषाभ्याम्।

दीप इव मन्दस्नेहः स्तोकं स्तोकं क्षयं याति।।

अन्वयः— दत्तकरवीरदामा, आवाभ्याम्, वध्यपुरुषाभ्याम्, ग हीतः, (एषः, आर्य-चारुदत्तः), मन्दस्नेहः, दीपः, इव, स्तोकम्, स्तोकम्, क्षयम्, याति।।२।।

शब्दार्थः— दत्तकरवीरदामा = पहनायी गयी कनेर की मालावाला, आवाभ्याम् = हम दोनों, वध यपुरुषाभ्याम् = बध करने के लिये रखे गये (नियुक्त) जनों के द्वारा, ग हीतः = पकड़ा गया, (एषः = यह, आर्यचारुदत्तः = चारुदत्त), मन्दस्नेहः = कमतल वाले, दीपः = दीपक, इव = जैसा, स्तोकम् = थोड़ा, स्तोकम् = थोड़ा, क्षयम् = नाश को, याति = प्राप्त हो रहा है।।

अर्थः— हटो माननीय जनों, हटो। यह आर्य चारुदत्त-

पहनायी गयी कनेर की माला वाला, वध करने के लिये रखे गये (नियुक्त) हम दोनों जनों के द्वारा पकड़ा गया (यह चारुदत्त) कम तेल वाले दीपक की भाँति धीरे धीरे नाश को प्राप्त हो रहा है।।२।।

टीका— दत्तम् = अर्पितम्, कण्ठे क्षिप्तमित्यर्थः, करवीरस्य = शतप्रासापरपर्यायस्य रक्तपुष्पविशेषस्य, लोके 'कनेर' इति ख्यातस्य दाम = माला यस्मै सः, प्राप्तप्राणदण्डः रक्तकरवीरमालया रक्तचन्दनेन च अलङ्क्रियते जनः; आवाभ्याम् = चारुदत्तं वध्यभूमौ नयनतत्पराभ्याम्; वधे = हननकार्ये साधू इति वध्यौ = वधप्रवीणौ इत्यर्थः, तौ च तौ पुरुषौ चेति ताभ्याम्; वधकार्ये नियुक्ताभ्यामावाभ्यामित्यर्थः; ग हीतः = घ तः; मन्दः = क्षीणः स्नेहः = तैलम्, पक्षे-जीवनानुरागः यस्य ताद शः; दीपः = दीपकः; इव = यथा; स्तोकं स्तोकम् = मन्दं मन्दम्, शनैः शनैः इति यावत्; क्षयम् = नाशम्; याति = गच्छति, प्राप्नोतीत्यर्थः।।२।।

इस श्लोक में श्लेष से अनुप्राणित उपमा अलंकार है। प्रयुक्त छन्द का नाम है- आर्या।

चारुदत्तः—(सविषादम्)

नयनसलिलसिक्तं पांशुरुक्षीकृतांग
पित वनसुमनोभिर्वेष्टितं मे शरीरम्।
विरसमिह रटन्तो रक्तगन्धानुलिप्तं
बलिमिव परिभोक्तुं वायसास्तर्कयन्ति।।३।।

अन्वयः— इह, विरसम्, रटन्तः, वायसाः; नयनसलिलसिक्तम्, पाशुरुक्षीकृतांगम्, पित वनसुमनोभिः, वेष्टितम्, रक्तगन्धानुलिप्तम्, मे, शरीरम्, बलिम्, इव, परिभोक्तुम्, तर्कयन्ति।।३।।

शब्दार्थः— इह = यहाँ, विरसम् = कर्कशतापूर्वक, रटन्तः = शब्द करते हुए, वायसाः = कौवे; नयनसलिलसिक्तम् = आसुओं से भीगे हुए, पांशुरुक्षीकृतांगम् = धूलि-धूसरित अंगवाले, पित वनसुमनोभिः = श्मशान के फूलों से, वेष्टितम् = ढके हुए, रक्तगन्धानुलिप्तम् = लालचन्दन से पुते हुए, मे = मेरे, शरीरम् = शरीर को; बलिम् = बलि के (पूजा में चढ़ाए गये पदार्थों के) इव = समान, परिभोक्तुम् = खाने के लिये, तर्कयन्ति = विचार कर रहे हैं।।

अर्थः—

चारुदत्त— (दुःख के साथ)—

यहाँ कर्कश शब्द करते हुये कौवे आँसुओं से भीगे हुये, धूलि-धूसरित अंगवाले, श्मशान के फूलों से ढके हुए लालचन्दन से पुते हुए मेरे इस शरीर को बलि के समान खाने का विचार कर रहे हैं।।३।।

टीका— इह = दक्षिणश्मशानमार्गे; विरसम् = कर्कशम्, यथा स्यात्तथा; रटन्तः = शब्दं कुर्वन्तः; वायसाः = काकाः; नयनसलिलेत्यादि-नयनयोः = वेत्रयौः सलिलैः = जलैः, अश्रुभिः इत्यर्थः, सिक्तम् = आर्द्रम्; तथा पांशुभिः = धूलिभिः, रुक्षीकृतानि = धूसरीकृतानि अंगानि = अवयवाः यस्य तत्; पित वनस्य = श्मशानस्य, सुमनोभिः = पुष्पैः; वेष्टितम् = आच्छादितम्; रक्तगन्धेन = रक्तचन्दनेन अनुलिप्तम् = व्याप्तम्; मे = मम चारुदत्तस्य; शरीरम् = देहम्; बलिमिव = पूजाद्रव्यमिव; परिभोक्तुम् = भक्षणं कर्तुम्; तर्कयन्ति = उत्प्रेक्षन्ते; विचारयन्ति।।३।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं मालिनी छन्द है।।३।।

चाण्डालौ— ओशलध अज्जा! ओशलध।

किं पेक्खध छिज्जंतं शप्पुलिशं कालपलशुधालाहिं?।
शुअणशउणाधिवाशं शज्जणपुलिशद्दुमं एदं।।४।।

(अपसरतार्याः! अपसरत।

किं पश्यत छिद्यमानं सत्पुरुषाः कालपरशुधाराभिः।
सुजनशकुनाधिवासं सज्जनपुरुषद्रुममेतम्।।

अन्वयः— हे सत्पुरुषाः! सुजनशकुनाधिवासम्, एतम्, सज्जनपुरुषद्रुमम्, कालपरशुधाराभिः, छिद्यमानम्, किम्, पश्यत?।।४।।

शब्दार्थः— हे सत्पुरुषाः! = हे सत्पुरुषो सुजनशकुनाधिवासम् = सज्जनरूपी पक्षियों के आश्रयस्थान, एतम् = इस, सज्जनपुरुषद्रमम् = साधु पुरुषरूपी व क्ष को, कालपरशुधाराभिः = कालरूपी कुल्हाड़ी की धाराओं से, अथवा काल की कुल्हाड़ी की धाराओं से, छिद्यमानम् = काटे जाते हुए किम् = क्यों, पश्यत = देश रहे हो?।।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— हटो महानुभावो, हटो—

हे सत्य पुरुषो! सज्जन रूपी पक्षियों के आश्रय-स्थान, साधु पुरुष रूपी इस व क्ष को कालरूपी कुल्हाड़ी की धारों से काटे जाते हुए क्यों देखते हो? अर्थात् सत्पुरुष का बध देखना उचित नहीं है, अतः हट जाओ।।४।।

टीका— हे सत्पुरुषारु! हे सज्जनाः! अन्तिमे क्षणे चारुदत्तं द्रष्टुमुपस्थिताः इति भावः; सुजनाः = साधव एव शकुनाः = पक्षिणः तेषाम् अधिवासः = निवासस्थानम् तम्; सज्जनाश्रयप्रदमित्यर्थः; एतम् = आवाभ्यां वधाय नीयमानम्; सज्जनपुरुषः = साधुपुरुषः एव द्रुमः व क्षः तम्। कालस्य = म त्योः समयस्य वा परशोः = कुठारस्य धाराभिः = तीक्ष्णाग्रैः; अथवा कालः एव परशुः तस्य धाराभिः; अथवा काल इव परशुः तस्य धाराभिः; छिद्यमानम् = भिद्यमानम्; किं पश्यत किमवलोकयत्?।।४।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार एवं आर्या छन्द है।।४।।

आअच्छ ले चालुदत्ता! आअच्छ।

आगच्छ रे चारुदत्त! आगच्छ।)

चारुदत्तः—पुरुषभाग्यानामचिन्त्याः खलु व्यापाराः, यदहमीद शीं दशामनुप्राप्तः।

सर्वगात्रेषु विन्यस्तै रक्तचन्दनहस्तकैः।
पिष्टचूर्णावकीर्णश्च पुरुषोहं पशूकृतः।।५।।

अन्वयः— सर्वगात्रेषु, विन्यस्तैः, रक्तचन्दनहस्तकैः, पिष्टचूर्णावकीर्णः, च, अहम्, पुरुषः, पशूकृतः।।५।।

शब्दार्थः— सर्वगात्रेषु = सभी अंगों पर, विन्यस्तैः = लगाये गये, रक्तचन्दनहस्तकैः = लाल चन्दन के हाथ-छापे के द्वारा, पिष्टचूर्णावकीर्णः = (चावल के) आटे और (तिलों के) चूरे से व्याप्त, अहम् = मैं, पुरुषः = पुरुष, पशूकृतः = पशु कर दिया गया हूँ।।

अर्थः— आओ रे चारुदत्त आओ।

चारुदत्त— पुरुषों के भाग्यों के काम अचिन्तनीय हुआ करते हैं, जो कि मैं ऐसी दशा को प्राप्त हो गया हूँ।

सभी अंगों पर लगाये गये लाल चन्दन के हाथ-छापे (हाथ के चिन्ह) के द्वारा एवं (चावल के) आटे और (तिल के) चूरे से व्याप्त करके मुझ पुरुष को ही (बलि का) पशु बना दिया गया है।।

टीका— सर्वगात्रेषु = सर्वांगेषु; विन्यस्तैः = प्रदत्तैः; रक्तचन्दनस्य = लोहित-चन्दनस्य, हस्तकैः = हस्ताः एव हस्तकाः, हस्ताः इव हस्तकाः वा, स्वार्थे इवार्थे वा कन्, तैः हस्तकैः = हस्तचिह्नैः; कारणभूतैः; पिष्टैः = तण्डुलादीनां विकारैः चूर्णैः = तिलचूर्णैश्च अवकीर्णः = परिव्याप्तश्च; अहम् = अधुना वध्यभूतः; पुरुषः = मानवः; अपशुः पशुः सम्पद्यमानः कृतः इति पशूकृतः = बलिपशुतुल्यः कृतः।।५।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।५।।

(अग्रतो निरूप्य) अहो, तारतम्यं नराणाम्। (सकरुणम्)

अमी हि द ष्ट्वा मदुपेतमेतन्मर्त्यं धिगस्त्वित्युपजातबाष्पाः।
अशक्नुवन्तः परिरक्षितुं मां स्वर्गं लभस्वेति वदन्ति पौराः।।६।।

अन्वयः— अमी; हि; पौराः, मदुपेतम्, एतत्, द ष्ट्वा, मर्त्यम्, धिक्, अस्तु, इति; (उक्त्वा), उपजातबाष्पाः, माम्, परिरक्षितुम्, अशक्नुवन्तः; स्वर्गम्, लभस्व, इति, वदन्ति।।६।।

शब्दार्थः— अमी = ये; पौराः = नगर के निवासी, मदुपेतम् = मेरे द्वारा पाये गये, एतत् = इस (दुःख) को, द ष्ट्वा = देखकर, मनुष्य को, धिक् = धिक्कार, अस्तु = हो; इति = ऐसा, (उक्त्वा = कह कर), उपजातबाष्पाः = आँखों में आँसू भरे हुए, माम् = मुख को, परिरक्षितुम् = बचाने के लिये, अशक्नुवन्तः = असमर्थ होते हुए, स्वर्गम् = स्वर्ग को, लभस्व = पाओ, इति = वदन्ति = कह रहे हैं।।

अर्थः— (सामने देखकर) लोगों का समूह आश्चर्यजनक है। (करुणा के साथ)-

ये नगर के निवासी मेरे द्वारा पाई गयी इस हालत को देखकर (अर्थात् मुझे इस हालत में देखकर), यह कह कर कि-क्षणभंगुर मनुष्य को धिक्कार है; आँखों में आँसू भरे हुए, मुझ को बचाने में असमर्थ होते हुए 'तुम स्वर्ग पाओ; यह कह रहे हैं।।६।।

टीका— अमी = मां द्रष्टुमितस्ततः स्थिताः; हीति पादपुर्तौ; पौराः = पुरवासिन; जनाः; मया = चारुदत्तेन उपेतम् = प्राप्तम्, अथवा मयि = चारुदत्ते उपेतम् = आगतम्; एतत् = मदीयं दुःखम्, बध्यचिन्हं वा; द ष्ट्वा = अवलोक्य, मर्त्यम् = मनुष्यम्, मरणधर्माणमित्यर्थः, धिक् = धिक्कारम्; निन्दा इत्यर्थः; अस्तु = वर्तताम्; इति = इत्थम्; उक्त्वेति शेषः; उपजातबाष्पाः = अश्रुपूर्णनयनाः; माम् = वधाय नीयमानं मां चारुदत्तमित्यर्थः; परिरक्षितुम् = प्राणदण्डात् परित्रातुम्; अशक्नुवन्त अपारयन्तः, असमर्थाः भवन्तः इत्यर्थः; स्वर्गम् = सल्लोकम्; लभस्व = प्राप्नुहि; इति = इत्थम्; वदन्ति = कथयन्ति।।६।।

इस श्लोक में उपजाति छन्द है।।६।।

चाण्डालौ—ओशलध अज्जा! ओशलध। किं पेक्खध?।

इंदे प्पवाहिअंते गोप्पशवे शंकमं च तालाणं।
शुपुलिशपाणविपत्ती चत्तालि इमे ण दट्टव्वा।।७।।

(अपसरतार्याः अपसरत। किं पश्यत?।

इन्द्रः प्रवाह्यमाणो गोप्रसवः संक्रमश्च ताराणाम्।
सुपुरुषप्राणविपत्तिश्चत्वार्येतानि न द्रष्टव्यानि।।)

अन्वयः— प्रवाह्यमाणः, इन्द्रः, गोप्रसवः, ताराणाम्, संक्रमः, च, सुपुरुषप्राणविपत्तिः, च, एतानि, चत्वारि, न, द्रष्टव्यानि।।७।।

शब्दार्थः— प्रवाह्यमाणः = बहाया जाता हुआ। इन्द्रः = इन्द्रध्वज, गोप्रसवः = गाय का बियाना, ताराणाम् = ताराओं का, संक्रमः = टूट कर गिरना, सुपुरुषप्राणविपत्तिः = श्रेष्ठ पुरुष का वध, एतानि = ये, चत्वारि = चार, न = नहीं, द्रष्टव्यानि = देखने योग्य हैं।।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— हटो, महानुभावो! हटो। क्या देख रहे हो?-

जल में बहाने के लिये ले जाता हुआ इन्द्र-ध्वज, गाय का प्रसव, ताराओं का टूटकर गिरना तथा श्रेष्ठ पुरुष का वध-इन चारों को नहीं देखना चाहिये।।७।।

टीका— प्रवाह्यमाणः = विसर्जनाय नीयमानः, प्रवाह्यमानो वा; इन्द्रः = इन्द्रध्वजः; गवाम् = धेनूनाम् प्रसवः = प्रसूतिः ताराणाम् = नक्षत्राणाम्; संक्रमः = स्थानच्युतिः पतनमित्यर्थः; सुपुरुषस्य = सज्जनस्य श्रेष्ठपुरुषस्य वा प्राणविपत्तिः = प्राणनाशः; एतानि = इमानि; चत्वारि = चतुःसंख्याकानि वस्तूनि; न द्रष्टव्यानि = नावलोकनीयानि।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।७।।

एकः— **हंडे आहींता! पेक्ख पेक्ख**

णअलीपधाणभूदे वज्झीअंते कदंतअण्णाए।
किं लुअदि अंतलिक्खे आदु अणब्भे पडदि वज्जे।।८।।

अरे आहीन्त! पश्य पश्य

नगरीप्रधानभूते वध्यमाने कृतान्ताज्ञया।
किं रोदित्यन्तरिक्षमथवा नभ्रे पतति वज्रम्।।)

अन्वयः— कृतान्ताज्ञया, नगरीप्रधानभूते, वध्यमाने, किम्, अन्तरिक्षम्, रोदिति, अथवा, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति?।।८।।

शब्दार्थः— कृतान्ताज्ञया = यमराज की आज्ञा से, नगरीप्रधानभूते = नगरी के प्रधान (पुरुष चारुदत्त के), वध्यमाने = मारे जाने पर (वध की तैयारी होने पर), किम् = क्या, अन्तरिक्षम् = आकाश, रोदिति = रो रहा है, अथवा = या, अनभ्रम् = विना बादलों का, वज्रम् = वज्र, पतति = गिर रहा है।।

अर्थः—

एक चाण्डाल— अरे, आहीन्त! देख, देख—

यमराज (के सामान राजा पालक) की आज्ञा से इस नगरी के प्रधान पुरुष (चारुदत्त) के वध की तैयारी होने पर, क्या आकाश रो रहा है? अथवा बिना बादलों के ही वज्र गिर रहा है?।।८।।

टीका— कृतान्ताज्ञया-कृतान्तस्य = यमराजस्य यमतुल्यस्य राज्ञः पालकस्येत्यर्थः अज्ञया = आदेशेन; अथवा कृतान्तस्य = भाग्यस्य, आज्ञया = विधानेन; अथवा कृतान्तस्य = अधिकरणिकनिर्णीतस्य सिद्धान्तस्य आज्ञया = आदेशेन; नगरीप्रधानभूते-नगर्याः = उज्जयिन्याः प्रधानभूते = सर्वश्रेष्ठपुरुषे, चारुदत्ते इत्यर्थः; वध्यमाने = हन्यमाने, वधार्थं नीयमाने सतीत्यर्थः; किम् अन्तरिक्षम् = गगनम्। रोदिति = विलपति? अथवा अनभ्रम्-नास्ति अभ्रम् = मेघः यस्मिन् तदनभ्रम् = मेघशून्यम्; वज्रम् = अशनिः, पतति = आकाशादागच्छति?।।८।।

इस श्लोक में सन्देह नामक अलंकार तथा आर्या छन्द है।।८।।

द्वितीयः— अले गोहा!

ण अ लुअदि अंतलिक्खे णेय अणब्भे पडदि वज्जे।
महिलाशमूहमेहे निवडदि णअणंबु धाराहिं।।९।।

(अरे गोह!

न च रोदित्यन्तरिक्षं नैवानभ्रं पतति वज्रम्।
महिलासमूहमेघान्निपतति नयनाम्बु धाराभिः।।

अन्वयः— न, च, अन्तरिक्षम्, रोदिति; नैव, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति; (किन्तु) महिलासमूहमेघात्, नयनाम्बु, धाराभि, निपतति।।९।।

शब्दार्थः— न च = न तो, अन्तरिक्षम् = आकाश, रोदिति = रो रहा है; नैव = नहीं, अनभ्रम् = बिना बदलों के, वज्रम्, वज्र, पतति = गिर रहा है। (किन्तु), महिलासमूहमेघात् = स्त्रियों के समूह रूपी मेघ से, नयनाम्बु = आँखों का पानी (आँसू) धाराभिः = धाराओं से (अर्थात् धाराओं के रूप में), निपतति = गिर रहा है।।

अर्थः—

दूसरा चाण्डाल— अरे गोह!

न तो आकाश रो रहा है, और न बिना बादलों के वज्र ही गिर रहा है। (किन्तु) स्त्रियों के समूहरूपी मेघ से आँखों का पानी (आँसू) धाराओं के रूप में गिर रहा है।।९।।

टीका— न च = नैव; अन्तरिक्षम् = गगनम्; रोदिति = विलपति; नैव = न च; अनभ्रम् = मेघसम्बन्धविरहितम्; वज्रम् = अशनिः; पतति = आकाशादागच्छति। किं तर्हात्याशंकायामुच्यते = किन्तु; महिलासमूहः = स्त्रीसमुदायः एव मेघः = जलदः तस्मात्; नयनानाम् = नेत्राणाम् अम्बुः = जलम; अश्रु इत्यर्थः; धाराभिः = प्रवाहैः; निपतति = वर्षति।।९।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा उपगीति छन्द है। आर्यापरार्धतुल्ये दलद्वये प्राहुरुपगीतिम्।।६।।

अवि अ,—

वज्झम्मि णीअमाणे जणश्श शव्वश्श लोदमाणश्श।
णअणशलिलेहिं शित्ते लच्छादो ण उण्णमइ लेणू।।१०।।

अन्वयः— वध्ये, नीयमाने, रुदतः, सर्वस्य, जनस्य, नयनसलिलैः, सिक्तः; रेणुः, रथ्यातः, न, उन्नमति।।१०।।

शब्दार्थः— वध्ये = जिसे प्राणदण्ड की आज्ञा मिल चुकी है ऐसे (चारुदत्त के), नीयमाने = ले जाये जाने पर, रुदतः = रोते हुए, सर्वस्य = सभी, जनस्य = लोगों की, नयनसलिलैः = आँखों के जल से, सिक्तः = भीगी हुई, रेणुः = धूलि, रथ्यातः = गली से, न = नहीं, उन्नमति = उड़ रही है।।

अर्थः— और भी-

वध्य (चारुदत्त) को वध-स्थान पर ले जाये जाने के समय चारुदत्त को देख कर रोते हुए सभी लोगों की आँसुओं से भीगी हुई धूलि गली से नहीं उड़ रही है।।१०।।

टीका— वध्ये-वधम् अर्हतीति वध्यः तस्मिन् वध्ये = प्राणदण्डार्हे; चारुदत्ते इत्यर्थः; नीयमाने = प्राप्यमाणे सति; वधभूमिमिति शेषः; तं विलोक्य रुदतः = विलपतः; सर्वस्य = निखिलस्य; जनस्य = लोकस्य; नयनानाम् नेत्राणाम्, सलिलैः = जलैः, अश्रुभिः इत्यर्थः; सिक्तः = आर्द्रः, रेणुः = धूलिः; रथ्यातः = प्रतोल्याः; न उन्नमति = न उत्तिष्ठति।।१०।।

इस श्लोक में अतिशयोक्ति अलंकार तथा आर्या छन्द है।।१०।।

अपि च,—

वध्ये नीयमाने जनस्य सर्वस्य रुदतः।
नयनसलिलैः सिक्तो रथ्यातो नोन्नमति रेणुः।।)

चारुदत्तः— (निरूप्य, सकरुणम्)

एताः पुनर्हर्म्यगताः स्त्रियो मां वातायनार्धेन विनिःस तास्याः।
हा चारुदत्तेत्यभिभाषमाणां बाष्पं प्रणालीभिरिवोत्स जन्ति।।११।।

अन्वयः— हर्म्यगताः, एताः, स्त्रियः, पुनः वातायनार्धेन, विनि स तास्याः, माम् (अभिलक्ष्य) हा चारुदत्त!' इति, अभिभाषमाणाः, प्रणालीभिः, इव, बाष्पम्, उत्स जन्ति।।११।।

शब्दार्थः— हर्म्यगताः = महलों में रहने वाली, एताः = ये, स्त्रियः स्त्रियाँ, पुनः = फिर, वातायनार्धेन = खिड़कियों के एक हिस्से से, विनिःस तास्याः = मुँह निकाले हुए, माम् = मुझको, (उद्दिश्य = लक्ष्य करके), हा चारुदत्त!' = हाय चारुदत्त!, इति = ऐसा; अभिभाषमाणाः = कहती हुई, प्रणालीभिः = परनालों से, इव = मानो, बाष्पम् = आँसू, उत्स जन्ति = बहा रही हैं।

अर्थः—

चारुदत्त— (देख कर करुणापूर्वक)—महलों में रहने वाली ये स्त्रियाँ फिर खिड़कियों के एक हिस्से से मुँह निकाले हुए मुझको लक्ष्य करके 'हाय चारुदत्त' ऐसा कहती हुई मानों परनालों से ही आँसू बहा रही हैं।।११।।

टीका— हर्म्यगताः = प्रासादस्थिताः; वस्तुतः धनिनां वासः 'हर्म्यम्' कथ्यते, देवभूभुजां प्रासादः उच्यते। एताः = परिद श्यमानाः; स्त्रियः = वनिताः; पुनः = मुहुः; वातायनार्धेन-वातस्य = वायो अयनम् = गमनम् येन तत् वातायनम् = गवाक्षः तस्य अर्द्धेन = एकांशेन; गवाक्षस्य एकभागेन इत्यर्थः; विनिःस तानि = विनिर्गतानि आस्यानि = आननानि यासां ताः, तथाभूताः सत्यः; माम् = वधाय नीयमानं चारुदत्तमित्यर्थः; अभिलक्ष्येति शेषः; 'हा' = खेदे व्ययपदम्; चारुदत्त! इति = इत्थम्; अभिभाषमाणाः = कथयन्त्यः; प्रणालीभिः = जलनिःसरणमार्गेः, इव; वाष्पम् = अश्रु; उत्स जन्ति = प्रवाहयन्ति।।११।।

इस श्लोक में उत्प्रेक्षा अलंकार एवं इन्द्रवज्रा छन्द है।।११।।

चाण्डालौ— आअच्छ ले चालदत्ता! आअच्छ। इमं घोषणट्ठाणं। आहणेध डिंडिमं, घोशेध घोशणं। (आगच्छ रे चारुदत्त! आगच्छ। इदं घोषणस्थानम्। आहत डिण्डिमम्, घोषयत घोषणाम्।

उभौः— शुणाघ अज्जा! शुणाघ। एशे शत्थवाहविणअदत्तश्श णत्थिके शाअलदत्तश्श पुत्तके अज्जचालुदत्ते णाम। एदिणा किल अकज्जकालिणा गणिआ वशंतशेणा अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो शुण्णं पुष्फकलंडअजिण्णुज्जाणं पवेशिअ बाहुपाशबलक्कालेण मालिदे त्ति, एशे शलोत्ते गहिदे, शअं अ पडिवण्णे। तदो लण्णा पालएण अम्हे आण्णत्ता एदं मालेदुं। जदि अवले ईदिशं उभअलोअविलुद्धं अकज्जं कलेदि तं पि लाआ पालए एव्वं ज्जेव शाशदि। (श्र णुतार्याः श्र णुत। एष सार्थवाहविनयदत्तस्य नप्ता सागरदत्तस्य पुत्रक आर्यचारुदत्तो नाम। एतेन किलाकार्यकारिणा गणिका वसन्तसेनार्थकल्यवर्तस्य कारणाच्छून्यं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण मारितेति एष सलोप्त्रो ग हीतः; स्वयं च प्रतिपन्नः ततो राज्ञा पालकेन वयमाज्ञप्तौ एक्तं मारयितुम् यद्यपर ईद शमुभयलोकविरुद्ध मकार्यं करोति तमपि राजा पालक एवमेव शास्ति)।

चारुदत्त :- (सनिर्वेदं स्वगतम्)

मखशतपरिपूतं गोत्रमुदभासितं मे
सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात्।
स्तदसद शमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम्।।१२।।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— आओ रे चारुदत्त! आओ। यह घोषणा करने की जगह है। ढोल पीटो। घोषणा करो।

दोनों चाण्डाल— सुनिये महानुभावो! सुनिये, यह व्यापारी विनयदत्त का नाती (पौत्र), सागरदत्त का बेटा आर्य चारुदत्त है। कुकृत्य करने वाले इसी (आदमी) ने, कलेवा जैसे तुच्छ धन के लिये, वेश्या वसन्तसेना को पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में ले जाकर अपने हाथ के फन्दे से जबरदस्ती (गला दबाकर) मार डाला। यह चोरी के धन सहित पकड़ा गया और स्वयं भी स्वीकार कर लिया। उसके बाद राजा पालक ने इसे मारने के लिये हम लोगों का आज्ञा दी है। यदि कोई दूसरा भी दोनों लोकों (इस लोक और स्वर्ग लोक) के विरुद्ध इस प्रकार के कार्य को करेगा, तो उसे भी राजा पालक इसी प्रकार दण्ड देंगे।

अन्वयः— पुरस्तात्, मखशतपरिपूतम्, (यत्), मे, गोत्रम्, सदसि, निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः, उद्भासितम्, (आसीत्), मरणदशायाम्, वर्तमानस्य, मम, तत्, पापैः, असद शमनुष्यैः, घोषणायाम्, घुष्यते,।।१२।।

शब्दार्थः— पुरस्तात् = पहले, मखशतपरिपूतम् = सैकड़ों यज्ञों से पवित्र, (यत् = जो), मे = मेरा, गोत्रम् = कुल, सदसि = सभा में (अर्थात् यज्ञ-सभा में) निबिडचैन्यब्रह्मघोषैः = भरे हुए पूजा आदि के स्थानों में वेद-पाठों से, उद्भासितम् = उज्ज्वल, (आसीत् = था); मरणदशायाम् = मरने की हालत में, वर्तमानस्य = विद्यमान्, मम = मेरा, तत् = वही कुल, पापैः = पापी, असद शमनुष्यैः = अयोग्य जनों के द्वारा, घोषणायाम् = घोषणा में अथवा घोषणा के स्थान में, घुष्यते = घोषित किया जा रहा है।।

अर्थः—

चारुदत्त— दुःख के साथ, अपने आप-

पहले, सैकड़ों यज्ञों से पवित्र जो मेरा कुल यज्ञ-सभा में तथा (निमन्त्रित व्यक्तियों से) भरे हुए पूजा आदि के स्थानों में वेद-पाठों से उज्ज्वल (प्रकाशित) रहा करता था। (वही मेरा कुल) मरने की हालत में मेरे विद्यमान होने पर इन पापी तथा अयोग्य जनों (चाण्डालों) के द्वारा घोषणा के स्थान पर (बुरे काम के साथ) घोषित किया जा रहा है।।१२।।

टीका— पुरस्तात् = पूर्वम्; मम सम द्धिदशायामित्यर्थः; मखानाम् = यज्ञानाम्, शतैः = समूहैः इत्यर्थः। परिपूतम् = परमपवित्रम्; यत् मे = मम चारुदत्तस्य; गोत्रम् = कुलम्, सदसि = समितौ, यज्ञमण्डपे इत्यर्थः; निबिडचैत्यब्रह्मघोषैरिति-निबिडानि = जनसंकुलानि यानि चैत्यानि = यज्ञस्थानानि तेषु ब्रह्मणाम् = वेदानाम् घोषैः = उच्चारणैः पाठे इति यावत्; उद्भासितम् = प्रकाशितम्; आसीदिति शेषः मरणस्य = म त्योः दशायाम् = अवस्थायाम् मरणकाले इत्यर्थः; वर्तमानस्य = स्थितस्य; मम = पवित्राम्वयस्य चारुदत्तस्य; तत् = तदेवातिपवित्रं कुलम्; पापैः = पापशीलैः; असद शैः = अयोग्यैः, नीचैः इति यावत् मनुष्यैः जनैश्चाण्डालादिभिः; घोषणायाम् = घोषणास्थले; घुष्यते = उच्चैः कीर्त्यते।।१२।।

इस श्लोक में विषमालंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-मालिनी।।१२।।

(उद्वीक्ष्य, कर्णौं पिधाय) हा प्रिये वसन्तसेने!

शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति! सुरुचिरविद्रुमसन्निभाधरोष्ठि!।
तव वदनभवाम तं निपीय कथमवशो ह्ययशोविषं पिबामि?।।१३।।

अन्वयः— हे शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति! हे सुरुचिरविद्रुमसन्निभाधरोष्ठि! तव, वदनभवाम तम्, निपीय, (अधुना), अवशः, (अहम्), अयशोविषम्, कथम् पिबामि?।।१३।।

शब्दार्थः— हे शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति! = हे चन्द्रमा की निर्मल किरणों के समान सफेद दाँतों वाली! हे सुरुचिरविद्रुमसन्निभाधरोष्ठि! हे अत्यन्त सुन्दर मूँगे के समान अधरोष्ठ वाली!, तव = तुम्हारे, वदनभवाम तम् = मुख से उत्पन्न अम त को, निपीय = पीकर, (अधुना = अब), अवशः = परवश हुआ, (अहम् = मैं) अयशोविषम् = अपकीर्तिरूपी विष को, कथम् = कैसे, पिबामि = पी रहा हूँ।।

अर्थः— (ऊपर की ओर देख कर तथा कानों को ढँक कर) हाय प्रिये, वसन्तसेने!

हे चन्द्रमा की निर्मल किरणों के समान सफेद दाँतों वाली तथा अत्यन्त सुन्दर मूँगे के समान अधरोष्ठ वाली वसन्तसेना! तुम्हारे मुख से उत्पन्न अम त को पीकर अर्थात् अम त तुल्य हमारी वाणी सुनकर अब परवश हुआ मैं अपकीर्ति रूपी विष कैसे पी रहा हूँ? अर्थात् यह सुनकर मुझे मर जाना चाहिए था)।।१३।।

टीका— शशिविमलेति-शशिनः = चन्द्रमसः विमलाः = निर्मलाः, उज्जवलाः इत्यर्थ, ये मयूखाः = किरणाः, ते इव शुभ्राः = धवला, दन्ताः = दशनाः यस्याः तत्सम्बुद्धो; अतिनिर्मलदशने! इत्यर्थः; सुरुचिरेति। सुरुचिरः = अतिमनोहरः विद्रुमः = प्रवालः तत्सन्निभः = तत्सद शः अधारोष्ठः-अधरेण सहितः ओष्ठः = उत्तरोष्ठः इति अधरोष्ट अथवा अधरश्च = निम्नोष्ठश्च ओष्ठश्च = उत्तरोष्ठश्चेति अधरोष्ठम्, अथवा अधरश्चासौ ओष्ठश्च अधरोष्ठः यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ; तव = भवत्याः, वसन्तसेनायाः; वदनभवाम तम् = मुखोत्पन्नाम तम्, वचनमित्यर्थः; निपीय = नितरां पीत्वा, श्रत्वा इत्यर्थः; अधुना; अवशः = परवशः अहमिति शेषः; अयशः = अपकीर्तिः एव विषम् = गरलम्, कथम् = केन प्रकारेण; पिबामि = पानं करोमि! श्र णोमीत्यर्थः।।१३।।

इस श्लोक में उपमा, रूपक एवं विषम अलंकार तथा पुष्पिताग्रा छन्द है।।१३।।

उभौः— **ओशलध अज्जा! ओशलध।**

एशे गुणलअणणिही शज्जणदुक्खाण उत्तलणशेदू।
अशुवण्णं मंडणअं अवणीअदि अज्ज णअलीदो।।१४।।

अपसरतार्याः! अपसरत।

एष गुणरत्ननिधिः सज्जनदुः खानामुत्तरणसेतुः।
असुवर्णं मण्डनकमपनीयते द्य नगरीतः।।

अन्वयः— गुणरत्ननिधिः, सज्जनदुःखानाम्, उत्तरणसेतुः, असुवर्णम्, मण्डनकम्, एषः, (चारुदत्तः), अद्य, नगरीतः, अपनीयते।।१४।।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— हटो, आर्यजनों! हटो-

(दया, क्षमा आदि) गुण रूपी रत्नों का खजाना, सज्जनों के (समुद्र रूप) दुःख में पार करने के लिये पुल के समान (अर्थात् दुःख में सज्जनों का सहायक), विना सोने का आभूषण यह चारुदत्त आज (इस) नगरी से दूर किया जा रहा है।।१४।।

शब्दार्थः— सज्जनदुःखानाम् सज्जनों के दुःखों का, उत्तरणसेतुः = पार करने के लिये पुल; असुवर्णम् = विना सोने का, मण्डनकम् = आभूषण, एषः = यह, (चारुदत्त), अद्य = आज, नगरीतः = नगरी से, अपनीयते = दूर किया जा रहा है।।

टीका— गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः गुणाः एव रत्नानि = मणयः तेषां निधिः = निधिः = आकरः सागरः इत्यर्थः; सज्जनानाम् = साधूनाम्। दुःखानि = कष्टानि तेषाम्; उत्तरणे = पारं गमने, अतिक्रमणे इति यावत्; सेतुः = आलिः असुवर्णम्-नास्ति सुवर्ण यस्मिन् तत् असुवर्णम् = असुवर्णनिर्मितम्; मण्डनकम्; = आभूषणम्; अस्याः नगर्याः मण्डनभूतः इत्यर्थः; एषः = अस्माभिर्नीयमानः; चारुदत्तः, अद्य = अस्मिन् दिने, सम्प्रति; नगरीतः = उज्जयिनीनगर्य्याः; अपनीयते = अपसार्य्यते।।१४।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार एवं आर्य्या छन्द है।।१४।।

अण्णं च,—

शव्वे खु होइ लोए लोए शुहशंठिदाण तत्तिल्लः।
विणिवडिदाणं णलाणं पिअकाली दुल्लहो होदि।।१५।।

अन्यच्च—

सर्वः खलु भवति लोके लोकः सुखसंस्थितानां चिन्तायुक्तः।
विनिपतिनानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति।।)

अन्वयः— लोके, सर्वः, लोक, खलु, सुखसंस्थितानाम्, चिन्तायुक्तः, भवति; (किन्तु), विनिपतितानाम्, नराणाम्, प्रियकारी, दुर्लभः, भवति।।१५।।

शब्दार्थः— लोके = संसार में, सर्वः = सब, लोकः = व्यक्ति, खलु = निश्चय ही, सुखसंस्थितानाम् = सुखी व्यक्तियों का, चिन्तायुक्तः = शुभ-चिन्तक, भवति = होता है। (किन्तु = परन्तु), विनिपतितानाम् = आपत्ति में पड़े हुए, नराणाम् = मनुष्यों का, प्रियकारी हित करने वाला, दुर्लभः = दुर्लभ, भवति = होता है।।

अर्थः— और भी-

इस संसार में सभी आदमी सुखी व्यक्तियों के ही शुभ-चिन्तक होते हैं। किन्तु आपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों का हित करने वाला दुर्लभ होता है।।१५।।

टीका— लोके = संसारे; सर्वः = निखिलः; लोकः = जनः; खलु = अवश्यमेव; सुखे = आनन्दे संस्थितानाम् = वर्तमानानाम्; सुखिनां जनानामित्यर्थः; चिन्तायुक्तः = शुभचिन्तकः, प्रियकर्ता इति यावत्; भवति = अस्ति; किन्तु विनिपतितानाम् = पिपत्तौ वर्तमानानाम्; नराणाम् = जनानाम्; प्रियकारी = हितसाधक; दुर्लभः = दुःखेन लब्धुं योग्यः; भवति = जायते, वर्तते।।१५।।

इस श्लोक में अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार तथा आर्या छन्द है।।१५।।

चारुदत्तः— (सर्वतो वलोक्य)

अमी हिवस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः
प्रयान्ति मे दूरतरं वयस्याः।
परो पि बन्धुः सुखसंस्थितस्य
मित्रं न कश्चिद्विषमस्थितस्य।।१६।।

अन्वयः— अमी, मे, वयस्याः, वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः, हि, दूरतरम्, प्रयान्ति; (सत्यम्) सुखसंस्थितस्य, परः, अपि, बन्धुः, (भवति, किन्तु), विषमस्थितस्य, कश्चित्, मित्रम्, न, (भवति)।।१६।।

शब्दार्थः— अमी = ये, मे = मेरे, वयस्याः = मित्र, वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः = कपड़े के आँचल से मुँह को ढके हुए, हि = निश्चित ही, दूरतरम् = दूर-दूर, प्रयान्ति = जा रहे हैं। (सत्यम् = सच है), सुखसंस्थितस्य = सुख की हालत में वर्तमान व्यक्ति का, परः = पराया, अपि = भी, बन्धुः = अपना, भाई, (भवति = होता है, किन्तु = परन्तु), विषमस्थितस्य = विपत्ति में पड़े हुए का, कश्चित् = कोई, मित्रम् = मित्र, न = नहीं, भवति = होता है।।

चारुदत्त— (सभी ओर देखकर)—

ये मेरे मित्र कपड़े के आँचल से अपने मुँह को ढँके हुए दूर दूर जा रहे हैं। (सच है कि) सुख की हालत में वर्तमान व्यक्ति का पराया (अपरिचित) भी अपना बन जाता है; किन्तु विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति का कोई मित्र नहीं होता।।१६।।

टीका— अमी = कि चिद्दूरे परिद श्यमानाः; मे = मम, चारुदत्तस्य; वयस्याः = मित्राणि; वस्त्रान्तेति-वस्त्रान्तेन = पटा चलेन निरुद्धानि = आच्छादितानि, परिचयाभावायेति शेषः,

वक्त्राणि = आननानि यैः ते, ताद शाः सन्तः; हि = निश्चितम्; दूरतरम् = अतिदूरम्; प्रयान्ति = गच्छन्ति। सत्यम्; सुखे = आनन्दे, सम्पत्तावित्यर्थः, स्थितस्य = वर्तमानस्य; जनस्येति शेषः; परः = अन्य, अपरिचितः; अपि; बन्धुः = स्वजनः, उपकर्तेति भावः; भवति; किन्तु विषये = विपत्तौ, स्थितस्य = गतस्य; कश्चित् = स्वजनः अपीत्यर्थः; मित्रम् = सुहृत; न = नहि; भवति = सम्पद्यते।।१६।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा उपजाति छन्द है।

चाण्डालौ– ओशालणं किदं। विवित्तं लाअमग्गं। ता आणेध एदं दिण्णवज्झचिण्हं। (अपसारणं कृतम्, विविक्तो राजमार्गः; तदानयतैनं दत्तवध्यचिह्नम्।)

(चारुदत्तो निःश्वस्य, 'मैत्रेय! भोः किमिदमद्य' (६/२६) इत्यादि पठति।)

अर्थः–

दोनों चाण्डाल– (लोगों को) हटा दिया गया। सड़क खाली है। इसलिए शूली पर चढ़ाये जाने वाले के चिन्ह को धारण करने वाले इस (चारुदत्त) को ले आओ।

(चारुदत्त लम्बी साँस लेकर, 'मैत्रेय! भोः किमिदम' (६/२६) इत्यादि पढ़ता है)

(नेपथ्ये)

हा ताद! हा पिअवअस्स! (हा तात! हा प्रियवयस्य!)

चारुदत्तः–(आकर्ण्य, सकरुणम्) भोः स्वजातिमहत्तर! इच्छाम्यहं भवतः सकाशात्प्रतिग्रहं कर्तुम्।

चाण्डालौ–किं अम्हाणं हत्थादो पडिग्गहं कलेशि?। (किमस्माकं हस्तात्प्रतिग्रहं करोषि?।)

चारुदत्तः–शान्तं पापम्; नापरीक्ष्यकारी दुराचारः पालक इव चाण्डालः। तत्परलोकार्थं पुत्रमुखं द्रष्टुमभ्यर्थये।

चाण्डालौ–एव्वं कलीअदु। (एवं क्रियताम्।)

(नेपथ्ये)

हा ताद! हा आवुक (हा तात! हा पितः!)

(चारुदत्तः श्रुत्वा, सकरुणम्, 'भोः! स्वजातिमहत्तर' प ष्ठे) इत्यादि पठति)

चाण्डालौ– अले पउला! खणं अंतलं देध। एशे अज्जचालुदत्ते पुत्तमुहं पेक्खदु। (नेपथ्याभिमुखम्) अज्ज! इदो इदो। आअच्छ ले दालआ! आअच्छ। (हे पौराः! क्षणमन्तरं दत्त। एष आर्यचारुदत्तः पुत्रमुखं पश्यतु। आर्य! इत इतः। आगच्छ रे दारक! आगच्छ।)

(ततः प्रविशति दारकमादाय विदूषकः)

विदूषकः–तुवरदु तुवरदु भद्दमुहो। पिदा दे मारिदुं णोअदि। (त्वरतां त्वरतां भद्रमुखः। पिता ते मारयितुं नीयते।)

दारकः– हा ताद! हा आवुक!। (हा तात! हा पितः!।)

विदूषकः–हा पिअवअस्स! कहिं मए तुमं पेक्खिदव्वो?। (हा प्रियवयस्य! कुत्र मया त्वं द्रष्टव्यः?।)

चारुदत्तः–(पुत्रं मित्रं च वीक्ष्य) हा पुत्र! हा मैत्रेय!। (सकरुणम्) भोः, कष्टम्।

चिरं खलु भविष्यामि परलोके पिपासितः।
अत्यल्पमिदमस्माकं निवापोदकभोजनम्।।१७।।

(पर्दे में)

अर्थः— हाय पिता जी! हाय प्रिय मित्र!

चारुदत्त— (सुनकर, करुणा पूर्वक) हे अपनी जाति के महतो (मुखिया)! मैं आपसे (कुछ) अनुग्रह (दान) लेना चाहता हूँ।

दोनों चाण्डाल— क्या हमारे हाथ से दान लोगे?

चारुदत्त— पाप शान्त हो। (राजा) पालक के समान चाण्डाल (भी) बिना बिचारे काम करने वाला तथा दुराचारी नहीं हैं। तो मैं परलोक (में शान्ति) के लिए पुत्र के मुँह को देखने की प्रार्थना कर रहा हूँ।

दोनों चाण्डाल— ऐसा कर लीजिये।

(पर्दे में)

हाय तात! हाय पिता!

(चारुदत्त सुन कर, करुणा के साथ, 'भोः! स्वजातिमहत्तर' इत्यादि पढ़ता है)

दोनों चाण्डाल— हे नगर के निवासियों! एक क्षण के लिए थोड़ा मार्ग (अवकाश) दे दो। यह आर्य चारुदत्त पुत्र का मुँह देख ले। (पर्दे की ओर देखकर) आर्य! इधर, उधर। आओ रे बालक आओ।

(इसके बाद बच्चे को लेकर विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक— भले मुँह वाले (बच्चे)! जल्दी करो, जल्दी करो। तुम्हारे पिताजी मारने के लिए ले जाये जा रहे हैं।

दारक (बच्चा)— हाय तात! हाय पिता जी!

विदूषक— हाय प्रिय मित्र! अब कहाँ तुम मेरे द्वारा देखे जाओगे?

चारुदत्त— (पुत्र और मित्र को देखकर) हाय पुत्र! हाय मैत्रेय! (करुणा के साथ) अरे कष्ट है।

अन्वयः— (अहम्), परलोके, खलु, चिरम्, पिपासितः, भविष्यामि; (यतः), अस्माकम्, निवापोदकभोजनम्, इदम् अत्यल्पम्, (अस्ति)।।१७।।

शब्दार्थः— (अहम् = मैं), परलोके = परलोक में, खलु = अवश्य ही, चिरम् = बहुत दिनों तक, पिपासितः = प्यासा, भविष्यामि = होऊँगा, रहूँगा। यतः = क्योंकि, अस्माकम् = हम लोगों के, निवापोदकभोजनम् = पित तर्पण के जल रूपी भोजन का दाता, इदम् = यह बालक (अपत्य), अत्यल्पम् = बहुत छोटा, (अस्ति = है)।।

अर्थः— मैं परलोक में बहुत दिनों तक प्यासा ही रहूँगा (क्योंकि) हम लोगों के पित तर्पण के जल रूपी भोजन का दाता यह बालक (अपत्य) बहुत छोटा है।।१७।।

टीका— अहम्; परलोके = अन्यस्मिन् स्वर्गादौ लोके; खलु = निश्चितम्; चिरम् = बहुकालपर्यन्तम्; पिपासितः = पिपासाकुलः; भविष्यामि। तर्पणाभावात् चिरमहं परलोके पिपासया पीडितः भविष्यामीत्यर्थः। ननु पुत्रहीनः पिपासितः भवति परलोके, तव तु पुत्रः अस्त्येवेत्याशंकायामाह-यतः अस्माकम् = मम मम वंशीयानाम् च; निवापस्य = पित तर्पणस्य उदकम् = सलिलम् तस्य भोजनम् = पान यस्मात् तत्; मम पित णा च जलदात इतयर्थः; इदम् = एतदपत्यम्; अत्यल्पम्; = स्वल्पम्, निवापा जलिदातुमयोग्यम्; अस्ति।।७।।

इस श्लोक में पहले के आधे वाक्य के प्रति बाद का आधा वाक्य कारण के रूप में कहा गया है। अतः इसमें काव्यलिंग अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-पथ्यावक्त्र।

छन्द का लक्षण- युजोश्चतुर्थतो जेन, पथ्यावक्त्रं प्रकीर्तितम्।।१७।।

किं पुत्राय प्रयच्छामि?। (आत्मानमवलोक्य यज्ञोपवीतं द ष्ट्वा) आं, इदं तावदस्ति मम च।

अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम्।
देवतानां पित णां च भागो येन प्रदीयते।।१८।।

(इति यज्ञोपवीतं ददाति)

अन्वयः— (इदम्, यज्ञोपवीतम्), ब्राह्मणानाम्, अमौक्तिकम्, असौवर्णम् विभूषणम्, (अस्ति; येन, देवतानाम्, पित णाम्, च, भागः, प्रदीयते।।१८।।

शब्दार्थः— (इदम् = यह, यज्ञोपवीतम् = जनेऊ), ब्राह्मणानाम् = ब्राह्मणों का, अमौक्तिकम् = मोती का न बना हुआ, असौवर्णम् = सोने का न बना हुआ, विभूषणम् = आभूषण, (अस्ति = है)। येन = जिससे (जिस जनेऊ से), देवातानाम् = देवताओं का, पित णाम् = पितरों का, भागः = भाग, प्रदीयते = दिया जाता है।।

अर्थः— पुत्र को क्या दूँ? (अपने आप को देखकर। जनेऊ देखकर) अच्छा, यह तो मेरे पास है ही।

(यह जनेऊ) ब्राह्मणों का आभूषण है, जिससे देवताओं तथा पितरों का भगा दिया जाता है।।१८।।

(ऐसा कह कर जनेऊ देता है)

टीका— इदं यज्ञोपवीतम्; गद्यवाक्यादध्याहार्यमेतत् पद्द्वयम्' ब्राह्मणानाम् = द्विजोत्तमानाम्; अमौक्तिकम् = मुक्ताभिः न निर्मितम्; असौवर्णम् = न सुवर्णघटितम्; विभूषणम् = आभूषणम्; अस्ति; येन = यज्ञोपवीतेनेत्यर्थ; देवतानाम् = देवानाम्; पित णाम् = अग्निष्वात्तादीना च; भागः = अंश, देवबलिः पित पिण्डादिक च; प्रदीयते = समर्प्यते। उपनयनानन्तरमेव द्विजानां दैवे पैत्रे च कार्ये अधिकार विहितः नान्यथेति। अतः विप्रस्य कृते अतो धिकं न प्रियतरं किमपि बहुमूल्यं विभूषणमिति भावः।।१८।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।

चाण्डालः— आअच्छ ले चालुदत्ता! आअच्छ। (आगच्छ रे चारुदत्त! आगच्छ।)

द्वितीयः— अले! अज्जचालुदत्तं णिलुववदेण णामेण आलवेशि। अले! पेक्ख

अब्भुदए अवशाणे तहे अ लत्तिंदिवं अहदमग्गा।
उद्दामे व्व किशोली णिअदी खु पडिच्छिदुं जादि।।१६।।

अरे, आर्यचारुदत्ततं निरुपपदेन नाम्नालपसि?। अरे, पश्य

अभ्युदये वसाने तथैव रात्रिंदिवमहतमार्गा।
उद्दामेव किशोरी नियतिः खलु प्रत्येषितुं याति।।

अन्वयः— अभ्युदये, अवसाने, तथैव रात्रिन्दिवम्, अहतमार्गा, नियतिः, उद्दामा, किशोरी, इव, खलु, प्रत्येषितुम्, याति।।१६।।

शब्दार्थः— अभ्युदये = उन्नति की अवस्था में, अवसाने = गिरी हालत में, तथैव = उसी तरह, रात्रिन्दिवम् = रात-दिन, अहतमार्गा = बेरोक-टोक चलने वाली, नियतिः = नियति (भाग्य), उद्दामा = स्वच्छन्द, किशोरी = चढ़ती हुई जवानी वाली (के), इव =

समान, खलु = निश्चय ही, प्रत्येषितुम् = पुरुष को स्वीकार करने के लिये, याति = जाति है।।

अर्थः—

चाण्डाल- आओ रे चारुदत्त, आओ दूसरा **चाण्डाल—** अरे आर्य चारुदत्त को ('आर्य' आदि) उपाधि से रहित नाम से पुकारते हो?। अरे, देखो-

उन्नति की अवस्था में तथा गिरी हालत में एवं रात में और दिन में बेरोकटोक चलने वाली (अप्रतिहत गति वाली) नियति (भाग्य) स्वच्छन्द, चढ़ती हुई जवानी काली स्त्री के समान पुरुष को स्वीकार करने के लिये जाती है। (अर्थात् नियति कब किसके ऊपर कैसी हालत ला देगी, नहीं कहा जा सकता)।।१६।।

टीका— अभ्युदये = उन्नतौ, सम्पन्नावस्थायामित्यर्थः; अवसाने = अभ्युदयावसाने इत्यर्थः; तथैव = तेनैव प्रकारेण; रात्रिन्दिवम् = अहोरात्रम्; सर्वदा इत्यर्थः; अहतः = अप्रतिहतः, न केनापि रुद्धः, मार्गः = पन्थाः यस्याः सा, अप्रतिहतगतिरित्यर्थः; नियतिः = विधिः उद्दामा-उद्गतम् = बहिर्भूतम् दाम = बन्धनम्, मर्यादेत्यर्थः, यस्याः सा, स्वच्छन्दगमनेति भावः; किशोरी = सद्यः प्राप्तयौवना स्त्री; इव = यथा; खलु = निश्चितम्; प्रत्येषितुम् = प्रत्येकं पुरुषं स्वीकर्तुं, पक्षे आलिंगितुम; याति = व्रजति।।१६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा आर्या छन्द है।।१६।।

अण्णं च,—

शुक्खा वि वदेशा शे किं विणमिअमत्थएण काअव्वं।
लाहुगहिदे वि चंदे ण वंदणीए जणपदश्श।।२०।।

अन्यच्च,—

शुष्का अपि प्रदेशा अस्य किं विनमितमस्तकेन कर्तव्यम्।
राहुग हीतो पि चन्द्रो न वन्दनीयो जनपदस्य।।)

अन्वयः— अस्य, प्रदेशाः, अपि, शुष्काः, (अतः), विनमितमस्तकेन, किम्, कर्तव्यम्?, (इति, न विचारणीयम्), राहुग हीतः, अपि, चन्द्रः, जनपदस्य, न वन्दनीयः?।।२०।।

शब्दार्थः— अस्य = इसके (चारुदत्त के) प्रदेशाः = (धनः यश आदि) अंग, अपि = भी, शुष्काः = सूख गये हैं। (अतः = इसलिये), विनमितमस्तकेन = झुके हुए मस्तक के द्वारा (प्रणाम करने से), किम् = क्या, कर्तव्यम् = करना है? (इति = ऐसा, न = नहीं, विचारणीयम् = सोचना चाहिये); राहुग हीतः = राहु के द्वारा ग्रसा गया, अपि भी, चन्द्रः = चन्द्रमा, जनपदस्य = जनपद के लिये (अर्थात् जनपद के निवासिों के लिये) न वन्दनीयः = वन्दनीय नहीं होता?।।

अर्थः— और भी-

इस चारुदत्त के (धन-यश आदि) अंग भी सूख गये हैं। (इसलिए इसे) प्रणाम करने से क्या प्रयोजन है? (ऐसा नहीं सोचना चाहिये) क्या राहु के द्वारा ग्रसा गया चन्द्रमा जनपद के निवासियों (अर्थात् मनुष्यों) के लिए वन्दनीय नहीं होता? (पाठान्तर में पहली लाइन का अर्थ यह है-इस चारुदत्त के कुल-नाम आदि क्या सूख गये? क्या इनके प्रति शिर नहीं झुकाना चाहिये?)।।२०।।

टीका— अस्य = आर्यचारुदत्तस्य; प्रदेशाः = अंगानि, यशोनामादयः; अपि; शुष्काः = शुष्कतां प्राप्ताः; अतः विनिमितमस्तकेन-विनमितम् = अवनतम् मस्तकम् = शिरः तेन; किम् = किं फलम्? सम्प्रति यशोनामादिविरहितस्य चारुदत्तस्य समक्षं प्रणामेन न किमपि फलमिति भावः। इति न विचारणीयम्। कुत इत्याह राहुणा = सैहिकेयेन ग हीतः = ग्रस्तः; अपि; चन्द्रः = विधुः; जनपदस्य = जनपदनिवासिनः लोकस्य इत्यर्थः; जनानां पदम् = स्थानं जनपदं तस्य। अथवा जनाः पद्यन्ते = गच्छन्ति अत्र इति जनपदः = देशः तस्य, अथवा जनपदस्य = लोकस्य, जनतायाः इत्यर्थः। न वन्दनीयः = नाभिनन्दनीयः।।२०।।

इस श्लोक में द ष्टान्त अलंकार एवं आर्या छन्द है।।२०।।

दारकः— अरे रे चांडाला! कहिं मे आवुकं णेध?। (अरे रे चाण्डाला! रे कुत्र मम पितरं नयत?।)

चारुदत्तः— वत्स!।

अंसेन बिभ्रत्करवीरमालां स्कन्धेन शूलं हृदयेन शोकम्।
आघातमद्याहमनुप्रयामि शामित्रमालब्धुमिवाध्वरे जः।।२१।।

अन्वयः— अंसेन, करवीरमालाम्, स्कन्धेन, शूलम्, हृदयेन, शोकम्, बिभ्रत्, अहम्; अध्वरे, आलब्धुम्, शामित्रम्, अजः, इव; अद्य, आघातम्, अनुप्रयामि।।२१।।

शब्दार्थः— अंसेन = गले से (में), करवीरमालाम् = कनेर की माला को, स्कन्धेन = कन्धे से (पर), शूलम् = शूली को, हृदयेन = हृदय से (मे), शोकम् = शोक को, बिभ्रत् = धारण किये हुए, अहम् = मैं, अध्वरे = यज्ञ में, आलब्धुम् = मारने के लिये, शामित्रम् = बाँधने वाले खम्भे के पास, (ले जाये जाते हुए) अजः = बकरा (को), इव = भाँति, अद्य = आज, आघातम् = फाँसी के स्थान को, अनुप्रयामि = (चाण्डालों के) पीछे-पीछे जा रहा हूँ।

अर्थः—

दारक— अरे रे चाण्डालों! मेरे पिता को कहाँ ले जा रहे हो?

चारुदत्त— बेटा?

गले में कनेर की माला, कन्धे पर शूली तथा हृदय में शोक धारण किये हुए मैं, यज्ञ में मारने के लिए बाँधने वाले खम्भे के पास (ले जाये जाते हुए) बकरे की भाँति, आज फाँसी के स्थान पर जा रहा हूँ।।२१।।

टीका— अंसेन = स्कन्धेन, कण्ठेनेति भावः; करवीरस्य = तदाख्यरक्तवर्णपुष्पविशेषस्य मालाम् = स्रजम्, वध्यमालामित्यर्थः; स्कन्धेन = बाहुमूलेन; शूलम् = प्राणदण्डसाधनं लौहफलकम्; प्राणदण्डार्थं नीयमानः जनः स्वस्कन्धे प्राणापहारकं शूलमपि वहति स्म; हृदयेन = अन्तःकरणेन, शोकम् = वसन्तसेनासम्बन्धिनीं कीर्तिनाशजनितां वा चिन्ताम्; बिभ्रत् = धारयन्; अहम् = चारुदत्तः; अध्वरे = यज्ञे। आलब्धुम् = व्यापादयितुम्; शामित्रम् शमितरि = यज्ञे भवं शामित्रम् = यज्ञीयपशुबन्धनाय निखातं लघुस्तम्भं पशुघातस्थानं वा; अजः इव = छागः इव; अद्य = सम्प्रति; आघातम् = वधस्थानम्; अनुप्रयामि = अनुव्रजामि; चाण्डालयोः अनुगमनं करोमीत्यर्थः।।२१।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।

चाण्डालः—दालआ!

ण हु अम्हे चांडाला चांडालकुलम्मि जादपुव्वा वि।
जे अहिभवंति शाहुं ते पावा ते अ चांडाला।।२२।।

दारक!

न खलु वयं चाण्डालाश्चाण्डालकुले जातपूर्वा अपि।
ये भिभवन्ति साधुं ते पापास्ते च चाण्डालाः।।

अन्वयः— चाण्डालकुले, जातपूर्वाः, अपि, वयम्, खलु, चाण्डालाः, न; ये, साधुम्, अभिभवन्ति, ते, पापाः, ते, चाण्डालाः, च।।२२।।

शब्दार्थः— चाण्डालकुले = चाण्डालकुल में, जातपूर्वाः = पहले पैदा हुए, अपि = भी, वयम् = हम लोग, खलु = वस्तुतः, चाण्डालाः = चाण्डाल, न = नहीं हैं। ये = जो लोग, साधुम् = सज्जन को, अभिभवन्ति = अपमानित, तिरस्कृत करते हैं। ते = वे, पापाः = पापी, ते = वे, चाण्डालाः = चाण्डाल (हैं)।

अर्थः— **चाण्डाल—** बालक!

चाण्डाल कुल में पैदा होकर भी हम लोग (वस्तुतः) चाण्डाल नहीं है। जो लोग सज्जन व्यक्ति का अपमान करते हैं, ये ही पापी और चाण्डाल हैं।।२२।।

टीका— चाण्डालकुले-चाण्डालानाम् = ब्राह्मण्यां व षलेन जनितानाम् कुले = वंशे; पूर्व जाताः इति जातपूर्वाः = प्राप्तजन्मानः, अपि; वयम = तव पितरं चारुदत्तं नीयमानाः; प्रशंसायां बहुवचनम्; खलु निश्चितम्; चाण्डालाः = वर्णाधमाः; न = न स्मः। जात्या चाण्डालाः भूत्वा अपि हृदये। वस्तुतः आचरणेन वा वयं चाण्डालाः न; यतः-ये = ये जनाः, पालकशकारादयश्चेति ध्वनिः; साधुम् = सज्जनम्; अभिभवन्ति = तिरस्कुर्वन्ति; वस्तुतः ते = ताद शाः जनाः एवेत्यर्थः; पापाः = पापिनः; ते चाण्डालाः = हृदयेन कर्मणा चापि ते एव वस्तुतः चाण्डालपदवाच्याश्चेति। वस्तुतः साधुजनावमाननमेव चाण्डालपदवाच्यत्वे कारणम्, न च कुलं न च साधारणं कर्मेति भावः।।२२।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।२२।।

दारकः— ता कीस मारेध आवुकं?। (तत्किमर्थं मारयत पितरम्?।)

चाण्डालः—दीहाओ, अत्त लाअणिओओ खु अवलज्झदि, ण हुअम्हे। (दीर्घायुः! अत्र राजनियोगः खल्वपराध्यति, न खलु वयम्।)

दारकः— वावादेध मं, मुंचध आवुकं। (व्यापादयत माम्, मु चत पितरम्।

चाण्डालः— दीहाओ! एवं भणंते चिलं मे जीव। (दीर्घायुः! एवं भणंश्चिरं मे जीव।)

चारुदत्तः— (सास्रं पुत्रं कण्ठे ग हीत्वा)

इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्ययदरिद्रयोः।
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम्।।२३।।

अर्थः—

चाण्डाल— मेरे चिर जीवी! ऐसे कहते हुए बहुत दिन तक जिओ।

चारुदत्त— (आँखों में आँसू भरे हुए बालक को गले लगा कर) यह (पुत्र) धनी और निर्धन दोनों के लिए एक समान स्नेह का जगत्प्रसिद्ध सर्वस्व है (अर्थात् प्राण है) यह विना चन्दन और खस के भी हृदय का (शान्तिकारक) लेप है (अर्थात् पुत्र को देखकर पिता का कलेजा ठण्डा हो जाता है)।।२३।।

अन्वयः— इदम्, आढ्यदरिद्रयोः, समम्, तत्, स्नेहसर्वस्वम्, (तथा), अचन्दनम्, अनौशीरम्, हृदयस्य, अनुलेपनम्, (अस्ति)।।२३।।

शब्दार्थः— इदम् = यह पुत्र (अपत्य), आढ्यदरिद्रयोः = धनी और निर्धन दोनों के लिये, समम् = एक समान, तत् = जगत्प्रसिद्धं, स्नेहसर्वस्वम् = स्नेह का सर्वस्व (प्राण), (तथा = और) अचन्दनम् = विना चन्दन का, अनौशीरम् = विना खस का, हृदयस्य = हृदय का, अनुलेपनम् = लेप, (अस्ति = है)।।

टीका— इदम् = पुरो वर्तमानम् अपत्यम्, पुत्ररूपं वस्तु वा; आढ्यः = धनी दरिद्रः = निर्धनश्च तयोः; समम् = तुल्यम्; न तु विषमम्, यतः पुत्रस्नेहसाम्राज्ये न वर्तते कश्चिदधनः सधनो वेति भाव; तत् = जगद्विदितम् अनुपमं वा; स्नेहस्य = प्रेम्णः सर्वस्वम् = निखिलं तत्त्वम्; प्राणभूतमित्यर्थः; तथा अचन्दनम्-न विद्यते चन्दनं यस्मिन् तदचन्दनम् = मलयजसम्पर्कशून्यम्; अनौशीरम्-उशीरस्य = वीरणमूलस्य इदम् = औशीरं न औशीरम् अनौशीरम् = उशीरसंयोगरहितम्। हृदयस्य = वक्षसः; अनुलेपनम् = सुखकरं विलेपनमस्तीति शेषः। अपत्यं सर्वेषां प्राणिनां समयेव हृदयशीतलकारि अस्तीति भावः।।२३।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।२३।।

(अंसेन बिभ्रत्-') (१०/२१) इत्यादि पुन पठति, अवलोक्य स्वगतम्, 'अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः' (१०/१६) इत्यादि पुनः पठति)

विदूषकः— भो भद्दमुहा मुंचध पिअवअस्सं चालुदत्तं; मं वावादेध। (भो भद्रमखाः! मु चत प्रियवयस्यं चारुदत्तम्; मां व्यापादयत।)

चारुदत्तः— शान्तं पापम् (द ष्ट्वा स्वगतम्) अद्यावगच्छामि। ('समसंस्थित-' (१०/१६) इत्यादि पठति, प्रकाशम् 'एताः पुनर्हर्म्यगताः स्त्रियो माम्' (१०/११) इत्यादि पुनः पठति)

चाण्डालः— ओशलध अज्जा! ओशलध।

किं पेक्खध शप्पुलिशं अजशवशेण प्पणट्टजीवाशं।
कूवे खंडिदपाशं कंचणकलशं व्व डुब्बंतं।।२४।।

(अपसरतार्याः! अपसरत।

किं पश्यत सत्पुरुषमयशोवशेन प्रनष्टजीवाशम्?।
कूपे खण्डितपाशं का चनकलशमिव मज्जन्तम्।।)

(चारुदत्तः सकरुणम्, 'शशिविमलमयूख-' (१०/१३) इत्यादि पठति)

अपरः— अले, पुणो वि घोशेहि। (अरे, पुनरपि घोषय।)

(चाण्डालस्तथा करोति)

अन्वयः— खण्डितपाशम्, कूपे, मज्जन्तम्, का चनकलशम्, इव, अयशोवशेन, प्रनष्टजीवाशम्, सत्पुरुषम्, किम् पश्यत?।।२४।।

शब्दार्थः— खण्डितपाशम् = टूटी हुई रस्सी वाले, कूपे = कुएँ में, मज्जन्तम् = डूबते हुए, का चनकलशम् = सोने के घड़े (के), इव = समान, अयशोवशेन = (झठे) कलंक के कारण, प्रनष्टजीवाशम् = जीने की आशा से रहित, सत्पुरुषम् = सज्जन पुरुष को, किम् = क्यों, पश्यत = देख रहे हो?।।

अर्थः— (अंसेन बिभ्रत्'- (१०/२१) इत्यादि फिर पढ़ता है, देखकर अपने आप, 'अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः' (१०/१६) इत्यादि पुनः पढ़ता है।)

विदूषक— हे भले मुँहवाले! प्रिय मित्र चारुदत्त को छोड़ दो। मुझे मारो।

चारुदत्त— पाप शान्त हो! (देख कर अपने आप) आज समझ रहा हूँ। ('समसंस्थित'—(१०/१६) इत्यादि पढ़ता है। प्रकट रूप में 'एताः पुनर्हर्म्यगताः स्त्रियो माम् (१०/१०) इत्यादि फिर पढ़ता है)

चाण्डाल— हटो आर्यो! हटो।

रस्सी टूट जाने पर कुएँ में डूबते हुए सोने के घड़ा के समान, झूठे कलंक के कारण जीने की आशा से रहित सज्जन पुरुष (चारुदत्त) को क्यों देख रहे हो?।।२४।।

(चारुदत्त करुणा के साथ,-'शशिविमलययूख'- (१०/१३) इत्यादि पढ़ता है)

दूसरा चाण्डाल— अरे, फिर घोषणा करो।

(चाण्डाल वैसा ही करता है)

टीका— खण्डितपाशम्-खण्डितः = त्रुटितः पाशः = रज्जुः यस्य तथाभूतम्, अतः कूपे = उदपाने मज्जन्तम् = ब्रुडन्तम्; का चनस्य = सुवर्णस्य कलशमिव = घटमिव; चारुदत्तमहत्त्वद्योतनार्थमेव सुवर्णपदव्यवहारः; अयशोवशेन = अनेन वसन्तसेना अथकल्यवर्तस्य कारणात् मारितेति ला छनेन; प्रनष्टजीवाशम्-प्रनष्टा = दूरीभूता जीवस्य = जीवनस्य आशा = सम्भावने-त्यर्थः यस्य, ताद शम्; सत्पुरुषम् = सज्जनं पुरुषम्' कि पश्यत् = किम् अवलोकयत? यूयमिति शेषः।।२४।।

चारुदत्तः—

प्राप्तो हं व्यसनकृशां दशामनार्यां
यत्रेदं फलमपि जीवितावसानम्।
एषा च व्यथयति घोषणा मनो मे
श्रोतव्यं यदिदमसौ मया हतेति।।२५।।

अन्वयः— अहम् व्यसनकृशाम्, अनार्याम्, दशाम्, प्राप्तः, यत्र, इदम्, जीवितावसानम्, (एव), फलम् अपि, (अस्ति); एषा, च, घोषणा, मे, मनः, व्यथयति, यत्, इदम्, श्रोतव्यम्, 'असौ, मया, हता, इति'।।२५।।

शब्दार्थः— अहम् = मैं, व्यसनकृशाम् = विपत्ति के कारण कमजोर, अनार्याम् = निन्दनीय, दशाम् = अवस्था को, प्राप्तः = पहुँच गया (हूँ), यत्र = जहाँ पर, इदम् = यह, जीवितावसानम् = म त्यु, (एव = ही), फलम् = फल, परिणाम्, अपि = भी, (अस्ति = है)। एषा = यह, घोषणा = जनता में एलान, मे = मेरे, मनः = मन को, व्यथयति = पीडा देता है, यत् = जो, इदम् = यह, श्रोतव्यम् = सुनना पड़ता है,-'असौ = यह (वसन्तसेना), मया = मेरे द्वारा, हता = मारी गयी, इति = ऐसा।।

अर्थः—

चारुदत्त— मैं विपत्ति के कारण कमजोर एवं निन्दनीय उस दशा में पहुँच गया हूँ, जहाँ पर कि यह म त्यु ही फल है। और यह जनता में एलान मेरे मन को पीड़ा देता है; जो मुझे यह सुनना पड़ता है कि-'मैंने इसे (वसन्तसेना को) मारा है'।।२५।।

टीका— अहम् = चारुदत्तः; व्यसनेन = विपत्या, कृशाम् = दुर्बलाम्; प्रतिकारासमर्थामित्यर्थः; अनार्याम् = साधुजनविगर्हिताम्, निन्दनीयाम्; दशाम् = अवस्थाम्; प्राप्तः = गतः, अस्मीति शेषः; यत्र = यस्यां दशायाम्; इदम् = शीघ्रमेव अनुभूयमानम्; जीवितस्य = जीवनस्य अवसानम् = समाप्तिरेव, प्राणहानिरेव; फलम् = परिणाम्ः; अपि अस्तीति शेषः। यदि मरणमेव सुनिश्चितं तर्हि किं शोकेनत्याह-एषा च = इयं श्रूयमाणा च; घोषणा = उद्घोषः; में = मम; मनः = चेतः; व्यथयति = भ शं पीडयति; यत्; इदम् = एतत्; श्रोतव्यम् = आकर्णनीयम्; मयेति शेषः; 'असौ = एषा, मम हृदयस्था वसन्तसेना इत्यर्थः। मया = चारुदत्तेन; हता = मारिता; इति = एवं रूपा।।२५।।

इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।

(ततः प्रविशति प्रासादस्थो बद्धः स्थावरकः)

(इसके बाद महल पर बैठा, बँधा हुआ स्थावरक प्रवेश करता है)

स्थावरकः—(घोषणामाकर्ण्य, सवैक्लब्यम्) कधं अपावे चालुदत्ते वावादीअदि?। हग्गे णिअलेण शामिणा बंधिदे। भोदु आक्कंदामि। शुणाध अज्जा! शुणाध। अत्थि दाणिं मए पावेण पवहणपडिवत्तेण पुप्फकलंडअजिण्णुज्जाणं वशंतशेणा णीदा। तदो मम शामिणा मं ण कामेशित्ति कदुअ बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा, ण उण एदिणा अज्जेण। कधं विदूलदाए ण को वि शुणादि?। ता किं कलेमि?। अत्ताणअं पाडेमि?। (विचिन्त्य) जइ एव्वं कलेमि, तदा अज्जचालुदत्ते ण वावादीअदि। भोदु, इमादो पाशादबालग्गपदोलिकादो एदिणा जिण्णगवक्खेण अत्ताणअं णिक्खिवामि। वलं हग्गे उवलदे, ण उण एशे कुलपुत्त-विहगाणं वाशपादवे अज्जचालुदत्ते। एव्वं जइ विवज्जामि लद्धे मए पललोए। (इत्यात्मानं पातयित्वा) ही ही, ण उबलदम्हि। भग्गे मे दंडणिअले। ता चांडालघोशं शमण्णेशामि। (द ष्ट्वोपस त्य) हंहो चांडाला! अंतलं अंतलं। (कथमपापश्चारुदत्तो व्यापाद्यते?। अहं निगडेन स्वामिना बद्धः। भवतु, आक्रन्दामि। श्र णुतार्याः! श्र णुत। अस्तीदानीं मया पापेन प्रवहणपरिवर्तेन पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं वसन्तसेना नीता। ततो मम स्वामिना मां न कामयस इति कृत्वा बाहुपाशबलात्कारेण मारिता, न पुनरेतेनार्येण। कथं विदूरतया न को पि श्र णोति? तत्किं करोमि?। अत्मानं पातयामि?। यद्येवं करोमि, तदार्यचारुदत्तो न व्यापाद्यते। भवतु, अस्याः प्रासादबालाग्रप्रतोलिकात एतेन जीर्णगवाक्षेणात्मानं निक्षिपामि। वरमहमुपरतः, न पुनरेष कुलपुत्रविहगानां वासपादप आर्यचारुदत्तः। एवं यदि विपद्ये लब्धो मया परलोकः। आश्चर्यम्, नोपरतो स्मि। भग्नो मे दण्डनिगडः। तच्चाण्डालघोषं समन्विष्यामि। हंहो चाण्डालाः! अन्तरमन्तरम्।)

चाण्डालौ— अले! के अंतलं मग्गेदि?। (अरे! को न्तरं याचते।)

(चेटः 'शुणाध' इति पूर्वोक्तं पठति)

चारुदत्तः— अये!

को यमेवंविधे काले कालपाशस्थिते मयि।
अनाव ष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदितः?।।२६।।

अर्थः—

स्थावरक— (घोषणा सुनकर, विकलता के साथ) क्या पापरहित चारुदत्त मारा जा रहा है? मैं मालिक (शकार) के द्वारा बेड़ी से बाँध दिया गया हूँ। अच्छा चिल्लाता हूँ। सुनिए आर्यजन! सुनिए। ऐसा है कि मुझ पापी के द्वारा गाड़ी बदल जाने के कारण वसन्तसेना

पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में ले जाई गयी। उसके बाद मेरे स्वामी (शकार) ने 'तुम मुझको नहीं चाहती हो' ऐसा कह कर बहुपाश से बलपूर्वक (वसन्तसेना को) मार डाला, न कि इन आर्य चारुदत्त ने (मारा है)। क्या काफी दूर होने के कारण कोई नहीं सुन रहा है? तो क्या करूँ। अपने आप को (यहाँ से) गिराता हूँ। (सोचकर) यदि ऐसा करता हूँ, तो आर्य चारुदत्त मारे नही जायेंगे। अच्छा, महल की नयी बनी हुई ऊँची इस अटारी की गली से इस टूटी खिड़की द्वारा अपने आप को गिराता हूँ। मेरा मरना अच्छा है, किन्तु कुल-पुत्र रूपी पक्षियों के निवास व क्ष आर्य चारुदत्त का नहीं (मरना ठीक है)। इस प्रकार यदि मैं मर भी जाता हूँ तो मुझे परलोक मिलेगा। (अपने आप को गिरा कर)। आश्चर्य! मैं मरा नहीं। मेरा बेड़ी-डण्डा टूट गया। अब चाण्डालों की घोषणा (के स्थान) को खोजता हूँ। (देखकर और पास में जाकर) हे, हे चाण्डालों! हटो हटो (अवकाश दो अवकाश)।

दोनों चाण्डाल— अरे कौन हटाता है (अर्थात् अवकाश मांगता है)?।

(चेट 'श्र णुतार्याः' यह पहले कहा हुआ वाक्य पढ़ता है

अन्वयः— अये! (गद्येन अन्वयः), अनाव ष्टिहते, सस्ये, द्रोणमेघः, इव, एवंविधे, काले, मयि, कालापाशस्थिते, अयम्, कः, उदितः?।।२६।।

शब्दार्थः— अये = अहो! अनाव ष्टिहते = वर्षा के न होने से सूखते हुये, सस्ये = धान पर (कृषि पर) द्रोणमेघः = द्रोण नामक मेघ (के), इव = समान, एवंविधे = इस प्रकार के, काले = समय में, मयि = मेरे, कालपाशस्थिते = म त्यु के फन्दा में फसने पर, अयम् = यह, कः = कौन, उदितः = आ गया, उदित हो गया।।

अर्थः—

चारुदत्त— अहो! वर्षा के न होने से सूखते हुए धान पर द्रोण नामक मेघ (धान बढ़ाने वाले बादल) के समान इस प्रकार की विपत्ति के समय में मेरे म त्यु के फन्दा में फँसने पर यह कौन (मेरी मदद के लिये) आ गया है?।।२६।।

टीका— अये! = विस्मयद्योतकम् अव्ययपदम्; न आव ष्टिः अनाव ष्टिः तया अनाव ष्ट्या = अवर्षणेन हते = शुष्कप्राये; सस्ये = धान्यादौ; द्रोणमेघः = शस्यप्रपूरकः मेघविशेषः; इव; एवंविधे = एवम्प्रकारे, विपत्तिबहुले उपस्थितप्राणनाशे वेत्यर्थः; काले = समये; मयि = चारुदत्ते; कालस्य = म त्योः पाशः = बन्धनम् तस्मिन् स्थिते = गते, वर्तमाने; सति; अयम् = एषः, पुरो द श्यमानः; कः उदितः = कः आगतः?। यथा शुष्कप्राये सस्ये सस्यवर्द्धकस्य द्रोणमेघस्य आकस्मिकी जलव ष्टिः जीवनदायिनी व द्धिकरी च भवति तथैव मम मरणसन्निकृष्टे काले अकस्मादुपस्थितः को यं जनः वचसा मामानन्दयतीति निर्गलितार्थः। अनेन चारुदत्तस्य जीवनरक्षा व द्धिश्चापि सूचिता।।२६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।२६।।

भोः! श्रुतं भवद्भिः,-

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।
विशुद्धस्य हि मे म त्युः पुत्रजन्मसमो भवेत्।।२७।।

अन्वयः— (अहम्), मरणात्, भीतः, न, अस्मि; केवलम्, यशः, दूषितम्; विशुद्धस्य, मे, म त्युः, हि, पुत्रजन्मसमः, भवेत्।।२७।।

शब्दार्थः— (अहम् = मैं), मरणात् = मरने से, भीतः = भयभीत, न = नहीं, अस्मि = हूँ। केवलम् = केवल, यशः = यशः दूषितम् = दूषित हुआ है, (अतः भयभीत हूँ)। विशुद्धस्य = निर्दोष, मे = मेरी, म त्युः, हि = निश्चय ही, पुत्रजन्मसभः = पुत्र के जन्म के समान, भवेत् = होती।।

अर्थः— अरे आप लोगों ने सुना?-

मैं करने से भयभीत नहीं हूँ। (किन्तु इसलिये भयभीत हूँ कि) मेरे यश में धब्बा लग गया है। (यदि) निर्दोष होकर मेरी म त्यु होती तो वह पुत्र के जन्म के समान (सुखदायक) होती।।२७।।

टीका— अहम्; मरणात् = म त्योः; भीतः = भयाक्रान्तः; न अस्मि = न भवामि। मम म त्युः भविष्यति, अतः भीतः नास्मीत्यर्थः। तर्हि कस्मान्मलिनः असीत्याशंकयाह-केवलं मम यशः = कीर्तिः; दूषितम् = मलिनं जात चिरसचितं यशः दूषितमेतदेव मम मालिन्यकारणम्, न तु म त्युः इति भावः। विशुद्धस्य = कलंकनिर्मुक्तस्य; वसन्तसेना नेन मारितेति कलंकात् विरहितस्येत्यर्थः; मे = मम; म त्युः = मरणम्; हि = निश्चितम्; पुत्रस्य = सुतस्य जन्मना = उत्पत्या समः = तुल्यः; असमप्रीतिजननः इति भावः; भवेत् = स्यात्। यदि कलंकरहितस्य मे म त्युः स्यातर्हि न मम मनसि स्वल्पमपि दुःखं भवेदिति भावः।।२७।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२७।।

अन्यच्च—

तेनारभ्यकृतवैरेण क्षुद्रेणात्यल्पबुद्धिना।
शरेणेव विषाक्तेन दूषितेनापि दूषितः।।२८।।

अन्वयः— अकृतवैरणे, क्षुद्रेण, अल्पबुद्धिना, दूषितेन, अपि, तेन; विषाक्तेन, शरेण, इव; दूषितः, अस्मि।।२८।।

शब्दार्थः— अकृतवैरेण = जिस के साथ कभी वैर नहीं किया था, ऐसे, क्षुद्रेण = नीच, अल्पबुद्धिना = मन्दबुद्धिवाले, दूषितेन = स्वयं दोषी, अपि = भी, तेन = उसके द्वारा, विषाक्तेन = विषबुझाए, शरेण = तीर (की), इव = भाँति, दूषितः = कलंकित किया गया, अस्मि = हूँ।।

अर्थः— और भी-

जिसके साथ कभी वैर नहीं किया था ऐसे नीच मन्दबुद्धि वाले, स्वयं (वसन्तसेना के मारने के) दोषी उस (शकार) ने, विषबुझाए तीर की भाँति, मुझे कलिंकित कर दिया है।।२८।।

टीका— अकृतवैरेण-न कृतम् = नानुष्टितम्, न प्रदर्शितमिति यावत्, वैरम् = शत्रुता यस्य तेन; येन सह कदापि मया वैरभावः न मनसि चिन्तितः ताद शेनेत्यर्थः; क्षुद्रेण = नीचेन; अल्पबुद्धिना-अल्पा = क्षीणा बुद्धिः = विवेकशक्तिः यस्य ताद शेन; दूषितेन = दोषयुक्तेन, स्वयं वसन्तसेनाहत्यापराधिनेत्यर्थः, कुलदूषितेन वा; अपि; तेन = शकारेण; तस्य नामग्रहणे पि पापसम्भावना, अतः तत्पदेन निर्दिशति; विषेण = गरलेन; अक्त = लिप्तः तेन। विषाक्तेन = विषदग्धेन; शरेण = वाणेन; इव = यथा; दूषितः = कलंकितः अस्मि = भवामि।।२८।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।२८।।

चाण्डालौ—थावलअ! अवि शच्चं भणाशि?। (स्थावरक! अपि सत्यं भणसि?।)

चेटः— **शच्चं; हग्गे वि मा कश्श वि कधइश्शशि त्ति पाशादबालग्गपदोलिकाए दंडणिअलेण बंधिअ णिक्खित्ते। (सत्यम्; अहमपि मा कस्यापि कथयिष्यसीति प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायां दण्डनिगडेन बद्ध्वा निक्षिप्तः।)**

(प्रविश्य)

शकारः— (सहर्षम्)

मंशेण तिक्खामिलकेण भत्ते शाकेन शूपेण शमच्छकेण।
भुत्तं मए अत्तणअश्श गेहे शालिश्श कूलेण गुलोदणेण।।२६।।

मांसेन तिक्ताम्लेन भक्तं शाकेन सूपेन समत्स्यकेन।
भुक्तं मयात्मनो गेहे शालीयकूरेण गुडौदनेन।।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— स्थावरक! क्या सच कह रहे हो?

चेट— हाँ, सच। (मालिक शकार ने) 'तुम किसी से कहोगे नहीं' ऐसा कह कर महल के नये बनाये गये ऊपरी हिस्से में डण्डा-बेड़ी से बाँध कर मुझे भी डाल दिया था।

(प्रवेश करके)

अन्वयः— मया, आत्मनः, गेहे, तिक्ताम्लेन, मांसेन, शाकेन, समत्स्यकेन, सूपेन, शालीयकूरेण, गुडौदनेन, भक्तम्, भुक्तम्।।२६।।

शब्दार्थः— मया = मेरे द्वारा, आत्मनः = अपने, गेहे = घर में, तिक्ताम्लेन = तीते-खेट्टे, मांसेन = मांस से; शाकेन = शाक से, समत्स्यकेन = मछली के सहित, सूपेन = दाल (या रसा) से, शालीयकूरेण = अगहनी धान (शालीय) के चावल के भात से, गुडौदनेन = खीर से, भक्तम् = (साधारण चावल का) भात, भुक्तम् = खाया है।।

अर्थः—

शकार— (खुशी के साथ) मैंने अपने घर तीखे-खट्टे मांस, शाक, मछली के सहित दाल ग्या रसा), अगहनी चावल के भात तथा गुड़ मिले हुए भात (खीर) के साथ (साधारण चावल का) भात खाया है।।२६।।

टीका— मया = शकारेण; आत्मनः = स्वस्य; गेहे = ग हे; तिक्ताम्लेन-तिक्तं च तद् अम्ल चेति तिक्ताम्लं तेन तिक्ताम्लेत = तिक्तरसान्वितेन अम्लरसान्वितेन च; मांसेन = पिशितेन, शाकेन शक्यते भोक्तुम्, श्यतीति वा शाकम् तेन शाकेन = संस्कृतपत्रपुष्पादिना; शाकं दशविधं स्म तम्, यथा-मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम्। त्वक्पुष्पं कवकं चैव शाकं दशविधं स्म तम्। समत्स्यकेन = मीनसहितेन; सूपेन = द्विदलेन सिद्धमीनरसेन वा; शालीयकूरेण = शालेर्भक्तेन; शालितण्डुलप्रभवेण अन्नविशेषेणेति केचन; गुडौदनेन = गुडमिश्रितेन ओदनेन, पायसेनेत्यर्थः; सह; भक्तम् = पक्वं साधारणं तण्डुलम्; अथवा शकारोक्त्या द्विरुक्तिः; भुक्तम् = भक्षितम्। मया सुभोजनं भक्षितमित्यर्थः।।२६।।

(कर्णं दत्त्वा) भिण्णकंशखंखणाए चांडालवाआए शलशंजोए जधा अ एशे उक्खालिदे वज्झडिंडिमशद्दे पडहाणं अ शुणीअदि, तधा तक्केमि, दलिद्दचालुदत्ताके वज्झट्ठाणं णीआदि त्ति। ता पेक्खिश्शं। शत्तुविणाशे णाम मम महंते हलक्कश्श पलिदोशे होदि। शुदं अ मए, जे विं किल शत्तुं वावादअंतं पेक्खदि, तश्श अण्णश्शिं जम्मंतले अक्खिलोके ण होदि। मए खु विशगंठिगब्भपविट्ठेण विअ कीडएण किं पि अंतलं

मग्गमाणेण उप्पाडिदे ताह दलिद्दचारुदत्ताह विणाशे। शंपदं अत्तण केलिकाए पाशादबालग्गपदोलिकाए अहिलुहिअ अत्तणो पलक्कमं पेक्खामि। (तथा कृत्वा, द ष्ट्वा च) ही, ही, एदाह दलिद्दचालुदत्ताह वज्झं णीअमाणाह एवड्ढे जणशंमद्दे, जं वेलं अम्हालिशे पबले वलमणुश्शे वज्झा णीअदि तं वेलं केदिशं भवे। (निरीक्ष्य) कधं? एशे शे णवबलद्दके विअ मंडिदे दक्खिणं दिशं णीअदि?। अध किंणिमित्तं मम केलिकाए पाशादबालग्गपदोलिकाए शमीवे घोशणा णिवडिदा, णिवालिदा अ?। (विलोक्य) कधं थावलके चेडे वि णत्थि इध?। मा णाम तेण इदो गदुअ मंतभेदे कडे भविश्शदि। ता जाव णं अण्णेशामि।

भिन्नकांस्यवत्खंखणायाश्चाण्डालवाचायाः स्वरसंयोगः; यथा चैष उद्गीतो वध्यडिण्डिमशब्दः पटहानां च श्रूयते, तथा तर्कयामि, दरिद्रचारुदत्तको वध्यस्थानं नीयत इति। तत्प्रेक्षिष्ये। शत्रुविनाशो नाम मम महान्हृदयस्य परितोषो भवति। श्रुतं च मया, यो पि किल शत्रुं व्यापाद्यमानं पश्यति, तस्यान्यस्मि जन्मान्तरे क्षिरोगो न भवति। मया खुल विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेनेव कीटकेन किमप्यन्तरं म गय -माणेनोत्पादिस्तस्य दरिद्र चारुदत्तस्य विनाशः। सांप्रतमात्मीयायां प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायामधिरुह्यात्मनः पराक्रमं पश्यामि। ही ही, एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य वध्यं नीयमानस्यैतावा जनसंमर्दः, यस्यां वेलायामस्माद शः प्रवरो, वरमानुषो वध्यं नीयते तस्यां वेलायां कीद शो भवेत्। कथं एष स नवबलीवर्द इव मण्डितो दक्षिणां दिशं नीयते?। अथं किंनिमित्तं मदीयायाः प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायाः समीपे घोषणा निपतिता, निवारिता च?। कथं स्थावरकश्चेटो पि नास्तीह?। मा नाम तेनेतो गत्वा मन्त्रभेदः कृतो भविष्यति। तद्यावदेनमन्विष्यामि।)

(इत्यवतीर्योपसर्पति)

चेटः— (द ष्ट्वा) भश्टालका! एशे शे आगदे। (भट्टारकाः! एष स आगतः।)

चाण्डालौ-

ओशलध देध मग्गं दालं ढक्केघ होध तुण्हीआ।
अविणअतिक्खविशाणे दुट्ठबइल्ले इदो एदि।।३०।।

अपसरत दत्त मार्गं द्वारं पिधत्त भवत तूष्णीकाः।
अविनयतीक्ष्णविषाणो दुष्टवलीवर्द इत एति।।)

अर्थः— (कान देकर) फूटे हुए कांसे (के बर्तन) के समान खन-खनाने वाली चाण्डाल की आवाज सुनाई पड़ रही है। जिस तरह वध्य के ढोल का शब्द तथा नगाड़ों का शब्द सुनाई दे रहा है; इससे मैं अन्दाज करता हूँ कि दरिद्र चारुदत्त फाँसी के स्थान पर ले जाया जा रहा है। तो देखूँगा। वैरी के मरने से मेरे मन में बड़ा सन्तोष होता है। और मैंने सुना भी है कि-'जो आदमी मारे जाते हुए शत्रु को देखता है, उसको दूसरे जन्म में आँख का रोग नहीं होता।' विष की गांठ के अन्दर घुसे हुए कीड़े के समान कोई छेद खोजते हुए मैंने उस दरिद्र चारुदत्त का विनाश उपस्थित कर दिया है। अब इस समय अपने महल के नवनिर्मित अग्रभाग पर चढ़ कर अपने पराक्रम को देखूँगा। (वैसा करके और देख कर) अहो! इस दरिद्र चारुदत्त को फाँसी (वध) के स्थान पर ले जाते समय आदमियों को इतनी बड़ी भीड़! जिस समय हमारे जैसा प्रधान श्रेष्ठ मनुष्य वध-स्थान को ले जाया जायगा, उस समय कैसी भीड़ होगी। (देखकर) क्या यह वह (चारुदत्त) नये सांड की तरह आभूषित करके दक्षिण दिशा की ओर ले जाया जा रहा है? किन्तु किस लिये मेरे

महल के नवीन अग्र भाग के समीप घोषणा हुई और फिर रोक भी दी गयी?। (देखकर) क्या यहाँ स्थारवक चेट भी नहीं है? ऐसा न हो कि यहाँ से जाकर उसने (सारा) भेद खोल दिया हो। तो जब तक इसको खोजता हूँ।।

(ऐसा कह कर, उतर कर पास जाता है)

चेट— (देखकर) मालिक जनों! यह वह आ रहा है।

अन्वयः— अपसरत, मार्गम्, दत्त, द्वारम्, पिघत्त, तूष्णीकाः, भवत, अविनयतीक्ष्णविषाणः, दुष्टबलीवर्दः, इतः, एति।।३०।।

शब्दार्थः— अपसरत = हट जाओ, मार्गम् = रास्ता को, दत्त = दो, छोड़ो, द्वारम् = दरवाजा को, पिघत्त = बद कर लो, तूष्णीकाः = मौन, चुप, भवतः = हो जाओ, अविनयतीक्ष्ण विषाणः = उद्दण्डतारूपी तेज सींगों वाला, दुष्टबलीवर्दः = दुष्ट सांड, इतः = इधर, एति = आ रहा है।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— हट जाओ, रास्ता छोड़ दो, दरवाजा बन्द कर लो, चुप हो जाओ। उद्दण्डतारूपी तेज सींगों वाला दुष्ट साँड़ (शकार) इधर आ रहा है।।३०।।

टीका— अपसरत = दूरं गच्छत्, मार्गम = पन्थानम, दत्त = अर्पयत, द्वारम् = ग हप्रवेशमार्गम्, पिघत्त = आव णुत, तूष्णीका = मौनावलम्बिनः, भवत, अविनयः = उद्दण्डता एव तीक्ष्णः = निशितः विषाणः = श्र ंगम्, यस्य ताद शः, दुष्टवलीवर्दः = दुष्टः व षभः, शकारः इत्यर्थः इतः = एतस्यां दिशि, एति = आगच्छति। यथा मदान्धः अज्ञः बलीवर्दः न कि चित् विचारयति करोति च यथेच्छं तथैवायं शकारः अपि अधिकारमदान्धः भूत्वा तदेव करोति यदस्मै रोचते। अतः सावधानाः भवतेति भावः।।३०।।

इस श्लोक में अप्रस्तुत प्रशंसा, रूपक एवं काव्यलिंग अलंकार है। इसमें प्रयुक्त छन्द का नाम है-आर्या।।३०।

शकारः— अले अले! अंतलं अंतलं देध। (उपस त्य) पुश्तका थावलका चेडा!

एहि गच्छम्ह। (अरे अरे, अन्तरमन्तरं दत्त। पुत्रक स्थावरक चेटक! एहि गच्छावः।)

चेटः— ही ही, अणज्ज! वशंतशेणिअं मालिअ ण पलितुश्टेशि?। शंपदं पणइजणकल्पपाइवं अज्जचालुदत्तं मालइदुं ववशिदेशि?। (ही ही, अनार्य! वसनतसेनां मारयित्वा न परितुष्टो सि? सांप्रतं प्रणयिजनकल्पपादपमार्यचारुदत्तं मारयितुं व्यवसितो सि?।

शकारः ण हि लअणकुंभशलिशे हग्गे इश्थिअं वावादेमि। (न हि रत्नकुम्भसद शो हं स्त्रियं व्यापादयामि।)

सर्वे — अहो, तुए मारिदा। ण अज्जचारुदत्तेण। (अहो, त्वया मारिता, न आर्यचारुदत्तेन।)

शकारः— के एव्वं भणादि?। (क एवं भणति?।)

सर्वे — (चेटमुद्दिश्य) णं एसो साहू। (नन्वेष साधुः।)

शकारः— (अपवार्य, सभयम्) अविद मादिके, अविद मादिके, कधं थावलके चेडे शुश्ठु ण मए शंजदे?। एशे खु मम अकज्जश्श शक्खी। (विचिन्त्य) एव्वं दाव कलइश्शं। (प्रकाशम्) अलीअं भश्टालका! हंहो, एशे चेडे शुवण्णचोलिआए मए गहिदे पिश्टिदे मालिदे बद्धे अ। ता किदवेले एशे जं भणादि किं शच्चं?। (अपवारितकेन चेटस्य कटकं प्रयच्छति, स्वैरकम्) पुश्तका थावलका चेडा! एदं गेण्हिअ अण्णधा भणाहि। (हन्त, कथं

स्थावरकश्चेटः सुष्ठु न मया संयतः?। एष खलु ममाकार्यस्य साक्षी। एवं तावत्करिष्यामि। अलीकं भट्टारकाः! अहो, एष चेटः सुवर्णचोरिकया मया ग हीतस्ताडितो मारितो बद्धश्च। तत्कृतवैर एव यद्भणति किं सत्यम्?। पुत्रक स्थावरक चेट! एतद्ग हीत्वा न्यथा भण।)

चेटः— **(ग हीत्वा) पेक्खध पेक्खध भट्टालका! हंहो, शुवण्णेण मं पलोभेदि। (पश्यत पश्यत भट्टारकाः! अहो, सुवर्णेन मां प्रलोभयति।)**

शकारः— **(कटकमाच्छिद्य) एशे शे शुवण्णके, जश्श कालणादो मए बद्धे। (सक्रोधम्) हंहो चांडाला! मए खु एशे शुवण्णभंडाले णिउत्ते शुवण्णं चोलअंते मालिदे पिश्टिदे; ता जदि ण पत्तिआअध ता पिश्टिं दाव पेक्खध। (एतत्तत्सुवर्णकम्, यस्य कारणान्मया बद्धः। हंहो चाण्डलाः! मया खल्वेष सुवर्णभाण्डारे नियुक्तः सुवर्ण चोरयन्मारितस्ताडितः; तद्यदि न प्रत्ययध्वं तदा प ष्ठं तावत्पश्यत।)**

चाण्डालौ— **(द ष्ट्वा) शोहणं भणादि। वितत्ते चेडे किं प प्पडवदि?। (शोभनं भणति। विपत्तश्चेटः किं न प्रलपति?।)**

चेटः— **हीमादिके, ईदिशे दाशभावे, जं शच्चं कंपि ण पत्तिआअदि। (सकरुणम्) अज्जचालुदत्त! एत्तिके मे विहवे। (हन्त, ईद शो दासभावः, यत्सत्यं कमपि न प्रत्यापयति। आर्य चारुदत्त! एतावान्मे विभवः।) (इति पादयोः पतति)**

चारुदत्तः— सकरुणम्।

उत्तिष्ठ भोः! पतितसाधुजनानुकम्पि-
न्निष्कारणोपगतबान्धव धर्मशील!
यत्नः कृतो पि सुमहान्मम मोक्षणाय
दैवं न संवदति, किं न कृतं त्वयाद्य।।३१।।

अर्थः—

शकार— अरे, अरे, जगह दो, जगह (अवकाश) दो। (पास जाकर) बेटा स्थावरक चेट आओ चलें।

चेट— अहो! असभ्य! वसन्तसेना को मार कर सन्तुष्ट नहीं हुए हो? अब प्रेमी (याचक) जनों के कल्पव क्ष आर्य चारुदत्त को मरवाने के लिए उद्यत हो?

शकार— रत्नों के घड़े के समान (पवित्र) मैं स्त्री को नहीं मारता हूँ।

सब— अहो, तुमने इसे मारा है। आर्य चारुदत्त ने नहीं।

शकार— कौन ऐसा कहता है?

सब— (चेट को इशारा करके) यही बेचारा।

शकार— (अलग से, भयपूर्वक) दुःख है; स्थावरक चेट को मैंने भली-भाँति क्यों नहीं बाँधा? यही मेरे कुकृत्य (वसन्तसेना को मारने) का साक्षी है। तो, ऐसा करता हूँ। (प्रकट रूप में) महानुभावो! यह झूठ है। सोने की चोरी के कारण यह चेट मेरे द्वारा पकड़ा गया, पीटा गया, मारा गया और बाँध लिया गया। तो, वैर करने वाला यह जो कहता है, क्या वह सत्य है? (अलग से चेट को कड़ा देता हुआ धीमी आवाज में) बेटा स्थावरक चेट इस (कड़ा) को लेकर अन्य प्रकार से (अर्थात् वसन्तसेना को शकार ने नहीं चारुदत्त ने मारा है) कह दे।

चेट— (लेकर देखिये, देखिये, मालिक! अहो! मुझे सोने से लुभा रहा है।

शकार— (कड़ा छीन कर) यह वह सोना है, जिसके कारण मेरे द्वारा (यह) बाँधा गया था। (क्रोध के साथ) अरे चाण्डालों! मैंने इसे सुवर्णागार में नियुक्त किया था। सोने की चोरी करता हुआ यह (मेरे द्वारा) मारा गया, पीटा गया। तो यदि (तुम दोनों को) विश्वास न हो तो (इसकी) पीठ देख लो।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— (देखकर) ठीक कह रहा है। क्रुद्ध चेट क्या नहीं कहेगा? (अर्थात् सब कुछ कहेगा)।

चेट— दुख है, दासता ऐसी (बुरी) है कि सत्य का भी किसी को विश्वास नहीं करा पाती। (करुणा के साथ) आर्य चारुदत्त! इतना ही मेरा वश था। (ऐसा कह कर पैरों पर गिरता है।)

अन्वयः— भोः पतितसाधुजनानुकम्पिन्! निष्कारणोपगतबान्धव! धर्मशील! उत्तिष्ठ, मम, मोक्षणाय, (त्वया), सुमहान्, यत्नः, अपि, कृतः (किन्तु) दैवम्, न, संवदति, अद्य, त्वया, किम्, न, कृतम्?।।३१।।

शब्दार्थः— भोः पतितसाधुजनानुकम्पिन्! = हे आपत्ति में गिरे हुए सज्जनों पर कृपा करने वाले! निष्कारणोपगतबान्धव! = अकारण आये हुए बन्धु! धर्मशील = धार्मिक जन! उत्तिष्ठ = उठो, मम = मुझे, मोक्षणाय = छुड़ाने के लिये, (त्वया = तुम्हारे द्वारा), सुमहान् = बहुत बड़ा, यत्नः = प्रयत्न, अपि = भी, कृतः = किया गया, (किन्तु), दैवम् = भाग्य, न = नहीं, संवदति = साथ दे रहा है; अद्य = आज, त्वया = तुम्हारे द्वारा, किम् = क्या, न = नहीं, कृतम् = किया गया?।।

अर्थः—

चारुदत्त— (करुणा के साथ) हे आपत्ति में गिरे हुए सज्जनों पर कृपा करने वाले, अकारण आये हुए बन्धु धार्मिक जन! उठो। मुझे छुड़ाने के लिए (तुमने) बहुत बड़ा प्रयत्न किया, किन्तु भाग्य साथ नहीं दे रहा है। आज तुमने क्या नहीं किया? (अर्थात् सब कुछ किया)।।३१।।

टीका— भोः पतितः = आपद्गतः यः साधुजनः = सज्जनः तम् अनुकम्पते = दयते इति पतितसाधुजनानुकम्पी तत्सम्बुद्धो' निष्कारणम् = हेतुरहितम् यथा तथा उपगतः = प्राप्तः यः बान्धवः = सखा, हितकर्ता इत्यर्थः, तत्सम्बोधने; धर्मे = धर्मायुक्ते कार्ये शीलम् = स्वभावः यस्य तत्सम्बुद्धौ; परमधार्मिक इत्यर्थः; उत्तिष्ठ = उत्थितो भव; मम = विपद्गतस्य चारुदत्तस्येत्यर्थः; मोक्षणाय = उद्धाराय; सुमहान् = बलवत्तम्'; प्रासादाग्रभागात्पतनरूपः विशिष्टितमः इत्यर्थः; यत्नः = उपायः; अपीति यत्नस्य दुष्करत्वद्योतनार्थम्; कृतः = सम्पादितः; त्वयेति शेषः; किन्तु दैवम् = मम भाग्यम्; न संवदति = अनुकूलतां न दर्शयति; अन्यथा अद्य = अस्मिन्नेव सन्निकृष्टे विगते क्षणे; त्वया = भवता; किं न कृतम् = किं न विहितम्?, अपि तु सर्वं विहितमित्यथ्रः। भाग्यस्य वैपरीत्येन मम मोक्षणाय त्वया कृतः अप्रतिमः प्रयत्नः अपि निष्फलत्वं गच्छति। तथापि त्वं सर्वथा साधुवादार्हः इति भावः।।३१।।

टिप्पणी— इस श्लोक में पूर्वार्द्ध में विशेषणों द्वारा खास अभिप्राय के साथ कथन किया गया है। अतः परिकर अलंकार है-'विशेषणैर्यत् साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। श्लोक में प्रयुक्त छन्द का नाम है-वसन्ततिलका।।३१।।

चाण्डालौ—भट्टके! पिट्टिअ एदं चेड णिक्खालेहि। (भट्टक! ताडयित्वैनं चेटं निष्कासय।)

शकारः— णिक्कम ले। (इति निष्क्रामयति) अले चांडाला! किं विलंबेध? मालेध एदं। (निष्क्राम रे। अरे अरे चाण्डालाः! किं विलम्बध्वम्? मारयतैनम्।)

चाण्डालौ—जदि तुवलशि ता शअं ज्जेव मालेहि। (यदि त्वरयसे तदा स्वयमेव मारय।)

रोहसेनः— अरे चांडाला! मं मारेध; मुंचध आवुकं। (अरे चाण्डालाः! मां मारयत; मु चत पितरम्।)

शकारः— शपुत्तं ज्जेव एदं मालेध। (सपुत्रमेवैतं मारयत।)

चारुदत्तः—सर्वमस्य मूर्खस्य संभाव्यते। तद्गच्छ पुत्र! मातुः समीपम्।

रोहसेन— किं मए गदेण कादव्वं?। (किं मया गतेन कर्तव्यम्?।)

चारुदत्तः—

आश्रमं वत्स! गन्तव्यं ग हीत्वाद्यैव मातरम्।
मा पुत्र! पित दोषेण त्वमप्येवं गमिष्यसि।।३२।।

अर्थः—

दोनों चाण्डाल— मालिक! पीट कर इस चेट को निकाल दो।

शकार— निकल रे। (ऐसा कह कर निकालता है) अरे, अरे, चाण्डालो! क्यों देर कर रहे हो? इसको मार दो।

दोनों चाण्डाल— यदि जल्दबाजी करते हो तो तुम खुद ही मार डालो।

रोहसेन— अरे, चाण्डालों! मुझे मार डालो। पिता जी को छोड़ दो।

शकार— बच्चे के सहित इस (चारुदत्त) को मार दो।

चारुदत्त— इस मूर्ख के लिये सब कुछ सम्भव है। तो जाओ बेटा! माता के पास।

रोहसेन— जाकर मैं क्या करूँगा?

अन्वयः— वत्स! मातरम्, ग हीत्वा, अद्य, एव, आश्रमम्, गन्तव्यम्; पुत्र! मा, पित दोषेण, त्वम्, अपि एवम्, गमिष्यसि।।३२।।

शब्दार्थः— वत्स! = हे बेटा! मातरम् = माता को, ग हीत्वा = लेकर, अद्य = आज, एव = ही, आश्रमम् = आश्रम को, गन्तव्यम् = चले जाना चाहिये। पुत्र! = हे पुत्र! मा = ऐसा न हो कि, पित दोषेण = पिता के दोष के कारण, त्वम् = तुम, अपि = भी, एवम् = इसी प्रकार, गमिष्यसि = जाओगे (अर्थात् मारे जाओ)।।

अर्थः—

चारुदत्त— हे बेटा! माता को लेकर आज ही आश्रम (मुनिजनों की तपस्या के स्थान में चले जाना। हे पुत्र! ऐसा न हो कि पिता के दोष (वसन्तसेना के वध रूप दोष) के कारण तुम भी इसी प्रकार (निरपराध) चले जाओ (अर्थात् मारे जाओ)।।३२।।

टीका— वत्स! = हे पुत्र! मातरम् = स्वजननीम्; ग हीत्वा = सार्धं नीत्वा; अद्यैव = अस्मिन्नेव दिने; आश्रमम् = मुनिजनवसतिम्; अरण्ये यत्र निर्मलचेतसः करुणार्द्राचित्ताः मुनिजनाः निवसन्ति तत्रेत्यर्थः; गन्तव्यम् = गन्तुं योग्यम्; 'आश्रमो वत्स! गन्तव्यः' इति पाठान्तरम्। पुत्र! = हे सुत। मा = एताद शं न स्यात् यत्; पितुः = जनकस्य, मम चारुदत्तस्येत्यर्थः, दोषेण = अपराधेन; द श्यते हि लोके पितुः वैरं पुत्रेण निःसार्यते; त्वमपि = निरपराधः बालकः अपि; एवम् = ईद शम्; निष्कारणं प्राणदण्डमित्यर्थः; गमिष्यसि = यास्यसि। अत्र निवसता त्वया

सह 'मम वैरिणः चारुदत्तस्या यं पुत्रः' इति विचिन्त्य कदाचित् शकारः त्वामपि घातयेत्। अतः मात्रा सह अद्यैव वनं गच्छेति शुभमतिः।।३२।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।३२।।

तद्वयस्य! ग हीत्वैनं व्रज।

विदूषकः—भो वअस्स! एव्वं तुए जाणिदं, तुए विणा अहं पाणाइं धारेमि त्ति?। (भो वयस्य! एवं त्वया ज्ञातम्, त्वया विनाहं प्राणान्धारयामीति?।)

चारुदत्तः—वयस्य! स्वाधीनजीवितस्य न युज्यते तव प्राणपरित्यागः।

विदूषकः—(स्वगतम्) जत्तुं ण्णेदं, तधा वि ण सक्कुणोमि विअवअस्सविरहिदो पाणाइं धारेदुं त्ति। ता बम्हणीए दारअं समप्पिअ पाणपरिच्चाएण अत्तणो पिअबअस्सं अणुगमिस्सं। प्रकाशम्) भो वअस्स! पराणेमि एदं लहुं। (युक्तं न्विदम्। तथापि न शक्नोमि प्रियवयस्यविरहितः प्राणान्धर्तुमिति। तद्ब्राह्मण्यै दारकं समर्प्य प्राणपरित्यागेनात्मनः प्रियवयस्यमनुगमिष्यामि। भो वयस्य! परानयाम्येतं लघु।) (इति सकण्ठग्रहं पादयोः पतति)

(दारको पि रुदन्पतति)

शकारः— अले! णं भणामि शपुत्ताकं चालुवत्ताकं वावादेध त्ति। (अरे! ननु भणामि सपुत्रकं चारुदत्तं व्यापादयतेति।)

(चारुदत्तो भयं नाटयति)

चाण्डालौ—णहि अम्हाणं ईदिशी लाआण्णत्तो, जधा शपुत्तं चालुदत्तं वावादेध त्ति। ता णिक्कम ले दालआ! णिक्कम। (इति निष्क्रामयतः) इमं तइवं वोशणठ्ठाणं। ताडेघ डिंडिमं। (न ह्यस्माकमीद शी राजाज्ञप्तिः, यथा सपुत्रं चारुदत्तं व्यापादयतेति। तन्निष्क्राम रे दारक! निष्क्राम। इदं त तीयं घोषणास्थानम्। ताडयत डिण्डिमम्।) (पुनर्घोषयतः)

शकारः— (स्वगतम्) कधं एशे ण पत्तिआअंति पौला?। (प्रकाशम्) हंहो चालुदत्ता बडुका! ण पत्तिआअदि एशे पौलजणे। ता अत्तणकेलिकाए जीहाए भणाहि मए वशंतशेणा मालिदेत्ति। कथमेते न प्रत्ययन्ते पौराः?। अरे चारुदत्त बटुक! न प्रत्ययत एष पौरजनः। तदात्मीयया जिह्वया भण-'मया वसन्तसेना मारिता' इति।)

(चारुदत्तस्तूष्णीमास्ते)

शकारः— अले चंडालगोहे! ण भणादि चालुदत्तबडुके। ता भणावेध इमिणा जज्जलवंशखंडेण शंखलेण तालिअ तालिअ। (अरे चाण्डालगोह! न भणति चारुदत्तबटुकः। तद्भणयतानेन जर्जरवंशखण्डेन शंखलेन ताडयित्वा ताडयित्वा।)

चाण्डालः—(प्रहारमुद्यम्य) भो चालुदत्त! भणाहि। (भोश्चारुदत्त! भण।)

चारुदत्तः—(सकरुणम्)

प्राप्यै तद्व्यसनमहार्णवप्रपातं
न त्रासो न च मनसो स्ति मे विषादः।
एको मां दहति जनापवादवह्नि-
र्वक्तव्यं यदिह मया हता प्रियेति।।३३।।

अर्थः— तो मित्र! इसको लेकर जाओ।

विदूषक— हे मित्र! क्या तुमने यह समझ लिया है कि मैं तुम्हारे बिना प्राण धारण करूँगा?

विदूषक— (अपने आप) निश्चय ही यह ठीक है तो भी प्रिय-मित्र के बिना प्राण को धारण नहीं कर सकता। तो ब्रह्माजी (चारुदत्त की स्त्री) को बालक सौंप कर प्राण त्याग कर अपने प्रिय मित्र (चारुदत्त) का अनुसरण करूँगा। (प्रकट रूप में) हे मित्र! मैं इसे जल्द ही लौटा ले जाता हूँ।

(ऐसा कह कर, गले मिल कर पैरों पर गिरता है)

(रोता हुआ बालक भी (पैरों पर) गिरता है)

शकार— अरे! कहता तो हूँ कि पुत्र सहित चारुदत्त को मार डालो।

(चारुदत्त भय का अभिनय करता है)

दोनों चाण्डाल— हम लोगों को ऐसी राजा की आज्ञा नहीं है कि-'बेटे सहित चारुदत्त को मारो।' तो निकल रे बच्चे! निकल। (ऐसा कह कर निकालते हैं) यह घोषणा का तीसरा स्थान है। ढोल पीटो। (फिर घोषणा करते हैं)।

शकार— (अपने आप) क्या ये नगर-निवासी (चारुदत्त के अपराध पर) विश्वास नहीं करते हैं? (प्रकट रूप में) अरे चारुदत्त ब्राह्मण! ये पुरवासी लोग नहीं विश्वास कर रहे हैं। तो (तुम) अपनी जबान से कहो—'मैंने वसन्तसेना को मारा है।'

(चारुदत्त मौन रहता है)

शकार— अरे गोह नामक चाण्डाल! चारुदत्त ब्राह्मण नहीं कह रहा है। अतः जीर्ण बाँस के टुकड़े इस नगाड़ा के डण्डे से मार-मार कर इससे कहलवाओ।

चाण्डाल— (बाँस का डण्डा तान कर) हे चारुदत्त! कहो।

अन्वयः— एतद्व्यसनमहार्णवप्रपातम्, प्राप्य, अपि, मे, मनसः, न, त्रासः, न, च, विषादः, अस्ति; एकः, जनापवादवह्निः, माम्, दहति, यत्, इह, इति, वक्तव्यम्, 'मया, प्रिया, हता'।।३३।।

शब्दार्थः— एतद्व्यसनमहार्णवप्रपातम् = इस विपत्ति के सागर में गिरने को (पतन को), प्राप्य = पाकर, अपि = भी, मे = मेरे, मनसः = मन को, न = नहीं, त्रासः = भय, न च = न तो, विषादः = खेद, अस्ति = है। एकः = केवल, जनापवादवह्निः = लोक-निन्दा की आग (लोक-निन्दा रूप आग), माम् = मुझ को, दहति = जला रही है, यत् = जो, इह = यहाँ, इति = ऐसा, वक्तव्यम् = कहना है, 'मया = मेरे द्वारा प्रिया = प्रेमिका (वसन्तसेना), हता = मारी गयी।

अर्थः—

चारुदत्त— (करुणापूर्वक) विपत्ति के इस सागर में गिर कर (भी) मेरे मन को न तो भय है और न विषाद ही। एकमात्र लोक-निन्दा की आग ही मुझे जला रही है, जो मुझे यहाँ कहना है कि— 'मैंने प्रिया (वसन्तसेना) को मारा है'।।३३।।

(शकार फिर वैसा ही करता है)

टीका— एतत् = अनुभूयमानम् तर्तुमशक्यम् वा व्यसनम् = विपत्ति। एव महार्णवः = महासागरः तस्मिन् प्रपातम् = प्रपतनम्; प्राप्य = लब्ध्वा; मे = मम; मनसः = चेतसः, न त्रासः = भीतिः, न च विषादः = मानसिकं दुःखम्; अस्ति = वर्तते। तर्हि किन्निमित्तं दुर्मनाः इव लक्ष्यसे? इत्याशंकायामाह-एकः = केवलः; जनापवादः = लोकापवादः, नूनमनेनैव वसन्तसेना हता यतो सौ वधकाले स्वयमेव स्वीकरोत्येवंरूपः लोकापवादः, स एव वह्निः = अग्निः;

चेतोदाहकत्वाल्लोकापवादे वह्निनत्वारोपः; माम् = निरपराधिनं चारुदत्तम्; दहति = दग्धं करोति; यत् इह = अत्र, एकत्रिते महति जनसमवाये इत्यर्थः; इति = इत्थम्, वक्तव्यम् = उच्चारितव्यम्; 'मया = चारुदत्तेन, प्रिया = प्रेमिका, वसन्तसेना इत्यर्थः; हता = मारिता। उपस्थिते पि प्राणदण्डे वस्तुतः अस्मान्ना हं बिभेमि। किन्तु स्वमुखेन स्त्रीहत्यास्वीकारे भाव्यः जनापवादः मम चेतसि सन्तापं जनयतीति भावः।।३३।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार एवं प्रहर्षिणी छन्द है। छन्द का लक्षण- त्र्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।।३३।।

(शकारः पुनस्तथैव)

चारुदत्तः—भो भोः पौराः। ('मया खलु न शंसेन-' (६/३०, ३८) इत्यादि पुनः पठति)

शकारः— वावादिदा। (व्यापादिता।)

चारुदत्तः—एवमस्तु।

प्रथमचाण्डालः— अले, तव अत्त वज्झपालिआ। (अरे, तवात्र वध्यपालिका।)

द्वितीयचाण्डालः— अले, तव। (अरे, तव।)

प्रथमः— अले, वज्झपालिआए लेक्खअं कलेम्ह। (इति बहुविधं लेखकं कृत्वा) अले, जदि मम केलिका वज्झपालिआ, ता चिट्ठदु दाव मुहुत्तअं। (अरे, वध्यपालिकाया लेखं कुर्मः। अरे, यदि मदीया वध्यपालिका, तदा तिष्ठतु तावन्मुहूर्तकम्।)

द्वितीयः— किंणिमित्तं?। (किंनिमित्तम्?।)

प्रथमः— अले, भणिदो म्हि पिदुणा शग्गं गच्छंतेण, जधा-पुत्त वीरअ! जइ तुह वज्झपालिआ होदि, मा शहशा वावादअशि वज्झं। (अरे, भणितो स्मि पित्रा स्वर्ग गच्छता, यथा-पुत्र वीरक! यदि तव वध्यपालिका भवति, मा सहसा व्यापादयसि वध्यम्।

द्वितीयः— अले, किंणिमित्तं?। (अरे, किंनिमित्तम्?।)

प्रथमः— कदा वि कोवि शाहू अत्थं दइअ वज्झं मोआवेदि। कदावि लण्णो पुत्ते भोदि, तेण वद्धावेण शव्वज्झाणं मोक्खे होदि। कदावि हत्थी बधं खंडेदि, तेण शंभमेण वज्झे मुक्के होदि। कदावि लाअपलिवत्ते होदि, तेण शव्वज्झाणं मोक्खे होदि। (कदापि को पि साधुरर्थं दत्वा वध्यं मोचयति। कदापि राज्ञः पुत्रो भवति, तेन व द्धिमहोत्सवेन सर्ववध यानां मोक्षो भवति, कदापि हस्ती बन्धं खण्डयति, तेन संभ्रमेण वध्यो मुक्तो भवति। कदापि राजपरिवर्तो भवति, तेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति।)

शकारः— किं किं लाअपलिवत्ते होदि?। (किं किं राजपरिवर्तो भवति?।)

चाण्डालः— अले, वज्झपालिआए लेक्खअं कलेम्ह। (अरे, वध्यपालिकाया लेखं कुर्मः।)

शकारः— अले, शिग्घं मलेध चालुदत्ताकं। (अरे, शीघ्रं मारयत चारुदत्तम्।) (इत्युक्त्वा चेटं ग हीत्वैकान्ते स्थितः)

चाण्डालः— अज्जचालुदत्त! लाअणिओओ खु अवलज्झदि, ण खु अम्हे चाण्डाला; ता शुमलेहि जं शुमलिब्वं। (आर्यचारुदत्त! राजनियोगः खल्वपराध्यति, न खलु वयं चाण्डालाः; तत्स्मर्तव्यम्।)

चारुदत्तः—

प्रभवति यदि धर्मो दूषितस्यापि मे द्य
प्रबलपुरुषवाक्यैर्भाग्यदोषात्कथंचित्।
सुरपतिभवनस्था यत्र तत्र स्थिता वा
व्यपनयतु कलंक स्वस्वभावेन सैव।।३४।।

अर्थः—

चारुदत्त— हे, हे नगरनिवासियो! ('मया खलु न शंसेन-' (६/३०, ३८) इत्यादि फिर पढ़ता है)

शकार— मार दी।

चारुदत्त— ऐसा ही सही।

पहला चाण्डाल— अरे, आज तेरी वध करने की पारी है।

दूसरा चाण्डाल— अरे, तुम्हारी (है)।

पहला— अरे, वध की पारी की गणना करते हैं। (ऐसा कह कर बहुत तरह से गणना करके) अरे, यदि मेरा वध करने की पारी है तो एक क्षण तक ठहरो।

दूसरा— किसलिये?

पहला— अरे, स्वर्ग जाते हुए मेरे पिता ने मुझसे कहा था कि-'वीर पुत्र! यदि तेरी वध करने की पारी हो तो मारे जाने वाले व्यक्ति (वध्य) को एकाएक मत मारना।'

दूसरा— अरे, किसलिये?

पहला— शायद कोई सज्जन धन देकर मारे जाने वाले आदमी को छुड़ा ले। शायद राजा को पुत्र पैदा हो जाय, तो उस (कुल) बढ़ने के उत्सव के कारण सब वध्य जनों को छोड़ दिया जाय। कदाचित् हाथी बन्धन को तोड़ दे, तो उस घबड़ाहट से मारा जाने वाला छूट जाय। शायद राजा ही बदल जाय। अर्थात् राज्य का उलट-फेर हो जाय और उसके कारण सभी मारे जाने वाले छूट जायँ।

शकार— क्या, क्या राज्य बदल जाय?

चाण्डाल— अरे, वध की पारी का हिसाब कर रहे हैं।

शकार— अरे! चारुदत्त को जल्द मारो।

(ऐसा कह कर चेट को पकड़ कर एक ओर खड़ा हो जाता है)

चाण्डाल— आर्य चारुदत्त। (तुम्हारे वध के लिये) राजा की आज्ञा ही दोषी है, न कि हम चाण्डाल। तो याद कर लो (जिसे याद करना हो)।

अन्वयः— भाग्यदोषात्, अद्य, ,प्रबलपुरुषवाक्यैः, दूषितस्य, अपि, मे, धर्मः, यदि, कथचित्, प्रभवति, (तदा), सुरपतिभवनस्था, वा, यत्र तत्र, स्थिता, सा, एव, स्वस्वभावेन, (मे), कलंकम्, व्यपनयतु।।३४।।

शब्दार्थः— भाग्यदोषात् = भाग्य के दोष से, अद्य = आज, प्रबलपुरुषवाक्यैः = शक्तिशाली पुरुष के वचनों के कारण, दूषितस्य = कलंकित, अपि = भी, मे = मेरा, धर्मः = धर्म, यदि = यदि, कथचित् = किसी तरह भी (कुछ भी), प्रभवति = प्रभाव रखता है, (तदा = तो), सुरपतिभवनस्थाः = इन्द्र के भवन में स्थित, वा = अथवा, यत्र-तत्र = जहाँ कहीं, स्थिता

= वर्तमान, सा = वह (वसन्तसेना), एव = ही, स्वस्वभावेन = अपने स्वभाव से, (मे = मेरे), कलंकम् = कलंक को, व्यपनयतु = दूर करे।।

अर्थः—

चारुदत्त— भाग्य के दोष से आज शक्तिशाली पुरुष (शकार) के (झूठा) कहने के कारण कलंकित हुए भी मेरा धर्म यदि कुछ भी प्रभाव रखता है तो इन्द्र के भवन (स्वर्ग) में अथवा जहाँ कहीं वर्तमान वह (वसन्तसेना) ही अपने स्वभाव से मेरे कलंक को दूर करे।।३४।।

टीका— भाग्यस्य = दैवस्य, दोषात् = विकारात् प्रतिकूलत्वादित्यर्थः, अद्य = सम्प्रति; प्रबलस्य = राज्ञः पालकस्य कृपया बलवतः शकारस्येत्यर्थः, अधिकरणिकस्य वा, यः पुरुषः = जनः तस्य वाक्यैः = वचनैः, कथनैः दूषितस्यापि = कलंकितस्यापि, न तु वस्तुतः दूषितस्येति ध्वनिः; मे = मम, चारुदत्तस्येत्यर्थः, धर्मः = सुकृतम्, यदि = चेत्; कथ चित् = कि चिन्मात्रमपीत्यर्थः, प्रभवति = प्रभावशाली, समर्थः इत्यर्थः, अस्ति = वर्तते; नूनं मे धर्मः क्षीणः कथमन्यथा एषः व्यसनमहार्णवप्रपातः स्यात्, तथापि तस्मिन् धर्मराशौ अदि लेशो प्यवशिष्टस्तदा-सुराणाम् = देवानाम् पतिः = प्रभुः, इन्द्रः इत्यर्थः, तस्य भवनम् = ग हम्, स्वर्गः इति यावत्, तत्र तिष्ठतीति स्थाः = स्थिता; वा = अथवा; यत्र तत्र = यस्मिन् कस्मिन् स्थाने लोके वा; स्थिता = वर्तमाना; सैव = सा वसन्तसेना एव; स्वस्वभावेन = स्वचारुप्रकृत्या, मे कलंकम् = दोषम्; व्यपनयतु = दूरीकरोतु। यदि मम धर्मस्य लेशो प्यवशिष्टः तदा आविर्भूय वसन्तसेना दोषापनयनं करोत्विति भावः। अनेन वसन्तसेनायाः शीघ्रमेव प्रकाशः निर्दिष्टः।।३४।।

इस श्लोक में मालिनी छन्द है। लक्षण-ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।।३४।।

भोः! क्व तावन्मया गन्तव्यम्?।

चाण्डालः— (अग्रतो दर्शयित्वा) अले, एद दीशदि दक्खिणमशाणं, जं पेक्खिअ वज्झा झत्ति पाणाइं मुंचंति। पेक्ख पेक्ख

अद्धं कलेवलं पडिवुत्तं कट्टंति दीहगोमाआ।
अद्धं पि शूललग्नं वेशं विअ अट्टहाशश्श।।३५।।

(अरे एतद्द श्यते दक्षिणश्मशानम्, यत्प्रेक्ष्य वध्या झटिति प्राणान्मु चन्ति। पश्य पश्य

अर्धं कलेवरं प्रतिव त्तं कर्षन्ति दीर्घगोमायवः।

अर्धमपि शूललग्नं वेश इवाट्टहासस्य।।)

अन्वयः— दीर्घगोमायवः, प्रतिव त्तम्, अर्धम्, कलेवरम्, कर्षन्ति; शूललग्नम्, अर्धम्, अपि, अट्टहासस्य, वेशः, इव, (प्रतिभाति)।।३५।।

शब्दार्थः— दीर्घगोमायवः = ऊपर शरीर उठाये हुए सियार, प्रतिव त्तम् = (शूल से) लटके हुए, अर्धम् = आधे, कलेवरम् = शरीर को, कर्षन्ति = नोंच रहे हैं, खींच रहे हैं; शूललग्नम् = शूली में लगा हुआ, अर्धम् = आधा, अपि = भी, अट्टहासस्य = विकट हास का, वेशः = रूप, इव = सा, (प्रतिभाति = प्रतीत हो रहा है)।।

अर्थः— अरे! अब मुझे कहाँ जाना है?

चाण्डाल— (सामने दिखला कर) अरे! दक्षिण दिशा में यह श्मशान दिखलाई दे रहा है; जिसे देख कर मारे जाने वाले व्यक्ति शीघ्र ही अपने प्राणों को छोड़ देते हैं। देखा, देखो- ऊपर

शरीर उठाये हुए सियार शूली से लटके हुए आधे शरीर को नोंच रहे हैं। शूली में लगा हुआ (ऊपर का) आधा भाग भी विट हास का रूप-सा प्रतीत हो रहा है।।३५।।

टीका— दीर्घाः = उन्नताः, शूलस्थस्य म तदेहस्य भक्षणार्थ प्रसारितशरीराः इत्यर्थः, गोमायवः = श गालाः, प्रतिव त्तम् = शूलादवलम्बितम्; अर्ध कलेवरम् = शरीरम्; कर्षन्ति = आकर्षन्ति। शूलेप्राणदण्डसाधनभूते लौहफलके लग्नम् = सक्तम्; अर्धमपि = शेषांशमपि, अट्टहासस्य = विकटस्य हास्य; वेश इव = रूपमिव; प्रतिभातीति शेषः।।३५।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा आर्या छन्द है।।३५।।

चारुदत्तः हा, हतो स्मि मन्दभाग्यः। (इति सावेगमुपविशति)

शकारः— ण दाव गमिश्शं। चालुदत्ताकं वावादअंतं दाव पेक्खामि। (परिक्रम्य द ष्ट्वा) कधं उवविश्टे?। (न तावद्गमिष्यामि। चारुदत्तकं व्यापाद्यमानं तावत्पश्यामि। कथमुपविष्टः?।)

चाण्डालः—चारुदत्ता! किं भीदेशि?। (चारुदत्त! किं भीतो सि?।)

चारुदत्तः— (सहसोत्थाय) 'मूर्ख! ('न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः' (१०/२७) इत्यादि पुनः पठति)

चाण्डालः— अज्जचालुदत्त! गअणदले पडिवशंता चंदशुज्जा वि विपत्तिं लहंति, किं उण जणा मलणभीलुआ माणवा वा?। लोए कोवि उट्ठिदो पडदि, कोवि पडिदोवि उष्ट्ठेदि।

उट्ठंतपडंताह वशणपाडिआ शवश्श उण अत्थि।
एदाइं हिअए कदुअ संधालेहि अत्ताणअं।।३६।।

(आर्यचारुदत्त! गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि पिवत्तिं लभेते, किं पुनर्जना मरणभीरुका मानवा वा?। लोके को प्युत्थितः पतति, को पि पतितो प्युत्तिष्ठते।

उत्तिष्ठत्पततो वसनपातिका शवस्य पुनरस्ति।
एतानि हृदये कृत्वा संधारयात्मानम्।।

अर्थः—

चारुदत्त— हाय! मन्द भाग्य वाला मैं मर गया। (ऐसा कह कर आवेग के साथ बैठ जाता है।)

शकार— अभी नहीं जाऊँगा। तो, मारे जाते हुए चारुदत्त को देखूँगा। (घूम कर और देख कर) क्या वह बैठ गया?

चाण्डाल— चारुदत्त! क्या डर गये हो?

चारुदत्त— (झट से उठकर) मूर्ख! ('न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः' (१०/२७) इत्यादि फिर पढ़ता है)

चाण्डाल— आर्य चारुदत्त! आकाश में रहने वाले चन्द्रमा और सूर्य भी विपत्ति को पाते हैं; फिर तो मनुष्य अथवा (कहना चाहिये कि) म त्यु से डरने वाले मानव का क्या कहना? संसार में कोई (ऊपर) उठ कर गिरता है और कोई गिर कर भी उठता है।

उत्तिष्ठत्पतत इति—

अन्वयः— उत्तिष्ठत्पततः, शवस्य, पुनः, वसनपातिका, अस्ति; एतानि, हृदये, कृत्वा, आत्मानम्, संधारय।।३६।।

शब्दार्थः— उत्तिष्ठत्पततः = उठ कर गिरते हुए, शवस्य = म त शरीर की, पुनः = फिर, वसनपातिका

वस्त्र के समान पतनक्रिया, अस्ति = है। एतानि = इनको हृदये = हृदय में, कृत्वा = करके, आत्मानम् = अपने आप को, संधारय = ढाँढस दो।

अर्थः— उठकर गिरते हुए म त शरीर की फिर वस्त्र के समान ही पतन-क्रिया (जीना-मरना) होती है। इन बातों को हृदय में सोच कर अपने आप को ढाँढ़स दो।।३६।।

टीका— उत्तिष्ठत्पततः-उत्तिष्ठंश्चासौ पतंश्चेति उत्तिष्ठत्पतत् तस्य उत्तिष्ठत्पततः = कदाचित् उत्थानं लभतः, कदाचित् पतनं गच्छतः, अथवा पूर्वमुत्तिष्ठतः उद्गच्छतः पश्चात् पततः = नीचैः व्रजतः; शवस्य = म तशरीरस्यः, नीचकुलोत्पन्नत्वादशिक्षितसमाजे प्रचलितसंस्कारवशाच्च आत्मनः इति वक्तव्ये शवस्येति वदति; पुनः = मुहुः; वसनपातिका-पातः एव पातिका, वसनस्य = वस्त्रस्य इव पातिका = पतनक्रिया; अस्ति = भवति; यथा जीर्णं वस्त्रं त्यज्यते तथैवेदं शरीरमपीत्यर्थः; अथवा वसन च पातिका चेति वसनपातिका जीवनं पतन च; अस्ति = जायते, एतानि = अमूनि वचनानि; हृदये = चेतिसि; कृत्वा = आधाय; आत्मानम् स्वम्; संधारय = संस्थापय, स्थिरं कुर्वित्यर्थः। शरीरस्य (आत्मनः) जीवनं (शरीरधरणम्) मरण च (शरीरत्यागश्च) स्वाभाविकः धर्मः। अतः त्वं नानुशोचितुमहसीति भावः।।३६।।

इस श्लोक में आर्या छन्द है।।३६।।

(द्वितीयचाण्डालं प्रति) एदं चउट्ठं घोशणट्ठाणं; तो उग्घोशम्ह।

एतच्चतुर्थं घोषणास्थानम्, तदुद्घोषयावः।)

(पुनस्तथैवोद्घोषयतः)

चारुदत्तः—हा प्रिये वसन्तसेने! ('शशिविमलमयूख-' १०/१३) इत्यादि पुनः पठति)

(ततः प्रविशति ससंभ्रमा वसन्तसेना भिक्षुश्च)

भिक्षुः— हीमाणहे, अट्ठाणपलिश्शंतं शमश्शाशिअ वशंतशेणिअं णअंते अणुग्गहिदम्हि पव्वज्जाए। उवाशिके! कहिं तुमं णइश्शं?। (आश्चर्यम्, अस्थानपरिश्रान्तां समाश्वास्य वसन्तसेनिकां नयन्ननुग हीतो स्मि प्रव्रज्यया। उपासिके! कुत्र त्वां नेष्यामि?।)

वसन्तसेना—अज्जचारुदत्तस्य ज्जेव गेहं। तस्स दंसणेण मिअलांछणस्स विअ कुमुदिणिं आणंदेहि मं। (आर्यचारुदत्तस्यैव गेहम्। तस्य दर्शनेन म गला छनस्येव कुमुदिनीमानन्दय माम्)

भिक्षुः (स्वगतम्) कदलेण मग्गेण पविशामि?। (विचिन्त्य) लाअमग्गेण ज्जेव पविशामि। उवाशिके! एहि, इमं लाअमग्गं; (आकर्ण्य) किं णु हु एशे लाअमग्गे महंते कलअले शुणीअदि?। (कतरेण मार्गेण प्रविशामि?। राजमार्गेणैव प्रविशामि। उपासिके! एहि, अयं राजमार्गः; किं नु खल्वेष राजमार्गे महान्कलकलः श्रूयते?।)

वसन्तसेना— (अग्रतो निरूप्य) कधं पुरदो महाजणसमूहो?! अज्ज! जाणाहि दाव किं णेदं त्ति। विसमभरक्कंता विअ वसुंधरा एअवासोण्णदा उज्जइणी वट्टदि। (कथं पुरतो महा जनसमूहः?। आर्य! जानीहि तावत्किंन्विदमिति। विषमभरक्रान्तेव वसुंधरा एकवासोन्नतोज्जयिनी वर्तते।)

चाण्डालः—इमं अ पच्छिमं घोशणट्ठाणं, ता तालेघ डिंडिमं। उग्घोशेध घोशणं। (तथा कृत्वा) भो चालुदत्त! पडिवालेहि। मा भाआहि, लहुं ज्जेव मालीअशि! (इदं च पश्चिमं घोषणास्थानम्, तत्ताडयत डिण्डिमम्। उद्घोषयत घोषणाम्। भोश्चारुदत्त! प्रतिपालय। मा भैषीः, शीघ्रमेव मार्यसे।)

चारुदत्तः—भगवत्यो देवताः!।

भिक्षुः— **(श्रुत्वा, ससंभ्रमम्) उवाशिके! तुमं किल चारुदत्तेण मालिदाशि त्ति चालुदत्तो मालिदुं णीअदि। (उपासिके! त्वं किल चारुदत्तेन मारितासीति चारुदत्तो मारयितुं नीयते।)**

वसन्तसेना— (ससंभ्रमम्) हद्धी हद्धी, कधं मम मंदभाइणीए किदे अज्जचालुदत्तो वावादीअदि?। भो! तुरिदं तुरिदं आदेसेहि मग्गं। (हा धिक् हा धिक्, कथं मम मन्दभागिन्याः कृत आर्यचारुदत्तो व्यापाद्यते?। भोः! त्वरितं त्वरितमादिश मार्गम्।

भिक्षुः— **तुवलदु तुवलदु बुद्धोवाशिआ अज्जचालुदत्तं जीअंतं शमश्शाशिदुं। अज्जा! अंतलं अंतलं देध। (त्वरतां त्वरतां बुद्धोपासिकार्यचारुदत्तं जीवन्तं समाश्वासयितुम्। आर्याः! अन्तरमन्तरं दत्त।)**

वसन्तसेना— अंतरं अंतरं। (अन्तरमन्तरम्।)

चाण्डालः— अज्जचालुदत्त! शमिणिओओ अवलज्झदि। ता शुमलेहि जं शुमलिदव्वं। (आर्यचारुदत्त! स्वामिनियोगो पराध्यति। तत्स्मर यत्स्मर्तव्यम्।)

चारुदत्तः— किं बहुना। ('प्रभवति-' (१०/३४) इत्यादि श्लोकं पठति)

चाण्डालः— (खड्गमाकृष्य) अज्जचालुदत्त! उत्ताणे भविअ समं चिट्ट। एक्कप्पहालेण मालिअ तुमं शग्गं णेम्ह। (आर्यचारुदत्त! उत्तानो भूत्वा समं तिष्ठ। एक-प्रहारेण मारयित्वा त्वां स्वर्गं नयामः।)

(चारुदत्तस्तथा तिष्ठति)

चाण्डालः— (प्रहर्तुमीहते, खड्गपतनं हस्तादभिनयन्) ही, कधं

आअट्ठिदे शलोशं मुट्ठीए भुट्ठिणा गहीदे वि।
धलणीए कीश पडिदे दालुणके अशणिशण्णिहे खग्गे।।३७।।

(ही, कथम्

आकृष्टः सरोषं मुष्टौ मुष्टिना ग हीतो पि।

धरण्यां किमर्थं पतितो दारुणको शनिसन्निभः खड्गः।।

(दूसरे चाण्डाल के प्रति) यह चौथा घोषणा-स्थान है। तो हम दोनों घोषित करें।

(फिर वे दोनों उसी प्रकार घोषणा करते हैं)

अर्थः—

चारुदत्त— हाय प्रिये वसन्तसेने! ('शशिविमल मयूख-' (१०/१३) इत्यादि फिर पढ़ता है)।

(इसके बाद घबड़ाहट के साथ वसन्तसेना और भिक्षु प्रवेश करते हैं)।

भिक्षु— आश्चर्य है! अनुचित स्थान में परिश्रान्त (मूर्छित) हुई वसन्तसेना को आश्वस्त करके ले जाता हुआ मैं संन्यास के द्वारा कृतकृत्य हुआ हूँ। उपासिके! तुम्हें कहाँ ले चलूँ?

वसन्तसेना— आर्य चारुदत्त के ही घर। उनके दर्शन से मुझे उसी प्रकार आनन्दित करो जैसे चन्द्रमा के दर्शन से कोइनी आनन्दित होती है।

भिक्षु— (अपने आप) किस रास्ते से प्रवेश करूँ? (विचार कर) सड़क से ही प्रवेश करता हूँ। उपासिके! आइये, यह सड़क है। (सुनकर) क्या! सड़क पर यह बड़ा कोलाहल सुनाई पड़ रहा है?

वसन्तसेना— (सामने देखकर) क्यों! सामने आदमियों की बहुत बड़ी भीड़ है? आर्य! मालूम तो करो कि यह क्या है। एकतरफा बोझ से दबी हुई प थिवी को भाँति उज्जयिनी नगरी एक स्थान पर उमड़ी जा रही है।

चाण्डाल— यह आखिरी घोषणा का स्थान है। तो ढोल पीटो। घोषणा घोषित करो। (वैसा करके) हे चारुदत्त! प्रतीक्षा करो (अर्थात् तैयार हो जाओ)। डरो मत शीघ्र ही मारे जाओगे।

चारुदत्त— भगवती देवताओं!

भिक्षु— (सुनकर, घबड़ाहट के साथ) उपासिके! तुम चारुदत्त के द्वारा मारी गयी हो (ऐसा समझकर) चारुदत्त को मारने के लिये ले जाया जा रहा है।

वसन्तसेना—(घबराहट के साथ) हाय धिक्कार है; क्या मुझ अभागिन के लिये आर्य चारुदत्त मारे जा रहे हैं? अरे! जल्दी-जल्दी रास्ता बतलाओ।

भिक्षु— जिन्दा रहते आर्य चारुदत्त को ढाँढस देने के लिये बुद्ध की उपासिका जल्दी करें, जल्दी करें। आर्यो! बगल होओ रास्ता (अवकाश) दो।

वसन्तसेना—जगह (दो) जगह (दो)।

चाण्डाल— आर्य चारुदत्त! स्वामी (राजा) की आज्ञा अपराध कर रही है। तो याद कर लो, जो याद करना हो।

चारुदत्त— अधिक क्या। (प्रभवति-' (१०/३४) इत्यादि श्लोक पढ़ता है।

चाण्डाल— (तलवार खींचकर) आर्य चारुदत्त! ऊपर को होकर सीधे खड़े होओ। एक वार से मार कर तुमको स्वर्ग पहुँचाते हैं।

(चारुदत्त वैसे ही खड़ा होता है)

अन्वयः— मुष्टौ, मुष्टिना, ग हीतः। अपि, सरोषम्, आकृष्टः, अशनिसन्निभः, दारुणः, खंगः, धरण्याम्, किमर्थम्, पतितः।।३७।।

शब्दार्थः— मुष्टौः = मूठ पर, मुष्टिना = मुट्ठी से, ग हीतः = पकड़ी गयी, अपि = भी, सरोषम् = रोषपूर्वक, आकृष्टः = खींची गयी, अशनिसन्निभः = वज्र के समान, दारुणः = भयंकर, खंड्गः = तलवार, धरण्याम् = प थिवी पर, किमर्थम् = क्यों, पतितः = गिरी?।।

अर्थः—

चाण्डाल— (वार करना चाहता है। हाथ से तलवार गिरने का अभिनय करते हुए) ओह! यह कैसे?

मूठ पर (कस कर) मुट्ठी से पकड़ी गयी भी तथा रोषपूर्वक (स्थान से) खींची गई, वज्र के समान भयंकर यह तलवार जमीन पर क्यों गिरी?।।३७।।

टीका— मुष्टौः = त्सरौ, मुष्टिना = बद्धहस्तेन द ढहस्तेनेत्यर्थः; ग हीतः = आदत्तः; अपि; सरोषम् = सक्रोधम् आकृष्टः = कोशात् निःसारितः; हन्तुं झटिति उत्तोलितः वा; अशनिसन्निभः = वज्रसद शः; कठोरप्रहारः इत्यर्थः; दारुणः = कर्मणा आकृत्या च भयंकरः; खंगः = कृपाणः धरण्याम् = प थिव्याम्; किमर्थम् = केन हेतुना, पतितः = भ्रष्टः; भवतीति शेषः।।३७।।

इस श्लोक में गीति छन्द है।

छन्द का लक्षण—

आर्याप्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः।

दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजंगेशः।।३७।।

जधा एदं शवुत्तं, तधा तक्केमि ण विवज्जदि अज्जचालुदत्ते त्ति। भअवदि शज्झवाणि! पशीद पशीद। अवि णाम चालुदत्तश्श मोक्खे भवे, तदो अणुगहीदं तुए चांडालउलं भवे।

यथैतत्संव त्तम्, तथा तर्कयामि न विपद्यत आर्यचारुदत्त इति। भगवति सह्यवासिनि। प्रसीद प्रसीद अपि नाम चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत्, तदानुग हीतं त्वया चाण्डालकुलं भवेत्।)

अपरः— जधाण्णत्तं अणुचिटठम्ह। (यथाज्ञप्तमनुतिष्ठावः।)

प्रथमः— भोदु, एव्वं कलेम्ह। (भवतु, एवं कुर्वः।)

(इत्युभौ चारुदत्तं शूले समारोपयितुमिच्छतः)

चारुदत्तः—('प्रभवति-' (१०/३४) इत्यादि पुनः पठति)

भिक्षुर्वसन्तसेना च — (द ष्ट्वा) अज्जा! मा दाव मा दाव। अज्जा। एसा अहं मंदभाइणी, जाए कारणादो एसो वावादीअदि। (आर्याः! मा तावन्मा तावत्। आर्याः! एषाहं मन्दभागिनी यस्याः कारणादेष व्यापाद्यते।)

चाण्डालः—(द ष्ट्वा)

का उण तुलिदं एशा अंशपडंतेण चिउलभालेण।
मा मेत्ति वाहलंती उट्ठिदहत्था इदो एदि।।३८।।

(का पुनस्त्वरितमेषांसपतता चिकुरभारेण।

मा मेति व्याहरन्त्युत्थितहस्तेत एति।।)

अर्थः— जिस प्रकार यह हुआ है, उससे मैं अनुमान करता हूँ कि आर्य चारुदत्त मरेगा नहीं। हे सह्य (नामक पर्वत) पर वास करने वाली देवी दुर्गा! प्रसन्न हो जाओ। यदि आर्य चारुदत्त की मुक्ति हो जाये तो तुम्हारे द्वारा यह चाण्डाल कुल अनुग हीत हो जाये।

दूसरा— हम दोनों (राजा की) आज्ञा के अनुसार कार्य करें।

पहला— अच्छा, ऐसा ही करें।

(ऐसा कह कर दोनों चारुदत्त को शूली पर चढ़ाना चाहते हैं।)

अर्थः—

चारुदत्त— ('प्रभवति-' (१०/३४) इत्यादि फिर पढ़ता है)

भिक्षु और वसन्तसेना— (देख कर) आर्यो! ऐसा मत कीजिये, ऐसा मत कीजिये। आर्यजनों! यह मैं अभागिनी हूँ, जिसके कारण यह (चारुदत्त) मारें जा रहे हैं।

अन्वयः— अंसपतता, चिकुरभारेण, (उपलक्षिता), उत्थितहस्ता, मा, मा' इति, व्याहरन्ती, एषा, का पुनः, त्वरितम्, इतः, एति।।३८।।

शब्दार्थः— अंसपतता = कन्धे पर बिखरे हुए, चिकुरभारेण = केश-कलाप से, (उपलक्षिता = युक्त), उत्थितहस्ता= हाथ उठाये हुई, 'मा = मत, मा = मत, इति = ऐसा, व्याहरन्ती = कहती

हुई, एषा = यह, का पुनः = कौन सी स्त्री, त्वरिम् = जल्दी से, इतः = इधर, एति = आ रही है।।

अर्थः—

चाण्डाल— (देखकर)-

कन्धों पर बिखरे हुये केश-कलाप से युक्त, हाथ उठाये हुई, 'नहीं, नहीं' कहती हुई यह कौन सी स्त्री जल्दी से इधर आ रही है।।३८।।

टीका— अंसपतता-अंसयोः = स्कन्धयोः पतता = लुठता, स्रस्तेन; चिकुराणाम् = केशानाम्, भारेण = समूहेन; उपलक्षिता; उत्थितहस्ता-उत्थितः = चारुदत्तवधस्य निषेधाय उद्गतः हस्तः = करः यस्याः सा; ' 'मा = नहि, नहि; संभ्रमे त्र द्विरुक्तिः; इति = इत्थम्; व्याहरन्ती = कथयन्ती; एषा = इयं पुरो द श्यमाना; का पुनः किन्नामधेया स्त्री; त्वरितम् = वेगेन; इतः = अस्यां दिशि; एति = आगच्छति।।३८।।

इस श्लोक में आर्याव त्त है। ।।३८।।

वसन्तसेना— अज्जचारुदत्त! किं णेदं?। (आर्यचारुदत्त! किं न्विदम्?।) (इत्युरसि पतति)

भिक्षुः— अज्जचालुदत्त! किं णेदं?। (आर्यचारुदत्त! किं न्विदम्?। (इति पादयोः पतति)

चाण्डालः— (सभयमुपस त्य) कधं वशंतशेणा? णं खु अम्हेहिं शाहु ण वावादिदे। (कथं वसन्तसेना? ननु खल्वस्माभिः साधुर्न व्यापादितः।)

भिक्षुः— (उत्थाय) अले, जीवदि चालुदत्ते। (अरे, जीवति चारुदत्तः?।)

चाण्डालः—जीवदि वश्शशदं। (जीवति वर्षशतम्।)

वसन्तसेना— (सहर्षम्) पच्चुज्जीविदम्हि। (प्रत्युज्जीवितास्मि।)

चाण्डालः— ता जाव एदं वुत्तं लाइणो जण्णवाडगदश्श णिवेदेम्ह। (तद्यावदेतद्व त्तं राज्ञो यज्ञवाटगतस्य निवेदयावः।)

(इति निष्क्रामतः)

शकारः— (वसन्तसेनां द ष्ट्वा, सत्रासम्) हीमादिके, केण गब्भदाशी जीवाविदा?। उक्कंताइ में पाणाइं। भोदु, पलाइश्शं। (आश्चर्यम्, केन गर्भदासी जीवनं प्रापिता?। उत्क्रान्ता में प्राणाः। भवतु, पलायिष्ये।) (इति पलायते)

चाण्डालः— (उपस त्य) अले, णं अम्हाणं ईदिशी लाआणत्ती-जेण शा वावादिदा, तं मालेघ त्ति। ता लट्टिअशालअं ज्जेव अण्णेशम्ह। (अरे, नन्वस्माकमीद शी राजाज्ञप्तिः-येन सा व्यापादिता, तं मारयतेति। तद्राष्ट्रियश्यालमेवान्विष्यावः।

(इति निष्क्रान्तौ)

चारुदत्तः— (सविस्मयम्)

केयमभ्युद्यते शस्त्रे म त्युवक्त्रगते मयि।
अनाव ष्टिहते सस्ये द्रोणव ष्टिरिवागता।।३९।।

अर्थः—

वसन्तसेना— आर्य चारुदत्त! यह क्या? (ऐसा कह कर) (चारुदत्त) की छाती पर गिरती है)

भिक्षु— आर्य चारुदत्त! यह क्या? (ऐसा कह कर पैरों पर गिरता है)

चाण्डाल— (भयपूर्वक पास आकर) यह वसन्तसेना (है)? ठीक ही है, हम लोगों ने सज्जन (चारुदत्त) को नहीं मारा।

भिक्षु— (उठकर) अरे! चारुदत्त जीवित है?

चाण्डाल— सौ वर्ष तक जीवित रहे।

वसन्तसेना— (प्रसन्नता के साथ) मैं फिर जी गयी हूँ।

चाण्डाल— तो जब तक इस समाचार को यज्ञशाला में गये हुये राजा से कहते हैं।

(ऐसा कह कर निकलते हैं)

अर्थः—

शकार— (वसन्तसेना को देखकर भयपूर्वक) आश्चर्य है! किसने (इस) गर्भदासी को जिला दिया? मेरे प्राण निकल रहे हैं। अच्छा, (अब यहाँ से) भागूँगा। (ऐसा कह कर भागता है)।

चाण्डाल— (समीप जाकर) अरे, हमको राजा की ऐसी आज्ञा है कि— 'जिसने उसको मारा है, उसको मारो'। तो राजा के साले (शकार को ही खोजूँगा।)

(इस प्रकार दोनों निकल जाते हैं)

अन्वयः— शस्त्रे, अभ्युद्यते, मयि, म त्युवक्त्रगते; अनाव ष्टिहते, सस्ये, द्रोणव ष्टिः, इव; इयम्, का, आगता।।३६।।

शब्दार्थः— शस्त्रे = शस्त्र, अभ्युद्यते = उठ जाने पर, मयि = मेरे, म त्युवक्त्रगते = म त्यु के मुँह में चले जाने पर; अनाव ष्टिहते = विना वर्षा के सूखी, सस्ये = खेती पर, द्रोणव ष्टिः = द्रोण (नामक बादल) की वर्षा (के), इव = समान, इयम् = यह का = कौन (स्त्री), आगता = आ गयी है?।।

अर्थः—

चारुदत्त— आश्चर्य से।

(मुझे मारने के लिये) शस्त्र उठ जाने पर तथा मेरे म त्यु के मुँह में चले जाने पर विना वर्षा के सूखी खेती पर द्रोण (नामक बादल) की वर्षा के समान (यह कौन स्त्री) आ गयी है?।।३६।।

टीका— शस्त्रे = खड्गरूपे आयुधे अभ्युद्यते = मम वधार्थमुद्गते सति; तथा मयि = चारुदत्ते; म त्योः = कालस्य वक्त्रे = मुखे गते = वर्तमाने; अनाव ष्ट्या = अवर्षणेन हते = नष्टप्राये; सस्ये = धन्यादौ; द्रोणस्य = अतिव ष्टिकरस्य मेघविशेषस्य व ष्टिः = वर्षणम्; इव; धारासारप्रबला व ष्टिरिवेत्यर्थः; इयम् = पुरो वर्तमाना अपरिचितेव प्रतीयमाना; विलुलितवेशतया परिचितत्वं बोध्यम्; का = का स्त्री; आगता = उपस्थिता?।।३६।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।३६।।

(अवलोक्य च)

वसन्तसेना किमियं द्वितीया
समागता सैव दिवः किमित्थम्।
भ्रान्तं मनः पश्यति वा ममैनां
वसन्तसेना न म ता थ सैव।।४०।।

अन्वयः— किम्, इयम्, द्वितीया, वसन्तसेना? किम्, सा, एव, दिवः, इत्थम्, समागता? वा, मम, भ्रान्तम्, मनः, एनाम्, पश्यति? अथवा, वसन्तसेना, न, म ता; (इयम्), सा, एव।।४०।।

शब्दार्थः— किम् = क्या, इयम् = यह, द्वितीया = दूसरी, वसन्तसेना? = वसन्तसेना है? अथवा; किम् = क्या, सा = वह, एव = ही, दिवः = स्वर्ग से, इत्थम् = इस तरह, समागता = आ गयी है? वा = अथवा, मम = मेरा, भ्रान्तम् = चकराया हुआ भ्रम में पड़ा हुआ), मनः = मन, एनाम् = इस (स्त्री) को, पश्यति = देख रहा है? (समझ रहा है?), अथवा, वसन्तसेना = वसन्तसेना वेश्या, न म ता = मरी नहीं है; (इयम् = यह), सा = वह, एव = ही (है)?।।

(फिर देख कर)

अर्थः— क्या यह दूसरी वसन्तसेना है? अथवा क्या वह ही स्वर्ग से इस तरह (शरीर धारण कर) आ गयी है? अथवा मेरा चकराया हुआ (भ्रान्त) मन ही इस (स्त्री) को (वसन्तसेना) समझ रहा है? अथवा वसन्तसेना मरी नहीं है, यह वही है?।।४०।।

टीका— किमिति सन्देहे; इयम् = पुरो द श्यमाना रमणी; द्वितीया = अन्या, वसन्तसेना-भिन्ना; वसन्तसेना अस्ति? वस्तुतः वसन्तसेनाभिन्ना पि सर्वांशेषु साम्यधारिणी अतः वसन्तसेनेत्यभिधातुं योग्या किमियं तस्याः प्रतिकृतिरस्तीति संदेहः। किम् सा = ज्ञातास्वादा मम प्रेयसी, इव; दिवः = स्वर्गात्; इत्थम् = अनेन प्रकारेण, मम जीवातुकाम्यया, एवं रूपं ध त्वेत्यर्थः; समागता = प्राप्ता? वा = अथवा; मम = वघस्थले स्थितस्य चारुदत्तस्य; भ्रान्तम् = भ्रान्तिमम्, अतस्मिन् तद्वत्ताबुद्धिः भ्रान्तिरिति; मनः = चेतः; एनाम् = पुरोवर्तिनीम् नारीम्; पश्यति = वसन्तसेनाबुद्धया अवलोकयति? अथवा वसन्तसेना = मय प्रेयसी प्रसिद्धा वेश्या; न म ता = म त्युं न गता; इयम् साः = वस्तुतः वसन्तसेनैवास्ते इति भावः।।४०।।

इस श्लोक में सन्देह अलंकार तथा उपजाति छन्द है।।४०।।

अथवा,—

किं नु स्वर्गात्पुनः प्राप्ता मम जीवातुकाम्यया।
तस्या रूपानुरूपेण किमुतान्येयमागता।।४१।।

अन्वयः— मम, जीवातुकाम्यया, स्वर्गात्, पुनः, प्राप्ता, किं नु? उत, तस्याः, रूपानुरूपेण, इयम्, अन्या, आगता, किम्?।।४१।।

शब्दार्थः— मम = मुझे, जीवातुकाम्यया = जिलाने की इच्छा से, स्वर्गात् = स्वर्ग से, पुनः = फिर, प्राप्ता = उतर आई है, किं नु = क्या? उत = अथवा, तस्याः = उस (वसन्तसेना) के, रूपानुरूपेण = रूप से साद श्य से (अर्थात् रूप के समान रूपवाली) इयम् = यह, अन्या = दूसरी स्त्री, आगता = आ गयी है, किम् = क्या?।।

अथवा—

अर्थः— मुझे जिलाने की इच्छा से (ही) यह स्वर्ग से फिर उतर आयी है क्या? अथवा उस (वसन्तसेना) के रूप के समान रूपवाली यह दूसरी (ही स्त्री) आ गयी है क्या?।।४१।।

टीका— मम = स्वप्रियस्य चारुदत्तस्येत्यर्थः; जीवातोः = जीवितस्य, काम्या = इच्छा तया, मम जीवनेच्छयेत्यर्थः;; स्वर्गात् = दिवः; पुनः = मुहुः, म त्योरनन्तरं, तत्र गत्वा पीत्यर्थः; प्राप्ता = आगता; किं नु = इति वितर्के; उत = अथवा; तस्याः = वसन्तसेनायाः; रूपानुरूपेण-रूपस्य = आकृतेः अनुरूपेण = साद श्येन; वसन्तसेनायाः आकृतेः सद शेन आकारेण उपलक्षिता

सतीत्यर्थः; इयम् = सम्मुखस्या; अन्या = अपरा स्त्री; आगता = प्राप्ता; किमिति प्रश्ने। मया विना मम कारणेन वा चारुदत्तः म तः हतः वा भविष्यतीति विचार्य स्नेहपरवशा पुनः सैव स्वर्गादागता किम्? अथवा तत्तुल्यरूपा इयमन्यैवागता किमिति सन्देहः।।४१।।

इस श्लोक में सन्देह अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।४१।।

वसन्तसेना— (सास्रमुत्थाय, पादयोर्निपत्य) अज्जचालुदत्त! सा ज्जेव अहं पावा, जाए कारणादो इअं तुए असरिसी अवत्था पाविदा। (आर्यचारुदत्त! सैवाहं पापा, यस्याः कारणादियं त्वयासद श्यवस्था प्राप्ता।)

(नेपथ्ये)

अच्चरिअं अच्चरिअं, जीवदि वसंतसेना। (आश्चर्यमाश्चर्यम्, जीवति वसन्तसेना।)

(इति सर्वे पठन्ति)

चारुदत्तः— (आकर्ण्य सहसोत्थाय स्पर्शसुखमभिनीय निमीलिताक्ष एव हर्ष गद्गदाक्षरम्) प्रिये! वसन्तसेना त्वम्?।

वसन्तसेना— सा ज्जेवाहं मंदभाआ। (सैवाहं मन्दभाग्या।)

चारुदत्तः— (निरूप्य, सहर्षम्) कथं वसन्तसेनैव?। (सानन्दम्)

कुतो बाष्पाम्बुधाराभिः स्नपयन्ती पयोधरौ।
मयि म त्युवशं प्राप्ते विद्येव समुपागता।।४२।।

अर्थः—

वसन्तसेना— (आँखों में आँसू भरे हुई उठकर और पैरों पर पड़कर) आर्य चारुदत्त! वही मैं पापिनी हूँ, जिसके कारण तुमने इस अनुचित हालत को प्राप्त किया है।

(पर्दे में)

आश्चर्य है! आश्चर्य है! वसन्तसेना जीवित है। (इस प्रकार सभी पढ़ते हैं)

अर्थः—

चारुदत्त— (सुन कर, झट से उठ कर, स्पर्श-सुख का अभिनय करके आँख मूँदे हुए ही प्रसन्नता के कारण गद्गद अक्षरों में) प्रिये! तुम वसन्तसेना हो?

वसन्तसेना— वही मैं अभागिन हूँ।

अन्वयः— मयि, म त्युवशम्, प्राप्ते, बाष्पाम्बुधाराभिः, पयोधरौ, स्नपयन्ती, (त्वम्) विद्या, इव, कुतः, समागता।।४१।।

शब्दार्थः— मयि = मेरे, म त्युवशम् = म त्यु के वश को, प्राप्ते-प्राप्त होने पर, बाष्पाम्बुधाराभिः = आँसुओं की धाराओं से पयोधरौ = दोनों स्तनों को, स्नपयन्ती = सींचती हुई, स्नान कराती हुई, (त्वम् = तुम), विद्या = (स जीवनी) विद्या (के), इव = समान, कुतः = कहाँ से, समागता = आ गयी हो?

अर्थः—

चारुदत्त— (देखकर, प्रसन्नता के साथ) क्या वसन्तसेना ही हो?

(आनन्द पूर्वक)-

मेरे म त्यु के वश में प्राप्त होने पर आँसुओं की धाराओं से (अपने) दोनों स्तनों को सींचती हुई तुम (स जीवनी) विद्या की भाँति कहाँ से आ गयी हो?।।४२।।

टीका— मयि = चारुदत्ते; म त्युवशम्-म त्योः = कालस्य वशम् = अधिकारम्' प्राप्ते-गते सति; बाष्पाम्बुधाराभिः = नेत्रजलप्रवाहैः; पयोधरौ = स्तनौ; स्नपयन्ती = सि चन्ती; एतेन स्तनयोः उन्नतत्वं सूचितम्; विद्या = स जीवनी विद्या; इव; कुतः = कस्मात् स्थानात्; समागता = सम्प्राप्ता। यथा म तस जीवनी विद्या म ते जीवनस चारिणी भवति तथैव तवागमनं मह्यं जीवनदायि अस्तीति भावः।।४२।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा पथ्यावक्त्र छन्द है।।४२।।

प्रिये वसन्तसेने!

त्वदर्थमेतद्विनिपात्यमानं देहं त्वयैव प्रतिमोचितं मे।
अहो प्रभावः प्रियसंगमस्य म तो पि को नाम पुनर्ध्रियेत?।।४३।।

अन्वयः— त्वदर्थम्, विनिपात्यमानम्, मे, एतत्, देहम्, त्वया, एव, प्रतिमोचितम्, प्रियसंगमस्य, अहो! प्रभावः, (अन्यथा), म तः, अपि, कः नाम, पुनः, घ्रियेत?।।४३।।

शब्दार्थः— त्वदर्थम् = तुम्हारे लिये (तुम्हारे कारण, विनिपात्यमानम् = नष्ट किया जाता हुआ, मे = मेरा, एतत् = यह, देहम् = शरीर, त्वया = तुम्हारे द्वारा, एव = ही, प्रतिमोचितम् = छुड़ाया गया। प्रियसंगमस्य = प्रेमी के मिलन का, अहो = आश्चर्यजनक, प्रभावः = प्रभाव (है)। (अन्यथा = नहीं तो), म तः = मरा, अपि = भी, कः नाम = कौन सा, पुनः = फिर, ध्रियेत = जिन्दा होता है?।।

अर्थः— प्रिये वसन्तसेने!

तुम्हारे कारण नष्ट किया जाता हुआ मेरा यह शरीर तुम्हारे ही द्वारा छुड़ाया गया। प्रेमी के मिलन का आश्चर्यजनक प्रभाव है। नहीं तो, भला, मर कर भी कोई जिन्दा होता है?।।४३।।

टीका— त्वदर्थम्-त्वमेव अर्थः यस्मिन् तत् त्वदर्थम् = त्वन्निमित्तं यथा; विनिपात्यमानम् = वध्यमानम्; मे = मम; एतत् = तव पुरोवर्ति; देहम् = देहः, त्वयैव = वधे कारणभूतया भवत्यैव; प्रतिमोचितम्; = शूलादवतार्य रक्षितम्; प्रियसंगमस्य = प्रेमास्पदजनानां संगतेः; अहो! = आश्चर्यजनकः इत्यर्थः; प्रभावः प्रतापः; अन्यथा म तः = प्राणवियुक्तः, म तकल्पः इत्यर्थः; अपि, कः = कः पुरुषः नाम = संभावनायाम्; पुनः = मुहुः; ध्रियेत; = जीवेत् प्राणैरिति शेषः। म तप्रायो हं प्रेयस्याः तव दर्शनेनैव मुक्तः। अतः वक्तुं शक्यते यत्प्रियसंगमस्य महत्वमाश्चर्यकरमिति भावः।।४३।।

इस श्लोक में अर्थान्तरन्यास अलंकार तथा उपजाति छन्द है।।४३।।

अपि च प्रिये! पश्य,—

रक्तं तदेव वरवस्त्रमियं च माला
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव
जाता विवाहपटहध्वनिभिः समानाः।।४४।।

अन्वयः— कान्तागमेन, तदेव, रक्तम्, वरवस्त्रम्, इयम् माला, च, वरस्य, यथा, हि, विभाति; च, तथैव, एते, वध्यपटहध्वनयः, विवाहपटहध्वनिभिः, समानाः जाताः।।४४।।

शब्दार्थः— कान्तागमेन = प्रिया के आ जाने से, तदेव = वही, रक्तम् = लाल, वरवस्त्रम् = श्रेष्ठ वस्त्र, इयम् = यह, माला = फूलों की माला, च = भी, वरस्य = दुलहे की, यथा =

जैसी, हि = निश्चित ही, विभाति = शोभित हो रही है। च = और, तथैव = उसी प्रकार से, एते = ये, वध्यपटहध्वनयः = बध के लिये बजाये जाते हुए बाजों की आवाजें, विवाहपटहध्वनिभिः = विवाह के बाजों की ध्वनियों के, समानाः = समान, जाताः = हो गयी हैं।।

और भी प्रिये! देखो-

अर्थः— प्रिया के (अर्थात् तुम्हारे) आ जाने से, वही लाल वस्त्र वर के वस्त्र (के समान) और यह माला वर को पहनायी गयी माला के समान शोभित हो रही है। और उसी प्रकार वध के लिये बजाये जाते हुए बाजों की ये आवाजें विवाह के बाजों की ध्वनियों के समान हो गयी हैं।।४४।।

टीका— कान्तागमेन-कान्तायाः = प्रियायाः आगमेन = आपतनेन, प्राप्त्या इत्यर्थः; तदेव = पूर्व वध यचिह्नभूतमेव; रक्तम् = रक्तवर्णम्, वरवस्त्रम् = श्रेष्ठं वध्यवसनम्; वस्त्रस्य श्रेष्ठत्वमत्र रक्तत्वेन निर्दिश्य अथवा वध्यचिन्हभूतस्य वरस्येव प्रतीयमानत्वमेव तस्य श्रेष्ठत्वम्; इयम् = मम कण्ठे अर्पिता, माला = स्रक्; च = अपि; वरस्य = जामातुः, विवाहोद्युक्तस्य जनस्येत्यर्थः, यथा = इव; हि = निश्चितम्; विभाति = शोभते। च = तथा; तथैव = तेनैव प्रकारेण, यथा वस्त्रं माला च वरस्येव विभाति तथैवेत्यर्थः; एते = श्रूयमाणाः; वध्यपटहस्य = प्राणदण्डितस्य जनस्य वधकाले वाद्यमानस्य आनकस्य, ध्वनयः = शब्दाः; विवाहस्य = उद्वाहस्य, उद्वाहे वाद्यमानस्येत्यर्थः, पटहस्य ध्वनिभिः = शब्दैः; समानाः = तुल्याः; जाताः = सम्पन्नाः। सर्वाणि वध्यचिह्नाानि प्रियायाः वसन्तसेनायाः आगमनेन वरचिह्नानीव प्रतीयन्ते इति निर्गलितार्थः।।४४।।

इस श्लोक में अनुकूल तथा उपमा अलंकार एवं वसन्ततिलका छन्द है।।४४।।

वसन्तसेना— अदिदक्खिणदाए किं ण्णेदं ववसिदं अज्जेण?। (अतिदक्षिणतया किं न्विदं व्यवसितमार्येण?।)

चारुदत्तः— प्रिये! त्वं किल मया हतेति—

पूर्वानुबद्धवैरेण शत्रुणा प्रभविष्णुना।
नरके पतता तेन मनागस्मि निपातितः।।४५।।

अर्थः—

वसन्तसेना—अति उदारता के कारण आपने यह क्या कर डाला?

अन्वयः— पूर्वानुबद्धवैरेण, प्रभविष्णुना, नरके, पतता, तेन, शत्रुणा, मनाक्, निपातितः, अस्मि।।४५।।

शब्दार्थः— पूर्वानुबद्धवैरेण = पहले से ही वैर बाँधने वाले, प्रभविष्णुना = शक्तिशाली, नरके = नरक में, पतता = गिरते हुए, तेन = उस, शत्रुणा = शत्रु के द्वारा, मनाक् = थोड़ा सा, निपातितः = गिराया गया, कलंकित किया गया, अस्मि = हूँ।।

अर्थः—

चारुदत्त— प्रिये! 'मैनें तुम्हें मार डाला' ऐसा कहकर—

पहले से ही वैर बाँधने वाले, शक्तिशाली, नरक में गिरने वाले उस शत्रु (शकार) के द्वारा थोड़ा सा कलंकित कर दिया गया हूँ।।३५।।

टीका— पूर्वानुबद्धवैरेण-पूर्वम् = पूर्वकालादेवेत्यर्थः, यतः प्रभ ति त्वया तिरस्कृतः ततः आरभ्येति भावः, अनुबद्धम् = स्वहृदये संरोपितम् स्थापितम् वा वैरम् = शत्रुत्वम् येन ताद शेन,

प्रभविष्णुना = सर्वं कर्तुं समर्थेन, शक्तिशालिनेति यावत्; राजश्यालत्वेन तस्य प्रभविष्णुत्वमत्र निर्दिष्टम्; नरके = निरये; पतता = गच्छता, आत्मानं निक्षिपतेति भावः, तेन = आवयोर्मध्ये बहुशः शत्रुरूपेण चर्चितेन शकारेण; तच्छब्देन निदेशस्तु हार्दिकीं घ णां सूचयति; शत्रुणा = वैरिणा; मनाक् = कि चित्; निपातितः = भ्रष्टः कृतः, कलंकितः इति यावत्; अस्मि = वर्ते। त्वं मया मारितेति उक्त्वा शत्रुणा शकारेण कि चित् कलंकितः कृतः अस्मीति भावः।।४५।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।४५।।

वसन्तसेना— **(कर्णौ पिधाय) संतं पावं; तेण म्हि राआसालेण वावादिदा। (शान्तं पापम्; तेनास्मि राजश्यालेन व्यापादिता।)**

चारुदत्तः—(भिक्षुं द ष्ट्वा) अयमपि कः?।

वसन्तसेना— तेण अणज्जेण वावादिदा; एदिणा अज्जेण जीवाविदम्हि। (तेनानार्येण व्यापादिता, एतेनार्येण जीवं प्रापितास्मि।)

चारुदत्तः—कस्त्वमकारणबन्धुः?।

भिक्षुः— **ण पच्चभिजाणादि मं अज्जो?। अहं शे अज्जश्श चलणशंवाहचिंतए शंवाहके णाम। जूदिअलेहिं गहिदे एदाए उवाशिकाए अज्जश्श केलके त्ति अलंकालपणणिक्कीदे म्हि। तेण अ जूदणिव्वेदेण शक्कशमणके शंवुत्ते म्हि। एशा वि अज्जा पवहणविपज्जाशेण पुष्फकलंडकजिण्णुज्जाणं गदा। तेण अ अणज्जेण ण मं बहु मण्णेशि त्ति बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा मए दिट्टा। (न प्रत्यभिजानाति मामार्यः?। अहं स आर्यस्य चरणसंवाहचिन्तया संवाहको नाम द्यूतकरैग हीत एतयोपासिकयार्यस्यात्मीय इत्यलंकारपणनिष्क्रीतो स्मि। तेन च द्यूतनिर्वेदेन शाक्यश्रमणकः संव त्तो स्मि। एषाप्यार्या प्रवहणविपर्यासेन पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं गता। तेन चानार्येण न मां बहु मन्यस इति बाहुपाशबलात्कारेण मारिता मया द ष्टा।)**

(नेपथ्ये कलकलः)

जयति व षभकेतुर्दक्षयज्ञस्य हन्ता
तदनु जयति भेत्ता षण्मुखः क्रौ चशत्रुः।
तदनु जयति कृत्स्नां शुभ्रकैलासकेतुं
विनिहतवरवैरी चार्यको गां विशालाम्।।४६।।

अर्थः—

वसन्तसेना— (कानों को ढक कर) पाप शान्त हो। (मैं तो) उस राजश्यालक (शकार) के द्वारा मारी गयी थी।

चारुदत्त— (भिक्षु को देखकर) और यह कौन है?

वसन्तसेना—उस असभ्य (शकार) के द्वारा मारी गयी थी और इन आर्य के द्वारा जिलायी गयी हूँ।

चारुदत्त— निःस्वार्थ सहायता करने वाले (अकारण-बन्धु) तुम कौन हो?

भिक्षु— आप मुझे नहीं पहचान रहे हैं? मैं आपके पैर दबाने की चिन्ता करने वाला वही संवाहक हूँ। जुआरियों के द्वारा पकड़ा गया मैं इस बुद्धोपासिका के द्वारा 'आपका अपना आदमी हूँ' यह जानकर आभूषणरूपी मूल्य से खरीदा गया हूँ। और उसी जुआ के दुःख के

कारण बौद्ध-संन्यासी हो गया हूँ। यह आर्या (वसन्तसेना) भी गाड़ी के बदल जाने से पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में चली गयी थीं। वहाँ 'मुझे नहीं चाहती हो' ऐसा कहकर उस नीच (शकार) ने भुज-पाश से बलपूर्वक (दबाकर) इनको मार डाला। (इसके बाद) मेरे द्वारा यह देखी गयी।

अन्वयः— दक्षयज्ञस्य, हन्ता, व षभकेतुः, जयति; तदनु, भेत्ता, क्रौ चशत्रुः, षण्मुखः, जयति; तदनु, विनिहतवरवैरी, आर्यकः, च, शुभ्रकैलासकेतुम्, कृत्स्नाम्, विशालाम्, गाम्, जयति।।४६।।

शब्दार्थः— दक्षयज्ञस्य = दक्ष के यज्ञ को, हन्ता = विनष्ट करने वाले, व षभकेतुः = शिव, जयति = विजयी हो रहे हैं (अर्थात् शिव की जय हो)। तदनु = उसके बाद, भेत्ता = (शत्रुओं के दल का) भेदन करने वाले, क्रौ चशत्रुः = क्रौ च (नामक दैत्य) के शत्रु, षण्मुखः = कार्तिकेय, जयति = विजयी हो रहे हैं (अर्थात् कार्तिकेय की जय हो)। तदनु = तदनन्तर, विनिहतवरवैरी = प्रधान शत्रु (पालक) का वध करने वाला, आर्यकः = आर्यक, च = भी, शुभ्रकैलासकेतुम् = सफेद कैलास पर्वत ही है पताका जिसकी ऐसी, कृत्स्नाम् = समूची, विशालाम् = विस्त त, गाम् = प थ्वी को, जयति = जीत रहा है (अर्थात् जीते)।।

(पर्दे में कोलाहल)

अर्थः— दक्ष के यज्ञ को विनष्ट करने वाले शिव की जय हो। उसके पश्चात् (शत्रुओं के दल का) भेदन करने वाले, क्रौ च (नामक दैत्य अथवा पर्वत) के शत्रु कार्तिकेय की जय हो। और तदनन्तर प्रधान शत्रु (पालक) का वध करने वाला आर्यक सफेद कैलास पर्वत ही है पताका जिसकी ऐसी समूची विस्त त प थिवी को जीते।।४६।।

टीका— दक्षयज्ञस्य-दक्षस्य = एतन्नामप्रसिद्धस्य प्रजापतेः यज्ञस्य = यागस्य, हन्ता = विध्वसंकः; व षभकेतुः-व षभः वाहनभूतः व षः केतौ = ध्वजे, चिह्नत्वेनेति शेषः, अस्येति व षभकेतुः = शिव, जयति = सर्वोत्कर्षेण वर्तते। एतेन अग्रिमे एकप चाशत्तमे श्लोके कथितः यज्ञवाटस्थस्य पालकस्य वधः समर्थितः सूचितश्च। तदनु = तदनन्तम्, भेत्ता = शत्रुपक्षविदारकः, क्रौ चस्य = तदाख्यस्य पर्वतस्य दैत्यस्य वा; शत्रुः = शातयिता; अथवा क्रौ चशत्रुः = तदाख्यपर्वतस्य शातयिता अतः भेत्ता = तस्य विदारकः; षण्मुखः परशुरामस्पर्धया शरसन्धानाभ्यासे क्रौ चपर्वतं बहुशः बिभेदेति प्रसिद्धिः; षण्मुखः = कार्तिकेयः जयति = विजयते। तदनु = ततः; विनिहतः = सम्यगुन्मूलितः, ध्वस्तः इति यावत्; वरः = प्रधानः श्रेष्ठो वा वैरी = शत्रुः, पालकः राजा, येन तथाभूतः; आर्यकः = आर्यकनामा गोपालसुतः; च = अपि; शुभ्रः = धवलः, हिमैः इति शेषः, कैलास = शिवस्य निवासभूतः कैलासपर्वतः; एव केतुः = पताका यस्याः ताद शीम्; अत्युन्नतत्वेन कैलासे पताकात्वारोपः; कृत्स्नाम् = सम्पूर्णाम्; विशालाम् = विस्त ताम्; गाम् = प थिवीम्; जयति = आयतीकरोतु इत्यर्थः।।४६।।

इस श्लोक में रूपक अलंकार तथा मालिनी छन्द है।।४६।।

(प्रविश्य, सहसा)

शर्विलकः—

हत्वा तं कुन पमहं हि पालकं भो-
स्तद्राज्ये द्रुतमभिषिच्य चार्यकं तम्।
तस्याज्ञां शिरसि निधाय शेषभूतां
मोक्ष्ये हं व्यसनगतं च चारुदत्तम्।।४७।।

अन्वयः— भोः! अहम्, हि, तम्, कुन पम्, हत्वा, तद्राज्ये, द्रुतम्, तम्, आर्यकम्, अभिषिच्य, च, तस्य, शेषभूताम्, आज्ञाम्, शिरसि, निधाय, अहम्, व्यसनगतम्, चारुदत्तम्, मोक्ष्ये।।४७।।

शब्दार्थः— भोः = हे (मनुष्यों)! अहम् = मैं, हि = अवश्य ही, तम् = उस, कुन पम् = दुष्ट राजा को, हत्वा = मार कर, तद्राज्ये = उसके राज्य पर, द्रुतम् = शीघ्र ही, तम् = उस, आर्यकम् = आर्यक को, अभिषिच्य = अभिषिक्त करके, तस्य = उसकी, शेषभूताम् = आखिरी, आज्ञाम् = आज्ञा को, शिरसि = शिर पर, निघाय = रख कर, अहम् = मैं, व्यसनगतम् = विपत्ति में पड़े हुए, चारुदत्तम् = चारुदत्त को, मोक्ष्ये = मुक्त करूँगा अर्थात् मुक्त करता हूँ।

(एकाएक प्रवेश करके)

अर्थः—

शर्विलक— रे मनुष्यों! मैं उस दुष्ट राजा पालक को मारकर, उसके राज्य पर शीघ्र ही उस आर्यक का अभिषेक कर उसकी (आर्यक की) आखिरी आज्ञा को शिरोधार्य करके विपत्ति में पड़े हुए चारुदत्त को मुक्त करता हूँ।।४७।।

टीका— भोः!-इति जनानुद्दिश्य सम्बोधनम्; अहम् = शर्विलकः इत्यर्थः; गर्वोक्तिरियम्; हि = निश्चितम्; तम् = गर्हितकर्मभिः प्रजासु प्रसिद्धम्; कुन पम् = कुत्सितं राजानम्, पालकमित्यर्थः; हत्वा = विनाश्य; तस्य = पालकस्य राज्ये = सिंहासने राज्याधिकारे वा; द्रुतम् = झटिति; अतिशीघ्रतायामन्योपद्रवाशंकाकारणमासीदिति; तम् = सिद्धादिष्टराज्यलाभवार्तया प्रसिद्धम्; आर्यकम् = आर्यकनामानं गोपालसुतम्; अभिषिच्य = यथाविधि अभिषिक्तं कृत्वा; तस्य = राज्ञः आर्यकस्य; शेषभूताम् = अन्तिमाम्; एतेन बहूनां कार्याणां सिद्धिः सूच्यते; ''शेषभूताम् = पुष्पदामायमानाम्'', इति व्याख्या क्लिष्टत्वादुपेक्षणीयेति; आज्ञाम् = आदेशम्' शिरसि = मस्तके; निधाय = कृत्वा; अहम् = शर्विलकः; व्यसनगतम्-व्यसने = विपत्तौ गतम् = पतितम्; चारुदत्तम् = अनेन नाम्ना प्रसिद्धं ब्राह्मणम्; मोक्षे = मोचयिष्यामि।।४७।।

इस श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है।।४७

हत्वा रिपुं तं बलमन्त्रिहीनं
पौरान्समाश्वास्य पुनः प्रकर्षात्।
प्राप्तं समग्रं वसुधाधिराज्यं राज्यं
बलारेरिव शत्रुराज्यम्।।४८।।

अन्वयः— बलमन्त्रिहीनम्, तम्, रिपुम्, हत्वा, पुनः, प्रकर्षात्, पौरान्, समाश्वास्य बलारेः, राज्यम्, इव, समग्रम्, वसुधाधिराज्यम्, शत्रुराज्यम्, प्राप्तम्।।४८।।

शब्दार्थः— बलमन्त्रिहीनम् = सेना तथा मन्त्रियों से रहित, तम् = उस, रिपुम् = शत्रु को, हत्वा = मारकर, पुनः = फिर, प्रकर्षात् = अधिक प्रभाव से, पौरान् = पुरवासियों को, समाश्वास्य = ढाँढस बँधा कर, बलारेः = इन्द्र के, राज्यमिव = राज्य के समान, समग्रम् = सम्पूर्ण, वसुधाधिराज्यम् = प थिवी के शासन से युक्त, शत्रुराज्यम् = शत्रु का राज्य, प्राप्तम् = पा लिया गया (अधिकार में कर लिया गया)।।

अर्थः— सेना तथा मन्त्रियों से रहित उस शत्रु (पालक) को मारकर और फिर (अपने) अधिक प्रभाव से पुरवासियों को ढाँढस बँधाकर, बल नामक दैत्य के शत्रु इन्द्र के राज्य के

समान, समूची प थ्वी के शासन से युक्त, शत्रु के समूचे राज्य को अधिकार में कर लिया।।४८।।

टीका— बलमन्त्रिहीनम्-बलानि च = सैन्यानि च, मन्त्रिणश्च = अमात्याश्च तैः हीनम् = रहितम्; मन्त्रिणः सैन्यानि चापि तत्यजुः पालकमित्यनेन सूच्यते; बलमन्त्रहीनमिति पाठान्तरम्; तथात्वे बलैः मन्त्रैश्च = समीचीनाभिः मन्त्रणाभिश्च हीनम्; तम् = सिद्धादेशानतरं जनसमवाये विदितम्; रिपुम् = शत्रुम; पालकमित्यर्थ; हत्वा = विनाश्य; पुनः = मुहुः; प्रकर्षात् = प्रभावबलात्; पौरान् = पुरवासिनः, उज्जयिनीनिवासिनः इत्यर्थः, समाश्वास्य = आश्वस्तान् कृत्वा, राज्यविप्लवकृतोपद्रवं प्रति भीतान् जनान् सान्त्वयित्वेत्यर्थः; बलारेः = इन्द्रस्य, राज्यमिव = साम्राज्यमिव; इन्द्रस्य राज्यमिव महत् सुखकर चेति भावः; समग्रम् = सम्पूर्णम्; वसुधाधिराज्यम्-वसुधायाः = निखिलायाः प थिव्याः आधिराज्यम् = स्वाभ्यम् वा अधिराज्यम् = साम्राज्यम्, यस्मिन् तत् तथाभूतम्; शत्रुराज्यम्-शत्रोः = रिपोः राज्यम् = 'अखण्डाज्ञाविषयो हि राज्यम्' इति लक्षणलक्षितं राज्यम्; प्राप्तम् = अधिगतम्; मया शर्विलकेन अथवा आर्यकेण इति शेषः। पूर्वोपन्यस्तं श्लोकं द ष्ट्वा शर्विलकेनेति पदमध्याहार्यमिति निश्चीयते।।४८।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।।४८।।

(अग्रतो निरूप्य) भवतु; अत्र तेन भवितव्यम्, यत्रायं जनपदसमवायः। अपि नामायमारम्भः क्षितिपतेरार्यकस्यार्य चारुदत्तस्य जीवितेन सफलः स्यात्?। (त्वरिततरमुपस त्य) अपयात जाल्माः!। (द ष्ट्वा सहर्षम्) अपि ध्रियते चारुदत्त सह वसन्तसेनया? संपूर्णाः खल्वस्मत्स्वामिनो मनोरथाः।

दिष्ट्या भो व्यसनमहार्णवादपारा-
दुत्तीर्णं गुणध तया सुशीलवत्या।
नावेव प्रियतमया चिरान्निरीक्ष्ये
ज्योत्स्नाढ्यं शशिनमिवोपरागमुक्तम्।।४६।।

अर्थः— (सामने देखकर) अच्छ, यहाँ उस चारुदत्त को होना चाहिये, जहाँ पर कि लोगों की यह भीड़ है। क्या प थिवी-पति आर्यक का यह कार्य (अर्थात् पहले-पहल राज्य पर बैठना) आर्य चारुदत्त के जीवन (को रक्षा) से सफल होगा?। (बहुत वेग से समीप जाकर) दूर हटो मूर्खो! (देखकर, प्रसन्नता के साथ) क्या चारुदत्त वसन्तसेना के साथ जीवित है? (तब तो) हमारे स्वामी (आर्यक) के मनोरथ पूरे हो गये।

अन्वयः— भोः! दिष्ट्या, गुणध तया, सुशीलवत्या, नावा, इव, प्रियतमया, अपारात्, व्यसनमहार्णवात्, उत्तीर्णम्, (चारुदत्तम्); उपरागमुक्तम्, ज्योत्स्नाढ्यम्, शशिनम्, इव, चिरात्, निरीक्ष्ये।।४६।।

शब्दार्थः— भोः! = हे (मनुष्यों)! दिष्ट्या = सौभाग्यवश, गुणध तया = गुणों (दया, उपकार आदि तथा नौका के पक्ष में-रस्सियों) से आकृष्ट (खींची गयी), सुशीलवत्या = सुन्दर स्वभाववाली (नैया के पक्ष में सुघटित), नावा = नैया के, इव = समान, प्रियतमया = प्रियतमा के द्वारा, अपारात् = अपार, व्यसनमहार्णवात् = विपत्ति सागर से, उत्तीर्णम् = पार हुए, (चारुदत्तम् = चारुदत्त को), उपरागमुक्तम् = ग्रहण से छूटे हुए, ज्योत्स्नाढ्यम् = चाँदनी से सम्पन्न, शशिनमिव = चन्द्रमा के समान, चिरात् = बहुत दिनों के बाद, निरीक्ष्ये = देख रहा हूँ।

अर्थः— हे मनुष्यों! सौभाग्यवश गुणों (दया, उपकार आदि तथा नौका के पक्ष में-रस्सियों) से आकृष्ट सुन्दर स्वभाव वाली (पक्ष में सुघटित) नौका के समान प्रियतमा वसन्तसेना के द्वारा अपार विपत्तिसागर से पार हुए चारुदत्त को, ग्रहण से छूटे हुए तथा चाँदनी से युक्त चन्द्रमा के समान, बहुत दिनों के बाद मैं देख रहा हूँ।४६।।

टीका— भोः! = हे, जनाः इति शेषः; दिष्ट्या = सौभाग्येन आनन्देन वा, गुणध तया-गुणैः = दयादाक्षिण्यादिभिः नौकापक्षे-गुणैः = रज्जुभिः, ध तया = आकृष्टया, वसन्तसेनापक्षे वशीभूतया इत्यर्थः; सुशीलवत्या = सुन्दरस्वभावसम्पन्नया, नौकापक्षे-सुघटितया; नावेव = नौकयेव; प्रियतमया = प्रेयस्या वसन्तसेनया इत्यर्थः; अपारात् = एकत्र दुर्निवारात्, अन्यत्र पारं गन्तुमशक्यादित्यर्थः; व्यसनमहार्णवात्-व्यसनम् = विपत्तिः एव महार्णवः = अपारः सागरः तस्मात्; उत्तीर्णम् = पारंगतम्, उद्ध तमित्यर्थः; चारुदत्तमिति शेषः; उपरागमुक्तम्-उपरागात् = ग्रहात्, मुक्तम् = त्यक्तम्; निव त्तग्रहमित्यर्थः; अतः ज्योत्स्नाभिः = चन्द्रिकाभिः आढ्यम् = सम्पन्नम्; शशिनमिव = चन्द्रमसमिव; चिरात् = बहोः कालादनन्तरम्, निरीक्ष्ये = पश्यामि।।४६।।

इस श्लोक में रूपक, श्लेष एवं उपमा अलंकार तथा प्रहर्षिणी छन्द है।।४६।।

तत्कृतमहापातकः कथमिवैनमुपसर्पामि?। अथवा सर्वत्रार्जवं शोभते। (प्रकाशमुपस त्य बद्धा जलिः) आर्य चारुदत्त?।

चारुदत्तः— ननु को भवान्?।

शर्विलकः—

येन ते भवनं भित्त्वा न्यासापहरणं कृतम्।
सो हं कृतमहापापस्त्वामेव शरणं गतः।।५०।।

अर्थः— तो (इनके घर चोरी के) महान् पाप का कर्ता मैं इनके पास कैसे जाऊ! अथवा सरलता सब जगह अच्छी होती है। (प्रकट रूप में, समीप जाकर, हाथ जोड़े हुए) आर्य चारुदत्त!

अन्वयः— येन, ते, भवनम्, भित्त्वा, न्यासापहरणम्, कृतम्, सः; कृतमहापापः, अहम्, त्वाम्, एव, शरणम्, गतः।।५०।।

शब्दार्थः— येन = जिसके द्वारा, ते = तुम्हारे, भवनम् = घर को, भित्त्वा = फोड़कर, न्यासापहरणम् = धरोहर की चोरी, कृतम् = की गयी, सः = वह, कृतमहापापः = महान् पाप करने वाला, अहम् = मैं, त्वामेव = तुम्हारी ही, शरणम् = शरण को, गतः = प्राप्त हुआ हूँ।

अर्थः—

चारुदत्त— अरे! आप कौन हैं?

शर्विलक— जिसने तुम्हारे घर की दीवार में सेंध लगाकर धरोहर की चोरी की थी; वही महान् पाप करने वाला मैं तुम्हारी ही शरण में आया हूँ।।५०।।

टीका— येन = महापापिना; ते = तव; भवनम् = ग हम्, कुड्यमित्यर्थः; भित्त्वा = छित्त्वा; न्यासस्य = निक्षेपस्य, उपनिधे; इत्यर्थः, अपहरणम् = चौर्यम् कृतम् = सम्पादितम्; सः कृतम् = विहितम् महापापम् = महत्पातकम् येन सः; सुवर्णचौर्यं महापातकमिति स्म तिवचनात् कृतमहापापः' इत्युक्तम्; अहम् = तव समक्षं स्थितः शर्विलकः; त्वामेव = भवन्तमेव; शरणम् = रक्षकम्, गतः = प्राप्तः; अस्मीति शेषः।।५०।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।५०।।

चारुदत्तः— सखे! मैवम्; त्वयासौ प्रणयः कृतः। (इति कण्ठे ग ह्णाति)।

शर्विलकः— अन्यच्च,—

आर्यकेणार्यव त्तेन कुलं मानं च रक्षता।
पशुवद्यज्ञवाटस्थो दुरात्मा पालको हतः।।५१।।

अर्थः—

चारुदत्त— मित्र! ऐसा मत कहो। तुमने तो यह कृपा ही की थी। (ऐसा कह कर गले लगाता है।

अन्वयः— आर्यव त्तेन, कुलम्, मानम्, च, रक्षता, आर्यकेण, यज्ञवाटस्थः, दुरात्मा, पालकः, पशुवत्, हतः।।५१।।

शब्दार्थः— आर्यव त्तेन = सज्जनों के योग्य व्यवहार करने वाले, कुलम् = (अपने) कुल को, मानम् = मान को, रक्षता = बचाते हुए, आर्यकेण = आर्यक के द्वारा, यज्ञवाटस्थः = यज्ञशाला में स्थित, दुरात्मा = दुष्ट, पालकः = राजा पालक, पशुवत् = पशु के समान, हतः = मार डाला गया।

अर्थः—

शर्विलक— और भी-

सज्जनों के योग्य व्यवहार करने वाले, अपने कुल तथा मान को बचाते हुए, आर्यक ने यज्ञशाला में स्थित दुष्ट पालक को पशु के समान मार दिया।।५१।।

टीका— आर्यव त्तेन-आर्यम् = साधुजनाभिनन्दितम् व त्तम् = चरितम् यस्य तेन; कुलम् = वंशम्; मान च = गौरव च; रक्षता = पालयता; क्रुद्धपालकात्कुलं मान च रक्षतेति बोध्यम्; आर्यकेण = तदाख्येन गोपालदारकेण; यज्ञवाटस्थः = यज्ञशालागतः; दुरात्मा = दुष्टप्रकृतिः; पालकः = तदाख्यः भूतपूर्वः राजा; पशुवत् = छागादिवत्; यज्ञे यथा पशुः हन्यते तथैवेत्यर्थः; एतेन यज्ञकार्यव्याप तस्यापि तस्य हननं शुभावहमित्यपि सूचितम्; हतः = मारितः।।५१।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।५१।।

चारुदत्तः— किम्?

शर्विलकः—

त्वद्यानं यः समारुह्य गतस्त्वां शरणं पुरा।
पशुवद्वितते यज्ञे हतस्तेनाद्य पालकः।।५२।।

अन्वयः— यः, पुरा, त्वद्यानम्, समारुह्य, त्वाम्, शरणम्, गतः; तेन, अद्य, वितते, यज्ञे, पालकः, पशुवत्, हतः।।५२।।

शब्दार्थः— यः = जो (आर्यक), पुरा = पहले, त्वद्यानम् = तुम्हारी गाड़ी पर, समारुह्य = चढ़कर, त्वाम् = तुम, शरणम् = रक्षक के पास (अर्थात् तुम्हारी शरण में), गतः = गया था; तेन = उसी के द्वारा, अद्य = आज, वितते = विस्त त, यज्ञे = यज्ञ में, पालकः = पालक, पशुवत् = पशु के समान, हतः = मारा गया।।

अर्थः— **चारुदत्त—** क्या?

शर्विलक— जो आर्यक पहले तुम्हारी गाड़ी पर चढ़कर तुम्हारी शरण में गया था, उसने ही आज, विस्त त यज्ञ में पालक को पशु के समान मार दिया।।५२।।

टीका— यः = आर्यकः, पुरा = पूर्वम्, त्वद्यानम्-तव = भवतः यानम् = शकटम्; समारुह्य = स्थित्वा; त्वाम् = भवन्तम्, शरणम् = रक्षितारम्; गतः = सम्प्राप्तः; तेन = त्वत्कृपारक्षितेन; अद्य = अस्मिन् दिने; वितते = विस्त ते; यज्ञे = मखे; पालकः; पशुवत् = यज्ञा यज्ञे पशुः हन्यते तथैव; हतः = विनाशितः।।५२।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।५२।।

चारुदत्तः—शर्विलक! यो सौ पालकेन घोषादानीय निष्कारणं कूटागारे बद्ध आर्यकनामा त्वया मोचितः?।

शर्विलकः—यथाह तत्रभवान्।

चारुदत्तः—प्रियं नः प्रियम्।

शर्विलकः—प्रतिष्ठितमात्रेण तव सुहृदार्यकेणोज्जयिन्यां वेणातटे कुशावत्यां राज्यमतिस ष्टम्। तत्प्रतिमान्यतां प्रथमः सुहृत्प्रणयः। (परिव त्य) अरे रे, आनीयतामयं पापो राष्ट्रियशठ।

(नेपथ्ये)

यथाज्ञापयति शर्विलकः।

शर्विलकः— आर्य नन्वयमार्यको राजा विज्ञापयति-'इदं मया युष्मद्गुणोपार्जितं राज्यम्; तदुपयुज्यताम्'।

चारुदत्तः— अस्मद्गुणोपार्जितं राज्यम्?।

(नेपथ्ये)

अरे रे राष्ट्रियश्यालक! एह्येहि। स्वस्याविनयस्य फलमनुभव।

(ततः प्रविशति पुरुषैरधिष्ठितः पश्चाद्बाहुबद्धः शकारः)

शकारः— हीमादिके,

एव्वं दूलमदिक्कंते उद्दामे विअ गद्दहे।
आणीदे खु हगे बद्धे हुडे अण्णे व्व दुक्कले।।५३।।

आश्चर्यम्,

एवं दूरमतिक्रान्त उद्दाम इव गर्दभः।
आनीतः खल्वहं बद्धः कुक्कुरो न्य इव दुष्करः।।

अर्थः—

चारुदत्त— शर्विलक! जो यह (राजा) पालक के द्वारा अहीरों की बस्ती से लाकर विना कारण के ही कारागार में बाँध दिया गया था और बाद में तुम्हारे द्वारा छुड़ाया गया; वही आर्यक नामक आदमी?।

शब्दार्थः—

शर्विलक— जैसा आदरणीय आप कहते हैं (वही बात है)।

चारुदत्त— अच्छा, हमारे लिये बहुत अच्छा।

शर्विलक— उज्जयिनी में (सिंहासन पर) बैठते ही तुम्हारे प्रिय मित्र आर्यक ने वेणा नदी के तट पर कुशावती का राज्य (आपको) दान दे दिया है। तो मित्र की पहली प्रेमभरी प्रार्थना को स्वीकार करें। (घूमकर) अरे! इस पापी धूर्त राजा के साले (शकार) को लाओ।

(पर्दे में)

शर्विलक की जैसी आज्ञा।

शर्विलक— आर्या! निश्चय ही राजा आर्यक सूचित करते हैं कि-'मैंने इस राज्य को तुम्हारे गुणों के बल से प्राप्त किया है, तो (आप ही) इसका उपयोग कीजिये (अर्थात् आप ही इस राज्य को भोगिये)।'

चारुदत्त— हमारे गुणों के बल से प्राप्त राज्य?

(पर्दे में)

अरे रे राजा के साले! आओ, आओ। अपनी उद्दण्डता के फल को भोगो।

(इसके बाद पुरुषों के द्वारा शासित पीछे की ओर हाथ बँधा हुआ शकार प्रविष्ट होता है।)

अन्वयः— उद्दामः, गर्दभः, इव, एवम्, दूरम्, अतिक्रान्तः, अहम्, खलु, आनीतः, (तथा), दुष्करः, अन्यः, कुक्कुरः, इव, बद्धः।।५३।।

शब्दार्थः— उद्दामः = बन्धन से छूटे हुए, गर्दभः = गधे (की), इव = भाँति, एवम् = इस प्रकार, दूरम् = दूर तक, अतिक्रान्तः = भागा हुआ, अहम् = मैं, खलु = निश्चित ही, आनीतः = पकड़ लाया गया, (तथा = और), दुष्करः = दुष्ट, अन्यः = दूसरे अर्थात् दूसरे के, कुक्कुरः = कुत्ते (के), इव = समान, बद्धः = बाँध दिया गया हूँ।।

अर्थः—

शकार— आश्चर्य है;

बन्धन से छूटे हुए गधे की भाँति इस प्रकार दूर तक भागा हुआ मैं पकड़ लाया गया और दुष्ट कुत्ते के समान बाँध दिया गया हूँ।।५३।।

टीका— उद्दामः-उत् = उद्गतम् दाम = बन्धनम् यस्य ताद शः, बन्धनविनिर्मुक्तः इत्यर्थः; गर्दभः = राक्षभः; इव; एवम् = इत्थम्; दूरम् = विप्रकृष्टम्; अतिक्रान्तः = पलायितः; अहम् = शकारः; खलु = निश्चितम्; आनीतः = उपस्थापितः; तथा दुष्करः = अतिप्रचण्डः दुष्टः वा; अन्यः = स्वातिरिक्तः; कुक्कुरः = श्वा; इव = यथा; बद्धः = संयमितः; अस्मि।।५३।।

इस श्लोक में उपमा अलंकार एवं पथ्यावक्त्र छन्द है।।५३।।

(दिशो वलोक्य) शमंतदो, उवट्ठिदे एशे लश्टिअबंधे। ता कं दाणिं अशलणे शलणं वजामि?। (विचिन्त्य) भोदु, तं ज्जेव अब्भुववण्णशलणवच्छलं गच्छामि। (इत्युपस त्य) अज्जचालुदत्त! पलित्ताआहि पलित्ताआहि।

समन्तत उपस्थित एष राष्ट्रियबन्धः। तत्कमिदानीमशरणः शरणं व्रजामि? भवतु, तमेवाभ्युपपन्नशरणवत्सलं गच्छामि। आर्यचारुदत्त! परित्रायस्व परित्रायस्व।

(इति पादयोः पतति)

(नेपथ्ये)

अज्जचालुदत्त! मुंच मुंच, वावादेम्ह एदं। (आर्यचारुदत्त! मु च मु च, व्यापादयामैतम्)

शकारः— (चारुदत्तं प्रति) भो अशलणशलणे! पलित्ताआहि। (भो अशरणशरण! परित्रायस्व।)

चारुदत्तः—(सानुकम्पम्) अहह, अभयमभयं शरणागतस्य।

शर्विलकः—(सावेगम्) आः, अपनीयतामयं चारुदत्तपार्श्वात्। (चारुदत्तं प्रति) ननूच्यतां किमस्य पापस्यानुष्ठीयतामिति।

आकर्षन्तु सुबद्ध्वैनं श्वभिः संखाद्यतामथ।
शूले वा तिष्ठतामेष पाट्यतां क्रकचेन वा।।५४।।

अर्थः— (चारों ओर देखकर), चारों ओर से राजश्यालक का (अर्थात् मेरा) शत्रुवर्ग उपस्थित है। तो आश्रयहीन मैं अब किसकी शरण में जाऊँ? (सोच कर) अच्छा, समीप में आये हुए लोगों पर स्नेह करने वाले उसी (चारुदत्त) के समीप जाता हूँ। (इस प्रकार पास में जाकर) आर्य चारुदत्त! बचाओ, बचाओ।

(ऐसा कह कर पैरों पर गिरता है)

(पर्दे में)

आर्य चारुदत्त! छोड़ो, छोड़ो। हम (दोनों) इसे मार डालें।

शकार— हे आश्रयहीनों के आश्रयदाता! रक्षा करो।

चारुदत्त— (कृपा के साथ) अहह! शरण में आये हुए के लिए अभय है, अभय है।

शर्विलक— (घबड़ाहट के साथ) इसे आर्य चारुदत्त के पास से दूर हटा लीजिये। (चारुदत्त के प्रति) बतलाइये इस पापी का क्या किया जाय?

अन्वयः— एनम्, सुबद्ध्वा, (जनाः), आकर्षन्तु, अथ, एषः, श्वभिः, संखाद्यताम्, वा, शूले, तिष्ठताम्, वा, क्रकचेन, पाट्यताम्।।५४।।

शब्दार्थः— एनम् = इसको, सुबद्ध्वा = भली प्रकार बाँधकर, (जनाः = मनुष्य) आकर्षन्तु = खींचे? अथ = अथवा, एषः = यह, श्वभिः = कुत्तों के द्वारा, संखाद्यताम् = खाया जाय? वा = अथवा, शूले = शूली पर, तिष्ठताम् = बैठे? वा = या, क्रकचेन = आरा से, पाट्यताम् = चीरा जाय?।।५४।।

अर्थः— क्या इस (शकार को भली प्रकार बाँध कर (मनुष्य) खींचे अथवा इसे कुत्ते खाएँ। क्या इसे शूली पर चढ़ाया जाय अथवा आरा से चीरा जाय।।५४।।

टीका— एनम् = तव सम्मुखे उपस्थापितं शकारमित्यर्थः; सुबद्ध्वा = सम्यक् संयम्य, आकर्षन्तु = प थिव्यामितस्ततः कर्षन्तु? जनाः इति शेषः। अथ = अथवा; एषः = अपराधी शकारः; श्वभिः = कुक्कुरैः; संखाद्यताम् = आच्छिद्य आच्छिद्य भोज्यताम्? वा = अथवा; शूले = प्राणापहारके लौहफलके; तिष्ठताम् = वर्तताम्? वा = अथवा; क्रकचेन = करपत्त्रेण, पाट्यताम् = विदार्यताम्। अतिभयंकरेषु एतेषु दण्डेषु पापी शकारः कस्य भाजनं भूयादिति प्रश्नस्याशयः।।५४।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।५४।।

चारुदत्तः—किमहं यद्ब्रवीमि तत्क्रियते?।

शर्विलकः—को त्र संदेहः?।

शकारः— भश्टालआ चालुदत्त! शलणागदे म्हि। ता पलित्ताआहि पलित्ताआहि। जं तुए शलिशं तं कलेहि; पुणोण ईदिशं कलिश्शं। (भट्टारक चारुदत्त! शरणागतो स्मि। तत्परित्रायस्व परित्रायस्व। यत्तव सद शं तत्कुरु; पुनर्नेद शं करिष्यामि।)

(नेपथ्ये)

पौराः! वावादेध, किंणिमित्तं पादकी जीवावीअदि?। (पौराः! व्यापादयत, किंनिमित्तं पातकी जीव्यते?।)

(वसन्तसेना बध्यमालां चारुदत्तस्य कण्ठादपनीय शकारस्योपरि क्षिपति)

शकारः— गब्भदाशीधीए! पशीद पशीद। ण उण मालइश्शं। ता पलित्ताआहि। (गर्भदासीपुत्रि! प्रसीद प्रसीद। न पुनर्मारयिष्यामि। तत्परित्रायस्व।)

शर्विलकः—अरे, रे, अपनयत। आर्यचारुदत्त! आज्ञाप्यताम्-किमस्य पापस्यानुष्ठीयताम्?।

चारुदत्तः—किमहं यद्ब्रवीमि तत्क्रियते?।

शर्विलकः—को त्र संदेहः।

चारुदत्तः—सत्यम्?।

शर्विलकः—सत्यम्।

चारुदत्तः— यद्येवं शीघ्रमयम्-

शर्विलकः— किं हन्यताम्?।

चारुदत्तः— नहि नहि, मुच्यताम्।

शर्विलकः— किमर्थम्?।

चारुदत्तः—

शत्रुः कृतापराधः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः।

शस्त्रेण न हन्तव्यः,

शर्विलकः— एवम्, तर्हि श्वभिः खाद्यताम्।

चारुदत्तः— नहि,

उपकारहतस्तु कर्तव्यः।।५५।।

चारुदत्त— क्या मैं जो कहूँगा, वह किया जायगा?

शर्विलक— इसमें क्या सन्देह?

शकार— मालिक चारुदत्त! शरण में आया हूँ। तो रक्षा करो, रक्षा करो। जो तुम्हारे योग्य हो वह करो। फिर ऐसा न करूँगा।

(पर्दे में)

हे पुरवासियों! मार डालो। यह पातकी किसलिये जी रहा है?

(वसन्तसेना वध्य की माला को चारुदत्त के गले से निकाल कर शकार के ऊपर फेंकती है)

शकार— गर्भदासी की पुत्री! प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ, प्रसन्न होओ। फिर न मारूँगा। तो बचालो।

शर्विलक— अरे रे! हटाओ। आर्य चारुदत्त! आज्ञा दीजिये-इस पापी का क्या किया जाय?

चारुदत्त— क्या मैं जो कह रहा हूँ वह किया जायगा?

शर्विलक— इसमें क्याा सन्देह?।

चारुदत्त— सच?

शर्विलक— सच।

चारुदत्त— यदि ऐसी बात है तो शीघ्र ही इसे-

शर्विलक— क्या मार दिया जाय?

चारुदत्त— नहीं, नहीं, छोड़ दिया जाय।

शर्विलक— किसलिये?

अन्वयः— कृतापराधः, शत्रुः, (यदि) शरणम्, उपेत्य, पादयोः, पतितः, (तर्हि, सः) शस्त्रेण, न, हन्तव्यः, तु, उपकारहतः, कर्तव्यः।।५५।।

शब्दार्थः— कृतापराधः = अपराध को करने वाला, शत्रुः = शत्रु, (यदि), शरणम् = शरण को, उपेत्य = प्राप्त करके (अर्थात् शरण में आकर), पादयोः = पैरों पर पतितः = पड़ा है, (तर्हि = तो, सः = वह), शस्त्रेण = शस्त्र से, न = नहीं, हन्तव्यः = मारने के योग्य है, तु = किन्तु, उपकारहतः = उपकार से मरा हुआ, कर्तव्यः = करने के योग्य है।।

अर्थः—

चारुदत्त— अपराध को करने वाला शत्रु यदि शरण में आकर पैरों पर पड़ा है तो उसे शस्त्र से नहीं मारना चाहिये......

शर्विलक— अच्छा, तो कुत्तों द्वारा खाया जाये।

चारुदत्त— नहीं।

किन्तु उसे उपकार से मरा हुआ कर देना चाहिये।।५५।।

टीका— कृतापराधः-कृतः = सम्पादितः अपराधः = आगः। येन ताद शः; शत्रुः = अरिः, अहितकर्ता इत्यर्थः; यदि; शरणम् = आश्रयम्; उपेत्य = प्राप्य; पादयोः = चरणयोः; पतितः = लुठितः; अस्ति तर्हि सः; शस्त्रेण = आयुधेन न हन्तव्यः = न मारणीयः; तु = किन्तु; उपकारहतः-उपकारेण = तस्य हितसम्पादनेन, हतः = विनष्टः; अतिलज्जितः इति भावः। अतिलज्जावस्था मरणतुल्यैवावबुद्ध्यतेति अर्थः। कर्तव्यः = विधेयः। अपकर्ता शत्रुर्यदि शरणे भवेत्प्राप्तस्तर्हि तस्य तथा उपकारः विधेयः यथातिलज्जया सः मुखमपि सम्मुखे कर्तुं न शक्नुयात्। इयं हि अवस्था तस्य मरणादपि गरीयसीति भावः।।५५।।

शर्विलकः—अहो, आश्चर्य्यम्, किं करोमि?। वदत्वार्यः।

चारुदत्तः— तन्मुच्यताम्।

शर्विलकः— मुक्तो भवतु।

शकारः— हीमादिके, पच्चुज्जीविदे म्हि। (आश्चर्यम्, प्रत्युज्जीवितो स्मि।) (इति पुरुषैः सह निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये कलकलः)

(पुनर्नेपथ्ये)

एसा अज्जचालुदत्तस्स वहुआ अज्जा धूदा पदे वसणंचले विलग्गतंतं दारअं आक्खिवंती बाप्फभरिदणअणेहिं जणेहिं णिवारिज्जमाणा पज्जलिदे पावए पविसदि। (एषार्यचारुदत्तस्य वधूरार्या धूता पदे वसना चले विलगन्तं दारकमाक्षिपन्ती बाष्पभरितनयनैर्जनैर्निवार्यमाणा प्रज्वलिते पावके प्रविशति।)

शर्विलकः— (आकर्ण्य, नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथं चन्दनकः?। चन्दनक! किमेतत्?।

चन्दनकः— (प्रविश्य) किं ण पेक्खदि अज्जो?। महाराअप्पासादं दक्खिणेण महंतो जणसंमद्दो वट्टदि। ('एसा' (प ष्ठे) इत्यादि पुनः पठति) कधिदं अ मए तीए, जधा-'अज्जे! मा साहसं करेहि। जीवदि अज्जचारुदत्तो' त्ति। परंतु दुक्खवावुडदाए को सुणेदि, को पत्तिआएदि?। (किं न पश्यत्यार्यः?। महाराजप्रासादं दक्षिणेन महा जनसंमर्दो वर्तते। कथितं च मया तस्यै, यथा-आर्ये! मा साहसं कुरुष्व। जीवत्यार्यचारुदत्तः' इति। परंतु दुःखव्याप ततया कः श्र णोति, कः प्रत्ययते?।)

चारुदत्तः— (सोद्वेगम्) हा प्रिये! जीवत्यपि मयि किमेतद्व्यवसितम्?। (ऊर्ध्वमवलोक्य दीर्घ निःश्वस्य च)

न महीतलस्थितिसहानि भवच्च-
रितानि चारुचरिते यदपि।
उचितं तथापि परलोकसुखं न
पतिव्रते! तव विहाय पतिम्।।५६।।

अर्थः—

शर्विलक— अहो! आश्चर्य है। क्या करूँ? आप बतलावें।

चारुदत्त— तो छोड़ दिया जाय।

शर्विलक— मुक्त हो जाये।

शकार— आश्चर्य है। फिर से जीवित हो गया हूँ।

(ऐसा कह कर पुरुषों के साथ निकल जाता है)

(पर्दे में कोलाहल)

(फिर पर्दे में)

यह आर्य चारुदत्त की स्त्री आर्या 'धूता' पैर और वस्त्र के आँचल में लिपटने वाले बालक को दूर हटाती हुई आँखों में आँसू भरे हुए लोगों के द्वारा मना की जाती हुई भी जलती हुई आग में प्रवेश कर रही है।

शर्विलक— (सुनकर, पर्दे की ओर देखकर) क्या चन्दनक? चन्दनक! यह क्या है?

चन्दनक— (प्रवेश करके) क्या आप नहीं देख रहे हैं? महाराज के महल के दक्षिण ओर लोगों की बहुत बड़ी भीड़ है। ('एषा' इत्यादि फिर पढ़ता है) और मैंने उससे (धूता से) कहा कि-'आर्ये! साहस मत करो। आर्य चारुदत्त जीवित है।' किन्तु दुःख में डूबने के कारण कौन सुनता है? और कौन विश्वास करता है?

अन्वयः— हे चारुचरिते! यदपि, भवच्चरितानि, महीतलस्थितिसहानि, न, (सन्ति); तथापि, हे पतिव्रते! पतिम्, विहाय, तव, परलोकसुखम् न उचितम्।।५६।।

शब्दार्थः— हे चारुचरिते! = हे सुन्दरचरितवाली! यदपि = यद्यपि, भवच्चरितानि = आप के चरित, महीतलस्थितिसहानि = भूतल पर रहने के योग्य, न = नहीं, (सन्ति = हैं)। तथापि = तो भी, हे पतिव्रते! = हे पतिव्रता स्त्री! पतिम् = पति को (अर्थात् मुझको), विहाय = छोड़ कर, तव = तुम्हारा, परलोकसुखम् = परलोक में सुख भोगना, न = नहीं, उचितम् = उचित है।।

अर्थः—

चारुदत्त— (घबड़ाहट के साथ) हाय प्रिये! मेरे जिन्दा रहने पर ही (तुमने) यह क्या निश्चित कर लिया? (ऊपर देख कर और लम्बी साँस लेकर)

हे सुन्दर चरितवाली! यद्यपि आपके सच्चरित्र इस भूतल पर रहने के योग्य नहीं हैं तथापि हे पतिव्रता स्त्री! पति (मुझ) को छोड़ कर तुम्हारा परलोक में (अकेले) सुख भोगना उचित नहीं है।।५६।।

टीका— हे चारुचरिते-चारु = शोभनम् चरितम् = आचरणम् यस्याः तत्सम्बोधने; यदपि = यद्यपि; भवत्याः = श्रीमत्याः तव चरितानि = आचरणानि; महीतले = भूतले स्थितिः = अवस्थानम् तां सहन्ते इति महीतलस्थितिसहानि = भूतले स्थातुं योग्यानि; न सन्ति; तथापि; हे पतिव्रते! पतिम् = भर्तारम्, मामित्यर्थः; विहाय = त्यक्त्वा; तव = भवत्याः; परलोके = स्वर्गे यत् सुखम् = आनन्दः तद्भोक्तुमिति शेषः; न उचितम् = न योग्यम्। सर्वथा स्वर्गे एव स्थातुं योग्यायाः तव मां विहाय तत्र गमनं नोचितं यतः त्वं पतिव्रता सीति भावः।।५६।।

इस श्लोक में काव्यलिंग अलंकार तथा प्रमिताक्षरा छन्द है। छन्द का लक्षण- प्रामताक्षरा सजससैः कथिता।।५६।।

(इति मोहमुपगतः)

शर्विलकः— अहो प्रमादः

त्वरया सर्पणं तत्र मोहमार्यो त्र चागतः।
हा धिक्प्रयत्नवैफल्यं द श्यते सर्वतोमुखम्।।५७।।

अन्वयः— तत्र, त्वरया, सर्पणम्, (उचितम्, किन्तु), अत्र, आयः, मोहम्, उपगतः। हा धिक्! सर्वतोमुखम्, प्रयत्नवैफल्यम्, द श्यते।।५७।।

शब्दार्थः— तत्र = वहाँ, त्वरया = जल्दी से, सर्पणम् = जाना, (उचितम् = उचित है, किन्तु = परन्तु); अत्र = यहाँ, आर्यः = आदरणीय (चारुदत्त), मोहम् = मूर्च्छा को, उपगतः = प्राप्त हो गये हैं। हा धिक् = हाय धिक्कार है! सर्वतोमुखम् = चारों ओर से, प्रयत्नवैफल्यम् = प्रयत्न की विफलता, द श्यते = दिखलायी देती है।।

(ऐसा कह कर मूर्च्छा को प्राप्त होता है)

अर्थः—

शर्विलक— अहो! असावधानी!

वहाँ (घूता के पास) जल्दी से जाना उचित है, परन्तु यहाँ आर्य (चारुदत्त) मूर्च्छित हो गये हैं। हाय! धिक्कार है! चारों ओर से प्रयत्न (चारुदत्त को बचाने के प्रयत्न) की विफलता दिखलाई देती है।।५७।।

टीका— तत्र = यत्र धूता अग्नौ प्रविशति तत्रेत्यर्थः; त्वरया = झटिति; सर्पणम् = गमनम्; उचितमिति शेषः; किन्तु अत्र = अस्मिन् स्थाने; आर्यः = आदरणीयः, चारुदत्तः इत्यर्थः, मोहम् = मूर्च्छाम्; उपगतः = प्राप्तः। हा धिक्! सर्वतोमुखम् = सर्वप्रकारेण इत्यर्थ; प्रयत्नानाम् = उद्योगानाम् वैफल्यम् = विफलता; द श्यते = अवलोक्यते। चारुदत्तविमोक्षणायैव झटिति अस्माभिः पालकहननादिकृत्यानि सयत्नं कृतानि। पर च कृते पि सर्वविधयत्ने प्रतीयते चारुदत्तस्य प्राणानां रक्षा न भविष्यतीति; अस्य जीवनरक्षा धूतां विना न सम्भविष्यतीति भावः।।५७।।

इस श्लोक में पथ्यावक्त्र छन्द है।।५७।।

वसन्तसेना— समस्ससिदु अज्जो। तत्त गदुअ जीवावेदु अज्जा; अण्णधा अधीरत्तणेण अणत्थो संभावीअदि। (समाश्वसित्वार्यः। तत्र गत्वा जीवयत्वार्याम्; अन्यथाधीरत्वेनानर्थः संभाव्यते।)

चारुदत्तः—(समाश्वस्य, सहसोत्थाय च) हा प्रिये! क्वासि?। देहि मे प्रतिवचनम्।

चन्दनकः—इदो इदो अज्जो। (इत इत आर्यः।)

(इति सर्वे परिक्रामन्ति)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा धूता चेला चलमाकर्षन्विदूषकेणानुगम्यमानो रोहसेनो रदनिका च)

धूता— (सास्रम्) जाद! मुंचेहि मं। माविग्घं करेहि। भीआमि अज्जउत्तस्स अमंगलाकण्णणदो। (जात! मु च माम्। मा विघ्नं कुरुष्व। विभेम्यार्यपुत्रस्यामंगलाकर्णनात्।)

(इत्युत्थाया चलमाकृष्य, पावकाभिमुखं परिक्रामति)

रोहसेनः— माद अज्जए! पडिवालेहि मं। तुए विणा ण सक्कुणोमि जीविदं धारेदुं। (मातरार्ये! प्रतिपालय माम्। त्वया विना न शक्नोमि जीवितं धर्तुम्।)

(इति त्वरितमुपस त्य, पुनर चलं ग ह्णति।)

विदूषकः—भोदीए दाव बह्मणीए भिण्णत्तणेण चिदाधिरोहणं पावं उदाहरंति रिसिओ। (भवत्यास्तावद्ब्राह्मण्या भिन्नत्वेन चिताधिरोहणं पापमुदाहरन्ति ऋषयः।)

धूता— वरं पावाचरणे। ण उण अज्जउत्तस्स अमंगलाकण्णणं। (वरं पापाचरणम्। न पुनरार्यपुत्रस्यामंगलाकर्णनम्।)

शर्विलकः— (पुरो वलोक्य) आसन्नहुतवहार्या। तत्त्वर्यतां त्वर्यताम्।

(चारुदत्तस्त्वरितं परिक्रामति)

धूता— रअणिए! अवलंब दारअं, जाव अहं समीहिदं करेमि। (रदनिके! अवलम्बस्व दारकम्। यावदहं समीहितं करोमि।)

चेटी— (सकरुणम्) अहं पि पधोवदेसिणि म्हि भट्टिणीए। (अहमपि पथोपदेशिन्यस्मि भट्टिन्याः।)

धूता— (विदूषकमवलोक्य) अज्जो दाव अवलंबेदु। (आर्यस्तावदवलम्बताम्।)

विदूषकः—(सावेगम्) समीहिदसिद्धिए पउत्तेण बम्हणो अग्गदो कादव्वो। अदो भोदीए अहं अग्गणी होमि। (समीहितसिद्ध्यै प्रव त्तेन ब्राह्मणो ग्रे कर्तव्यः। अतो भवत्या अहमग्रणी-र्भवामि।)

धूता— **कधं पच्चादिट्ठम्हि दुवेहिं?। (बालकमालिंगय) जाद! तुमं ज्जेव पज्जवट्ठावेहि अत्ताणं अम्हाणं तिलोदअदाणाअ। अदिक्कंते किं मणोरहेहिं?। (सनिःश्वासम्) ण खु अज्जउत्तो तुमं पज्जवट्ठाविस्सदि। (कथं प्रत्यादिष्टास्मि द्वाभ्याम्? जात! त्वमेव पर्यवस्थापयात्मानमस्माकं तिलोदकदानाय। अतिक्रान्ते किं मनोरथैः?। न खल्वार्यपुत्रस्त्वां पर्यवस्थापयिष्यति।)**

चारुदत्तः—(आकर्ण्य, सहसोपस त्य) अहमेव पर्यवस्थापयामि बालिशम्।

(इति बालकं बाहुभ्यामुत्थाप्य, वक्षसालिंगति)

धूता— **(विलोक्य) अम्महे, अज्जउत्तस्स ज्जेव्व सरसंजोओ। (पुनर्निपुणं निरूप्य, सहर्षम्) दिट्टिआ अज्जउत्तो ज्जेव एसो। पिअं मे पिअं। (आश्चर्यम्, आर्यपुत्रस्येव स्वरसंयोगः। दिष्ट्यार्यपुत्र एवैषः। प्रियं मे प्रियम्।)**

बालकः— **(विलोक्य सहर्षम्) अम्मो आवुको मं परिस्सजदि। (धूतां प्रति) अज्जए! वड्ढवीअसि। आवुको ज्जेव मं पज्जवट्ठावेदि। (आश्चर्यम्, पिता मां परिष्वजति आर्ये! वर्धसे। तात एव मां पर्यवस्थापयति।) (इति प्रत्यालिंगति)**

चारुदत्तः—(धूतां प्रति)

हा प्रेयसि! प्रेयसि विद्यमाने
को यं कठोरो व्यवसाय आसीत्।
अम्भोजिनीलोचनमुद्रणं किं
भानावनस्तंगमिते करोति?।।५८।।

अर्थः—

वसन्तसेना—आर्य ढाँढस बाँधे। वहाँ चल कर आर्या (धूता) को जीवित करें। नहीं तो अधीरता से अनर्थ की सम्भावना है।

चारुदत्त— (धीरज धर कर और जल्दी से उठकर) हाय प्रिये! कहाँ हो? मुझे उत्तर दो।

चन्दनक— आर्य! इधर से, इधर से (आइये)।

(इस प्रकार सभी घूमते हैं)

(इसके बाद पहले बतलायी गयी अवस्था वाली धूता, वस्त्र के आँचल को खींचता हुआ एवं विदूषक से अनुसरण किया गया रोहसेन और रदनिका प्रवेश करते हैं)

धूता— (आँखों में आँसू भर कर) बेटे! छोड़ो मुझे। विघ्न मत करो। आर्यपुत्र (चारुदत्त) के अमंगल (अर्थात् म त्यु) के सुनने से डर रही हूँ। (ऐसा कह कर उठकर, आँचल खींच कर, आग की ओर घूमती है)

रोहसेन— आर्ये माता! मेरी प्रतीक्षा करो। तुम्हारे बिना मैं प्राण को नहीं धारण कर सकता। (ऐसा कहकर, जल्दी से पास में जाकर, फिर आँचल पकड़ता है।)

विदूषक— आप जैसी ब्राह्मणी के लिए अपने पति से अलग होकर चिता पर जाने को ऋषि लोग पाप बतलाते हैं।

धूता— (यह) पाप करना अच्छा है। किन्तु आर्यपुत्र के म त्य का समाचार सुनना अच्छा नहीं।

शर्विलक— (सामने देखकर) आर्या (धूता) आग के पास पहुँच चुकी हैं। तो जल्दी कीजिये, जल्दी कीजिये।

(चारुदत्त जल्दी से घूमता है)

धूता— रदनिका! बच्चे को पकड़ लो। जब तक मैं अपना अभीष्ट (आग में प्रवेश) करती हूँ।

चेटी— (करुणा के साथ) मैं भी (आगे-आगे चलकर) आपको रास्ता बतलाने वाली हूँ। (अतः आज भी आपसे पहले चिता पर चढ़कर आपको स्वर्ग का रास्ता बतलाऊँगी। मुझे लौटाइये मत।

धूता— (विदूषक को देखकर) तब आप ही पकड़ लें (बच्चे को)।

विदूषक— (आवेग पूर्वक) अभीष्ट-सिद्धि के लिये प्रव त्त हुए (व्यक्ति) को ब्राह्मण आगे करना चाहिये। इसलिये मैं आपका अगुआ (अग्रणी) होता हूँ।

धूता— क्या दोनों (चेटी और विदूषक) के द्वारा इन्कार कर दी गयी हूँ? (बालक का आलिंगन करके) बेटे! हम लोगों को तिल से मिली हुई जल की अँजुली देने के लिए तुम्हीं अपने आपको बचा लो। समय बीत जाने पर चाहे गये कार्य के करने से क्या लाभ? (लम्बी साँस लेकर) निश्चय ही आर्यपुत्र (चारुदत्त) भी तुम्हारी देख-भाल नहीं करेंगे।

चारुदत्त— (सुनकर, एकाएक पास में जाकर) मैं ही बालक की देख-भाल करूँगा।

(ऐसा कह कर, बालक को हाथों से उठाकर, छाती से लगाता है)

धूता— (देखकर) आश्चर्य है! आर्यपुत्र (चारुदत्त) की सी आवाज है। (फिर सावधानी से देखकर, प्रसन्नता पूर्वक) भाग्य से यह आर्यपुत्र ही हैं। आनन्ददायक है, मेरे लिए आनन्ददायक है।

बालक— (देखकर प्रसन्नतापूर्वक) आश्चर्य है। पिताजी मेरा आलिंगन कर रहे हैं। (धूता से) आर्ये! बढ़ रही हो। पिताजी ही मेरी देखभाल कर रहे हैं। (ऐसा कह कर बदले में आलिंगन करता है)

अन्वयः— हा प्रेयसि! प्रेयसि, विद्यमाने, (अपि), कः, अयम्, कठोरः, व्यवसायः, आसीत्। किम्, भानौ, अनस्तंगमिते; (अपि), अम्भोजिनी, लोचनमुद्रणम्, करोति?।।५८।।

शब्दार्थः— हा प्रेयसि! = हाय प्रियतमे! प्रेयसि = प्रियतम, विद्यमाने = जीवित रहने पर, (अपि = भी), कः = कैसा, अयम्, यह, कठोरः = कठोर, व्यवसायः = निश्चय, आसीत् = था? किम् = क्या, भानौ = सूर्य, अनस्तंगमिते = न डूबने पर, (अपि = भी), अम्भोजिनी = कमल-लता, लोचनमुद्रणम् = नेत्र (रूप फूल) का संकोच, करोति = करती है?।।

अर्थः—

चारुदत्त— (धूता के प्रति)

हाय, प्रियतमे! प्रियतम के (अर्थात् मेरे) जीवित रहने पर भी तुमने यह क्या कठोर (आग में प्रवेश का) निश्चय कर लिया था? क्या कभी कमल-लता सूर्य के बिना अस्त हुए भी (कमलरूप) अपनी आँखें मूँद लेती है?।।५८।।

टीका— हा प्रेयसि = हा प्रियतमे! प्रेयसि = प्रियतमे, मयीत्यर्थः; विद्यमाने = वर्तमाने; अपि; = कः = कीद शः; अयम् = एषः, चिताग्निप्रवेशरूपः; कठोरः = कठिनः, दुःसाध्यः इत्यर्थः; व्यवसायः = निश्चयः; आसीत् = अभूत्? किम्; भानौ = सूर्ये; अनस्तंगमिते = उदिते सतीत्यर्थः; अपि; अम्भोजिनी = कमलिनी, लोचनमुद्रणम् = निमीलनम्; करोति =

विदधाति। यथा सति सूर्ये कमलिनी पुष्पमुद्रणं न करोति तथैव सति मयि तवापि प्राणत्यागप्रयत्नः न कर्तव्यः आसीदिति भावः।।५८।।

इस श्लोक में द ष्टान्त अलंकार तथा इन्द्रवज्रा छन्द है।

धूता— **अज्जउत्त! अदो ज्जेव सा अचेतणेत्ति चुंबीअदि। आर्यपुत्र! अत एव सा चेतनेति चुम्ब्यते।**

विदूषकः— **(द ष्ट्वा, सहर्षम्) ही ही भो, एदेहिं ज्जेव अच्छीहिं पिअवअस्सो पेक्खीअदि। अहो सदीए पहावो, जदो जलणप्पवेशव्ववसाएण ज्जेव पिअसमागमं पाविदा (चारुदत्तं प्रति) जेदु जेदु पिअवअस्सो। (आश्चर्यं, भोः! एताभ्यामेवाक्षिभ्यां प्रियवयस्यः प्रेक्ष्यते। अहो सत्याः प्रभावः, यतो ज्वलनप्रवेशव्यवसायेनैव प्रियसमागमं प्रापिता। जयतु जयतु प्रियवयस्यः।)**

चारुदत्तः— **एहि मैत्रेय!। (इत्यालिंगति)**

चेटी— **अहो संविधाणअं। अज्ज! वंदामि। (अहो संविधानकम्। आर्य! वन्दे।)**

(इति चारुदत्तस्य पादयोः पतति)

चारुदत्तः— **(प ष्टे कर दत्त्वा) रदनिके! उत्तिष्ठ। (इत्युत्थापयति)**

धूता— **(वसन्तसेनां द ष्ट्वा) दिट्टिआ कुसलिणी बहिणिआ। (दिष्ट्या कुशलिनी भगिनी)**

वसन्तसेना— **अहुणा कुसलिणी संवुत्तम्हि। (अधुना कुशलिनी संव त्तास्मि।)**

(इत्यन्योन्यमालिंगतः)

शर्विलकः— **दिष्ट्या जीवितसुहृद्वर्ग आर्यः।**

चारुदत्तः— **युष्मत्प्रसादेन।**

शर्विलकः— **आर्ये वसन्तसेने! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुग ह्णाति।**

वसन्तसेना— **अज्ज! कदत्थम्हि। (आर्य! कृतार्थास्मि।)**

शर्विलकः— **(वसन्तसेनामवगुण्ठ्य चारुदत्तं प्रति) आर्य! किमस्य भिक्षोः क्रियताम्?**

चारुदत्तः— **भिक्षो! किं तव बहुमतम्?**

भिक्षुः— **इमं ईदिशं अणिच्चत्तणं पेक्खिअ दिउणतले मे पव्वज्जाए बहुमाणे संवुत्ते। (इदमीद शमनित्यत्वं प्रेक्ष्य द्विगुणतरो मम प्रव्रज्यायां बहुमानः संव त्तः।)**

चारुदत्तः— **सखे! द ढो स्य निश्चयः। तत्प थिव्यां सर्वविहारेषु कुलपतिरयं क्रियताम्।**

शर्विलकः— **यथाहार्यः।**

भिक्षुः— **पिअं णो पिअं। (प्रियं नः प्रियम्।)**

वसन्तसेना— **संपदं जीवाविदम्हि। (सांप्रतं जीवापितास्मि।)**

शर्विलकः— **स्थावरकस्य किं क्रियताम्?।**

चारुदत्तः— **सुव त्त अदासो भवतु। ते चाण्डालाः सर्वचाण्डालानामधिपतयो भवन्तु। चन्दनकः प थिवीदण्डपालको भवतु। तस्य राष्ट्रियश्यालस्य यथैव क्रिया पूर्वमासीत्, वर्तमाने तथैवास्यास्तु।**

शर्विलकः— **एवं, यथाहार्य; परमेनं मु च मु च; व्यापादयामि।**

चारुदत्तः— अभय शरणागतस्य। 'शत्रुः कृतापराधः' (१०/५४) इत्यादि पठति)

शर्विलकः— तदुच्यतां किं ते भूयः प्रियं करोमि?।

चारुदत्तः— अतः परमपि प्रियमस्ति?

लब्धा चारित्र्यशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्तः,
प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यकः शास्ति राजा।
प्राप्ता भूयः प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान्संगतो मे वयस्यो,
लभ्यं किं चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थये हं भवन्तम्?।।५६।।

अर्थः—

धूता— आर्यपुत्र! इसीलिए वह (कमल-लता) अचेतन कही जाती है।

विदूषक— (देखकर, प्रसन्नता के साथ) अरे आश्चर्य है! (मैं) इन्हीं आँखों से प्रिय मित्र को देख रहा हूँ। सती (धूता) का प्रभाव आश्चर्यजनक है, जिससे कि आग में प्रवेश करने के निश्चय मात्र से ही प्रिय-मिलन को प्राप्त हो गई। (चारुदत्त से) प्रिय मित्र की जय हो, जय हो।

चारुदत्त— आओ मैत्रेय! (ऐसा कहकर आलिंगन करता है)।

चेटी— अहो! दैव का विधान। आर्य प्रणाम करती हूँ। (ऐसा कहकर चारुदत्त के पैरों पर पड़ती है)

चारुदत्त— (पीठ पर हाथ फेरकर) रदनिके! उठो। (ऐसा कहकर उठाता है)।

धूता— (वसन्तसेना को देखकर) सौभाग्य से बहन कुशलपूर्वक है।

वसन्तसेना— अब सकुशल हुई हूँ।

(ऐसा कहकर वे दोनों एक दूसरे का आलिंगन करती हैं)

शर्विलक— भाग्य से आर्य (चारुदत्त) का सुहृद्वर्ग जीवित है।

चारुदत्त— आप लोगों की कृपा से।

शर्विलक— आर्ये वसन्तसेने! प्रसन्न हुए राजा (आर्यक) आपको 'वधू' इस शब्द से अनुग हीत करते हैं (अर्थात् चारुदत्त की वधू बनाकर अनुग हीत करना चाहते हैं)।

वसन्तसेना— आर्य! कृतार्थ हो गयी।

शर्विलक— (वसन्तसेना को दुपट्टे से ढंककर चारुदत्त से) आर्य! इस भिक्षु का क्या किया जाय?

चारुदत्त— भिक्षुक! तुम्हें क्या अधिक प्रिय है?

भिक्षु— इस प्रकार की (जगत् की) इस अनित्यता को देखकर पहले से ही वर्तमान संन्यास में मेरी श्रद्धा दूनी हो गयी है।

चारुदत्त— मित्र! इसका निश्चय द ढ़ है। तो प थिवी पर जितने सब बौद्ध-विहार हैं उनका इसे कुलपति बना दिया जाय।

शर्विलक— आर्य की जैसी आज्ञा।

भिक्षु— प्रिय, मेरा बहुत बड़ा प्रिय।

वसन्तसेना— इस समय मैं जिला दी गयी हूँ।

शर्विलक— स्थावरक का क्या किया जाय?

चारुदत्त— सुन्दर आचरणवाला (स्थावरक) दासपन से मुक्त कर दिया जाय। वे चाण्डाल सभी चाण्डालों के स्वामी बना दिये जायँ। चन्दनक समूची प थिवी की पुलिस का अध्यक्ष बना दिया जाय। उस राजा के साले (शकार) का जैसा काम पहले था वैसा ही इस समय भी रहे।

शर्विलक— जैसा आपने कहा वैसा ही होगा। परन्तु इस (शकार) को छोड़ो, छोड़ो। इसे मारता हूँ।

चारुदत्त— शरण में आये हुए को अभय है। ('शत्रुः कृतापराधः' (१०/५४) इत्यादि पढ़ता है।)

अन्वयः— चारित्र्यशुद्धिः, लब्धा; चरणनिपतितः, एषः, शत्रुः, अपि, मुक्तः; प्रोत्खातारातिमूलः, प्रियसुहृद्, आर्यकः, राजा, (भूत्वा), अचलाम् शास्ति; इयम्, प्रिया, भूयः, प्राप्ता; प्रियसुहृदि, संगतः, भवान्, मे, प्रियवयस्यः, (जातः); अतिरिक्तम्, किम्, लभ्यम्? यत्, अपरम्, अहम्, अधुना, भवन्तम्, प्रार्थये।।५६।।

शब्दार्थः— चारित्र्यशुद्धिः = चरित्र की निर्दोषता, लब्धा = प्राप्त कर ली गयी। चरणनिपतितः = पैरों पर पड़ा हुआ, एषः = यह, शत्रुः = शत्रु, अपि = भी, मुक्तः = छोड़ दिया गया। प्रोत्खातारातिमूल = शत्रु की जड़ को उखाड़ फेंकने वाला, प्रियसुहृद् = प्रिय मित्र, आर्यकः = आर्यक, राजा = राजा, (भूत्वा = होकर), अचलाम् = प थ्वी को, शास्ति = शासित कर रहा है। इयम् = यह, प्रिया = प्रेयसी, भूयः = फिर, प्राप्ता = मिल गयी। प्रियसुहृदि = प्रियमित्र में, संगतः = मिले हुए (अर्थात् प्रिय मित्र से मिले हुए) भवान् = आप, मे = मेरे, प्रियवयस्यः = प्रियमित्र, (जातः = हो गये)। अतिरिक्तम् = इसके अलावा, किम् = कौन सी वस्तु, लभ्यम् = पाने के योग्य है? यत् = जिस, अपरम् = दूसरी वस्तु को, अहम् = मैं, अधुना = इस समय, भवन्तम् = आप से, प्रार्थये = माँगू।।

अर्थः—

शर्विलक— तो बतलाइये कि आपका और कौन सा प्रिय कार्य करूँ?

चारुदत्त— इससे भी अधिक क्या (कोई) प्रिय है?

(अपने चरित्र की निर्दोषता प्राप्त कर ली गयी। पैरों पर पड़ा हुआ यह शत्रु भी (बिना दण्ड दिये) छोड़ दिया गया। शत्रु (पालक) की जड़ को उखाड़ फेंकने वाला प्रिय मित्र आर्यक राजा होकर प थिवी का शासन कर रहा है। यह प्रिया (वसन्तसेना) फिर मिल गयी। प्रिय मित्र (आर्यक) से मिले हुए आप मेरे मित्र हो गये- अथवा मेरे मित्र आप प्रियमित्र (आर्यक अथवा मुझ) से मिल गये। इसके अतिरिक्त और कौन सी वस्तु पाने योग्य है, जिसको मैं इस समय आप से माँगू?।।५६।।

टीका— चरित्र्यशुद्धिः-चारित्र्यस्य = आचरस्य शुद्धिः = निर्मलता; लब्धा = पुनः प्राप्ता। अन्यथा वसन्तसेना चारुदत्तेन हतेति प्रवादेन मदीयं निर्मलं चरितमपि दूषितमासीदिति भावः। चरणयोः = पादयोः निपतितः = लुठितः, शरणागतः इति भावः; एषः = सम्प्रत्येव अस्मात् स्थानात् गतः, शत्रुः = रिपुः, शकारः इत्यर्थः; अपि; मुक्तः = अभयं प्रापितः। प्रोत्खातम् = उत्पाटितम् अरातेः = शत्रो मूलम् = आदि येन ताद शः; विनिहतशत्रुः इत्यर्थः; प्रियसुहृत् = प्रियसखा; आर्यकः = तदाख्यः गोपालपुत्रः; राजा = भूपतिः; भूत्वेति शेषः; अचलाम् = प थिवीम्; शास्ति = नियमयति। इयम् = पुरो वधूभावेन स्थिता एषा; प्रिया = प्रेयसी; वसन्तसेना इत्यर्थः; भूयः = मुहुः; प्राप्ता = लब्धा। प्रियसुहृदि = प्रियमित्रे; संगतः =

वयस्यभावेनामिलितः; भवान् = त्वम्; मे = मम; प्रियवयस्यः = प्रियसुहृद्; जातः इति शेषः। अतिरिक्तम् = अतो धिकम्; किम् = किं वस्तु; लभ्यम् = प्राप्तव्यम्? यदपरम् = यदन्यं वस्तुः अहम् = चारुदत्तः; अधुना = सम्प्रति; भवन्तम् = त्वाम्; प्रार्थये = याचे?। सर्वं ममाभीप्सितं सम्पन्नं न किमप्यवशिष्टमिति भावः।।५६।।

इस श्लोक में समुच्चय एवं काव्यलिंग अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।।५६।।

कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिं
कांश्चित्पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयत्याकुलान्।
अयोन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय-
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः।।६०।।

अन्वयः— कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः एषः, विधिः अन्योन्यम्, प्रतिपक्षसंहतिम्, इमाम्, लोकस्थितिम्, बोधयन्, क्रीडति; (अयम्), कांश्चित्, तुच्छयति; वा, कांश्चित्, प्रपूरयति; कांश्चित्, उन्नतिम्, नयति, कांश्चित्, पातविधौ, करोति; पुनः, कांश्चित्, च, आकुलान्, नयति।।६०।।

शब्दार्थः— कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः = रहट की छोटी-छोटी बाल्टियों के ढंग की नकल करने में लगा हुआ, एषः = यह, विधिः = दैव, अन्योन्यम् = आपस में, प्रतिपक्षसंहितम् = विरोधियों (धनी-निर्धन आदि) की पाँत से युक्त, इमाम् = इस, लोकस्थितिम् = संसार की आस्था को, बोधयन् = बतलाता हुआ क्रीडति = खिलवाड़ करता है। (अयम् = यह), कांश्चित् = किन्हीं को, तुच्छयति = खाली (तुच्छ) करता है; वा = और, कांश्चित् = किन्हीं को, उन्नतिम् = उन्नति को, नयति = प्राप्त कराता है, कांश्चित् = किन्हीं को, पातविधौ = नीचे, पतन के मार्ग में, करोति = करता है; पुनः = और, कांश्चित् = किन्हीं को, च = तो, आकुलान् = व्याकुल, नयति = बना देता है।।

अर्थः— रहट की छोटी-छोटी बाल्टियों के ढंग एक का खाली होना दूसरे का भरना) की नकल करने में लगा हुआ यह दैव, आपस में विरोधियों (धनी-निर्धन आदि) की पाँत (समूह) से युक्त संसार की इस (सामने वर्तमान) अवस्था का बोध कराता हुआ खिलवाड़ करता है। यह दैव किन्हीं को खाली (तुच्छ) करता है और किन्हीं को भरा-पूरा करता है। किन्हीं को उन्नति की ओर ले जाता है तो किन्हीं को नीचे गिरा देता और किन्हीं को तो व्याकुल ही बना देता है।।६०।।

टीका— कूपयन्त्रस्य = कूपात् जलोद्धारणयन्त्रस्य 'लोके रहट' इति ख्यातस्य यन्त्रस्य' घटिकाः = स्वल्पघटाः तासां न्याये पद्धतौ प्रसक्तः संलग्नः; एषः = सर्वत्र नियमनकर्ता; विधिः = दैवम्; अन्योन्यम् = परस्परम्; प्रतिपक्षाणाम् = विरुद्धानाम्, घनित्व-निर्धनत्वादीनामित्यर्थः, संहतिम् = समूह यत्र ताद शीम्; इमाम् = अस्माभिः अनुभयमानाम्; लोकस्य = संसारस्य स्थितिम् = अवस्थाम्; बोधयन् = ज्ञापयन्' क्रीडति = क्रीडा करोति। यथा घटीयन्त्रे प्रचलति सति घटिकाः मालायां क्रमशः उच्चनीचभावप्राप्तौ जलेन पूर्णानि रिक्तानि च भवन्ति तथैव दैवमपि 'कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा, नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।' इति कालिदासोक्तिं चरितार्था कुर्वत् जनान् धनिनः निर्धनान् च करोतीति भाव। एतदेव विव ण्वन् निर्दिशति-अयं विधिः, कांश्चित् = कियतः, जनानिति

शेष; तुच्छयति = लघूकरोति धनरहितान् करोतीति यावत्; महाकविना कालिदासेन मेघे कथितमस्ति-''रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।'' वा = तथा; कांश्चित् = कियतः जनान्; प्रपूरयति = धनादिदानेन पूर्णान् करोति। कांश्चित् जनान्; उन्नतिम् = सम द्धिम्, अभ्युदयम् वा; नयति = प्रापयति; कांश्चित् पातविधौ = पतनप्रकारे, पतनमार्गे इत्यर्थः; करोति = विदधाति; पुनः कांश्चित् = कतिपयान् जनान्; आकुलान् = व्याकुलान्; नयति = करोति इत्यर्थः। दैववशात् सर्वेषां जनानां नात्र समाना स्थितिरिति भावः।।६०।।

इस श्लोक में निदर्शना अलंकार तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

तथापीदमस्तु भरतवाक्यम्—

क्षीरिण्यः सन्तु गावो, भवतु वसुमती सर्वसंपन्नसस्या,
पर्जन्यः कालवर्षी, सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्तां जन्मभाजः, सततमभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्तः पान्तु प थ्वीं प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपाः।।६१।।

अन्वयः— गावः, क्षीरिण्यः, सन्तु। वसुमती, सर्वसम्पन्नसस्या, भवतु। पर्जन्यः कालवर्षी (भवतु)। सकलजनमनोनन्दिनः, वाताः, वान्तु। जन्मभाजः, मोदन्ताम्। ब्राह्मणाः, सततम्, अभिमताः, (तथा), सन्तः, सन्तु। श्रीमन्तः, प्रशमितरिपवः च, धर्मनिष्ठाः, भूपाः, प थिवीम्, पान्तु।।६१।।

शब्दार्थः— गावः = गाएँ, क्षीरिण्यः = दूधवाली, सन्तु = हों, वसुमती = प थिवी, सर्वसम्पन्नसस्या = सब प्रकार के धान्य से भरी-पूरी; भवतु = हो। पर्जन्यः = बादल, कालवर्षो = समय पर वर्षा करने वाला, (भवतु = हो)। सकलजनमनोनन्दिनः = सभी लोगों के मन को प्रसन्न करने वाली, वाताः = हवाएँ, वान्तु = बहें। जन्मभाजः = पैदा होने वाले सभी प्राणी, मोदन्ताम्, = सुखी रहें। ब्राह्मणाः = ब्राह्मण लोग, सततम् = सर्वदा, अभिमताः = (सबके) प्रिय, (तथा = और) सन्तः = सदाचारी, सन्तु = हों। श्रीमन्तेः = सम्पत्तिशाली, प्रशमितरिपवः = शत्रुओं का दमन करने वाले, च = तथा, धर्मनिष्ठाः = धर्म में श्रद्धा रखने वाले, भूपाः = राजा, प थिवीम् = प थिवी को, पान्तु = पालें।

अर्थः— फिर भी यह होवे- भरत-वाक्य

गाएँ (काफी) दूधवाली हों। प थिवी सब प्रकार के धान्य से भरी-पूरी हो। बादल समय-समय पर वर्षा करने वाला हो। सभी लोगों के मन को प्रसन्न करने वाली हवाएँ बहें। (संसार में) पैदा होने वाले सभी प्राणी सुखी रहें। ब्राह्मण लोग सर्वदा सब के प्रिय एवं सदाचारी हों। सम्पत्तिशाली, शत्रुओं का दमन करने वाले तथा धर्म में श्रद्धा रखनेवाले राजा प थिवी का पालन करें।।६१।।

टीका— गावः = धेनवः; क्षीरिण्यः = प्रशस्तक्षीरयुक्ताः; सन्तु = भवन्तु। वसुमती = वसुन्धरा, प थिवीत्यर्थः; सर्वसम्पन्नसस्या = सर्वाणि = सर्वविधानि सम्पन्नानि = सम द्धानि, सस्यानि धान्यादीनि यस्यां ताद शी; भवतु = अस्तु। पर्जन्यः = मेघः; काले-समये वर्षति = जलं ददाति इति कालवर्षी = यथासमयं जलदाता; भवतु। सकलानाम् = सम्पूर्णानाम् जनानाम् = लोकानाम् मनांसि = चेतांसि नन्दयन्ति = हर्षनिर्भराणि कुर्वन्ति इति तथोक्ताः; शैत्यमान्द्यगन्धयुक्ताः इत्यर्थः; वाता-वायवः; वान्तु = प्रवहन्तु। जन्मभाजः =

देहधारिणः, सर्वे प्राणिनः इत्यर्थ; मोदन्ताम् हर्ष प्राप्नुवन्तु। ब्राह्मणाः = विप्राः, सततम् = निरन्तरम्; अभिमताः = सर्वजनैः अभिनन्दिताः; तथा सन्तः = सज्जनाः, स्वकर्मणि रताः इति भावः; सन्तु = भवन्तु। श्रीमन्तः = लक्ष्मीसम्पन्नाः; प्रशमिताः = विनाशिताः नियमिताः वा, रिपवः = शत्रवः यैः ताद शाः च = तथा; धर्मनिष्ठाः = धर्मशीलाः, धार्मिकाः इति यावत्; भूपाः = राजानः; प थिवीम् = वसुधाम्; पान्तु = रक्षतु।।६१।।

इस श्लोक में परिसंख्या अलंकार तथा स्रग्धरा छन्द है।।६१।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

(इसके बाद सब निकल जाते हैं)

संहारो नाम दशमो ंकः।

''संहार नामक दशवाँ अंक समाप्त''